REPRINT FROM THE

CHOWKHAMBĀ SANSKRIT SERIES

A

COLLECTION OF RARE & EXTRAORDINARY SANSKRIT WORKS.

Nos. 77, 78, 80, 83, 92, 98 & 132

THE

KĀTYĀYAN S'RAUTA SŪTRA

WITH THE

Karka Bhās'ya of s'rī karkāchābya

(PART II)

Edited with Notes by Pandit Gopāl S'āstri Nene, Vyākaraņāchārya, Professor, Govt, Sanskrit College, Benares.

and

Dedacharya Dogra Anantram S'astri.

Vol II. Fasciculas. 7-13.

PUBLISHED & SOLD BY THE SECRETARY,
CHOWKHAMBA-SANSKRITISERIES OFFICE,
Vidya Vilas Press, North of Gopal Mandir, Benares,
1939.

PRINTED BY JAYA KRISHNA DAS GUPTA, VIDYA VILAS PRESS, BENARES CITY. 1939.

Registered According to Act XXV of 1867.
All Rights Reserved by the Publishers.

% देहर हर्म**७**%

॥ श्रीः ॥

चौलम्बा-संस्कृत-सीरिज्

पुस्तकमाळातः पुनर्भेदितम् ।

अन्थाङ्काः ७७, ७= ८०, ८३, २२, ९८, १३२.

३**३ श्री:** ३६

कात्यायनश्रीतसूत्रम्।

श्रीमत्कर्काचार्यविरचितभाष्यसहितम् ।

तस्य

द्वादशाहयज्ञ अभृतिसत्रान्त कर्म-प्रायश्चित्त-उपसत्व्रवर्षे निक्षणात्मकद्वादशादिषड्विशाध्यायान्तो द्वितीयो भागः।



el El ann

व्याकरणाचार्य पं० नेने गोपालग्रास्त्रिणा वदाचार्य पं० डोगरा अनन्तराम ग्रास्त्रिणा च टिप्पण्यादिभिः परिष्कृत्य संशोधितः ।

সকাৰাক:---

जयकृष्णदास हरिदास गुप्तः चौष्यम्या संस्कृत सीरिज़ आफिस, विद्यावितास प्रेस, बनारस सिटी।

निवेद्तम्--

ईश्वरक्रपया श्रीमत्ककांचार्यकृतभाष्योपद्ृंहितस्य कात्यायनश्रौतसूत्रस्य हादशाध्यायमारभ्य षड्विशाध्यायपर्यन्तं पञ्चद्शस्वध्यायेषु हाद्शाह्यज्ञप्रभृति सत्रान्तं श्रौतकर्मजातं तत्सम्बन्धिशायश्चित्तमुपसत्प्रवर्यौ चेति निक्षिपतं संगुद्ध प्रकाश्यतेऽस्मिन् हितीयभागे ।

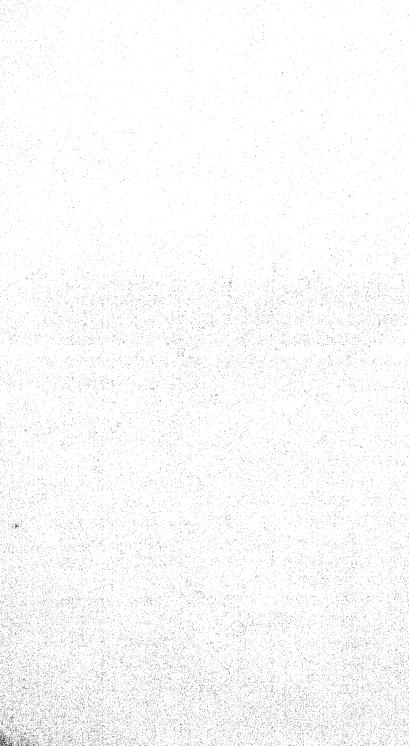
श्रस्य प्रथमो भागोऽस्मदीयैः गुरुवरैः प्रातःस्मरणीयैः महामहोपाध्याय पं० श्रीनित्यानन्द्पन्तपर्वतीयैः स्विटिपण्याऽलंकृत्य सम्पादितो वर्तते । तदनन्तरं तैरेवाज्ञप्तोऽहं द्वितीयभागसम्पादनाय प्रवृत्तस्तदीयकृपाकटाचौरे-वाऽत्र भागे इतःपूर्वमपरिचितोऽप्यपारयंस्तत्र तत्र विषमस्थलेषु टिप्पणीं सम्पादियतुमिति ।

श्रासन् भागे द्वादशाध्याये सत्राहीनोभयात्मकद्वादशाहिन्द्रपण्म् , त्रयोदशाध्याये गवामयनिक्ष्पण्म् , चतुर्शाध्याये वाजपेययागिन्द्रपण्म् , पञ्चदशाध्याये राजस्ययागिन्द्रपण्म् , षोडशसप्तदशाष्ट्राध्यायेषु चयनिक्ष्पण्म् , एकोनविंशेऽध्याये सौत्रामणीयागिन्द्रपण्म् , विंशेऽध्याये उत्रवसेधनिद्रपण्म् , एकविंशेऽध्याये पुत्रवसेध-सर्वसेध-पितृसेध-यागानां निद्रपण्म् , द्वाविंशेऽध्याये एकाह्यागानां निद्रपण्म् , त्रयोविंशेऽध्याये एकाह्यागानां निद्रपण्म् , त्रयोविंशेऽध्यायेऽहीनानां यागानां निद्रपण्म् , चतुर्विंशेऽध्याये सत्राणां निद्रपण्म् , पद्वविंशेऽध्याये सत्राणां निद्रपण्म् , पद्वविंशेऽध्याये अत्रवागीयकर्मोपघाते प्रायश्चित्तनिक्षपण्म् , पद्वविंशेऽध्याये उपसत्रवर्ग्यनिक्षपणं वर्तते । द्वादशाहादिविशेषाश्च सर्वे साकल्येन विषयानुक्रमण्डिकायां विस्तरेण क्रमशे निक्षितास्तत एवावगमनीया इति ।

यद्यायस्य पूर्वेमस्मिन्नेव मुद्रायन्त्रालये मुद्रण्मभूत् , परं तत्र बहुच-स्त्रुट्य आसन् । ताः सर्वाः राक्त्यनुसारेण मार्जियत्वा तत्र तत्रावश्यकस्थ-लेषु टिप्पण्या तत्रतत्रत्यविशेषात्र , दर्शयता मया द्वितीयसंस्करणमिदं भवतां पुरतो निवेदाते । श्रस्य भागस्य टिप्पण्यादिपरिष्कारे संशोधनकार्ये च मदीयसुहृदा वेदाचार्य पं० डोगरा श्रनन्तरामशास्त्रिमहोदयेन महत्सा-हाय्यमनुष्ठितमिति अनेकशो घन्यवादाहास्ते महाभागाः ।

्रहिंदोषेण सीसकाचरदोषेण वा सुलभानि स्वलितानि परिमार्जयन्तु तत्र भवन्तो गुणैकपचपातिनो विद्वांस इति ।

रथयात्रा श्रापाढ ग्रु० २ सं० १९९६ गवन्मेंड संस्कृत कालेज **वनारस** विदुषामतुचरो नित्यानन्दोषासको गोपाल शास्त्री नेने



सक्तभाष्यकात्यानश्रीतस्त्राणां

विषयानुक्रमणिका।

| सङ्ख्या | नुत्रम् । | Peg | सङ्ख्या | रूत्रम् | पृष्ठम् |
|---|-----------|---------------|---|---------|-----------------|
| द्वादशाध्याये प्रथमा करि | डका | | १९ दीक्षाकाले प्राजापत्यग्शोरनुः | | |
| १ एकाइद्वादकाहयोः ज्योति- | | | डानस्। | ₹0 | ષ્ટ્ર |
| ष्टोमधर्माणामतिदेशः । | ę | . 8 | २० एकदिने पशुदीक्षयोरनुष्ठाना- | | |
| २ द्वितीयादिषु वात्यस्तोमे | | , | शकौ पशुमात्रानुष्टानम् , दी- | | |
| साद्यक्षेषु च प्रथमत्रात्य | - | 1.59 | क्षा तु दिनान्तरे। | २१ | Ģ |
| स्तोमस्य लाद्यःस्क्रस्य च धा | | 1, 1 | २१ सन्थनप्रकारान्तरस्। | 28 | . 6 |
| णामतिदेशः । | 21 D | ą | २२ दीक्षाकाले गृहपतिमाईपत्येऽ- | | |
| ३ द्वितीयास्विधदुत्सु प्रथमाप्ति | | • | ङ्गारप्रक्षेपः सर्वेषास् । | 9.3 | ę |
| ष्टुचागस्य धर्माणामतिदेशः | | | २३ सर्वेसाधारणीऋतगाईपत्यादा- | | i naj Ngjari |
| ४ अधिष्टुद्यागानां बहुत्वस्। | ં ર | | ह्वनीयद्क्षिणारम्योरुद्धरणस्। | | Ģ |
| ५ द्वादशाहयागस्य सत्राहीनोः | | 34 | २४ बह्यादीनां सर्वेषामपि गृहपः | | N 11 N |
| नयात्मकत्वम् । | Q | ક્ | तिवद्गाहेपत्यचयनम् । | 88 | 6 |
| ६ सत्राहीनयोरुक्षणस् । | Ą | 3 | द्वादशाध्याये द्वितीया करिः | est. | |
| ७ सत्राहीनयोर्छक्षणान्तरनिरूपः | | | | ego eus | |
| णम् । तत्र सत्रे प्रथममन्त्य | i | | २६ आग्मीधीये शालाहार्यात् स्व | | |
| चा विरात्रसंस्थाक्महोऽहीने | | | स्वगाहें पत्यं प्रति अधिनयनम् | 1 8 | Ę |
| त्वन्त्यमात्रस्। | 9 | ३ | २६ प्रत्यिम सन्नीयपुरोडाशातु- ष्ठानस् । | æ | • |
| ८ सत्रेषु सर्वेषां यजमानकर्मत्वम | 16 | 3 | २७ पत्नीसंयाजानासिष्टकापशुव | • | Ę |
| ९ सत्रेषु दक्षिणाभावनिरूपणम्। | . 6 | 3 | | | e. |
| १० यजमानकार्ये गृहपतेर्विकारः। | १० | \$ | दबुधानम् । २८ द्वितीयो सन्धनप्रकारः । | 3 2 | |
| ११ प्रमाणान्तरेण गृहपतेरधिकार- | | | २१ सवेपक्षेतु प्रथमं गृहपतेर्मन्थनम् | | Ę |
| निरूपणम् । | ११ | ą | ३० मन्धननिष्यसस्याग्नेगृहपति- | 14 | Ę |
| १२ संस्कारेषु स्वेंऽधिकारिणः। | १२ | 8 | गाहंपत्ये प्रक्षेपः । | | • |
| १३ अनेकेषां कतृत्वासम्भवे गृह- | | 10. Grafia | शाहपत्य प्रवपः । ३१ डपवस्रधप्रसृतेः पक्षत्रपेऽपि तुः | Ę | Ę |
| पत्यस्वारमभः । | \$8 | 8 | द्रश्डपवस्त्रवस्रकृतः रह्मम्यगम् छः | v | 8 |
| १४ क्रत्वङ्गपदार्थेषु गृहपतेरेव कः | | | ३२ [तृतीयो मन्धनप्रकारः] | | |
| त् त्वस् । १९ मन्यवप्रकारकथनम् । | १५ १६ | 8 | गृहपत्यरण्योरेव सवेषामग्नीः | | |
| १६ गृहपस्याहवनीयेऽम्रौ सर्वेषां | | | नां समारोपः। | 6 | Ę |
| रनस्वमाहंपत्याङ्वारप्रक्षेपः। | 919 | 8 | ३३ अस्मिन्पक्षे पशुबन्धशन्दस्थाने | | |
| १७ सम्रेषु विहारे प्राजापत्यः पशुः। | | 9 | सत्त्रहाब्दप्रयोगः। | ę, | Ø |
| १८ गृहपतिवजितानां सत्त्रिणाः | 7.3 | • | ३४ तृतीये पक्षे श्वालागाहेपस्य- | | |
| भाज्येन परनीसंयाजानुष्टान- | | | २६ एराव च्या सालानाहरू पुरोडाशपतीखंयाजानामझि• | | |
| 나는 그 이 이 얼마나 가는 🌪 그는 생생님이 살 때 그 나를 다니다. | 25 | 8 | 병하다 가는 그 상품을 하다면 하다면 하는 사람들은 사람들이 되었다. | (۱۹ | 9 |
| का० वि०१ | | | | * * | |
| | W. Wes | | | 1000 | 34.2 |

| ्रे सं | ् सं च् |
|---|---|
| ३९ एकपुरोडाशपक्षे यजमानानां | ५३ सांवाशिनबाट्दार्थनिरूपणम् । १३ ९ |
| भोजनार्थमैन्द्रबार्हस्पत्यान्यतरः | ९४ ऋतुयाज्यापठने अध्वयुप्रतिप्र- |
| दनुष्टानस्। १२ ७ | स्थात्रोरधिकारः। १४ ९ |
| ३६ सम्रे द्वादशाहे कमैविशेषः। १४ 🌞 | ९९ माहेन्द्रगहशस्त्रे ऋग्वेद्वि- |
| ३७ तत्र दीक्षाक्रमः। १५ ७ | हितप्रतिगरः। १५ १० |
| ३८ सम्रे पत्नीनां दीक्षाक्रमः। १६ ८ | १६ हतरेषां प्रतिगरपदानामह ष्टा- |
| ३९ उन्नेनुपत्नीदीक्षाधिकारी १७ ८ | र्थेत्वात्प्राञ्चतं प्रतिगरपदम् । १६ १० |
| ४० दक्षिणाकाले कृष्णाजिनधूननं | ९७ प्रष्ठये षडहान्ते धर्मानुष्ठानम् । १७ १० |
| मातापितृनामसंकीर्तनपूर्वकंद- | ९८ द्वादशाहे षडहानन्तरम् , अष्ट- |
| क्षिणदिशि गमनञ्ज। १८ ८ | मादित्रीण्यहानि उक्थ्यसंस्था- |
| द्वादशाध्याये तृतीया कण्डिका— | नि,तेषां छन्दोमसंज्ञा। १८ १० |
| ४१ द्वादशाहे प्रथमातिरात्राहान- | ९९ द्वादशाहे छन्दोमाहानन्तर- |
| न्तरं द्वितीयादिषडहाणां प्र | मेकादशमहः अविवाक्यसँज्ञ- |
| प्यतः । द्वताना। दुन्दश्चाना हुन् ष्ट्रयसंज्ञा, तत्र द्वितीयमन्तिः | म्, अग्निष्टोमसंस्थन्न । २०१० |
| ध्यत्वा, तत्र द्वितायनाः । ष्टोमसंस्यं, तृतीयचतुर्थवष्टसः | ६० द्वादशमहर्वजीयत्वा सर्वेष्वहः- |
| 교육 등 사용을 가게 가는 이 하는 이렇게 하면 이 중에 중에 이 휴가와 좀 하고 있다면 하는 것 | सु पत्नीसंयाजानां कर्मणामतु- |
| भगान्युक्थ्यसंस्थानि। १ ८ ४२ पृष्ट्ये पूर्विस्मस्त्र्यहेऽन्वहमेकै- | ष्टानम्। २१ १० |
| कस्यातिप्राह्मस्य प्रहणम् । २ ८ | [발발하다 기급 원일] 하기 없이 많아 되었다. |
| १३ पृष्ठवे परे वा ऋग्हेडन्वहः | द्वादशाध्याये चतुर्थी करेडका |
| भेकैकस्याविगाद्यस्य ग्रहणम् । ३ ८ | ६१ सोमरक्षणमृत्विग्बोधनपर्यन्तम् । १ १० |
| ४४ पृष्ठ्ये उभयोस्त्रयह्योविङ्ग्वह- | ६२ वसतीपरिहरणानन्तरं च सोमः |
| भेककस्यातिपाद्यस्य ग्रहणम्। ४ ८ | रक्षणकालः। २ ११ |
| ४५ साहेन्द्रशहहोमानन्तरमतिग्रा- | ६३ स्वाच्यायार्थं समिदानयनार्थञ्ज |
| | सोमरसकान्येषां बहिर्गमनम् । ३ ११ |
| ह्याणा हामः। ६ ९ । ४६ त्रिभिमेन्त्रेः त्रयाणां होमकतृत- | ६४ तत्र हविःशेषाशनञ्ज। ४ ११ |
| च्दकर्वयज्ञमानानां सञ्ज्ञानिः | ६९ स्वाच्यायसमिदाहरणादि दशमे |
| 경화에 살아왔다. 문제가 전면도 많아 그녀는 하는 이번 사는 사이 나는 사람들이 되었다. [1 | प्व वाऽहित। ५ ११ |
| धानस्। ६ ९ ४७ बडहे पृष्ठस्तोत्रोपाकरणे विशेषः. | ६६ आनीतानां समिधां सर्वेष्वहःसु |
| तम्र प्रथमेऽहनि स्थलंसारणेन | सर्वेष्वप्रिषु सुर्थास्ताद्वन्तरं |
| स्तोत्रोपाकरणस् । ७ ९ | सर्वयज्ञमानकर्तृकमाधानम् । ६ ११ |
| ४८ पृष्ठकाले दुन्दु भिन्नव्देन पृष्ठोपा- | ६७ दशमेऽहनि अवराह्नेऽप उपस्पृत्रय |
| करणम्। ८ १ | दीक्षितामां सत्रोत्थानसंज्ञक |
| ४९ व्यजनैः स्तोत्रोपाकरणम् । ९ ९ | मीनुष्ठानम् । तत्र शालाप्रवेशनम्।७ ११ |
| ५० अरणिस्यां स्वोत्रोपाकरणम्, | ६८ शालाद्वायेंऽध्वर्शुक्तृंकमाज्या- |
| उद्गातुः करो अरनेमैन्थनम् , | हुतिद्वयहोमः। ८ ११ |
| आहवनीय होमञ्जा १० ९ | ६९ ततः सबदीक्षितकर्तकं हवि |
| ५१ शेवालसंयुक्तया पात्रया छपा- | र्धानमण्डपे स त्रस्यदिगानम् । १० ११ |
| करणस्। ११ ९ | ४० उत्तरवेदिश्रोण्यां वा प्रागुक्तं |
| ५२ सांवाश्विनेन स्तोत्रोपाकरणम् । १२ ६ | गानम १९ १२ |

| संव | ₹ | jo y | ા લં૦ | ě | Ę٥ | go | |
|--|-------------------|---------------------------------------|--|------------|-------------|--------------|-----|
| ७१ ततो दक्षिणा, हविधीनम | 1 3 . | | ९९ अतिरात्रे सौम्यवरुगा सह | | 143 | Car - | |
| पादक्षाधस्तानमागेण प्राङ् | मुख- | | भाषिनो भवति। | | 3 | 0.0 | |
| निःसरणस् । | 9 | २ १२ | | . . | 3 | १६ | |
| ७२ प्राजापत्यग्रहणादिनिरूपणम् | (1 8 | ३ | विद्याताः । | | 8 | 20 | |
| क्ष्र ततो होत्कर्त्कचतुर्होत्व्याः | | | १०१ अतिरात्रे पर्याययागे शस्त्रकः | îð:1 | • | \$ 19 | |
| ख्याननामकशस्त्रवाहः। | ? | ४ १३ | | | | • | |
| ७४ होतुरज्ञाने यजमानेनैव तत्या | ਣ : | | न्तरं सन्धिस्तोत्रोपाकरणम् | | 8 | १७ | |
| कर्तव्यः। | 2 | | | | | . 7 | |
| ७५ चतुर्होतृन्याख्यान प्रतिगरः | 1 2 | ३ १२ | १०४ आदिवनहोसः। | | | S (2) | |
| ७६ त्रह्मोधपा ठः । | 9 1 | | १०५ आदिवनहोसप्रैयः। | | କୁ କୁ | \$@ | |
| ७७ वद्योद्यतिरूपणम् । | 8 | • | | | 2 | 80 | |
| ७८ समवे बाग्यमः । | ٠ = ١ | | १०६ सञ्चे द्वादशस्वहःसु सवनीयप शवः । | , \$ | 3 | şıs | |
| ७९ अस्तानन्तरमुत्तरवेद्यासुपवेश | | 7.4 | १०७ त्रयोद्शरात्रादिषु सवनीयव | . % | • | 8 - | |
| नस्। | ર ર | १३ | शवः। | 5 6 | è | १७ | |
| ८० वाग्विसर्जनम् । | | | १०८ सञ्चस्य काम्यत्वस् । | ृह | | १८ | |
| ८१ गृहपतेः सुबद्धण्याह्वानम् । | ેલ કે ઉ | | १०९ अहीने हादशाहे विशेषः, ऐ- | | | | |
| ८२ ततः समिदाधानम्। | 26 | | न्द्रवायवप्रहणात्पूर्वमाप्रयणम् | | | | |
| ८३ सत्रोत्यानसंज्ञाविधानम् । | \$ 10 | | हश्चतुर्थंनवसयोरहोः। | 66 |) | १८ | |
| | | | ११० पष्टससमगोत्र गुकस्य पूर्व | | | | |
| द्वादशाध्याये पञ्चमी करि | | | अहरास् । | १८ | , | १६ | |
| ८४ आगन्तुकग्रहग्रहणकालविधिः | | 8.5 | १११ प्रकृतियागे पुर्वसुक्तानां ग्र- | | | | |
| ८५ अतिपाद्यवोडशियहपहणकाल | | \$8 | हाणां प्रहणपर्यन्तमनयोरासा- | | | | |
| ८६ अंबदाम्यप्रह्मणम्। | | \$8 | दननिषेधः। | 88 | | ફ્લ | |
| ८७ अञ्चयहत्तस्वन्धिपदार्थेषु विशेष | : 10 | 88 | ११२ शुकाषयणप्रहसाद्वस् । | 20 | 1 | १८ | |
| ८८ सत्रत्रादिष्त्रेवांशुप्रहप्रहणस् । | \$ 5 | १५ | ११३ द्वादशाहस्योभयतोऽतिरात्त्रः त्वम् । | | | | |
| ८९ सन्त्रातिरिक्तं ऽशुगहदक्षिणा। | १२ | 84 | | 33 | . \$ | 66 | |
| ९० अदाभ्यग्रहणम् । | 23 | 86 | ११४ हारियोजनोत्तरकालेअनीघो सन्त्रपाठः । | | | | j |
| ९१ अंग्रुवहपात्रे निवाभ्यापां निः | | | | 43 | |)G | |
| न्यनं, ततोंऽग्रुत्रयावधानम्। | ફ | 84 | त्रयोदशाध्याये प्रथमा करि | डक | [- | | |
| ९२ अंग्रुत्रयावधानमन्त्रेषूपवामाः | | | १ गवामयने हा स्वाहधर्मातिहेवा। | 9 | | 8 | |
| नुषद्धः । ९३ अंग्रुप्रहहोमः । | 84 | 99 | २ गवासयने दीक्षाकालः। | | ્ર | | |
| ९३ अंशुप्रहहोमः । | 800 | १६ | श्वासयने प्रसानश्रये सर्वेषां | | | | |
| ९४मदाम्यप्रहदक्षिणांऽशुप्रहवदेव । | १९ | 24 | दीक्षितानामुद्गात्रालम्भो | | S | | |
| ९५ उक्य्येन प्रचर्य षोडशिप्रचरणम् | २० | 88 | सन्त्रजपञ्च 🕻 | 2 2 | ą | ę | Š |
| द्वादशाध्याये पष्टी करिइक | Ţ | | त्रयोदशाष्याये द्वितीया करिड | | Jake. | | 1.5 |
| ६ पोर्डाशस्तोत्रोपाकरणम् । | 8 | १६ | ४ अभिष्ठवोक्ष्ययः ज्ञयोः स्वरूपस्। | 100 | 2 4 | | |
| ७ इन्त्रथ सम्राहिति सम्त्रेण | | | ५ गवामयने चतुविशमहरात्निष्टोः | \$ | - . | \ | |
| ६ जम् । | ¥. | 88 | | ą | 2,2 | | |
| ८ पाडीशसंस्थासमाक्षिः। | 3 |) i | | | | | |
| | 7 | • • • • • • • • • • • • • • • • • • • | TO THE PARTY OF TH | ŧ | 44 | • | : : |

| લું ૧૦ ૧૦ | सं॰ पु॰ |
|--|--|
| ७ गवासयने पष्टमासानस्तरं सध्ये | ३२ दासीनां शिरः सु कुम्भान् धत्वा |
| विबुवतः क्रतोरनुद्यानस्। ६ २३ | मार्जाछीयपरिक्रमणम् । २० २६ |
| ८ विषुवति प्रातरनुवाकल्य सुः | ३३ दासीनां परिक्रमणस्यादी वा |
| चौदयानन्तर प्राइते काले | चनस्। २१ २६ |
| वाऽनुष्ठानम्। ९ २३ | ३४ परिक्रमणमन्त्राः। २३ २६ |
| ९ विषुवति सवनीयश्चारेको द्वि- | ३५ महावतस्वोन्नसमासिपर्यन्तं पः |
| तीयश्च सोर्थः पद्यभैवति । १० २३ | रिकमणम्। २४ ६६ |
| १० अक्षवर्जमत्र सर्वा विधिरतिषाद्यः | ३६ क्रिः परिक्रमणं वा । ३५ ३६ |
| वत्। ११ २३ | ३७ ततः कुम्भानां मार्जालीये नि- |
| ११ विषुवतः परमहां प्वंमनुष्टिता- | धानम्। २६ ३७ |
| ं वां प्रातिलोम्येनानुष्ठानम् । १२ २३ | ३८ महाव्रतस्तोत्रकाले दाक्षितस्तुः |
| १२ अभिजित्स्थाने विश्वजिद्यान- | तिनिन्दादिसक्छक्वत्यविधिः। २७ २७ |
| े होमानुष्ठानम्। १३ २३ | ३९ महात्रतादुत्तरे दिवसेऽतिरात्रा |
| १३ विक्वजितः सर्वेष्टहरने सर्वेः | नुष्ठानम् । २८ २७ |
| े वामतिपाद्यता । १४ २३ | |
| १४ उत्तरपत्ने षष्टमासस्य क्लितिः । १५ १३ | स्यराधिकका लकसहस्राधिकः |
| १५ महाबतस्। १५ २३ | दक्षिणेषु भन्नेषु । |
| १३ महात्रते प्राजापत्यपञ्चः । १६ २४ | ४१ यजमानानां पत्नीनां च सर्वव- |
| १७ महावतीयग्रहप्रहणम्। १७ २४ | |
| १८ महावतीयमहभक्षणस्। १८ २५ | |
| १९ बीणया पृष्ट्यस्तोत्रीपाकरणस् । १८ २५ | वसानीया। ३३ २८ |
| २० वीणातन्तवो वादनकार्छं च। १९ २५ | |
| | तस्य च पृष्ठशमनीयसँज्ञा। ३४ २८ |
| त्रयोदशाध्याये तृतीया करिडका— | ४४ पृष्ठशमनीयस्य सन्त्राङ्गत्ववि |
| २१ सहावतस्तोत्रसमये ऋत्विजाः | चारः। |
| सासनविशेषविधिः। १ ९ | |
| ६२ दीक्षितस्तुतिनिन्दयोर्विधिः। ४ २ | |
| १३ अन्यान्यं वंदयात्रहाचारिणानि | ४६ अहर्गणे व्युत्कामतादिकर्मणां |
| स्दुनस् । | |
| २४ शुद्धाऽन्यवर्णयोश्चर्माक्षणं तः | ४७ अहरोणे प्रत्यहं वसतीवरिग्र- |
| न्नान्यस्य जवः । | ५ हणम्। ५३ ३० |
| | ५ ४८ वसतीवस्थिहणे विकल्पः ५४ ३० |
| | ९ चतुर्दशाध्याये प्रथमा करिडका — |
| | 그렇게 되었다. 이 이 그리는데 얼마나를 하면 하고 있었다. 그를 생겨를 다 수입하다. 이 그는 살람이다. |
| [2] 12 N TA MATERIAL (TRANSPORT AND ST. AND SECTION (1997) (1997) | ५ १ वाजपेययागिकरणम्। १३० |
| | ५ । २ वाजपेये, ब्राह्मणक्षत्रियावधि- |
| ३० सुमिदुन्दुभिानपादनविधिः | कारिणौ। ू१३० |
| ुन्छनवार्वेच। १६ व | ५ । ३ वाजपेयस्याद्यन्तयोर्श्वहस्पतिः |
| ३१ पत्नीमां बादनं गानं च । १७ व | १६ सवधागानुष्ठानम्। २ ३० |
| ter industrial and the street and the contract of the particle of the property of the contract | 海流水 化环烷化合物 在的现在分词 机电流电阻 经收益 化氯化二氯化二氯化氯化 医二氏管 化氯化氯化氯化氯化氯化丁基 医乳腺管理 |

| fio | सू० | पृ० | सं० | सु० | To |
|---|------|--------------|-----------------------------------|-------------|--------------|
| ४ वाजपेयस्याद्यन्तयोज्यीतिष्टो- | | | २६ सञ्च यहः। | 6 | 38 |
| मानुष्टानं वा । | 3 | 30 | २७ उदध्यादिषहः। | 8 | 38 |
| ९ वाजपेयस्याद्यन्तयोज्यीतिष्टो- | | | २८ अतिरात्रादिपश्चासुपाकरः | | |
| सपृष्ट्याचनुष्टामं वा । | ઇ | şo | णस् । | ् १० | 33 |
| ६ वाजपेयस्याचन्तयो राजसूय | ₹ 0 | | २९ माहेन्द्रपहयागान्ते वशावपा- | | |
| सोमानां वाऽनुष्ठानम् । | ø | 3 9 | थागोत्कर्षः। | १५ | 39 |
| ७ उभयतो विहितानां बृहस्यति- | | | ३० तत्र चावदानानां द्वेधा अपणस् | | ३५ |
| सवादीनां पृथक् पृथग् दीक्षा । | | 38 | ३१ अवस्तिविनियोगः। | | 3,9 |
| ८ सप्तद्वा वाजपेये दीक्षाः। | | 3.8 | ३२ वामदेव्यप्रहयागान्ते प्राजाप | | |
| ९ वाजपेये प्रतियागमारमभे होम | | 3,6 | त्यवपायागः। | 60 | 39 |
| ~ ~ | | 30 | ३३ खुग्व्यूहनातप्राक् प्राजायत्यः | | |
| विश्वयः। १० अन्यु दीक्षादिकमैणामारम्भेसः | | · · | हवियोगः। | 88 | 3,8 |
| इन्द्रामः । | × « | 38 | ३४ प्राजापत्यहिन्वेपयोः प्राकृत | | |
| ११ क्रयणाद्यारम्भे सुरुवाबाः प्रा- | • | | एव वा कालेऽनुष्टानम्। | 50 | 38 |
| ग्होसः। | 83 | हे बे | ३९ वशावपायागोऽपि प्राकृतकाले | | |
| १२ सोमेन सार्कं सुरायास्तद्द्र- | | | न तहकपैः। | 38 | 38 |
| व्याणां वा ऋयः। | 88 | 33 | ३६ अनुस्कर्षपक्षे एकत्र अपणम् । | | 35 |
| १३ सोमेन सह सुरायास्तद्द्रच्याः | | | ३७ सवत्तविनियोगेऽप्यत्र विशेषः। | 3 | 36 |
| णां घाऽनुहरणम् । | १६ | 3 2 | ३८ माध्यन्दिनसवनीयहविभिः सह | | |
| १४ सुराकरणविधिः । | 80 | રૂ ર | नेवारवरोरवुष्टानम् । | 38 | 38 |
| १६ नाराशंसस्थाने हितीयखरकः | | | ३९ व इतसंख्यापरिमाणाभ्यां प्राहः- | Him | |
| रणस् । | १८ | 35 | तसंख्यापरिमाणयोवींघामावः। | ३५ | 38 |
| १६ इविधानदक्षिणे सन्धिकर | | · . | ४० वाजपेययागदक्षिणानिरूपणम् । | २७ | 30 |
| પાન્યું ! | 88 | 38 | चतुर्दशाध्याये तृतीया करिड | 35 1 | |
| १७ वस्रैयूपनेष्टनं सुत्यादिनेअनीषो | | | | *** | |
| मीये वा । १८ गांसवेययपः । | ₹0 | 38 | ४१ सरुत्वतीथान्ते शकटाड् रथ- | | ak Visita |
| £ | ३३ | 33 | स्यावतारणस्। | 8 | |
| १९ वाजपेशरम्भे सर्वेषां सुवर्णमा- लाधारणस् । | 3.5 | 20.20 | ४२ चात्वालद्क्षिणतो स्थावर्तमम्। | | |
| २० सुराशोधनम् । | 23 | 3 | ४३ अ्वप्रोक्षणम्। | 3 | ફેદ |
| | 36 | 32 | ४४ रथेऽइवन्नययोजनम्। | | ફ્રેડ |
| चतुर्देशाध्याये द्विनीया करि | ंडका | | ४५ चतुर्थोऽङ्गः केवळमनुगच्छेत्। | 8 | |
| २१ अतिप्राह्यपोडशिपहानन्तरमे- | | | ४६ अखानां बाहेस्पत्यच वद्रापणम्। | 60 | 36 |
| न्द्रयहण्डणं तद्योमश्र । | Ą | 33 | ४० चतुरव्ययुक्तषोडशरथानां वेदि- | | |
| १२ सामग्रहग्रहणम् । | 2 | ३३ | | ?? | 36 |
| २३ सोमण्हैः सह व्यत्यासेन सुरा- | | | | १ ३ | 36 |
| प्रहेप्रहणस् । | 1 | \$\$ | ४९ क्षत्रियस्य बाजपेये चक्रारोहः | | |
| २४ सोमप्रहसुराग्रहधारणेऽक्षोल्छ- | | | | 2 | \$8 |
| हुर्तानवेधः। | 9 | \$8 | ५० आण्नोध्रीयापश्चिमभागे वेदिसम् | | |
| २५ सामग्रहसुराग्रहाणां खरसमीपं | | | ्सष्टदशदुन्दुभीनामासञ्जनस् । । | 8 | 28 |
| आनयनम् । | • | 38. | ५१ तेषांवादनम् । | 96 | 20 |

| वृं | ા અંં |
|--|--|
| २ २२ क्षत्रियकर्तृकः सप्तदनेषुप्रक्षेपः । १६ ३९ | ७६ जायापत्योस्तदारोहणम्। २४ ४२ |
| १३ अन्त्यतत्प्रक्षेपस्थाने शाखा- | ७७ यजमानस्य गौधूमचषालाः |
| तिखननम्। १७ ३९ | लक्सः। २५ ४२ |
| ५४ यज्ञमानस्य अध्वर्युद्धिष्यस्य च | ७८ यसमानस्य यूपाद्धवे स्वशिर- |
| रथारोहणम् । १८ ३९ | उच्छ्यणम् । २६ ४२ |
| ५५ अन्यस्मिन् कस्मिश्चिद्रथे राज- | ७९ ततो दिशामवछोकनम्। २७ ४२ |
| न्यस्य वैदयस्य वाऽऽरोहणस्। २० ३९ | ८० पुत्रादीनां सप्तद्शपत्रबद्धशार- |
| ५६ स्पर्धया सर्वेषां प्रधावनम् । २१ ३९ | मृत्तिकापुटोत्क्षेपणम्। २८ ४२ |
| ५७ धावनसमये अध्वर्युशिष्यस्य | ८१ यजमानस्य तस्प्रतिग्रहः। २९ ४२ |
| यजमानवाचनम्। २२ ३९ | ८२ भूमिमवेस्य सहिरण्ये बस्तव- |
| चतुर्दशाध्याये चतुर्थी किएडका- | र्मणि भूमौ वा यजमानावरो |
| ५८ धावनकाले ब्रह्मणः सामगानम् । १ ४० | हवर्ष । ३० ८४ |
| ५९ धावनकाले दुन्दुभिवादनम् । ३ ४० | ८३ अध्वर्शुंकर्तृकमासन्द्यां बस्तच- |
| ६० धावनकाले होमो जपो वा । ३ ४० | र्मास्तरणम् । ३१ ४२ |
| ६१ धावने यजमानजयः। ६ ४० | ८४ यजमानोपवेशनं तत्र । ३२ ४२ ८५ नेवारयागः । ३३ ४२ |
| ६२ शाखाप्रदक्षिणेन घावतामागमनम्। ४० | ८९ नैवारयागः। ३३ ४२ |
| ६३ सर्वेषामागमने ब्रह्मणो रथव- | ८६ औदुम्बरपात्रेश्पा पयसां सप्तर- |
| कारवत्रणम् । ८ ४० | शानामन्नानां च प्रक्षेपः । ३४ ४३ |
| कादवतरणम्। ८ ४० ६४ दुग्दुभीनामवहरणम् ९ ४० | ८७ एकमन्नं वर्जयित्वा स्मृत्यनुः स्रोरेण सर्वेषामन्नानां वा त- |
| ६५ यजमानस्य स्थादवतीर्णस्य नैवा- | |
| े रववांकम्भा । ११ ४० | त्रप्रक्षेपः। ३६ ४३ ८८ वर्जितानस्य यावज्जीवममो |
| ६६ रथयन्हानां त्रयाणास्त्रवानां त | |
| ६६ रथयुक्तानां त्रयाणामस्वानां तः द्वञ्चापणम् । १२ ४० | जनम्। ३८ ४३ |
| ६७ चतुर्थस्य रथे याजनं, तताऽध्वः | ८९ ततो मिश्रितानां दुग्धजकाद्याः नां होमः। ३९ ४३ ९० हुतशेषस्य यजमानोपरि सि- जनम्। ४० ४३ |
| र्धवे तद्रथदानम् । १६ ४० | नां होमः। ३९ ४३ |
| ६८ सन्यत्विरम्योऽपि रथदानम्। १४ ४१ | ्र इतग्रवस्य यजमानापार ।सः अनम्। ४० ४३ |
| ६९ स्थारूढाय क्षत्रियाय वैदयाय | ०० वैज्ञावितप्रकारोग्नः साहेः |
| े वा मधुग्रहसमर्पणम् । १९ ४१ | श्चनस्। ९१ नेवारिक्षञ्चित्रकृद्धोसः, माहेर न्द्रादिक्षमे च। ४४ ४३ |
| ७० स्थारूढाय क्षत्रियाय वैश्वाय वा | १२ यजमानस्य सद्सि गमतम्। ४९ ४३ |
| सौरग्रहान् समर्प्यं तस्मान्मधु- | |
| ग्रहादानस्। १६ ४ १ | ९३ सम्रदशसोमग्रहाणां चमसेषु निनयनम्। चमसेषु |
| ७१ ब्रह्मणे सपात्रमधुगहदानम् । १७ ४१ | ९४ उदवसानीयेष्टिसमाहौ यूपवे- |
| ७२ ज्ञह्मकर्त्कं यथेच्छं तत्प्रतिपत्ति- | ष्ट्रनवस्त्राणासम्बद्धवे दानस् । ५१ ४४ |
| 98 28 trinia | ९६ सुवर्णमाळानां तत्तहत्विजे |
| ७३ द्वादशस्त्रवाहुतिहोमस्तन्त्र- जपमात्रं वा । १६ ४१ | ्रें दानम्। ६२ ४४ |
| जपसार्त्रवा । १९ ^{४१} | मध्यवणाध्याके तथागा स्वित्वका— |
| ७४ पत्न्या वस्रपरिधापनम् । १३ ४४ | |
| ४५ यूपसंखानसोपानपङ्केरच्छ्यः | राजस्यप्रकरणस् । |
| ्रवस्था १३ ४१ | 🏮 १ क्षत्रियस्य राज्ञो राजसूयेऽधिकारः।१ ४४ |

| સંં ્ | o ã o | सं॰ | स्रु० | S |
|--|--------------|-------------------------------------|------------|-----------|
| र वाज्येयिनः अन्नियस्यापि | 100 | २२ द्वितीयदिने वैदवानस्य तृती- | | |
| and the second s | 3 84 | यदिने वा वास्णस्यानुद्यानम्। | १६ | |
| ३ राजसूत्रे इष्टिपशुसोमानां न | | २३ वैद्यानरवास्णयोदेक्षिणा । | 80 | 8 |
| • | કુ ૪૬ | पञ्चदशाध्याये तृतीया कि | | |
| ४ राजसूये पवित्रसंज्ञक्सोमयाः | | | (জ্ঞ ক |) j ann a |
| ************************************** | 8 84 | २४ वास्पदिने द्वादशस्तिहि | | |
| ९ पवित्रसंज्ञकसोमयागः सहस्र- | | यगिरम्भः। | 8 | 86 |
| | 6 86 | २५ सेनापत्यादिगृहेषु हादभानां | | |
| ६ फाल्गुनशुक्छप्रतिपदि पवित्रः | | प्रत्यहमेकैकस्य क्रमेणानुष्ठानम् | | 8 |
| | 86 | २६ द्वादशह वियोगानां क्रमेण दक्षि- | | |
| ७ फाल्गुन्युक्कतवस्यां ९वित्रः | | णाविरूपणस् । | १५ | ٩¢ |
| पूर्णीहुतिः। | 38 8 | २७ परिवृत्त्या गृहे यागनिष्यत्ती | | |
| ८ ततः प्रत्यहमानुमताग्नावैष्णः | | वस्यास्ततो निष्कासनेन बा- | | |
| वारनीषोमीयैन्द्रारनगवाययः | | त्यणगृह् प्रवेशः । | ₹₹ | € ≎ |
| णानामेकैकेष्टेः क्रमेणानुष्टानस्। र | . 88 | | 53 | 4 8 |
| ९ ततः फालगुनशुक्कपूर्णिमायां | | २९ कास्यसीमारीद्रच्ह्यागतिहः | | |
| राजस्याङ्गचातुर्माख्यारम्भः । १५ | 88 | वणस् । | 26 | |
| १० तुतः प्रसृति प्रत्यहं क्रुज्जपक्षे | | ३० त्तो मैत्राबाईस्यत्यचरुयागः। | | 48 |
| वौर्णमासेष्टेः ग्रुक्कवन्ने च दर्शेष्टे | | ३१ मैत्राबाईस्पत्यचरुअपणविधिः। | | 48 |
| राजस्याङ्गभ्तामा अनुष्ठानम्। १४ | | ३२ मत्राबाहिस्पत्यवस्यागदक्षिणा। | 33 | 9 8 |
| ११ पद्मवातीयहोमानुष्ठानम्। २० | | ३३ अभिषेचनीयदशपेययागयोर्डे- | | j ins |
| १२ पञ्चवातीयहोमदक्षिणाकथनम्। २ः | 8.8 | वयजनकालः। | 25 | 48 |
| १३ व्याधिनिवृत्तिफलककाम्यपञ्चः | | ३४ अभिषेचनीयद्श्रपेयदीक्षाका | | |
| वातीयहोमः। १ | | लविधिः। | 36 | Ģ |
| १४ इन्द्रतुरीयकर्मनिरूपणम् । २ | 8 80 | पञ्चदशाध्याये चतुर्थी कण्डि | डका | |
| १५ वारुणचरोः सर्वत्र यवमयत्वः | | ३५ अभिवेचनीयदशपेययोहीतः | | |
| विधिः । | 9 80 | विशेषः। | ۶ | 61 |
| पञ्चद्शाध्याये द्वितीया करिड | का— | ३६ अभिषेचनीयदशपेययोः पञ्च | | · |
| 선생님이 되는 어린 얼마를 하는 것 같아 가장 없다. | | दिनेषु समापनम् । | ą | Q |
| | १ ४८ १ ४८ | ३७ सोमं कीत्वा द्वेघा विभज्ये- | | ٦, |
| 그들은 이 이 마음을 하는 것이 없는데 그는 이 사람들이 하는 것이다. 그는 것이 되었다. | . १८ १ | कस्य दश्येयार्थं नहागारे | | |
| 1 | . 80 | निघानस्। | э. | G 2 |
| १९ त्रिषेयुक्तेष्टिषु प्रथमः पुरो- | ນອ | ३८ देवसृहविषामनुष्ठानम् । | કે સ | Ģ: |
| डाबोडन्यो चरू। ११ २० त्रिबंयुक्तेष्टिषु प्रथमेष्टिगततृ- | 88 | ३९ अन्त्यदेवसृह्यिरनुहानानन्तरं | • | |
| २० त्रिषयुक्ताष्ट्रश्च प्रयमाद्यग्वरः तीयहविषि विशेषः । ११ | ३ ४९ | सन्त्रपाठे यजमानादीनां | | |
| तायहावाप ामगपा । २१ त्रिषंयुक्तेष्टीनामनन्तरे द्वितीयेः | , 6, | नामप्रहणविधिः। | 88 | 6.3 |
| रश् ।त्रपेयुक्तश्चानामनन्तर ।द्वतायः ऽद्वति वैदवानरवारणयोरत्तुः | | १० देवसृहविषां तद्धमीनुद्यानं पशु- | 1,9 | |
| 사용하는 사람 하다는 생각을 살아가지 않는 목표가 들었다. 경우를 하는 것을 하는 것을 하는 것이다고 있다. | | क्षेत्रस्थानम् व्यवस्थानस्य | 96 | 6.3 |

| લં ં જ | । सं ० स् |
|--|---|
| ४१ देवस्हविरनुष्ठानानन्तरं सप्तदः | ६० सीसस्य पादेन निरसनम्। २२ ५ |
| | १४ ६८ ततो न्या ब्रचमेण्यारोहणम् । २३ ५ |
| ४२ तासामौदुम्बरपात्रेषु पृथक् | ६९ यजमानपाद्योरथस्ताब् स्वम- |
| पृथगादानम्। २३ ९ | १४ निघानम्। २४ ५। |
| पृथगादानम् । २३ व ४३ तासां सप्तदश्रमेदाः । २४ व | ४ ७० यजमानशिरसि स्वमनिधानस्। २६ ५५ |
| ४४ तासा प्रहणसन्त्राः। ३४ व | १९ ७१ यजमानवाहीरूडवैकरणम्। २६ ५ |
| ४५ तत्र द्वितीयाद्यपां महणमन्त्राधेन | ७२ यजमानस्याभिषेककरणस् । २८ ५८ |
| होम उत्तराधेंन चापां ग्रहणम् । ३६ | १५ ७३ ततोऽचिशष्टवार्थहोमः। ३२ ५० |
| ४६-सर्वास्वप्सु सूर्वकिरणतसानामः | पञ्चदशाध्याये पष्ठी कण्डिका- |
| | |
| ४७ तासां सर्वासामेकपात्रे करणम्। ३७ ५ | ६ ७४ शीनःशेपशस्त्रेषः। १ ५० |
| ४८ अवां तत्पात्राणां च निधानम्। ३८ ५ | ५ ७५ धूतानते वा तत्प्रवः। २ ५० |
| ४९ तदुत्तरदिने उक्य्यसंस्थाभिषे- | े ए६ शौनःशेपशस्त्रप्रतिगरे विशेषः। ३ ५० |
| ् चनीययागः। ३९ ५ ५० तद्दक्षिणा। ४१ ५ | ५ ७७ शीन श्रेपशस्त्रप्रतिगरकत्रीहीत्र- |
| ५० तद्दक्षिणा। ४१ ५ | ५ व्यव्योरासनविशेषविधिः। ४ ५८ |
| पञ्चदशाध्याये पञ्चमी करिडका- | _ ७८ तयोईक्षिणादानम्। ६ ५६ |
| ५१ सब्दवतीयम्हान्ते पात्राणां पुरस्ताद् | ७९ तयोस्तत्तदासनदानम्। ७ ५९ |
| ं व्याद्यवर्मास्तरणम् । 🕺 १ ५ | ६ ८० अभिषेकोदकस्य सर्वशरीरे |
| ५२ व्याब्रदमीन्ते सीसनिधानम्। १ ५ | |
| | ५ ८१ चर्मेणि यजमानस्य त्रिविक्रमणम् । ९ ५९ |
| ५४ पविश्राभ्यामभिषेचनीयापासु- | ८२ अभिषेकशेषज्ञळस्य स्वपुत्राय |
| | ६ दानस्। १० ५९ |
| ५५ तासामगां विभज्य पाळाशादिः | ८३ शालाद्वार्ये होनः। ११ ६९ |
| 성입하다 살아 하시다. 그리고 얼마나 하나 하나 하나 하나 하나 다른 | ६ ८४ तवोऽभिषेकशेषहोमः। १२ ५९ |
| 이 가는 병기를 가장하는 사람들이 하는 물을 가는 것이 되었다. 그는 이 생각이 되어 되었다. | ६ ८९ गवामाहवनीयोत्तरे स्थापनम्। १३ ५९ |
| 네 이번 있는 이번 수가를 들었다고 생생하는 것이 하는 것이 하는 것이 하는데 하는데 하다. | ६ ८६ अग्निशकटस्थापनम्। १४ ६९ |
| 경기를 가는 것은 점점 하는 것은 일반이 가는 그는 그는 것은 그는 것이 되고 있다. | ६ ८७ रथयोजनम् । १९ ६९ |
| "하일이 하는 것은 무슨 사람들이 나가 되었다. 그 것은 그리는 가게 없는데 그 그 | ६ ८८ चात्वाळसमीपे रथस्थापनम् । १६ ६० |
| ६० दीक्षितचस्त्रनिवृत्तिः माहेन्द्र- | े ८९ यजसानस्य रथारोहणस्। १७ ६० |
| ग्रहप्रसृतिवस्त्रविकलपः। १४ ५ | |
| 사람들이 보는 경기에 되는 사람들은 함께 들어 모르는 그는 이 그릇 없었다. | ७ ९१ गर्वा मध्ये रथस्थापनम्। १९ ६० |
| | ७ ९२ भनुष्कोटया गोरुपस्पद्यानम् । २० ६० |
| ६३ अध्वयुक्तुंकं यजमानाय धनु | ९३ गवां प्रत्यर्भं कृत्वा स्थस्यान्तः- |
| 현 회문화 사용하게 🛊 지근 기구, 경문 등으로 하는 게 하는 말이 되었다. 손 이번 되고, 고학 문학 사용한 그림 | ७ पात्यदेशे स्थापनस् । २२ ६० |
| ६४ अध्वर्युकर्तृकं यज्ञमानाय शर | ९४ स्थविमोचनीयहोमः, वराहचः |
| त्रवद् षातम् । १८ ५ | : 12 1일 이번 기업 가 보고 있다면 가는 가리를 보 고 있다. 이렇게 되었다. (12 1일 시간 |
| ६५ दोईकेशमुखे छोहरालाका- | ९६ यजमानस्य स्थादवतस्णम् । २५ ६० |
| | १६ स्थस्य ससारथे: शक्टे स्थापनस्।२६ ६० |
| ६६ बाह्गृहीतयजमानस्य बावनम्।२१ ५ | ९७ सारथे स्थादवतरणस् । |
| | |

| पञ्चत्विणमके सुवर्णमणिद्वयः वन्यवस् । १८ वोद्वयन्वीशाखाया मार्गमध्ये मिलानं स्पर्धेक्ष । २८ ६१ १८ व्रह्मेश्वर्षे । २० ६१ १८ व्रह्मेश्वर्षे । २० ६१ १० व्रह्ममानवाद्वोरयःकरणम् । ३० ६१ १० व्रह्ममानवाद्वोरयःकरणम् । ३० ६१ १० व्रह्मेश्वर्षे । ३० ६१ १० व्रह्ममानवाद्वोरयःकरणम् । ३० ६१ १० व्रह्मेश्वर्षे समस्मी कि व्रह्मेश्वर्षे । ३० ६१ १० व्रह्मेश्वर्षे समस्मी कि व्रह्मेश्वर्षे । १० ६१ १० व्रह्मेश्वर्षे व्रह्मेश्वर्षे । १० ६१ १० व्रह्मेश्वर्षे व्रह्मेश्वर्षे । १० ६२ १० व्रह्मेश्वर्षे होमः । १० ६२ ११ व्रह्मेशेषे होमः । १० ६२ ११ व्रह्मेशेषे होमः । १० ६२ ११ व्रह्मेशे होमः । १० ६२ ११ व्रह्मेशे होमः । १० ६२ ११ व्रह्मेशे होमः । १ | | | | | | | |
|---|-----|--|----------------------|-------------|--|------------|----------------|
| पञ्चत्विणचके सुवर्णमणिह्यः वन्यतम् । १८ ६१ १८ जोडुम्बरीशाखाया मार्गमध्ये मिलानं त्पक्षेत्रः । १८ ६१ १८ ब्रह्मणे सुवर्णमणिद्वयद्वानं शाः । १० ६१ १०० वजमानवाह्वोरयःकरणम् । १८ ६१ १०० वजमानव्योवस्माने काणिड्याः । १८ ११ १०४ तत्या वक्ष्याच्छादनम् । १ ६१ १०० विज्ञयञ्चत्वय्वाच्यम् । १६ ६२ १०० व्याव्यञ्चत्वय्वाच्यम् । १६ ६२ १०० व्याव्यञ्चत्वय्वाच्यम् । १४ ६२ १०० व्याव्यञ्चत्वय्वाच्यम् । १४ ६२ ११४ ख्वस्मी मण्डपकरणम् । १४ ६२ ११४ ख्वस्मी सेम्या होमः । १० ६२ ११४ ख्वस्मी होमः । १० ६३ ११४ ख्वस्मा होमः । १० ६३ ११४ ख्वस्मी होमः । १० ६३ ११४ ख्वस्मा हम्पाचिक्षा । २० ६३ ११४ व्याव्यय्या स्माचिक्षा । २० ६३ ११४ ख्वस्मी होस्या । २० ६३ ११४ ख्वस्मी होस्या । २० ६३ ११४ ख्वस्मि होस्या स्माचिक्षा । २० ६३ ११४ ख्वस्मा हिस्या सम्याचिक्षा । २० ६३ ११४ ख्वस्मा हिस्याचे सम्याचे सम्याच | | | सुः | go | , सं० | सु० | ą. |
| श्व श्व त्या स्व व्या का स्व त्या व्या व्या व्या व्या व्या व्या व्या व | | ९७ रयदक्षिणचक्रे सुवर्णमणिहयः | | | | | |
| शिष्य के स्पर्धक्ष । २०६१ १९ ब्रह्मणे युवर्ण मणिद्वयदा के शाः स्वास्पर्धक्ष । २०६१ १०० यजमानबाह्नोरथःकरणम् । २१६१ १०० यजमानबाह्नोरथःकरणम् । ३२६१ १०० यजमानवाह्नोरथःकरणम् । ३३६१ पञ्चद्शाध्याये स्वसमी कण्डिका- १०३ वास्पर्धा यजमानस्योपवेशनम् । २६१ १०४ तस्य व व्हणाच्छादनम् । २६१ १०४ तस्य व वहणाच्छादनम् । २६१ १०४ तस्य व वहणाच्छादनम् । २६१ १०४ वास्पर्धा यजमानस्योपवेशनम् । १६१ १०४ वास्पर्धा यजमानस्यादन्यः सः मण्णम् । ११६२ ११४ व्रत्यस्यो होमः । १५६३ ११४ व्रत्यस्यो होमः । १५६३ ११४ व्रत्यस्यो होमः । १५६३ ११४ व्रत्यस्य व्रत्यात्वस्य । १६६३ ११४ व्रत्यस्य व्रत्यात्वस्य । १६६३ ११४ व्रत्यस्य व्रत्यात्वस्य । १६६३ ११४ व्रत्यावस्य व्यत्यात्वस्य । १६६३ ११४ व्रत्यात्वस्य प्रमावयः स्यात्वस्य । १६६३ ११४ व्रत्यात्वस्य । १६६३ ११४ व्रत्यात्वस्य प्रमावयः स्यात्वस्य प्रमावयः स्यात्वस्य । १६६३ ११४ व्रत्यात्वस्य प्रमावयः स्थात्वस्य प्रमावयः स्थातस्य व्यत्य प्रमावयः स्थातस्य व्यत्य व्यत्य प्रमावयः स्थातस्य स्थातस्य व्यत्य प्रमावयः स्थातस्य स्थातस्य व्यत्य प्रमावयः स्यत्य स्यत्य प्रमावयः स्यत्य प्रमावयः | | | ₹ € | 88 | | | |
| हिमन्देशेऽनुष्ठानं द्यासम्य न्यास्य न | | | | | | ₹. | হ্ ৭ |
| स्वाल्पर्वाश्च । ३० ६१ १०० वजमानवाद्वोषधःकरणम् । ३१ ६१ १०१ चर्चुर्धराय सञरधनुर्दानम् । ३२ ६१ १०१ चर्चुर्धराय सञरधनुर्दानम् । ३२ ६१ १०३ वासन्चारयाये सञ्जमी किरिडका— १०३ कासन्चां यजमानस्योपवेशानम् । १ ६१ १०४ वासन्चां यजमानस्योपवेशानम् । १ ६१ १०४ वासन्चां यजमानस्योपवेशानम् । १ ६१ १०४ वासन्चां यजमानस्योपवेशानम् । १ ६१ १०० वाज्ञ्यव्वव्वव्वव्वव्वव्यव्वय्वयः । १ ६१ १०० वाज्ञ्यव्वव्वव्वव्वव्यव्वयः । १ ६१ १०० वाज्ञ्यव्वव्वव्वव्यव्यव्यव्यव्यव्यव्यव्यव्यव् | | | | િલ્ફ ફ | 1 | | |
| १०० वजमानबाह्नीरथःकरणम् । ३१ ६१ १०१ घनुर्धाय सत्तरधनुर्दानम् । ३२ ६१ १०१ घनुर्धाय सत्तरधनुर्दानम् । ३३ ६१ ए०३ वासन्वाह्नरणम् । १६ ६१ १०३ वासन्वाह्नरणम् । १६ ६१ १०३ वासन्वाह्नरणम् । १६ ११ १०३ वासन्वाह्नरणम् । १६ ११ १०३ वासन्वां वजमानस्योपवेशनम्।३ ६१ १०३ वासन्वां वजमानस्योपवेशनम्।३ ६१ १०० वाज्ञ्यवृक्षवण्डेवजमानवाङ्गम् । ६१ १०० वाज्ञ्यवृक्षवण्डेवजमानवाङ्गम् । ६१ १०० वाज्ञ्यवृक्षवण्डेवजमानवाङ्गम् । ६१ १०० वाज्ञ्यवृक्षवण्डेवजमानवाङ्गम् । ६२ १०० व्यक्षण आमन्त्रणम् । १६ ६२ १०० स्प्रेम च्याप्तम् । १६ ६२ ११० स्प्रेम मण्डपरणम् । १६ ६२ ११० स्प्रेम स्पर्णम् । १६ ६२ ११० स्प्रेम मण्डपरणम् । १६ ६२ ११० स्प्रेम स्पर्णम् । १८ ६२ ११० स्प्रेम स्पर्णम् । १८ ६२ ११० स्प्रेम व्यक्षाव्यक्षम् । १८ ६३ ११० स्प्रेम व्यक्षाव्यक्षम् । १८ ६३ ११० स्प्रेम व्यक्षाव्यक्षम् । १८ ६३ ११० स्प्रेम व्यक्षमानस्य व्यक्षमानस्य स्पर्णम् । १८ ६३ ११० स्प्रेम व्यक्षमानस्य त्रिक्षणम् । १८ ६३ ११० स्प्रेम विक्षणम् । १८ ६३ ११० स्प्रेम विक्षणम्य विक्षणम् । १८ ६३ | | | | | | | ĘĢ |
| १०१ षत्रुर्धशाय सहारचतुर्दानम् । ३२ ६१ १०२ पयस्याप्रचारः । ३३ ६१ पञ्चद्द्द्वाध्याये सप्तमी किएडका- १०३ कासन्चास्तरणम् । १ ६१ १०४ तस्या वळणाच्छादनम् । २ ६१ १०४ वासन्वा यजमानस्योपवेशनम्।३ ६१ १०५ कासन्वा यजमानस्योपवेशनम्।३ ६१ १०५ वासन्वा यजमानस्योपवेशनम्।३ ६१ १०० वाज्यवुक्षदण्डैर्यजमानताडनम् । ६२ १०० वाज्यवुक्षदण्डैर्यजमानताडनम् । ६२ १०० वाज्यवुक्षदण्डैर्यजमानताडनम् । ६२ १०० स्प्रचस्य यजमानदिभ्यः स- मर्पणम् । १५ ६२ ११० स्प्रमा मण्डपकरणम् । १६ ६२ १११ श्रूतम्मो मण्डपकरणम् । १६ ६२ १११ श्रूतम्मो मण्डपकरणम् । १६ ६२ ११६ स्रुत्रमा मण्डपकरणम् । १६ ६२ ११६ श्रूतमा मण्डपकरणम् । १६ ६३ ११६ श्रूतमा मण्डपकरणम् । १६ ६३ ११६ श्रूतमा मण्डपकरणम् । १६ ६३ ११६ श्रूतकोडकानां दक्षिणादानम् । १६ ६३ ११६ श्रुतकोडकानां दक्षिणादानम् । १६ ६३ ११६ तत्रमावे दिक्षित्रमानस्य वत्रणम् । १६ ६३ ११६ तत्रमावे दिक्षित्रमानस्य कर्या।११ ६३ ११६ तत्रमावे दिक्षित्रमानस्य कर्या।११ ६३ ११६ तत्रमावे दिक्षित्रमानस्य कर्या।११ ६३ ११६ तत्रमानस्य कर्या।११ ६३ ११६ तत्रमानस्य कर्याभिक्षा । १६ ६३ ११६ तत्रमावे दिक्षित्रमानस्य कर्या।११ ६३ ११६ तत्रमावे दिक्षित्रमानस्य कर्या।११ ६३ ११६ तत्रमावे दिक्षित्रमानस्य कर्या।११ ६३ ११६ तत्रमावे दिक्षात्रमानस्य कर्याभिक्षात्रमानस्य कर्याभिक्य | | | | | | | ĘĢ |
| १०२ पयस्याप्रचारः । ३३ ६१ पञ्चदशाध्याये सप्तमी किएडका- १०३ कासन्द्यास्याये सप्तमी किएडका- १०३ कासन्द्यास्याये सप्तमी किएडका- १०३ कासन्द्यावस्या । १ ६१ १०४ तस्या वळ्णाच्छादनस् । १ ६१ १०४ वासन्द्यां वजमानस्योपवेशनम्।३ ६१ १०४ वासन्द्यां वजमानस्योपवेशनम्।३ ६१ १०४ वात्रयन्नुक्षदण्डे वजमानताडनम् । ६२ १०० वात्रयन्नुक्षदण्डे वजमानताडनम् । ६२ १०० वात्रयन्नुक्षदण्डे वजमानताडनम् । ६२ १०० व्यत्नयन्नुक्षदण्डे वजमानताडनम् । ११ ६२ १०० स्प्रमा मण्डपकरणम् । ११ ६२ ११४ श्वत्रमा सामः । १४ ६३ ११४ व्यत्रमा सामः सामः । १४ ६३ ११४ व्यत्रमा सामः । १४ ६३ ११४ व्यत्रमा सामः सामः । १४ ६३ ११४ व्यत्रमा सामः सामः । १४ ६३ ११४ व्यत्रमा सामः सामः सामः सामः सामः सामः सामः सा | | | | | | | 6 9 |
| पञ्चदशाध्याये सप्तमी किएडका- १०३ कासन्दास्तरणम् । १ ६१ १०४ तस्या वर्ळणाच्छादनम् । २ ६१ १०४ वासन्दा अजमानस्योपवेशनम्।३ ६१ १०४ वासन्दा अजमानस्योपवेशनम्।३ ६१ १०४ वासन्दा अजमानस्योपवेशनम्।३ ६१ १०४ वासन्दा अजमानस्या । १ ६१ १०४ वासन्दा अजमानस्य । १ ६१ १०४ वासन्दा अजमानत्व । १ ६१ १०४ वासन्दा अजमानतिस्यः स- मर्पणम् । १४ ६२ १०४ स्प्रम्य यजमानादिस्यः स- मर्पणम् । १४ ६२ ११४ स्त्रम्यो मण्डपकरणम् । १४ ६२ ११४ स्त्रम्यो मण्डपकरणम् । १४ ६२ ११४ स्त्रम्यो मण्डपकरणम् । १४ ६२ ११४ स्त्रम्यो होमः । १४ ६२ ११४ स्त्रम्यो स्त्रम्य । १४ ६३ ११४ स्त्रम्य होमः । १४ ६३ ११४ स्त्रम्य स्त्रम्य स्त्रम्य । १४ ६३ ११४ स्त्रम्य स्त्रम्य स्त्रम्य स्त्रम्य स्त्रम्य स्त्रम्य स्त्रम्य स्त्रम्य स्त्रम्य वर्मम्य वर्मम्य स्त्रम्य स्त | | | | | | | 4.4 |
| १०३ कासन्वास्तरणम् । १ ६१ १०४ तस्या वर्खणाच्छादनम् । २ ६१ १०४ वासन्वां यजमानस्योपवेशनम्।३ ६१ १०६ वासन्वां यजमानस्योपवेशनम्।३ ६१ १०० विश्व व्यास्तर्वेदंवजमानताडनम् । ६ ६२ १०० विश्व व्यास्तर्वेदंवजमानताडनम् । ६ ६२ १०० व्यास्त्र व्यास्तर्वेदंवजमानताडनम् । ६ ६२ १०० स्वयस्य यजमानादिस्यः सः मर्पणम् । ११ ६२ ११० स्पयेन व्यास्त्रम्भितरणम् । १३ ६२ ११० स्पयेन व्यास्त्रम्भितरणम् । १४ ६२ ११० व्यास्त्रम्भित्रम्भितरणम् । १४ ६२ ११० व्यास्त्रम्भित्रम्भित्रम्भ । १४ ६२ ११० व्यास्त्रम्भित्रम्भ । १४ ६२ ११० व्यास्त्रम्भ वोमः । १४ ६२ ११४ व्यास्त्रम्भ वोमः । १४ ६३ ११४ व्यास्त्रम्भ वोमः । १४ ६३ ११४ व्यास्त्रम्भ वास्त्रम्भ स्त्रम्भ स्त्रम्भ वास्त्रम्भ स्त्रम्भ स्त्रम्भ वास्त्रम्भ स्त्रम्भ स्त्रम्य स्त्रम्भ स्त | | | | - | · I control of the co | | e e |
| १०३ तास्य विकेषाच्छादतस् । २ ६१ १०४ तास्य विकेषाच्छादतस् । २ ६१ १०४ तास्य विकेषाच्छादतस् । २ ६१ १०४ वास्य विकेषाच्छादतस् । ४ ६१ १०० विविष्ठ व्यान्त स् । ४ ६१ १०० विविष्ठ व्यान स् । ४ ६१ १०० विविष्ठ व्यान स् । ४ ६२ १०० तास्य विकास । १४ ६२ ११० ह्य क्यान सामान्य । १४ ६२ ११४ ह्य क्यान सामान्य । १४ ६३ ११४ व्यान सामान्य विकास । १४ ६३ ११० व्यान सामान्य क्यान सामान्य विकास । १४ व्यान स्थान सामान्य विकास । १४ व्यान स्थान सामान्य विकास । १४ व्यान स्थान सामान्य विकास । १४ व्यान स्यान सामान्य सामान्य स्थान सामान्य सामान्य स्थान सामान्य सामान | | पञ्चदशाष्याये सप्तमी करि | डिक | T= | | | |
| १०४ तस्या वर्छणाच्छादनस् । १६१ १०६ वासन्यां यजमानस्योपवेशनस्। ६१ १०६ वासन्यां यजमानस्योपवेशनस्। ६२ १०० व्यक्तियवृक्षदण्डैयंजमानताडनम् । ६२ १०० व्यक्तियवृक्षदण्डैयंजमानताडनम् । ६२ १०० द्रम्यस्य यजमानदिभ्यः स- मर्पणस् । १६६२ ११० स्प्येन चूलभुमिकरणस् । १६६२ ११० सूलभूमो होमः । १५६२ ११० चूलभूमावक्षनिवापः । १६६३ ११० चूलभूमावक्षनिवापः । १६६३ ११० चूलभीडकानां दक्षिणादानम् । २०६३ ११० चूलभीडकानां दक्षिणादानम् । २०६३ ११० व्यव्यादिणस्यानपञ्चे तेने- वावभ्र्यः । १५६३ ११० तद्याने दीक्षितवसनेनावभ्र्यः।२६३ ११० व्यक्तिवेष्यानपञ्चे करिव- ग्रम्यस्तदानम् । ६६६३ ११४ व्यविष्यानिक्पणस् । १६६३ ११४ व्यविष्यानिक्पणस् । १६६३ ११४ व्यव्यादिणस्यानपञ्चे करिव- ग्रम्यस्तदानम् । ६६६३ ११४ व्यविष्यान्यस्विष्यः । १६६३ ११४ व्यविष्यान्यस्विष्यः । १६६३ ११४ व्यविष्यानपञ्चे करिव- ग्रम्यस्तदानम् । १६६३ ११४ व्यविष्यानस्य क्रमविष्यः । १६६३ ११४ व्यविष्यानस्य व्यविष्य न्यमिकरणस्य । १६६४ ११४ व्यविष्य व्यविष्य व्यविष्य न्यमिकरणस्य । १६६४ | | १०३ सासन्चास्तरणस् । | ą | 8 8 | | 18 | ६६ |
| १०० बासन्यां यजमानस्योपवेशनम्। ६१ १०० बाह्ययह्रस्वण्डेयंजमानताडनम्। ६२ १०० बाह्ययह्रस्वण्डेयंजमानताडनम्। ६२ १०० बाह्ययह्रस्वण्डेयंजमानताडनम्। ६२ १०० स्वाय्या अमानन्त्रणम् । ७ ६२ १०० स्वय्या अमानन्त्रणम् । ७ ६२ १०० स्वय्या अमानन्त्रणम् । ११ ६२ ११० स्वयंन्य च्वयंन्यम् मण्डव्यव्याप्त्रम् । १४ ६२ ११० स्वयंन्य च्वयंन्यम् मण्डव्यव्याप्त्रम् । १४ ६२ ११० स्वयंन्यम् होमः । १५ ६२ ११० स्वयंन्यम् होमः । १५ ६३ ११० स्वयंन्यम् । १८ ६३ ११० स्वयंन्यम् । १८ ६३ ११० स्वयंन्यम् । १८ ६३ ११० स्वयंन्यम् व्याप्त्रम् । १८ ६३ ११० त्वयंन्यम् व्याप्त्रम् । १५ ६३ ११० त्वयंन्यम् व्याप्त्रम् । १५ ६३ १२० ताप्यांदिपश्चानपञ्च तेने- वावश्यः । १५ ६३ १२१ तद्माने दीक्षितवसनेनावस्यः।२५ ६३ १२१ तद्माने दीक्षितवसनेवावस्यः।२५ ६३ १२१ त्वयंन्यम् व्याप्त्रम् व्याप्याप्ते नवमो किराङ्का- १२३ ताप्यांदिपश्चानपञ्च क्रित्व- १२३ ताप्यांदिपश्चानपञ्च क्रित्व- १२३ त्वा्यांदिपश्चानपञ्च क्रित्व- १२३ त्वा्यांदिपश्चानपञ्च क्रित्व- १२३ व्याप्त्रम्यां सोमं ब्रह्मागारादानी- ११० स्विन्यम्याविन्यम्याविन्यम्याविक्षः । १५ ६३ १३१ स्वाव्यांनाम्याविक्षः । १५ ६३ १३१ ताप्यांदिपश्चानपञ्च क्रित्व- १२३ विवामासादनक्रमविधः । १८ ६३ १३४ श्रेष्ठावत्यन्यम्याविष्यः । १६ ६३ १३४ श्रेष्ठाव्याप्रे प्रव्याविष्यः । १६ ६३ १३४ श्रेष्ठाव्याप्ते प्रव्याविष्यः । १६ ६३ १३४ श्रेष्ठाव्याप्ते प्रव्याविष्यः । १६ ६३ १३४ श्रेष्ठाव्याप्ते प्रव्याविष्यः । १६ ६३ १३४ श्रेष्ठाव्यावेष्यः । १६ ६३ १३४ श्रेष्ठाव्यापे प्रव्याविष्यः । १६ ६३ | | | - | - | | | 13 |
| १०६ यजमानस्य हृदयालम्मः । ४ ६१ १०० विज्ञयन्नस्य विज्ञयन्न । ६२ १०० विज्ञयन्न स्व विज्ञयन्न । १६ १०० स्व स्व विज्ञयन स्व | | | म्।३ | | | ŚΦ | ६५ |
| १०० यज्ञियनुक्षदण्डैयंजमानताडनम् । ६२ १०८ वद्याण आमन्त्रणम् । ७ ६२ १०८ स्प्यस्य यजमानादिभ्यः स- मपेणम् । ११ ६२ ११० स्प्यने च्रतमृमिकरणम् । १३ ६२ १११ च्रतमृमो मण्डपकरणम् । १४ ६२ १११ च्रतमृमो होमः । १५ ६२ ११३ च्रतमृमो होमः । १५ ६२ ११३ च्रतम्मो होमः । १५ ६२ ११३ च्रतम्मो होमः । १५ ६३ ११३ च्रतम्मो होमः । १५ ६३ ११३ च्रतम्मावक्षनिवापः । १६ ६३ ११६ स्प्यान्यक्षनिवापः । १६ ६३ ११८ प्यस्यास्विष्टकृत्यागः, माहे- न्वग्रह्यह्यणादि । ११ ६३ ११९ व्यस्यान्यक्षनिक्षणम् । १६ ६३ ११९ व्यस्यान्यक्षन्यम्यान्यक्षन्यक्षन्यम्यक्षन्यक्यक्षन | | | | | | | |
| १०८ बद्याण अभानन्त्रणस्। ७ ६२ १०८ वद्याण अभानन्त्रणस्। १८ ६२ सर्पणस्। १८ ६२ ११० स्पयेन ध्तस्मिस्तरणस्। १३ ६२ १११ ध्तस्मो मण्डपकरणस्। १४ ६२ ११२ ध्तस्मो होमः। १५ ६२ ११३ ध्तस्मो होमः। १५ ६२ ११३ ध्तस्मा होमः। १५ ६३ ११४ ध्तस्मा होमः। १५ ६३ ११६ सजातगोस्ताङ्गस्। १८ ६३ ११० ध्तक्षिक्षानां दक्षिणादानस्। २० ६३ ११८ प्रस्मा होमः। १८ ६३ ११८ प्रस्मा होमः। १८ ६३ ११८ प्रस्मा होमः। १८ ६३ ११८ ध्तक्षिक्षानां दक्षिणादानस्। २० ६३ ११८ प्रस्मा होमः। १८ ६३ ११८ प्रस्मा होमः। १८ ६३ ११८ प्रस्मा होमः। १८ ६३ ११८ प्रसमा होमः। १८ ६३ ११४ प्रसमा होमः। १६ ६३ ११४ व्यवस्था होमः। १५ ६३ ११४ व्यवस्था होमः। १६ ६३ | | | 7 19 | | | | |
| १०९ स्पयस्य यजमानादिस्यः स- मर्पणस् । १९६२ ११० स्पर्यन | | The second second | | | | 18 | ६ ६ |
| ११० हफ्येन चूतभुमिकरणय्। १३ ६२ ११० हफ्येन चूतभुमिकरणय्। १३ ६२ १११ चूतभुमो मण्डपकरणम्। १४ ६२ ११२ चूतभुमो द्वीमः। १५ ६२ ११३ चूतभुमो द्वीमः। १६ ६३ ११३ चूतभुमावक्षिनवापः। १६ ६३ ११६ स्त्रातगोस्ताद्वनम्। १८ ६३ ११६ स्त्रातगोस्ताद्वनम्। १८ ६३ ११० चूतकीडकानं दक्षिणादानम्। २० ६३ ११८ प्यस्यास्त्रिष्टकृद्यगाः, माहे- ह्मग्रह्महणादि। २१ ६३ ११८ वासन्द्वायज्ञात्वनम्। २० ६३ ११८ कासन्द्वायज्ञात्वनम्। २० ६३ ११८ कासन्द्वायज्ञात्वनम् । २० ६३ ११८ क्षात्वन्यवन् सान्तिवन् कर्वायः। १८ ६३ ११८ क्षात्वन्यवन् सान्तिवन् । १८ ६३ ११८ क्षात्वन्यवन्त्वन्वसान्तिविनः। ३ ६३ | | १०९ स्पयस्य यजमानादिभ्यः सः | | | | | |
| ११० हफ्येन ध्नम् मिकरणस्। १३ हर १११ ध्रुतभूमौ मण्डवकरणस्। १४ हर ११२ ध्रुतभूमौ होमः। १५ हर ११३ ध्रुतभूमौ होमः। १५ हर ११३ ध्रुतभूमौ होमः। १५ हर ११३ ध्रुतभूमाव्यक्षित्वापः। १६ हर ११४ ध्रुतभीडनम्। १८ हर ११५ ध्रुतक्रीडनम्। १८ हर ११६ सजातगोस्ताडनम्। १८ हर ११७ ध्रुतक्रीडकानां दक्षिणादानम्। २० हर ११८ पयस्यास्विष्टकृत्यागः, माहे- न्त्रग्रहग्रहणादि। ११ हर ११८ वासन्धायज्ञानस्यावतरणम्।२२ हर ११० ताप्योदिपरिधानपक्षे तेने- वावस्थः। १३ हर १२२ तदमाने दीक्षितवसनेनावस्थारः १३ हर १२३ ताप्योदिपरिधानपक्षे कत्ति- १२३ ताप्योदिपरिधानपक्षे कत्ति- १२६ हर्व ह्विषामासादनक्रमविधिः। ३ ह | | मपेणस् । | ११ | ह् व | | 0.0 | |
| १११ धृतभूमी मण्डपकरणम् । १४ ६२ ११२ धृतभूमी होमः । १५ ६२ ११३ धृतभूमी होमः । १६ ६३ ११३ धृतभ्रमावक्षित्रापः । १६ ६३ ११४ धृतभ्रमावक्षित्रापः । १६ ६३ ११६ ख्रुतभ्रमा होमः । १८ ६३ ११७ ध्रुतभ्रोडनम् । १८ ६३ ११० ध्रुतभ्रोडनम् । १८ ६३ ११० ध्रुतभ्रोडकानां दक्षिणादानम् । २० ६३ ११८ प्रामानस्य दश्येग्रेष्टरस्थानिरूपणम् । २१ ६३ ११८ आसन्द्रा ध्रुमाववर्णम्।२२ ६३ ११८ तद्मादे द्रिक्षत्रवस्यनेनावभ्रथः।२४ ६३ ११२ तद्मादे द्रिक्षत्रवस्यनेम् वर्भयः । १६ ६३ ११३ त्रिक्षत्रवस्यनेभ्रयः । १६ ६३ ११३ त्रिक्षत्रवस्यानिरूपणम् । १६ ६३ ११४ श्रुविष्यानस्य व्यविष्यान्यम् । १६ ६३ ११४ श्रुविष्यानस्य स्वर्थस्य स्वर्यस्य स्वर्थस्य स्वर्यस्य | | ११० स्प्येन चतमसिकरणस । | | | | 74 | ÉÉ |
| ११२ च्रतभुमी होमः । १९ ६२ १३८ दशानां दशानां ब्राह्मणानाः ११३ च्रतभुमावक्षनिवापः । १६ ६३ भेकैकचमसमञ्ज्ञणम् । १७ ११९ च्रतभेषः । १७ ६३ ११९ च्रतभोष्ठनम् । १८ ६३ ११६ सजातगोस्ताङनम् । १८ ६३ ११६ सजातगोस्ताङनम् । १८ ६३ ११८ च्रतभोष्ठन्य स्थिणादानम् । २० ६३ ११८ प्रयस्यास्तिष्टकुद्यागः, माहे | | | | | 1 🔍 | o e | e in |
| ११३ च्वान्यमावक्षनिवापः । १६ ६३ मेकैकचमसभक्षणम् । १७ १ ११४ च्वान्यः । १७ ६३ १३९ ब्राह्मणानामेव वजमानचमसस्य ११६ च्वान्यः । १८ ६३ भक्षणम् । १८ ६३ ११७ च्वाक्षेडकानां दक्षिणादानम् । २० ६३ ११८ प्यस्यास्तिष्टकृत्यागः, माहे- न्त्रग्रह्महणादि । २१ ६३ ११९ कासन्या वजमानस्यावतरणम्।२२ ६३ ११९ कासन्या वजमानस्यावतरणम्।२२ ६३ ११० ताप्यादिपरिधानपक्षे तेने- वावस्र्यः । २३ ६३ १२१ तदमावे दीक्षितवसनेनावस्र्यः।२४ ६३ १२३ तप्यादिपरिधानपक्षे कत्वि- १२३ ताप्यादिपरिधानपक्षे कत्वि- १२३ ताप्यादिपरिधानपक्षे कत्वि- १२३ ताप्यादिपरिधानपक्षे कत्वि- १२३ क्षात्रम्यस्त्रहानम् । २६ ६३ १२४ श्रेधात्रम्युव्वसानीयेष्टिः । २८ ६३ १२४ हिवषामासादनक्रमविधिः । ३ ६ | | | | | | ₹ २ | ÉR |
| ११४ धूतप्रेषः । १७ ६३ १३९ ब्राह्मणानामेव यजमानवमसस्य ११६ ख्रुतकीडनम् । १८ ६३ सक्षणम् । १८ ६३ ११६ सजातगोस्ताडनम् । १९ ६३ ११७ च्रतकीडकानां दक्षिणादानम् । २० ६३ ११९ यजमानस्य दत्रपेयेष्टेरनन्तरं वर्षपर्यम्यास्वष्टकृत्यागः, माहे- | | | 7.0 | 5 | | e ie | Ć ido |
| ११६ सजातगोस्ताडनम् । १८ ६३ ११६ सजातगोस्ताडनम् । १९ ६३ ११७ चूतक्रीडकानां दक्षिणादानम् । २० ६३ ११८ प्यस्यास्तिष्टकृद्यागः, माहेद्रग्रहग्रहणादि । २१ ६३ ११९ कासन्द्रा यज्ञमानस्यावतरणम्।२२ ६३ ११९ कासन्द्रा यज्ञमानस्यावतरणम्।२२ ६३ ११० तार्प्यादिपरिधानपक्षे तेने- वावज्रथः । २३ ६३ १२१ तदमाने दीक्षितवसनेनावम्थः।२४ ६३ १२२ तदमाने दीक्षितवसनप्रद्रेपः । २९ ६३ १२३ तार्प्यादिपरिधानपक्षे ऋत्वि- १२३ तार्प्यादिपरिधानपक्षे ऋत्वि- १२३ क्षेधात्वयुद्वसानीयेष्टिः । २८ ६३ १२४ श्रीधात्वयुद्वसानीयेष्टिः । २८ ६३ १३४ हिविधामासादनक्रमविधिः । ३ ६ | | | | 100 | | | é a |
| ११६ संजातगोस्ताङ्गम् । १९ ६३ ११७ द्यापेयेष्टिदक्षिणानिरूपणम् । २१ ६ ११७ द्यापेयेष्टिदक्षिणानिरूपणम् । २१ ६ ११८ पयस्यास्विष्टकृद्यगाः, माहे- न्द्रग्रहग्रहणादि । २१ ६३ ११९ सासन्दा यजमानस्यावतरणम्।२२ ६३ ११० ताण्योदिपरिधानपक्षे तेने- वावस्थः । २३ ६३ १११ तदमाने दीक्षितवसनेनावस्थः।१४ ६३ १११ तदमाने दीक्षितवसनपक्षेपः । २६ ६३ ११३ वोग्योदिपरिधानपक्षे क्रित्न- गम्यस्तहानम् । २६ ६३ ११४ विवामासादनक्रमविधः । ३ ६ | • | १९ छत्रकीडनम् । | | | | | CIA |
| ११७ धृतक्रीडकानां दक्षिणादानम्। २० ६३ १४१ ध्वजमानस्य द्यापेयेष्टरनन्तरं ११८ पयस्यास्तिष्टकृत्यामः, माहे- न्द्रग्रहग्रहणादि। २१ ६३ स्थानस्य च निषेधः। २३ ६३ १४२ यावज्जीवं च निष्पानत्कस्य भूमाववन्थः। २६ ६३ १४२ यावज्जीवं च निष्पानत्कस्य भूमाववन्थः। २६ ६३ एख्रद्रशाध्याये नवमी किएडका- १२१ तद्भाने दीक्षितवसनेनावभृथः। १६ ६३ एख्रद्रशाध्याये नवमी किएडका- १२३ ताण्यादिपरिधानपक्षे कित्व- १२३ ताण्यादिपरिधानपक्षे कित्व- १२३ ताण्यादिपरिधानपक्षे कित्व- १२४ श्रेधातव्युद्वसानीयेष्टिः। २८ ६३ १४६ हविषामासादनक्रमविधिः। ३ ६ | | | | | | • | € MB |
| ११८ पयस्यास्तिष्टकृत्यागः, माहे- न्त्रगहग्रहणादि। २१ ६३ ११९ आसन्दायज्ञातस्यावतरणम्।२२ ६३ १२० तार्प्यादिपरिधानपक्षे तेने- वावश्रयः। २३ ६३ १२१ तद्भाने दीक्षितवसनेनावभृथः।२४ ६३ १२२ तार्प्यादिपरिधानपक्षे ऋत्वि- १२३ तार्प्यादिपरिधानपक्षे ऋत्वि- १२३ तार्प्यादिपरिधानपक्षे ऋत्वि- १२४ श्रेधात्वस्युद्वसानीयेष्टिः। २८ ६३ १२४ हिवामासादनक्रमविधिः। ३ ६ | | 727 G. C. C. Langer and C. Lange | | 4.1 | | 4.6 | ÉA |
| न्द्रग्रहप्रहणादि। २१ ६३ स्थानस्य च निषेषः। २३ ६ ११९ आसन्दायजमानस्यावतरणम्।२२ ६३ १२० ताण्यादिपरिधानपक्षे तेनै- वावश्र्यः। २३ ६३ १२१ तदमाने दीक्षितवसनेनावश्र्यः।२४ ६३ पञ्चद्शाध्याये नवमी किएडका- १२२ जठे दीक्षितवसनप्रक्षेपः। २९ ६३ १४३ वैशाख्युक्कपक्षे पञ्चिबलानु- १२३ ताण्यादिपरिधानपक्षे ऋत्वि- १२४ श्रेधात्व्युद्वसानीयेष्टिः। २८ ६३ १४४ पञ्चिबल्हविदेवतानिरूपणम्। २ ६ १२४ श्रेधात्व्युद्वसानीयेष्टिः। २८ ६३ १४५ हविषामासादनक्रमविधिः। ३ ६ | | | | | | | |
| ११९ आसन्दा बजमानस्यावतरणम्।२२ ६३ १४२ यावज्जीवं च निर्पानत्कस्य १२० तार्ण्यादिपरिधानपक्षे तेनै । २३ ६३ भूमाववस्थाननिषेषः। २५ ६३ १२१ तदभावे दीक्षितवसनेनावस्था।२४ ६३ पञ्चद्शाध्याये नवमी किएडका-१२२ जे दीक्षितवसनप्रक्षेपः। २५ ६३ १४३ वैशाख्युक्कपक्षे पञ्चिबलानु । १६ १२३ तार्ण्यादिपरिधानपक्षे ऋत्वि । १६ ६३ १४४ पञ्चिबल्हविदेवतानिरूपणम् । २ ६ १३४ श्रेधातस्युद्वसानीयेष्टिः। २८ ६३ १४५ हिवधामासादनक्रमविधिः। ३ ६ | | | a 9 | 83 | | | |
| १२० तार्ण्यादिपरिधानपक्षे तेनै । २३ ६३ वार्ण्याद्या । २३ ६३ १२१ तद्याने दीक्षितवसनेनावभृथः । २५ ६३ पञ्चद्शाध्याये नवमी किएडका - १२२ तल्यादिपरिधानपक्षे कित्व । २५ ६३ १४३ वैशास्त्र क्षाव्य । १६ ६३ १४३ वार्ण्यादिपरिधानपक्षे कित्व । १६ ६३ १४४ पञ्चविन्ह विदेवतानिरूपणम् । २ ६ १२४ श्रेधात्र व्युद्वसानीयेष्टिः । २८ ६३ १४५ हविषामासादनक्रमविधिः । ३ ६ | | | | | By the second of the second | ₹\$ | g _C |
| वावश्रयः। २३ ६३ पञ्चद्शाध्याये नवमी किएडका- १२१ तदभावे दीक्षितवसनेनावभ्रयः।२४ ६३ पञ्चद्शाध्याये नवमी किएडका- १२२ जे दीक्षितवसनप्रवेपः। २५ ६३ १४३ वैशास्त्रश्रक्षप्रविक्रानुः १२३ ताप्यदिपरिघानपक्षे ऋत्विः १६ ६३ १४४ पञ्चिक्रहविदेवतानिरूपणम्। २ ६ १२४ श्रेधात्रस्युद्वसानीयेष्टिः। २८ ६३ १४५ हविषामासादनक्रमविधिः। ३ ६ | | | | | | | |
| १२१ तदभावे दीक्षितवसनेनावभृथः।२४ ६३ पञ्चदशाध्याये नवमी किएडका- १२२ जले दीक्षितवसनप्रक्षेपः। २५ ६३ १४३ वैशाख्युक्कपक्षे पञ्चिबलानु- १२३ ताप्यदिपश्चिमनपक्षे ऋत्विः १५६ ६३ १४४ पञ्चिबल्हविदेवतानिरूपणम्।२ ६ १२४ श्रेधात्व्युद्वसानीयेष्टिः। २८ ६३ १४५ हविषामासादनक्रमविधिः। ३ ६ | | [16] 그리지 않는 사람들은 사람들이 되었다. 그리고 있는 사람들은 사람들이 되었다. | 23 | 63 | सुसाववस्थानानपः। | (4 | ĘC |
| १२२ जठे दीक्षितवसनप्रक्षेपः । २५ ६३ १४३ वैज्ञालशुक्कपश्चे पञ्चित्रलानुः १२३ वाण्यादिपश्चिम्पपश्चे ऋत्विः १८६ छानम् । १६६ १४४ पञ्चित्रवहित्वेतानिरूपणम् । २ ६१२४ श्रेधात्रवृत्वसानीयेष्टिः । २८ ६३ १४५ हिविषामासादनक्रमविधिः । ३ ६ | • | | 158 | 100 | पञ्चदशाध्याये नवमी करिड | का | - |
| १२३ वार्ग्यादिपश्चिानपक्षे ऋत्विः | | | | | | | |
| १२४ श्रेधातन्युद्वसानीयेष्टिः । २८ ६३ १४५ हिवपामासादनक्रमविधिः । ३ ६ | | | | | ष्टानम्। | | |
| १२४ श्रेधातन्युद्वसानीयेष्टिः । २८ ६३ १४५ हिवपामासादनक्रमविधिः । ३ ६ | | 현기 이 전 경기를 통해 가게 되었다. 그는 그는 그는 그 그를 가게 한 점점을 모습하고 있다. | 38 | ६३ | १४४ पञ्जबिछह्रविदेवतानिरूपणस् । | 2 | 86 |
| | - { | | 26 | | | | |
| १२५ हिनिविशेषः। | | २५ हविचिशेषः। | ar an artist and the | | | | |
| 그는 그들은 사람들은 사람들이 얼마나도 한 살았다면 가장 이 점점 하는 것이 없는 것이 되는 것이다. 그는 것이 되는 것이 없는 것이 없는 것이 없는 것이다. 그렇게 되는 것이 없는 것이 없는 것이 | | | | | १४७ काम्यपञ्जितिलेखिः । | Ę | 18 |
| १२७ काम्यत्रैधातवीष्टिदक्षिणा । ३२ ६४ ११४८ प्रयुग्यविषां द्वादशानामनुष्टानम्।७ ६ | | | 38 | | | 18.00 | |
| का० वि० २ | ij | | | | | | |

| सं• स् | go. | सं स् | প্ত |
|--|------------|--|-------------------------------|
| १४९ तत्र प्रतिमासमेवस्येति क्रमेण | | १७२ प्रायश्चित्तसौत्रा मणीयागे वि | |
| हादशानामनुष्ठानपक्षः। ८ | ६९ | शेषविधिः। २० | 60 |
| १९० देशव्यवधानेनेकिस्मिन्नेव काले | | १७६ राजस्ययज्ञान्ते त्रघातनीष्टिः। २३ | |
| द्वादशानुष्ठानपक्षः। ९ | € € | | |
| १५२ षण्णां षण्णामेकतन्त्रेणानुष्टा- | | वेडिशाध्याये प्रथमा करिडक | 1- |
| नपक्षः। ११ | 23 | १ अग्निशब्दापरपर्यायचितेः सो- | $e_{i,j} = \frac{e_{i,j}}{2}$ |
| १५२ तत्रत्या दक्षिणा। १२ १५३ पशुबन्धः। १३ | ६९ | मयागाङ्गस्वम् । १ | ES |
| | ६ ९ | २ समहावर्ते सोमयागे चितेर्नि- | |
| | E e | त्यताऽन्यत्र तद्विकल्पः। २ | હ્યુ |
| १६६ ततः केशवपनीययागानुष्टानम्।१६ | ६ ९ | ३ अरिनष्टोमस्य प्रथमप्रयोगे चि- | |
| १९६ ततो मासान्तरेण चत्वारः | | तेरभावः। | ଓଡୁ |
| सोमयागाः। १७ | 88 | ४ कर्बमते त्विनशोमनामन्यां | |
| १५७ तत्र प्रथमोच्युष्टिद्विरात्रः द्वि- | | प्रथमसंस्थायां सर्वप्रयोगेषु | 24.5 |
| तीयश्विष्टोमः। १८ | 60 | | હ્યુ |
| १९८ वृतीयः अत्रष्टविः, चतुर्घो | | ६ फाल्गुनकृष्णप्रतिपदि पञ्चा नां | |
| ज्योतिष्टोमः। २१ | 90 | | 10.0 |
| १५९ तुतः सौत्रामणीयागः। २३ | we. | पश्नामालम्भः, तत्र न दक्षिणा । ५ | 96 |
| १६० सौत्रामणीतिकर्तव्यतानिरू- | | ६ पञ्चपदवालम्भे ब्रह्मणे वा दक्षि- णाद(नम् । ६ | ଓଡ଼ |
| वणम् । १४ | 100 | 토막, 성기, 공연들은 집에 들어가다고 하다 말 하고 말하는 그 사람이 되었다. | |
| १६१ सौत्रामणीयागे पुरोडाबध- | | ७ माधञ्चणामायां वा पञ्चपद्वाः स्रम्भः। ७ | uş. |
| मीणामनुष्टानम्। २८ | 180 | ८ पञ्चपशुनां विधानम्। ८ | ଓଞ୍ |
| १६२ सौमिकघर्माणां प्रतिपदोक्ता | | ९ पञ्चानामपि पश्नां रश्चनाप्रमाणं | • |
| नामेवानुष्टानम्। | 125 | क्रमशो हसीयः। ९ | ଓଣ୍ଡ |
| ्पञ्चदशाष्याये दशमी कविडका | | | |
| १६३ त्रिपशुपशुबन्धस्यानुष्ठानविधिः।१ | re S | १० सर्वेषां रशनानां साम्यं वा । १० | w.e |
| १६४ पद्मम्रयनिरूपणम् । ३ | 409 | ११ प्राकृतपञ्चदशसामिधेनीनामत्र | |
| १६५ त्रिपञ्जपञ्जबन्धे एकयूपत्व- | | चतुर्विशतिकरणम् । ११ | 98 |
| नियमा। 🖣 🦫 | 100 | १२ आप्रियसंज्ञकानी द्वादशमन्त्राणी प्रयाजयाज्यात्वम् । १२ | ଡଞ୍ |
| १६६ चिप्राप्राप्रायन्थे अग्निविशेष- | | प्रयाजयाज्यात्वम् । १२ १३ एकादशान्ते शासप्रेषादिकरणम्।१३ | 100 |
| विधिः। ८ | SO P | | ଓର୍ |
| १६७ सुरानिर्माणविधिः। १० | હર | १४ पुरुषपशोः परिवृते संज्ञपनमन्येषां | |
| १६८ एकस्रयो वा सुरायहाः। १२ | ७३ | तु शामित्रे एव । १४ | ଜଣ୍ |
| १६९ सुराग्रहश्रयपक्षे प्रथमग्रहरूय | | १५ अजस्य पशोः प्राणसंशोधनम् | |
| मध्ये होमः। १४ | W a | नान्येषास्। १५ | ΨĘ |
| १७० दक्षिणारनौ परिखुद्धोमः। १७ | w > | १६ सर्वेषां वा प्राणसंत्रोधनस्। १६ | ₩. |
| १७१ सुराशेष क्रम्भे सासिच्य तस्यो | | १७ पुरुषपञ्जवैदयो राजन्य एव वा- ऽऽलब्धन्यः। १७ | lete. |
| पस्थानस्। १६ | ७२ | 그렇게 하는 사람들이 살아보고 있다면 하는 사람들이 되었다면 하는데 얼마나 없었다. | 80 |
| १७२ त्रिपशुपरोडाशहविनिर्वापः। १७ | wą | १८ पश्चिशिरसां छेदनविधिः । १८ | 60 |
| १७३ त्रिपशुपशुबन्धदक्षिणा । १८ | 60 | १९ अजिमन्नामां चतुर्णां पशूनां जले कायपासनम् । १९ | w |
| १७४ सोमातिपृतस्य प्रायश्चित्तं | | कायपासनम् । २० कायक्षिप्रजलाशयानमृदामपौ | |
| चरकसीत्रामणीयागः। १९ | 90 | 전화 12 시스 📦 문화 중요 1 년 전경 경험 전경 12 시스 (1984년) - 12 12 12 12 12 12 12 12 12 12 12 12 12 | ente. |
| | 1 | ्रचष्टकाथमादानम् । २० | 20 |

| संक | सु॰ | ão. | सं॰ | सु॰ | g: |
|--|-------------|------|--|-----------|------------|
| २१ अजेन प्रचरणस्। | ٩ ٢ | 1919 | ४० क्षिस्रवशुशरीरजळाशयगृहीतसृ- | | |
| २२ त िछष्टमांसादिभागस्य जले | | | स्पिण्डस्य खञ्जे निचानम् । | ેર | 60 |
| प्रक्षेपः । | २२ | ७७ | ४१ विण्डाह्वनीयमध्ये बल्सीकव- | | |
| २३ सर्वैः प्रवरणं तच्छिष्टमांसादिः | | | पानिधानस् । | - 88 | 60 |
| भागस्य जले प्रक्षेपो वा । | २३ | Q 21 | ४२ आहवनीयदक्षिणदेशे पूर्वापर- | | |
| २४ पद्मपुरोडाशो वैश्वानर उपांशुश्च। | ñ, G | 196 | क्रमेणाऽइवगर्दभानानां स्था- | | - |
| • A | २६ | 56 | पनम् । | 8 | 68 |
| र६ पद्यंतुरोडाशानां याज्यातुरोतुः | | | ४३ आहवनीयोत्तरदेशे वैगव्यन्त्रिः | | |
| वाक्याः। | \$ 10 | 96 | नियानम् । | ą | ٧ و |
| २७ इष्टकापञ्चतयस्ययोरनुष्टानमध्ये | | | ४४ स्वर्णमयी वाङ्गिः। | Ę | 68 |
| • | ે ક | 96 | ४६ सावित्रहोमः। | 19 | 65 |
| २८ तत्रैव मांसाशनोपर्यासनयोर्वर्जने | | | ४६ अभ्रयादानं तद्भिमन्त्रणं च। | ૯ | હર |
| विकल्पः। | 38 | 96 | ४० अभिहस्तेनाश्वादीनामनुमः | Ī | - (|
| २९ जिन्नानां पृद्धशिरसां त्वङ्मांस | | | न्त्रणस् । | ۶ | 68 |
| | 3 0 | 96 | ४८ अरवादीनां प्राचीं दिशं प्रति | • | |
| | ३१ | 10 C | 1 | | ۰. |
| ३१ पुरुषादीननाल्म्यान्येषां संवा- | | | पलायनम् । ४९ व्यञ्जस्यिपडसमीपे यज्ञमानाः | १० | હ ર |
| मादिहतपञ्जितिसां सुवर्ण- | | | ७१ व्यञ्जीः गमनम् । | 8.6 | |
| शिरसं मातिकानां वा | | | ५० दक्षिणतः पश्नामुत्तस्य यज- | 88 | ૮ર |
| | 28 | 50 | सानादीनां सह प्रवादनम् । | 0.3 | 20 |
| ३२ प्राजापत्यस्यैकस्यैव वाऽऽलम्भ | | | ५१ देविवदुमनुष्यानर्थकपुरुषस्ये | १३ | દ ર |
| विघानस् । ३३ प्राजापत्यपत्रवालम्भपक्षे प्राकृत- | ક્ ફ | 86 | क्षणम् । | 0.5 | |
| ५३ प्राजापत्यगरपाकन्मपदा प्राञ्चतः पञ्चद्रशसामिधेनीवु षण्णां धाः | | | ५२ वर्ष्माकवपाचि अद्वेण पिण्डेक्षणस | 84 | 63 |
| | | | ५२ वलमाकवपारिकारम् । ५३ ततो वल्मीकवपानिकारम् । | | 63 |
| य्याऋवामावापेनैकविशतिकः रणम्। | 3 19 | ७९ | | | 63 |
| ३४ प्राजीवत्वपशुपक्षे उत्तराघारे | | | ५४ ततोऽखाभिमन्त्रणम्। | ११५ | ૮ક |
| हिरण्यगर्भ इति मन्त्रविधिः। | 36 | 48 | ६६ पिण्डस्योपरि अद्यवस्य पाद- | | |
| ३५ वायवयस्य वैकस्य पशोरालम्मः, | | | स्थापनस् । | १७ | Cà |
| तन्न पक्षे सामिधेनीषु ऋग्ह्या | | | ५६ ततोऽधस्य प्रशेषरि हस्तधारणस् | fi še | ૮રૂ |
| | 88 | 60 | ५७ विण्डतोऽइवस्योत्तारणम्। | 78 | ૮રૂ |
| ३६ वायव्यप्राजायस्ययोग्रमयोरपि | | | ५८ ततोऽदवाभिमन्त्रणस् । ५९ विण्डदक्षिणदेशे पूर्वोपरक्रमेणा- | ₹0 | ૮૩ |
| पञ्जपुरोडाशः प्राजापत्यः । | }ą | 60 | | | |
| ३७ प्राजापत्यपञ्चपक्षे याज्यानुः | | | दवगर्दभाजानां स्थापनम् । | | 69 |
| वाक्याः। | } ફ | 60 | ६० सृत्पिण्डोपरि जायमानाद्यपद् | 61 24 | |
| ३८ वायव्यवशुरक्षे वपायाच्यापुरो- | | | सुदायां होमा । | | ૮રૂ |
| ऽनुवाक्यासु भेदोन्ययाज्यासु∙ ———————————————————————————————————— | | | ६१ अभ्रया त्रिः परिलेखः विण्डोवरि। | | 6 3 |
| रोनुवाक्याः प्राजायत्यवदेव । ४ | | 60 | On the property of the property | २४ | €3 |
| षे।डशाच्याये व्रितीया करिड | fii- | 32. | ६३ विण्डोसरदेशे कृष्णाजिमास्तरणम् | 3.6 | ૮રૂ |
| ३९ उपासम्भरणं फालगुनऋष्णा• | | | ६४ कृष्णाजिनोपरि कमिलनीपन्न- | | |
| ष्टम्याम् । | 8 | ૯૦ | ्रिधानस्। | ₹€ | ૮ક્ |

| ಸೆಂ | सु० | রূত | सं ० | ego. | · · · · · · |
|---------------------------------------|------------|-----|--|-----------------|-------------|
| ६९ कमिकनीपत्रविमाजनम्। | ३७ | 68 | ९१ पञ्चपञ्चपक्षे उत्वाप्रमाणम् । | 36 | ć |
| ६६ इच्णाजिनकमलिनीपत्रयोद्ध- | | | ९२ उखातलनिर्माणाय गृहीतिपः | | |
| योर्थुगपदालम्भनम् । | 26 | €8 | ण्डस्य प्रथनम् । | ₹5 | C |
| ६७ विण्डस्यालम्भनम् । | ३१ | ८४ | ९३ उखातलं परित उच्चं क्रत्वा म | ध्ये | |
| ६८ हस्ताभ्यां सर्वस्य मृत्दिपण्डस्य | 1 . | | पिण्डिकाप्रक्षेपः। | ₹ છ | . 6 |
| ग्रहणस् । | 10 | ୍ଟେ | ९४ तां पिण्डिकां इलक्ष्णां इत्वा | | |
| पाडशाध्याये तृतीया करि | | T | नदुपरि हितीयाप्रक्षेपः। | ₹ 6 | |
| | (S) 41 | | ९६ उखासमीकरणम् । | 38 | 6 |
| ६९ गृहीतसृत्पिण्डस्य पुष्करपणे | | | १६ उखायां मेवलाकरणम्। | 3 0 | 61 |
| निधानम् । | 8 | 68 | षे।डशाध्याये चतुर्थी करिः | €ŦI | |
| ७० ववस्रेऽपां प्रक्षेपः। | ર | 68 | ९७ जर्मिखळावां सर्वासु तासु | | |
| ७१ हस्तोत्पन्नवायोः इवस्रे प्रवेशन | म्।३ | ৎ৪ | वाडप्रभागे स्तनसहसानयवः | | |
| ७२ इवञ्रे परितः पुरीषवापः। | 8 | SS | | | |
| ७३ आस्तीर्णेक्टगाजिनपुष्करपर्णे- | | | निर्माणम् । | \$ | - 6 |
| योस्त्थापनम् । | Ģ | 68 | ९८ उखाग्रहणम् । | ş | . C |
| ७४ ततो मुझयोक्त्रेण तन्न मृत्पिण | g , | | ९९ उखानियानम् । | 8 | દા |
| वन्धनस्। | Ę | 68 | १०० उखाया एकत्वं त्रित्वं वा, | | |
| ७५ उत्थाय विण्डग्रह्णम् । | Ø | 68 | त्रित्वपक्षे सद्यहणादिषु का | - in the second | |
| ७३ अध्वर्युकर्तृकं सृत्पिण्डस्य बाहुः | | | ण्डानुसमयः। | ٩ | CV |
| प्रसारणेन धारणम् । | L | 68 | १०१ विश्वज्योतिःसंज्ञकेष्टकात्रय- | | |
| 🕪 अदवाद्यभिमन्त्रणम् । | 9 | ८६ | निर्माणं यजमानस्य । | Ę | 60 |
| ७८ अदवादीनासुपरि सृत्पिण्ड- | | | १०२ अतिरिक्तमुब्रिधानम्। | 0 | 4 |
| स्थापनमानिघानात । | 80 | 64 | १०३ अइवशक्कद्भित्वाधुपनम् । | E | 66 |
| ७९ अद्रवादीनां स्वस्थानस्थिताः | | | १०४ अअया ववअखननम् । | 8 | 66 |
| नामेव प्रत्यङ्गुखावृत्ति इत्वा | | | १०५ ६वञ्चे यथाक्रममषाढोखावि- | | |
| यजमानाध्वर्यूणां परिवृत्तं प्र- | 왕황 | | इवज्योतिरिष्टकानां निधानस् । | | 66 |
| स्यागमनस् । | \$\$ | ૮૬ | १०६ उखाया निधाने न्युव्जत्वम् । | 88 | 66 |
| ८० पूर्ववद्नद्धापुरुषेक्षणम्। | 13 | 69 | १०७ दक्षिणारिनना तदीपनम् । | १२ | 66 |
| ८१ आहवनीयोत्तरभागे सृत्रिण्ड | | | १०८ भूपनदीपनयोर्निर्मन्थ्यदक्षि- | | |
| निधानम्। | 88 | ८५ | णाग्न्योत्त्रिकल्पः। | ? ३ | ee |
| ८२ मृह्पिण्डप्रतिमोकः, अजलोम- | | | १०९ छिद्रकरणेनोखेक्षणम् । | 88 | 66 |
| ग्रहणम् , ततः पश्नासुरसर्गः । | | ଓଡ଼ | ११० तत इन्धनप्रक्षेपः । | 89 | 66 |
| ८३ सृतिवृण्डे कषायोदकासेचनम् । | १६ | ૮૬ | १११ उखापाकस्तदुद्धरणं च दिन | | |
| ८४ फेनासिञ्चनं च । | 80 | ૯૧ | 크리티크 그 이 이 사람이 하는 것 같아 그리고 있다. 이 사람들이 되었다면 하고 있다. 나를 | 8. | LE |
| ८६ अज्ञलोममेलनम् । | 86 | 68 | ११२ पाकानन्तर्मिन्धनदूरीकरणम्। | .6 | 66 |
| ८६ शकरादीनां च मेलनस् । | 28 | ୯୫ | ११३ उखोपरिस्थेन्घनदूरीकरणे मन्त्रः। | n es | |
| ८७ सर्वेषां सम्यक् मेलनम् । | २० | ૮६ | [[12] NEO (III - EACH-PEALL) TO ANTON OF THE LOCATE POSITION SEED IN | १९ २० | 66 |
| ८८ अषादृष्टकनिर्माणम् । | 38 | ૮ફ | ११६ वनभादुखाया निष्कासनम्। | | 66 |
| ८९ यजमानस्य उखाकरणम् । | ٩ą. | CE | ११६ क्वर्आव्रिष्कासितोखायाः पात्रे | | |
| ९० एकपञ्जपक्षे उखाप्रमाणम् । | રષ્ટ | 28 | | 13 | ૮૬ |

| क्षं | सु० | पृ | । सं० | सु० | go |
|-----------------------------------|-------|-----|--|---------|------|
| ११७ उखाया अजापयःसेकः। | ą ą | | १३८ उखाया आसन्द्यां निधानम्। | | _ |
| ११८ ततः सर्वास्विष्टकासु चिन्ह- | ` | • | १३९ शिक्यपाशस्योखाग्रीवायामा | | 24 |
| त्रयकरणम् । | 58 | 83 | संसनम्। | Ę | 83 |
| ११९ द्वितीया वतुष्यीस्तु चिन्हसं | • | | १४० शिक्यसंहितोख्याग्नेरूध्वं- | | • • |
| ख्यायामैच्छिको विकलपः। | ३ ५ | 69 | बाहुना प्रहर्ण धारणं च। | 19 | 63 |
| १२० इष्टकापाकोऽपि निर्मन्थ्येन | | | १४१ चयना तन्तरं द्रोणादिषड्विय- | | |
| दक्षिणारिनना वा। | RE | ८९ | चयननिरूपणम् । | 8 | 63 |
| १२१ फाल्गुनामाबास्यायां दीक्षा- | | | १४२ समुद्धपुरीषचयने सर्वतः पुरी- | • | |
| करणम् । | \$ 0 | ८९ | षचयनम्। | 0 ^ | ૬ફ |
| १२२ दीक्षणीयेष्टिह्वीं वि । | २८ | 68 | १४३ समुद्धपुरीषचयने विष्णुकम- | , , | . 25 |
| १२३ औद्यमणहोमे विश्वेषः। | 30 | 60 | क्रमणम् । | 6.6 | 43 |
| १२४ उखायां शणकुलायं ततः सु- | | | १४४ तत्र प्रतिक्रमणं क्रमेण | 88 | 83 |
| अकुछायं निघाय तस्या | | | 9 0 | | |
| आहवनीयेऽधिश्रयणम् । | 32 | ९० | | १२ | 63 |
| १२५ रुक्मप्रतिमोकविष्णुक्रमवाः | | | | १३ | 83 |
| त्सप्रेषु ईशानाभिमुखपूर्वकः | | | १४६ ततो मन्त्रावृत्त्या सर्वदिग्द- | | |
| त्वम । | . ફેર | 90 | शंसम्। | 88 | 83 |
| १२६ उखायामानौ प्रदोक्षे तन | | | १४७ तत उच्चस्याग्नेरुध्वंबाहुना | | |
| समिद्राधानम् । | ई ई | 80 | | 6 6 | \$3 |
| १२७ तन्नाग्निज्वलगतपूव वा | | | १४८ ऊर्घ्व करणवदेव क्रमेणारनेरघः- | | |
| समिदाधानम्। | 38 | 80 | करणम् । | १६ | 38 |
| १२८ समिधामाधाने विशेषः। | ३५ | 88 | १४९ नाभेरुपरि घत्वाडरनेरिसम- | | |
| १२९ क्षत्रिययज्ञमानस्य द्वाद्वयाः | | | | ę w | 68 |
| समिव आधानं न वा। | 85 | 88 | १९० गलादू व्वसार्गेण स्वमशिः | | |
| १३० पुरोहित्तवजमानस्य त्रयोद्दय | Ť | | A CONTRACTOR OF THE CONTRACTOR | १८ | 68 |
| विकल्पः। | 85 | 98 | १५१ पाशयोराग्नेयीं प्रत्यूर्ध्वः | | |
| १३१ अन्ययज्ञमानस्य द्वाद्शत्रयोः | | | | १९ | 68 |
| दशसमिघोविकल्पः । | 83 | 68 | | | |
| १३२ उख्येऽरनी समिधामाधाने | | | | १० | 88 |
| स्वाहाकारः । | 88 | 65 | १५३ उखवारनेरासन्दां स्थापनम् । | | 68 |
| १३३ औद्पमणहोमातपूर्व वोखाधि | | | | १२ | 68 |
| श्रयणादिकम् । | 84 | 65 | १५५ दीक्षितोऽयं ब्राह्मण इति न्नि- | | |
| षेडिशाध्याये पञ्चभी कणि | e es | r | たいしょう こうしゅう こうしん はんしょう 一方面を含む しゅうしょ 大型 しゅうしょ | 4 | 68 |
| 이 살아. 그 나는 그 속을 만들었다. 그 그 말을 다 | | | १५६ अग्रेतनकर्भणः संवरसरमाः | | |
| १३४ यजमानस्य कण्डे सोवर्णामः | | | वृत्तिविधिः। २ | Ę | 68 |
| रणविमोकः। | 8 | 65 | 이 경기는 물리 공항하게 되어왔습니다 가장되어 가는 것이 | ag engl | |
| १३५ इण्ड्वशिक्यासन्दीषु कर्मेन | | | षेडिशाध्याये षष्ठी करिडव | DI. | |
| छेपनम् । | 100 | 82 | १९७ अस्तानन्तरं वारिवसगीत्प्राक् | | |
| १३६ इण्ड्वाभ्यामुखाप्रहणम् । | 3 | 83 | उखामस्मोद्वापः। ्र्ू | ? | 99 |
| १५७ ताम्यामेवोखाया आसन्दी- | | | १५८ वाग्विसर्गानन्तरमध्वश्चेकरेकं | | |
| enternari i | 9 | eal | स्रविदाघानस् । | a . | 66 |

| सं० | ৰূ | ão | 6 0 | 0 | ପୂର |
|---------------|--------------------------------------|------|---|------------|--------------|
| १५९ | सूर्योदवानन्तरमध्येव मेव | | १७९ वसति गत्वैवाग्ने स्थादवताः | | |
| | अस्मोद्वापादि । ३ | 86 | रणं, तच्चे।त्तरस्यां ततस्तत्राः | | ٠. : |
| १६० | तन्न केवलं मन्त्रभेदः समिदाधाने। ४ | 89 | ग्नौ समिदाधानम् । ३ | 8 | 800 |
| | संवत्सरं यावदीक्षं विष्णुक्रमः | | १८० वनीवाहनकर्मणोऽनुष्ठानका- | | |
| | बात्सप्रयोः क्रमेणानुष्टानम् । ५ | 89 | | Ą | 800 |
| 988 | विष्णुक्रमपदार्थनिक्षणम् । ६ | 98 | १८१ सोमकयगदिने उख्यमस्म- | | |
| | सारिनके कतौ सम्बत्सरं | | नोऽञ्सु प्रक्षेतः। २ | ş | १०० |
| 144 | सौमिकदोशानुष्टानम्। ७ | 32 | १८२ दीक्षासु चेच्डया सस्मप्रक्षेव- | | |
| # E U | सबोभृतयागे सौमिकदीक्षा | | | પ્ર | १०० |
| | | 60 | १८३ दीक्षासु भ्रमप्रक्षेपो वनीवाः | | |
| 9 E G | शरधारम्य वसन्ते सौिमकः | * | | | 800 |
| 641 | दोक्षान्छानं वा। ् ७ | ९७ | | Š. | 800 |
| 238 | व्रतदानानन्तरं यजमानस्योख्ये- | | १८९ अनामिकवा प्रक्षिष्ठभस्म | 5 | န ဝ န |
| | ऽ ग्नो समिद्धानम् । ८ | ९७ | प्रहणम् । १८६ सस्म क्षिप्त्वाऽग्नेहसायां | , | £ ~ { |
| 95.0 | सम्बत्सरन्द्रतिनो यजमानस्यै- | | स्थापनम् । ३ | ٥ | १०१ |
| • | कादिदीक्षावक्षेऽपि चयनम्। ९ | ९७ | े स्थापनम्। षेडिशाध्याये सप्तमी कविडव | 5 [| |
| 9 E ፈ | संवत्सरसुत्यं करिष्यतो यज- | | १८० आरिनकी प्रायश्चित्तिः | | |
| | मानस्याप्येकादिदीक्षापक्षे च | | १८८ गाहेपत्वाचुगमने प्रायश्चित्तम् । | | |
| | यनम् । १० | 60 | १८९ सुत्यास्वाहवनीयशमने प्राय | | |
| 989 | सौमाध।निकस्य सम्बत्सर- | 4. | | 2 | १०३ |
| | मितिहोस्रहोमिन एकादिदी- | | १९० आग्नीधीयानुगमने प्राय | 7 | |
| | क्षापक्षेऽपि चयनम्। ११ | ९७ | | 2 | १०३ |
| 0100 | सम्बत्सरवर्धनतं गर्भे स्थितौ | | १९१ उख्यारन्यनुगमने प्रायश्चितम्। | 1 | १०२ |
| रू | पश्चान्जातस्य यजमानस्यापि | | ०० अध्वरपायश्चितः। | | १०३ |
| | सद्योभृते चयनम् । १२ | 98 | 1월 1일 - 이 문의 경기 가는 그 없는데 이 사람들이 되는 것이 없는데 없는데 없다. | | १०३ |
| 9.09 | सम्बद्धरभरणाशकावनुकल्पः। १३ | ९८ | १९४ उखामेदने नृतनोखानिमांग | | |
| 505 | अन्यार्थं यज्ञं कुर्वतोऽध्वर्षोः | | ાવાવા ા | ξ | १०३ |
| Å. | श्चयनविकल्पः। १४ | ९८ | १९५ द्रख्यकपालापशययाः पुनमदन | | |
| c 19 à | वनीवाहनकर्म, तत्र उख्याग्नी | | म्बीनोखानिमाणार्थं सुरक्षिते | | |
| \$ 4 | उत्तरतः शकटं संस्थाप्य स | | | | 808 |
| | मिदाधानम्। १९ | 99 | १९० भिन्नेष्टकाकृष्णेष्टक्योश्चयनः | • | १०३ |
| १७४ | वाकरदक्षिणस्थितय्जमानेनाः | | | | 0 -13 |
| | सन्दीसहितोख्याग्नेरनसि | | 連わり とうしょ しがん しょうしょうしょ えんこうがん おうりゅうしょうしょうしょ ちんどうしょかいり | | १०४ |
| | स्थापनस्। १६ | 88 | १९८ महावेदिमानस्य कालनिरू पणम् । | | १०४ |
| 800 | गाह्वेपत्यस्य च स्थाल्यां गृ | | १९९ गाईपस्यमण्डलस्थाननिरू- | | ₹28 |
| | होत्बाऽनसि स्थापनम् । १७ | 88 | | | १०४ |
| şwş | अमहुद्योजनेनेपत् प्रारगत्वा | | २०३ अन्तःपात्यप्रकरणस्थावधि- | | |
| | ष्यथेष्टदिरगमनम् । १८ | 86 | [19] - 2 - 1 - 1 - 1 - 1 - 1 - 1 - 1 - 1 - 1 | | १०४ |
| 800 | तिस्मन् शकटे यनमान आ | | 그렇게 하고 살아보고 있으면 나는 그 그 그 아이들이 되는 것이 없는 것이다. 그렇게 되었다면 없는 것이 없는 것이 없는 것이다면 없는 것이다면 없는 것이다면 없는 것이다면 없는데 없는데 없어요? | • | 204 |
| | रूढ: पाइबेतो वा गच्छेत्। १९ | - 88 | २०३ वेदिमागर्धरङ्खा माननिः | | |
| 5 49 / | काम्बद्धायाध्यक्षके सन्त्रज्ञपः । २० | १९ | रूपणस् । ३१ | 1 | 99 |

| | | | • |
|---|--------------------|---------------------------------------|----------------|
| सं० | सु० पृ० | , नं ठ | स्० पृ |
| षे।डशाध्यायेऽष्टमी कि | डका- | ९ अग्निस्थापनानन्तरं सिकता | e |
| २०३ वेदिमानार्धरज्ज्यां पक्षपुच | <u></u> | प्रक्षेपात्प्राक् रिकोखाद्र्यन- | |
| श्रोण्यंसादिसाधकचिन्हादि | • | निषेधः। | २१ ११ |
| करणम् । | १ १०६ | १० अग्निरहितोखायां सिकतापूर | |
| २०४ दक्षिणपक्षसाधनप्रकारः । | १४ १०६ | रणानन्तरं पयः प्रक्षेपः। | २२ ११३ |
| २०५ उत्तरपक्षसाधनप्रकारः । | \$6 5ca | ११ गाईपत्यस्य त्रिचितिकत्वमे- | |
| २०६ पुच्छसाधनप्रकारः । | २० १०७ | कचितिकस्वं वा। | २३ १ १३ |
| २०७ अरत्निपद्अङ्गुलप्रक्रमाणां | | सप्तदशाध्याये द्वितीया क | गिडका- |
| प्रमाणम् । | २२ १०४ | १२ नैऋतीनां तिस्णामिष्टकानाः | |
| २०८ परिश्रित्खननविधिः। | 39 800 | मुक्यानम् । | |
| २०९ परिश्रितां संख्याविकल्पः । | २६ १०८ | १३ तासामुपघाने दक्षिणसंस्थत्वम | १११३ |
| २१० द्वितीयादिचयनमार्भ्य एक | | | |
| शतविधचयनपर्यन्तमेकक | No. | १४ अत्र सादनसुददोहसाभावः। | \$ 883 |
| पुरुषवृध्याऽग्निवेदीष्टका- | | १५ शिक्यस्वमपाश-इण्ड्व-आस | \$ 888 |
| मानवृद्धिः । | ३७ १०८ | न्दीनां प्रक्षेपः ^ग ! | |
| २११ अन्तःपात्यगाईपत्ययोश्च | <u>u</u> | १६ ब्रह्मयजमानाध्वर्यूणां तत | 8 558 |
| वृद्धिरिच्छया भवति । | २९ १०८ | · · · · · · · · · · · · · · · · · · · | |
| २१२ उत्तरपक्षवायव्यकोणनिले- | | उत्थानन् । | ६ ११४ |
| यगरिश्रितां माने विशेषः । | ३० १०८ | १७ तेवां शालाद्वायांगमनम्। | ६ ११४ |
| सप्तद्शाध्याये प्रथमा क | वेडका- | १८ महावेदेः स्फ्यादिसंमर्शनान्तः | |
| १ क्रयणीयेऽह्वि सस्माभ्यवह- | | पदार्थां वृष्टानम्। | a 868 |
| रणादिप्रायश्चिक्यन्तकर्मणाः | | १९ प्रायणीयान्ते औदुम्बरसीर- | |
| सनुष्ठानानन्तरं विष्णुकसवाः | | ऽन डुहां योजनम्। | < 558 |
| त्सप्रयोक्भयोरनुष्टानम् । | १ १०९ | २० तत्र त्रिवृत् मुझमयी रञ्जः। | 6 558 |
| २ तस्मिन्नह्नि तथोर्मध्ये यस्य | | २१ योजनीयानहुत्संख्या। | 50 668 |
| पर्यायस्तस्य प्रथममनुष्ठानं | | २२ ततः सीराभिमन्त्रणम्। | 88 88 |
| े तत इतरस्य। | ३ १०१ | २३ ततः क्षेत्रकर्षणम् । | १३ ११४ |
| ३ गाईपत्यचितेः पुत्रांदिक्रमेण | | २५ अन्डुहां सीराद्विमोचनम्। | ३१ ११६ |
| पळाशशाखया मार्जनम् । | \$ 806 | २५ दक्षिणाकाले तेषामध्वर्धवे | |
| ४ ततः प्लाशशासां पृथक् क्षिप्त | | दानम् । | २२ ११६ |
| गाईवत्यचितावृषानिवापेन | | २६सीरस्योत्करे करणम् । | 399 88 |
| सर्वाच्छादनम् । | ४ ११० | सप्तद्शाच्याये तृतीया कि | डका- |
| ५ उषोवरि सिकतानिवापः। | A-B 1.47 T 1.51 | २७ कुशस्तम्बस्थापनं तदुपरि | |
| ६ गार्हेपस्यचितेशसमन्तात्परि- | ६ ११० | होमश्र । | १ ११६ |
| ६ गाहरत्या पत्तरासम्स्यात्पारः श्रितामेकविशतिसंख्यानां | | २८ कर्षणक्रमेण सीतासु चमसस्यो- | |
| निखननम् । | | द्रुप्रक्षेपः। | ३ ११६ |
| ाग्खगगम् । ७ ततश्चात्वाखमृदो गाहीपत्यचिते | * \$50 | २९ चमसेषु एकं वर्जवित्वा सर्वी- | |
| | たけが <i>を</i> りが送り、 | षघावायः। | ६ ११७ |
| -हवरि प्रक्षेपः। | १९११२ | ३० सीतासु उदकप्रक्षेपवदेव सर्वी- | |
| ८ गाहेपत्यचिताबुख्याग्नेः स्था- ्पनम् । | 3 A . 0 8 3 | वधप्रक्षेपः। | <i>७.११७</i> |
| | २० ११२ | | 7.85 |

| ₽ås | सृ० | ପୃତ | સં૦ | सु० | g o |
|--|---------------|----------------|---|-----------|------------|
| ३१ सोमनिवयवादि आतिश्येष्टिः | - | _ | ५३ पुरुषमालभ्य सामगानम्। | १६ | १३४ |
| गढह विष्कृदाह्वा नादितुषवि- | | | ५४ स्वयमातृण्णाधंष्टकोपरि दूवंद्यः | | |
| मोकान्तं कृत्वा परिधिद्सि- | | | कोपधानस् । | | १२४ |
| सन्त्रणस् । | 6 | १११ | १५ हियजुरादिअषाढान्तेष्टको | | • |
| ३२ अनुकान्तेषु छोगेष्टकानासुप- | | | पवानस्। | १९ | 8 2 8 |
| धानम् । | | ११ | ५६ स्वयमातृण्णादिपञ्चित्वष्टकासु | | |
| ३३ उत्तरवेदिनिर्माणस्। | | 886 | चिन्हकरणम् । | 25 | १२५ |
| ३४ सिकताभिरात्मनक्छाद्नम् । | 68 | ११९ | चिन्द्दकरणम् । ५७ ततः क्रुमीञ्जनम् । | 5 @ | १२५ |
| ३५ सिकतालम्भः । | | ११० | सप्तद्शाध्याये पञ्चमी करि | [ड व | i[≕ |
| ३६ आतिथ्येष्टिशेषमारम्योपसद- | | | ५८ अषाहादक्षिणभागे कृमोंपधान | | |
| न्तं इत्वा आनडुहे चर्मणि प्र- | | | तद्रध्वीधोभागयोखकाप्रक्षेपः। | 1 8 | १२६ |
| थमचितीष्टकानां निधानस्। | 88 | 850 | ५९ स्वयमानुष्णेष्टकोत्तरभागे उल्हः | - | |
| ३७ अन्यचितीष्टकानामिच्छया च | 1.5 | | खलमुसलोपधानम्। | | १२६ |
| मेणि निधानम्। | 80 | १२० | ६० उलूबलोपर्युंबास्थापनम्, ततः | | |
| ३८ घृताककुशायैरिष्टकानां प्रोक्ष | | | स्तस्याममी निधानम् । | × | 920 |
| and the property of the state of the | 88 | १२० १२० | स्तस्यामुमौ निधानम् । ६१ उखायां खुवाहुत्योहोमः । | 6 | 5 5 PB |
| | 30 | १२० | ६२ संवत्सरदीक्षापक्षे होमनियमोऽ | • | |
| ४० वर्मस्थेष्टकानामग्रियुच्छस्य | | | न्यत्र विकल्पः। | | 920 |
| दक्षिणतो निधानम्। | 3.5 | १२० | ६३ पद्मशिरसां सुलादिव प्रत्येकं | | |
| ४१ सानिक्षेत्रेऽचस्यारोहणं परिण | | | सप्तहिरण्यशक्छप्रक्षेपः | | १२८ |
| यनसुत्सर्गश्च । | 28 | 850 | ६४ एकपञ्जपक्षेऽपि पञ्चगुणितानामे | a . | 8,0 |
| ४२ प्रोक्षणादिक्यावारणान्तमुत्तः | | | सप्तहिरण्यशकलानां प्रक्षेप इति | | |
| रवेदिकमै ऋत्वा मन्त्रजपः। | | १२१ | केषाञ्चिन्मतम् । | | १२८ |
| ४३ सत्यसामगानम् । | \$ 10 | 808 | ६९ डखायां न्युव्जानि कृत्वा सुः | | |
| सप्तदशाध्याये चतुर्थी क | गिड | ₩T- | खानां निधानम् । | A princes | ११८ |
| ४४ कुशस्तम्बोपिः कमलिनीपत्र | | | ६६ तम्मध्ये पुरुषशिरस उत्थाप्य | ** | |
| निधानम् । | 9 | १२१ | | ęγ | १२८ |
| ne anteriorente plantes. | Ì | | ६७ तत्र शिरसां स्थापनकमः। | | |
| ४५ कमछिनीपत्रीपरि सौवर्णहरूम- स्थापनम् ४६ हरूमस्योपरि सुवर्णपुरुषस्य | Ą | १२१ | ६८ पुरुषशिरस उपरि होमः। | | १२९ |
| १६ हक्सस्योपरि सवर्णपुरुषस्य | deji. Udal | | ६९ उत्सर्भसन्त्रेः पशुशिरसासुप- | | 600 |
| ि निधानस्। | 3 | १२१ | स्थानम्। | 98 | १२९ |
| ४७ तं पुरुषमालम्य चित्रसामगान | सार | 522 | ७० शिरसासुपस्थाने मतान्तरम् । | 20 | 930 |
| 문장이 하나요. 제즘이 성상에는 경상을 모습니다. 그리는 생각이 되는 것이다. | | १२२ | सप्तदशाध्याये पष्टी कण्डि | | |
| ४९ पुरुषस्योपरि होमः। | | १२२ | ७१ चित्यस्याग्नेक्षस्थानम्। | 5 | 03.0 |
| ६० पुरुषमाच्छाच यजमानवाहृद्वय | 经分配债金 | | ॰२ अपस्येष्टकानासुप्यानस्। | | 138 |
| प्रसारणान्त्रयोः सुचौनिधानाः | | | ७३ प्राणसृदिष्टकानासुपघानस्। | 1 | 636 |
| चिन्हकरणम् । | F 40 40 | १२३ | ७४ लोकम्प्रणेष्टकानामुपवानम् । | grandant. | १३२ |
| ५१ चिन्हद्वयोपरि खुचोर्निधानम्। | | | ७६ वतः पुरोपवायः । | 5 7 5 1 | १३३ |
| ५२ पुरुषस्योपरि स्वयमातृण्णेष्टः | * * | , V , 4 | ७६ सर्वासु चितिषु पुरीषावाप- | • | 74. |
| कानिधानम्। | 95 | १२३ | विघि:। | 9.2 | 933 |
| | SOF. | | 12.2.1.11 12.22 20.11 2.2.2.11 다른 나는 이 스탁트 (1) | 7.4 | 158 |

| सं | | सुः | রিং | | Zo. |
|------|-------------------------------|---------------|-----|--|--------------|
| 10/2 |) पुरीचवत्याश्चितेरुपस्थानम् | 1 8 | १३३ | ९९ प्रथमपञ्जमित्योः पादमात्रप्रमाः | |
| 96 | : उपसत्सु चयनपुरीपवपनये | i: | | णाधिकेष्टकानिवृत्तिः। ३० | १३६ |
| | कालविधिः । | | 838 | १०० दशगणेष्टकोपधानानन्तरमधिकेष्ट | |
| ₩9 | र प्रत्यहं सायंकालेऽग्नेः परि | | | कानां भित्त्वोत्त्ररे प्रक्षेपविधिः। ३ | |
| ٠ | ऽश्वप्रणयनम् । | ę | 833 | सप्तदशाच्यायेऽप्रमी कपिडक | |
| 63 | अश्वप्रणयनस्य कालावधि | :1 5 | १३४ | १०१ द्वितीयायां चितावस्विनीष्टकानाः | |
| ८१ | त्र्युपसत्के कतौ प्रथमादि | fa- | | मुपधाने देशविधिः। १ | 238 |
| | तीनां कालविशेषविधिः। | \S | 838 | १०२ तन्नैव वैश्वदेवीदकानासुपधा- | 2.1 |
| 63 | उत्तमायासुपसदि पञ्चगृही | ता. | | ने देशविधिः। ७ | 286 |
| | दिविधिः। | e | 838 | १०३ तबैब प्राणखुदिष्टकानासुपधाने | 744 |
| € 3 | पहुपसत्के कतौ चितीनां | हाल:।१० | १३४ | देशविधिः। १२ | 23.0 |
| ૬૪ | हादशोपसत्के ऋतौ चिति | i • " | | १०४ तत्रैव चितौ सपस्येष्टकानासुप- | 14 |
| | पुरीषकालविधिः । | ११ | १३४ | धाने देशविधिः। १३ | 930 |
| 64 | एकाद्ववासुपलदि विकण्य | दि। १२ | १३४ | १०५ अध्वन्युपघाने मन्त्रविधिः । १५ | 230 |
| 6 | चतुर्मासोपसरके कतौ चि | तेषु- | | १०६ तत्रैव वितो प्रथमवितिगतनः | 2.5 |
| 7,1 | रीषकाळविधिः । | १३ | १३५ | त्रव्येष्टकयोस्परि ऋतव्येष्टकयोः | |
| 619 | त्रिसम्बत्सरोपसत्के कतौ | | | | १३७ |
| | चितिपुरीषकालविधिः । | 88 | १३६ | रुप्धानम् । १६ १०७ वैश्वदेवीष्टकानामुप्याने मन्त्र- | |
| 66 | सम्बत्सरोपसत्के कतौ चि | ति • | | विधिः । १०८ प्राणश्रुदिष्टकानामुपद्याने | १३८ |
| | पुरीवकालविधिः। | १५ | १३५ | १०८ प्राणभाद्षकानासुपधान | |
| 68 | सम्बत्सरोपसत्के कतौ पञ्च | मीचि- | | मन्त्रविधिः। २० | १३८ |
| | तौ विराजासपत्नेष्टकोपधाः | | १३५ | १०९ अवस्येष्टकोपधानमनत्रविधिः। २१ | |
| १० | ततः प्रत्यहमेकैकस्याः स्तो | मभा • | | ११० वयस्येष्टकोपधानिबिधः। २२ | 838 |
| j. | गेष्टकाया उपधानं मासपर्यः | | | १११ द्वितीयायां चिता लोकम्पृणे- | |
| 68 | ततो दशसमासे पुरीषावाप | ः। १८ | १३९ | ष्टकोपधानदेशित्रिधः। ू २५ | |
| 85 | प्काद्धे सकले मासि नाक | सत्प्र• | | सप्तद्याच्याये नवमी करिडक | T- |
| | मृतिकोकम् गुणोपधानान्तव | हर्भ- | | ११२ तृतीयायां चित्ते स्वयमातृण्णे- | |
| | विधिः। | १९ | १३५ | ष्टकोपवानमन्त्रविधिः। १ | १३९ |
| 93 | ह्राद्शे-मासे पुरीपावापः । | २० | १३५ | ११३ तत्रव । चता पञ्चाद्वयष्टकारः | |
| 68 | अन्तिमदिनद्वये विकण्यवि | (9 2- | | धानमन्त्रविधिः । २ | 680 |
| | गृहीतादी । | २४ | 836 | ११४ प्रथमचितिस्थविश्वज्योतिष | |
| 89 | वतस्यु चितिषु लोकंप्रणेष्टः | FT - | | इष्टकाया उपरि वृतीयवितौ वि | |
| | संख्या। | ३२ | १३५ | इवज्योतिषद्दष्टकाया उप घ। नस्य | |
| 98 | पञ्चम्यां चितौ लोकं १णेष्टक | (ર્નો | | 그리 가입니다. 그 사이 보통 이 무슨 사람들이 생물을 가고 있는 사람들이 없었다. | 880 |
| | र्स्क्या । | રફ | 656 | | 88 3 |
| 60 | पद्मम्यां चितौ लोकम्प्रणेष्ठः | हानी | | ११६ प्राणश्चिद्धकोपघानविधिः। ७ | The state of |
| | देशविशेषविधिः। | २५ | १३५ | | १४१ |
| 84 | सर्वासु चितिषु खोकम् १णान | i ਜ਼ੰ• | | | 888 |
| | क्यान्तरविधिः । | ₹ . | १३६ | ११९ लोकम्युगेष्टकोपधानविधिः। १५ | \$8₹ |
| | का० वि०३ | | | | |
| | | | | | garage. |

| सं• सु• पुः | ्र इंट |
|--|---|
| सतद्शाध्याये दशमी करिडका- | अष्टादशाध्याये द्वितीया करिडका- |
| १२० चतुथ्यों वितो जङ्घामात्र्याः | २ चित्याग्निपरिषेकः। १ १६० |
| दीनामुपधानविधिः। १ १४२ | ३ अदि कुम्मे संस्थाप्य तस्य दक्षि- |
| १२१ तश्रव चितौ ऋतन्येष्टक्योरूप- | णस्यां प्रक्षेपः। २ १६० |
| धानविधिः। १६ १४. | ४ व देरभेदने प्रायश्चित्तम्। ६ १६० |
| १२२ तत्रैव चितौ खद्यीगामिष्टकाना- | ५ ट द्वेभेंदो विवक्षितः कुम्भस्य |
| मुपधानविधिः। १७ १४४ | वेशवविचारः। ७ १६० |
| ६२३ तत्रैव चितौ लोकपुणेष्टकोपधा- | ६ अइमन एव भेदनं विवक्षितमिः |
| नविधिः। १८ १४६ | वि विद्यान्तः। ८ १६१ |
| सतदशाध्याये एकादशी करिडका- | ७ ततिश्रिति स्पृङ्घा मन्त्रपाठः । १० १६१ |
| १२४ पत्रम्यां चितावसपत्नानामुप- | ८ ततो मण्ड्कादियुक्तवेणुनाऽग्नि |
| धानविधिः। ११४५ | विकर्षणम्। ११ १६१ ९ वेणोस्टकरे प्रक्षेपः। १४ १६२ |
| १२५ तम्रेव चितौ विराजामिष्टका | ९ वेणोस्टकरे प्रक्षेपः । १४ १६२ |
| नामपधानविधिः। ६ १४६ | श्रष्टादशाध्याये तृतीया किएडका- |
| नामुपधानविधिः। ५१४६ १२६ तत्रैव चितौ स्तोमभागेष्टकोः पधानविधिः। ९१४६ | १० तवो हिङ्कारपूर्वकं सामगानम् । १ १६२ |
| े पधानविधिः। ९ १४६ | ११ होमार्थ गृहीते आज्ये हिरण्यश |
| १२७ स्तोभभागेष्टकासु प्रशेषा- | कलपासनम्। ९ १६३ |
| १२७ स्तोभभागेष्टकासु पुरीषा- वपनम् । १२ १४७ | कलपासनम् । ९ १६२ १२ चित्यारोहणम् । १० १६२ १३ ततः पञ्चगृहीतहोमः । ११ १६३ |
| सप्तद्शाध्याय द्वाद्शा काएडका- | १३ ततः पञ्चगृहीतहोमः । ११ १६३ |
| १२८ तम्रेव चितौ नाकसदिएकोपधाः | १४ दम्यादिसमासिककुशैः सपरि |
| नविधिः। १ १४८ १२९ नाकसदिष्टकासु प्ररोषावाय- | श्चिद्दिनप्रोक्षणम् । १२ १६३ |
| १९६ गाकलाद्यकालु दुरायावायः विधिः। २ १४८ | श्चिद्गिनप्रोक्षणम् । १२ १६३ १५ ततश्चितेरवरोहणम् । १३ १६३ |
| विधिः। २ १४८ १३० पञ्चचूडष्टकोपघानविधिः। ३ १४८ | १६ ततः शालायासुरसदं कृत्वाऽग्नौ |
| and a second former of the second sec | परिष्यन्दे वा प्रवर्ग्योत्सादनस् ।१९ १६३ |
| १६१ तज्ञव । पता छन्द्रस्यक्ष्मापः धानविधिः। ६ १४९ १६२ तज्ञेव चितौ ऋतज्येष्टकयोस्पः धानविधिः। २६ १५४ १६६ तज्ञेव चितौ विद्यवस्योतिष इष्ट- | १७ प्रथमप्रवर्गस्य स्वयमातृण्णाः |
| १३२ तज्ञेव चितौ ऋतन्येष्टकयोश्य- | स्प्रष्टस्योत्सादनम् । १६ १६३ |
| धानविधिः। २३ १५४ | १८ ततः पद्माहीताल्यं हत्ता होत. |
| १६३ तत्रैव चितौ विदवज्योतिष इष्ट- | शगृहीतहोमः। १७ १६४ १९ औदुम्बरीसमिदाधानम्। १९ १६४ २० अग्निप्रणयनम्। २० १६४ |
| ુ જાગા જવલાવાનાના ૧૪ (૧૪ | १९ ओवुम्बरीसमिदाधानम् । १९ १६४ |
| १३४ तत्रैव चितौ लोकपृणेष्टकोप- | २० आंग्नप्रणथनम् । २० १६४ |
| घानविधि। ३५ १५४ | रश् प्रातप्रस्थातुकत्काऽध्वयवादाः |
| १३६ विकर्णीस्वयमातृण्णेष्टकयोरः प्रधानविधिः । ३६ १६४ | नां प्रेषः। २१ १६४ |
| | २२ वतः प्रतिप्रस्थात्रादीनां सन |
| १३६ सुचर्णबाकलसहस्रेण चितिप्रो- | यजमानानां चित्ये प्रति गमनस्। २५ १६५ |
| क्षणविधिः २८ १५५ | |
| अष्टादशाध्याये प्रथमा करिडका- | १३ आसीघ्रदक्षिणदेशे पृक्षिपावाः |
| १ शतरुद्धियहोमविधिः। १ १५५ | णोपधानस्। २५.१६५ |
| | २४ सादनसद्दोहस्रनिषेधः। २६ १६६ |

| સં• સ્- પ્ | ्। सं० स्० ५० |
|--|---|
| मधादशाध्याये चतुर्थी कविडका- | अष्टाद्शास्याये नष्टी करिइका- |
| २५ ततः सर्वेषां चित्यारोहणस्। १ १६० | |
| २६ स्वयमातृण्णाया उपरि घारिते | 11 ALTERNATION \$ \$08 |
| अनौ होमः। २ १६० | ९३ दक्षिणाकाले ऽध्वर्धने रथस्याखा |
| २७ अन्नैव पैतुदारवादिसम्भारनि- | । बाच द्रायका ५ ४ ४ ४ ४ |
| वापान्तकर्मानुष्ठानम्। ३ १६६ | ५४ अत्रैांच्छको नवाहुतिहोमः। ६ १७४ |
| २८ स्वयमातृण्णायामग्निनित्रानम् । ४ १६४ | ५५ विष्णयवयनावाधः। ८ १७६ |
| २९ सादनसुददोहसकरणम् । ५ १६३ | तद नाकानालक्षालक्षानाचलक् प्रात्तरन्तु- |
| ३० शामिलीवैकडूती-सक्णेकोदुम्ब | वाकात्प्रागाग्नयाजनस् । १७ १७६ |
| रोलमिधामाधानम्। ६ १६६ | ९७ परिधिसम्ब्यालम्भनोत्तरं य- |
| ३१ कणेकामावे द्विद्रप्ताका प्राह्या । ७ १६६ | रायारायलय द्वरस्ताद्वाननमान |
| ३२ जुवाहुतिपूर्णाहुतिहोमः । 💎 १६६ | यमभ्र |
| ३३ समिदाधानं तिष्ठता कर्तेव्यम् । १० १६७ | ५८ अथवा प्रत्यहमानः प्रायणाय |
| ३४ तत उपविश्वाहतिहोतः। ११ ४६७ | याजनसुद्वनाय साचनस्। १९ १७६ |
| ३५ अत्र पञ्चम्याश्चितेः ससर्वोष- स्थानम् । १२ १६७ | ५९ अध्वरसमिष्टयञ्जःसंज्ञकनवाहु- |
| स्थानस्। १२ १६७ | त्यन्ते समिष्टयजुषोहींमः। २०१४६ |
| ३६ विष्ण्याचयनानन्तरमेव पञ्चस | ६० अनुबन्ध्यपशुपुरोडाशानन्तरं देवसृहविनिर्वापः। २१ १७६ |
| चितेरपस्यानस्। १३ १६७ | दवसृहानानवापः। २१ १७६ |
| ३७ चित्वारन्यभिमञ्जनमैचिक्रकस् । १४ १६७ | ६१ देवसुहविषां देवतानां चविषिः। २२ १७६ |
| ३८ प्रतिचितिस्पर्शे सन्त्रोहः। १९ १६७ | ६२ अन्बन्ध्याहृदयशुलान्ते खुवाः |
| ३९ वैश्वानर-मास्त पुरोडाश- | हुतिहोसः। २३ १७७ ६३ ततश्चित्योपस्थानम्। २४ १७७ |
| ्निर्वापः। १६ १६ ५ | ६३ तताश्रत्यापस्थानम् । २४ १७७ |
| ४० वैदवानर मास्त-पुरोडाशा- | ६४ उदवसानीयान्ते मैत्रावद्ग्णीष्टिः |
| ्विश्रयणप्रकारः। ् १७ १६८ | पयस्याद्रव्यका तुपरगोमिथुनद |
| ४१ वैश्वानर्-मारुत-पुरोडाशहोमा- | क्षिणाका। २५ १७७ ६९ अग्निचितो त्रतनिशेषनिधिः। २६ १७७ |
| साद्वयोः प्रकारः । | ्र जासांचता त्रतावरायाचाचाः । २६ १७३ |
| ४२ तद्दन्ते मन्त्रपाठः । २५ १६९ | ६६ नतानां कालनियमः । ३१ १७७ ६७ चित्याशक्तौ स्वयमातृण्णावि- |
| अष्टादशाध्याये पञ्चमी करिडका- | |
| ४३ वलोर्घाराहोमः । १ १६९ | श्वन्योतिऋतन्यान्यतमोपधानम्३४ १७६ |
| ५५ वसोधांगहोसानस्तर्गस्ववा- | ६८ चित्युपधानम् । ३६ १७८ ६९ चितेश्रयनाभावो वा । ३६ १७८ |
| सनस् । ३ १७० | |
| ४४ वसोघांराह्योमानन्तरं सुक्या- सनम् । २ १७० ४५ पार्थाहुतिह्योमः । ३ १७० | एकोनविरोऽध्याये प्रथमा करिङ्का- |
| ४६ बाज्यपेयिकवाजप्रसवीयहोसः। ४ १०० | १ सौत्रामणीयागेऽधिकारनिरूपणम् । १ १७९ |
| ४७ आग्निकवाजप्रसवीयहोमः। ५ १७० | २ सोत्रामणी त्रिपश्चकर्मनामवेयम् । १ १७९ |
| ४८ ततो यजमानामिषेकप्रकारविधिः।६ १०० | ३ सौत्रामण्या नैसित्तिकस्वमपि । २ १७९ |
| ४९ ततश्चमसप्रासनपूर्वकपार्थाहुति- | ४ सीत्रामण्याः पूर्वमादित्यचर्वेतु- |
| | ष्टानम् । |
| ५० ततो राष्ट्रश्रद्धामः । १६ १७२ | |
| ५१ स्थशिरसि पञ्चगृहोतहोमः । 🛛 १७३ 🖡 | वाऽतुष्टानम्। ६ १८१ |
| 法帐户 医眼性结束体的 经经验的经验 电影 化二氯甲酚 计多数数据 计分配数据 医克克氏管 医克拉氏管 化自动电影电影器 | 编设设计设计数据 A. |

| सं० | सु०पृ | ं एं | सू॰ ए॰ |
|--|-------------|---|-------------------|
| ६ आदित्यचस्याक्षणा घेतुः। | C 868 | | २१ १८९ |
| ७ तत्र पूर्वचरोवेत्सो दक्षिणा। | 9 868 | ३६ पयोगहसुराग्रहग्रहणे व्यत्या | नः |
| ८ उत्तरचरोश्च गौः। | १० १८३ | क्रमो वा । | 33 9ea |
| ९ आदित्येष्ट्यनन्तरमाह्यनीयस | बि • | ३६ सुराग्हेषु वृकादिलोमप्रक्षेपः | । २३ १९० |
| श्रयाभ्याधानम् । | ११ १८ | ३७ पयोशहसुरागहोपस्थानम्। | २५ १९० |
| १० सत्यभाषणत्रतिविधः। | १२ १८३ | ३८ अन्तःपात्यस्थितयज्ञमानवा | |
| ११ प्रत्यहमग्निहोत्रहुतरोषभक्षण | 1. | वनस्। | २७ १९० |
| विधिः। | १३ १८३ | ३९ अध्वर्युप्रेषितयजमानकर्वकार् | रेन्- |
| विघिः । १२ सोत्रामणीकतुत्रतुद्दिनसाध्यः | 1 88 805 | प्रक्षणस् । | २८ १९१ |
| १३ स्वयमग्मिहोत्रानुष्ठानम् । | | ४० पर्याप्रहसुरामहसम्मरानम् । | 36 866 |
| १४ ऐन्द्रपश्चादित्यववं नन्तरमे न्द्र | į. | रकोनविंगेऽध्याये तृतीया व | तिएडका— |
| पद्यविधि । | १६ १८२ | ४१ सम्बातिकामा | 2 000 |
| १५ आ।दस्यचरोः पू ै चेन्द्रपश्वनु | [· | ४१ अभ्यादिकरणम् । ४२ पश्चत्रयाळम्भविधिः । | 3 22 |
| शानम् । | १७ १८३ | ४३ त्रयाणामपि पशुनामेक एव | \$ 525 |
| १६ सुरानिमीणार्थं सत्साधनद्रव्य | | सहते रातः। | C 000 |
| ऋयविधिः। | १८ १८३ | मध्ये यूवः । ४४ त्रिपशुयूग्दक्षिणोत्तरयोरैन्द्रव | |
| १७ सुरानिमाणप्रकारः। | २० १८३ | को नगर्अनुशादावाणा तस्यारस्य | ! " |
| १८ दिनन्नयेण सुरानिष्पादनम् । | २२ १८४ | 26 annicajames (| . 8.6.8 |
| पकोनविशेऽध्याये द्वितीया क | | वीव त्यूपी । ४९ वपामार्जनोत्तरमध्यर्थुकर्नुकप्रैवे विशेषः । ४६ ततो प्रहृहोमः । | |
| | | ४६ ततो ग्रहरोगः । | \$ 848 |
| १९ सौत्रामण्यां वेदिद्वयकरणम् । | | | COL CAR |
| २० तत्पश्चात्खरह्रयकरणम् । | ३ १८६ | ४८ केवांचिन्यने समानगणा | १४ १९२ |
| २१ चतुर्थदिने प्रकृताविव प्रणयनी | | ४८ केषांचिन्मते सुरावहाणामवन्ना णमात्रम् । | १९ १९३ |
| याघानादि-भाज्यासादनान्त | | ४९ अथवा परिकीतराजन्यवैदयान | |
| मोनुष्ठानम्। | ४ १८६ | तरकर्टकं सत्पानस्। | 3 n n n n |
| २२ उत्तरस्यां वेषां सौरकर्रण एवा | | ९० अथवा परिधिवहिमांगस्थाऽऽह | |
| नुष्टानविधिः । | ६ १८६ | वनीयाङ्गारेषु होमः। | 30 002 |
| १६ सुरापावनप्रकारः । | ६ १८७ | ५१ अङ्गाराणां सौरगहप्रक्षालनोद- | 16 625 |
| ९४ तुराबा भहणावा धः । | क ई ८७ | केनासेकः। | 33 865 |
| २९ पयः पावनावादः। | १० १८८ | केनासेकः। १२ ततो मन्त्रज्ञपः। | 22 000 |
| २६ पयोग्रहाणां ग्रहणविष्यः। | 228 88 | १३ ततो यजमानस्याज्यहोमः । | ₹ ₹ ₹ ₹ \$ F |
| २७ दक्षिणोत्तरखरबोः क्रमेण सुराग | ۥ | ५४ ततोऽध्वयीः पद्योहोसः । | 40 528 |
| पयोगहाणां सादनविधिः । | 88 866 | ५५ हुतशेषपयसो यजमानकर्तृक्रमः | 42 528 |
| २८ आस्विनपयोग्रहणपात्रविधिः। | 29 866 | CIT CITY I | ३० १९४ |
| २९ तम चूर्णप्रक्षेपः । | १६ १८९ | ५६ तत्रश्चात्वाले सर्वेषां मार्जनम् । | 38 868 |
| ३० सारस्वतप्योग्रहपात्रविधिः। | १७ १८९ | पकोनविंशेऽध्याये चतुर्थी कि | esi— |
| ३१ तत्रं चूर्णप्रक्षेयः। | १८ १८९ | CO DATES | 新作用部门目示的证据 |
| ३२ ऐन्द्रपयोग्रहपात्रविधिः। | १९ १८९ | ६७ पञ्चपुरोडाशनिवांपविधिः। | ११९ ५ |
| ्र३३ तत्र चूर्णप्रक्षेपः । | २० १८९ | ९८ प्ररोबाबासादनानस्तरमाज्यभाः गयागः। | |
| | | | 3 884 |

| सं॰ १ | ्र सं |
|--|--|
| ५९ अथवा ग्रह्यागात्पूर्वमेवाऽऽ- | ८३ अवस्थरनानानन्तरं जले एव |
| ज्यसागयागः। ४ १९० | कर्मकालचतवासःप्रक्षेपः । १६ २०१ |
| ६० पशुरोडाशान्ते त्रयस्त्रिशहड | ८४ ततः सोमबदुरक्रमणागमने । १७ २०१ |
| वादक्षिणादानम्। ५ १९५ | ८५ आहवनीयोपस्थानम् । १८ २०१ |
| ६१ पद्यगणेषु एकाद्शानधर्माणां | ८६ समिद्धोसः। १९ २०१ |
| नियोजनादीनां विधिः। ६ १९६ | ८० ततः पयस्येष्टिः । २१ २०१ |
| ६२ शमित्रनुशासनादि-वनस्पस्य- | ८८ ततो वायोधसपद्यः। २२ २०१ |
| न्तकर्मानुष्टानान्ते वैद्योहसयोः | एकोनविंशेऽध्याये पष्टी कराडिका- |
| समप्रविभागेनासन्दीनिधानम् । ७ १९३ | |
| ६३ आसन्द्यां कृष्णाजिनास्तरणम्। ८ १९६ | ८९ सौत्रामण्यामिष्टिपश्नां भिन्न- |
| ६४ तत्र यजनानस्योपवेशनस् । ९ १९६ | तन्त्रता । १२०२ |
| ६९ यजमानवाद्याः समीपे राजतः | ९० सौन्नामण्यां सामिधेनीनां सा सद्दयस् । २ २०२ |
| सौवंगीमरणनिधानम्। १० १९६ | ९१ वार्त्रहनावाज्यसायो । ३ २०२ |
| ६६ द्वात्रिंशद्वसायहहोसः। १२ १९८ | ९२ पशुष्वामिक्षायां च वृधन्वन्तौ |
| ६७ शेषस्य वैतसपात्रे नयनम् । १३ १९७ | आज्यभागी। ४ २०२ |
| ६८ ततो यजमानाभिषेकः । १४ १९७ | ९३ इष्टिषु उपांछ देवता । ६ २०३ |
| ६९ अध्वयीर्यजमानालम्भविधिः । १९ १९८ | ९४ इष्टिषु स्विष्ट इत्सम्बन्धिस्यो |
| ७० यजमानस्य सुरलोकादानामाः | याज्यानुवाक्ये। ७२०३ |
| हानम्। २०१९८ | |
| ७१ सुरुलोकादीनां यजमानमृडर्वसु | तोयः प्रयाजः। ८ २०३ |
| त्थाप्य क्रुटणाजिने स्थापनविधिः। २१ १९ | |
| ७२ त्रयिवंशावसायहयहणम् । २४ १९९ | नपाद्वा द्वितीयः प्रयाजः । ९ २०३ |
| ७३ आज्यग्रहमहणम् । २५ १९९ | |
| एकोनविंशेऽम्याये पञ्चमी करिडका- | |
| | ्रवुवाक्यामन्त्रविशेषविधिः। १० २०३ |
| ७४ ब्रह्मकर्तृकः सामगानप्रेयः । १ १९९ | ९८ सौत्रामण्यां शस्त्रमन्त्राः । २६ २०६ |
| ७५ उद्गातृकर्तकसामगानम्। २ १९९ | |
| ७६ सर्वेकर्तृकस्तत्त्तिधनपाटः । ३ १९९ | पकोनविंदोऽध्याये सप्तमी कणिडका— |
| ७७ प्रतिगरार्थं होतुरध्वरवेंग्रे उप- | ९९ महस्य याज्यातुवाक्यामनत्र- |
| वेशनस्। ७१९९ | |
| ७८ ब्रह्मणः श्ख्रपाठान्ते त्रयश्चिंशः | १०० अञ्चाचनप्रेषयाज्यामन्त्रीतः |
| वसायहहोमः। ८ १९९ | 그렇게 하는 사람들이 하는 것이 얼마 없는 것이 되었다. 그 사람들은 사람들은 사람들은 사람들이 없는 것이 없었다. |
| ७९ तच्छेषभद्दणविधिः। ९ २०० | १०१ वारणपुरोडासयाज्यानुवाक्याः |
| ८० स्विष्टकृतप्रसृति बद्धिहोमान्तेऽवसुः | सन्त्रविधिः। ७ २०८ |
| थवद्गमनस् । ११ २०० | १०२ अग्नीवरणयाज्यास्यान |
| ८१ शुलाभिमन्त्रणादि–अवस्थे- | मन्त्रविधिः। ८२०८ |
| ष्ट्यन्ते जले मासरञ्जरभञ्जावन- | १०३ आदित्यादीनी याज्यानुवाक्या- |
| निमल्जने। १२ २०० | सन्त्रविधिः। १२०९ |
| ८२ वतो हेच्ये प्रति अभिषेकः। १५ २०० | १०४ तत्र याज्यायां विशेषः । १२ २०९ |
| in acceptant the company of the comp | |

| ci o | ল্লু ত্বত | / स्तै० | বুত | Zo. |
|--|-----------------|---|------------|------------|
| १०९ वायोधसस्य प्रयाजयाज्या । | १३ २०१ | २८ ईशान्यामदवस्य चतुर्विश्वाधि- | - | |
| १०६ तस्यैव वपापुरोडाशपसूनां या | | कवयसामदवानां शतमध्ये | | |
| ज्यानुवाक्याः। | १४ २०९ | उत्सर्जनम् । | ę | २१७ |
| विंदोऽच्याये प्रथमा कण्डि | ₹ 1 | | ? | इ १ क |
| १ अध्वमेधे राज्ञ एवाधिकारः। | ्र इर् | ३० तेषां कर्तव्योपदेशः। | ĘĘ | <i>३१७</i> |
| २ अश्वमेघारम्भकालविधिः । | व ब्रुट | ३१ कर्वेच्यसमाप्त्या तेवां वरदानम्। | g la | २१८ |
| ३ ब्रह्मोद्नपाकविधिः । | 8 ५१० | | 16 | २१८ |
| ४ आद्यर्तिवरभ्यो ब्रह्मौदनदानं द | | ३३ तत्राध्वयुँयजमानयोः कृवीपर्युः | | |
| क्षिणादानञ्च। | 9 180 | प्वेशः फळकयोवी । | 9 | ३१६ |
| क्षिणादानञ्च । ५ अखरशनाञ्चनम् । | @ 5 6 5 | ३४ होत्वद्योद्गातॄणां सद्वासनो- | | |
| ६ यजमानकण्ठे निष्कमोकः। | ९ २११ | पशुवेसः । | 18 | २१८ |
| ७ दक्षिणादानपर्यन्तं यजमानस्य | | ३५ होतुः पारिन्छवशस्त्रशंसनम् । ३ | , 2 | २१८ |
| वाग्यमः। | १० २११ | विशेऽध्याये तृतीया करिड | ব্ | I — |
| ८ सानवरोणां पत्नोनां यजमानस- | | ३६ प्रतिगरः, वीणागणगिनां राजः | | |
| मीपे थागमनम् । | १२ २१२ | र्षितुच्यतया यजमानस्तुतिप्रैयः। | 3 | 300 |
| मीपे आगमनम् । ९ पत्नीविश्वेषेणाजुवरीविश्वेषविधिः। | १३ २१२ | ३७ प्रक्रमहोम: । | 2 | 9 8 B |
| ०० वावानायाः वस्त्या सङ्घेयनः | 120 | ३७ प्रक्रमहोमः । ३८ धतिहोमः । | ψ. Ω. | 556 |
| सानस्य शयनम् । | १७ २१३ | ३९ वावातासंवेशनादिकस्य प्रत्यह- | • | 18.2 |
| सानस्य शयनम् । ११ इतरासां पत्नीनां यजमानसमी तत्रेव शयनम् । १२ प्रातः पूर्णाहुत्यन्ते ब्रह्मणे दक्षि- णादानम् । | | मनुष्टाने संवत्सरादिकालमर्यादा। | 6 : | 996 |
| तत्रव शयनम् । | १८ ४१३ | ४० बाह्मणक्षत्रियाभ्यां मृतिदानम् । | | |
| १२ प्रातः पूणाहुत्यन्त ब्रह्मण दाक्ष- | 96 995 | ४१ दोक्षणोयापर्यन्तं राजिषतुल्य- | | ,,,, |
| १३ अध्वर्धवे च निष्कामरणदानम्। | 30 523 | त्वेन यजमानस्तुत्यनुवृत्तिः। | 6 2 | 196 |
| ९५ पश्चिक्तरिष्टिः । | 48 883 | ४२ ततोऽग्नोषोमोयसमासिपर्यन्तं | | |
| 그는 🥊 한 것 같니까요! 이렇게 하나요? 그는 것 같은 그는 그가 되어 그 없다. | રે રેટ્ટ | देवतुल्यतया यजमानस्तुतिः। | } 2 | 186 |
| | 43 483 | ४३ सवनीयपश्वाद्यन्तयोः प्रजाप- | | |
| | 8 4 2 3 | वितुल्यतया यजमानस्तुतिः। १० | , 2 | २० |
| १८ अञ्चलन्धनविधिः । | २५ २१३ | ४४ अववस्य रोगादिनिमित्तकानुः | | |
| 그 후 그림, 2월 - 그림, 그림에서 그렇다. 그렇다 그 그리고 그 그 그 | ३५ २१५ | ष्ठानविधिः। १ः | (2 | ₹0 |
| २० सुस्रुलेन शुनो मारणविधिः। | ३६ २१५ | ४५ अक्वादिनाशे त्रिह्दविष्केष्टिः। १८ | ۶ ۶ | २१ |
| विशेऽध्याये द्वितीया करिड | 51— | ४६ अदवस्य वडवासंगमे विधानम्।२० | ર | ₹ ૄ |
| | | ४७ अञ्चल्य मरणाद्शीन्योरदवा- | | |
| | १ २१५ | न्तररशनादानादिविधिः । २१ | 3 | २१ |
| १२ मृतस्य शुनोऽखाथस्ताङ्जले प्लावनम् । | २ २१६ | विशेऽब्याये चतुर्थी करिडका | | |
| २३ ततो दशाहुतिहोमः । | ३ ३१५ | ४८ पत्रवालम्भनादि अध्वरदीक्षणीः | | |
| २४ सावित्रय इष्टयः । | ६ २१५ | यान्तं ऋत्वौद्गसणहोसानुष्ठानस्। | . 2: | . |
| २५ ब्राह्मणकृतयजमानस्तवविधिः । | ७ २१६ | 하일하실 호텔(1927년) 경향 등에 출경되어 🛰 하는 경기 모양을 하는 그는 그는 사람들은 점점 하였다. | 2. | 21.4 |
| २६ क्षत्रियकृतयजमानस्त वविधिः। | ८ २१६ | ५० ससाहमावर्तमानदीक्षणीया सु | | |
| २७ अध्वर्युयज्ञमानयोरस्वकणं जवः। | | | Ą. | |
| | | | 10.0 | ** |

| พ้อ | <i>सॅ</i> ० इ | ् । सं० | 37a 57a |
|--|--------------------------------|---|--|
| ११ ससम्यां विशेषः । | & 55 | | સું∘ વૃ∘ ≅. |
| ५२ आवहान्मन्त्रजपविधिः। | ୨୨ ବ୍ୟ | | (2 226 |
| ५३ अववमेघे दीक्षोपसत्संख्या | । १३ २२१ | Cio. | פכב טיי וובו |
| 🕆 ५४ देवयजने विशेषविधिः। | १४ २२१ | ८० अद्भारतम् । | १६ दरह |
| ५५ चयनक्षेत्रमानम्। | १ ૧ રં ચ્ય | | יייי אין |
| ९६ अइवमेधे यूर्संख्या। | 98 22 9 | मणीनां बन्धनम् । | 05 954 a |
| ९७ प्रतियुपमग्नीपोमीयानां ह | PT - | ८२ असं प्रति राजिहुतशेषसम् | MH186330 |
| नामालस्मः । | वश् वर्ष | | d:186 550 |
| ९८ सवनीयस्थान्होऽरिनष्टोमसं | | ८४ बह्महोत्रोः प्रश्नपत्युत्तरे । | 20 230 |
| स्थत्वम् । | | विशेंऽध्याये वछी काणि | the second secon |
| १९ सवनीयेऽहनि एकाद्शिनीह | य- | · · | |
| पश्वतुष्टान्म् । | | ८९ अग्निमन्यनादिप्राकृतकर्मानु | |
| ६० तत्र मध्यमे यूपे आग्नेयपञ् | Eq. | ष्टानविधिः। | १ २३१ |
| नियोजनम् । | २४ २२६ | ६६ सम्मिष्ठे यूपेऽश्वतूपरमवय | |
| ६१ उत्तरदिनह्ये चैकादशिन्योर | • | दत्यनस्। | २ २३१ |
| नुषानम् । | २५ २२६ | ८० अखादीनां देवताः। | ३ २३१ |
| ६२ तत्र पश्चो बहुवर्णा गावः। | वह रहक | ८८ अइने पर्यक्षयानां बन्धनम्। | ८ ४३१ |
| - ६३ विजयकाले लब्धद्रव्यस्य हो | MI- | ८९ विश्वतियूपेष्वितरपश्नां बन्ध | |
| दीनां दक्षिणात्वकथनम् । | २७ २२६ | ९० अइनप्रोक्षणस् । | ७ २३२ |
| ६४ तत्र यथाविभागं होतृगणीयः | 1 24- | ९१ अध्यसुखे प्रोक्षणीयारणस् । | ८ २३२ |
| त्रयदक्षिणा । | २८ वरह | ९२ पर्यग्निक्कतानां कपिञ्चलादी | |
| द्रभ यक्ष्यभ्रह्हासम्साः। | २९ ३२६ | नामुत्समेः। | ९ २३२ |
| ६६ वसतीवरिग्रहण समासेक पा | ₹• | ९३ अधस्य संज्ञपनम्। | |
| हाराः। | \$6 558 | ९४ परिपशन्याहुतिहोसः। | ११ २३२ |
| ६७ साज्यादीनी क्रमेण सर्वरात्र | | ९५ संज्ञितासस्य पटनीमिः परि | |
| होमविधिः। | इव ववह | क्रमणम् । | १२ २३३ |
| विशेऽध्याये पञ्चमी करि | 341- | ९६ तस्याधस्य समीपे परन्याः श | A Company of the Comp |
| ६८ द्वितीयमहरूकध्यसंस्थाकम् । | १ २२८ | यनम् । | १४ २३६ |
| ६९ महिमग्रहद्वयग्रहणम् । | २ २२८ | ९७ सस्पतन्योर्वस्रेणाच्छाद्नम् । | १५ २३३ |
| ७० अश्वालम्भः । | ३ २२८ ४ २२८ | ९८ अखिशहनस्य पटनीयोनिस्प ज्ञेनस् । | |
| ७१ तस्य वडवादशैनम् । | | शन्स्। ९९ सृष्टामिमन्त्रणम्। | १६ २३६ |
| ०२ बहिष्पवमानस्तोन्नम्। | ५ १२८ | १०० अध्वय्यादीनां कुमारीपतन्थाः | |
| ७३ उद्गातॄणां स्तुत्यर्थदक्षिणादाः | तम्।६ २२८ | ^~ | |
| १४ बहिष्पवमानदेशस्या द्वेना- | | १०१ पत्न्था उत्थापनम् । | १८ ४३४ |
| कामणस् । | \$ 55.6 | 사용하다 선생님들이 되었다. 그 사람들은 사람들이 보고 되었다. 그는 사람들이 살아 되었다. | २१ २३४ |
| ५ ऐकादक्षिनानामक्वातां चोपाः | 81 (2010) A. 2016, FF (1) | विशेऽध्याये सतमी कण्डि | តτ – |
| करणम् । | ८ २२६ | १०२ अधस्य सूचीमिस्त्वची जर्ज- | |
| ण्६ अस्वस्तुतिः । | ९ २२९ | रीकरणम् । | १ १३४ |
| ७७ अभ्वानां रथे बन्धनम् । | १० वर९ | १०३ अन्त्रस्य सौवर्णोऽसिः । | ३ २३५ |
| er all malla et malla fra tre tre medical fra callent a tre fra de tre fra tre fra tre fra tre fra fra fra fra | are proceeding the contract of | r | AND THE STATE OF T |

| सङ्ख्या सूत्रम् पृष्ठम | । सङ्ख्या सूत्रम् पृष्ठम् |
|---|---|
| १०४ पर्वद्भयाणां स्त्रैहोऽसिः । ४ २३६ | १३० अनुचरीणामृत्विगम्यो दक्षि- |
| १०५ इतरेषामायसः। ५ २३५ | णात्वेन दानम्। २४ २४९ |
| १०६ अववस्य विवासनम्। ६ २३५ | १३१ द्वादकाहमार्ग्यस्य पुरोडा- |
| १०७ असस्य वपार्ध मेद उद्धरणम् । ७ २३६ | |
| १०८ असस्य लोहितस्रपणस्। ८ २३६ | . 25 |
| १०९ प्राजापत्यपश्नां वपापश्चहो- | १३३ प्रत्युतु चण्णां चण्णां यश्ना- |
| मविधिः। ९२३६ | - * |
| ११० अध्वय्योदीनां परस्परं संवादः।१० २३६ | |
| १९१ महिमगहप्रचारः । १६ २३७ | |
| ११२ तवो वपाप्रचारः । १८ २३७ | १ ब्राह्मणक्षत्रिययोः पुरुषमेघः । १२४७ |
| ११३ वपान्ते द्वितीयमहिसपह- | २ पुरुषमेचे सौत्यःनामन्हां संस्थाः। ३ २४७ |
| प्रचारः । २६ २४० | ३ प्रत्यहं संस्थासु यूपैकादिशनी |
| ११४ शूलेंडेखरोवश्रपणम्। २७ २४० | पश्चेकादशिमी च। ४ २४७ |
| विंशेऽध्यायेऽष्टमी करिडका— | ४ अतिरात्रसंस्थाके तृतीयेऽद्धि |
| - 10 Berger - | विशेषः। ६ २४७ |
| ११५ असलोहिताबदानम्। १ २४० | ५ ऐकादशिनोपा हरणानन्तरं ब्राह्म- |
| ११६ प्राजापत्यानामवदानम्। २ २४० | णादीनासुपाकरणस्। ७ २४८ |
| ११७ शादादिदेवताद्न्ताचश्वाङ्गो- | ६ पशुनां युपेख़ नियोजने विशेषः। ८ २४८ |
| देवीनाज्याहुतिह्यामः। ४ २४१ | ७ नियुक्तानां पश्नां ब्रह्मकर्तृका |
| ११८ ततः स्विष्टकृद्नते छोडितहोमः। ८ २४२ | होतुबद्भिष्द्वतिः। ११ २४९ |
| ११९ तते। द्विपद्राहोमः। ११ २४३ | ८ ब्राह्मणादीनासुत्सर्गः । १२ २४९ |
| १२० सवनीयवृतीयमहस्यातिरात्र- | ९ ब्राह्मणादिदेवताहोसः। १३ २४९ |
| संस्थाकत्वम् । ू १२ २४३ | १० पुरुषमेयदक्षिणा । १४ २४९ |
| १२१ अतिराश्चसंस्थायां सर्वस्तो- | ११ एकादबाानुबन्ध्याः। १६ २४९ |
| मातिरात्रादिविकल्पाः। १३ २४३ | १२ अग्निसमारोपादिकस्। १७ २४९ |
| १२२ अग्निष्ठे यूवे एकादशिनयोराः | वकविंशेऽध्यावे द्वितीया कण्डिका- |
| स्रमानन्तरं प्राजापत्यपशुद्धः | 가는 그 이번, 이 사이를 보고 하는 그 사이가 있는 것은 것 |
| यास्त्रमः। १९२४३ | १३ सर्वमेषस्य द्वारात्रसाध्यता । १ २५० |
| १२३ अवस्थेष्ट्यन्ते जलसझस्य स्- र्थनि होसः। १६ २४४ | १४ सर्वमेथेअनेरेकशतविधत्वम् । ३ २५० |
| 그 사람들이 가는 사람들이 되고 그렇게 되었다. 그 사람들이 되었다는 그 그들이 되었다고 있는 것이다. | १९ सर्वमेघस्याऽध्यसञ्जाहानां संस्थाः । ४ २५० (|
| १२४ अवस्थे बद्धहादीनां स्नानेन | |
| श्रुद्धिः । १७ २४४ १२५ तेषामश्रमेषपुत इत्याख्या । १८ २४४ | १६ पुरुषाणां त्वग्दोमः, पारिशेष्याः |
| | त्स्त्रीर्णा वपाहोमः। ५ २५१ |
| १२६ अश्वमेचे त्रिष्वपि सौत्याहःसु | १७ औष्धिवनस्पतीनां खण्डहोमः ।६ २५१ |
| पृथक् पृथक् अवसृथो वा। १९ २४४ | १८ वपान्तेऽज्ञहोसः। ७ २५१ |
| १२७ प्रत्यहमवसृथपक्षे पूर्वयोरन्होः | १९ महावतस्य स्थाने आसमेधिकं |
| ऋजीषकुम्भस्य सजनान्तकर्मे । २० २४४ | सध्यममहः । ् ९ १५२ |
| १२८ स्नानान्तमेव वा सर्वकर्म। २२ २४५ | २० वाजपेयस्य स्थाने पुरुषमेधस्य |
| ११९ एकविंशतिरनुबन्ध्याः पशवः। २३ २४५ | मध्यमसहः। १० २६२ |
| | 그 가는 사람들은 얼마를 가는 것이 되었다. 그 사람들은 사람들은 사람들은 사람들은 사람들은 그리고 있다. |

| सं० पू | ० सिं० सु० ५० |
|--|--|
| २१ सर्वमेथस्याष्टमनवमयोरन्होः | ४६ अस्थिमिः शरीरं प्रकल्य तन्त्र- |
| संस्थाविधिः । | २ ६वे इष्टकोप्छानम् । ८ ३८० |
| २२ सर्वमेघस्य दशमाहस्य संस्था। १२ २५ | १ ४७ प्रतिदिशं तिस्णामिष्टकानासु |
| २३ सर्वमेघस्य दक्षिणा। १३ २५ | ९ प्रधानसन्तेष । १३६० |
| पक्रविशेऽध्याये तृतीया कण्डिका- | ४८ प्राच्यतिरिक्तदिग्म्यः पुरीषमाः |
| २४ पितृमेधनिरूपणम् । १ २५: २५ पितृमेधकालः । १ २५: | |
| २५ पितुमेधकालः। २ २५ | |
| २६ पितृमेधविधौ कुम्भानां छत्राणां | स्थाने शर्वशेषधानम्। ११ २६० |
| चादानम्। ६ २५ | |
| २७ अस्थनां परिक्रमणम् । ७ २५४ | |
| २८ पितृमेधीयप्रथमस्याह्यो | षेणोचकरणम्। १२ ३६० |
| बह्रबत्बस्। १० २५१ | .) |
| २९ प्रथमेऽहनि सततं नृत्यगीतः | बाह्यमाणं वा पुरीषेणोच्च- |
| वादित्रविधिः। ११ २५४ | करणस् । १३ ३६० |
| ३० अस्थिकुम्भायान्नोपहारः । १२ २५४ | |
| ३१ उपसि अस्थिकुम्भं गृहीत्वा | पुरीषेणोचकरणम्। १५ २६० |
| दक्षिणदिग्गमनम्। १३ २५६ | |
| ३९ सूर्योदयात्प्रागस्थिनिवापारम्मः।१४ २५५ | पुरीषेणोचकरणस्। १६ २६० |
| ३३ इमशानदेवाः । १५ २५६ | ५४ शूदस्य पिवृमेधे जानुप्रमाणं |
| ३४ यजमानस्य तजनाघारणमाकः | पुरीवेणोच्चकरणम्। १७ २६० |
| र्मसमाप्ति । २६ २५६ | ५५ सर्वेषामेव वा पितृमेधे अधी- |
| ३९ दमकानपरिमाणादि । २७ २५७ | जानुप्रसाणं पुरोपेणोधकरणस्। १८ २६१ |
| ३९ दमशानपरिमाणादि । २७ २५७ ३६ कोणेषु बाङ्कनिखननम् । २९ २५७ | ५६ अवकाकुशैस्तत्प्रच्छादनम्। १९ १६१ |
| ३७ तन्मध्यतस्तुणादिनिष्कासनेन | ५७ परिकृष्टदेशात्पुरीषाहरणे परि- |
| क्षेत्रशोधनम्। ३२ २५७ | इ.छ्देशे यवानां वापः। २० २६१ |
| ६८ शाख। निरासपूर्वकं परिश्चित्प- | ९८ इमज्ञानदक्षिणदेशे गर्नेद्वयं क्रस्वा |
| रिश्रयणम् । ३३ २५८ | तस्य पूर्वदिनोपक्छष्ठघटस्थ क्षी- |
| ३९ औदुम्बरसीर षड्गवनियोजनम्। ३४ २५८ | रोदकाभ्यां पूरणमुत्तरदेशे च |
| एकविंशाध्याये चतुर्धी करिडका- | गर्तसप्तकं इत्वा केवलोदकेन |
| | तत्पूरणम् । २१ २६१ |
| ४० पारवतु सीतावतुष्ट्यक्रपणम् । १ २५८ | ५९ प्रतिगर्वमदमत्रथप्रक्षेपः । २२ २६१ |
| ४१ मध्येऽपरिमिततहकर्षणम् । ३ २५९ ४२ इष्टदेशे सर्वौषधावापः । ४ २५९ | ६० प्रतिगर्ते ततोऽध्वर्युयजमानाः |
| | मास्यानां गमनम्। २३ २६१ |
| ४३ इप्टरेबस ध्ये पूर्वमानीतानां कु- | ६१ अपासार्गैः स्वश्ररीरशोधनम्। २४ २६१ |
| म्मस्थानामस्थनामानापः। ५ २५९ | ६२ स्नात्वा वस्त्राणि परिधायाः |
| १४ अध्वर्ण्यतिशिक्तेन कुम्भस्य मेदन प्रक्षेपो वा । ६ २५९ | नदुत्पुच्छमन्वारम्य ग्रामे आ- गमनस् । २५,२६१ |
| | |
| १९ क्षेप्तुमें चुर्वी प्रस्थागमने म- स्वजनः। % २०० | ६३ प्रामदमशानमध्ये सर्वादालोष्टः |
| and the compression of the contract of the con | - particular and extra antique as a conservation of the first and all the first antique and antique as an antique as |

का० वि० ध

| | स्० ५० | િ લં ૦ | सू॰ पु॰ |
|---|----------------|---|--------------------------------------|
| ६४ सक्ष्णोरक्षनं कजलेन पादयोश्र | | १९ विजवजिद्बुष्टानानन्तरं संवत्स | ₹- |
| तैलेनाम्यक्षनं विधाय खवेणीः | | पर्यन्तं याचननिषेषः। | |
| पासने वारणपरिचिपरिहिते | | २० दीयमानस्य प्रत्याख्याननिः | |
| एकाहुतिहोमः। | ३७ ३६३ | पेधा। | इव २६८ |
| ६५ ततो यजमानामात्यानां रक्षणः मन्त्रपाठः । | | २१ अभिजिद्धिश्वजित्तोर्थुगएद्तुः ष्टानविधिः । | ३३ २६८ |
| ६६ औपासनस्याद्वारेण निरसनम् | 1 28 283 | २२ तत्र दक्षिणमभिजित उत्तरं वि | |
| ६७ ततो मन्त्रजपः। | ३० २६३ | इवजितो देवयजनम् । | ३५ २६८ |
| ६८ पैत्रमेधिकदक्षिणा । | ३१ २६३ | २३ पत्नीशाला चोत्तरे एव । | |
| द्वाविद्याध्याये प्रथमा कवि | | २४ उभयोरिव यागयोस्त एव पोर | |
| १ एकाह निरूपणम् । | १ २६३ | शस्विजः। | इंड २६९ |
| २ संस्थान्तराविधानेऽग्निष्टोमसं | | २५ बाहिवंदिकानि कर्माणि तन्त्रेण | |
| स्थत्वम् । ३ भूनामक एकाहः चेनुदक्षिणाक | | भवन्ति । | ४० २६९ |
| ३ भुनामक एकाहः घनुदाक्षणाक प्रथमः। | : ३ २६४ | २६ जान्तवंदिककर्मणां पृथगतुः | |
| ४ ज्योतिरमिधो द्वितीयः। | 2 740 U 35U | हानस्। | ४१ २६९ |
| 4 गौस्तृतीय आयुश्चतुर्थं उक्श्य- | | २७ सन्निपातेऽभिजित्कर्मणः पूर्वे- | |
| संस्थावेती । | 6 384 | मनुष्टानं ततो निष्टि जितः। | |
| संस्थादेती । ६ समिजिद्धिस्वजितौ पञ्चमषष्टौ | 1 6 362 | २८ उभयोर्दक्षिणाऽपि पृथगेव गर्वा | |
| ७ गवां सहस्तं दक्षिणा अभिजिति | | सहस्रम् । | ४३ २६९ |
| ८ शताइवं गवां च नवशतं वा | and the second | २९ सर्वेजिन्नामेकाहः सप्तमः, तत्र महावतस्तोत्रं, संवत्सरपर्यन्तं | |
| दक्षिणा। | ८ २६६ | च दीक्षा भवन्ति, ततः सप्ताः | |
| ९ विदवजिति यागे च गोसहस्रं | | हपर्यन्तं तिस्र उपसद्धतस्रो | |
| सर्वस्वं वा दक्षिणा। | | दीक्षाः पद्धपसद एका दीक्षा व | |
| १० तत्र भूमिश्द्रच्येष्ठपुत्रविभागा- | | ततः सुत्या । | ४४ २६९ |
| तिरिक्तं सर्वध्वं दक्षिणा। | १० २६५ | द्वाधिशेऽध्याये द्वितीया कि | of the control of the control of the |
| ११ दक्षिणायां गुद्रदानविकल्पः। | ११ २६६ | ३० सर्वजिदेकाहे चयनकालेऽध्वर्या- | |
| १२ विश्वजिद्दक्षिणादानान्त एव । | | र्गवां शतस्यैकाखरथस्य च | |
| १३ समासिपर्यन्तमेव विश्वजिद्- | | दानविधिः। | १ २७० |
| बुष्टानस् । | १३ २६५ | ३१ तत्रैव महामतस्तोत्रकाले गवां | |
| १४ निरवजिति सर्वस्वं दक्षिणा | | धतस्यैकाश्वरथस्य चोद्रात्रे | |
| सहस्रादधिकमेव । १९ अन्यत्र तु सहस्रान्न्यूनमपि | १६ ६६ | दानस्। | २ २७० 🗝 |
| २५ अन्यत्र तुः सहस्रान्न्यूनमापः सर्वस्वं मवति । | | ३२ तन्नुव शस्त्रकाले होत्रे गवां शतः | |
| सर्वेस्वं मवति । १६ अवभृथोत्तरं यजमानस्य रक्त- | १८ २६६ | स्यैकासस्यस्य च दानम्। | ३ ३५० |
| 6 A | 3 4 3 6 18 | ३३ तत्रैव तद्गन्तरकाले ब्रह्मणे तः | |
| वटलचम्द्रवयायम् । १७ हादशरात्रं क्रमेण औदुम्बरादिः | २० २६७ | हानविधि। | ४ २७० |
| 스님 : 씨 씨는 그는 아름은 사람들이 살아 살아 하다. | 20 2510 | ३४ दक्षिणाकाले सर्वेभ्यः सहस्र- | |
| १८ निषादसमीपवासेऽज्ञनपानयो- | २१-३६७ | गोदानम्। | 6 900 |
| | ३० २६८ | ३९ सहस्रदक्षिणाकसहस्रयागचतुष्टयः निरूपणम् । | ६ ३७० |

| सं॰ सृ॰ पृ | ् सं• सु॰ पु॰ |
|---|---|
| ३६ तम् सर्वज्योतिःसंज्ञकस्य साह- | ५८ शववाहकरथनामिसम्बन्धि- |
| सस्योक्थ्यसंस्था । ७ २७, | व्याद्य प्रस्कात्यम् । ११२७४ |
| ३७ इतरेषां क्रमेण ज्योतिः सर्व- | ९९ हविर्धानमकटह्रयस्थाने रथ- |
| ज्योतिः त्रिरात्रसम्मित इति | ह्रयम् । १२/२७४ |
| विशेषसंज्ञा। ८२७। | ६० वयेनयागे सवनीयपशुळोंहि- |
| ३८ साधस्त्रसंज्ञकेकाहषद्कानिरूपणम् १०१ | तश्जागः। १३ २७४ |
| ३९ तत्र प्रथमे स्वमलकाटोऽसः सेतो | ६१ ऋत्विजां लोडितानि वस्राण्यः |
| दक्षिणा। ११ २०१ ४० तदभाने गौः। १२ २७१ ४१ तस्य चोद्वात्रे दानस्। १३ २७१ ४२ प्राकृतदक्षिणाया निवृत्तिः। १५ २७१ | च्णीपाणि च। १४ २७४ |
| ४० तदभावे गौः। १२ २७१ | ६२ ऋत्विजां यज्ञोपवीतानि नि |
| ४१ तस्य चोद्रात्रे दानस्। १३ २७१ | वीतानि। १५ २७४ |
| ४२ प्राञ्चतदक्षिणाया निवृत्तिः। १५ २७१ | ६३ वर्मकाले ऋत्विष्मिः सल्यं ध- |
| ४३ द्वितीये साचस्के गवां विश्वति- | जुमसा च घारणाय । १६ २७४ |
| रस्य दक्षिणा केवलमस्य एव वा १८ २७१ | ६४ नव नव काणाइयो गावो क्येन- |
| ४४ तृतीयः साचक्कोऽनुक्रीनांमा, | यागे दक्षिणा। १८ २७६ |
| तत्र कर्महीनोऽधिकारी, दक्षि- | ६५ प्रतिपुरुषं नव नव काणाद्यो |
| णा चैकाषयुतगोशतं केवलः | गावो वा दक्षिणा। १९ २४५ |
| सदब एव वा। २०२७२ | ६६ अथवा गर्वा शतमेव काणादिः |
| ४९ चतुर्थः साद्यस्क्रो विश्वजि- च्छित्यः। २१२७२ | लिङ्गितं दक्षिणा। २० २७६ |
| च्छित्यः। २१२७२ | ६० दानकाले गर्ना कण्टके भेदनम् । २१ २७६ |
| ४६ तस्य दक्षिणानिरूपणम्। २२ २७२ | ६८ वयेने ज्वरपीडितगर्वा मध्ये |
| ४७ तत्र पश्चिमदेशे यथाशक्ति कु- | रोगरहितानामेव गवामाज्य- |
| लीनाश्वा दक्षिणा। २३ २७२ | ग्रहणस्। २२ २७५ |
| ४८ पूर्वदेशे यथाशक्ति गजा दक्षिणा २४ २७२ | ६९ तत्तदीयोष्णीषादीमां तत्तदीय- |
| ४९ उदग्देने थथाशक्ति अश्वतरी | स्वामित्वस् । २३ २७६ |
| युक्ता स्था दक्षिणा। २५ २७२ | ७० एकत्रिको नाम पष्टः साधस्त्रः |
| १० सर्वेष्वेव देशेषु वा भेन्वादिस | षद्षष्टिवातदक्षिणाकः। २४ २७६ |
| र्वस्वप्रतिनिधिदैक्षिणा। १६ २७२ | ७१ साधस्क्रैकाहानां सामान्यवर्ध- |
| द्वाविंशेऽध्याये तृतीया किएडका- | निरूपणम्। २५ ३७६ |
| | ७२ तत्र दीक्षादीनां सर्वकर्मणां |
| ११ अभिचारकस्य वयेनी नामा | सद्योतुष्ठानम्। २६ २७६ |
| पद्माः साधस्त्रः । १२७३ | ७३ पदवालम्मोपि सहैत। १७ २७६ |
| १२ दयेनार्थ देशविशेषः । | ७४ अग्नीषोमीयपञ्चस्थाने प्ररोहा- |
| १३ वयेनयागवेदिर्दक्षिणाप्रवणा । ६ २७३ | घातुष्ठानविकल्पः। २८ २७६ |
| ४ अचवाको यूपः इयेनयागस्य, | ०६ वपायागीचरं सुबद्धण्याद्वानः |
| तस्य चार्यं स्फयसङ्गम्। ७२७३ | निवृत्तिः। १९२७६ |
| ५ तिल्वकस्य गिरिमालकस्य वा | ७६ सा ध स्के वेदेः पूर्वस्था होता |
| काष्ट्रस्य यूपः । ८ २७४ | तिष्ठति। ३१ २७६ |
| ५ वर्षेत्र इच्मा बहुद्धालया १ २७४ । ७ वर्षेत्रे शस्मयं व हि ः। १० २७४ । | ७७ कोबापत्यवायेन इतरे ऋत्विजः ३२ २ ० ६ |
| - न्या सारकाल को ड ा १ ६० ४ <i>०</i> ८ | ०८ उत्तरस्यामुदाता । ३३,२७७ |
| an a anna an anna agair, agair agair agair agair agair an ar ar an ar an ar an ar ar ar an ar ar ar ar ar ar a | 6.2. M. 4.4. C. C. C. C. M. 4.4. C. |

| 회문 회사 항공학 회원 이 이 경우 학 | |
|--|--|
| 그는 문화에 가장 없는 사람들이 가장 그들은 사람들이 살아 살아 살아 살아 살아 먹었다. 그 그 사람들이 살아 없는 것이다. | લં• |
| ७९ अपरस्यामध्वयुर्द्क्षिणतो बद्धा ३४ २७७ | होत्रदर्शपूर्णमासदाक्षायणायय- |
| ६० होत्रादीनामञ्चरधौरानयनम् , | णतिरूपणम्। ३२३९ |
| तेषासुपरि इतिषु श्लीरल्थापनम्॥ ३५ २०७ | १०३ सौमिकपञ्चवन्धनिरूपणस् । २३ २९ |
| ८१ अन्येषासृत्विजां रथेषु तत्ततको- | द्वाविशेऽच्यायेऽएमी कण्डिका- |
| शसंख्याकाश्वयोजनम्। ३२ २७७ | १०४ सोमेखु प्रतिकर्म विशेषः। १ २९ |
| ८२ हतिस्थक्षीरसम्बन्ध्येवाज्यस् । ३७ २७७ | १०५ सप्तर्यस्तोमकोपहब्यैकाहः। ७ २९: |
| ८३ साद्यस्त्रेषु त्रिवषंण साण्डेन | १०६ सप्तदशस्तोसक ऋतपेयैकाहः ।१० २९: |
| बुषसेण सोमक्रयणम् । ३८ २७७ | १०७ ससदशस्तोमकबहु हिरण्येका हो |
| ८४ डर्वरा बोद्धादिसस्ययुता भु- | दूणाशापरनामधेयः। २६ २९: |
| मिवॅदिः । ३९ २७७ ८९ उत्तरधेदेश घान्यखळे पांसुखळे | द्वाविशेऽध्याये नवमी करिडका - |
| वारणम् । | १०८ ससद्यस्वोमकवैश्यस्तोमे- |
| ८६ वेष्ट्रसरदेशस्यस्यानां मर्दनम् ।४३ २७८ | काहः। ६ २ ५६ |
| ८ साचस्क्रेषु लाहुला युपस्थाने । ४९ २७८ | १०९ सप्तदशस्तोसकतीवसुदेकादः । १३ २९७ |
| ८८ चषाळस्याने च तृणपूळकः । ४६ २७८ | द्याविशंऽध्याये दशमो किएडका- |
| व्राविशेऽध्वाये चतुर्थां करिडका | ११० द्वन्द्वसोमनिरूपणस्, तत्र |
| ८९ ब्रात्यस्तोमचतुष्टयनिरूपगम् । १ २७१ | राड्विराट्संज्ञावेकाही । ७ २९८ |
| ९० बात्यस्तामन्तु ष्टमानस्पगन् । १ रण्ड ९० बात्यस्तामेषु दक्षिणादिनिस्पा- | १११ औषसद्युनःस्तोमानेकाहौ । १३ २९८ |
| 소스, 소스, 전 100 km : 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 | ११२ चतुष्टोम-षोडियाचतुष्टोमेकाहाँ १८ २९९ |
| in the contract of the contrac | ११३ उजिद् बलमिदेकाही, तयोध |
| | छंहतयोरेव फलम्। २१ २९६ |
| द्वाविशेऽध्याये पञ्चमी कण्डिका- | ११४ अपचितिसंज्ञकावेकाही । २८ ३०० |
| ९२ इन्द्रस्तुदेकाहिनरूपणम्। ३ २८३ | ११५ पक्ष्यप्रिस्तोमज्योत्तिरग्निस्तोः |
| ९३ सूर्यस्तुदेकाह्मिरूपणम्। ३ २८३ | मावेकाहाँ। ३३ ३०१ |
| ९४ वैष्यदेवस्तुदेकाहनिस्पणम् । ३ २८३ | द्वाविशेऽध्याये एकाद्शी कण्डिका- |
| १५ इंप्युयज्ञनामकत्रिवृदेकाहिनेरूपः | ११६ ऋषसगोसवावेकाही ३ ३०१ |
| णस्। ८ २८४ | ११७ महत्स्तोम-ऐन्द्राप्रकुलायावे |
| १६ बृहस्पतिसवित्रवृदेकाह्मनिरूप- णस्। ११ २८४ | काही। ११ ३०२ |
| 이 가는 사람 계획 그 있는 사람들이 있었다. 그는 그 집에 그 경기가 흔들었다. 가는 사람은 | ११८ इन्द्रस्तोम-इन्द्राधिस्तोमावे |
| ९७ इषुत्रिवृदेशाहनिरूपणम्। ३० २८६ | काही। १५ ३०३ |
| हाविशेऽध्याये षष्ठी कण्डिका— | ११९ विधनसंज्ञावेकाह्यै। २१ ३०३ |
| ९८ सर्वस्वारत्रिवृदेकाहृनिरूपणम् । १ २८६ | १२० सन्दंशवज्ञाबेकाही। २५ ३०३ |
| ९९ ऋत्विगपोद्दनीयसंज्ञकैकाहश्रय- | १२१ अहर्गणगतेऽपि षोडश्यादौ |
| निरूपणम् २३ २८९ | ऐकाहिकधर्मांबुष्टानस् । 🔍 ३८ ३०४ |
| १०० वाचस्तोमसंज्ञकेकाह्यनतुष्टय- | १२२ अभिचाराश्चित्रको तत्समाञ्जी |
| निरूपणम् । २६ २८९ | वा ज्योतिष्टोमयागविधिः। ३४ ३०४ |
| हाविशेऽध्याये सप्तमी करिसका- | त्रयोविशाऽध्याये प्रथमा करिङ्का - |
| १०१ सौमिकचातुमांस्यनिरूपणम् । १ २८९ | १ अहीनेषु द्वादशोपसदो मासेन |
| १०२ सौमिकाग्न्याधेयपुनराधेयाप्ति- | च समाहिः। १३०५ |

| सं० ५० | ्र सं |
|--|---|
| २ तत्र हिरात्रायहीनेषु तत्तत्संख्या- | ३१ जामद्रगचत्राशाहानो हितायः।१३ ३०९ |
| क्षुत्यादिगानि उपसदां द्वादश- | ३२ विशिष्ठसंसर्वचतुरात्राहीनस्तु- |
| दिनानि च वर्जेयित्वा घोषेषु दि- | वीयः। १३ ३०९ |
| नेषु दीक्षाः। २ ३०५ | ३३ विश्वामिक्षचत्रात्राहीनश्चतुर्थः। १३ ३०९ |
| ३ हयहादिहादशाहान्तानां ऋतुनाः | ३४ तत्र जामदानचत्रात्रविशेषः |
| महीनसंज्ञा। ३ ३०६ | विधिः। १९ ३०९ |
| ४ नवसंखद्शाहाद्त्रियोद्शानाम- | त्रयोविशाध्याये तृतीया करिडका- |
| तिरात्राणामहीनप्रकृतिकत्वमे | ३९ जामद्रनचतुरात्राहीने आग्नेया |
| काह्यक्रतिकत्वं वा। ४ ६०२ | दि एककपाळादिपुरोडाशहोम• |
| ५ द्वयहादिष्यहीनेषु एकैकवृद्धा | विधिः। १३१० |
| दाशरात्रिकाण्यद्वानि । ५ ३०५ | 3 41 |
| ६ अद्दीनानां दक्षिणानिरूपणम् ६ ३०६ | त्रयोचिंशाध्याये चतुर्थी कगिडका - ३६ देवपद्याहाहोनः प्रथमः । १ ३११ |
| ७ अतिरामनिरूपणम् । १२ ३०७ | ३६ रवपद्याहाहोनः प्रथमः। १ ३११ |
| ८ तत्र प्रथमेषु चतुर्षं पोडशिवहा- | ३७ पञ्चनारदीयपञ्चाहाहीना द्वितीयः ३ ३११ ३८ पञ्चनारदीयेऽहीने विशेषविधानम् ४ ३११ |
| सावः। ९ नवससद्शनामकः प्रथमोऽति- | ३९ पञ्चसारदीयेऽहीने नैसित्तिकवि |
| र चनलवद्शनासकः प्रवसाञ्चल- राज्ञः। १४ ३०७ | धयः। १६ २०२ |
| १० विषुवद्तिरात्रो द्वितीयः १५ ३०७ | ४० वतवत्पञ्चाहाहीनस्तृतीयः । २९ ३१४ |
| ११ गवातिरात्रस्तृतीयः। १६ ३०७ | त्रयोविशाष्याये पञ्चम करिडका- |
| १२ : ायुरतिरात्रश्चतुर्थः । १७ ३०७ | ४१ ऋतुषद्शत्राहीनः प्रथमः २ ३१५ |
| १६ ज्योतिष्टोमातिरात्रः पञ्चमः । १९ ३०७ | ४२ पृष्ठयावलम्बयङ्रान्नाहोनो |
| १४ विश्वनिद्तिरात्रः पष्टः । १९ ३०७ | द्वितीयः। ३ ३१५ |
| १५ त्रिवृद्सिराजः ससमः। १९ ३०७ | ४३ तृतीयः पर्रात्राष्टीनः । ४ ३१५ |
| १६ पञ्चर्वातिराजोऽष्टमः। १९३०७ | ४४ सप्तरात्राहीनाः सप्तकतवस्तन |
| १७ सप्तदशातिरात्रो नवमः । १९ ३०७ | पञ्चम इन्द्रसष्ठाहः सप्तमो जनकः |
| १८ एकविद्यातिरात्रो दशमः। १९ ३०७ | सहरात्रः। ५ ३१५ ४९ अष्टरात्राहीन एकः १५ ३१६ |
| १९ असोयांमातिरात्र एकाद्याः । २० ३०७ | |
| २० अभिजिद्तिरात्रो हाद्शः। २१३०७ | ४६ नवरात्राहीनां प्रथमः। १६ ३१६ ४७ नवरात्राहीनों द्वितीयः। १७ ३१६ |
| २१ सर्वस्तोमातिरात्रखयोदशः । २२ ३०८ | ४६ त्रिककुन्द्शरात्राहोनः प्रथमः । १९ ३१६ |
| त्रयोविशाष्याये हितीया करिडका- | ४९ कौसुरुविन्दद्शरात्राहीनो |
| २२ आङ्गिरसद्विरात्राहीननिरूपणस् । १ ३०८ | ~ ~ |
| २३ चैत्रस्यद्विरात्राहीनिविख्पणस् । ४ ३०८ | द्वितायः। १२ ३१७ ५० पूर्वेत्ररात्राहीनस्तृतीयः। २७ ३१७ |
| २४ कापिवनद्विरात्राहीनिक्षणम्। ७ ३०८ | ५१ छन्दोमद्शरात्राहोनश्रत्थः। ३१ ३१८ |
| २९ गर्गत्रिराहाहोनः प्रथमः ८ ३०८ | ५२ पौण्डरोक्तेकादुशरात्राहोन एकः।३३ ३१८ |
| २: वैदित्ररात्राहीनो हितीयः १० ३०८ | ५३ हादशराम्राहीन एकः। ३७ ३१८ |
| २७ छन्दोमत्रिरात्राद्दीनस्तृतीयः । १० ३०८ | चतुर्विशाष्याये प्रथमा करिडका- |
| २८ अन्तर्वसुत्रिरात्राहीनश्चतुर्थः । ११ ३०८ | अञ्चादशाख्याय अथसा काएडका- १ द्वादशराश्रप्रसृति चत्वारिशद्वा- |
| २९ पराकत्रिरात्राहीनः पद्धमः । १२ ३०९ | |
| ३० अत्रिवतुर्वीरचतुरात्राहीनः | त्रान्तानं रात्रिसत्राणि । १ ३१९ २ सत्रपुरणोपयोगिपरिभाषानि- |
| इंग्लास्य १३ ३०९ | 그는 그는 하는 그 그들은 하다. 한국 등 지내는 하다 얼마나 그 나는 그 때문에 가지 않는데 다른데 없다. |
| [18] MAGNESE (2017년 17] 12 12 12 12 12 12 12 12 12 12 12 12 12 | रूपणम् । ३ ३१९ |

| सं॰ | स्० पृ | ್ರ ಸೆಂ | सु॰ दृ० | |
|------------------------------------|---------------|---|--------------------------|---------------------|
| ३ वयोद्शरात्रसनाणि त्रीणि | । १४ ३२० | ३६ अष्टिमसदात्रसत्रम्। | ३९ ३२८ | |
| ४ चतुर्देशराज्ञसत्रं प्रयमस् । | २० ३२१ | | । ३९ ३२८ | |
| ५ चतुर्वशरात्रसत्रं द्वितीयम् । | २३ ३३३ | | ४० ३३८ | |
| ६ चतुर्देशरात्रसन्नं तृतीयम् । | वद इंदर | | | |
| ७ पञ्चदशराश्रसत्राणि चत्वारि | । २६ ३२२ | | ४२ ३२९ | |
| चतुर्विशाध्याये ब्रितीया | करिडका- | चतुर्विशाध्याये तृतीया | | |
| ८ षोडशरात्रसत्रम् । | १ ३२३ | | | |
| ९ सप्तद्वाराश्रमश्रम् । | १ ३२३ | द्राज्ञसत्रं द्वितीयम् | । सः ५३३० | |
| १० अष्टाद्शरात्रसत्रम् । | १ ३२३ | ४१ आञ्जनाम्यन्जनेदानपञ्च | | |
| ११ एकोनविंशतिरात्रसत्रम् । | १ ३२३ | द्रात्रसत्रं तृतीयम् । | | |
| १२ विश्वतिरात्रसत्रम्। | २ ३२३ | ४२ संवत्सरसम्मितेकान्नपञ्चार | | |
| (३ एकविंशतिरात्रसन्नं प्रथमस् | | दात्रसत्रं चतुर्थम् । | | |
| १४ एकविंशतिरात्रसत्रं हितीयम | । ५ ३२४ | ४३ सवितुः ककुमैकान्नपञ्चाद्याः | | |
| १५ इत आरम्य द्वामिगदान | ıı. | द्रात्रसत्रं पद्धमस् । | and the second second | |
| न्तानि सन्नाणि आवापक्रमे | η | ४४ एकान्नवद्याचदात्रसत्रं पष्ट | | |
| पूरणीयानि । | ११ ३२४ | ४९ एकान्नपञ्चाश्वदात्रसम्र सष्ठ | | i G ^o |
| १६ द्वाविंवातिरात्रसम्रम् । | १२ ३२४ | ४: शतरात्रसत्रहयम्। | 26 333 | |
| १० त्रयोविंशतिरात्रसत्रम् । | | ४७ शतातिरात्रसत्रस्य द्वाद्शाह | | |
| १८ चतुर्विश्वतिरात्रसत्रं प्रथमम् | १४ ३२४ | प्रकृतिकत्वम् । | | |
| १९ संसदचतुर्विशतिरात्रसत्रं द्विर | îì- | १८ शतारिनष्टोमस्य शतोकथ्य | | |
| 44 1 | १९ ३२५ | च द्वादशाहप्रकृतित्वम् । | The same of the same | |
| २० पञ्चविदातिरात्रसत्रम् । | २२ ३२६ | चतुर्विशाष्याये चतुर्थी व | | |
| २१ षड्विशतिरात्रसत्रम् । | २४ इ२६ | ४९ संबत्सररात्रादिसत्राणां गव | | |
| २२ सप्तविश्वाविरात्रसत्रम्। | २५ इ२६ | | a merilian yang di silah | |
| २३ अष्टाविशतिरात्रसत्रम् । | २६ ३२६ | मयनप्रकृतित्वम् । | २ ३३७ | |
| २४ एकोनर्त्रिशहात्रसत्रम्। | ३७ ३२६ | ५० आदित्यानामवनसत्रम् । | ३ ३३७ | |
| २५ त्रिशद्वात्रसम्रम् । | ३७ ३२६ | ५१ अङ्गिरसामयनसञ्जम् । | ११ ३३८ | |
| २६ एकत्रिवादात्रसत्रम् । | ३७ ३२६ | ६३ दिवातवतीस्यनसम्रम् । | १८ ३३९ | |
| २७ द्वात्रिशदात्रसत्रम् । | ३७ ३२६ | ५३ कुण्डपायिनामयनसत्रम् । | २३ ३४० | |
| २८ त्रयखिवादात्रसत्रं प्रथमस् । | २८ ३३७ | १४ सर्पसम्रम् । | ५० ३४४ | |
| २९ त्रपश्चिमद्रात्रसम् द्वितीयस् । | इं१ इर् | चतुर्विशाष्याये पञ्चमी क | ण्डिका- | |
| ३० त्रयधिशदात्रसत्रं तृतीयम् । | इइ ३२७ | ५५ तापश्चितसत्रम् । | १ ३४५ | |
| ३१ चतुस्तिशदात्रमारम्य चत्वारि | য়া- | १६ महातापश्चितसम्रम् । | ६ ३४६ | À |
| द्रात्रान्तानां सत्राणामावापः | | ५७ श्चल्कतापश्चितसम्रम् । | ८ ३४५ | |
| ण पूरणम् । | ३९ ३२८ | ५८ सहस्रशत्रमग्निसत्रम् । | १० ३४६ | |
| ३२ चतुस्त्रिशहात्रसन्नम् । | | ५९ महासन्निन्दपणम् । | १५ ३४६ | |
| ३३ पञ्जित्राद्रात्रसत्रम् । | ३६ ३२८ | ६० द्वादशवत्सरात्रं प्रजापविसन्न | | |
| ३४ षट्कियहात्रसत्रम् । | ३७ ३२८ | ६१ पट्चिशतसंवतसरात्रं शाक्या | | |
| ३९ सप्तत्रिमद्रायसत्रम् । | ३८ ३२८ | मास्यनसत्रस् । | २० ३४७ | |
| | かたにおおびずず 17日日 | 보다는 나무리 이렇게 되었다. 이 사람들은 점점 작가 되었다면서 취임하다. | 25.65 军 27个 支持限 17.69 电机 | |

| સં૦ લુ૦ લુ૦ | ₹0 |
|---|---|
| ६२ शतवत्सररात्रं साध्यानामयन- | पश्चिवंशाध्याये तृतीया करिडका |
| सन्नम्। १३ ३४८ | १२ आह्वनीयानुगमने प्रायक्षित्तम्। १ ३६५ |
| ६३ सहस्रवत्सररात्रं विश्वस्ताम- | १३ गार्हपत्याञ्चममने प्रायधितम् । ४ ३६८ |
| यनसत्रस् ३४ ३४८ | १४ दक्षिणाग्नेरनुगमने प्रायश्चित्तम्।१० ३६९ |
| ६४ सारस्वतसत्रनिरूपणम्। २५ ३४८ | १९ अशान्ते भाहबनीये आन्त्या |
| ६९ प्रथमे सारस्वतसम्रम् । ३१ ३४९ | तदुद्धरणे प्रायश्चित्तम्। ११ ३६९ |
| चतुर्विंशाध्याये पष्टी किएडका— | १६ गृहीतानुगमने प्रायश्चित्तम्। १६ ३७० |
| A | १७ सान्युद्धरणात्पूर्वं सूर्यास्ते |
| A . | प्रायक्षितम्। १७३७० |
| | १८ सरन्युख्रणात्पूर्व सूर्योदये |
| | प्रायश्चित्तम्। २०३७१ |
| चतुर्विंशाध्याये सप्तमी कण्डिका- | १९ उभयाग्न्यनुगमने प्रायश्चित्तम्। २४ ३७१ |
| ६९ तुरायणसन्नम्। १ ३५६ | पञ्जविशाध्याये चतुर्धी कण्डिका- |
| ७० द्वादशाहसन्ननिरूपणम् । १० ३५७ 🏾 | २० उद्स्णकाळात्पृवं मध्यमानः |
| ७१ तत्र भरतद्वादशाहः प्रथमः। ११ ३५७ | |
| ७२ संक्रमद्वादशाहो द्वितीयः। १२ ३५७ | स्याग्नेरप्रादुर्भावे प्रायश्चित्तम् । १ ३७२ २१ अनुदित्तहोमपक्षे होमातपूर्वः |
| ७३ उत्सर्गिणामयनसन्नम् तत्र प्रथमं | र अविदेशकास्त्र हासार्ट्य |
| गवामयनविकल्पाः। २३ ३५९ | सूर्योदये प्रायश्चित्तम् । १० ३७३ २२ हविषां नारो प्रायश्चित्तम् । १३ ३७३ |
| ७४ तापश्चितविकलपः। २८ ३६० | २३ अग्निहोत्रे मार्जारादेसम्यन्तरा- |
| ७५ नारायणपुरुषसञ्जम्। ३५ ३६० | गमने प्रायश्चित्तनिषेषः। १७३७४ |
| पञ्जविशाध्याये प्रथमा करिडका | २४ अग्निहोत्रे अग्न्योर्भध्ये खादि- |
| प्रायश्चित्तनिरूपणम् । | गमने प्रायश्चित्तम्। १८ ३७४ |
| १ तत्र कर्भणो विनाशे तदेव प्रा- | २९ अग्न्योर्भेष्ये रासभगमने प्रायः |
| अधिनानवानाः । | श्चित्तम्। २०३७६ |
| यश्चित्तानुष्टानम् । १३६१ २ अनादिष्टप्रायश्चित्तम् । ४३६२ | २६ दर्शपूर्णमासाध्यणचातुर्मास्येष्टिः |
| ३ ऋग्वेदोक्तकर्मञ्जेषे प्रावश्चित्तम्। ६ ३६२ | कालातिक्रमे प्रायश्चित्तम्। २१३७५ |
| ४ बजुर्वेदोककर्मभ्रेषे प्रायश्चितम्। ६ ३६२ | २७ स्तोत्रशस्त्रविपर्यासे प्रायश्चित्तम् ।२३ ३७५ |
| ९ सामवेदोक्तकमञ्जूषे प्रायश्चित्तम्। ८ ३६२ | २८ पुत्रपौत्रादिमरणे प्रायश्चित्तम् । २४ ३७३ |
| ६ सर्वप्राथश्चित्तम् । १० ३६३ | २९ वत्येऽहनि मेंथुने मांसमक्षणे च |
| ६ सर्वप्रायश्चित्तम् । १० ३६३ ७ स्मार्वेकर्मनाशे प्रायश्चित्तम् । १२ ३६३ | प्रायश्चित्तम्। २७ ३७६ |
| ८ अग्निहोत्राङ्गकर्भनाशे प्राय- | ३० त्रत्येहनि रोदने प्रायश्चिमम् । २८३७६ |
| | ३१ अग्नेसम्यन्तसंसर्गे प्रायश्चित्त |
| | विकल्पः। २९३७६ |
| पञ्चविशाध्याये वितीया कण्डिका | ३२ आहवनीयादीनां परस्परं संसर्गे |
| ९ दर्शपूर्णमासतद्विक्कतिषु हविः | पार्धात्रसम् । ५० ५ ७० |
| स्कन्दने प्रायश्चित्तम्। ७ ३६६ | प्रायश्चित्तम् । ३३ आहवनीयादीनां दावाग्निसंतर्गे |
| १० सोमे हविःस्कन्दे प्रायश्चित्तस् । ८ ३६७ | प्रायश्चित्तम् । ३२ ३७६ |
| ११ आंग्नहोत्रे हविःस्कन्दनादौ | ३४ आहवनीयादीनां वैद्युताधिसंसगे |
| प्रायश्चित्तम् । १० ३६७ | प्रायधित्तम्। ३३ ३७६ |

| सं॰ पु | ∘ સં∘ સ્ૄ યુ |
|---|---|
| ३९ थाह्यनीयादीनां चाण्डाखाञ्चि | पञ्जविंशाष्याये सतमी किएडका- |
| संसर्वे प्रायश्चित्तम्। ३४ ३४ | ६ ५९ सायमग्रिहोत्रहोमानन्तरं प्रात- |
| ३६ भाषांया गर्वा वा यमलजनने | वारकियाजार्थकं अस्थानस्य |
| प्रायश्चित्तम्। ३५३७ | जीवनसंदेहे तदेव प्रातहींमानु- |
| ३७ गृहदाहे प्रायश्चित्तम् । ३७३७ | ्र । । । । । । । । । । । । । । । । । । । |
| ३८ दर्शेष्टरारम्भारन्तरं चन्द्रोदये | ६० प्रातहीमापकवीनन्तरं पुनर्जीवने २ ३८८ |
| प्रायश्चित्तम्। ३७३७ | ६१ पौर्णमासेष्टयनन्तरं दशेष्टिकालः |
| ३९ प्रतिपदि अमेण दशेंष्टगुपक्रमे | पर्यन्तं यज्ञमानस्य जीवनसंदेहे |
| प्रायश्चित्रम्। ४६ ३७० | तहैव दर्शेष्टिविधिः। ४ ३८८ |
| पञ्चविद्याध्याये पञ्चमी करिडका- | ६२ इष्टी हिवरानयनानन्तरं यजमान |
| ४० उद्वासनकाले कपालविनाशे | सरणे। ५ इ८९ |
| प्रायश्चित्तम्। १३८० | |
| ४१ दोहविनारो प्रायश्चित्तस्। २ ३८० | सरणे। ए ३८९ |
| ४२ तुष्टहावःप्रतिपत्तिः । ९ ३८१ | CO DISTRIBUTE DESCRIPTION CO. |
| ४३ हविषोऽन्तरणे प्रायश्चित्तम् । १२ ३८२ | ६९ थारम्भानन्तरं यज्ञमानसरणे । ९३८९ |
| ४४ देवताविषयांसे प्रायधित्तम् । १७ ३८२ | ६६ अधिहोत्रहोसार्थं हिनिषि गृहीते |
| ४५ अवदानयाज्यानुवाक्याविपर्याने | अज्ञानमस्य । ०० ३०० |
| प्रावश्चित्तम् । १९३८३ | यजमानमरणे। ११३९० ६७ आहितीर्व्वदेहिकम्। १२३९० |
| ४६ साज्ये दुष्टे प्रायक्षित्तस् । २० ३८३ | 14 automatical |
| ४७ अधिकहविर्निषीं प्रायश्चिता- | पञ्चिविशाध्यायेऽएमी कण्डिका- |
| मावः। २६ ३८४ | ६८ प्रोवितस्याहितारनेर्भरणश्रवणे |
| ४८ प्रणीतास्कन्दने प्रायश्चित्तम्। २८ ३८४ | होमे विशेषः। १ ३९५ |
| ४९ ख्याच्यादिमेदने प्रायश्चित्तम् । २९ ३८४ | ६९ प्रोविताहिता नेरस्थनामला मे |
| ५० धर्म्यभेदे प्रायश्चित्तम्। ३० ३८४ | पर्णवारविधिः। १४ ३९६ |
| पञ्चविंशाध्याये पृष्ठी करिइका- | ७० आमयणेष्ट्यकरणे प्रायश्चित्तम् । १६ ३९६ |
| ५१ वर्मदु हो गोर्मरणेऽदोहे वा प्रायः क्षित्रम् । १ ३८५ | ७१ पतितादिप्रतिमहे तद्वभक्षणे च |
| वित्रम् । १३८६ | प्रायश्चित्तम्। ६६ २०६ |
| ९२ प्रपदाज्यस्कन्दने प्रायश्चित्तम् । ६ ३८५ ९३ सोममध्ये कस्यचिदण्यद्गस्य तदः | प्रायश्चित्तम् । १६ ३९६ ७२ पुरोडाशदाहे प्रायश्चित्तम् । १८ ३९७ |
| २३ साममन्य कल्याच्द्रज्यञ्जस्य तदः ङ्गस्य वोपगते प्रायश्चित्तम् । ७ ३८५ | |
| | पञ्चित्रशाध्याये नवभी करिएका - |
| ५४ सोमयागे सुत्यासूपपाते प्रायश्चिः त्तम् । ८३८६ | ७३ उपाञ्चतस्य पश्चोः प्र ायने प्राय- |
| तम् । ५ यूपोपरि काकारोहणे प्रायश्चित्तम् ।९ ३८६ | श्चित्तस्। १३९८ |
| ६ सोमयागे प्रवहाज्यस्कृत्द्रने | ०४ प्रयाजेभ्यः पुर्वं वद्यसृतौ प्राय- |
| [편] 보조님은 1 🗪 u 보는 하실하는 사람이 있는 나이들은 내가는 가는 그들은 그리는 하는 🖡 | श्चितम्। ४३९८ |
| प्रायश्चत्तम् । १० ३८६ । ७ वर्मदुहो गोर्ग्याञ्चेण हत्तने प्रायः | ०९ पद्मुहृदयनाचे प्रायश्चित्तम् । १३९९ |
| 조절 🏲 경종 네 시간 사람들은 살이 하는 사람들이 다른 사람들이 모였다. | ण्य संज्ञपनकाले पशुघान्ये प्राय- |
| ाश्चत्तम् । ११ ३८७ । ८ स्वयंहोमाञ्चली कर्तव्यनिहरू | श्चित्तम् । १२ ३९६ |
| 일 [22] 다양 전 1일 다양 보고 있는 10 전 10 | 🕬 पगुलायाः साम्राच्योखायाश्च |
| पर्वास् । १३ ३८७ | खनणे प्रायश्चित्तम् । १४३९९ |

| | and the same the angle of the first of the same takes to |
|---|---|
| सं॰ स्॰ ए० | ्र सं० |
| पञ्चविंशाध्याये दशमी करिडका- | १०० दीक्षितस्य दुःखरोदने प्राय- |
| ७८ यूपस्याङ्करोत्पत्ती प्रायश्चित्तम् । १ ४०० | विचलम् । ३० ४०८ |
| ७९ अनुबन्ध्याया गर्भवतीत्वे प्राय- | १०१ दीक्षितस्य वसने प्रायश्चित्तम्।३१ ४०८ |
| श्चित्तम्। २ ४०० | १०२ पक्षिणा सोम्बमसोपरि मू- |
| श्चित्तम् । २ ४०० ८० अग्निहात्रेऽग्नीनामनुगमने प्रा- | त्रादि खवणेकृते प्रायधिचत्तम् ३२ ४०८ |
| यश्चित्तम् । १७ ४०३ ८१ अग्निहोत्रकालातिकमे प्रायश्चि- | पञ्चविद्याच्याये द्वादशी करिडका— |
| ८१ अग्निहोत्रकालातिकमे प्रायश्चि- | १०३ हुताहुतसोमसंसर्गे प्राय- |
| चम् । | विचत्तम्। १४०९ |
| पञ्चविशाध्याये एकादशी करिडका- | १०४ सोमस्योपरि मेघनृष्टी प्रा- |
| ८२ सङ्कल्पानन्तरं सत्राकरणे प्राय- | यश्चित्तम्। ६ ४१० १०६ चमसस्य भूगो पतने प्रायः |
| श्चितम्। १ ४०४ | 268 9 I II FEET |
| ८३ सत्रार्थ दीक्षितानां सन्नाकरणबुद्धौ | १०६ सोम÷यामेध्यादिना दृष्टत्वे |
| | प्रायश्चित्तत्। १० ४१० |
| प्रायश्चित्तम् । ३ ४०४ ८४ दक्षिणादानात्पूर्वमुद्धात्रपच्छेदे | १०७ नाराशसंशीष प्रायोधननम् । १० ४१० |
| प्रायिक्षतम्। ७ ४:५ | १०८ कलकाशोपे प्रायदिचलम् । १२ ४१० |
| ८५ प्रस्तोत्रपच्छेदे प्रायश्चित्रम् । ८ ४०५ | १०९ प्तमृत उपक्षये प्राय्विचत्तम् १४ ४११ |
| ८६ प्रतिहर्त्रपच्छेदे प्रायधित्तम्। ९ ४०६ | ११० सोमामिषवाद्ममेदने प्राय- |
| ८७ ज्योतिष्टोमे पत्न्यां रजस्वछायां | श्चित्तस्। १६ ४११ १११ सोमापहारे प्रायहिचलस्। १७ ४११ |
| कर्तव्यविधिः। १३ ४०६ | ११२ सोमापद्वारे संस्थान्यस्य च |
| ८८ ज्योतिष्टोमे परन्यां प्रसृतायां | सोमस्यालाभे प्रायदिवत्तम् । १८ ४११ |
| कर्तव्यविधिः। १७ ४०७ | १(३ द्रोणकलकामेदे प्रायांश्वरम् । २२ ४१२ |
| ८९ गभिण्या दीक्षानिषेधः १८ ४०७ | पञ्च विशाध्याये त्रयोदशो करिडका— |
| ९० दीक्षितस्य दुःस्वण्यदर्शने प्राय- श्चितम् । २० ४०७ | ११४ सोमस्याधिक्ये प्रायश्चित्तम् । १ ४१३ |
| | ११९ दीक्षितस्य ल्वरे प्रायश्चित्तम् २० ४१५ |
| ९१ दीक्षितस्य रेतःस्कन्द्ने प्रायः | ११६ दीक्षितस्य मरणे कर्वच्य |
| श्चित्तम् । | |
| | |
| ९३ दीक्षितस्य तदुपरि वृष्टी प्राय- श्चित्तम्। २३ ४०७ | ११७ दाक्षितस्यास्थ्यज्ञः । ३६ ४१७ ११८ दीक्षितस्यास्थ्यज्ञोत्तरमः |
| श्चित्तम् । २३ ४०७ ९४ दीक्षितस्थामेध्यदर्शने प्रायश्चि- | ्रिथसङ्घयनादि। ४६ ४६९ |
| तम्। २४ ४०७ | पञ्चविशाध्याये चतुर्दशो कण्डिका— |
| ९५ दीक्षितस्य शोणितोत्पत्तौ | ११९ एकस्मिन्देशे द्वयोः सोमया- |
| प्रायश्चित्तम्। २६ ४०७ | गयोः संपाते क्तंव्यविधिः। ८ ४२० |
| १६ दीक्षितस्य निष्ठीवने प्रायश्चित्रस्य ६०० | १२० इचिदेकस्मिन्देशोऽति ह्रयोः |
| ९७ दीक्षितस्य धावने प्रायश्चित्तम्। २७ ४०८ | सोमधोः सम्पाते न दोषः २३ ४२३ |
| ९८ दीक्षितस्य स्वेदे प्रायत्विचत्तम्। ६८ ४०८ | १२१ सोमदाहे प्रायदिचत्तम् । २८ ४२३ |
| ९९ दीक्षितस्य दिवास्त्रापे प्रायः | १२२ चनादिष्टप्रायश्चित्तहोमे ब्रह्म- |
| श्चन्तम्। २२ ४०८ | े णोऽधिकारा। 📑 ३५ ४४४ |
| | |

| elo | See a | | |
|---|---------------------|---|------------|
| षड्विशाध्याये प्रथमा | ्रुष्ट —रक्टातिक | | सु० १ |
| प्रवर्ग्यनिरूपणम् | 4 1 0 2 40 i | - २० महावीराञ्जनम्। २१ रजतशवमानस्य खो उक्ष | १९ ४३ |
| | | 1 consistent start all 30 | हिनस्२० ४३ |
| १ तत्र महावीरसम्भाणम् २ महावीरनिर्माणदेशः। | | ६ पड्विंशाध्याये तृतीया | काण्डका- |
| ३ महावीरसम्भाराः । | २ ४२ | | 1 8 83 |
| | રૂ ૪૨ ૪ ૪૨૬ | 1 2 con David Continue Miller | ध्र बरे |
| ९ महावीरमानम् | क ठर १८०३ व | | \$ 83. |
| ६ द्वितीयवृतीयमहावीरनिर्मा | ्रद् ठर गाः | | |
| विधिः। | १९ ४३९ | च्छादनारतं कर्म। | ८ ४३५ |
| ७ पिन्वनरौहिणकपालद्वयनिम | f. | न्द्राच्याच्याय चतुर्या | हिण्डका— |
| णविधिः। | | २९ चन्द्रसासगानप्रपादि । | 0 Vac |
| ८ उपशयसृदो निधानम् | 50 836 | २६ साहणपुरांडा शह यहाेमः। | ६ ४३७ |
| ९ महावीरध्यनम् | वर ४२९ | षड्विंशाध्याये पश्चमी क | विडका— |
| १० महावीरपाकः | ३३ ४२९ | २७ धर्मार्थं रज्जुसन्दानगोदोह | |
| ११ पकमहाबीराणासरिनतो बहि | • | and A. Gardinaldis | |
| निष्कासनम् । | २४ ४३० | | 6 836 |
| १२ महाबोरोपरि अजापयस आसे | कः२५ ४३० | पड्विशाध्याये पछी क | णेडका— |
| पड्विशाध्याये द्वितीया का | रोडका | २८ उपयमनीस्थवृतस्य व्यम सा | सेकः २ ४४१ |
| १३ प्रवर्थानुष्टामविधिः। | | २९ ततो घर्महोमादि कर्म। | \$ 885 |
| १४ प्रवर्गे विहितानामेव कर्मणा | | षड्विंशाच्याये सप्तमी क | एडका— |
| TENNE OF PRINCIPAL S | | ३० प्रवस्थोतसादनम् । | 9 006 |
| मनुष्ठानम् । १९ पात्रासादनविधिः । १६ महावीसविधोक्षणम् । | 7 09 (| ર પવા કાશમાલાસમા | 26 95 n |
| १६ महावीरादिप्रोक्षणम् । | 350 5 | ३२ घर्मभेदे प्रायश्चित्तम्। | ३० ४५१ |
| १७ स्थूणानिखननम् । | \$ 025 | ३३ प्रवर्गस्य प्रथमयज्ञेऽनुष्ठानः | |
| १८ खरह्रयनिवायः। | 54 C55 | विकल्पः। | इंक ८६३ |
| १९ आसन्धां महाबीरस्थापनम् । | 90 033 | ३४ प्रवर्ग्यस्याद्यन्तयोः शान्ति- | |
| | Z_ 058 | करणम् । | 88 86\$ |

इति श्रीकात्यायनश्रीतस्त्रविषयातुक्रमणिका समाता ।

कात्यायनश्रीतसूत्रम्। द्वादशोऽध्यायः।

श्रुत्यर्थमनुविधित्सताऽऽचार्येण ज्योतिष्टोमोऽनुविहितः। इदानीं श्रुतिमन्त्रपाठावसरमाप्तो द्वाद्याहोऽनुविधीयते। तत्र श्रुतिपाठः—''सर्वे
ह वै देवा अग्रे सहसा आसुः'' इत्यतिप्राह्यग्रहविधानं द्वाद्याहे—''तान्वै
पृष्ठथे पडहे गृह्णीयात्पूर्वे प्रयहे" (द्वा० ब्रा० ४-५-४-१३) इत्येवमादि।
मन्त्रपाठोपि च ''अग्ने पवस्च स्वपा उत्तिष्ठन्नोजसा" इत्येवमादि।
प्राह्मग्रहमन्त्राः। ततो द्वाद्याहस्य श्रुतिमन्त्रपाठावसर इति। तत्र तावद्यम्माप्त्यथमधिकरणमारभ्यते—

ज्यानिष्टोमधर्मा एकाहदादशाहयोस्तद्गुणदर्शनात् ॥१॥

ज्योतिष्टोमस्य धर्मा ज्योतिष्टोमधर्माः । ज्योतिष्टोमशब्देन उपांदवा-दिहारियोजनपर्यन्तो ग्रह्यागाभ्यासोऽभिधायते । ज्योतींषि यस्य स्तोः माः स ज्योतिष्टोमः। स्तोमैर्ह्यसौ द्योत्यत इति । ते च सोमयागस्य-स्तोमाः ग्रहं गृहीत्वा चमसान्वेश्वीय स्तोत्रमुपाकरोतीति । तस्माज्ज्योः तिष्टोमशब्देन स्रोमयागोऽभिधीयते । नन्देवं स्रति पेन्द्रवायवादीनामप्रवृ चिर्विकारेषु भवति ? नेप दोषः, ''उद्भिदा यजेत'' ''बलमिदा यजेत'' इति चाऽब्यक्तत्वसामान्यात् ज्यौतिष्टोमिको विष्यन्तः प्रवर्तते । उद्भिः दादिषु च यागमात्रं श्रूयते । न च द्रव्यदेशतमन्तरेण यागः सम्भवति । अतो द्रव्यदेवतस्यापि प्रवृत्तिरिति । यत्र पुनर्द्रव्यदेवतस्य यागस्य विधानम् , यथा "पेन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत्" इति । तत्र तद्वच-तिरिक्तस्य प्रवृत्तिर्युका। इह पुनर्न तथा। इह हि यागमात्रमेव श्रूयते तच्च द्रव्यदेवतमन्तरेण न भवति । द्रव्यदेवतमणि साधनत्वाद्धर्मी भवति । तेन तस्यापि प्रवृत्तिर्युक्तक्षेति । तस्य च धर्मा एकाहेषु द्वाद-शाहे च प्रवर्त्तनते । एकाहजात्यपेक्षया च द्विवचनम् । य एवैकस्मिन्ने-काहे धर्मप्रवृत्तिहेतुः स एव सर्वेष्वेकाहेष्वपि । कश्वासौ १ धर्माणाम-नाम्नानम् । अञ्यक्तसामान्येन च प्रहणम् । द्वादशाहे त्वेकस्मिन्नेव ज्यौतिष्टोमिकधर्मप्रवृत्तिः। ततोऽन्यत्राहर्गणेषु धर्मप्रवृत्ति वस्यति । तद्-गुणाञ्चात्र दश्यन्ते । बाजपेये "अगृहति माहेन्द्रे" (श्वा ५-१-४-२)

रथावहरणादि करोति रथावहरणावसरविधिपरे वाक्ये माहेन्द्रं दर्शयति । तथा "तं वै प्रातः सवने गृह्णीयादाग्रयणं गृह्णीत्वा" (श० ब्रा०
४-५-४-६) इति बोडिशिनोऽवसरविधिपरे वाक्ये आग्रयणं दर्शयति ।
तथा "माध्यन्दिने वैनान्त्सवने गृह्णीयादुक्थ्यं गृह्णित्वा" (श० ब्रा०
४-५-४-७) इति अतिग्राह्यावसरविधिपरे वाक्ये दक्थ्यं दर्शयति ।
एकत्र वावस्थितं छिङ्गं स्थालीपुलाकन्यायेन सर्वत्र गमकम्, न्यायस्य
तुव्यत्वात् । तुव्यो हि न्यायो धर्माणामनाम्नानमपेक्षया चाव्यक्तत्वसामान्येन ग्रहणामिति । न्यायस्तु पूर्वाभिहित एव सामर्थ्यादिति । एवमताश्चोदना वैकृत्यः समर्था भवन्ति । इतरथा सापेक्षाः सत्योऽनिधिका
एव स्युरिति ॥ १॥

आनुमानिकस्याप्यतिदेशापवादत्वेनदमधुनोच्यते— प्रथमस्य व्रात्यस्तोमसाद्यःक्रेषु वचनात् ॥ २॥

व्रात्यस्तोमादिषु प्रथमस्य धर्मा उत्तरेषु प्रवर्तन्ते। न ज्योतिष्टोमि काः। कुतः १ वचनात्। उच्यतेऽनेनित वचनं नामधेयं, नामधेयादि त्यर्थः। तुव्यनामत्वात्त्रवेव प्रतीतिर्भवति। प्रतीत्या च धर्मसम्बन्धो मवित नान्यथेति। लिङ्गं च मवित। साद्यःक्रे सोमक्रयणं त्रिवषं साण्डः मिमधाय साद्यःक्रान्तरे छी गौः सोमक्रयणीत्याह। तच्चैवमेवोपपद्यते। चच्चनस्यातिदेशं तु वक्ष्यति—इषुश्येनचिति। नन्वेचं तत्पूर्वमिमिहितमेव 'दर्शपूर्णमासधर्मा इष्टिपशुषु सामध्यात्र' (का०श्रो० ४-३-२) इत्यत्रा-तुमानिकवचनातिदेशः। वैश्वदेवधर्माश्चातुर्मास्येषु' (का०श्रो०४-३-४) इति प्रत्यक्षवचनातिदेशः। 'सोमाच्चावभृथे' (का०श्रो०४-३-४) इति प्रत्यक्षवचनातिदेशः। 'सोमाच्चावभृथे' (का०श्रो०४-३-५) इति नामातिदेशः। तिः प्रकारोप्यतिदेश उक्तः। किमर्थं पुनिरहोच्यते ? सत्यमतदेवम्। तत्र तु व्यक्तचोदनाविषयम्। इहाव्यक्तचोदनाविषय-लिङ्गोपन्यासार्थेऽयमारम्भः। न हि व्यक्तचोदनालिङ्गोक्तिरिह गमिका भवति। तस्मादपुनवक्तता॥ २॥

अग्निष्टृत्सु च ॥ ३ ॥

चराव्यात्प्रथमस्य धर्माः प्रवर्तन्ते नामधेयादेव । नन्विग्निष्टुद्बहुत्व-मेच नास्ति । एक एवारिनष्टुत्, "त्रिचृद्गिनष्टुद्गिनष्टोमस्तस्य वायव्याः स्वेकविद्यमिनष्टोमसाम इत्वा ब्रह्मवित्यसामा यजेत" इत्यिभधायाऽऽह "एतस्यैव रेवतीषु वारवन्तीयमाग्निष्टोमसाम कृत्वा पशुकामो होतेनैव यजेत" दात । एतस्यैवित सर्वनामशब्देन स एवाग्निष्टुत्कार्यान्तरे विधीयते । तस्मादेक एवाग्निष्टुदिति ॥ ३॥ पवं ग्राप्त आह—

एके ॥ ४॥

तन्नेच्छन्ति, प्राप्तकम्मीनुवादेनानेकगुणविधानासम्भवात्। न हि पूर्वस्थाग्निष्टुतो रेवत्यः सन्ति। ता विधातन्याः, तासु च वारवन्ती-यम्, तच्चाग्निष्टोमसाम्नः कार्ये पशुकामे वेति वाक्यभेदः। कर्मान्तरः पक्षे तु सगुणकर्मविधानान्नेष दोषो भवति। तस्मात्प्रतिफलमग्निष्टुतां बहुत्वम्॥ ४॥

प्रकृतिमद्दानीमभिधीयते-

(१) हाद्शाहः सत्त्रमहीनश्च ॥ ६॥

अत्र विशेषमाह—

आसत उपयन्तीति सत्त्रलिङ्गं, यजत इत्यहीनस्य ॥६॥

"द्वादशाहमुद्धिकामा उपेयुः" इति । तथा ''त्रपोदशरात्रमासीरन्'' इति सत्त्रछिङ्गम् । "द्वादशाहेन प्रजाकामं याजयेत्" इत्यहीनछिङ्गम् । अस्य तु कथनप्रयोजनं सत्त्रे सत्त्रात्मको धर्मो दात्त्त्वेन प्रवर्त्तते, अहानि बाहीनात्मकः ॥ ६ ॥

(२)उभवतोऽतिरात्रं सत्त्रसुपारिष्टादहीनस्य ॥ ७ ॥

यजमानाः सर्वे सत्त्रेषु ॥ ८॥

यजमाना एव सर्वे सत्त्रेषु कर्त्तारो भवन्ति । ये ऋत्विजस्ते यज्ञः माना इत्यनेनार्त्विजीनान्पदार्थोव्ळक्षणयाऽनूच यजमानाः कर्त्त्वेन विधीयन्ते ॥ ८ ॥

अदक्षिणानि च स्वामियोगात् ॥ ९ ॥

तानि च सत्त्राण्यदक्षिणानि भवन्ति । न हि कश्चिदात्मनैवात्मानं परिकीणीते ॥ ९ ॥

ग्रहपतिर्घाजमानमयुक्तत्वात् ॥ १०॥

याजमानं यःकर्म तद् गृहपातिः करोति, कर्मान्तरे तस्यायुक्तःवात् । इतरेषां चाध्वर्यवादिषु योगात् ॥ १० ॥

द्र्शनाच ॥ ११ ॥

(१) द्वादशाहयागः सञ्चात्मकः, अहीनात्मकरचेति सुत्रार्थः ।

(२) सञ्चस्यादावन्ते चार्शतरात्रो भवति अद्दीनस्यान्ते एवेति स्त्रार्थः । दश्यते चायमर्था यथा गृहपतेर्याजमानं कर्मेति । तस्माद्यदि बहवो दक्षिरम् गृहपतय एव व्रतमभ्युत्सिच्य प्रयच्छेयुरिति ॥ ११ ॥

सर्वे संस्कारात ॥ १२॥

हेतुश्चायमुपदेशश्च । यत्संस्कारकं कर्म तत्सर्वेरभ्युपेयम् कस्य चित्संस्कारपरिलोपो मा भूदिति ॥ १२ ॥

दर्शने बचनात् ॥ १३॥

यत्त् दर्शनमुक्तं तद्वचनम् ॥ १३ ॥

अविभवति गृहपत्यन्वारम्भः ॥ १४॥

यत्र पुनः पदार्थबहुत्वस्याविभवः पुरुषार्थक्रपतापि गम्यते। यथाः ग्न्यन्वाधाने "ममाप्ते वक्षे विद्दवेष्वस्तु" इत्येवमादि। तत्र गृहपतेः कुर्वतोन्वारम्भः कर्त्वव्यः। सर्वेरेव हि तत्कृतं मवतीति ॥ १४॥

परार्थे दवेकः कृतत्वात् ॥ १५॥

यत्र पुनः ऋत्वभिनिर्वृत्यर्थमेव कमे । यथा पात्रासादनमाज्यावेक्षणं वा, तत्रैकस्यैव कर्तृत्वम्, कृतत्वात्पदार्थस्य ॥ १५ ॥

अग्निं चेष्यमाणः समारोद्य गृहपतिर्मध्ये मन्यत्यर्द्धश

इतरे दिखणोत्तराः ॥ १६॥

ते यद्यप्ति चेष्यमाणा भवन्तीति वचनाच्चेष्यमाण इत्युक्तम् । समाराञ्चोति च पूर्वकालतामात्रे स्यवादेशो न समानकर्तृकतायां चोन् दको मा बाधीति। गृहपतिर्मध्ये मन्थनं करोति । अर्द्धश इतरे दक्षिणोन् चरा मन्धन्ति॥ १६॥

(१)गृहपत्याहवनीयेऽङ्गारप्रासनम् ॥ १७ ॥

तत्र प्राजापत्यः पद्युः ॥ १८॥

तत्र विहारे प्राजापत्यः पशुभैवति । पुनर्ग्रहणाच्चाहर्गणे प्राजापः त्यस्य नियमः । तथा चाश्वमेघे नियमदर्शनं भवति—"प्राजापत्यमालः भ्योत्सीदन्तीष्टय" इति ॥ १८॥

आज्येन पत्नीसंयाजा गृहपतिवर्जम् ॥ १९॥

"गृहपतेरेव गाईपत्ये जाघन्या पत्नीः संयाजयनयाज्येनेतरे प्रतियः जन्त आसते" (रा० ब्रा० ४-६-८-१९) इति वचनात्॥ १९॥

तदहदीक्षा ॥ २०॥

⁽१) आहवनीयेऽझौ गृहपतिरङ्गारान् क्षिपतीत्यर्थः।

दीक्षायाः परोदिचैककालतोच्यते । तत्र दीक्षाकाले पद्यः कर्त्तव्यः । न पद्यकाले दीक्षा । एवं सोमकालविरोधो न भवति । इतरया कालस्य विरोधः स्यात् ॥ २० ॥

ग्रशक्ती नियताकिया समास्टिनिर्माधितेषु सर्वत्र ॥२१॥ पशुदीक्षयोरेककालताऽशकौ। स्वकाले पशुं कृत्वा समारोपिन-र्मन्थनपूर्विका नियतानां किया। सर्वत्रप्रहणाच्च त्रिष्वपि मन्थनपक्षेषु।

दीक्षाकाल उद्ग्व¦हाायां पूर्ववन मन्थनम् ॥ २२ ॥ उद्ग्वंशायामिति नियमः। पूर्ववदिति यथापूर्वमुक्तम् ॥ २२ ॥ गाहेपत्ये प्रासनमञ्ज ॥ २३ ॥

अङ्गारस्य भवति ॥ २३॥

आहवनीयस्ततः ॥ २४ ॥ उद्धियते दक्षिणाग्निश्च, तुल्यन्यायत्वात् ॥ २४ ॥ तत्र दीचा ॥ २५ ॥

भवति ॥ २५ ॥

उपवस्थप्रभृति पागग्रीषोमप्रणयनादुपरामय्य चिनोत्ये नाञ्छालाद्वार्योदक्षिणोत्तरान्धिष्णयवत् ॥२६॥ अग्नीषोमप्रणयनात् प्राग्दक्षिणोत्तरात् गाईपत्यानुपरामय्य शालाः द्वार्योदक्षिणोत्तरांश्चिनोति गाईपत्यान्धिष्णयवत्। २६ ।

कुत पतत् ?

श्रुतेः ॥ २९॥

अधेतरेभ्य उपवस्थे धिष्ण्यानिति । धिष्ण्यानित्यसत्यपि वतिष्र-त्यये वत्यर्थो गम्यते, अत्सम्हिन्छञ्दस्य तद्वदातिदेशार्थत्वात् ॥२७॥

वा यथोक्तं गृहपतेः ॥ २८॥

बादाब्दात्पक्षो विपरिवर्त्तते । न धिष्णयविचनोति । किं तर्हि ? यथोक्तं गृहपतेः गार्हपत्यस्य चयनं तथेतरेषामपि, गार्हपत्याविद्ये षात् । धिष्णयग्रब्दस्तर्हि कथम् ? संस्थानवचन इत्यदोषः ॥ २८ ॥

हित द्वाद्शाध्याये प्रथमा कण्डिका।



आप्रिधिय उचतेऽङ्गारमेकैकः हरान्ति प्रातिचिति शा-लाबार्यात्॥ १॥

"उद्यत एवेष आग्नीभीयोऽग्निर्भवत्ययैते एकैकमेवोल्मुकमादाय यथा धिष्ण्यं विषरायन्ति"(श्वा०४-६-८-७) इति । तच्च यजमाना एव॥१॥ प्रत्याग्ने सवनीयपुरोडाशा भुयो हविरुच्छिप्टमतसमाः

प्त्या इति श्रुतेः॥ २॥

"अथ यन्नाना पुराडाशा भूयो हिविकिचिछष्टमसत्समाप्त्या इति" (श्रव्याव ४-६-८-१७) नानापुराडाशाता च द्वादशाहिको धर्मः, सुत्राम्नानात्। प्रयोजनं विकारेष्वैकाहिकेषु न भवति॥ २॥

पत्नीसंयाजाश्च पूर्ववन् ॥ ३॥

भवन्ति ॥ ३ ॥

गृहपतिं वा पर्युपविदय मन्थन्ते(१)॥४॥ वाद्यब्दो विकल्पार्थः॥४॥

गृहपतिः प्रथमः प्रथमः सर्वत्र ॥ ५॥

सर्वपक्षेषु ॥ ५ ॥ जातं जातं गृहपतिगीर्हपत्ये प्रास्यन्त्युभयत्र ॥ ६ ॥ पर्यपनेशनपन्ने पन्नी स्थापनं जोजन

पर्युपवेशनपक्षे पश्चौ दक्षियां चोमयत्र महणात्॥ ६॥ उपवस्थप्रभृति तुल्य १ सर्वेषु ॥ ७॥

डपवस्थयभृति यदुक्तं तत्पक्षत्रयेपि तुल्यं भवति । नाना गार्हपः स्या ४ति यदुक्तं भवति ॥ ७ ॥

वर्तायं पक्षान्तरमुच्यते— अरण्योबोद्धग्रीहपतेर्ये हतोऽग्निजीनष्यते स नः सह यदनेन यज्ञेन जेष्यामो ऽनेन पशुबन्धेन तन्नः सह सह नः साधुकृत्या नाना पापकृत्या य एव पापं करवत्तस्यैव तृदित्युक्त्वा ग्रहपतिः

समारोहयते स्वौ प्रथमम् ॥ ८॥ "अथेदं तृतीयं गृहपतेरेवारण्योः संबदन्ते" (शब्बा०४-६-८-१३)

⁽१) इतरे सस्त्रिणो गृहपति सर्वतो वेद्यायत्वा पर्युपविदय मन्य-न्त इत्यर्थः।

इति वचनात्। गृहपतिः समारोहयते स्वावग्नी प्रथमस् ॥ ८॥ धथास्यं वेतरे ॥ ९॥

गृहपतिर्वेति विकल्पः। गृहपति हि प्रकृत्य श्रूयते—"अधेतरेभ्यः समारोहयति स्वयं वैव समारोहयन्त'(राज्ञा०४-६-८-१३) इति ॥९॥ अस्मिन्नेव पक्षे अयमपरो विशेषः—

दक्षिाकाले संवादप्रभृति पशुबन्धस्थाने सन्त्रेणेति ॥ १०॥

पशौ अरण्योर्बाहुः गृहपतिरित्येतास्मिन्पद्युवन्धेनेति यत्तत्स्थाने सत्त्रेणेति प्रयोगः ॥ १०॥

एकाह्वडोत्तमे शालागाईपरयपुरोडाशपत्नीसंयाजाः ॥१२॥

पकाहवदिति । उत्तमे पक्षे वा प्राग्वेशा शाला भवति वोद्ग्वंशेति विकरुपः । उपवस्थप्रभृति नानागाहंपत्येषु प्राप्तेषु विकरुपेन गाहंप-त्यैकत्वमुच्यते । पुरोडाशपत्नीसंयाजानामप्येवमेव ॥ ११ ॥

एकपुरोडाशेषु त्रत्यासम्भवादैन्द्रं पश्चशारावमोदनं नि-र्वपेत्पुरोडाशं वा ''यद्योदनीयन्ति यद्यपूर्पायन्ति''

इति श्रुतेः ॥ १२ ॥

पकपुरोडाशपक्षेषु कथं नाम त्रत्यसम्भवः स्यादिति पेन्द्रं पञ्चशरा वमोदनं निवंपेत् पुरोडाशं या । यद्योदनीयन्ति विकल्पेनौदनमिच्छः न्ति । यद्यपूर्णयन्त्यपूर्णमिच्छन्ति । तस्य चास्य यामशेषस्य पुरुषार्थः क्षता । न पुरुषार्थस्य यागार्थता, दृष्टार्थत्वात् ॥ १२ ॥

बाह्स्पत्यमेके ॥ १३॥

कुर्वन्ति नैन्द्रम् ॥ १३ ॥

दीक्षा द्वादशोपसद्ख्य ॥ १४॥

भवन्ति ॥ १४ ॥

अध्वर्युर्ग्रहपति दीक्षयति ब्रह्मादींश्चाध्वय्वीदीन्यतिप्रस्था ना प्रतिप्रस्थात्रादीन्नेष्ठा नेष्ट्रादीनुनेता उन्नेतारं ब्र-ह्मचारी स्नातकोऽन्यो वा ब्राह्मणो "न पूतः

पावयेत्" इति श्रूतेः॥ १५॥

अथोन्नेतारं स्नातको वा ब्रह्मचारी वाऽन्यो वा दीक्षितो दीक्षयित "त पूतः पावयेत् इति ह्याहु" रिति । अन्यो वा ब्राह्मण इति ब्राह्मण-ब्रह्मं ब्रह्मचारिस्नातकयोरब्राह्मणयोरिष प्राप्त्यर्थमुन्नेतृसम्बन्धार्थं च उन्नत्सम्बन्धो ब्रह्मचारी स्नातकर्च यथा स्यादिति ॥ १५ ॥ (१)अनुपति पत्नीरुत्तर उत्तरः ॥ १६ ॥

दीक्षयति॥ १६॥

त एवोबेतुः ॥ १७॥

ब्रह्मचार्याद्यः दीक्षधन्ति ॥ १७ ॥

दक्षिणाकाले कृष्णाजिनानि घून्वाना दक्षिणापथेन ज पन्तो गच्छन्ति यन्मे गदायुषः परागितोऽगात्तां तेऽः गद दक्षिणां नयामीतीदमहमसुमासुष्यायणमः सुच्यपुत्रमसुच्याःपुत्रं कामाय दक्षिणां

नयामीति ॥ १८ ॥

अमुमामुष्यायणममुष्यपुत्रममुष्याः पुत्रमिति यथास्वम् च्चारणम् । स चायं सत्त्रधर्मः। अत्रचाहीने न भवति। ऐकाहिकेषु च नासाः विष्यते ॥ १८॥

इति द्वादशाध्याये द्वितीया कण्डिका।

पृष्ठयः षडहः प्रथमोऽग्निष्ठोमश्चतुर्थः षोडद्युक्थ्या इतरे॥१॥ पण्णामहां पृष्ट्य इतीयं संज्ञा । सा च वैदिकी। इत्यते च तया संज्यवहार:—"अभिष्छवं पूर्व पुरस्ताद्विषुवत उपयन्ति पृष्ठश्यमुत्तरम्' इत्येवमादि ॥ १ ॥

तत्रातिग्राह्यग्रहणं त्र्यहे पूर्वेऽग्ने पवस्वोत्तिष्ठन्नद्दशमि-त्यन्वहमेकेकम् ॥ २ ॥

अतिप्राद्यान्हि प्रकृत्य श्रूयते—'तान्वै पृष्ठये पडहे गृहीयात् पूर्व इयहे आग्नेयमेव प्रथमेऽहन्येन्द्रं द्वितीये सीर्थं तृतीये' (रा॰ ब्रा॰ ४-५-४-१३) इति ॥ २॥

उत्तरे वा ॥ ३॥

अतिप्राह्मप्रहणम् "एवमेवान्वहम्, तानु हैक उत्तरे व्यहे गृह्णान्ति" (श॰ ब्रा॰ ४-५-४-१४) इति श्रुतेः॥ ३॥

डमयोवो ॥ ४ ॥

⁽१) उत्तर उत्तरो दीक्षाकर्ता पतिसमीपे तत्पत्नीदीक्षयतीत्यर्थः।

ज्यहयोर्प्रहणम् । प्रवम्पि हि श्रूयते—"पूर्व एवैनांम्ज्यहे गृहीत्वा ऽथोत्तरे ज्यहे गृह्णीयात्"(द्याव्बाव्ध-५-४-१४) इति । पक्षत्रयं विकल्पेन । सम्प्रदाये तु पक्षद्रपम्—पूर्वे वा ज्यहे, उमयोर्वेति ॥ ४ ॥

माहेन्द्रभनुहोमः॥ ५॥

अतिप्राद्याणाम् ॥ ५॥

अग्ने वर्च्चस्वित्रिन्द्रौजिष्ठ सुर्व भ्राजिष्ठेति भक्षणं

यजमानैः ॥ ६ ॥

सहहोमाभिषवकर्तृयज्ञमानानामपूर्वभक्षविधानम् । न हि तत्त्र-स्याम्नायः॥६॥

पृष्ठकाले रथसः सार्णं प्रथमे दिखणेन वेदिम् ॥ ७ ॥ माहेन्द्रयाज्याभ्यासस्तोत्रं पृष्ठम् । तत्काले दक्षिणेन वेदि रथसं-सारणं पृष्ठचस्य प्रथमेऽहनि ॥ ७ ॥

द्वितीये दुन्दुभिशब्देनोपाकरणम् ॥ ८॥ द्वितीयेऽह्यान दुन्दुभिशब्देन पृष्ठोपाकरणम् ॥ ८॥ तृतीय औपबाजनैः ॥ ९॥

उपवाजना व्यजनका उच्यन्ते(१) ॥ ९ ॥ चतुर्थेऽरणिभ्यां मन्थनं चोद्गातुरूरौ होमञ्ज ॥ १० ॥ चतुर्थेऽहनि अरणिभ्यां मन्थनं चोद्गातुरूरौ होमदचाहवनीये ॥१०॥

पश्चमे (२)सावकयोद्पाच्या ॥ ११ ॥

उपाकरणम्॥ ११॥

पष्ठे सांवाज्ञिनेन ॥ १२ ॥

सांवाशिनशब्दार्थोऽप्रसिद्ध इत्यत आह— मातृभिर्वत्सान्त्स्रासुज्य सदः पूर्वेण व्यावर्त्तयन्ति ॥१३॥ स्वयमृतुयाजेज्याऽवीश्वमद्य यय्यं तृवाहणाः रथं युञ्जाथा-मिह वां विमोचनं पृङ्क्ताः हवीः।षि मधुना हि कं गतमथा सोमं पिबतं वाजिनीयस् इति ॥ १४॥ सा वाष्वर्युप्रतिप्रस्थात्रोः। ताभ्यां प्रेषिताभ्यां प्रकृतावुकं होत्

⁽१) तैस्तृतीयेऽहाने पृष्ठोपाकरणमिति होषः।

⁽२) शेवाळसंयुक्तया पात्र्येत्यर्थः । २ का०

रेतचजेति। तेन चाहिवनाविष्टौ इयमपि द्विषचनान्तःवात् आदिवनः याग प्वेति गम्यते ॥ १४ ॥

(१)होत्प्रत्ययः प्रतिगरः ॥ १५॥ माहेन्द्रप्रहशस्त्रे॥ १५॥

पाकृतं चान्यार्थस्वादितरेषाम् ॥ १६ ॥

प्राकृतं च प्रांतगरपदं प्रवर्तते, अन्यार्थत्वादितरेषां होतृकाणाम्, प्रतिगरपदानामरष्टार्थत्वात् एवं च कृत्वा स्तात्रोपाकरणमपि प्राकृतं प्रवर्तते, अदृष्टार्थत्वाद्रथसंसारणादीनाम्॥ १६॥

षडहान्ते न बहु चदेत् नान्यं पृच्छेत् नान्यस्मै प्रबूपात् १७

तश्च क्रत्वर्थस्वाध्यायविषयमिति सम्प्रदायः । तत्र हि प्रश्नप्रस्थाः स्यानानि सम्भवन्ति । षडहान्तग्रहणाच्च तदन्त प्रवासविति न वि-कृते षडहे ॥ १७ ॥

मघोः प्राधानं घृतस्य वा ॥ १८ ॥ तत्रैतद्धममात्रम्, दृष्टार्थाभावात् ॥ १८ ॥ उक्थ्याञ्छन्दोमास्त्रय उत्तरे ॥ १९ ॥ उत्तरे छन्दोमास्त्रय उक्थ्याः ॥ १९ ॥ अत्यग्निष्टोमोऽविवाक्यं दृश्मम् ॥ २० ॥

अत्यग्निष्टोमलंस्थमविवाक्यसञ्चं दशममहर्भवति ॥ २० ॥ पत्नीसंयाजान्तान्यद्वान्यन्त्यवर्जम् ॥ २१ ॥

तच्चेतत्पदार्थपर्यवसानं न तदन्ताङ्गरीतिविधानम् । सवसृथस्य दीक्षोन्मोचनार्थत्वात्सर्वान्तेऽवसृथः । तत्र समिष्टयज्ञुरन्तेपर्यवसाने प्राप्ते "पत्नीसंयाजान्तान्यहानि सन्तिष्ठन्ते" इति वचनादिह पर्यवसानम् । "द्वादशाहमृद्धिकामा उपेयुः" इति युगपरपरिसमाप्तिरित्यत इदन्मुच्यते अन्त्यवर्जामिति ॥ २१ ॥

इति द्वादशाध्याये तृतीया कण्डिका।

एकैको चारयतः सोमः रक्षत्याबोधनात् ॥ १॥ "तेषामेकैक एव वाचंयम आस्ते" (राष्ट्रा०४-६-९-६) इति वचनात् आबोधनात् इत्येतावन्तं काळं रक्षणमस्य ॥ १॥

⁽१) अस्मिन् पृष्ठे षड्हे होतुवेदे यत्र यत्र यादशो विहितः प्रतिः गरस्तत्र तत्र तथा भवतीत्यर्थः।

''वाचमाप्याययंस्तया पीनया यातयाम्नयोत्तरमहस्तन्वते"(श०बा० ४-६-९-६) इतउत्तराहः शेषभावं दर्शयति—

वसतीवरिपरिहरणादि वा ॥ २ ॥

यतवाक्त्वं भवति, उत्तराहःशेषभूतत्वात् "तेषामेकैक एव वार्चः यम आस्ते" (शब्बाव्ध-६-९-६)॥ २॥

इतरे विख्डवन्ते स्वाध्यायाय समिद्भ्यो वा ॥ ३ ॥

तत्राप्यशनम् ॥ ४ ॥

अञ्चनमित तत्र गतानां भवति । "तत्राप्यश्नन्ति"(श्व०त्राध-६-९-६) इति वचनात् ॥ ४ ॥

द्शमे वा सन्निषेः॥ ५॥

दशमे वाऽहिन समित्स्वाध्यायोपगमो भवति । तत्सिक्चि हि शिष्यते वा । सर्वत्र, प्रकरणात् । सिक्चिधः क्रमः स प्रकरणेन वाध्यते । तस्मात्सर्वत्रैव ॥ ५ ॥

अस्तिमिते सिमिद्धानि सर्वेषु ॥ ६ ॥ सर्वेष्वदःसु यजमानेषु अग्निषु च प्रतिपत्तन्यम् शासान्तरात् ॥६॥ दशमेऽपराह्नेऽप उपस्पृश्य शास्त्रायवेशनम् ॥ ७ ॥ दीक्षितानाम् ॥ ७ ॥

शालाहार्येन्वारब्धेष्विह रतिरिति जुहोति ॥ ८ ॥ "तेषु समन्वारब्धेष्वेते आहुती जुहोति" (श्व०ब्रा०४-६-९-७) इति श्वतेः ॥ ८ ॥

अपरामुपसृजन्निति ॥ ९ ॥ आहुर्ति जुहोति ॥ ९ ॥

डत्तरेण परिकम्घापरेण हविर्धानं प्रविद्योत्तरस्य हविर्धानस्यापरक्षवरीमालभ्य सत्त्रस्यर्ष्टि गायन्ति स-त्रस्य ऋद्विरिति ॥ १०॥ शालाह्यर्यां दुत्तरेण परिक्रम्यापरेण द्वारेण हिवर्धानम्प्रविश्य उत्तर् रस्य हिवर्धानस्य दक्षिणामपरकृषर्भिण्यस्य सत्रस्यार्धे गायन्ति सत्रस्य (१)ऋद्विरित्याहुः सर्व एव दीक्षिताः ॥ १०॥

उत्तरवेदिश्रोण्यां वीत्तरस्थाम् ॥ ११ ॥

सत्रस्यिधिगानं कुर्वनित। वाशब्दाद्विकवयः, शास्त्रस्य तुरुयःवात्॥११॥
युवं तमिति दिचिणस्याधोक्षं प्राश्वो निष्कामन्ति ॥१२॥

"युवं तम्"(२) इत्यनेन मन्त्रेण दक्षिणस्य हविद्धांनस्य अधोऽशं प्रा-श्रो निष्कामन्ति । सदः प्रविद्य पूर्वेण स्वासनेष्णविद्यान्ति । पूर्वेण द्वा-रेण सदः प्रविदय विष्ण्याऽव्यवायेन स्वासनेष्ण्यविद्यान्ति ॥ १२ ॥ ग्रहं गृह्णाति प्राजापत्यं वायुं पृथिव्या पात्रेण ग्रहणसा-दनस्तोत्रोपाकरणहोमभक्षाहरणभक्षणानि मनसा ॥१३॥

कर्त्तव्यानि ॥ १३॥

चतुहाँतृन्याख्यान्य होतुः॥ १४॥

रास्त्रं भवति ॥ १४ ॥

गृहपतिरजानि ॥ १५॥

होतर्यज्ञानति गृहपतिब्यांचश्लीत ॥ १५ ॥

प्रतिगृणात्यरात्सुरिमे वजमाना भद्रमेभ्यो

यजमानेभ्योऽभूदिति ॥ १६॥

चतुर्होतृब्याख्याने प्रतिगरः॥ १६॥

ब्रह्मोद्यं बद्दित ॥ १७॥

तम शायते किमिति ? अत आह-

प्रजापतेरगुणाच्यानम् ॥ १८॥

कुतोऽर्थवादात् प्रजापतिमेव तत्प^{रिवद्नेत} ॥ १८ ॥

अप्रतिभाषां वा तहादः ॥ १९॥

⁽१) सत्त्रस्य ऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरसृता अभूम । दिवं पृथिज्या अध्यारुहामाविदाम देवान् स्वज्योतिः॥ (वा०सं०=-५२) इति ।

⁽२) युवं तमिन्द्रा पर्वता पुरोयुवायो नः पृतन्याद्पतन्तमिद्धतं वग्रेण तन्तमिद्धतम्। दूरे चत्ताय छ[्]श्यद्धनं यदिनक्षत् । अस्माक १ राष्ट्रन् परि शुर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः (वाश्सं०८-५३)।

प्रजापति परिवदितुं प्रतिभैव नास्तिः तस्य विधिप्रतिषेधाभावात्। तस्माव्सदेतत् ॥ १९ ॥

ग्राइनमेधिकं वा नामधेयात् ॥ २०॥

आइवमेधिकं वा ब्रह्मोद्यम् । कुत एततः ? नामधेयातः । नामधेयं हि ब्रह्मोद्यमिति तत्रैव प्रतीतिं जनयति ॥ २० ॥

अनस्तमिते गृहीत्वौदुम्बरीं वाचं यच्छन्ति ॥ २१ ॥

तच्च प्रतिपत्तिपरिसमाप्त्युत्तरकालम् पत्नीसंयाज्ञान्ते हि सत्रो-त्थानम् । ''तद्वा पतत् द्शमेहन्त्सत्त्रोत्थानं क्रियते"(श्वान्ध-६-६-६) इति ॥ २१ ॥

अस्तमिते निष्कम्यापरेणोत्तरवेदिमासते प्रतिप्रस्थाः

ता वसतीवरीः परिहरति ॥ २२ ॥ वचनात्॥ २२॥

वाग्विसर्जनः सत्त्रकामेन ॥ २३॥

येन कामेन सत्त्रमारब्धं तेन वाग्विसर्जनं 'असी नः कामः समुः ध्यताम्" (राव्त्राव्ध-६-९-२३) हति ॥ २३ ॥

एथकामेषु भूर्भुव इति ॥ २४ ॥

भूर्भुवः स्वरिति वाग्विसर्जनम् । "यद्यु अनेककामाः स्युलौककामा बा प्रजाकामा वा पशुकामा वाऽनेनैव वाचं विस्रजेरन् भूर्भुवः स्वरिति" (श्वाव्याव्य-६-९-२३,२४) ॥ २४॥

(१)सुब्रह्मण्याह्वानं गृहणतेर्धे वाह गृहणतिः ॥ २५ ॥ सुब्रह्मण्य उपमा ह्वयस्वेत्युका समिदाधानम् ॥ २६ ॥

यस्य यस्य सुब्रह्मण्याह्वानं स सुब्रह्मण्य उन माह्नयस्वेत्युका समि-दाधानं करोति ॥ २६ ॥

अप उपस्पर्शनाचेतत्सत्रोत्थानम् ॥ २० ॥

सत्रोत्थानमिति नामधेयम्। तश्च संव्यवहारार्थम् । दशराश्रोऽसः त्रोत्थान इति ॥ २७ ॥

द्यति द्वाद्शाध्याये चतुर्थी कण्डिका।

अतिग्राखषोडशिशसङ्गेनेदमुच्यते —

अन्तरात्रवणोक्थ्वावागन्तुस्थानं ग्रहाणाम् ॥१॥

⁽१) अथवा गृहपतिर्थं ब्रह्मादिकं सत्त्रिणं प्रत्याह स करोतीत्यर्थः।

आग्रयणोक्थ्यावन्तरेणागन्तवो प्रहा प्राह्याः ॥ १ ॥ प्रातः सवनेऽतिग्राह्यान्यहीत्वा षोडाद्यानं खादिरेण

चतुस्रक्तिनातिष्ठ युक्ष्वा हीति वा ॥२॥

"तं वै प्रातः सवने गृहीयात्, आग्रयणं गृहीत्वा"(शश्त्रा०४-५-३-७)
इति वचनात्। ततः षोडशिनं गृह्वाति खादिरेण चतुःसक्तिना "आति ।
ष्ठ" "युश्वा हि"(१) इति मन्त्रविकल्पः। अतिग्राह्यबहुत्वस्याभावाश्व बहुवः चनमुखारणार्थम् । अतिग्राह्यषोडशिनोः पौर्वापर्यं शाखान्तरात्। अ-स्यापि हि ग्रहणमाग्रयणादुत्तरमेव, "तं वै प्रातःसवने गृह्वीयादाप्रयणं गृहीत्वा"(श्वा०४-५-३-७) इति ॥ २॥

माध्यन्दिने वाऽऽग्रवणादुत्तरः॥ ३॥

षोडशी गृह्यते । प्रवमपि श्रूयते-"माध्यन्दिने वैनः सवने गृह्वीया-दाव्रयणं गृहीत्वा"(शञ्बा०४-५-३-८) इति॥ ३ ॥

धारायहान्ते वाडातियाह्यान् ॥ ४॥

'माध्यन्दिने वैनान्स्सवने गृह्णीयादुक्थ्यं गृहीस्वा'' (रा०ब्रा०४-५-४-९) इति श्रुतेः॥ ४॥

पूतभृतो बोपाकरिष्यन्पृष्ठम् ॥ ५ ॥

षोडशिनं गृह्णाति । पृष्ठमुपाकरिष्यन्नतिप्राह्यानगृह्णातीति योगविन् भागः । एवं चातिप्राह्याणां कालत्रयम् । षोडशिप्रहस्य तु चत्वारः कालाः। अन्तराप्रयणोक्थ्यौ तृतीयसवने कण्वपाठाच्चतुर्थः कालः॥ ५॥ अपो निधाया/इवदाभ्यग्रहणमीदुस्बरेण च

तुःस्रक्तिना ॥ ६॥

अंग्रुप्रहणे वाच्येऽदाभ्यप्रहणोकिः चन्नियोगसिद्धर्या ॥ ६ ॥ अर्रह्योस्तुष्णीरु सर्वम् ॥ ७ ॥

वक्ष्यमाणं पदार्थजातम् ॥ ७ ॥

अनुच्छ्वसंश्चेच्छन् ॥ ८॥

(१) आतिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी । अर्वाचीन॰्सु ते मनो प्रावा कृणोतु वग्तुना । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडाशने । एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडाशने ॥ (वा०सं०८-३३) इति ।

युक्त्वा हि के शिना हरी दृषणा कक्ष्यत्रा। अधा न इन्द्र_सोमपा गिरामुपश्चीत चर। उपयामगृही०॥ (वा०सं०८–३४) इति। बक्ष्यमाणकमेव ॥ ८॥ अद्भादानाः/शुनिवपनोपसर्जनसकृत्प्रहरणग्रहणहो-

मान् हिरण्यं चोपांजिञ्चति ॥ ९ ॥ अथ हिरण्यमभिव्यनकाति वचनात् ॥ ९ ॥

उद्यम्य वा प्रहरणम् ॥ १०॥

स बायं विकल्पः, शास्त्रस्य तुल्यत्वात् ॥ १० ॥ सत्त्रसहस्रस्वे वेदसवाजपेयराजसुयविद्वजित्सः

र्वपृष्ठयेषु ग्रहणमवकाइयश्चेत् ॥ ११ ॥

यजमानः ॥ ११ ॥ द्वादश्वादत्सतयों गर्भिणयो दक्षिणाऽसत्त्रे ॥ १२ ॥ अदक्षिणत्वात्सत्राणामसत्त्र इत्युक्तम् ॥ १२ ॥

बुभुषतोऽदाभ्यं गृह्णाति ॥ १३ ॥ सिवयोगिकाष्ट्रत्वाददाभ्यस्य भूतिरिच्छयेष्यते ॥ १३ ॥ आसिच्य निग्राभ्याः पात्रे तिस्मस्तूष्णीं त्रीन्रश्चमवधा-याग्रये त्वा गायत्रच्छन्दसमिति प्रतिमन्त्रम् ॥ १४ ॥

अंशुपात्रे नित्राभ्यास्त्रणीमासिच्य त्रीनंशूनवधाय "अयये त्वा गाः यत्रच्छन्दसम्" इति प्रतिमन्त्रम् । मन्त्राभावात् 'तुर्णीम्' इति लौकि-कवागुरुखारणप्रतिषेधः ॥ १४ ॥

उपयामः सर्वत्राविशेषात् ॥ १५॥

सर्वेष्वेवांश्ववधानेषूपयामा भवति । कुत एतत् ? सर्वेहिं योगोऽ-विशिष्टः । यथाद्येन तथोपरितनाभ्यामपि । तस्मादुपयामस्यानुषङ्गः॥१५॥ किंच—

विग्रहादित्यग्रहप्रतिषेधाच ॥ १६ ॥

विग्रहादित्यग्रहेषु च शितषेषो भवति—"तं वै नोपयामेन गृह्धीः यात्र योनी सादयेत्" इति । तथा आदित्यग्रहे—"तं वै नोपयामेन गृह्धीयाद्ग्रे ह्येवैष उपयामेन गृह्धीतो भवति" (श्वा १४-३-५-११)। तस्मादंश्ववधानं प्रत्युपवाम इति । अन्ये पुनरन्यथा वर्णयन्ति । उपयामः सर्वे ग्रहेष्वेव भवति यत्राप्यनाम्नातः । कुत पतत् ? अविशेषेण हि श्र्यते—"तद्य उपयामेन ग्रहा गृह्यन्ते" (श्व श्रा १४-१-२-६) इति । विश्रहादित्यग्रहप्रतिषेधाच्य । एवं च सति वाजपेये सप्तदशसु सोम-प्रहेषु उपयामः सिद्धो भवति । सम्बद्ये पुनर्यत्रैवोपयामाम्नानं तत्रैव



भवति, नान्यत्र । नन्वनेनेच सर्वविषयता भवतु । नेत्युच्यते । न ह्याष विधिः । यच्छव्दाभिसम्बन्धात्मातानुवादोऽयम् । अंद्रववधाने तु विद्य-मानत्वादनुषङ्गोऽनुमन्यते । विम्रहादित्यम् । अनुषङ्गस्य प्रतिषेधः । तत्रोपयामो विद्यत प्रवेत्यमिप्रायः । "उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा बृहद्यः ते वयस्वते" (श्वावाध-२-३-१०) इत्युक्थ्ये । आदित्यम्रहेष्वपि "उप-यामगृहीतोसीति गृहीत्वा गृहीत्वा द्विदेवत्याननुज्जहोति" इति । सर्वः विषयोऽयमुणयाम इत्ययमेवोज्ज्वस्रतरः पक्षः । न हि विम्रहादिः त्यम्रहेष्वनुषङ्गप्रतिषेधो युज्यत इति । तस्मात्सर्वविषयतोपयामस्येत्येवं बुध्यामहे ॥ १६ ॥

अतुष्दुप्त इत्युक्ता धूनोत्य द्वाभित्रेशीनां स्वेति गच्छ नित्र समे त इति जुहोति ॥ १७ ॥ भवस्ये तस्मे त इति जुहोति ॥ १७ ॥ भवस्ये तं इत्यनेन मन्त्रेण जुहोत्युदकम् ॥ १७ ॥ अद्वान्तरमो निद्धात्युश्चिक्तमिति प्रतिमन्त्रम् ॥ १८ ॥ ईषान्तरेणावह्वतार्द्धसोमे ततो हि ते गृहीता इति ॥ १८ ॥ अद्वाद्धसोमा ॥ १९ ॥

भवति ॥ १९॥

डक्थ्यान्ते षोडशिचरणमुपस्थायैनं यस्मान जात इति चमसानुत्रीय ॥ २०॥

उक्थ्यप्रचारान्ते षोडशिचरणम्। "यस्मान्न जातः"(वा०सं०८-३६) इत्युपस्थायेनं चमसानुन्नीय पूर्वतरम्॥ २०॥ इति द्वादशाध्याये पञ्चमी कण्डिका ।

तृणहिरण्यैः स्तोत्रोपाकरणसुपास्तमयः सोमोऽत्यरेच्यु-पावर्त्तध्विमिति कृष्णेऽइव उपतिष्ठति ॥ १ ॥ तृणहिरण्यैः षोडशिनःस्तोत्रोपाकरणम् । अस्तमनसमये "सोमो त्यरेच्युपावर्त्तस्वम्" इत्यनेन मन्त्रेण कृष्णेऽस्व उपतिष्ठति ॥ १ ॥ इन्द्रश्च सम्राज्ञिति भक्षणम् ॥ २ ॥

भवति ॥ २ ॥

आ पात्रप्रक्षालनात्कृत्वाऽतिरात्रश्चेत्सौम्येन सद्दाः

हिवनो बिकपालः सर्वेञ्च ॥ ३॥

आ पात्रप्रक्षालनारकृत्वा षोडाशिनः । अत्रैव च षोडाशिसंस्थापरि-समाप्तिः । उत्तरेण अतिरात्रे विशेष उच्यते । सौम्येन सहाश्विनो द्वि-कपालः सर्वत्र कर्त्तव्यः । सर्वत्र प्रहणाच्चातोऽन्यत्राप्याश्विनो द्विक-पाल एव भवति ॥ ३ ॥

अतिरात्र प्वापरो विशेष उच्यते-

त्रयः पर्याघाश्चमसैश्चतुस्तोत्रः पर्याघः ॥ ४ ॥ चमस्यागपर्यायास्त्रयः । चतुःस्तोत्र एकैक पर्यायः ॥ ४ ॥

होतुः प्रथमं प्रथममुक्थ्यवदितरेषु ॥ ९ ॥ शस्त्रकर्तारः॥ ५॥

तदन्ते चमसानुत्रीय स्तोत्रोपाकरणाः सन्धेः ॥ ६ ॥ तेषां पर्यायाणामन्ते चमसानुत्रीय सन्धिस्तोत्रोपाकरणम् ॥ ६ ॥

होता श्राह्मत्याश्विनम्॥७॥

पर्यायान्ते व्याभित्रवृत्त्याऽच्छावाको मा भृदिति होतेत्युच्यते ॥ ७ ॥ शस्त्रान्त आहिचनेन सर्वहुतेन चरति एकप्रदानश्चमसैः॥८॥ शाह्यनो भवति वचनसामर्थ्यात्सर्वहृतश्च ॥ ८ ॥

अ विवभ्यान्तिरोन्ह्यानाः सोमानामनुवाचनप्रैषौ ॥ ९ ॥ अत्र भवतः । ज्योतिष्टोमे षोडश्यतिरात्रयोः कतुप्रावः कतुकरणं

चोक्तम्। ऋतुरोषः संस्थाविरोषोऽत्राभिहित इति ॥ ९॥

एन्द्राग्नः सवनीयोऽन्वहम् ॥ १०॥ भवति। स चायमहर्गणधर्मः। तथा च विकृतावैकाहिकेष्वपि मवति॥

स्तोमायनं वा ॥ ११ ॥

यथास्वं भवति ॥ ११॥

एकादिशाना वा विहृताः॥ १२॥

भवन्ति ॥ १२ ॥ अस्मिश्च पक्षे—

द्वादश आद्यः ॥ १३ ॥

मवति ॥ १३ ॥

सर्वसमासो वैन्द्राग्नी वा ॥ १४ ॥ वेति विकल्पः॥ १४॥

यावच्छेपसुत्तरेषु ॥ १५ ॥

उत्तरेष्वहर्गणेषु एकादाशिनि पक्षे यावच्छेषमाळच्यन् ॥ १५ ॥ काम्यः सत्त्रम् ॥ १६ ॥

िनित्यवचनाभावात् काम्यत्वे प्राप्ते काम्यप्रहणं पृथक्कामानामः धिकारप्रज्ञापनार्थम् ॥ १६ ॥

अहीने व्यूटच्छन्दसि दशराञ्चस्य चतुर्थनवमयोर-न्होराग्रयणग्रहणं प्रथमम् ॥ १७॥

"तद्यभैतद्द्वादशाहेन व्यूटच्छन्दसा यजते" (श. ब्रा. ४-५-९-१) इति । व्यूटच्छन्दाश्चाहीनोऽस्ति यमङ्गीकृत्य उद्वातुर्होतुरुछन्दसां व्यूह-नमाम्नातम् । तत्र विशेषव्याचिष्यासयदमाह—दशरात्रस्य चतुर्थन-वमयोरन्होरात्रयणग्रहणं प्रथमम् ॥ १७ ॥

शुक्रस्य षष्टसप्तमयोः ॥ १८ ॥

प्रथमप्रहणं भवति । प्राथम्यं चैन्द्रवायवापेक्षया, नोर्णाश्वन्तर्यामाः पेक्षया । येनैवमाह—"अथैतत्प्रज्ञातमेव पञ्चममहर्भवति तदैन्द्रवायवाः प्रान् गृह्णाति" (श्र.ब्रा.४-५-९-३) इति प्रज्ञात एवाहन्येन्द्रवायवात्रान् प्रहान् दर्शयति ॥ १८ ॥

असादनमा पूर्वेषां ग्रहणात् ॥ १९ ॥ पूर्वेषां प्रहणादवीगसादनं तस्य ॥ १९ ॥ परिमाजनभृतिकाले हिङ्कृत्य सादनम् ॥ २० ॥ यस्य हिद्वारो विहितः। इतरस्य त्वहिङ्कृत्येव ॥ २० ॥ अञ्युदो चा ॥ २१ ॥

छन्दर्सा ब्यूहनपक्षेऽपि वाऽब्यूढो भवति द्वादशाहः । एवमपि(१) श्रुयत इति ॥ २१ ॥

उभयतोऽतिराघः॥ २२॥

अयं द्वादशाहो मवति। या त्वन्यतरतोऽतिरात्रोक्तिरका साविक्वति-विषया॥ २२॥

अतिषेषितेऽग्नीदाह इवः सुत्वामिन्द्राग्निभ्यां प्रज्ञवीमि विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः सोमपेभ्यो ब्रह्मन्वाचं यच्छोति ॥ २३॥

⁽१) "तस्माञ्च ब्यूहेत्" (रा.चा. ४-५-९-१०) इति ।

सर्वान्त्रेषानतीत्य वर्त्तते इत्यतिप्रेषितो हारियोजनोत्तरकाल इत्यर्थः । तत्राग्नीदाह "इवः सुन्यामिन्द्राग्निभ्यां प्रव्रवीमि" इत्येवः मादि । अयं च इवस्तनाऽहःशेषभूतः । ब्रह्मन्वाचं यच्छेत्ययं त्वः घतनस्येव । प्रयोजनमकाहिकेषु विकारेषु द्वादशाहिकेषु च यथार्थे प्रयोगः ॥ २३ ॥

प्रायणीयेऽच सुत्यामेके प्राप्तकालत्वात् ॥ २४ ॥

प्रायणीयोऽतिरात्रो द्वितीयेऽह्नि परिसमाप्यते । तत्र पार्ष्टिकं प्रथममहर्भवति । तेनैतदुच्यतेऽद्य सुत्यामिति वक्तव्यम् । प्राप्त एव हि काल इति ॥ २४ ॥

एवं प्राप्त आह—

न पूर्वशेषात् ॥ २५॥

पूर्वस्यैवान्हः शेषभूतोऽयमित्यतिवेषितः। ततश्च श्वःशब्देन कर्माः न्तरमुच्येत नाऽहरन्तरम् ॥ २५ ॥

अचोदितत्वाच्य ॥ २६ ॥

न चैवंविधा चोद्ना विद्यते—'प्रायणीयेऽच सुत्यामिति वक्त-व्यम्' इति ॥ २६ ॥

तस्माच इवोभावात् ॥ २७ ॥ तस्माच्च कर्मणः । रवःशब्देन कर्मोन्तरमुच्यते ॥ २७ ॥

अग्निमयोति च लिङ्गात्॥ २८॥

अद्यशब्दः कर्मविषयः। अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमान इति । अन्यस्मिन्नेवाऽहरन्तरे वृतो होताऽद्यशब्देनोच्यते। तच्च कर्मविषये। ऽद्यशब्द उपपद्यते नान्यथेति ॥ २८॥

इद्मेव तावद्विचार्यते किं प्रायणीयात् उत्तरं यदहस्तस्मिन्नेवाहन्याः रब्बव्यमुत द्वितीय इति । किं तावत्प्राप्तम् ? सुत्रेणैवोपक्रमः—

प्रायणीयादुत्तरमहः इवः कालाभावान् ॥२९॥

प्रायणीयादवसितादुत्तरमहः उत्तरद्वमे ६व आरब्धव्यं न तस्मिन्ने बाहिन । कुत पतत् ? कालो हि न सम्मवेत् । तत्र प्राग्वाचः प्रवद् नात्प्रातरज्ञवाककालः। तथोपांदवन्तर्यामयोः "तथोर्घादेते ऽन्यतरं जुहो त्यजुदिते ऽन्यतरम्" (श्राष्ट्राध-१-२-११) इति कालो न सम्भाव्यते । श्वः पुनः क्रियमाणे सम्भवति ॥ २९ ॥

एवं प्राप्त प्राह—

न सम्पच्छ्रतेः ॥ ३०॥

नैतदेवं रव आरब्धव्यमिति । अद्यैवारभ्यते । कुत एतत् ? सम्पव्छ्-रुतिर्हि भवति "वट्ति ? शदहो वा एव यद् द्वादशाहः वट्तिश्रादक्षरा वै बृहती तद् बृहतीमभिसम्पद्यते" हति । तच्यैवमुपपद्यते श्वस्तनेऽह-न्यारम्भे न वट्त्रिशिद्धव्यविविष्ठेत । तत्र सम्पव्छुतिविरोधात् ॥ ३० ॥

कालो वचनात् ॥ ३१ ॥ यः पुनः कालविरोधः स बचनादिति ॥ ३१ ॥ इति द्वादशाध्याये षष्ठी कण्डिका ।

> इति श्रीककोपाध्यायक्कते कात्यायनसूत्रभाष्ये द्वादबाहो द्वादबाध्यायथ्य समाप्तः।

त्रयोदशोऽध्यायः।

उक्तो द्वाद्शाहः । तत्स्विधावेव गवामयनस्य परामर्शोस्ति-"सौर्य द्वितीयं पद्ममालभते वैषुवतेहन्त्राजापत्यं महात्रते"(रा.बा.४-६-३-३) रित गवामयनमेव तावदारभ्यते । पूर्व धर्मप्राप्त्यर्थमधिकरणम् ।

ब्रादशाहधर्माः सन्त्रेषु तद्गुणदर्शनात्॥ १॥

द्वादशाहिका धर्माः सन्तेषु प्रवर्तन्ते । तद्गुणा ह्यत्र दश्यन्ते 'अभिष्ठवं पूर्व पुरस्ताद्विषुवत उपयन्ति पृष्ठ्यमुत्तरम्' इति, तथा ''पृष्ठयमुपरिष्टाद्विषुवतः पूर्वमुपयन्ति' इति चेति पौर्वापर्यविधिपरे वाक्ये द्वादशाहिकं पृष्ठथं दर्शयति । न्यायस्तु पूर्वमुक्त एव सामर्थ्यात् । गण एव गणमजुत्रहीतुं समर्थो नान्यः ॥ १॥

गवामयनायैकाष्टकायां दीक्षा ॥ २॥ "पकाष्टकायां दीक्षेत" इति बचनात् ॥ २॥ फाल्गुनीपौर्णमासे ॥ ३॥ अत्रापि हि बचनम् "फाल्गुनीपौर्णमासे दीक्षेरन्" इति ॥ ३॥ चैत्र्याम् ॥ ४॥ "पौर्णमासे दीक्षेत" इति बचनादेव ॥ ४॥

चतुरहे वा पुरस्तात्प्राक्यौर्णमास्याः॥ ५॥

पौर्णमासी च फाल्गुनी सा द्यत्र पूर्वमामिहिता । तस्याः पुरस्ता-च्चतुरहे दक्षिरन । प्वमपि हि श्रूयते "प्राक्पौर्णमास्याश्चतुरहे दक्षिरन्" इति ॥ ५ ॥

चैत्र्यानन्तर्यात्॥ ६॥

चत्री वा चतुरहविशेषणत्वेन प्रतिपत्तव्या। तस्या ह्यान्तरमेतत् श्रूयते "वैद्यां चैत्रे पौर्णमासे दीक्षेरन्" इति वचनादेव ॥ ६॥

सर्वा वाडविशेषात्।। ७॥

सर्वाः पौर्णमास्यश्चतुरहविशेषणत्वेन प्रतिपत्तव्याः, विशेषानव-गमात् । एवं च पौर्णमासीशब्दः सर्वत्र प्रवर्तमानो न सङ्कोचितः स्यात्॥ ७॥

माघी वा कपश्रुतेः॥ ८॥

वाशब्दः पक्षव्यावृत्तौ । माघी वा चतुरहविशेषणम् । न पौर्णमाः सीमात्रम् । एवं हि श्र्यते "वाक्पौर्णमास्याश्चतुरहे दीक्षेरिन्निति दीक्षि तानामेकाष्टकायां कयः सम्पद्यते" इति । एकाष्टका नाम माधकृष्णाः ष्टमी ॥ ८॥

कुत एतत्--

लोकप्रत्ययात् ॥ ९॥

पषा हि लोके पकाष्टकेति प्रसिद्धा ॥ ९ ॥

किंच-

अर्थवादाच ॥ १०॥

अर्थवादश्चात्र भवति "ता उत्तिष्ठन्त ओषधयो वनस्पतयोनू निष्ठन्ते" । "तान्दीक्षितानुत्तिष्ठन्ते" "ओषधिवनस्पतीनां प्ररोहो भवति"। तरुचैवमुपपद्यते । तथा तर्द्यपोभिनन्दमाना अवसृधमभ्यवयः नित । पतद्प्येषमेव घटते । वनस्पतिप्ररोहोऽपामभिनन्दनं च चैत्रोदेश पव भवति । तस्मान्माधी चतुरहविशेषणम् ॥ १०॥

पवमानेष्ट्गातारमन्वारभेरन्द्येनोऽसि गायत्रच्छ-न्दा अनु त्वारभे स्वस्ति मा सम्पारय सुपणोऽसि त्रिष्टुप्च्छन्दा ऋसुरसि जगच्छन्दा इतीतरयोः सव-नयोः सवनान्तेषु जपन्ति मधि भगों मधि महो मधि यद्यो मधि सर्वमिति॥ ११॥ बहुवचनोपद्शात्सर्वे यजमानाः उद्गानालम्भसवनान्तजपान् कुर्वन्ति ॥ ११ ॥

सर्वत्रेके ॥ १२ ॥

सर्वत्रैवैक एताईच्छन्ति॥ १२॥

कुत एतत्--

यजातिशब्दात् ॥ १३॥

पुरुष ह नारायणं प्रजापतिख्वाच यजस्व यजस्वेत्येवमुक्त्वैतः रसर्वमभिहितमिति ॥ १३॥

न प्रकरणात्॥१४॥

नैतदेवं सर्वत्रैतदिति । येन गवामयनं प्रकृत्यैतच्छ्रूयते । तत्र यजतिशब्दोऽप्यत्र पृद्धते प्रकरणमपि । तस्मान्न सर्वत्रैतदुद्गात्रास्त्रमः । सवनान्तजपश्च गवामयनधर्मात्वादैकाहिकेश्वपि प्रवर्त्तते ॥ १४ ॥

इति त्रयोदशाध्याये प्रथमा कण्डिका।

अभिष्ठवः षडहोऽग्निष्ठोमौ प्रथमान्त्या उक्थ्या इतरे ॥ १ ॥

वण्णामन्हामभिष्ठव इतीयं वैदिकी संज्ञा। संस्थामात्रनिर्दश्याः त्र । संस्थास्वैकादिकाः । एवं ह्याहाऽभिष्ठवस्त्र्यहः ज्यावृद्धिज्योतिन् गौरायुरिति । ज्योतिरादय एव प्रतिछोमानुछोमाः । तथा चाग्निष्टोमी प्रथमान्त्यौ भवतः उक्थ्या इतरे । एवं चात्र नाम्ना धर्मा ऐकाहिका भवन्ति न द्वादशाहिकाः । सत्त्रगणधर्मास्तु प्रवर्चन्त एव ॥ १ ॥

अतिरात्राचतुर्विक्षमहराम्रिष्टाम् उक्थ्यो वा॥ २॥

अतिरात्राद्वसिताच्चतुर्विशमहःसंज्ञकोऽग्निष्टोम उक्थ्यो वा भवति । गवामयनिकश्चायम् । ततश्च द्वाद्शाहिका अपि धर्माः प्रवर्त्तन्ते॥ २॥

चत्वारोऽभिष्ठवा पृष्ठयश्च मासः॥ ३ ॥ एवं चत्वार उत्तरे ॥ ४ ॥

मासा मंबन्ति ॥ ४॥

षष्ठे त्रयोभिष्लवाः पृष्ठ्यः ॥ ६ ॥ षष्ठे मासेऽभिष्ठवास्त्रयः पृष्ठचश्च ॥ ५ ॥

अभिजिद्यिस्थानः॥६॥

नतु चायमग्निष्टोमसंस्थ एवाभिजित् किमुच्यते अग्निष्टोम इति १ ड-च्यते, अग्निष्टोमग्रहणादभिजिदन्तरं तत्संश्चकं गवामयनिकमेतत्। अ-तश्चात्र द्वादशाहिका अपि धर्माः प्रवर्त्तन्ते ॥ ६॥

त्रयः स्वरसामानो ऽग्निष्टोमा उक्थ्या वा ॥ ७॥ स्वरसामसंब्रकास्त्रयो मवन्ति अग्निष्टोमा उक्थ्या वा ॥ ७॥ अग्निष्टोमो विषुवान् ॥ ८॥

विद्युवत्संद्रको ऽग्निष्टोमो भवति॥ ८॥

पातरनुवाकः सन्धिवेलायामुदिते यथोक्तं वा ॥ ९ ॥

दिवाकी स्यमे तदह भेवतीति श्रूयते। तेनैत दुच्यते सन्धिवळायामिति।
यद्येवम् नेयता चोदकपरिप्राप्तकाळवाधः शक्योऽभ्युपेतुम्। दिवाकीस्यता हि ब्राह्मणविषया। अस्य ब्राह्मणं दिवा की-स्यंत इति। दिवा की-स्यंत इति दिवाकी स्यम्। कीर्चनशब्दश्योचचारणार्थो नानुष्ठानार्थः। एवं चेद्यथोक्तमेवेत्यवधार्यते॥ ९॥

सौर्य उपालम्भ्यः॥ १०॥

"सौर्थं द्वितीयं पशुमालभते वैषुवतेहन्" (श.आ.४-६-३-३) इति वचनात् ॥ २० ॥

उदुत्यामिति ग्रहग्रहणमतिग्राह्यवद्भवर्जम् ॥ ११ ॥ अतिग्राह्यवच्च विधिभवति मक्षवर्जमस्य ॥ ११ ॥

पूर्वपक्षप्रतिलोमम् ॥ १२ ॥

पूर्वपक्षः प्रातिलोम्येनोत्तरो भवति ॥ १२ ॥ अत्र विशेषमहि—

अभिजित्स्थाने विद्वजिद्गिष्टोमः ॥ १३॥ स च—

सर्वपृष्ठश्चेत्सर्वेतियाद्याः ॥ १४ ॥

भवन्ति। एतद्पि चाग्निष्टोमग्रहणाद्विश्वजिदन्तरं नैकाहिक इति। ऐकाहिकत्वे हि अग्निष्टोमग्रहणं न करोत्याचार्यः छतं च। तस्माद्वि-श्वजिदन्तरं गवामयनिकमेतत् । अतश्च द्वादशाहिका अप्यत्र धर्मा मवन्ति॥ १४॥

षष्ठे मासे त्रयोभिष्ठवा गोऽआयुषी दशरात्रो महाव्रतमग्निष्ठोमः ॥ १५॥ अत्र दशरात्रो द्वादशाहिको महाव्रतं गवामयनिकं शेषा ऐकाहिकाः १५ महाव्रते विशेषमाह—

प्राजापत्य उपालम्भयः ॥ १६॥

भवति। "प्राजापत्यं महावते" (श्रान्ध-६-३-३) इति वचनात्१६ ग्रहं गृह्णाति चिन इन्द्र बाचस्पतिं चिश्वकर्मन्निति वाऽतिग्राह्णवत् ॥ १९॥

गृहीतस्य विधिमवंति ॥ १७॥

उप मा यन्तु मज्ञयस्मनीडा उप मा जक्षरपमा मनी-षा प्रियामहं तन्वं पर्यमानो मिय रमो देवानां तेजसे ब्रह्मवर्चसायेति मक्षणं यजमानैः, पृष्ठयोपाकरणं (१)वा-णेन राततन्तुना ॥१८॥

कर्तब्यम्॥ १८॥

(२) मौञ्जास्तन्तवो वैतसं वादनम् ॥ १९ ॥ इति त्रयोदशाध्याये द्वितीया कण्डिका।

ष्ट्रसीषूपविद्यानित प्रेङ्के होता फलके ऽध्वर्युः प्रतिगृणाति॥१.। प्रेङ्कशब्देन हि दोलोच्यते॥१॥ उद्गाताऽऽसन्यां प्रादेशपाचाः सोमासन्दीवत्॥२॥ अन्यदन्तर्वेदि॥३॥

वक्ष्यमाणं कर्म भवति ॥ ३ ॥ अभिगराऽपगरौ ॥ ४ ॥

अभिगरो दाक्षितस्तुतिः, अपगरश्च निन्दा ॥ ४ ॥ तच्चेदमुक्तम्—

(३) आक्रोशस्येकः प्रशंसत्यपरः ॥ ५ ॥ पुंश्चलूब्रह्मचारिणावन्योन्यमाक्रोशतः ॥ ६ ॥ पुंश्चलूर्ज्ञयनचपला स्त्री(४) ॥ ६ ॥

(१) बाणो महती वीणा, शतं तन्तवो यस्यासी शततन्तुः, तेनोर पाकरणम् ।

(२) अस्मिन् वाणे मौजास्तन्तवो वेतसवृक्षसम्बन्धि वादनमित्यर्थः।

(३) एकः सञ्जिणो निन्दामपरश्च स्तुति करोतीत्यर्थः।

(४) पुमांसं पुमांसं प्रति चलनीति पुश्चलू वेदया, सा च ब्रह्मचारी च परस्परं निन्दां कुरुतः। शुद्रार्थी चर्माण परिमण्डले व्यायच्छेते ॥ ७॥ निमित्तसप्तमीयम् (१) चर्माण निमित्तभूते ॥ ৩॥

(२) जयस्यार्थः ॥ ८ ॥

(३) मार्जालीयं दक्षिणेन परिवृत्ते मिथुनः सम्मवति ॥९॥ क्षत्रियः सन्नाइयति दक्षिणां वेदिश्रोणिमपरेण ॥ १०॥ सन्नइनित्रयां कारयति। कारिते चाध्येषणा क्षत्रियः सन्नह्यस्वेति॥१०॥

मर्माणि त इति कवचं प्रयच्छति ॥ ११॥ क्षत्रियाय॥ १२॥

तुर्जीमः येभ्यः ॥ १२ ॥

बहुक्चनोपदेशाब्रिभ्यः । अन्यशब्दस्य समानजातीयनियमात्क्षः त्रियेभ्यः॥ १२॥

त्रिः समन्तं परियन्ति शालामपरेणोत्तरेण चात्वालं वशाचमकटे विशाख्यां वा स्तीणेमुच्छितं वा विध्यन्त्यः निष्पत्रम् ॥ १३ ॥

कटे आस्तीर्ण विशाख्यां बोच्छितं अनिष्पत्रमिति अनिःशृतपत्रं विध्यन्ति क्षत्रियाः॥ १३॥ दक्षिणेन चर्मयन्ति त्रिर्विद्ध्वा पुरस्ताद्विमोचनम् ॥१४॥

चितानस्य ॥ १४ ॥

(४) सदः स्रक्तिषु दुन्दुभीन्वादयन्ति ॥ १५ ॥

(५) आग्नीप्रमपरेण श्वभ्रं सवालघानेन चर्मणा ऽवनह्य वालघानेनाहान्ति ॥ १६॥

(२) तयोस्त्रैवर्णिको जयतीत्यर्थः।

(३) वर्तुले चर्मणि मार्जालीयं दक्षिणेन स्त्रीपुमांसावित्यर्थः।

(४) चतुर्ष्वीप स्रक्तिषु ये केचन पुरुषाः स्रन्ति ते दु•दुभीन्वाद-यन्तीत्यर्थः।

(५) आग्नीध्रस्थानस्यापरेण गर्ते सात्वा सपुच्छेन चर्मणा बद्ध्या पुच्छेनाहन्तीत्यर्थः ।

⁽१) शृद्धत्रेवर्णिको वर्तुले चर्मणि व्यायच्छेते विरुद्धमारमाभिमुख-माकर्षणं कुर्वाते, मदीयमिदं मदीयमिद्मिति स्पर्धया स्वाभिमुखं ब-लादाकर्षणं कुर्वाते इति यावत्।

वाळधानं पुच्छमुच्यते ॥ १६ ॥ (१) गोघाबीणा काण्डवीणाश्च पतन्यो बादयन्ति ॥१७॥ उपगायन्ति ॥ १८ ॥

स्तोत्रस्योपगानं कुर्वन्ति ॥ १८ ॥ अन्यांश्च शब्दान् कुर्वन्ति ॥ १९ ॥

ये केचन गानप्रसिद्धा मुच्छनादयः(२)॥ १९॥

उद्कुम्भान् शिरस्सु कृत्वा मार्जालीयं दास्यः परियान्ति २०

वाचयत्येनाः पर्याचादिषु॥ २१॥

पना दास्यः पर्यायादिषु वाचयति ॥ २१ ॥ हैमहा३ हैमहा३ इति ॥ २२ ॥

पर्यायाानेदानीमाइ—

गावा हारे सुरभय इदं मधु गावा गुलगुलुगन्धय इदं मधु गावा घृतस्य मातर इदं मधु ता इह सन्तु भू-यसीरिदं मधु तकावयं स्रवामह इदं मधु शम्या प्रतरता-मि वेदं मधु न वै गावा मन्दारस्य गङ्गाया उदकं पषुः सरस्वतीनदीं ताः प्राच्य उज्जिगाहीर इदं मधु निगी-ये सर्वा आधीरिदं मधु मध्वत्याकर्षेः कुशौर्यथेदं म-ध्विति॥ २३॥

एवं मध्वित्याकर्षेः कुशैरिति सर्वत्राज्यकः॥ २३॥ अपस्वयं प्रदक्षिणं चास्तोत्रान्तात्॥ २४॥ दास्यः पारियन्ति(३)॥ २४॥

त्रिस्त्रिक्षी ॥ २५ ॥

⁽१) गोघाचर्मणा नद्धा वीणा गोघावीणाः, काण्डः शर हत्यु-च्यते, तन्मय्यो वीणाः, ता उमयविधा वीणाः सर्वाः पत्न्यो वादय न्ति, स्तुतिभिः सञ्जिणस्ता उपगायन्तीत्यर्थः।

⁽२) मर्देलभेरीपदहादिजन्यानन्यानपि शब्दान् लोकाः कुर्वन्ती-तिभावः।

⁽३) अवदक्षिणं सक्वत्परियन्ति ततः प्रदक्षिणं सकृत्परियन्ति म-हामतस्य स्तोत्रस्य समाप्तिं यावत् ।

अपसन्यं प्रदक्षिणं च परिगमनम् ॥ २५ ॥ निषिच्य मार्जालीये पूर्णां निद्धति ॥ २६ ॥ निषिच्य यत्र कचन प्रदेशे मार्जालीये पूर्णां निद्धति दास्यः॥ २६ ॥ अभिगरादिस्तूयमाने सर्वे कियते ॥ २७ ॥

स्त्यमाने महावतस्तोत्रे। महावतशब्दश्च एकः क्रतुप्रतिपादकः महावतमग्निष्टोम इति। अपरः स्तोत्रपर्यायः महावतेन स्तुवीतेति। अत्र च श्रूयत इति। स एष संवत्सरिक्षमहावतश्चतुर्विशे महावतं विषुवित महावतं महावत एव महावतमिति। त्रिष्विए क्षतुषु महावतस्तोत्रं भवः तीति संप्रदायः। महावत एव महावतमित्यपरे। एवं हि श्रूयते त्रिम्हावतं प्रकृत्य-'ते तेजस्विन आसुः सत्यवादिनः संशितवताः यस्तु महावतत्वमनुष्ठितमन्ये आचार्या इति। अथ य उ हैनमप्येतिई तथोः पर्युपंथा तरनुष्ठितम्ये। एषां दोषमाह—यथा पात्रमुदकमासिके विमृत्येदेवं हैते विमृत्येयुः। अतश्च उपर्युपयन्ति महावतकतौ महावतं स्तोत्रमिति त्रिमहावते दोषमुद्धाः महावते महावतस्तोतं विद्धाति। अतश्च विकल्पो न महावत एव महावतमिति॥ २७॥

अतिरात्रः इवः॥ २८॥

प्राप्तत्वादयमिति चेत् ? उच्यते, संवत्सरसञ्चत्वात् पूणें संवत्सर रेऽतिरात्रामावो मा भूदित्यतिरात्रग्रहणम् । यद्यवमतिरात्रः किमिति भवति ? "अयेतदहरत्येति यद्वेषुवतम्" इति वचनात् ॥ २८ ॥

तिस्रोऽनूबन्ध्या मैत्रावरुणीवैद्वदेवीवाहस्पत्याः ॥१९॥

अत्र च द्रव्याभ्यासो न कर्मबहुत्वम् । अभ्यस्तक्रपमेकं कर्मे प्रक्रः ताचेकत्वात् ॥ २९ ॥

संवत्सरावरेषु सत्त्रेष्वसारस्वतेषु सहस्रदक्षिः

णावरेषु च ॥ ३०॥

कतुषु तिस्रोनुबन्ध्या भवन्ति । एवं श्रूयते—"त यः सहस्रं वा भूयो वा दद्यात्स एताः सर्वा आलमेत" इति । तथा—"अधो ये दीर्घसत्त्रः मासीरन् संवत्सरं वा भूयो वा त एनाः सर्वा आलमेरन्" इति ॥३०॥ अनुबन्ध्यावपाहोमान्ते दक्षिणस्यां वेदिश्रोणौ सर्वकेः

शदमञ्जलोमवपनम् ॥ ३१ ॥

मबतीति सुत्रशेषः॥ ३१ ॥

पत्न्यश्च ॥ ३२ ॥

चरान्दात् वपनेनामिसंबध्यन्ते ॥ ३२ ॥ त्रैधातव्युदवसानीया सर्वत्र ॥ ३३ ॥

सर्वत्रग्रहणेन संवत्सरावराणि सत्राणि असारस्वतानि सहस्रहाक्षिः णावराश्च कतवो गृह्यन्ते । तुरुयं हि ब्राह्मणमन्नानृबन्ध्याविधायकं त्रैधाः तवीविधायकं च ॥ ३३ ॥

अवभृथादुदेत्य ज्योतिष्ठोमोऽग्निष्ठोमः पृष्ठदामनीयः॥३४॥

अवसृथग्रहणं समाप्युपलक्षणार्थम्। ननु चात्राग्निष्टोम एव भवति संस्थान्तरस्यानुकत्वात् व्यर्थमाग्निष्टोमग्रहणम्। अत उच्यते, गुण-कामानां प्रवृत्तिज्ञापनार्थमित्यदोषः। पृष्ठशमनीय इति च संज्ञा॥ ३४॥

सहस्रदक्षिणो वा॥३५॥

वा प्राकृतदक्षिणः॥ ३५॥

एकाहमेके ॥ ३६॥

६च्छन्ति ॥ ३६ ॥

सत्त्राङ्गं प्रकरणात् ॥ ३७ ॥

स च पृष्ठशमनीयः सत्त्रस्याङ्गं भवति । ताद्धि प्रकृत्य श्रूयते "अव भृथादुदेत्य ज्योतिष्टोमोऽग्निष्टोमः पृष्ठशमनीय" इति ॥ ३७ ॥ िर्के च—

फलाऽख्रुतेश्च ॥ ३८ ॥ न चात्र फलं श्रूयते । तस्मादिष सत्त्राङ्गम् ॥ ३८ ॥ न फलं न्यायात् ॥ ३९ ॥ नैतदेवं सत्त्राङ्गमिति । न्यायेन हि फलमत्र परिकल्पते ॥ ३९ ॥

अपि चाऽस्य कालप्रधानः शब्दः सत्त्राहुद्वसायेति। एवं प्राप्ते पुनर्व्यावत्येते। सत्त्राङ्गमेव प्रकरणात्। फलाश्चतेश्चेति फलवत्सत्त्रसः विधा तदङ्गतेव न्याय्या। एवं च फलं न कल्पयितव्यं भवति। पृष्ठशमः नीय इति चार्थानुगता संझा पृष्ठानां सत्रे नियुक्तानामुपजातश्चमाणां शमनं करोतीति पृष्ठशमनीयः। सारस्वतेषु च प्रतिषेधात्-"अपृष्ठशमः नीयानि सारस्वतानि" इति ॥ ४०॥

कालप्राधान्याच्य ॥ ४० ॥

सहस्रद्विणे त्रिरात्रे प्रतिविभज्य नयन्रोहिणीसुपध्वः स्तामप्रवीतामतिरेचयति त्रिरूपां वा ॥ ४१ ॥ अहीने यः सहस्रदक्षिणि स्विरात्रस्तत्र प्रतिविभागेन प्रत्यहं दक्षिणाः पथेन दक्षिणां नयन्ति हिणीं वर्णान्तरोपध्वस्तां अकामितामितिरेचयित । त्रिस्पां वेति विकल्पः। प्रयमेव हि श्रूयते इति ॥ ४१ ॥

आचेहन् प्रथमां नचेद्न्त्ये वा पश्चात् ॥ ४२ ॥ आचेऽहिन पक्षे गवां प्रथमां नचेत् । अन्त्ये वाऽहिन पश्चादिति ४२ हविधानाग्रीधान्तरे द्रोणकलकामेनामाघाषयत्याः

जिघेति ॥ ४३ ॥

हविर्घानाम्निभान्तरे व्यवस्थितामेनां रोहिर्णा द्रोणकलशमात्रापयः त्याजित्रेत्यनेन मन्त्रेण ॥ ४३ ॥

इंडे रन्त इति दक्षिणेऽस्याः कर्णे यजमानो जपति ॥४४॥ प्रत्यगाशीर्यागेऽपि स्रति यजमानग्रहणं क्रियते। रोहिणीसंस्कारो-ऽयमिति अध्वर्युमां भूदिति॥४४॥

बोचेरिति चाउन्ते ॥ ४५॥

मन्त्रस्य ब्रुतादिति विकल्पः॥ ४५॥

सर्वतो नवसु दशमीं कृत्वा होत्रे द्यात् ॥ ४६ ॥ त्रिभ्योऽप्यहोभ्यस्तिस्रस्तिस्र उपादाय रोहिणीं च दशमीं कृत्वा

होत्रे दद्यात्॥ ४६ ॥ उन्नेतारो वा कृत्वानाश्रावयते ॥ ४७ ॥

ह्रो वोक्षेतारा कुवींतिति वचनात्। तयोश्च यतरोऽनाश्चावयेत् तस्मा पनां दशमीं द्यात्, होत्रे वेति विकल्पः। उन्नयनन्तु विसागन कुर्वाते॥

दशद्शा ९ भेदेन दक्षिणा दचात् ॥ ४८ ॥

अन्यूना दशतो नयेदिति वचनातः । अत्र च चोदकानुरोधेन दशः तीनां दानमनुष्ठेयम् ॥ ४८॥

अन्बन्ध्यावपाहोमान्ते द्यादेनाम् ॥ ४९ ॥

दशमीमिति सुत्रशेषः॥ ४९॥

उद्यसानीयायां वा ॥ ५० ॥

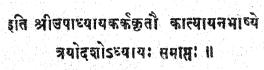
वातिविकल्पः॥ ५०॥

अन्यदिच्छन् ॥ ५१ ॥ अन्यदिच्छया ददातीति विकरूपः ॥ ५१ ॥ अहर्गणे व्युत्कामताचन्बहम् ॥ ५२ ॥ कर्त्तव्यमिति सुत्रशेषः ॥ ५२ ॥ वसतीवरिग्रहणं च ॥ ५३ ॥ अन्बह्मेव कर्त्तव्यम् ॥ ५३ ॥

एके माध्यन्दिने ऽवनीय ।। ५४ ।।

एके माध्यन्दिनेसवनेऽवनीय वस्तीवरिश्रहणं कुर्वन्ति । एके परि-हारकाल प्वेति विकल्पः॥ ५४॥

हीत त्रयोदशाध्याये तृतिया कण्डिका।



गवामयनं समाप्तम् ।

चर्तुदशोऽध्यायः।

वाजवेयः शरचवैद्यस्य ॥ १ ॥

गवामयनमभिहितामिदानीमवसरप्राप्तो वाजपेयोऽनुविघेयः। बाज-पेय इति कर्मनामधेयम् । न हि द्रव्ये गुणे वा मिसिद्धिरस्य । स च शर्राद भवति । शर्राद वाजपेयेन यजेतेति वचनात् । अवैद्यस्येति शा-खान्तरात् । लिङ्गाच्च । "अथ यदि ब्राह्मणो यजेत" "यदि वा राजन्यो यजेत" इति (शञ्बा०५-१-४-२) विशेषाविधानम् ॥१॥

उभवतः शुक्लपक्षौ बृहस्पतिस्रवेन यजते ॥ २ ॥ याबुत्तरौ शुक्लपक्षौ तयोर्षृहस्पतिसवः ॥ २ ॥ ज्योतिष्ठोमेन वा ॥ ३ ॥

यजेतेति विकल्पः॥ ३॥

द्वाद्श वा ॥ ४ ॥ उभयतः शुक्लपक्षान्यजते ॥ ४ ॥ तत्र च-

(१)पुरस्तादयुक्षु ज्योतिष्ठोमः पार्छिकानीतरेषु ॥५॥ युक्षु पक्षेषु पार्ष्ठकानीति ॥ ५ ॥

प्रतिलोमं पार्छिकान्युपरि ॥ ६ ॥

उपरिष्टात् प्रातिलोम्येन अयुश्च पार्ष्टिकानि, युश्च च ज्योतिष्टोमः। पार्ष्टिकान्यपि प्रातिलोम्येन त्रयस्त्रिशारम्भणानि भवन्ति ॥ ६ ॥

(२)सर्वाग्निष्ठोमैर्वा राजसूयसोमैः॥७॥

उमयतो यजते, तेषां संस्थामात्रापनयः॥ ७॥

प्रतिलोमसुपरि ॥ ८॥

उपरिद्यात्मातिलोम्येन ज्योतिष्टोमादारभ्यति । अत्रांखदाभ्यम्रहणं राजस्यसोमोपदेशाद्भवति । पाष्टिकेष्वसन्नत्वाम्न भवति । अतिम्राह्य-म्रहणमपि ज्यह्नसंयोगाम्न भवतीति सम्प्रदायः ॥ ८ ॥

(३)नानादीक्षाः परियज्ञाः कालभेदात् ॥ ९ ॥

पार्ष्ठिकानां तन्त्रेण दीक्षाः कृताः इहापि तथैव मा भूवित्रिति नाना-दीक्षात्वमुच्यते । तत्कुतः ? कालभेदात् । भिन्नो हात्र काल इति ॥ ९॥

सप्तदश्वतिक्षाः ॥ १०॥

परियञ्चानां दीक्षाः प्राप्ता एव । पतास्तु वाजपेयस्य ॥ १० ॥
देवस्रवितरिति जुहोति यजत्यादिषु ॥ ११ ॥

"स कर्मणः कर्मणः पुरस्तादेताः सावित्रीमाहुति जुहोति" (श्राव्या ५-१-१-१४) इति वचनात । कर्मशब्दः प्रायशो यज्ञतिष्वेव वर्त्तते इत्यभिप्रायः । तेन यज्ञत्यादिष्वित्युक्तम् ॥ ११ ॥

सकृद्दीक्षारम्भे कर्मैकत्वात ॥ १२ ॥

अप्सु दीक्षाधारम्भे सकदेव होतन्या। कुत एततः ? कर्मैकःवात्। कार्यैकःवादित्यर्थः। एकं हि कार्ये दीक्षाणां पुरुषसंस्कार इति। यजन

(१) शुक्के पक्ष ऽयुग्मेषु प्रथमतृतीयपञ्चमसप्तमनवमैकादशेषु बः द्सु दिनेषु ज्योतिष्टोमः, युग्मेषु द्वितीयचतुर्थषष्टाष्टमदशमद्वादशेषु च, पृष्ठे भवान्यहानि भवन्तीत्यर्थः।

(२) अध वोमयतो राजव्यान्तर्वतिभिः पवित्रामिषेचनीयादिभिः

सप्तिमनविभवी सोमयागैर्यजेतानिनष्टोमसंस्थैरित्यर्थः।

(३) उभयतो विहिताः परियञ्जा वृहस्पतिसवादयः पृथग्दीक्षा भ-चन्तीत्यर्थः।



त्यादिषु पुनर्ये वाजपेयाङ्गभूता यजतयो दीक्षणीयादयः तेष्वेव न तदः क्षेत्रविप प्रयाजादिषु । न हि ते साक्षाद्वाजपेयस्य ॥ १२ ॥

क्रयणवेद्यारम्भणप्रवर्गोत्सादनाग्निप्रणयनहिवधेः नाग्नीषोमाणाः सद्भारनीप्रधिष्णयनिवपनवसतीव-रिग्रहणपरिहरणेषु च कमीन्तरत्वात्प्राक्सुत्यायाः ॥१३॥ क्रयणादीनि प्रागव सुत्याया भवन्ति । यज्ञतिविद्येषणमेतत् प्रा-

क्रयणाद्धिनं प्रागव सुत्याया भवन्ति । यजातावद्यपणमतस् अष्ट क्सुत्याया इति । अथाग्नीषोमीयेण पशुना चरित्वेतामाद्वृतिमुत्स्जन्तीः ति वचनात् ॥ १३ ॥

सोमात्कीयमाणात्सहितं दक्षिणतः सीसेन परिस्रतः क्रयणं केशवात् ॥ १४॥

सवतीति सुत्रशेषः । केशवो दीर्घकेशः । षण्ड इति केवित् । परि॰ स्नुत्सुरोच्यते ॥ १४ ॥

तद्द्रव्याणां वा ॥ १५॥ परिस्नुद्द्रव्याणां(१) वा क्रयणं परिस्नुतो वेति विकल्पः॥ १५॥ पर्युद्धमागोऽनुहरणाम् ॥ १६॥ पर्युद्धमाणे सोमे परिस्नुतस्तद्द्रव्याणां वाऽनुहरणम् ॥ १६॥

दिचिणेन प्रवेद्य दक्षिणारनी पक्तवाऽपरेऽन्ते नेष्टा सरां करोति॥१७॥

दक्षिणेन द्वारेण विभित्ते प्रवेदय दक्षिणाक्षे पक्ता सुरामपरे हन्ते नेष्टा करोति । यदि न पक्वा ततः पच्यते ॥ १७ ॥

खरं कृत्वा नाराशाः सस्थाने ऽपरम् ॥ १८॥

(२)करोतीति वाक्यशेषः॥ १८॥

दक्षिणतः सर्निध करोति ॥ १९ ॥ दक्षिणतेः हविर्धानस्य कुद्वारं करोतीत्यर्थः ॥ १९ ॥ यूपवेष्ठनः, सप्तद्शभिवेस्त्रेव्युद्ग्रन्थनं वा परिव्ययणकाले ॥ २० ॥

⁽१) तानि च 'राष्पतोक्मलाजानग्रहु' संज्ञानि ।

⁽२) प्रहसादनार्थे प्राकृतं खरं कृत्वाऽध्वयुरिव नाराशंससंज्ञानां चमसानां निधाने द्वितीयं खरमिति, करोतीत्यस्य पूर्व स्यासुषद्गः।

"सप्तद्शिमर्वासोभियूपो वेष्टितो वा वित्रिधितो वा भवति" (श्वाव्याव ५-२-१-५) शित वचनात् । व्युद्धन्धनं च अवचूलकरणम् । तच्च परिव्ययणकाले परिव्ययणाद्वा परत, आगन्तुकत्वात् ॥ २० ॥

श्वो वा सवनीयेषु ॥ २१ ॥

यूपवेष्टनं भवति । तत्र हि वाजपेयशन्दो वर्तते । वा अग्नीषोमीय एव व्युद्ग्रन्थनं कर्त्तव्यम् । यूपसंस्कारत्वात्तस्य तदुद्देशेन विहितत्वात्॥

उत्कीर्णसमाग्रों गौधूमचषालः ॥ २२॥

यूपो भवतीति वाक्यशेषः । "गर्तवान्यूपोऽतीक्ष्णायो भवति" (शब्बा०५-२-१-७) इति । तथा "गौधूमं चषालं भवति" (शब्बा० ५-२-१-६) इति श्रुतेः।गौधूमं गोधूमविकारमयं चषालं भवति ॥ २२॥

सुत्यादौ हिरण्यस्रजोऽपिनस्थन्ते ऽधिकृता यजमानः पत्नी च सुत्यस्य तच्छव्दात् ॥ २३ ॥ हिरण्यमालिनो वाजवेयेन चरन्तीति श्रूयते । सुत्या च वाजपेयः शब्दस्य वाच्या ॥ २३ ॥

सर्वत्राविशेषात् ॥ २४ ॥

सर्वत्र वा हिरण्यमालित्वम्। सर्वो ह्ययं वाजपेय इति ॥ २४॥ एकधनप्रवेद्यानकाले सुरां नेष्टाऽपरेण प्रवेद्य खरे करोति सन्धिना पात्राण्याहृत्य पात्रे वालेन पुनाति ॥ २५॥

नेष्टैवाभित्रवृत्तत्वात् ॥ २५ ॥ प्रातःसवनेतिग्राह्यान्गृहीत्वा षोडिशानं पश्च चैन्द्रान् २६ ग्रहान् गृह्वाति ॥ २६॥

इति चतुर्दशाध्याये प्रथमा कण्डिका।

ध्रवसदामिति प्रतिमन्त्रमति याद्यवद्धोमः॥ १॥ पञ्चानामेन्द्राणाम्॥ १॥ सप्तद्यापरान् ॥ २॥

सोमग्रहान् गृह्वाति ॥ २॥

1

नेष्टा च तावतः सौरान् ॥ ३॥

चशब्दात् गृह्वति ॥ ३॥ ५ का॰ व्यतासं ग्रहणम्॥४॥

"सोमग्रहमेवाध्वर्युर्गृह्णाति सुराग्रहं नेष्ठैयमेवैनान्व्यत्यासं गृह्णीतः" (शञ्जा०५-१-२-१६) इति वचनात् ॥ ४॥

(१)अक्षानतिक्रमणं ग्रहाणाम् ॥ ५॥

कर्त्तव्यिमिति शेषः॥ ५॥

उपर्युपर्यक्षमध्वर्युवीरयत्मवीधो नेष्टा

सम्प्रचाचिति॥ ६॥

अनेन मन्त्रेण ॥ ६ ॥

विष्टचावित्याहरतः॥ १॥

अध्वर्युर्नेष्टा च ॥ ७॥

हिरणमयेन मधुग्रहं गृहीत्वा खरमध्ये साद्याति ॥ ८॥ ततः—

> उक्थ्यादि ॥ ९ ॥ अतिरात्रपज्ञुनुपाकृत्य वज्ञापृद्धिन मरुद्भय उज्जेषेभ्यः ॥ १० ॥

उपाकरोति । वशा रिका । पृथ्निश्चित्रा ॥ १० ॥ तदभाचे ऽपृद्धिनम् ॥ ११ ॥

पुरन्यभावे अपृदिनसुपाकरोति ॥ ११॥

पाजापत्थांश्र सप्तदश(२) इयामतृपरान्

वस्तान् ॥ १२ ॥

उपाकरोति॥ १२॥

तद्गुणाभावे सर्वेषामेकदेशोऽपि ॥ १३॥

तद्गुणः स्यात् । एवं हि श्र्यते-"यद्येवः समृद्धान्न विन्देदपि कतिः पया एवेवः समृद्धाः स्युः" (शञ्जा०५-१-३-१०) इति ॥ १३ ॥

वाच उत्तममेके ॥ १४॥



⁽१) सोमग्रहाणां सुराग्रहाणां च अक्षाणामुख्छङ्घनं न कर्चन्यः मित्यर्थः।

⁽२) श्यामश्चासौ त्परश्चेति विग्रहः । त्परः शृङ्गरहितो, बस्तः साण्डः, प्रजनियतिति यावत् ।

"तद्भेके वाच उत्तममालमन्ते" (श्राव्याव ५-१-३-११) इति वचनात् सप्तदशं पशुमेके वाच आलमन्ते, एकं प्राजापत्यमिति विकल्पः । तस्य च नोपांशुःवमपाजापःयःवात् । अत्रैतव्चिन्त्यते — किं सप्तदशपशुगणसाधनकमेकं कर्म, उत सप्तदशैतानि कर्माणी ति । कुतः सन्देहः ? यदि कृतैकशेषाणां तद्धितः अयं चायश्चेत्ये कशेषीकृत्य तद्भितोत्पत्तिस्तदैकं कर्म । अथ तद्भितोत्तरकालमे करोषः प्राजापत्यश्च प्राजापत्यश्च प्राजापत्या इति तदा सप्त दशकर्माणि । अत्र च चोदकाबाधेन वाक्यस्य वर्णनं कर्चव्यम्। प्रकृतावेकपञ्जानिष्पन्नेन हृदयादिगणेन यागामिनिर्वृत्तिः कृता, इहापि तथैव क्रियते चेत् ? षोडशानामालम्भवैयर्थम् । अथैकैकमवदानं मृहीत्या पकादशसंख्या पूर्यते, तथापि स्रात षण्णामालस्मवैयधर्यः प्रसङ्गः; न च चोदकानुप्रह इति । तस्मान्नैकशेषीकृतानां तद्धितीत्पत्ति । र्युक्तरूपा। कृतताद्धितानां त्वेकशेषत्वे नेष दोषो भवति। तस्मात्सप्तदः शैतानि कर्माणीति । तेषां च सम्प्रतिपन्नदेवतैकत्वारसकृत्प्रक्षेपः। नन्दे-वमपि अवदानप्रदानान्तता न सम्भवति । तत्र चोदकवाध एव । नैष दोषः, अवदानस्य प्रदानान्ततानुष्रहे स्रति प्रधानाभ्यानुन्तिः प्राप्नोति । न चैषा गुणानुरोधेनेष्टेति । तस्मात्स इत्प्रक्षेप इति । सङ्ख्यक्षेपं च दर्शः यति "प्रजापतय इत्युपारं शुक्तवा छागानारं हविषोत्तव्हीति प्रजापत्य इत्येवोपार शुक्तवा छागानार हविः प्रस्थितं प्रेच्येति चषर्कते जही-ति' (श्वा०५-१-३-१४) इति । एतदाचार्यणापि प्रदर्शितमेव, "न द्रव्यभेदे गुणयोग दिति बात्स्यः" (का०सू०१-५-१३) इति ॥ १४ ॥

माहेन्द्रान्ते वद्यावपाचरणम् ॥ १५॥ माहेन्द्रग्रहयागाभ्यासान्ते वद्यावपावसारः ॥ १५॥ अवदानेश्च द्वेषऽ शुतैः ॥ १६॥

वशावदानैश्च द्वैघः ग्रुतैः प्रचारः "द्वेघावदानानि श्रपयन्ति" (श॰ब्रा०५-१-२-५) इति वचनात् । चशन्दाद्वपाप्रचारोत्कर्षे द्वेघा श्रपणम् । स्वकाल एव प्रधानयागः॥ १६॥

पूर्वभ्यो देवतास्विष्टकुद्भयामवयत्युत्तराणि विशे द्दाति॥ १७॥

वूर्वाणि हृद्यादीनि । उत्तराणि व्यङ्गानि ॥ १७ ॥ वासदेव्यग्रहान्ते प्राजापत्यानास् ॥ १८॥

वपाप्रचारः ॥ १८॥

स्रुग्वयूह्नात्प्राग्यविषा ॥ १९ ॥

प्राजापस्यानां प्रचारः॥ १९॥

यथान्यायं वोभयोः ॥ २०॥

यथान्यायं वा उभयोः वपाहितयोः प्रचारो भवति । यथान्याय-राज्देन चोदकानुसरणमुच्यते नोत्कर्ष इति ॥ २० ॥

वशायाय ॥ २१ ॥

चोदकानुसार एव नोत्कर्ष इति । वाशब्दो विकल्पार्थः—विकल्पेन होतच्लुक्यत इति ॥ २१ ॥

एैकध्यं च अपणम् ॥ २२ ॥

एकत्र श्रपणमवदानानामस्मिन्पक्षे ॥ २२ ॥ अदानं च विद्यो ॥ २३ ॥

इयङ्गानाम् । विद्शब्देन प्रजोच्यते ॥ २३ ॥

माध्यन्दिनीयैः सह नैवारश्रहबीईस्पत्यः सप्तदः

शशारावः ॥ २४॥

्रमाध्यन्दिनीयैः सवनीयैः सह नैवारश्चरुः सप्तदशशरावपरिमाणे। बाईस्पत्यः कर्तव्यः॥ २४॥

तत्र चोदकप्राप्तेन चतुर्भुष्टिना निर्वापेन सप्तदशरायो न भव-तीति अवश्यंभाविनि संख्यामुष्टिवाधे इदमाह—

संख्यामुष्टिनिवृत्तिः सामान्यात्॥ २५॥

संख्यासामान्येन सप्तद्शसंख्यया चतुःसंख्या निवर्धते, शरावैश्च मुष्टयः। कुत एतत् ? सामान्यात्। समानं हि समानस्य निवर्त्तकं भव-ति। यथा तैलं घृतस्येति॥ २५॥

एवं प्राप्त आह—

न, यजितिशब्दात्॥ २६॥

नैतदेवं संख्यामुष्टघोरुमयोरिप निद्यस्तिरिति । किं कारणम् ? यज्ञिति । विद्यास्ति । योगे हि सप्तद्शसंख्यारावाणि श्रूयन्ते, चतुःसंख्या-मुष्टयश्च निर्वापे । न चान्यत्र श्चृतं सत्यपि सामान्येऽन्यस्य निवर्त्तकं भवति । न हि शिरोभ्यक्ते श्चृतं तेलं भोजने घृतस्य निवर्त्तकं भवति । कथं तिहैं चतुर्मुष्टिके निर्वापे सित सप्तद्शश्चराव ओदनो भवति ! उच्यते, अर्थोदन्यतरस्य निद्युत्या भवितव्यम्—संख्याया मुष्टीनां वा । न द्यानिद्या सप्तद्शश्चाया सुष्टीनां वा । न द्यानिद्याया सप्तद्शश्चाया सुष्टीनां वा



सप्तद्शसद्श शतानि ददाति गोवस्त्राजावीनाम्॥२०॥ प्रत्येकम्॥ २०॥

सप्तद्वावृष्ट्यो निष्ककण्ठयः ॥ २८ ॥ श्रतुःसौवर्णिको निष्कः कण्ठे यासां ता निष्ककण्ठ्यः ॥ २८ ॥ हस्तिवद्यकमहानसानाम्(१) ॥ २९ ॥ सप्तद्यसंख्याविशिष्टानां दानम् ॥ २९ ॥

(२) जातेर्जातेश्चा ससद्दागणपूरणात् ॥ २० ॥ कुत पतत् ? सप्तदशसप्तदशान ददातीति श्रुतेः । भिन्नजातीयत्वे चैतद्भवतीत्यभिन्नायः ॥ २० ॥

द्रव्येषु वा सप्तद्याता ॥ ३१ ॥

न भिष्ठजातीयेषु । प्वं हि श्र्यते-सप्तद्शसप्तद्शानि ददातीति । गोदानं च दक्षिणा स्चितं "महामागा हि गावः" इति । तस्माद् गोद्रव्येषु सप्तद्शता ॥ ३१ ॥

इति चतुर्दशाध्याये द्वितीया कण्डिका ।

⁽१) महानसो रथ उच्यते।

⁽२) याबद्भवाद्याजाविजातीयसमदशगणाः पूर्यन्ते ताबद्दाती-ति भावः।

महत्वतीयानत इन्द्रस्य वज्र इति रथाचहरणम् ॥१॥
तश्च रथवाहतात्। तस्य च प्रदेशान्तरे हष्टार्थत्वात्। रथावहरणं
करोतीति अवपूर्वश्च हरितरवतारणे प्रवर्तते॥१॥
दक्षिणेन चात्वालमावर्त्तयति वाजस्येति धूर्यहीतम्॥२॥
रथमावर्त्तयति चात्वालस्य दक्षिणतो वाजस्येत्यनेन मन्त्रेण॥२॥
अश्वान्प्रोक्षत्यपोऽवनीयमानानस्नातान्वागतानप्स्यनतिति॥३॥
अनेन मन्त्रण॥३॥

देवीराप इति वा प्रोक्षति ॥ ४ ॥
समुच्चयो वा ॥ ५ ॥
मन्त्रयोभवति । प्वमिष हि श्रूयते ॥ ५ ॥
दक्षिणं युनक्ति वातो वेति ॥ ६ ॥
अनेन मन्त्रेण रथे॥ ६ ॥

उत्तरं वातरहहा हति ॥ ७ ॥

युनकीति वर्तते ॥ ७ ॥

दक्षिणाप्रष्टिं (१)जवो पस्त हति ॥ ८ ॥
दक्षिणार्थाष्टे दक्षिणस्य द्वितीय उच्यते ॥ ८ ॥

(२)अयुक्तश्चतुर्थेऽनुगच्छति सर्वयन्त्री ॥ ९ ॥

यन्त्रीति कविकापर्याणाद्यपेतः ॥ ९ ॥

वार्ष्टस्यसमेनानाघापयति वाजिन हति ॥ १० ॥

अनेन मन्त्रेण । वाईस्पत्यो नैवारचरुस्तम् अश्वानवद्यापयति । अवद्याणं चादवसंस्कारो वाक्यशेषातः—"तद्यदश्वानवद्यापयति वीर्यः मेवैष्वेतद्द्याति" (शब्बाव्य-१-४-१५) इति । स चायमाजिधावनार्थः संस्कारः । तत्रश्च विस्मरणे तदुत्तरकाळं न भवति ॥ १०॥

चतुर्युजो युनकत्यपरांस्तृष्णीं बहिवेदि षोडदा ॥११॥
रथान् । योजनिक्रियादोषत्वात् मन्त्रप्राप्तिमी भूदिति तृष्णीमि त्युष्यते ॥ ११॥

े देवस्याहमिति ब्रह्मा रथचकमारो हत्युत्करे नामि माञ्जे स्थाणौ स्थितम् ॥ १२ ॥

⁽१) धुर्यापेक्षया प्रकृष्टं देशमदनातीति प्राष्टर्बाह्यो युग्य इत्यर्थः।

⁽२) मुखरीवन्याचतुःकटपन्याणादिसर्वयन्त्रोपेतः सर्वयन्त्रीत्युच्यते ।

स्थाणुः खेडकम्च्यते ॥ १२ ॥

एन्द्राः सिनियस्य चऋदुन्दुभ्याः ॥ १३ ॥ सिन्यस्य चकारोहणदुन्दुभिवादनावहरणमन्त्रा ऐन्द्रा मवन्ति ॥१३॥ ससद्वा दुन्दुभीनास् जत्यनुवेदि पश्चादाग्निधात् ॥१४॥ अग्नीधमपरेण सप्तद्यदुन्दुभीनवहगयति अनुवेदि ॥ १४ ॥ बृहस्पते वाजमित्येकं दुन्दुभिमाहन्ति तूष्णीमितरान १५ अहन्तीति वर्तते । तत्र च तृष्णीमिति मन्त्रनिवृत्यर्थमाह ॥ १५ ॥ सन्त्रियः सप्तद्शेषुप्रव्याधानस्यति तीर्थोदुदीचः ॥ १६ ॥ इषुप्रव्याध इषुप्रक्षेप उच्यते । तीर्थादारभ्य सप्तद्शेषुप्रक्षेपान्त्रक्षिः पतीत्यर्थः ॥ १६ ॥

अन्त्ये मिनोत्योदुम्बरीः शाखाम् ॥ १७ ॥ अन्त्ये प्रक्षेपे शाखामौदुम्बरीं निखनित ॥ १७ ॥ देवस्याहामिति यजुर्युक्तमारोहित यजमानः ॥१८॥ यजुर्युकं रथं यजमानो देवस्याहामित्यनेन मन्त्रेण आरोहिति ॥१८॥ अध्वयोश्चि तृष्णीं ब्रह्मचार्यन्तेवासी वा वाचनाय ॥१९॥ वशब्दायजुर्युकं रथन्तरमध्वयोवद्याचारी अध्वर्युणा य उपनीतः

चशब्दाद्यजुर्युक्तं रथन्तरमध्वयोबिह्यचारी अध्वयुंणा य उपनीतः तस्य वाडन्तेवासी शिष्यो यजमानवाचनायारोहति ॥ १९ ॥ इतरेषामेकस्मिन्राजन्यो चैठ्यो वा सौरप्रतिग्रहाय॥२०॥

आरोहतीति वर्त्तते । इतरेषां रथानां राजन्यवैदययोरन्यतर एक स्मिन्नारोहति सौरप्रतिग्रहणाय ॥ २० ॥

आजि। शीघं यन्ति ॥ २१ ॥

आजिशब्देन स्पर्धोच्यते । स्पर्धया अहमहामिकया श्रीव्रं पावन्ति ॥ २१ ॥

वाजिन इति वाचयति ॥ २२ ॥ ब्रह्मचार्यन्तेवासी वा यजमानम् ॥ २२ ॥

इति चतुईशाध्याये तृतीया कण्डिका।

त्रसा त्रिः सामानि गायति ॥ १॥ त्रिस्सामगानं करोतीत्यर्थः॥ १॥

दुन्दुभीन्वाद्यन्ति॥२॥ बहुवचनोपदेशात् प्रकृता अप्रकृतास्त्र ॥ २॥

एव स्य इति प्रत्यृचं जुहोति ॥ ३ ॥ धावरस्वेत्रैष स्य इति प्रत्यृचम।हुतीर्जुहुयात्॥३॥ अनुमन्त्रयते वा ॥ ४॥

तानेव धावतोऽश्वान्। "अधैताभ्यां जगतीभ्यां जुहाति, वाऽनु वा मन्त्रयते'' (शब्बा०५-१-५-१८) इति वखनात्॥ ४॥

उत्तरेण च न्यूचेन ॥ ५॥

चशन्दान्जुहोति अनुमन्त्रयते वा । "अथोत्तरेण न्यृचेन जुहोति वाऽतु वा मन्त्रयते"(श्वा०५-१-५-२१) इति वचनात्। असिन्नयोगार्थ पृथग्योगकरणम् ॥ ५॥

सुन्वन् जयाति॥ ६॥ सुन्वन्यजमानो जिनातीतरान् रथान्॥६॥ शाखां पदक्षिणं कृत्वा यन्ति॥ ७॥ औदुम्बरीः शाखाम्प्रदक्षिणं कृत्वा आगच्छन्ति रथैः॥ ७॥ आगतेषु ब्रह्मावरोहित देवस्याहामिति ॥ ८॥ सर्वेष्वागतेषु रथचकात् ब्रह्माऽवरोहित देवस्याहमित्यनेन मन्त्रेण ॥८॥ एषा इ व इति मन्त्राहतमवहरते॥ ९॥

दुन्दुभिम्॥ ९॥

तृष्णीमितरान् ॥ १०॥ दुन्दुभीनवहरत इति॥ १०॥

अवरु नैवारमालभते तीर्थे स्थितमामा वाजस्येति ११ यजमानोऽवरुह्य रथात् चात्वाळोत्करावन्तरंण तीर्थे तीस्मन् स्थितं नैवारं चरुम् आमावाजस्यत्यनेन मन्त्रेणालभते ॥ ११॥

यजुर्युक्तानाघापयति वाजिन हति॥ १२॥ यजुर्युक्तांस्त्रीनश्वाश्रवारमात्रापयति वाजिन इत्यनेन मन्त्रेण ॥१२॥ वतुर्थे युक्तवाऽध्वर्धवे ददाति॥ १३॥ चतुर्थमस्वं युक्त्वाऽध्वर्यवे रथं ददाति ॥ १३ ॥

सर्वेभ्यः **षोडश** ॥ १४ ॥ सर्वेभ्य एवर्त्विग्भ्यः षोडश रथान् ददाति ॥ १४ ॥

अध्वर्युयजमानौ मधुग्रहा सौरप्रतिग्रहाय प्रयच्छत उत्तरस्यां वेदिश्रीणा उपविष्टाय ॥ १६ ॥

सौरप्रतिप्रहीता च राजन्यो वैश्यो वा योऽसी रथमारूढः ॥ १५॥ नेष्टा च सौरान्पश्चिमेन निर्हत्य शालामपरेण हृत्यैकं प्रयच्छन्नाहानेन त इमं निष्कीणामीति ॥ १६॥

नेष्टा च सौरप्रहान् पश्चिमेन हिवधानद्वारेण निर्द्धस्य शालामपरेण हत्वैकं सौरप्रतिष्रहाय प्रयच्छन्नाहानेन त इमं निष्कीणामीति। ततः सर्वानेच सौरप्रहान्प्रयच्छति। मधुप्रहमादचे॥ १६॥

ब्रह्मणे मधुग्रहं ददाति सपात्रम् ॥ १७ ॥ ग्रहराब्दस्य द्रव्यविषयत्वात् सपात्रमित्युच्यते ॥ १७ ॥ तः स यथेष्टं कुरुते ॥ १८ ॥ ददातीति वाऽन्यत्रासिञ्चति वा पिवति वेति ॥ १८ ॥ द्रादशः सुवाहुतीर्जुहोत्यापये स्वाहेति प्रातिमन्त्रं वाचयति वा ॥ १९ ॥

विकल्पः, श्रुतेः । वाजनपक्षेत्रपि द्वादशसंख्या यथा स्यादिति द्वादशग्रहणम् ॥ १९ ॥

षड् बोत्तराः॥ २०॥

जुहोति वाचयति वा। "अध षट् क्लर्सोर्जुहोति वा वाचयति वा'' (ञ्च० ब्रा० ५-२-१-३) इति श्रूयते ॥ २० ॥

नेष्टा पत्नीमानेष्यन्कौद्यां वासः परिधापयति चण्डातकं दहरं वा॥ २१॥

परिधापयतीति कारितत्त्राद्ध्येषणाऽत्र भवति । चण्डातकं चलनक उच्यते । एवं ह्यभियुक्तोपदेशः—अर्थोककं विलासिन्या वासश्चण्डातकं विदुः । दहरं तु कौपीनम्, दहरशब्दस्य अल्पनाचकत्वात्॥ २१॥

अन्तरं दीक्षितवसनात् ॥ २२ ॥

परिघापयति कौशम्॥ २२॥

निश्रयणीं यूप उच्छयत्युत्तरां दक्षिणां वा ॥ २३ ॥

"स दक्षिणत उदङ्रोहेदुचरतो वा दक्षिणा' (शश्त्रा०५-२-१-९) इति वचनात ॥ २३ ॥

आरोक्ष्यन् जायामामन्त्रयते जाय एहि स्वो रोहा-वेति रोहावेति प्रत्याह प्रजापतेरित्यारोहतः ॥ २४॥

जाथापती ॥ २४ ॥

स्वरिति गौधूममालभते ॥ २५॥

चषालम् ॥ २५ ॥

शिरसा यूपमुजिहीते Sमृता इति ॥ २६ ॥

अनेन मन्त्रेण यूपोच्छ्यमुजिजहीते ॥ २६॥

ग्रस्मे व इति दिशो वीक्षते ॥ २७ ॥

यजमानः ॥ २७ ॥

(१)ससद्वाद्वत्थपत्रोपनद्वान्षपुटानुद्स्यन्त्यसमै

विद्याः ॥ २८ ॥

प्रजाः ॥ २८ ॥

प्रतिगृह्णात्येनान् ॥ २९ ॥

तांश्च यजमानः प्रतिगृह्याति ॥ २९ ॥

नमो मात्र इति भूमिमवेक्षते, सरक्मे बस्तचर्मण्यः

वरोहति, भूमी वा॥ ३०॥

सहक्रमायामेव । सूमिग्रहणं सहक्रमार्थमेव, न ह्यन्यथावाच्यमर्थः प्राप्तत्वात् ॥ ३० ॥

जत्तरवेदिमपरेणौदुम्बरीमासन्दीं बस्तचर्मणा स्तृः णातीयं त इति ॥ ३१ ॥

अनेन सन्त्रेण ॥ ३१ ॥

सुन्वन्तमस्यासुपवेदायति यन्तासीति ॥ ३२ ॥ बाहुगृहीतं यज्ञमानमासन्द्यासुपवेद्ययति यन्तासीत्यनेन मन्त्रेण॥३२॥ नीवारेण प्रचरति ॥ ३३॥

व्यस्मिश्रवसरे ॥ ३३ ॥

⁽१) यजमानपुत्रादयो यजमानाय श्वारमृत्तिकायाः पुटान् सप्तदः शाइवत्थपत्रेवद्यानूर्ध्वे श्विपन्तीत्वर्धः।

प्राक्षिष्ठकृत ग्रौदुम्बरे पात्रेऽप आसिच्य पयश्च॥३४ सप्तानां पड्वर्गाणां पयोऽत्रासिच्यते ॥ ३४ ॥ सप्तद्शाञ्चान्याचपति ॥ ३५ ॥ यावत्समृति वा ॥ ३६ ॥

तस्य-

एकवर्जम ॥ ३७॥

एकमम्नं वर्जियत्वा ॥ ३७॥

अभोजनं तस्योच्छ्वासात् ॥ ३८ ॥ तस्य चाभोजनमुच्छ्वासात् यावजीवमित्यर्थः ॥ ३८ ॥ स्रुवेण सम्भृताज्जुहोति बाजस्येममिति प्राति-सन्त्रम् ॥ ३९ ॥

सप्तैतानि जुहोति कर्माणि। ततश्च सप्तानां षड्वर्गाणां पयोऽत्रासिः च्यते । सप्त औषधचतुर्मुष्टिकानि भवन्ति चोदकानुप्रहाय । अपां चाज्यवर्मो भवति वर्णसामान्यात् ॥ ३९ ॥

रोषेणाभिषिञ्चति यज्ञमानं देवस्य त्वेति ॥ ४०॥
मन्त्रेण। रोषञ्च हुतरोषः॥४०॥
सरस्वत्ये वाचस्थाने विद्यवेषां त्वा देवानाम्॥४१॥
प्रयोगः॥४१॥

सरस्वत्ये त्वेति वा ॥ ४२ ॥ सम्राडयमसावित्याह नामग्रहं त्रिहच्चैः ॥ ४३ ॥ एवमेव श्रुतत्वात् ॥ ४३ ॥

अग्निरेकाक्षरेणेत्यनुवाकं द्वादशवत्कृत्वा नैवार-स्विष्टकृदिडं करोति साहेन्द्रादि च ॥ ४४ ॥

द्वादशबदिति जुहोति वा वाचयति वा । अत्रापि हि श्र्यते— "अथोज्जितीर्जुहोति वाचयति वा" (श० ब्रा० ५-२-२-१६) ॥ ४४ ॥

अवरुद्ध गच्छति स्तोत्राय प्राहितः ॥ ४५ ॥ "त्रुस्तोत्राय प्रमीवति स उपावरोहति सोऽन्ते स्तोत्रस्य भवत्यन्ते शस्त्रस्य" (श॰ ब्रा॰ ५-२-२-२१) इति ॥ ४५ ॥

उज्जितिभ्यो वोत्तरो माहेन्द्रः ॥ ४६ ॥

मनति । ततः स्विष्टकादिडं करोति ॥ ४६ ॥ षोडक्यन्ते स्तोत्रं चमसैरेव ॥ ४७ ॥ षोडिश्यहयागान्ते स्तोत्रं चमसैरेव भवति । ब्रहो न भवत्येवका-रकरणात् ॥ ४७ ॥

ऋत्विक्चमसेषु सप्तद्शावनयति ॥ ४८ ॥ सप्तद्शसोमप्रहात् ऋत्विक्चमसेष्ववनयति । इयांस्तु विशेषः॥४८॥ द्वौ द्वौ ॥ ४९ ॥

अवनयति ॥ ४९ ॥

एकन्नेष्टुः ॥ ५० ॥

चमसेऽवनयति ॥ ५० ॥ उदवसानीयान्ते यूपवेष्टनान्यध्वर्यवे द्दाति ॥ ५१ ॥ वासांजि॥ ५१॥

यथोपयुक्तः हिरण्यसूजः ॥ ५२ ॥ दीयन्ते । या यस्य हिरण्यस्रक् उपयुक्तः ॥ ५२ ॥

इति चतुर्दशाध्याये चतुर्था काण्डका ।

इति श्रीकर्कोपाध्यायकृते कात्यायनसूत्रभाष्ये वाजपेयश्रतुर्देशाध्यायश्र समाप्तः ।

पश्चदशोऽध्यायः।

श्रुतिमन्त्रपाठानुसारिणाऽऽचाँवण वाजपेयोऽनुविहितः। इदानीमचः सरप्राप्तो राजसूयोऽनुविधेयः । तदर्थं सुत्रम् ।

राज्ञो राजसुयः ॥ १॥

भवतीति सुत्रधेषः । स चायं राजधन्दः क्षत्रियजातिनिमित्तः प्रदेशान्तरे दृश्यते । तस्य यत्कर्मे स्मृतिविद्यितं तद्राज्यमित्युच्यते । कि च तत् ? जनपदपुरपरिपालनादि ।

नतु च राज्ययोगाद्राजशब्दप्रयोगः सार्वभौमः । तशुक्ते ह्यक्षत्रियेऽः पि राजशब्दं प्रयुक्षते जना दति—राज्यं यः करेति स**्रा**जेति । एवं च कृत्वा राजस्य प्वावेष्ट्यां दर्शनं भवति—"यदि ब्राह्मणो यजेत बाई॰ स्पत्यं मध्ये निधायाहुतिमाहुति हुत्वा तमिम्बारयेत् यदि राजन्य पेन्द्रं यदि वैद्यो वैद्वदेवम्" इति त्रयाणामपि वर्णानामधिकारं द्दीयति । तत्कथम् ? यदि राज्यस्य कर्त्ता राजा तदैवमुपपद्यते।

अत्रोच्यते । न राज्यकर्ता राजेति शक्यते वक्तुम् । न हात्र
प्रत्ययलोपः प्रातिपदिकस्य प्रत्यापित्वां स्मर्यते। राजशब्दान्तु कर्माण
प्रयम्पत्रययो विश्वीयते। तेन राज्ञः कर्म राज्यमिति शक्यते वक्तुं, न राज्यः
स्य कर्ता राजेति। यच्चावेष्ट्यां ब्राह्मणादीनां दर्शनमुक्तं, तद्राजस्याद्विहरप्राद्यकामस्यावेष्टिविंहिता तद्विषयमिति। यस्वकदेशे जातौ राजश ब्द्रप्रयोगो योगात्सार्वमौम इति। अत्र ब्रूमः, एकदेशेऽपि शब्दशक्तिमन्तः
रेण प्रयोगोऽनुपपन्न एव। सार्वमौमस्तु प्रयोग उपचारत्रस्या राज्ञः कर्म
कुर्वन् राजेव राजेत्युच्यत इति। तथा च समानचोदनायां दृश्यते "तः
समाद्राष्ट्रग्रद्वमेष्टेन यजेत क्षत्रिययञ्च उ वा एष यदश्वमेष्ठः" इति। तथा
"तस्माद्व्राह्मणक्षत्रियमधस्तादुपास्ते राजसूर्ये यज्ञमानं सन्तमृत्विक्त्वेन" इति क्षत्रियस्य राजसूर्यं दर्शयति॥ १॥

अनिष्टिनो वाजपेषेन ॥ २॥

तस्माद्वाजपेयेनेष्ट्वा न राजस्येन यजेतेति श्रुतेः ॥२॥

इष्टिसोमपरावो भिन्नतन्त्राः कालभेदात्॥ ३॥

अनुमत्याद्य इष्टयः पविश्वाद्यः सोमाः मरुहाद्यः पश्च एते भिन्न-तन्त्रा भवन्ति । कुत एतद् १ कालभेदात् । भिन्नकालीनं द्येषां विधा-निर्मित । ननु च कालभेदात् भेद् उक एव । किमुच्यते कालभेदादिति १ सत्यभेवं, फलेक्यप्रश्चापनार्थामेदमुच्यते कालभेदाद्धेदां न फलभेदादि-ति । तन्कुतः १ राजसूयेन स्वाराज्यकामो यजेतित राजस्यस्य सकल-कालसम्बन्धः । राजस्यशब्दश्च यजितशब्दसामानाधिकरण्याद्यजतिषु वर्त्तते । तेन च सर्वयजतीनामेकं फलामेति ॥ ३॥

पवित्रश्चतुदीनः ॥ ४ ॥

स च सोमयागो दीक्षासम्बन्धात्॥ ४॥

सहस्रदक्षिणः ॥ ५ ॥

एवं चांश्वदाम्यप्रहणं तिस्रोऽनूबन्ध्यास्त्रैधातवी चात्र भवन्तीति ॥५॥ माधीपक्षयजनीये दीक्षा ॥ ६ ॥

माघषौर्णमास्या उपरिष्ठात्पक्षे गते यद्यजनीयं तत्र दक्षि। फाल्गुः नावतारप्रतिपदीत्यर्थः ॥ ६ ॥ तदन्ते पूर्णाहुतिगृहोध्वच्छतो वरदक्षिणा ॥ १॥ "स यदि कामयेत जुहुयादेतां यद्य कामयेतापिनाद्रियेत" इति वः चनादिच्छत इत्युक्तम् ॥ ७॥

इवः प्रभृत्यन्वहं पश्चोत्तराणि॥८॥

हवींवि सवन्तीति रोषः । अथ श्वोभृते अथरवो भृत इति वचनात् अन्वहमेकैकम् ॥ ८ ॥

तान्याह —

अष्टाकपालोऽनुमत्यै ॥ ९॥

पुरोडाशो भवतीति शेषः॥ ९॥

शम्यायाः पश्चाद्धविष्यशस्य स्हवे कृत्वा दक्षिणाः गन्युल्मुकमादाय दक्षिणा गत्वा स्वयं प्रदीर्ण ईशिणे चाग्नौ जुहोत्येष ते निर्फत हति॥१०॥

राम्यायाः पश्चाद्धविष्येषु यदवसीयन्ते तण्डला वा पिष्टं वा तत् स्रुवं कृत्वा दक्षिणाग्न्युलमुकं यृहीत्वा दक्षिणां दिशं गत्वा स्वयं प्रदीर्णे कुत्सारे देरिणे वोषरे अग्नौ जुहोत्येषते निर्देष्टत द्दति मन्त्रेण। अग्निप्र-हणाञ्चोतिकर्त्तव्यताब्युदासः॥ १०॥

अनपेक्षमेत्यानुमतस्य संवपनादि करोति ॥ ११ ॥ संवपनादिश्रहणाच्च ईक्षणान्त एतज्जवित ॥ ११ ॥

वासो देघम् ॥ १२ ॥ आनुमतस्य दक्षिणा ॥ १२ ॥

हिरण्यमारनावैष्णवे ॥ १३ ॥

पुनरुत्सृष्टो गौरग्नीषोमीचे ॥ १४॥

अनङ्वान् साण्ड ऐन्द्राग्ने ॥ १५ ॥

देयः॥ १५॥

गौराग्रवणे ॥ १६॥

देयः। गौरवाष्रयणे सवति। अतश्च गवाष्रयणं यवाष्रयणं वीद्याष्ट्र-यणं विशेष्यते, न सौम्याष्ट्रयणमिति॥ १६॥

चातुर्मास्यप्रयोगः फाल्गुन्याम् ॥ १७॥

भवतीति शेषः । चातुर्मास्यशब्दो धर्मातिदेशार्था नैतानि चातुर्माः स्यानि । चातुर्मास्यवद्राजस्ययागा एते । अतश्च नित्यानामपि क्रिया भवति । नैतेः कृतत्वमचातुर्मास्यत्वात् ॥ १७॥ पौर्णमासेन कृष्णपक्षानेत्यामात्रास्येन शुक्ला-ना शुनासीरीयात् ॥ १८ ॥ अत्रापि दर्शपौर्णमासवद्राजस्ये प्वायं न दर्शपौर्णमासाविति ॥१८॥ पवित्रदीक्षास्थाने शुनासीरीयम् ॥ १९ ॥ भवतीति सुत्रशेषः॥ १९ ॥

(१)पश्चवातीयमाहवनीयं प्रतिदिशं व्युद्ध मध्ये च स्क्रवेणाग्निषु जुहोत्यग्निनेन्नभ्य हाते प्र-तिमन्त्रम् ॥ २०॥

पञ्चवातीयमिति कर्मणो नामधेयम् । होममन्त्राणां लिङ्गेन व्यवस्था॥२०॥ (२)उत्तराः समस्य ये देवा इति प्रातिमन्त्रम् ॥ २१ ॥

जुहोतीति शेषः। समस्य चाग्नीनिति॥ २१॥ त्रियुक्तोऽद्वरधो दक्षिणा॥ २२॥ त्रिभिरदैवैर्युक्तो रथो दक्षिणा॥ २२॥

व्याधितस्याप्येवम् ॥ २३ ॥

व्याधिगृहीतस्यापि पञ्चवातीयं भवति ॥ २३ ॥

इन्द्रतुरीयम् ॥ २४॥

ब्याख्यास्यत इति दोषः। एतच्च काण्वानां इवो मृतेषु पठ्यते॥२४॥

आग्नेयः ॥ २५ ॥

वारुणो यवमयश्रदः ॥ २६ ॥

अन्यत्रापि ॥ १७॥

वारुणो यवमय एव भवति॥ २७॥

रौद्रश्च गावेधुकः ॥ २८॥

चशब्दादन्यत्रापि रौद्रो गावेधुको भवति ॥ २८॥ बहिनि दध्येन्द्रम् ॥ २९॥

⁽१) फाल्गुनगुक्लप्रतिपद्येव पञ्चवातीयसंक्षकं वश्यमाणं कर्म म-वित । खरमध्यस्थं हस्तप्रेरित एव खरमध्य एव प्राच्यादिदिश्च स्थाप-वित्वा मध्ये चावशिष्य पञ्चस्वाग्रेषु जुहोतीत्यर्थः ।

⁽२) प्रतिदिशं व्यूढमाहवनियमेकत्र कृत्वा उत्तराः पञ्चाहुतीर्जुः होतीत्यर्थः ।

या गौर्वहात स्कन्धेन सा वहिनीत्युच्यते । तदीयं दध्यैन्द्रं भवति॥२९॥ इति पञ्चदशाध्याये प्रथमा कण्डिका ।

अपामार्गहोमः ॥ १ ॥

व्याख्यास्यत इति सुत्रशेषः । इन्द्रतुरीयाच्च द्वो भूते काण्वानां प्रकारे ॥ १ ॥

स्वे पालाशे वैकङ्कते वापामार्गतन्दुलान् कृत्वा ॥२॥

तेनैव सर्वहोमः कर्तव्यः ॥ २॥

त्रयम्बकवद्दिगरनी ॥ ३॥

अग्निर्दक्षिणाग्निर्दिगुदीची ॥ ३ ॥

प्राची वा॥४॥

स यदि प्राङ्गिता जुहोति प्राचि स्वमस्यति यद्यदिस्वा जुहो।
त्युद्श्च ह स्वमस्यतीति श्रूयते । अत्र च गमनमात्रे विकल्पः । वितानं
तु प्राङ्मुखमेव॥ ४॥

अग्ने सहस्वेत्युल्सुकादानम् ॥ ५॥

अन्वाहार्यपचनात्॥ ५॥

देवस्य त्वेति जुहोति ॥ ६ ॥

प्राङ्कदङ् चा गत्वा ॥ ६ ॥

रचसां त्वेति स्टबमस्यति तां दिशं यस्यां

जुहोत्यवधिष्म रक्ष इत्यायन्त्यनपेक्षम् ॥ ७ ॥

अभिचर्यमाणोऽपि तां दिशं गत्वाभिचरतो नामादिरोद्धोमः स्ठव-प्रासनागमनेषु । स चायं नामादेशो रक्षःशब्दस्य स्थाने भवति । अ-मुमसाविति च ॥ ७ ॥

त्रिषंयुक्तेषु ॥ ८ ॥

कर्मोच्यते ॥ ८ ॥ आग्नाचैष्णव ऐन्द्राचैष्णवो चैष्णवो वामनो दक्षिणा ॥९॥ लिङ्गग्रहणे गौः सर्वत्र ॥ १० ॥

भवति ॥ १० ॥ आग्नापीडण ऐन्द्रापीडणः पौडणः इयामो दक्षिणा ॥११॥ अस्यापि भ्वो भृते काण्वपाठातः॥ ११॥

अग्नीषोमीय ऐन्द्रासीम्यः सौम्यो बश्चदक्षिणा ॥१२॥

अस्यापि श्वो भृत एव काण्वीयायां पठ्यते ॥ १२ ॥ एकाददाकपालः प्रथमः प्रथमश्चर्व इतरे ॥ १२ ॥ भवन्ति ॥ १३ ॥

वैष्णवस्त्रिकपालो वा॥ १४॥

भवति चर्छ्वा ॥ १४ ॥ इवो वैदवानरो द्वाद्दाकपालो वारुणश्चैकतन्त्रे ॥ १५ ॥ भवत इति दोषः ॥ १५ ॥

ठवो वैकः ॥ १६ ॥

भवतीति विकल्पः ॥ १६ ॥

ऋषभः पूर्वस्य दिखणा कृष्णं वास उत्तरः

स्यासाचेऽकृष्णस् ॥ १७॥

तन्त्रभेदे चैतद्भवति। पेकतन्त्र्ये तु चोदकपरिप्राप्त्यान्वाहार्यं इति।१०॥ इति पञ्चदशाध्याये द्वितीया कण्डिका ।

बाद्शोत्तराणि रत्नह्वी हिष ॥ १ ॥ मवन्ति । द्वादशप्रहणं क्रियते । चतुर्गृहीतस्यापि श्वो भृतेऽबुष्ठानं यथा स्यादिति ॥ १ ॥

प्रतिगृहमैकैकः श्वः इवः ॥ २ ॥ कर्त्तव्यम् ॥२॥ समारूढनिर्मधितेऽग्रये नीकवते सेनान्यः ॥ ३॥ गृहे॥३॥

बाईस्पत्यश्चरः पुरोहितस्य ॥ ४ ॥ गृह इति सर्वत्रानुवर्तते ॥ ४ ॥

ऐन्द्रो यजमानस्य ॥ ५ ॥ वकादशकपालो यजमानस्य ॥ ५ ॥

अदित्यै महिष्याः ॥ ६ ॥ अदित्यै चर्साहिष्याः ॥ ६ ॥ चारुणः स्नतस्य ॥ ७ ॥

सुतश्चाद्वसाराधिः॥ ७॥

मास्तो ग्रामण्यः ॥ ८ ॥

सप्तकपाळः । ग्रामणीमेहत्तरः ॥ ८ ॥

ও কাণ

सावित्रः क्षतुः॥ ९॥

अष्टाकवाली द्वादशकपाली वा। क्षचा प्रतीहारी दूती वा॥ ९॥

आहिवनः सङ्ग्रहीतुः॥ १०॥

सङ्घर्दीता रथयोजियता॥ १०॥

पौष्णो भागदुघस्य ॥ ११ ॥

भागदुघो भोजियता॥ ११॥

रौद्रो यजमानस्याक्षावापगोविकत्तंगृहेभ्यो गवेधुकानाम्।१२ आहरणं कृत्वा। अक्षावापोऽक्षक्षेता। अक्षगोत्तेत्यपरे। गोविकत्तीं हाळिकः॥१२॥

चतुर्गृहीतं जुषाणोऽध्वाज्यस्य वेत्विति दूतस्य ॥ १३॥ निर्ऋतः परिवृत्ये क्रुडणच्रीहीणां नखनिर्भिन्नानां द-विहोसे एष ते निर्ऋत इति जुहोति वषद्कृते वा ॥ १४॥ तत्रश्च विकल्पोऽयम् ॥ १४॥

यथासं ख्यं दक्षिणा हिरण्यः शितिषृष्ठर्षभो घेनुरठ्वः पृषञ्छयेतोऽन ड्वान्यमाव भावेनुपूर्वजौ इयामस्त्रदक्षिणो रोद्रः शितिबाहुशितिबालयोरन्यतरः ॥ १५ ॥

शितिबाहुः इवेतसिधः शितिबालः इवेतपुच्छः तयोरन्यतरः ॥१५॥ असिनेखरः ॥ १६ ॥

नखरो ऽपरिवारः॥ १६॥

वालदा**मबद्धमक्षावपणम् ॥** १७ ॥ अक्षा उप्यन्ते यस्मिस्तदक्षावपणम् ॥ १७ ॥

उत्तरस्याऽप्युक्ष्णबेष्टितं घनुः॥ १८॥

अप्युक्ष्णशब्देन स्नाय्वभिधीयते । अजगरचर्मेत्यपरे ॥ १८ ॥ चर्मतृण्यः सेषुकाः ॥ १९ ॥

सहेषुभिः। चर्मत्र्यश्चर्ममय्यो मस्त्रा उच्यन्ते॥ १९॥

लोहित उदगीषः ॥ २० ॥ कृष्णापस्तर्यपहतोत्तमस्य ॥ २१ ॥

जीर्णा अवहता अवस्तरी ऋष्णा गौरुत्तमस्य दक्षिणा॥ २१॥ परिवृत्तीं चाह माऽमेद्येशायां चारसीदिति॥ २२॥ मत्स्वास्य मा वात्सीरित्येत दुक्तं भवति । ततश्चासौ ब्राह्मणगृहं प्रविदाति । तत्र राह्मा न स्वास्यामिति ॥ २२ ॥

सौमारौद्रोऽतश्रकः ग्रुह्मापयसि ग्रुह्मवत्सायाः ॥२३॥

सैव दक्षिणा ॥ २४ ॥

अनुचानोऽप्ययशा यजेत ॥ २५ ॥

अनेन ॥ २५॥

किलासाबाधं तु॥ २६॥

किलासाराव्देन व्याधिविरोष उच्यते। तद्वाधामिच्छंश्च यजते। तुराव्दश्चार्थः॥ २६॥

मित्राबाईस्पत्यश्ररः ॥ २७॥

इवो भूते भवतीति शेषः॥ २७॥

बाह्स्पत्यमाधिश्रित्याद्वत्थी या स्वयं भन्ना पाः

च्युदिची वा शाखा तत्पात्रेणापिदधाति ॥ २८ ॥ बाह्रस्पत्वं चरुम् ॥ २८ ॥

विनाटाद्रथपर्यूहात्रवनीत्। स्वयं जातमाज्यमासिच्य पात्रे तस्मिस्थविष्ठांस्तण्डुलानाग्रित्रायावपति॥ २९॥

विनादो हतिरुच्यते । ततो रथपर्यूढात् स्वयं जातं नवनीतमास्यं भवति । अत्र च तण्डुलेष्वास्यमासिच्यते, नास्ये तण्डुलांश्चेदकातुः प्रहाय । तण्डुलानां चाध्वर्यूपायेन तकादिना स्वन्दनं पश्यर्थतया कार्यम् ॥ २९ ॥

ऊष्मणा जृतो भवति ॥ ३०॥

मेत्रः॥ ३०॥

अणिष्ठानितरस्मिन्नेकं प्रदानम् ॥ ३१ ॥

इतरस्मिन्धाईस्पत्ये चरौ। स चायमेक एव यागः । मैत्राबाईस्पन्त्य इति समुदायात्ति द्वितात्पत्तेः । अतश्च एकं प्रदानम् । अर्घाधिकया चावदानप्रहणम् ॥ ३१॥

गौदेक्षिणा ॥ ३२ ॥

भवेचनीयद्शपेययोदीक्षिणोत्तरे देवयजने ॥ ३३॥

भवतः ॥ ३३ ॥

दक्षिणमाभिषचनीयस्य ॥ ३४ ॥

तयोश्च दक्षिणमसिषेचनीयस्य भवति ॥ ३४ ॥
फाल्गुनीपक्षयजनीयेऽभिषेचनीयाय दीक्षते ॥ ३५ ॥
फाल्गुन्योः पक्षेऽतीते यद्यजनीयं तत्र दीक्षा । चैत्रशुक्रप्रतिपदीत्यर्थः ॥ ३५ ॥

इति पञ्चदशाध्याये तृतीया कण्डिका ।

भागवो होता॥१॥

भृगुगोत्रो होता भवति अभिषेचनीयदश्येययोरेव न सर्वत्र। तः त्रैव हि श्रूयते इति ॥ १ ॥

पश्चापवर्गः ॥ २॥

पञ्चभिरहोभिरपवर्गश्च। यदुक्तं भवत्येका दीक्षेति ॥ २ ॥ सोमं कीत्वा वैधमुपनह्य पर्युद्यैकं ब्रह्मागारे निद्धाति।३॥ स च दशपेयार्थः ॥ ३ ॥

> अग्निषोमीयस्य पद्यपुरोडाश्वामनु देवसूहवीरः षि निर्वपति यजप्रैषाणि ॥ ४ ॥

देवसृहवीः विति नामघेयम् । यज प्रैवाणीति कुतः ? चोदकेन । यद्येवं किमर्थामिदमुच्यतं यजप्रैवाणीति ? मुख्यत्वात्पशुपुराडोशधर्माः शङ्कानिवृत्त्यर्थम् ॥ ४ ॥

प्लाशुकानाः सिवित्रे सत्यपत्यसवाय ॥ ५ ॥ प्लाशुकाः पुनः प्रकटा वृहियः ॥ ५ ॥ आशुनामग्नये गृहपतये ॥ ६ ॥ आशवः पक्षत्रयपाकिनो ब्रोहयः ॥ ६ ॥

उत्तरे चरवः ॥ ७ ॥

द्यामाकः सोमाय वनस्पतये ॥ ८ ॥ नैवारो बृहस्पतये वाचे ॥ ९ ॥ हायनानाधिनद्राय जयेष्ठाय ॥ १० ॥

हायना रक्तशालयः॥ १०

रुडाय पद्मपतये॥ ११॥

नाम्बो मित्राय सत्याय ॥ १२ ॥

स्वयं जाता बीहयो नाम्बाः॥ १२॥

वरुणाय धर्मपतय इति ॥ १३॥

अष्टी ॥ १३॥

उत्तमेन चारित्वा सविता त्वेत्याह यजमानबाहुं दाक्षणं गृहीत्वा नामास्य गृह्णाति मन्त्रे यथास्थानम्।१४। यस्मिन् स्थाने अमुमिति सर्वनाम तत्र नामग्रहणम्। तत्संस्कारात् १४

मातापित्रोश्च ॥ १५ ॥

यथास्थानं नामग्रहणम् ॥ १५॥

काण्वानां प्रत्यते—एव वः कुरवो राजा पाञ्चालो राजिति च।त-दुच्चारणार्थमेव मा भूदत आह—

यस्याश्च जाते राजा भवति ॥ १६॥

जातित्रहणं जनपदोपलक्षणार्थम् । यश्मिञ्जनपदे राजा भवति तस्य च नाम गृहातीत्यर्थः॥ १६॥

कुत पतत् ?

देशस्यानवस्थितत्वात् ॥ १७॥

न हि शास्त्रे देशव्यवस्था कुरुपञ्चाळजातीयैरेव राजसुयः कर्चव्य इति, सर्वस्य विहितत्वात् । कुरुपञ्चाळयहणमत्र देशोपळक्षणार्थम् । अङ्गावङ्गारसुद्धा इति चैवमादीनाम् ॥ १७ ॥

पशुप्रोडाशतन्त्रं प्राधान्यात् ॥ १८ ॥

देवसृहिवषां पशुपारोडाशिकं तन्त्रं भवति । कुत पतत् ? प्राधान्याः त् मुख्यत्वादित्यर्थः । न हि पशुपुरोडाशः प्रधानभूत इति स्थानित्वाः त्राधान्यमुक्तम् ॥ १८ ॥

इतरेषां वा सुवस्त्वात् ॥ १९ ॥

इतरेषां वा तन्त्रं भवति, न पशुपुरोडाशिकम्। कुत पतत् ? भू यस्त्वात् । बहूनि ह्यतानि देवसहवीषि । एवं च विकल्प एवायम् । मु ख्यत्वाद्वा पीरोडाशिकम् । भूयस्त्वेन चेतरेषाभिति ॥ १९ ॥

किंच-

स्विष्टकुच्छतेश्च ॥ २०॥

उभयद्भपा हि स्विष्टकुच्छूतिः काण्वानां यजप्रैषः स्विष्टकस्माध्यः स्विनानां प्रेष्यप्रैष इति । तेनाच विकल्प एवाजुरूपतर इति ॥ २०॥

इडान्तेऽपो गृह्णाति ॥ २१॥

इडान्तग्रहणेन देवस्हिवणां शेषकार्यापळक्षणम् । ततश्च तद्भागपः रिहरणान्ते ग्रहणम् । श्रुतौ तु तिस्वष्टकृत्समनन्तरमपां ग्रहणं पठ्ये-त । तत्रापि स्विष्टकृता शेषकार्योपळक्षणम् ॥ २१॥

यूपमुत्तरेण नैमित्तिकीरसम्भवात्॥ २२॥

या आपो निमित्तेन प्राप्यन्ते यथा गोक्रव्या आतपवर्धास्तासामः स्मिन्काले प्रहणासम्भवादतः पूर्व गृहीत्वा यूपमुत्तरेण पुनर्प्रहणं, तच्च वचनात् ॥ २२ ॥

गत्वेतराः पृथक्पात्रेष्वौदुम्बरेषु सरस्वतीः ॥ २३ ॥ अपो गृह्णाति ॥ २३ ॥

अवगाद्यावगाढात्पक्षोः पुरुषाद्वा पूर्वापरा ऊर्मीः ॥२४॥ अवतीयीवतीर्णात्पक्षोः पुरुषाद्वा पूर्वापरा ऊर्मीर्गृह्वाति ॥ २४॥ स्थन्दमानाः ॥ २५ ॥

गृह्वाति ॥ २५ ॥

प्रतिलोमाः ॥ २६॥

गृह्णाति ॥ २६ ॥

अपयतीः ॥ २७ ॥

याः स्यन्दन्त्य एवापयान्ते ता अपयतीः ॥ २७ ॥

नदीपति । सुद्याः ॥ २८ ॥

नदीपतिः समुद्रः । तत्रापि योः सुपूर्यन्ति ताः सुद्याः वीचिस्था इत्यर्थः । ता गृह्णाति ॥ २८ ॥

काष्ठं वोच्छितोहम् ॥ २९॥

अथवा समुद्राभिरेवाद्भिः काष्ठमुव्छित्रसृढं याभिस्ता गृह्णाति ॥ २९ ॥ निवेष्येन ॥ ३० ॥

गृह्वाति । निवेष्य आवर्त्तः ॥ ३० ॥

स्यन्दमानाः स्थावराः प्रत्यातपे ॥ ३१॥ यत्रोपरिष्टात्स्थित आदित्यस्तपति ता गृह्वाति ॥ ३१॥ अन्तरिचात्प्रतिगृह्या आतपवष्याः ॥ ३२॥ अन्तरिक्षात्प्रतिप्रहीतन्या आतपवर्षणाः ॥ ३२॥

सरस्याः कूप्याः प्रव्वा मधुगौरुल्ब्याः पयो घृतम् ॥ ३३॥

उक्ता आपस्तासां प्रहणमाह—

सरस्वतीर्गृह्णात्यपो देवा इति ॥ ३४ ॥ जुहोत्युत्तरासु चतुर्गृहीतानि वृष्ण अर्म्यादिभिः स्वाहाकारान्तैः पूर्वैः पूर्वैः प्रतिमन्त्रसुत्तरैरुत्ताति॥३५॥ काण्वानां च यथाश्चिति विनियोगक्रमण च आपो प्रहीतन्याः ॥ ३५॥ आपः स्वराज इति मरीचीर्गृहीत्वा गृहीत्वाऽश्विस्ना

सर्वासु सृस्जिति ॥ ३६ ॥ सारस्वतीषु च मरीचिषु च न होमः प्रतिषेधात् ॥ ३६ ॥ औदुम्बरे पात्रे समासिश्चत्येना मधुमतीरिति ॥ ३७ ॥

अनेन मन्त्रेण ॥ ३७॥

मैत्रावरूणधिष्ण्यस्य पुरस्तान्निद्धाति अनाघृष्टाः सीदतेति पात्राणि च तृष्णीं पालाशौदुम्बरनैयग्रोधः पादाद्वतथान्यभिषेकाय॥३८॥

चशब्दात्पुरस्तान्निदघाति ॥ ३८ ॥

उक्थ्यः दवः ॥ ३९ ॥

भवति ॥ ३९ ॥ पयस्या मैत्रावरुणी माध्यन्दिनीयैः सह ॥ ४० ॥ भवति ॥ ४० ॥

दात्र सहस्राणि दक्षिणा ॥ ४१ ॥ इति पञ्चदशाध्याये चतुर्थी कण्डिका ।

मरुखतीयान्ते पात्राणि पूर्वेण व्याघ्रचर्मास्तृणाति मोप्रस्य त्विषिरिति ॥ १ ॥

अनेन मन्त्रेण । अगृहीते मोहेन्द्र इति वचनात् सर्वमहत्वतीयाः नामन्ते ॥ १ ॥

अपरेऽन्ते सीसं निद्धाति ॥ २ ॥ व्यावनर्भणः॥२॥ पार्थानासम्रये स्वाहेति षड्जुहोति प्रतिमन्त्रम् ॥ ३ ॥ पार्थानि हि प्रकृत्याह—"वट् पुरस्तादाभिषेकस्य जुहोति" (श. वा. ५-३-५-२०) इति ॥ ३ ॥

पवित्रे कृत्वा हिरण्यमेनयोः प्रवयति ताभ्यासुरपुः नात्यपः सवितुर्व इति ॥ ४ ॥

ताभ्यां पवित्राभ्यामाभिषेचनीया अप उत्पुनाति सवितुर्व इत्यनेन मन्त्रण । पौर्णमासिकेन विधिना पवित्रकरणम् । तुरुयं हि शास्त्रमत्र ॥४॥ अभिषेचनीयेष्वेना ठ्यानयाति सधमाद इति ॥ ५॥ अभिषेचनीयानि च पाळाद्यौदुम्बरादीनि ॥ ५॥

तार्पं परिघापयति ॥ ३ ॥

तच्च— चौमम् ॥ ७ ॥

तार्ष्यमुख्यते ॥ ७॥

त्रिपाणं वा ॥ ८॥

त्रिःकृत्वः पायितम्। वा सकृदिति विकल्पः॥ ८॥ घृतोन्नमेके ॥ ९॥

एके आचार्याः घृतोष्ठन्तार्यमभिवदन्ति । घृतोकं घृतशौचितम् ।९। यज्ञरूपस्यृतम् ॥ १० ॥

"तास्मिन्सर्वाणि यश्वरूपाणि निष्यूतानि भवन्ति" (श. ब्रा. ५-३-५-२०) इति वचनात्। यश्वरूपाणि च स्वक्चमसादीनि॥ १०॥

पाण्ड्वं च निवस्ते ॥ ११ ॥

पाण्ड्वः कम्बलः । तं च निवस्ते उपरि तार्थस्य ॥ ११ ॥ अधीवासं प्रतिमुच्योदणीष १ संवेष्टय निवीतेऽवग्रः हते नाभिदेशे परिहरते वा ॥ १२ ॥

अधीवासः कञ्चुकः प्रतिमोकवचनाद्रम्यते । उष्णीषः शिरोवेष्टनं तत्सम्वेष्टय निवीते निवीतं च कण्ठेऽवसञ्जनं, ततोऽवगूहते नाभिदेशे परिहरते वा॥ १२॥

तार्धेप्रभृतीनि क्षत्रस्येति प्रतिमन्त्रम् ॥ १३ ॥ परिघत्ते ॥ १३ ॥

दीक्षितवसननिवृत्तिविरोधान्माहेन्द्रादौ वा पुनः परिधानं निधायैतानि ॥ १४ ॥ तार्थादीनि ॥ १४॥

इन्द्रस्य बार्त्रघ्नामिति घनुरातनोति ॥ १५ ॥

आरोपयति ॥ १५॥

मित्रस्य वरुणस्येत्यस्य बाह्न विमार्ष्टि ॥ १६ ॥

बाह् धनुःकोट्यावुच्येते । मन्त्रद्वयोपदेशात् प्रतिमन्त्रमिति गम्यते ॥ १६ ॥

घनुः प्रयच्छति त्वयायमिति ॥ १७॥

अनेन मन्त्रेण यजमानाय ॥ १७॥

हवासीति प्रतिमन्त्रमादाय तिम् इष्ः प्रयच्छति पातैनमिति प्रतिमन्त्रम् ॥ १८ ॥

यजमानायैव ॥ १८॥

आविभेषा इति वाचयति ॥ १९ ॥
केषां चित्रतिमन्त्रं नेति सम्प्रदायः ॥ १९ ॥
अवेष्टा इति लोहायसमाविध्यति केशवास्ये सदो
नत उपविष्टाय ॥ २० ॥

लोहायसं लिङ्गात् । "अथ वल्लोहायसम्भवति लोहिता इव हि दन्दशुकाः"(शञ्जा० ५-४-१-२) इति ॥ २० ॥

सुन्वन्तमाक्रमयन् दिशः प्राचीमारोहित बाचयाति प्रतिमन्त्रं प्रतिदिशं यथालिङ्गम् ॥ २१ ॥

सुन्वन्तं यज्ञयानं बाहुर्युहीतमाक्रमयन् । दिशां चाक्रमणमाभिः मुख्यगमनमात्रेणैव । न ह्यन्यथा सम्भवः । आक्रमयश्च वाचयति ॥२१॥ आक्रम्य पादेन सीसं निरस्यति प्रत्यस्तिमिति ॥ २२ ॥

यच्छार्वूळचर्मणो जघनार्घे सीसं निहितं तत्पदा प्रतिक्षिपति प्रत्य-स्तमिति सन्त्रेण ॥ २२ ॥

व्याघ्रचमीरोह्यति सोमस्य त्विषिरिति ॥ २३ ॥ यजमानमारोहयति बाहुगृहीतम् । मनत्रस्तु यजमानस्यैव ॥ २३ ॥ रुक्समधः पदं कुरुते मृत्योरिति ॥ २४ ॥

हक्म आभरणविशेषः, तं पदस्याधस्तात्कुरुत मृत्योरिति मन्त्रेण॥२४॥

शिरसि च नवतद्र्मी शततद्र्म वौजोसीति ॥ २५॥ च शब्दाहुक्ममेव ॥ २५॥

द का०

.

बाह्य उद्गृह्णाति हिरण्यरूपाविति ॥ २६॥ यजमानः॥ २६॥

मित्रोसि वहणोसीति वा ॥ २७॥ बाह्योरुद्रहणम् ॥ २७॥

स्थितं प्राञ्चमभिषिञ्चाति पुरोहितोऽध्वर्धुर्वा पुरस्ता-त्पालाकोन प्रथमं पञ्चादितरे दितीयेन स्वस्तृतीयेन मिन्यो राजन्यो वैद्यश्चतुर्थेन सोमस्य त्वा सुम्नेनेति प्रतिमन्त्रम् ॥ २८॥

स्थितं प्राञ्चमिभिषञ्चति पुरस्ताद्वधवस्थितः पुरोहितोऽध्वर्गुर्वा पालाशेन पात्रेण पश्चादितरे व्यवस्थिताः । द्वितीयेनौदुम्बरेण आताऽ भिषिञ्चति । तृतीयेन नैयप्रोधपादेन राजन्यो यो मित्रत्वेनोपागतः। वैश्यश्चतुर्थपात्रेण(१) । सोमस्य त्वा सुम्नेनेति प्रतिमन्त्रम् ॥ २८॥

अभिषिश्वामीति सर्वेत्र साकाङ्क्षत्वात् ॥ २९॥ क्षत्राणां क्षत्रपतिरेधीरिति च ॥ ३०॥

सर्वत्रेव शेषः ॥ ३०॥

हमममुष्येति च प्रथमो देवस्वत् ॥ ३१॥ अभिषिञ्चति ॥ ३१॥

पार्थीनामिन्द्राय स्वाहेति षड् जुहोति प्रति मन्त्रम् ॥३२॥ इति पञ्चदशाध्याये पञ्चमी कण्डिका ।

शौनःशेपश्च प्रेष्यति ॥ १ ॥ शौनःशेप्र श्रुसत्येवम् । चशब्दादनन्तरपदार्थसमनन्तरमव ॥ १॥ सूतान्ते वा ॥ २ ॥

प्रेष्यति। तदा तत्रैव शस्यते॥ २॥
ओ ३ मित्यूचां प्रतिगरस्तथेति गाथानाम्॥ ३॥
ऋचो ज्ञायन्त एव गाथाः छन्दोविशेषेण॥ ३॥
होताध्वये हिरणमय्योः कशिपुनोरुपविष्टौ॥ ४॥
कशिपुनावास्तरकौ॥ ४॥

⁽१) आश्वत्थेनेत्यर्थः । "तस्मादाश्वत्थेन वैद्योऽभिषिञ्चति" (श्रव्हाव ५-६-५-१४) इति श्रतः ।

शौनःशेपान्ते पृथक् शते ददाति ॥ ५ ॥ पृथ्यवचनाच्छत्र शतं गनामेकैकस्य ददाति ॥ ५ ॥ ं सहस्रे वा ॥ ६ ॥

विकल्पः ॥ ६ ॥

आसमें च ॥ ७ ॥

ददाति यो यत्रोपविष्टः॥ ७॥

कण्डूयन्याभिषेकेण प्रलिम्पते प्रपर्वतस्येति ॥८॥ कण्डूयनी कृष्णविषाणा तया शरीरसंलग्नोद्काभिषेकेण प्रलिम्पते प्रपर्वतस्येति॥८॥

चर्मणि त्रिर्विक्रमयति विष्णोरिति प्रतिमन्त्रम् ॥ ९ ॥ विक्रमणं कारयत्यध्वर्युर्मन्त्रस्तु यजमानस्येव क्रमणशेषत्वात् ॥ ९ ॥ पालाशे शेषानासिच्य पुत्राय प्रयच्छति प्रियतमा-येदं मे कर्मेदं वीर्थे पुत्रोऽनुसन्तनोत्विति ॥ १० ॥

शेषा अभिषेकशेषाः॥ १०॥

शालाद्वार्ये जुहोति पुत्रेऽन्वारक्षे प्रजापत हाति पुत्र-यजमानयोनीम गृह्णाति पितृशब्दं पुत्रे कृत्वा यथायथं पश्चात् ॥ ११ ॥

अयमभिमन्युरर्ज्जनस्य पितेत्येवं पितृशब्दः पुत्रे कृतो भवति । यथाययं पश्चादिति अर्जुनोऽभिमन्योः पितेत्येवम् । अयममुख्य पिताः ऽसावस्य पितेति मन्त्रे पाठः। ब्राह्मणेऽपि च-"यः पुत्रस्तं पितरं करोः ति यः पिता त पुत्रम्" (श्वाव्या ५-४-२-१)हति ॥ ११ ॥

आग्नीधीये पालाशेन शेषान जुहोति रुद्र यसः इत्युत्तरार्धे॥ १२॥

अभिषेकशेषान्॥ १२॥

गवार शतमधिकं वा स्वस्याहवनीयस्योत्तः

रतः स्थापवाति ॥ १३ ॥

स्वराब्देनात्र मातोच्यते ॥ १३ ॥

पूर्वाभिवहनं च साम्रिम् ॥ १४ ॥

शान्तिकपौष्टिकार्थोऽप्तिर्येनानसोश्चते तच्च साग्नि स्थापयति॥१४॥ वाजपेयवद्रथमबहृत्य दक्षिणस्यां चेदिश्रोगौ युनक्ति पूर्ववन्मित्रावरुणयोरिति चतुर्भिः॥ १५॥ वाजपेयविति रथाद्रथावहरणम् घूर्ग्रहीतस्य चावर्त्तनं कृत्वा दक्षिः णस्यां वेदिश्रोणौ ब्यवस्थितं युनक्ति पूर्ववन्मित्रावहणयोरित्यनेन म न्त्रेण। चतुर्मिरश्वरथैहत्तरापृष्टिश्चतुर्थः॥ १५॥

दक्षिणापथेन यात्वा परेण चात्वाला स्थापयाति ॥ १६॥ रथम् ॥ १६॥

अव्यथायै त्वेति सुन्वन्नारोहति ॥ १७॥ तमेव रथम् ॥१७॥

मरुतामिति दक्षिणधुर्ये प्राजति ॥ १८ ॥ यन्ता ॥ १८ ॥

गवां मध्ये स्थापयत्यापामिति ॥ १९ ॥ अनेन मन्त्रेण रथं यन्तेव ॥ १९ ॥

> धनुरात्न्योपस्पृश्चाति गां यजमानः समि-निद्वयेणोति ॥ २०॥

अनेन मन्त्रेण ॥ २०॥

जिनामीमाः कुर्व इमा इति चाह ॥ २१ ॥ चरान्दाराजमानः ॥ २१ ॥

तावद् भूयो वा गोस्वामिने दस्वा पूर्वेण यूपं परीत्यान्तः-पात्यदेशे स्थापयति मा न इति ॥ १२॥ अनेन मन्त्रेण॥ २२॥

अग्नये गृहपतय इति चत्वारि रथविमोचनीयानि जहोति प्रतिमन्त्रं पश्चनाऽ रसोसीति वराहोपानहा उ-पमुश्चते ॥ २३ ॥ यजमानः॥ २३ ॥

भूमिमवेक्षते पृथिवि मातरिति ॥ २४॥ अनेन मन्त्रेण यजमान एव ॥ २४॥

अवरोहति ह्युसः द्युचिषदिति ॥ २५ ॥ रथाद्यजमानः ॥ २५ ॥

विमुच्य सयन्तृकः रथवाहणे करोत्पनस्तत्कर्म ज्ञाः लाया दक्षिणतः ॥ २६ ॥

विमुच्य रथं सह यन्तारं रथवाहने करोति । तस्य जानसस्तदेव कर्म रथवाहणम् ॥ २६ ॥ अपप्रवते यन्ता॥ २७॥ रथादवतरति॥ २७॥

रथवाहणस्य दक्षिणेऽन्ते शतमानावासजति वृत्ती २८ वृत्ताकारा रक्तिकाशतमाना ॥ २८॥

अनुवत्ममौदुम्बरी १ शाखामुपग्हत्युपस्पृश्वाति श-तमानाविषद्सीति ॥ २५ ॥

इयद्सीत्येकं युङ्ङसीति चापरम्॥ २८॥

तौ ब्रह्मणे दत्त्वोर्गसीति शाखासुपस्पृशाति ॥ ३० ॥ ताविति शतमानौ ॥ ३० ॥

इन्द्रस्य वामित्यवहरते बाह्न पयस्यायां व्याघचर्म-देशे स्थितायाम् ॥ ३१ ॥

इन्द्रस्य वाम् इत्यनेन मन्त्रेण पयस्यायामवहरति बाह् यजमाना व्याद्यक्तमेदेशे स्थितायाम् ॥ ३१ ॥

सेषुकं घतुः प्रयच्छति ॥ ३२॥

धनुर्धराव ॥ ३२॥

उत्तरवेदि १ हृत्वा पयस्यया प्रचरति प्राक् स्वि-ष्टकृतः॥ ३३॥

इति पञ्चदशाध्याये पष्टी कण्डिका।

खादिरीमासन्दी । रज्जूं तां व्याघचर्मदेशे निद्धाति स्थोनासीति ॥ १ ॥

अनेन मन्त्रेण ॥१॥

अधिवासमस्यामास्तृणाति क्षत्रस्य योनिरिति ॥ २ ॥ अस्यामित्यासन्द्याम् वास आस्तृणाति क्षत्रस्य योनिरिति ॥ २ ॥ सुन्वन्तमस्यासुपवेदायति स्योनामासीदेति ॥ ३ ॥ बाहुगृहीतं यजमानमासन्द्यासुपवेदायति । मन्त्रश्चाष्वयोरेव ॥ ३ ॥

निषसादेत्युरोस्यालभते ॥ ४ ॥

यजमानस्य हृद्यम्॥ ४॥

अभिमृरित्यसमे पञ्चाक्षान्याणावाचाय पश्चादेनं य-

ज्ञियवृक्षद्ण्डैः रानैस्तूष्णीं व्यन्ति ॥ ५ ॥

अभिभूरित्यनेन मन्त्रेण पञ्चाक्षान्यजमानस्य पाणावाधाय पञ्चादेनं यजमानस्य याज्ञेयनुसदण्डैः शनैस्तूर्गी वनन्त्यध्वर्यनो बहुवचनोपः देशात्॥ ५॥

पाप्मानं तेऽपहन्मोति त्वा वधं नयामीति वा ॥ ६ ॥

अनेन मन्त्रेण ब्नन्ति तुर्गी वेति विकल्पः ॥ ६॥ वरं वृत्वा ब्रह्मन्नित्यामन्त्रयते पञ्चकृत्वः॥ ७॥

यजमानः ॥ ७ ॥

प्रत्याह व्यत्यास । सविता वरुण इन्द्रो रुद्र इति त्वं ब्रह्मासीत्यादिभिः॥ ८॥

त्वं ब्रह्माश्रीत्यादि सविता वरुण इत्येवमादिन्यत्यासेन ब्रह्मा प्रतिव-चनं ददाति यजमानाय ॥ ८॥

आदिनैवान्त्यम् ॥ ९॥ त्वं ब्रह्मासीत्यनेनैवान्त्यं पञ्चमं प्रतिवचनम् ॥ ९ ॥

बहुकारेति च व्हयत्येवं नामानम् ॥ १०॥

चशब्दाद्यजमानः। स हि पूर्वामन्त्रणामिहितः। बहुकारेत्येवं नामानं शब्दवति । एवमीप हि अयते-"य एवं नामा भवति कल्याणमेवैतन्माः तुष्यै वाचा वदति" (श॰ब्रा॰ ५-४-४-१४) इति ॥ १०॥ स्प्यमस्मै प्रयच्छाति पुरोहिलोऽध्वर्युर्वेन्द्रस्य बज्र इति ११

अनेन मन्त्रेण यजमानाय ॥ ११॥

राजा राजभाता स्तस्थपत्योरन्यतरो ग्रामणीः सजातश्चेवं पूर्वः पूर्व उत्तरस्मै ॥ १२ ॥

६५यम्प्रयच्छति सजातश्च प्रामणीः सजातः॥ १२॥

प्रतेन सजातः प्रतिप्रस्थाता च पूर्वाग्निसहिताः शुक्रपुरोस्चा यूतभूमिं कुरुतः ॥ १३॥

प्रतेन वज्रेण संजातः प्रतिप्रम्थातारी पूर्वाप्तिवहनसंलग्नां ग्रुकपुरोः रुचा चूतभूमि कुरुतः॥ १३॥

मान्थिनो विमितम् ॥ १४॥

पुरोहचा विमितम्। कुहत इति वर्तते ॥ १४ ॥ चतभूमौ हिरण्यं निघायाभिजुहोति चतुर्गृहीतेः नाग्निः पृथुरिति॥ १५॥

अनेन मन्त्रेण हिरण्यमभिज्ञहोति॥ १५॥

अक्षान्निवपति स्वाहाकृता इति ॥ १६ ॥ चूतभूमावक्षान्निवपति स्वाहाकृता इत्यनेन मन्त्रेण ॥ १६ ॥

गां दीव्यध्वामित्याह ॥ १७ ॥

द्यूतप्रकरणे प्रैषोऽयम् ॥ १७॥

कृतादि वा विद्ध्याद्राजप्रभृतिभ्यः ॥ १८ ॥ इतादिभिन्नं चूतं भवति राजप्रभृतिभिन्नं चूतान्तरम् ॥ १८ ॥ सजाताय किलङ्काम् ॥ १९ ॥

अस्य सजातस्य सम्बन्धिनी या तां झन्ति । हन्तिश्च आहननमात्रे न मारणार्थः ॥ १९ ॥

पूर्वाग्निवाही दिचिणा ॥ २० ॥ सा च सूतस्य यागाङ्गमभिधानात् ॥ २० ॥ पयस्यास्विष्ठकृदिङं करोति माहेन्द्रादि च ॥ २१ ॥

करोतीस्यनुवर्तते । मरुखतीयान्ते वैक्रतं कर्म विहितमतः प्राकृतानु-वृत्त्यर्थे माहेन्द्रादीत्युक्तम् ॥ २१ ॥

अवरुह्य गच्छति स्तोत्राय प्रहितः॥ २२॥

आसन्द्या अवरुह्य प्रहितः सन् स्तोत्राय गच्छिति। यज्ञमानस्य "सोऽन्ते स्तोत्रस्य भवत्यन्ते शस्त्रस्य"(शञ्जा० ५-४-४-२५)इति वचनात्

अवभृथमेकेन ताप्यादीनि चेत्॥ २३॥

यदि माहेन्द्रादौ दीक्षितवसने न परिहिते तदा तार्थादीनामेकेनाव-भृथमभ्यवतरन्ति ॥ २३ ॥

उदैत्येकेन ॥ २४॥

उत्तरस्येकेनोदेति अन्येनोदेतीति पाठः। अध माहेन्द्रादौ दीक्षित वसनं परिहितं ततस्तेनैवावतरणमुत्तरणं च ॥ २४ ॥

दीक्षितवसनं च प्रास्यति ॥ २५ ॥ तार्षावतरणपक्षे ॥ २५ ॥ अनुबन्ध्यवपाहोमान्ते दद्यादेनानि ॥ २६ ॥

तार्पादीनि ॥ २६॥

उद्वसानीयायां वा ॥ २७ ॥ द्यात् । आगन्तुत्वाचद्न्ते निवेशः ॥ २७ ॥

त्रैघातव्युद्वसानीया ऐन्द्रावैष्णवो द्वादशक्तपालो वीहियवाणाम् ॥ २८ ॥ ''तमुभयेषां बीहियवाणां गृह्णाति''(श०ब्रा० ५-५-५-९)हति वचनात्॥ तृतीयं यवानां मध्ये ॥ २९ ॥ ततीयमागी यवानां मध्ये ॥ २९ ॥

अधिश्रगणं च ॥ ३० ॥

एवमेव। "व्रीहिमयमेवाप्रे पिण्डमधिश्रयति" "अथ यवमयम्" "अथ बीहिमयम्"(शब्बाव ५-५-५-६) हति वचनात । अवदानं तु धा-तत्रयादपि ग्राह्मम् ॥ ३०॥

तिस्रस्तिस्रो दक्षिणा ददाति शतमानानि ब्रह्मणे धे-नृहींत्रे वासाहस्यध्वर्षेवे गामग्नीषे ॥ ३१ ॥

तिस्रोस्तस इत्यवाच्यं, बहुवचनापदेशात्। आदिसामर्थ्याच तत्प्रा-प्तेः। वाच्यं वा, अग्नीघोऽपि गावस्तिस्र एव यथा स्युरिति।"ता वाऽप्ता द्वारका वा त्रयोदका वा दक्षिणा भवन्ति" (रा॰बा॰ ५-५-५-१९) इति श्रुतेः । नतु चैवं द्वादशैव भवन्ति न त्रयोदश । उच्यते । काण्वपाठाङ्गीकरणेन त्रयोदश भविष्यान्त । तत्राध्वर्योः पठ्यते त्रीणि वासांसि त्रयश्चातद्वाहो गां वाजं वाग्नीघ इति च त्रयोदश भवन्ति । वचनानुधातवी उदवसानीयाकार्येऽभिषेचनीयस्य भवति । प्रकृती चोदवसानीया समारूढानिर्माधिते द्रष्टा, इह च तथा न स-म्मवति येनामिषेचनीयदशपेययोश्च प्राक्तयादेकतन्त्रतां वक्ष्यति । तेनात्र भवति सन्देहः-किमतिप्रणीते कियतामुतापराग्न्याहवनीय इति। तत्र केचिदाहुराभिषेचनीयस्यैवेष्टिरिति तदाहवनीय प्वातिप्रणीते प्रा-प्रोति । अपरामयो दाशपेयिका इति । अतोऽतिप्रणीते इति । नेच्छन्ये तदपरे। न हीयं प्रकृताचातिप्रणीते उष्टेति। ननु चापराग्न्याहचनीयेऽपि नैव प्रकृती दृष्टा समाद्रदमन्थनविधानात्। सत्यमेवं समारोपमन्थने वद्यापेये नावसूथे। अतो न क्रियते। अपराग्निश्वस्वन्धश्चाभिषेचनीयः स्यानपनीत पत्र। केवलं मन्थनं न क्रियते। तस्मादिहैव युक्तरूपमनु ष्ट्रानम् । अपि च निवृत्तप्राकृतकार्योऽतिप्रणीतो नोदवसानीययापेश्यते । नत चापराग्नयो दाशपेथिका रत्युक्तम्। सत्यमेवं तथाप्याहवनीयापे-क्षायां स प्रसज्यते नातिप्रणीतौ निवृत्तकार्यस्वादिति ॥ ३१ ॥

भैषज्याभिचारयोरप्येषा ॥ ३२ ॥

त्रिधा दक्षिणा भवति त्रैघातवी ॥ ३२ ॥ इति पञ्चदशाष्याये सप्तमी कण्डिका। दशोत्तराणि स्राम्पाहबीरुषि निर्वपति॥१॥

नामधेयं ''तस्यात्स्युस्पो नाम" (श्वाव ५-४-५-३) इति । दशानामि षष्ठवामनुष्ठानं यथा स्यादित्येवमर्थं दशप्रहणमिति सम्प्र-दायः। काण्वास्तु षण्णां प्रतृत्तिः इवो भूत इति मन्यन्ते । न त्वाचार्येण स्रित्रम् । अन्यत्र चोक्तं प्रतिग्रहमेकैकः इव इति । तेनाचार्याः भित्रायादेकस्मिन्नेवाहनीति गम्यते । काण्वपाठाद्वा प्रत्यहमिति ॥ १॥

देवयजनान्तरमेकैकेनोत्सपीत ॥ २॥

हविषा॥ २॥

शालायामन्त्यस् ॥ ३ ॥

अन्त्यं हविर्दशपेयशालायां भवति । शालाग्रहणं चोपलक्षणाः र्थम् ॥३॥

सावित्रसारस्वतःवाष्ट्रपौष्णैन्द्रवाहस्यत्यवाष्ट्रणाग्नेः यसौम्यवैष्णवानि यथोक्तम् ॥ ४॥

यथा प्रदेशान्तर आचार्येणोक्तानीति यथोक्तप्रहणम् ॥ ४ ॥
प्रतीष्टि पुण्डरीकाणि प्रयच्छाति ॥ ५ ॥
प्रयच्छतिग्रहणाहक्षिणार्थे । तथा च काण्वपाठः "सा दक्षिणा"॥५॥

हिरण्मयानि वा ॥ ६॥

पुण्डरीकाणि । स चायं विकरपः ॥ ६॥

उत्तमासु तिसृषु पञ्च ॥ ७ ॥

वे वे व्योरन्त्यायामेकम् ॥ ७ ॥

तेषा है सूजं प्रतिमुञ्चते ॥ ८ ॥

तेषां पुण्डरीकाणाः सूजं मालां कृत्वा प्रतिसुञ्चते यजमानः ॥ ८॥ तद्दीक्षो भवति ॥ ९ ॥

(१)"सास्य दीक्षा" (श्वा॰५-४-५-१३) इति वचनात् ॥ ९॥ एकतन्त्री क्रयेकत्वात् ॥ १०॥

हरं विचार्यते—िकमेतानि हवीरिष दशपेयाङ्गभूतानि उत पृथगर्थः त्वमिति । पृथगत्वर्थमिति ब्रूमः । एवं हात्र अयूयते—पिमेमे पीष्टमसदेः भिरपि सुया'श्र्ति । तेन त्रिषंगुक्तादिवत् पृथगर्थत्वमिति केचित् । नैवः

⁽१) "सा दीक्षा" इति जर्मनमुद्रितशतपथपुस्तके पाठः। ९ का०

मित्यपरे। पतिहि द्रापेयार्थानामग्नीनां तद्देवयजनप्रतिनयनं क्रियते। अतस्तद्र्धामिति गम्यते। तथा च मन्त्रिल्डं "सवित्रा प्रसवित्रेत्युपः क्रम्य विष्णुना द्राम्या देवतया प्रसृतः प्रसर्पामि" (वा॰सं॰१०-३०) इति सर्पणार्थतां दर्शयति। "प्राभेर्मपीष्टमसदोभरपि स्याः" इत्यर्थवाद्रशयम्। प्रयोजनं द्रापेयाङ्गत्वेऽग्न्यन्वाधानामावः । वाजपेये च सर्पणामावादप्रवृत्तिः॥ १०॥

इदं विचार्यते--िकमिषेचनीयदश्येयौ एकतन्त्राद्युत पृथक्तन्त्रा-विति । एकतन्त्राचिति ब्र्मः । क्कत एतत् ? ऋयप्रतिकर्षात् । एवं द्यत्र श्रूयते--"सह सोमौ कीणाति" । तत्प्रतिकर्षाचाधस्तनस्यापि प्रतिकर्ष इति । एवं प्राप्त आह--

नाना चावभृथदीक्षाश्चितिभ्याम् ॥ ११ ॥

्नाना तन्त्रौ वा भवतः। कुत पतत् ? अवस्थर्शक्षाश्चितिभ्याम्। अभिषेचनीयस्य द्यवसृथः श्रूयते—"स यत्रावसृथमभ्यवेति तदेवदण्यः भ्यवहरान्ति"इति दीक्षितवसनप्रासनविधिपरे वाक्ष्ये अवसृथं दर्शयति। तथा च दीक्षा श्रूयते—"पुण्डरीकस्त्रजं प्रतिमुञ्जवे सं ८क्य दीक्षा" इति। यदि होकतन्त्रौ स्यातां नावसृथः श्रूयेत। तथा दीक्षा इति॥ ११॥

एवं प्राप्त आह--

एकं त्वानुषूर्व्ययोगात् ॥ १२ ॥

तुशब्दः पक्षव्यावृत्तौ । एकमेव तन्त्रम् , न भिन्नतन्त्रता । कुत एतत् ? एवं हि पदार्था आनुप्रयेण युज्यन्ते । क्रयमात्रे पुनः प्रातिकृष्यमाणे दीक्षणीयादीनां पश्चादनुष्ठानानुप्रये स्यात तत्र चोदकबाधः । दीक्षाव-भृथप्रहणं तद्वचनेतथदोषः ॥ १२ ॥

तदुक्तम्--

अवभृथदीक्षाभ्यासो वचनादिति ॥ १३॥ यथाऽइवमेघेऽवभृथदीक्षाभ्यासः॥ १३॥

ससम्यां ब्रह्मागारात्सोममाहृत्यासन्याभिमदीनादि करोत्युपसदेवताहबी/षि निर्वपत्युपसदन्त इच्छन्यथो-क्तम् ॥१४॥

्षवमेव हि श्रवणमिति ॥ १४ ॥ पितामहृद्शगणः सोमपानाः, संख्यासर्पणम् ॥ १५ ॥ यजमानस्य पितामहद्शागणं सोमपानामुद्यार्थ (१) सर्पणं कर्तः व्यम् ॥१५॥

सवित्रेति वानुवाकमुक्तवा ॥ १६ ॥

सर्पणं भवतीति विकल्पः ॥ १६॥

दश दशैकैकं चमसमनु मक्षयन्ति॥ १७॥

"दश दशैकैकं चमसमनु प्रसृप्ता भवन्ति" (श्वा ५-४-५-३) इति सचनात्॥ १७॥

यजमानस्य राजन्यः ॥ १८॥

्तत्र च राजन्यचमसे राजन्या भक्षयन्ति । संख्या हि समानजाः

तीयेषु भवति ।

नेतु च "शतं ब्राह्मणास्तोमं भक्षयन्ति' इत्यत्र श्रूयते । तत्र कथं राजन्या भनेयुः? उच्यते, भूयस्त्वात् । ब्राह्मणेषु चाब्राह्मणेषु शतसंख्येत्यदोषः । एवं च सहपानविरोधो न भवति ॥ १८॥ एवं ब्राप्त आह--

ब्राह्मणा वा श्रुतेः ॥ १९ ॥

वाश्ववदः पक्षव्यावृत्तो । ब्राह्मणा एव मवन्ति न क्षत्रियाः। "शतं ब्राह्मणा" इति हि श्रयते । ननु च ब्राह्मणेषु च भृयस्त्वाच्छतशब्द इत्युः कम । नैतदेवम् , "शतं ब्राह्मणाः सोमं मक्षयन्ति" इति विधिरयम् , विधी च न परः शब्दाधों भवति । एवं कृत्वा "दश दशैकैकं चमसमनु भक्षयन्ति" इति विभागविधानम् ॥ १९ ॥

तुल्याः संख्यायोगात् ॥ २०॥

शतसंख्या च तुल्येषूपपचते नातुल्येषु । अतो धजमानचमसेऽपि ब्राह्मणा एवेति । सहपानाचिरोधस्तु वचनात् ॥ २० ॥

ब्रह्मणे ददात्यः ग्रुवदक्षिणा ॥ २१ ॥

अ/शुवदिति तुरुपशास्त्रत्वात् ॥ २१ ॥

हिरण्मपी है सजसुद्गाने स्क्मा होने हिरण्मपी प्राकाशा(२) वध्वर्युभ्यामश्वं प्रस्तोने वशां मैत्रावस्णायः वैसं ब्राह्मणाच्छ सिने वाससी नेष्टापोत्भ्यामन्यतरतो(३)

⁽१) अमुकः प्रथमः, सोमपः, असौ द्वितीयः, असौ तृतीयः, एवं दशः मपर्यन्तं सोमपान् गणियत्वेत्यर्थः ।

⁽२) प्राकाशौ दर्पणौ। कर्णवेष्टकावित्यपरे ।

⁽३) एक स्मिन्पाइवें बळीवदेंन युक्तं यवैराचितं पूर्णे शकदमित्यर्थः।

युक्तं यवाचितमच्छावाकाय गामग्नीचे ॥ २२॥

ददातीति सर्वत्राज्ञषङ्गः । गौश्चानडुद्भवति, काण्वपाठात् ॥ २२ ॥ आभिषेचनीयान्ते केरावपनार्थे निवर्त्तन्य, संवत्सरम्॥ २३॥

अभिषेचनीयान्तग्रहणेन द्शपेयान्तो छक्ष्यते । "अभिषेचनीयेनेष्ट्रा केशान्न वपते" (श्वाञ्चा० ५-५-३-१) इति श्रुतेः । तच्च "संवत्सरं न वपते" (शञ्जा० ५-५-३-२) इति श्रुतेः । वपनं मुण्डनं केशानामन खण्डनम् । येनैवमाह—"स वैन्येव वर्त्तयते केशान्नवपते" (शञ्जा०५-५-३-६) इति ॥ २३॥

सूम्यनभिष्ठानं च ॥२४॥

चराव्दारसंवरसरमेव ॥ २४॥

अनुपानत्कस्य यावज्जीवम् ॥ २५॥

पुनर्यावज्जीवमेव भूम्यनभिष्ठानम् ॥ संवत्सरं तु स्रोपानत्कस्यापि भूम्यनभिष्ठानामिति ॥ २५ ॥

दति पञ्चदशाध्याये अष्टमी कण्डिका।

उत्तरे गुक्ले पश्चिलः॥१॥

पञ्चाबिल इति नामधेयम्-"तस्माच्यरः पञ्चाबिलो नाम" (श्वाव्याव्य-५-१-१) इति । उत्तरप्रहणमनन्तरब्युदासार्थे उत्तरानन्तरार्थे च । वै-शाखशुक्क इत्यर्थः ॥ १ ॥

आग्नेय ऐन्द्रः सौम्यो वा वैद्वद्वश्चरः पयस्या मैन्त्रावरुणी बाईस्पन्यश्चरः ॥ २ ॥ तेषां च—

प्रतिदिशमासाद्नमाग्नेयं पुरस्तात्प्रद्विणामितराणि मध्येऽन्त्यम् ॥ ३ ॥ इविभवति ॥ ३ ॥

पूर्वेश्चरित्वा चरित्वा मध्यमे स्रुखवासेचनस् ॥ ४॥ स च तत्संस्कारः। अतश्च संखवामावेऽप्यन्येन कार्यः॥ ४॥

आग्नेयो हिरण्यदक्षिणोऽग्नीचे ददात्यैनद्रस्य ऋषभः सौम्यस्य बम्हर्ज्रह्मणे वैश्वदेवस्य पृषन्होत्रे पयस्याया बज्ञा ऽभावेऽप्रचीताऽध्वर्युभ्यां बाईस्पत्यस्य ज्ञितिपृष्ठो ब्रह्मणे ॥ ५॥ द्दातीत्यनुवर्त्तते । वशा रिका । अप्रवीता अकामिका । अध्वर्धु-भ्यामिति । द्वितीयोऽसीत् ॥ ५ ॥

अन्नाद्यकामस्याप्येषा ॥ ६ ॥ राजस्याद् बहिरिधिभंवति ॥ ६ ॥ द्वादक्वोत्तराणि प्रयुग्यवीद्वि ॥ ७ ॥ निर्वपति ॥ ७ ॥

मासान्तराणि॥८॥

प्रयुग्यवी हिति नामधेयम् , "स वे प्रयुजाह हिति भेर्यजत" (श्वाबा ५-५-२-१) इति श्रुतेः । द्वाद्शप्रहणं वा मासान्तरपक्ष एकः स्मिन्ने वाहिन कियेते त्येवमर्थः । तथा च काण्वानां "पट् पट् श्वो भूते" इति पट्ट्यते। यहा द्वादशानामेव प्रयुग्यविष्ट्रमुत्तरेषां नेति द्वादशप्रहणम्८

आहवनीयाद्वा पुरस्ताच्छम्यापासे शम्याप्रास आः ग्रेयसौम्यसाविज्ञबार्हस्पत्यत्वाष्ट्रवैदवानरा यथोक्तम्॥९॥ यथा प्रदेशान्तर उक्तम ॥९॥

एवमावृत्तस्य चरवः सारस्वत्मैञक्षेञ्जपत्यवारुणादित्याः १०

एवमेव प्रत्यावृत्तस्य शस्यापासे भवति ॥ १० ॥ षद् षड् चैकतन्त्रे ॥ ११ ॥

भवन्तीति सुत्रशेषः ॥ ११ ॥

पूर्वाभिवाही द्वौ द्वौ षण्णाः षण्णां दक्षिणा ॥ १२॥ इतरत्र तु चोदकेनान्वाहार्यः ॥ १२॥

अष्टापदीवत्पशुबन्धौ गर्भिणीभ्याः स्वगुणदक्षिणौ॥१३॥ अष्टापदीशन्देनान्बन्ध्योच्यते लक्षणयाः, तद्वत्पशुबन्धौ । तावेतौ गर्भिणीभ्यां भवतः स्वगुणदक्षिणौ, तद्गुणदक्षिणावित्वर्थः॥१३॥

इयेन्यादित्येभ्योऽदित्यै वा ॥ १४ ॥

भवति ॥ १४ ॥

वैश्वदेवी पृषती मास्ती वा॥१५॥

सबति॥ १५॥

तदन्ते केदावपनीयोऽतिरात्रः पौर्णमासीसुस्यः ॥ १६॥ तदन्तप्रहणाञ्चानन्तरपौर्णमास्यां केशवपनीयो भवति ॥ १६॥

उत्तरे च मासान्तराः ॥ १७ ॥

उत्तरे च क्रतवो मासान्तराः । चशब्दात्पौर्णमासीसुत्याश्च भवन्ति ॥ व्युष्टिद्धिरात्रः ॥ १८ ॥

अग्निष्टोमातिरात्रौ ॥ १९॥

अग्निष्टोमत्रहणमपार्ष्टिकत्वज्ञापनार्थम् ॥ १९ ॥ क्षत्रघातिः ॥ २० ॥

अपरः ऋतुभैवति ॥ २०॥

तसुभयत एके त्रिष्टोपज्योतिष्टोमौ ॥ २१ ॥

कुर्वन्त्येके उपरिष्ठात् । अत्र च वैशाखामावास्यायां पशुबन्या । ज्येष्ठपौर्णमास्यां केशवपनीयः । आवाख्यां च्युष्टिद्विरात्रः । आवण्यां क्षत्रधृतिः । माद्रपदाश्वयुजयोस्त्रिष्टोमज्योतिष्ठोमौ । कार्त्विक्याः सौत्रा-मणीति ॥ २१ ॥

अभिषेचनीयाद्वा संवत्सरात्केशवपनीयोऽतिराञ्जः सोमापवर्गः ॥ २२ ॥

सोमापवर्ग इति सोमानामपवर्गो भवति वा, तद्ववर्गे सोमाः॥२२॥ उत्तरे ग्रुक्ले सौत्रामणी ॥ २३॥

स्रोमानन्तरे शुक्के सौत्रामणी मवति ॥ २३ ॥

त्रीहीन्विरूढाविरूढान्चौम उपनह्य क्रीणाति क्ली-बात्मीसेन ॥ ९४॥

ऋजुः॥ २४॥

पक्तवौदनं विरूढांश्चरणींकृत्याश्विम्यां पच्यस्वेति स्रासुजति ॥ २५ ॥

ओदनपाको विक्रदैः सचतुर्मुष्टिकग्रहणपूर्वकश्चोदकानुग्रहाय तस्य च विक्रदच्यूणैराईवभ्यां पञ्यस्वेति संसर्गः॥ २५॥

सिंह वृक्याञ्रलोमानि चावपति ॥ २६॥

चशब्दात्तंत्रेव॥ २६॥

पशुषु वा ॥ २०॥

आवपति तुल्यशास्त्रत्वात् ॥ २७ ॥

पुरोडाश्चर्मा द्रव्यसामान्यात् ॥ २८॥

अत्र च सुरायां पुरोडाशघर्माः प्रवर्त्तन्ते । द्रव्यं हि तेषां पर्युपस्थाः पकामिति । नतु च त्रहत्रहणपुरोहगुपयामादीनां दर्शनात्सीमिका भव-न्तीति गम्यते ? नेत्याह ॥ २८ ॥

यावदुक्तः सौमिका गुणस्वात् ॥ २९ ॥ यावदुक्तं ते भवन्ति । न हि सौमिकधर्मप्रवृत्तिरत्र, व्यक्तत्वात् । न च गुणप्रवृत्त्या गुणान्तरप्रवृत्तियुक्ताः, गुणत्वादेव ॥ २९ ॥ इति पञ्चदशाध्याये नवमी कण्डिका ।

त्रिपद्युः पद्युवन्धः इवश्चतुध्यीम् ॥ १॥ चतुर्थे वाऽहानि ॥ १॥ पकायाम् ॥ २॥

सुरायाम् ॥ २ ॥

आहिबनोऽजः खेतः॥ ३॥

इयेत आरक्तगौरः(१)॥३॥

मल्हाऽविः सारस्वती ॥ ४ ॥ रजो मळं हन्तीति मल्हाऽविः सा सारस्वती॥४॥ ऋषभिनद्राय सुत्रास्णे तद्गुसाभावेऽजाः॥ ५ ॥ तद्गुणानामभावे अजा भवन्ति ॥ ५॥ प्रथमो लोहितः॥ ६ ॥

तदा च लोहितः प्रथमो भवति ॥ ६॥

त्रियूपो वैकादाचितिलिङ्गात्॥ ७॥

त्रियूपो वा भवति, एकयूपो चा, एकादशिनिळिङ्गात् । एकादशि-न्यां ह्युभयं दृष्य् — एकयूपतानेकयूपत्वं च । एकादशिनिळिङ्गं चात्र गणत्वामिति ।

अत्रोच्यते । सौत्रामणीसंशन्दनादेकयूपतेव नियन्तुं युः ज्यते। तत्र हि श्रूयते-''तद्यदेत्रे सौत्रामणिकं यूपमेतौ यूपावभितो सवतः इति। अपि च स्त्रारम्भसामर्थाद्यमर्थोऽवगम्यते-स्त्रारम्भमन्तरेणापि विकल्पः सिध्यत्येव। तस्मादेकयूपतानियम इति॥७॥

> अग्नी वरूणप्रवास्त्रत् ॥ ८॥ अवोदिर्दक्षिणः ॥ ९॥

भवति॥ ९॥

⁽१) आलोहितोऽज इति हरिस्वामी। गुक्कवर्ण इति माघवाचार्याः।

वपामार्जनान्ते कुशैः परिस्कृतं पुनाति वायुः पूत इति १० अनेन मन्त्रेण ॥ १०॥

क्रवलकर्कन्धुबद्रचूर्णानि चावपति ॥ ११ ॥

(१)कुवलाद्यो बद्रजातिविशेषाः । वयोवस्थाविशेषा इत्यपरे॥११॥ प्रहं ग्रण्हाति कुविदङ्गिति त्रीन्वा प्रतिदेवतमेतयैव ॥१२॥ पुरोहचा । स चायं विकल्पः, "एकं वा त्रीन्वा" (श० ब्रा०५-५-४-२३) इति श्रुतत्वात् ॥१२ ॥

समस्यानुवाचनं यजेति च ॥ १३ ॥ समासश्चतुर्थ्यन्तानामेव पदानां, न विभक्तिलोपेन ॥ १३ ॥ प्रथमस्यानुहोममितरी ॥ १४ ॥ प्रहो ॥ १४ ॥

परिस्रद्धोमो दक्षिणेऽग्नौ ॥ १५॥
तत्र चाहवनीयसंस्काराः कर्त्तव्याः चोदकपरिप्राप्तवा ॥ १५॥
भक्षमाहृत्य परिस्र्रुच्छेषमासिच्य स्क्मविद्यद्वं कुः
मभः शिक्ये कृत्वोपरि दक्षिणस्य धारयन्तस्रवन्तसुपतिष्ठते
तृचैः सोमवतां बर्हिषदामारिन्द्वासानामिति ॥ १६॥

मक्षाहरणमात्रोपदेशाद्विशेषानुपदेशास यथाऽन्यत्र भक्षणं तथेहाः पीति ॥ १६ ॥

हवीक्षि निर्वपति सावित्रवारुणैन्द्राणि यथोक्तं पद्युः पुरोडाञार्थे ॥ १७॥

देवतान्यत्वात् पशुपुरे।डाशार्थं इत्युक्तम् ॥ १७॥

नपुंसको दक्षिणा रथवाही वा वडवा ॥ १८॥ विकरणः ॥ १८॥

सोमातिपूतस्याप्येषा ॥ १९॥ सोत्रामणी भवतीति द्रोषः ॥ १८॥

अनुयाजान्ते पद्मुपुरोडाशार्थेश्वरत्यादिनेन पाग-बदानेभ्यः॥२०॥

⁽१) बदराणि निरुपपद्बदराणि चणकबद्राणि च कुवलादिवा-च्यानीति याञ्चिकाः । सुक्ष्मतरस्थूलमध्यमपरिमाणानि बद्रजातिकलाः नीति माधवाचार्याः।

आदिवनस्य चानेनोत्पत्तिः, पूर्वमनभिषानात् ॥ २० ॥ इविभिन्नी ॥ २१ ॥

मागवदानेभ्यश्चरति अस्मिश्च पक्षे ॥ २१॥ आहिननाभावस्तु ॥ २२ ॥

सीत्रामणीं त्रेघातवीं च प्रकृत्य थ्रयते—"सेवा राजस्ययाजिन उद् वसानीयेष्टिर्भवति". (श्वा० ५-५-५-९) इति । अतः किमर्थमिदमाह-राजस्ययाजिनः कमोपवर्गे वा सौत्रामणी॥ २३॥ त्रैघातवी वेति विकल्पमाशङ्क्याह—

त्रैघातव्यानुषुवर्षयोगात् ॥ २४ ॥

त्रैधातब्येवान्ते भवति, आनुपूर्व्ययोगात् । त्रैधातब्येवान्ते पठयत इति । न चानयोविकन्यः, आम्नानसामध्यीत् । तेन सौत्राः मण्या उद्वसानीयत्वमुख्यते, उद्वसानीयासिक्षधौ पाठात् । उद्वसानीयवोदवसानीयेति उपचारवृत्या । तथा च पाठः—"अनया मेऽपीष्टमसदनयापि सूया" (द्याव व्राट ५-५-५१) इति ॥ २४ ॥

इति पञ्चद्शाध्याये दशमी कण्डिका।

इति श्रीउपाध्यायकर्ककृतौ कात्यायनभाष्ये पश्चद्द्योऽध्यायः समाप्तः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः।

राजस्योऽजुविहितः। इदानीं श्वतिमन्त्रपाठावसरप्राप्ती अग्निरजु-विषेयः। सोऽजुविधीयते।

अग्निः सोमाङ्गं तद्गुणव्यतिषङ्गात्॥१॥

अश्विशन्दो ज्वलनवचनः अतस्तद्धिकरणभृतस्थलः मिधायको द्रष्ट-व्यः "श्वकामिर्द्धि चिनोति" श्ति हि श्रूयते । तथा "अश्विमारोहन्ति" (श्राव्याव ९-२-३-२४) "अश्वि प्रोक्षति" (श्रीव्यूव १७-१२-२८) श्ति च आरोहणप्रोक्षणे स्थलस्योन्थते । तस्य चानारम्य विधानात्प्रकृतिसः न्यपेश्चत्वे सोमस्याङ्गमित्युच्यते । सोमशन्देन च लक्षणया तत्साध्यक्त-त्वभिधानम् । 'सोमाङ्गम्'श्ति कुत एतत् ? तद्गुणन्यतिष्ट्रात् । तद्गुः णानां हि व्यतिषङ्गोऽत्र दृश्यते । "अन्तरोपसदौ चिनोति" (श्वाव्याव्यावि । १०-२-५-१) । "प्रायणीयेन प्रचर्य सीरं युनक्ति" (श्वव्याव ७-२-२-२) "चितो गार्हपत्यो भवत्यचित आहवनीयः । अथ राजानं कीणाति" (श्वव्याव ४-१-१) इत्येवमादि । फळवतश्च गुणव्यतिषङ्गे सित अफळ स्य तदङ्गता ॥ १ ॥

इच्छतः समहाव्रते नियमः ॥ २॥

अङ्गमिष सदिच्छया भवति । कथमवगस्यते ? येन स म(१)हावते नियमो दृश्यते—"तस्मादेतानि सर्वाणि सहोपेयादिश महावतम्" (श्वाव्याव १०-१-२-२)इति ।

नतु चाग्रौ महाव्रतनियमः कस्मान्न भवति ? उच्यते, अग्निप्रकरः णेऽपाठात् । यस्यैव प्रकरणं तद्धर्मनियमो युक्तः । तस्मात्साध्वभिहितं "स महाव्रते नियमः"इति । अत प्रवोक्तम् "इच्छतः"इति । अत्र नियमः विधानादन्यत्रेच्छैव भवति ॥ २ ॥

न प्रथमाहारे ॥ ३ ॥

प्रथममहियत इति प्रथमाहारः, प्रथमप्रयोग इत्यर्थः ॥ ३ ॥ कुत एतत् प्रथमे प्रयोगे न भवतीति—

उत्तरवेद्यग्निनिधानात्॥ ४॥

उ(२)त्तरवेदौ हाम्नेर्निधानं विहितम्-"सयद्धार्यमाणेऽम्रौ उत्तरवेदि व्याघारयति" (रा॰मा॰ ३-५-२-९)हति । अग्निधारणं च निधानार्थम् । अग्नौ च स्थलेऽग्निनिधानं विहितम् । यदि च प्रथमाहारेऽप्यक्निः स्यादु-

⁽१) यद्यपि महावृत्रचन्दः कृतुवाचकः स्तोत्रवाचकश्च, तथाप्यत्र स्तोत्रवाचक एव, राज्यसामध्यात् ।

⁽२) अथातोग्निरितिश्वत्या सर्वत्र प्रापिते पुनः ।
सहोपेयादिति श्वत्या नियमः स महाव्रते ॥
उपलक्षणमेवैतिद्विशेषः श्रूयते यतः ।
सर्वमेधेऽस्वमेधेऽग्नेः स्तोमे चातश्चतुष्विपि ॥
नियमोऽन्यत्र पक्षे स्याज्ज्योतिष्ठोमे भवेष तु ।
प्राक्तते संप्रदायाचो षोडशिन्यविधानतः ॥
वाजपेये पुनः सोमसुत्रेऽग्निः श्रूयतेऽपि वा ।
अतः षोडशिन स्याद्वा नेति भाष्ये उपेक्षितम् ॥
इत्यन्यत्रोक्तमः ।

त्तरवेदाविभिनिधानमनर्धकं स्यात् । अथ पुनः प्रथमाहारेऽर्थवरवे खंवृत्ते विविधानमनिधकं स्थात् । अभ्य पुनः प्रथमाहारेऽर्थवरवे खंवृत्ते

नतु चानारभ्यवादप्रकृतिविधानयोर्विकरुपः कस्मान्न सवति ? ने त्युच्यते, प्राकृतं विधानमुत्पत्तिशिष्टत्वादनारभ्यवादाद् वळीयः, अतो न विकरूप इति ।

अत्र वदामः - यदि प्राकृते प्रत्यर्थिन्यनारभ्यवाद्स्यानवकाराः द्वि-तीयादिष्वपि प्रयोगेष्वनारभ्यवादविहितोऽभिर्न प्राप्तोति, तत्रापि हि प्रकृतौ विहितमुत्तरवेदावाग्निनिधानमस्त्येव, तम्मादपन्याख्यैषा 'प्रथमा-हारशब्देन प्रथमः प्रयोग उच्यते हिति । कथं होतत् ? उच्यते, प्रथमा-हारशब्देन ज्योतिष्ठोमोग्निष्ठोमसंस्था उच्यते, तस्य हि प्रथममाहरणम-नुष्ठानम्। एवं हि श्रूयते, "एष वा व प्रथमो यज्ञानां यज्ज्योतिष्टोमः" इति । आचार्यणाप्युक्तम्—"एव प्रथमसामः"इति । तेन प्रथमाहारे ज्योतिष्टोमेऽप्तिष्टोमसंस्थे नाग्निर्भवति । न हि पाछतं विधानमनारम्यः विधिना पक्षेऽपि बाधितं शक्यते । अतोऽनारभ्यविहितस्याग्नेरन्यत्राः वकाशः। यथा साप्तदृश्यं प्रकृत्वास्नातेन पाश्चदृश्येन बाधितम्। यद्येवं साप्तददयवत् पुनर्यत्रैव अवणं तत्रैवाग्निः प्राप्तीति, यथा साग्निचित्याः वरनेः स्तोमाविति, यथाऽइवमेथे एकविशोऽिनर्भवतीति सर्वमेथे चा ग्निइत्तम इति । नैष दोषः, अस्ति ह्यत्रान्यद्पि विधानम् । "अथातो। ग्निः इति प्रकृत्य "तम्निष्टोमेनानुयज्ञति, तमुक्थ्येन, तमतिरात्रेण, तमेकरात्रेण, तं द्विरात्रेण" इत्येवमादि समानविधानार्थानि वचनानि, तैः सर्वत्र प्राप्तिः। तथा च तस्मादु सप्तविधमेव प्रथमं विद्धीताथैकोः सरमैकरातविधादिति । अतः सर्वत्र प्राप्तिः । साप्तदृश्ये तः विशेषमेव थ्रवणिमति ॥ ४ ॥

चिकीषेमाण उत्तरस्यां फागुन्यां पौर्णमासेनेष्ट्रा प(१)श्रपश्चनालभते दक्षिणान् ॥ ५॥

"चिकैषिमाणः" इत्यवाच्यम् , उपक्रमादेव तत्सिद्धेः । वाच्यं चा । स्वयमातृण्णाद्यपथानेऽपि मा भृदालम्म इति । पञ्चप्रहणं चाभिजिद्धिः श्वजितोरपि पञ्चैव यथा स्युरिति ॥ ५ ॥

ब्रह्मणे वा द्यात्॥६॥

⁽१) तथाच संप्रदाये साग्तिको चेदन्तर्वेदि द्वित्वेऽपि सति न पञ्चः पशुभेदः। उखाशिरांसि तु संग्रामकराणीति।

दक्षिणाम् । विकल्पेन हि श्रवणमत्र ॥ ६ ॥ अमावास्यायामेके ॥ ७ ॥

पञ्च पश्चनालभन्ते, ''अमावास्यायामालभेतेत्यु हैक आहुः'' (रा०ब्रा०६-२-२-१६) इति । सा च माघामावास्या सन्निघानाद् गृह्यते॥॥

अग्निभ्यः कामाय पुरुषाद्वगोऽव्यज्ञान् ॥ ८॥

आलभते। यत्तु "वैश्वकर्मणं पुरुषं वारुणमञ्चमेन्द्रमुषमं त्वाष्ट्रमवि मान्तेयमजम्" (श्वाव्यव्य-२-१-५)इति, सोऽर्थवादो "हन्तेनानामिस्यः कामायालमा" (श्वव्याव्य-२-१-६) इत्यस्य ॥ ८॥

वर्षिष्ठरदानः पुरुषोऽनुपृद्यो इतरेषास् ॥ ९ ॥

रज्ञाना सवन्ति, "पुरुषस्य वर्षिष्ठाऽथ हसीयस्यथ हसीयसी" (श्वः ब्रा०६-२-१-१९) इति अतेः । वर्षिष्ठता च न्यामापेक्षया, न स्थौह्यापे स्या। प्रकृती द्विष्यामा भूयते—"द्विष्यामया रञ्जनया"(श्री०स्०६-३-२४) इति ॥ ९ ॥

सर्वेषां वा तुरुवाः ॥ १०॥ रशना भवन्ति ॥ १०॥

समिध्यमानसामिद्धवत्यन्तरे समास्त्वाम

इति नव द्याति॥ ११॥

"तेषां चतुर्विश्वातिः सामिधेन्यः" (श्वा०६-२-१-२१) इति प्रक्रः त्याह—"समास्त्वाग्नऽऋतवो वर्क्षयन्तु" (वा०सं० २७-१) इति ॥ ११॥ आप्रियो द्वाद्शोध्वी अस्येति ॥ १२॥

आवियः प्रयाजयाज्या द्वादश भवन्ति, "ता पता ऊद्र्ध्वा अस्य समिधो भवन्ति" (श्रुष्ट्रा० ६-२-१-३१) इति श्रुतेः ॥ १२॥

एकादशान्ते शासमैषादि करोति ॥ १३ ॥ प्रकृतौ दशान्तेऽभिहितम् । इह वचनादेकादशान्त उच्यते ॥१३॥ परिवृते पुरुषसंज्ञपनम् ॥ १४ ॥

षचनाद्भवति ॥ १४॥

अजस्य ग्रुन्थिति प्रचरणयोगात् ॥ १५ ॥ इतरेषां पश्चामप्सु कायप्रासनमुक्तम् ,अजेन चरतीति च। पतेनाः जस्य ग्रुन्थतीत्युष्यते । स हि प्रचरणेन युज्यते ॥ १५ ॥ सर्वेषां चाऽविद्योषात् ॥ १६ ॥ सर्वेषां वा शोधनं कर्त्तत्यम् । सर्वेषामेव हाविशेषेण देवतासम्बन्ध उपिद्धः । तेन सर्व पवैते यागाः । यागार्थद्रव्यस्य च यो धर्मः स च सर्वेषां भवति । अप्सु कायमासनं तु वचनात् ॥ १६ ॥

वैद्यः पुरुषो राजन्यो वा॥ १७॥

वचनाद्भवति ॥ १७ ॥

कण्डेषु तृणमन्तर्भाव शिराह्यादत्ते॥ १८॥

तृणाधिकाराद्वपातृणकाल पव शिरसामादानं जिह्नावर्जम् । सा हा-वदानैः सह गृह्यते ॥ १८ ॥

चतुर्णामप्सु कायप्रासनम् ॥ १२ ॥

शिरोग्रहणसमनन्तरमेव । येनाजं श्रक्तत्याह-स्वृक्थिते तस्य शेष-प्रासनमिति ॥ १९ ॥

ततो मृद्धिकार्थापश्च ॥ २०॥

तत प्वोदकमध्यात् मृद् गृहाते इष्टकार्था। आपश्च तत एव ॥ २०॥

अजेन चरति॥ २१॥

"अजेन यहार सरस्थापयन्ति" (१) इति वचनात्॥ २१ ॥ सरस्थिते तस्य शेषप्रासनम् ॥ २२ ॥

सः हिथते कर्मणि शेषस्याप्सु प्रासनम् ॥ २२ ॥

सर्वेरेके ॥ २३ ॥

एके आचार्याः सर्वैः पशुभिः प्रचारमिच्छन्ति । "तद्धैक आहुरत्रै॰ वैतैः सर्वैः पशुभिर्यजेत" (श्वां ६-२-१-१३) इति हि श्रूयते ।

नतु चैवं सति सम्भरणार्थता विरुध्यते । सम्भरणार्थे हि अप्सु कुसिन्धानां प्रासनम् । कुसिन्धेः कुषितया मृदा अद्भिश्चेष्टकानां दार्क्यः मुपजायत इति । अतः सर्वप्रचारे सम्भरणातुपपत्तिरिति ॥ २३ ॥ एवमाद्यक्ति आह—

एकस्यापि किं ततः सम्भरेदिति श्रुतेः ॥ २४॥

"तद्धेक आहुरत्रेवेतैः सर्वैः पशुभिर्यजेत" (श्रव्वाव ६-२-१-१३) इति प्रकृत्याह—"यद्वा एतैरत्र सर्वैर्यजेत तदेवाग्नेरन्तं परीयाद्" (श्रव् ब्राव ६-२-१-१३) इति सर्वैर्यागमभिष्ठाय निषेधति "न तथा कुर्योहैः

⁽१) वर्छिनराजधान्यां मुद्रितशतपथझहाणे एवं पाठः 'अजेन यञ्चगुसमस्थापयन्' (शञ्जा०६-२-१-७) इति ।

वानां तिवति वियादियो पथस्ति वियादियो कि ततः सम्मरेत्" (श्वाव ६-२-१-१३) इति सर्वया(१)गपक्षे सम्भरणामावदोषप्रसङ्गः। तस्मान्न सर्वैर्याग इति। एवमाश्रिक्षेते उत्तरम् एकस्यापि "कि ततः सम्मरेत्" (श्वाव्याव ६-२-१-१३) इति श्रुतेः। एकस्यापि पशोरालम्मे कि ततः सम्मरेत्यः सम्मरेदित्येतत्तु स्वमेव। तस्माद्विकत्यः सर्वेर्वा यागोऽजेन वेति। यः सम्मरणामावः सोऽसर्वयागपक्षार्थवादः॥ २४॥

वैश्वानरः पशुपुरोडाश उपारृशु ॥ २५॥ मवति॥ २५॥

पशुद्देवता च ॥ २६ ॥

उपांदवेच ॥ २६॥

आग्नेय्यो याज्यानुवाक्याः कामवत्यः ॥ २७॥ भवन्ति ॥ २७॥

मैथुनं वर्जयेदापयस्यायाः॥ २८॥ पयस्या अन्ते विहिता आ तत इति॥ २८॥ माक्ष्मोपर्यासने चेच्छन्॥ २९॥ माक्ष्मोपर्यासने चेच्छन्॥ २९॥ माक्ष्मोपर्यासने चेच्छया वर्जयेत्॥ २९॥

त्वङ्मस्तिष्काद्धृतानि घृताक्तानि शिराः

रृसि निद्धाति ॥ ३०॥ त्वक्त्वगेव, मस्तिष्कराज्देन शिरःकपालगता मञ्जाऽभिधीयते । ते च उद्धृत्य घृताकानि शिरारृसि स्थापयति ॥ ३०॥

सकलानि वा॥ ३१॥

वेति विकल्पः ॥ ३१॥

अन्यानिषा॥ ३२॥

⁽१) अत्र च यागशेषस्य सम्मरणार्थता, न सम्मरणार्थस्य यागा-र्थता । तथाच "एकपुरोडाशेषु व्रत्यासम्मवात्" इति सुत्रे 'तस्य वाऽस्य यागशेषस्य पुरुषार्थकपता, न पुरुषार्थस्य यागार्थता, दृष्टाद-ष्टार्थत्वात्' इति भाष्ये उक्तम् । ततश्च सम्भरणद्रव्यनाशे न यागार्थ-चिः । शीर्षनाशे च अन्यानि प्रायश्चित्तपूर्वकमुपादेयानि, उपधानार्थ-त्वात् । न च "अन्यानि वा हिरण्मयानि वा मृत्मयानि वा" इति शा-स्त्रप्रवृत्तिः, "विकल्पे प्रवृत्तं कर्मान्तरत्वात्" इत्युक्तेः।

हिरण्मयानि वा ॥ ३३ ॥ सृन्मयानि वा ॥ ३४ ॥ अनालभ्येतान् ॥ ३५ ॥

पश्चन् । अन्यानि वा सङ्घामहतानि गृह्वाति हिरण्मयानि वा सुन्म-यानि वेति विकल्पः ॥ ३५ ॥

इयामतृपरो वा प्राजापत्यः ॥ ३६ ॥

पशुरालभ्यते । पञ्च पदावो वेति विकल्पः । प्राजापत्यस्य चाहर्गः णेषु नियमः ॥ ३६ ॥

षड्दध्यात्॥ ३७॥

चाय्याः । प्राजापत्यं हि प्रकृत्योच्यते "तस्यैकवि¿शतिः सामि-धेन्यः" (श०त्रा० ६−२−२−३) इति ॥ ३७ ॥

हिरण्यगर्भ इत्यूचा स्रवाघारः॥ ३८॥

"हिरण्यगर्भक्त्याऽऽघारमाघारयति" (श॰बा॰ ६-२-२-५) इति बचनात्। स च पूर्व एव भवति नापुर्वः, प्रकृतिलिङ्गसंयोगात्। प्रकृ तिलिङ्गसंयोगो द्यत्र भवति आघारमाघारयतीति॥ ३८॥

पूर्वत्वेऽपि सन्देहः—िक पूर्वाघारे मन्त्रविधानमुतोत्तराघार इति । किं तावत्प्राप्तम् ?

पूर्वी देवतासामान्यात्॥ ३९॥

स्हवाघारो हिरण्यगर्भवत्या कर्त्तव्यः। कुत पतत् १ देवतासामाः न्यात् । स्हवाघारे हि प्रजापतिर्देवता, हिरण्यगर्भवत्यामपि प्रजापतेरेव देवतात्वं "कस्मै देवाय हविषा विधेम" (श्वण्या० ७-४-१-१९) इति । कश्च प्रजापतिः। मन्त्रश्च स्हवाघार एव देवतामिधानसमर्थः । तस्माः त्रत्रेव विनियुज्यत इति ॥ ३९ ॥

एवं प्राप्ते आह-

उत्तरे तु सामान्योपदेशाभ्याम् ॥ ४०॥

तुशब्दः पक्षव्यावृत्तो । न पूर्वस्मिन्नाघारे मन्त्रप्रयोगः, कि तर्द्धुत्तराघारे । कुत एतत् ? मन्त्रवस्वसामान्यात् । यस्यैव च प्रकृतौ मन्त्रो
हष्ट्दतस्यैव मन्त्रान्तरविधानमनुरूपतरम् । इतरत्र तु मन्त्रवत्ताः च विघया तद्विशेषश्चेति गौरवं स्यात् । तेनोत्तराघारे मन्त्रो विधीयमानः
शब्दत्वसामान्यात् मन्त्रान्तरस्य निर्वत्तको भवति । यथा स्नेहसामास्यात् तैलं घृतस्य । यरपुनरुकं कशब्देन प्रजापतिरमिधीयत इति ।

इन्द्रस्यापि तच्छन्दाभिधानमविच्छम् । तस्मान्मन्त्रोपदेशादुत्तराघारे एव तद्विनियोग इति ॥ ४० ॥

वायवे वा नियुत्वते इवेतलप्सुदी हे दृध्यात् ॥ ४१ ॥

अथवा नियुत्वद्गुणविशिष्टाय वायवे गुक्कपशुरालभ्यते न प्राजा-पत्यः पञ्च पश्चो वा। एवमपि श्रूयत एव। श्वेतो वर्णतः, लप्सुदी कूर्वः लः। तूपरशब्दश्चात्रासुवर्त्तते, "अथैतं वायवे नियुत्वते शुक्कं तूपरमाल-भते" (श्वाव् ६-२-२-६) इति श्रुतेः। तत्र च हे धाय्ये दृष्यात्, "तस्य सप्तर्श सामिधेन्यो भवन्ति"(श्वव्याव्ह-१-३-६) इति वचनात्॥४१॥ प्राजापन्यः पशुपुरोहाशो हादशक्यास्त उभयोः॥४२॥

उभयोरिप प्राजापत्यवायव्ययोः प्राजापत्य एव द्वादशकपालः पशु-पुरोडाशो भवति ॥ ४२ ॥

कद्वत्यो याज्यानुवाक्याः प्राजापत्यस्य ॥ ४३ ॥ भवन्ति ॥ ४३ ॥

> शुक्रवत्यो वायव्यस्य ॥ ४४ ॥ वपाया वा ॥ ४५ ॥

वा अवधारणे । ग्रुह्मवस्यो भवतः । "वपाया एव श्रुह्मवस्यो स्याः ताम्" (श्रुव्हा० ६-२-२-१४) इति वचनात् ॥ ४५ ॥

तुल्यमन्यत्सर्वेषु ॥ ४६ ॥

इति षोडशाध्याये प्रथमा कण्डिका।

~~०० उखासम्भरणमष्टम्याम् ॥१॥

डखायाः सम्भरणमुखासम्भरणम्, तद्दष्टम्यां भवति, "अष्टका-यामुखां ऐसम्भरति" (राव्त्राव ६-२-२-२३) इति वचनात्। उखाग्रहणं चोपलक्षणम् । अषाढाद्यव्यत्र सम्भियत एव । तत्रश्चान्तराये तस्यापि प्रयोक्तृत्वम् ॥ १ ॥

आहवनीयस्य पुरस्तान्मत्या चतुरस्रे इवस्रे मृत्पिण्डः

मवद्धाति भूमिसमम्॥ २॥

भूमिसममन्यूनमनतिरिक्तम् ॥ २ ॥ पिण्डमपरेण व्यध्वे वलमीकवर्षा छिद्रां निद्धाति ॥३॥ पिण्डाहवनीययोध्यंध्वे अर्धप्ये ॥ ३ ॥ आहवनीयं दक्षिणेन त्रिवृन्मुञ्जपत्राङ्गीबद्धास्तिष्टः नित प्राञ्चोऽइवगर्दभाजाः पूर्वोपरा रासभो मध्ये-ऽइवपूर्वोः॥४॥

बाहवनीयस्य दक्षिणतिस्त्रवृद्धिमुं अमयीभिः पञ्चाङ्गीभिः । पञ्चा-ङ्ग्यो मुखरिकाः, ताभिवंद्धास्तिष्ठान्ति प्राङ्मुखाः अस्वगर्दभाजाः पूर्वाः पररीत्या रासभो मध्येऽश्वपूर्वाः ॥ ४॥

उत्तरत आहवनीयस्यारितमात्र उभयतस्तीक्ष्णा वैणवी सुषिराभ्रिः कल्माष्यभावेऽकल्माषी प्रादेशमा ज्यरितमात्री वा॥ ५॥

आनन्तर्यात्पञ्चनामुचरतो मा भूदित्याहवनीयप्रहणम्।॥५॥ हिरणमधीमेके ॥६॥

आचार्या रच्छन्ति । अतश्च विकल्पः ॥ ६ ॥

अष्टगृहीतं जुहोति सन्ततमुद्गृह्णन्युञ्जान इति ॥ ७ ॥ अष्टगृहीतमाज्यद्रव्यं सन्ततं जुहोत्युद्गृह्णन् "युञ्जान" (वा॰सं॰

११-१) इति ।

अत्रैतिबन्त्यते-किमिद्मेकं कर्म, उताष्टावेतानीति। एकमिति ब्रूमः। "तां वा एतामेकाः सतीमष्टागृहीतामष्टाभिर्यज्ञिभेर्जुहोति" (शव्ताव्ह-३-१-३) इति। अष्टो वा कर्माणि, नैकमिति। "तान्येतान्यष्टौ सावित्राःणि" (श्वव्याव्ह-३-१-२१) इति। किं च वैश्वकर्मणश्च सहैकवाक्यत्वात्। अष्टौ सावित्राण्यष्टौ वैश्वकर्मणान्यष्टौ। अतः सहत्वाविशेषात्सावित्राण्यष्टाविति गम्यते।

नतु "तां वा एतामेका। सतीम्"इत्येतास्मन्वाक्ये सति अष्टो सावि-त्राण्येव, तस्मिश्च सति कथमेकान्ततोऽवधार्यते अष्टावेतानि कर्माणीति ? उच्यते, उत्पत्तौ बहुत्वविशिष्टानां श्रवणम् । एवं हि श्र्यते-"तेषां चेतयमानानाः। सवितेतानि सावित्राण्यपदयद्यत्वविताऽपद्यत्तस्मात्साः वित्राणि"(श्राव्ता०६-३-१-१) इति। यत्पुनरेकत्वश्रवणं तत्पश्चेपापेक्षया। प्रयोजनं यत्तदन्तरितं तत्प्रयुज्यते॥ ७॥

> देवस्य त्वेत्यश्रिमादाय हस्त आधायेत्येनाम-भिमन्त्रयते ॥ ८ ॥ ॥

हिरण्मयीपक्षे मन्त्रः स्थात् , "विञ्चदिन्निः हिरण्मयीम्" (वा०सं० ११ का० ११-११) इति मन्त्रिक्षात् । न वा संस्तवार्थत्वात् । हिरण्मयीशन्देन संस्तवः क्रियते । तथा चाह-"यद्वा एषा छन्दाः सि तेनैषां हिरण्यम्" (श्वा १ ६-३-१-४२) इति । तस्माद्वेणवीपक्षेऽपि मन्त्रप्रयोगः ॥ ८ ॥ अचवप्रसृतींश्च प्रत्यृचं प्रतृते युक्षाथां योगे योग इति ॥९॥ अभिमन्त्रयत इत्यनुवर्चते ॥ ९ ॥

अनुपस्प्रचाननुत्क्रमयत्येनान्त्राचः प्रतिमन्त्रं प्रतूर्वन्नुर्व-न्तारिक्षं पृथिव्याः सयस्थादिति॥१०॥ एमिमन्त्रेः॥१०॥

अगिनषु ज्वलत्सु पिण्डं गच्छत्यगिन पुरीष्यमिति ॥११॥ ज्वलत्स्विनषु पिण्डं प्रतिगच्छन्ति(१) "अग्नि पुरीष्यम्" (वा॰ सं०११-१६) इत्यनेन मन्त्रेण, "प्रदीप्ता एतेऽग्नयो भवन्त्यथ मृद्मच्छ-(२)यन्ति" (रा॰बा॰ ६-३-३-१) इति वचनात्॥११॥

दक्षिणतश्च पदाचो युगपत् ॥ १२ ॥ गच्छतां च दक्षिणतः पदाचः उत्तरश्च पुरुषाः युगपद्गमनम्॥ १२॥

(१) बहुत्वं किमपेक्षम ? न तावद् ब्रह्मणः प्राप्तिरत्र, उपदेशातिदे श्योरभावात् । नाष्यप्रीतप्रतिप्रस्थात्रोः, प्रवृत्यदर्शनात् । तस्माहु रपत्तौ यजमानाध्वर्यवो बहुत्वेन परिगृह्यन्ते ।

वचनाद्वा विरोधाद्वाऽन्येषां कर्तृत्विमध्यते ।
गच्छन्तीति बहुःवानुप्रहार्थे चेत्तदुच्यते ॥
भवेद्यद्यन्यथा नैव बहुःवसुपपद्यते ।
किंवैतद्भमनं कार्यनिमित्तं न च तत्पुनः ॥
विद्यते येन गौणानामध्वर्यूणां समाख्यया ।
प्राप्तिः स्थान्न च पृणीयां ब्रह्माऽस्ति प्रकृतौ यतः ॥
तद्विध्यन्तेषु होमेषु ब्रह्मा(?) न युक्तितः ।
दम्पत्योः कर्मसंनिध्यवस्थानं युक्तमेव च ॥
अध्वर्योः कर्मसंनिध्यवस्थानं युक्तमेव च ॥
अध्वर्योः कर्मसंनिध्यवस्थानं युक्तमेव च ॥
अतो नैमित्तिकेऽप्यत्र नैव ब्रह्माऽग्निहोत्रवत् ।
संप्रदायादिभिनैत श्रवादत्र भिन्नप्रयोगतः ॥
(१) 'अच्छाभेराष्त्रिमिति शाकपृणिः" (निद्यु ५-२८)

अनद्धा पुरुषमीक्षते देवपितृमनुष्यानर्थकः भगिंन पुरीष्यमिति ॥ १३ ॥ यो देवादीन्नावति स देवपितृमनुष्यानर्थकः ॥ १३ ॥ वरुमीकवप्मादाय छिद्रण पिण्डमीक्षतेऽन्वाग्निरिति॥१४॥

अनेन मन्त्रेण ॥ १४॥

दृष्ट्वा निद्धात्येनाम् ॥ १५॥

वल्मीकवपाम् ॥ १५ ॥

आगत्येत्यभिमन्त्रयनेऽच्वम् ॥ १६ ॥ आक्रम्येत्येनेन विण्डमधिष्ठापयति ॥ १७॥

'वनन' इत्यद्वोऽभिष्वीयते ॥ १७ ॥

(१) चौस्त इति पृष्ठस्योपरि पाणिं घारयन्न तुपस्पृशन्॥१८॥ उत्कामेत्यत्क्रमयति ॥ १९॥

अभ्वत् ॥ १९॥

उद्द्रमीद्तियभिमन्त्रयते ॥ २०॥

अहबमेब ॥ २० ॥

आहवनीयवत् स्थापयति पिण्डस्य ॥ २१ ॥ पञ्ज ॥ २१ ॥

उपविश्य मृदमभिजुहोत्या त्या जियमीति व्यतिषक्ता-भ्यामुग्भ्यामाहृती स्ववेणाद्यपदे ॥ २२॥

भृत्संस्कारत्वात् 'उपविषय' इत्युच्यते । व्यतिषङ्गश्च एकस्याः पूर्वा-र्ध इतरस्या उत्तरार्धः । इतरयोरप्येवमेव ॥ २२ ॥

अभ्रया पिण्डं जिः पारीलेखित परिवाजपातिरिति

वहिर्वहिस्तरयोत्तरथा॥ २३॥

अभ्रया पिण्डं खनति देवस्यत्वेति ॥ २४ ॥

अभ्रिम्नहणमञ्चन्तरनिवृत्त्यर्थम् । तथा चाह—"अत्र सा वैणव्यञ्जि-रुत्सीदति" (श्व०ब्रा० ६-५-४-३) इति ॥ २४ ॥

> कृष्णाजिनमास्तीर्योत्तरतः ॥ २५ ॥ तस्मिन्युष्करपर्णमपां पृष्ठमिति ॥ २६ ॥

⁽१) इदं सूत्रं पूर्वशेषतयोश्लिखतं सूत्रपुस्तके ।

तस्मिश्चिति कृष्णाजिने ॥ २६ ॥ विमाष्ट्रयेनहिय इति ॥ २७ ॥

पुदकरपर्णम् ॥ २७ ॥

आलमत उमे शर्म च स्थ इति ॥ २८॥ उमे कृष्णाजिनपुष्करपर्णे । शक्यत्वाच युगपदालम्भनम् ॥ २८ ॥ पिण्डं पुरीच्योसीति॥ १९॥

आलमते ॥ २९ ॥ पाणिभ्यां परिगृणहात्येनं दक्षिणोत्तराभ्यां दक्षिणः साभिस्त्वामग्र इति षड्भिः सर्वे सकृद्धृत्वा—

इति पोड्याध्याये द्वितीया कण्डिका ।

पुष्करपर्णे निद्धाति॥ १॥

ब्रहणे मन्त्रः, "अथैनं परिगृह्णाति" (शव्जाव ६-४-२-२) इति वचनात्॥१॥

अपः इबभ्रेऽवनयत्यपो देवीारीति॥ २॥ अनेन मन्त्रेण । इवस्रः पिण्डावटः ॥ २॥ सन्त इति वातमपक्षिपति॥३॥

इवस्र एव ॥ ३॥

अनामिकया संवपति पुरस्तात्पश्चाद्दक्षिणत उत्तरतश्च॥४॥ संवापश्चावंट पुरापस्य ॥ ४ ॥

आस्तीर्णयोरन्तानुद्गृह्णाति सुजात इति ॥ ५ ॥ आस्तीर्णयोः कृष्णाजिनपुष्करपर्णयोरन्तानुद्गृह्णाति "सुजातः' (वा०सं० ११-४०) इत्यनेन मन्त्रेण ॥ ५ ॥

त्रिवृता मुञ्जयोक्त्रेणोपनद्यति वासो अग्न इति ॥ ६ ॥ उद्गृहीतानन्तान्मुञ्जयोक्त्रेणोपनहाति "वासो अग्न" (वा०सं० ११-४०) इत्यनेन मन्त्रेण बझाति ॥ ६ ॥

विच्छिति पिग्डमादायोदु तिष्ठेति ॥ ७ ॥ ऊद्ध्वेबाहुः प्राश्चं प्रगृह्णात्यृद्ध्वे ऊ प्र ण इति ॥ ८ ॥ प्रसारितबाद्वः प्राञ्च पिण्डं गृह्वाति "ऊद्ध्वं ऊ षु णः" (वा०स० ११-४२) इत्यनेन मन्त्रेण ॥ ८॥

अवहत्योपरिनाभि घारयन्नश्वप्रमृतीनभिमन्त्रयते स

जातस्थिरो भव शिवो भवेति ॥ ९ ॥ अवहृत्य पिण्डं नाभेष्परि धारयन् अश्वप्रसृतीनभिमन्त्रयते "स जातः" (वा०सं० ११-४३) इति प्रतिमन्त्रम् ॥ ९ ॥

धारयत्येषामुपरि पिण्डमनुपस्प्रशन्त्रेतु वाजी

वृषाग्निमिखइवखरयोः॥ १०॥

एषां पञ्चनामुपरि पिण्डमजुपस्पृशन् धारयति "श्रेतु वाजी" (वा०सं० ११-४६) इत्यद्दवस्य "वृषान्निम" (वा०सं० ११-४६) इति खरस्य ॥ १०॥

अग्न आयाद्दीत्याहृत्य खराच्छागस्यर्ते स-त्यमित्या निधानात् ॥ ११ ॥

धारयत्यनुपस्पृशक्षेत्र ॥ ११॥

आयन्त्यावत्यं पञ्चनजः पुरस्ताद्रास्त्रभो मध्ये ॥ १२ ॥ स्वस्थानस्थितानामेषावृत्तिः ॥ १२ ॥

ग्रनद्वापुरुषमीक्षते पूर्ववद्धिं पुरीष्यमिति ॥ १३॥

अनन्यार्थत्वात्पूर्ववच्छन्देनाग्निषु प्रज्वल्लास्वत्युच्यते ॥ १३ ॥ उत्तरत आह्वनीयस्योद्धतावोच्चिते सिकतोपकीणे प-रिवृते प्राग्द्वारे पिण्डं निद्धात्योषधय हति ॥ १४ ॥ अनेन मन्त्रेण ॥ १४ ॥

विषाजसेति प्रमुच्यैनमजलोमान्यादाय प्रागु-दीचः प्रमुत्स्मुजति ॥ १४ ॥

"विपाजसा" (वा०सं० ११-४६) इत्यनेन मन्त्रेण प्रतिमुच्य पिण्डमजलोमानि गृहीत्वा प्रागुदीची विद्यम्प्रति पद्युत्स्चनित ॥१५॥ आपोहिष्ठेति पर्णकषायपक्रमुद्कमासिश्चति पिण्डे॥१६॥ पर्णकषायः पलाशकषायः। तत्पक्षमुद्कम् ॥ १६॥

फेनं च तूर्ष्णीं ततः कृत्वा ॥ १७॥ तत प्वोदकात्पूर्वतरं फेनं क्रवोदकमासिञ्चति चशब्दाद प-श्चात्फेनम् ॥ १७॥ अजलोमिभः स्राप्तुजाति मित्रः स्राप्तुज्येति ॥ १८॥ अजलोमिभः स्राप्तुजाति पिण्डं "मित्रः स्राप्तुज्य" (वा०सं० ११-५३) इत्यनेन मन्त्रेण ॥ १८॥

कार्करायोरसाइमचूर्णैश्च रुद्धाः सृष्टुज्येति ॥ १९ ॥ शर्करा प्रसिद्धा । अयोरसा छोहसिङ्घाणः कीर इति यः प्रसिद्धः । अश्मचूर्णः पाषाणचूर्णः । बशब्दादेतैः पिण्डं संस्कृति ॥ १९ ॥

स्यस्टामिति संगीति॥ २०॥

पिण्डं मिश्रयत्याड्वाछयतीत्यर्थः॥ २०॥

अषादां करे। ति महिषी प्रथमित्ता तदारूया ॥ २१ ॥ अषादारूयामिष्टकां महिषी करोति । महिषीशव्दस्यान्यत्राप्रसि- द्वादाह-प्रथमित्ता तदारूया । तदीव प्रथमित्ता सा महिषीति॥२१॥

धजमानपादमार्जी त्यालिखिताम् ॥ २२ ॥ महिषीपादमात्री मा भृदिति यजमानप्रहणम् ॥ २२ ॥ यजमान उखां करोति सृदमादाय मखस्य विशर इति ॥ २३ ॥

सुदादाने हि मन्त्रः । एवं हि श्रूयते—"अध सृत्पिण्डमपाद्ते याचन्तं निधयेऽछं मन्यते मखस्य शिरोऽसि" (श्रव्हा० ६-५-२-१) इति ॥ २३॥

प्रादेशमात्रीं तिर्घग्ध्वीं च ॥ २४ ॥ चशब्दात्प्रादेशमात्रीमेव ॥ २४ ॥ पञ्जपादेशामिषुमात्रीं वा तिर्घक्पञ्चपशौ ॥ २५ ॥ ऊर्ध्वं तु प्रादेशमात्र्येव पञ्चपशाविष ॥ २५ ॥ वस्रवस्त्वेति प्रथयति ॥ २६ ॥

आतं पिण्डम् ॥ २६ ॥

भन्तानुन्नीय सर्वतः प्रथमं घातुमाद्द्याति स्दास्त्वेति ॥ २७॥

अनेन मन्त्रेण। घातुराब्दात्प्रक्षेप एव ॥ २७ ॥ संख्रिप्य सुरक्ष्णां कृत्वोत्तरमादित्यास्त्वेति ॥ २८ ॥ "तार्वं संख्रिप्य स्वकृष्णधोत्तरमुद्धिमादघाति" (शब्बाव्ह-५-२-४,५) इति वचनात् ॥ २८॥

विइवेत्वेति समीकरोति॥ २६॥

"सा यदि वर्षीयसी प्रादेशात्स्यादेतेन यज्जवा हसीयसीं कुर्याशिद हसीयस्येतेन वर्षीयसीम्" (श॰त्रा॰ ६-५-२-९) इति वचनात् ॥ २९ ॥ वितृतीय उत्तरे वर्तिः सर्वतः करोत्यदित्ये रास्नेति ॥३०॥ अनेन मन्त्रेण ॥ ३०॥

ऊद्ध्वास्तूष्टणीं प्रतिदिशं चतस्त्रोऽपरावर्तिप्राप्ताः ॥३१॥ वर्तीः करोति । उखाशब्दस्याकृतिवचनत्वाद् वृत्तेवोखा भवति॥३१॥ इति षोडशाध्याये तृतीया कण्डिका ।

स्तनानिवाऽग्रेषृत्रयति ॥ १ ॥

ऊर्ध्ववर्तानामेकैकस्याः॥१॥

दिस्तनामष्टरतनामेके ॥ २॥

"तार हैके बिस्तनां कुर्वन्ति । अथो अष्टस्तनाम्" (रा०ब्रा० ६-५-२-१९) इति श्रुतेः । ब्रिस्तनपक्षे एकस्मिन्नेन वर्त्यप्रे क्रियते । अष्टस्त-नपक्षे द्वौ द्वाविति ॥ २॥

विलं गृह्णात्यदितिष्ट इति ॥ ३॥

मुखे गृह्णातीत्यर्थः ॥ ३॥

कृत्वायेति निद्धाति ॥ ४ ॥

उखाम्॥४॥

तिस्र एके ॥ ५॥

उखाः कुर्वन्ति, "ता हैके तिस्रः कुर्वन्ति" (श्वा ६-५-२-२२) इति श्रुतेः। तदा च मृत्पिण्डमहणाद्येकैका निधानान्ता क्रियते ॥ ५॥ इष्टकास्तु तिस्रो विश्व उपोतिषः प्रथण्लक्षणाः

स्त्र्यालिखिताः ॥ ६ ॥

तुशब्दश्चशब्दस्यार्थे । वशब्दाद्यजमान एव तिस्न इष्टका विश्व-ज्योतिः सञ्ज्ञकाः ज्यालिखिताः पृथम्लक्षणाः करोति । लक्षणकरणं च प्रथमाद्वितीयातृतीयाप्रज्ञप्यर्थम् । एवमेवोपधानं यथा स्यादिति ॥६॥

स्दस्परायां निद्धाति ॥ ७ ॥

उखां क्रियमाणामुपशेत इत्युपशया ताम्, मृदमतिरिच्यमानां नि-द्धाति कार्यार्थम्॥ ७॥ सप्तानिरइवशकुद्धिरुखां भूपयति दक्षिणाग्न्याः दीप्तैरेकैकेन वस्तवस्त्वेति प्रतिमन्त्रम् ॥८॥ अभ्रया इवभ्रं चतुरश्रं खनत्यदितिष्ट्रेति ॥९॥ अभ्रिश्च पूर्वोक्तैय, प्रकृतत्वात् ॥ "अत्र सा वणव्यभ्रिष्टत्सीदिति" (श्वामा ६-५-४-३)इति वचनात्॥९॥

अपणमास्तीर्घ यथाकृतमवद्घाति ॥ १० ॥ श्वम्रो येनैव क्रमेण कृता अषाढाद्याः ॥ १० ॥ उस्रायां तु विशेषः—

देवानां त्वेत्युखां न्युव्जाम् ॥ ११ ॥ अवद्याति ॥ ११ ॥ अपणेनावच्छाच दक्षिणाग्न्यग्निना दीपयति ः

घिषणास्त्वेति ॥ १२ ॥

अनेन मन्त्रेण ॥ १२ ॥

निर्मन्थ्येन वा घूपनअपणे ॥ १३ ॥

कर्त्तव्ये ॥ १३ ॥

वरूत्री द्वेतीक्षमाणी जपति ॥ १४॥

उखामीक्षमाणः ॥ १४॥

आचरति मित्रस्येति ॥ १५॥

आचरणं च अपणप्रक्षेपः ॥ १५ ॥

यावदाचरेत्॥ १६॥

तावद्पि मन्त्रः ॥ १६॥

दिवैव प्रदहनोद्धरणे॥ १७॥

कर्चेब्ये, "तां दिवैवोपवेपीद्दवोद्धपेत्" (शब्झा॰ ६-५-४-१०) इति वचनात् ॥ १७ ॥

उद्घपतिश्रपणम् ॥ १८॥ पदार्थतया ॥ १८॥

देवस्त्वेत्युखाम् ॥ १९॥

उद्घपति ॥ १६॥

उत्तानां करोत्यव्यथमानेति ॥ २०॥ उखाम्॥ २०॥ डचच्छत्युत्थायेति ॥ २१ ॥ ऊद्ध्वं यच्छत्युद्यच्छति । "उत्थाय"(१)इत्यनेन सन्त्रेण ॥ २१ ॥ परिगृद्य पात्रे करोति मित्रैतां त इति ॥ २२ ॥ अनेन मन्त्रेण ॥ २२ ॥

अजापयसावसिश्चिति वसवस्त्वेति प्रतिमन्त्रम् । २३॥ उखाम् । त्रित्वपन्ने च उत्तानकरणाधेकैका अजापयसावसेकान्ता कर्तव्या ॥ २३ ॥

इष्टकाक्रियाऽतस्त्र्घालिखितानाम् ॥२४॥ अत ऊद्ध्वीमष्टकास्त्रचालिखिताः क्रियन्ते ॥ २४॥ अपरिमितालिखिता वोत्तरयोः ॥ २५॥

ब्रितीय।चतुर्थोः । कुत पतत् ? तेहि प्रक्रस्याम्नायते-"रसो हैते चिती अपरिमित उ वै रस" (श्वाब्ट-७-२-१७) इति । अत्य विकन्पोऽयम् ॥ २५॥

पूर्ववद्गिः पाके ॥ २६ ॥
द्ववद्गिः पाके ॥ २६ ॥
द्ववद्गिर्भवति—निर्मन्थ्यो दक्षिणग्निर्वा ॥ २६ ॥
द्विश्वामावास्यायामामावास्येनेष्ट्वा ॥ २७ ॥
फाल्गुन्यमा(२)वास्यायां दक्षिा भवति, सा चामावास्येनेष्ट्वा पौर्णः
मासोपकमात् ॥ २७ ॥

आग्नावैष्णववैश्वानरौ ॥ २८॥ दीक्षणीयायां कर्त्तव्यो ॥ २८॥ घृते चरुरादित्येभ्यः ॥ २९॥ घृतस्य प्रणयनं कार्यम्, कार्यापत्या ॥ २९॥

(१) उत्थाय बृहती मबोदु तिष्टुद् घ्रुवा स्वम् । मित्रेतान्त ऽउपाम्प रिददास्म्याभित्याऽएषा माभेदि—(वा. सं० ११-६४) अत्र पूर्वार्वेन उद्य-उद्यनमुक्तरार्थेन पात्रे करणं बोद्धव्यम् ।

(२) सा च मुख्यामावास्यायां विण्डपित्यक्रकालामावादपिण्ड-पितृयज्ञेनामावास्येन सद्य रह्या ।

अकृतायां तु दीक्षायामपराह्वो मवेद्यदि । पितृयज्ञो न तत्र स्थात्पृर्वाङ्गत्वादितीरितम्॥ अनङ्गत्वे तु तत्र स्थात्तत्कालाप्रतिबन्धतः। इति। १२का० प्राकृतान्योद्ग्रभणानि हुत्या सप्ताग्निकान्याः कुतिमिति प्रतिमन्त्रम् ॥ ३०॥

प्राक्ततान्याध्वरिकाणि हुत्वा सप्तामिकानि "आकृतिम्" (१)इति प्रतिमन्त्रं जुहोति । अत्र च "विर्वो देवस्य"(२) इत्यत्र तिहुधा विभज्यते। स्वकालेपूर्णामित्यतदाग्निकेऽत्र भ्रौवं द्वेषा विभज्यते, ब्रिश्च स्थाल्याः स्हवेणत्येतद्व्यान्निके भवति ॥ ३०॥

दण्डोच्क्रयणान्तं कृत्वाऽध्वर्युयजमानयोरन्यतर दखाः माहवनीयेऽधिश्रपति मुञ्जकुलायकाणकुलायावस्तीर्णाः मन्तरे शणा मा सु भित्था इति तिष्ठन्तुदङ्पाङ्॥३१॥

दण्डोच्छ्रयणान्तमाध्वरिकं कर्म छ त्वाऽध्वर्युयजमानयोरन्यतर छ खामाहवनीयऽऽधिश्रयति 'मा सु भित्था''(३) इत्यनेन मन्त्रेण। सा च मुञ्जकुळायशणकुळायावस्तीणी भवति। अन्तरे च शणाः। प्रागुदीचीं दिशमभिमुखः ॥ ३१ ॥

अधिकारमुपजीवन्नाह—

रक्मप्रतिमोचनविष्णुक्रमवात्सप्रेषु च॥ ३२॥ प्रागुदीची दिशमभिमुखी भवति॥ ३२॥ अग्रावारूढे जयोदशास्यां प्रादेशमाजीः समिध

आद्घाति॥ ३३॥

डखायामग्रावारूढे त्रयोदरासमिध आदधाति । प्रादेशमात्रीग्रहणं शिष्टानुस्मरणप्रज्ञप्यधम् ॥ ३३॥

अनारोहत्यङ्गारानोप्यैके ॥ ३४ ॥ अनारोहत्यग्राबुखायामङ्गारानोप्येके समिदाधानं कुर्वन्ति ॥ ३४ ॥

(२) विश्ववोदेवस्य नेतुम्मेत्तीं न्तुरीतसक्ष्यम्। व्विश्य्वोरायअस्तु-

द्धति द्दयुम्म्रं वृणीत पुष्यसे स्वाहा (वा. सं. ११-६७)

(३) मा सु भित्था मा सु रिषोऽम्ब घृष्णु ब्वीरयस्य सु । अगिन इश्चेदङ्कारेष्यथः (वाव सं० ११-६८)

⁽१) आकृतिमाग्निमप्रयुजिंभ्स्वाहा मनो मेधामाग्निस्प्रयुजिंभ्स्वाः हा चित्तं व्यित्रातमगिनम्प्रयुज्ञ एस्वाहा व्याची विश्वतिमग्निमप्रयुज्ञ ए स्वाहा प्रजापतये मनवे स्वाहाऽग्ग्नये व्वैद्दवानराय स्वाहा(वा.सं११-६६)

ता इदानीमाह-

धृतोत्नां कार्मुकीं द्रञ्ज इति ॥ ३५ ॥ अनेन मन्त्रणाद्याति । इमुको धमन इत्युच्यते, तदीया का• भुकी ॥ ३५ ॥

वैकङ्कर्ती परस्या इति ॥ ३६ ॥

अनेन मन्त्रेणाद्धाति ॥ ३६ ॥

औदुम्बरीं परमस्या इति ॥ ३७ ॥

आद्धाति॥ ३७॥

अपरशुवृक्षां यद्म इति ॥ ३८ ॥ भाद्याति। या परशुना न छिन्ना सा अपरशुवृक्षणा॥ ३८ ॥ अधःशयां यद्सीति ॥ ३९ ॥

अनेन मन्त्रेण । अधःशया च भूमौ संलग्ना प्रस्ता ॥ ३९ ॥ पालाश्चीः प्रत्यूचमहरहरिति ॥ ४० ॥

आद्घाति, "अधैता उत्तराः पालाइयो मवन्ति" (श्वा०६-६-३-७) इति वचनात्। एवं चापरग्रह्मण अवःशया औदुम्बर्यावेव मवतः, जात्यन्तराविधानात्॥ ४०॥

उपोत्तमां क्षत्रियस्पेच्छन् ॥ ४१ ॥

उत्तमायाः समीपे उपोत्तमा द्वादशी, तां क्षत्रियस्य यजमानस्येः च्छ्याऽऽद्धाति ॥ ४१ ॥

उत्तमां प्रोहितस्य ॥ ४२ ॥

इन्क्रयाऽऽद्धाति ॥ ४२ ॥

अन्यस्योभे ॥ ४३ ॥

एवं च सति अभिवयस्यापुरोहितस्य च एकादश मवन्ति, त्रयोदश वा । क्षत्रियपुरोहितयोस्तु द्वादश त्रयोदश वा ॥ ४३ ॥

स्वाहाकारः सर्वोस्रलायाम् ॥ ४४॥

उखायामाधीयमानासु सामित्सु । अते। ऽन्यत्रापि स्वाहाकारी भवः ति 'सर्वासु' इत्यमिधानात् ॥ ४४ ॥ औद्भणादि दण्डान्तमञ्जेके ॥ ४५ ॥ पवं सति प्रागौद्रभणहोमादुखाधिश्रयणादि, "तान्यु हैक उखाया भेवैतान्यौद्रभणानि जुह्वति" (श्वा०६-६-१-२२) इति वचनात् ॥४५॥ इति षोडशाध्याये चतुर्थी कण्डिका ।

- ----

यज्ञमानः कण्ठे स्वमं प्रतिमुश्चते परिमण्डलमेक विश्व शितिपण्डं कृष्णाजिननिष्यूतं लोमसु शुक्लकृष्णेषु शणसूत्रे त्रिवृत्योतमुपरिनाभि वहिष्पण्डं हशानो स्व कम हति॥ १॥

हक्मं हि प्रकृत्य सर्वमेवैतच्छूयते (श्वा०६-७-१-१)। यज-मानप्रहणाच स्वयमेव यजमानः प्रतिमुञ्जते। द्वादशाहे च सर्वे यज मानाः प्रतिमुञ्जेयुः। अत उद्ध्वं इण्ड्वाद्यन्वारम्मः । एवं हि सर्वैः कृतं भवति ॥ १ ॥

इण्ड्विशक्यासन्दीषु मुझरज्ञविश्चन्तो मृहिरधाः॥२॥

े उसा याभ्यां गृह्यते तो ६ण्ड्यो । शिक्यं प्रसिद्धमासन्दी च । अ-तुरका रज्जवो मृद्दिग्धा भवन्ति ॥ २॥

परिमण्डलाभ्यामिण्ड्वाभ्यासुखां परिगृह्णाति नक्तोषासेति ॥ ३ ॥

अनेन मन्त्रेण ॥ ३ ॥ हरति द्यावाक्षामेति ॥ ४ ॥

तामेवोखाम्॥४॥

आहचनीयस्य पुरस्तादुद्गात्रासन्दीवदासन्यां चतुरश्राः ज्ञाः शिक्यवत्यां निद्धाति देवाआग्रिमिति ॥ ५ ॥

उद्घात्रासन्दीवदिति प्रा(१)देशपादी तुगम्यते । सा च चतुरश्रा क्वी सह पादैः तस्यां शिक्यवत्यामासन्द्यां निद्धाति उखां "देवा अ भिम्"(२) इत्यनेन मन्त्रेण ॥ ५ ॥

⁽१) अत पवान्यत्रानियमः।

⁽२) देवा ऽञ्जिमनन्धारयन्द्रविणोदाः(वा. स.-१२-२) इतिपादेन ।

शिक्षपाशं प्रतिसुञ्चते षडुचामं विश्वा-रूपाणीति ॥ ६ ॥

श्रीवायाम् ॥ ६ ॥

सिशिक्यं प्राञ्चं प्रगुण्हाति सुपणोंसीति पिण्डवत् ॥ ॥ सह शिक्येन प्राञ्चमाप्तं प्रगृहाति "सुपणोंसि"(१) इत्यनेन मन्त्रेण । 'पिण्डवत्' इत्यृद्ध्वंवाहुः ॥ ७॥

धारणं च ॥ ८ ॥

पिण्डवदेव । अवहत्योपरिनाभीति ॥ ८॥

एतया विकृत्याऽभिमन्त्रयैकेऽन्यचिति चिन्वन्ति द्रोणचिद्रथचकवित्कंकचित्प्रदगचिदुभयतः प्रदगः स मुद्यपुरीष इति ॥ ९ ॥

पतेह्याग्निविशेषाः । तदाकारांश्चिन्वन्त्येके । एके सुपर्णचितम् । वि-लिङ्गत्वादस्या विक्रतेरग्न्यन्तरेष्वप्राप्तिमां भृदित्युच्यते । एवं हि श्रूयते – "त्यु हैक पत्या विक्रत्याऽभिमन्त्रयान्यां चितिं चिन्वन्ति" (श्राञ्जा०६ – ७-२-८) इति ॥ ९॥

समुद्धपुरीषे प्रतिदिशं पुरीषाहरणम् ॥ १०॥ प्रतिदिशं पुरीषमाहत्याहत्य तेनैव चयनम् ॥ १०॥ विष्णुक्रमान्क्रमते विष्णोरिति प्रतिमन्त्रम् ॥ ११॥ अग्रन्युद्धभणं च तस्मिस्तस्मिन् ॥ ११॥

क्रमेण॥ १२॥

अक्रमश्चतुर्थे ॥ १३॥

उद्गमणं तु च भवत्येव ॥ १३ ॥

दिशो वीक्षते दिशोऽनुविकमस्वेति ॥ १४ ॥

प्रतिदिशं मन्त्रः॥ १४॥

पिण्डवत्प्रागुद्श्चं प्रगृह्णात्पक्रन्दद्ग्निरिति ॥ १५ ॥ ''पिण्डवत' इत्युद्ध्वंबाहुः ॥ १५ ॥

⁽१) सुपण्णोंसि गरुरमाँसिवृत्ते शिरो गायत्रश्चसुर्वृहद्रथन्तरे पक्षी स्तोम प्रशास्मा च्छन्दार्थस्यङ्गानि यज्ञूथि नाम । साम ते तन् व्वामदेश् क्यं बज्ञायित्रयम्पुच्छिन्धिकण्याः शफाः । सुपण्णोंसि गरुरमान्दिवक्कः च्छ स्वः पत (वा.सं० १२-४)

अवहरत्यानेऽभ्यावार्त्तिन्निति ॥ १६॥

प्रत्यवरोहत्याग्नम् "अग्नेऽभ्यावित्तन्" (१) इति । "यावत्कृत्व ऊद्ध्वीं रोहति तावरकृत्वः प्रत्यवरोहति" (श. ब्रा. ६-७-३-६) इति श्रुतेः तः द्वांत्रत्यवरोहणम् ॥ १६ ॥

उपरिनाभि धारयन्नात्वाहार्षमित्यभिमनत्रयते ॥ १७॥ उपरिनाभि धारयन्नग्निम् "आ त्वाहार्षम्"(२) इत्यभिमनत्रयते॥१७॥

पाशा उन्मुच्योदुत्तममिति ॥ १८ ॥ पिण्डवत्त्राग्दक्षिणा प्रमृह्णात्यग्रे बृहन्निति ॥ १९ ॥ सन्वेण ॥ १९ ॥

अवहरति हृधः शुचिषदिति ॥ २०॥ अनेन मन्त्रेण ॥ २०॥

.आसन्यां करोति वृहदिति ॥ २१ ॥ उपतिष्ठते सीद त्वामिति ॥ २२ ॥

वात्सप्रेण च दिवस्परीत्येकाद्श्वभिः ॥ २३॥ उपतिष्ठते ॥ २३॥

अनुवाकेनैके ॥ २४॥

डपातिष्ठन्ते ॥ २४ ॥

अत्र दीक्षितोऽयमिति ॥ २५॥

अस्मित्रवसरे ' दीक्षितोऽयम्' हत्याह । दण्डान्ते ह्युखाधिश्रयणाः द्युक्तम् । अतः प्राकृतानुबृत्यर्थमिदमुच्यते ॥ २५ ॥

आवृत्तिरतः संवत्सरम् ॥ २६ ॥ अतःकर्ष्वे यदुक्येते तत्संवत्सरं यावदावर्तते ॥ २६ ॥

इति वोडशाध्याये पञ्चमी कविडका ।

⁽१) अगोनभ्यावर्तिन्नमि मा निवर्त्तस्वायुषा व्वर्ट्वसा प्यूजया धतेन सन्न्या मेघया रज्ञायोषेण (वा. सं.१२-७)

^{ं (}२) आ स्वाहार्षमन्तरभृद्धुंवस्तिष्टा विवचाचिलः । विवशस्त्वा सद्वी व्याञ्छन्तुमा स्वद्दाष्ट्रमधिव्यशत् (वा. सं. १२-११)

उखाया भस्मे। इपनमस्तिमिते पात्रे ॥ १ ॥

तत्र प्राग्वाग्विसर्गात्, "मस्मोदुष्य वासं विस्त्रते" (श. ब्रा., ६-७-४-१४) इति श्रुतेः ॥ १ ॥

वाचं विसुज्य समिदाधानः रात्रीः रात्रीम-प्रयावमिति ॥ २॥

तश्व यजमानस्य स्यात् , व्यवादेशसामर्थ्यात्—'वाचं विस्तस्य' इति । लिङ्गाच्च-"अथ ये दीक्षितः समिधावाद्याति ते अग्निहोत्राः हुती" इति ।

अय वा नैतदेवम् , समाख्यानुत्रहादध्वर्योः पदार्थः प्राप्नोति । न च सम्राख्या वाधितव्या ।

कि च याजमानाः पदार्थाः परिभाषिताः। "प्रधानः स्वामी फळ योगात्पुरुषयोगिमन्त्रसंस्कारयोस्त्यागे सामर्थ्याद्वचनादन्यत्" (का. औ. १-७-१९, २०, २१,) इति ।

नन्वत्रीप वचनम् 'वाचं विख्ण्य समिदाधानम्' इति नैतदेवम्, अन्यार्थं ह्येतत् । कोऽन्योर्थः ? अनिर्जातकालस्य समिदाधानस्य कालं लक्षयितुं 'वाचं विख्ण्य' इत्युच्यते । यत्र पुनर्ल्यवादेशस्यान्यार्थता न भवति, तत्र समानकर्तृकता भवति 'समाख्यामपि वाधित्वा' इति । अतः कालार्थोऽत्र ल्यवादेशः । यथाऽन्यत्र ''निरुप्याज्यं प्रातद्दीहनम् न्यस्भिन्' (का. श्रौ. ४-२-३७) इति ।

यत्पुनर्लिङ्गमुक्तम् "अथ ये दीक्षितः समिधावादधाति" इति, तदः ध्वर्युकर्त्वकृत्वेऽपि न विरुध्यते । यजमान एव हि समिदाधानं कारः यक्षादधाति इत्युच्यते ॥ २ ॥

एवमुदिते सस्मोद्वपनादि ॥ ३ ॥ कर्त्तव्यम्॥ ३ ॥ अयं तु विशेषः--

अहरहरित्याघानम् ॥ ४ ॥

"अहरहः"(१) इति समिदाधानम् ॥ ४ ॥ विष्णुक्रमवात्सप्रे चाहर्र्यत्यासमुद्ति समिधमाधाय॥५॥ विष्णुक्रमवात्सप्रे प्रत्यहं व्यत्यासेन कर्त्तव्ये ॥ ५ ॥

(१) अहरहरण्ययाव स्मरन्तोश्श्वायेव तिष्हते घासमस्ममे । राय-ह्णोषेण सभिषा मद्रन्तोऽग्ने मा तेष्प्रतिवेशा रिषाम । (वा. स. ११-७५) तयोविभागमाह-

इत्समितिमोचनादि प्राग्वातसमादिष्णुक्रमाः ॥ ६ ॥ सामिके कतौ संस्वत्सरं दीक्षा आग्नाताः—'सम्वत्सरमृतमेव चिन्वीत" (श. ब्रा. १०-१-६-६) इति । पवित्रे च चतस्रो दीक्षा आग्नाताः—'पवित्रश्चतुर्दीक्षः" (का. श्री. १५-१-४) इति । तत्राग्नौ सति चिन्त्यते—किमिनिमित्ता दीक्षा भवन्तु, उत सौमिक्य इति । उभयं चैतच्चिरितार्थम् । पवित्राद् बहिराग्निक्यश्चिरितार्थाः । अन्वित्रे च पवित्रे सौमिक्य इति । तेन साग्निमित पवित्रे कथं भवित्रविति ॥ ६॥

नियमकारणाभावाद् नियमे शप्त आह—

सोमाविरोधेन वा तत्प्राधान्यात् ॥ ७ ॥ सोमाविरोधेन वा दी(१) क्षा भवन्ति । कुत पतत्? तत्प्राधान्यात् । सोमस्य प्रधानभूतत्वात्तर्दाया पत्र दक्षिः भवन्तीति ।

(१) द्वादशाहे तथाऽहीने जामदग्ग्ये विशेषतः। सोमार्थो श्रूयते दीक्षा संख्याग्नेर्बाद्यतेऽङ्गतः॥ पर्वसुत्यानुरोधेनामायां दीक्षा च बोध्यते।

सोमे "गुक्रपक्षे दीस्ति" इति श्र्यते। अश्री तु "अमावास्या यांदीक्षेत" इति । तत्रैतत्संदिद्यते - किं गुक्रपक्षे दक्षित उत अमावास्याः साम् इति । किं तावत्प्रातं सुत्रेणैव पक्षः, "सोमाविरोधेन वा तत्प्राधान्यात्" इति । न वा आनर्थक्षात् । आनर्थक्यप्रतिहतानां विपरीतं बळावळिमिन ति हि निष्कर्षः । किं च—

> प्रथमे वर्णके ऽत्रैव चारितार्थ्यं द्वयोरित । तेन सोमाविरोधेनेत्येवं भाष्यं समीरितम् । अतोग्न्यहेन सोमस्याप्यङ्गं न्यायेन बोध्यते ।

किञ्च—

उच्यं सम्बन्सरं भृत्वाऽमायामाद्योपसद्यदा । एकाहत्वाञ्च तास्तिस्रस्तृतीयायां सवस्तदा ॥ पर्वसुत्या तु सोमस्य वाध्यतेऽम्त्यनुरोधता । आनथक्यं श्रुतेमीभूत्तेन युक्तं पुरोहितम् ।

्र षणमासस्य पक्षे स्वकाले एव इष्टकापशवः। उखासस्भरणंच तथेष्टः काकरणम्। आश्वयुजशुक्कद्वादश्यां कार्तिकस्य वा दक्षिति संप्रदायः। नतु चेतरा अपि सोमस्यैव दीक्षाः, अग्नेनिमित्तभावमात्रमिति। सः स्यमेवम्। एका खोमनिमित्ता अपरा अग्निनिमित्ताः। तत्र राजाश्रितः द्वारपाळाश्चितन्यायेन राजाश्चितवळीयस्त्वात्स्वीमिक्य एव दीक्षा भयः नित । यत्पुनः राजसुयेऽग्निपविषयः शाखान्तरे, तदेतद्व्पोदाहरणं समानन्यायार्थम् ।

अथवा सद्योभृतिविषयता सुत्रस्यास्तु । अग्नौ फाल्गुनामावास्या-यां दीक्षा । कि सद्योभृतेऽपि तत्रैव भवतु उत यथाप्राप्तामिति ? निः यमकारणामावादनियमे प्राप्ते आह-"सोमाविरोधेन वा तत्प्राधान्यात्" इति ।

अथवा "वण्मास्यमन्तिमं चिन्चीतेत्यु हैक आहुः" इत्यत्र कि वन् सन्तेआरभ्य दारिद सुत्या उत दारद्यारभ्य वसन्त दति ? तत्रैतदुद्यते-"सोमाविरोधेन वा तत्प्राधान्यात्" दति । एवं सति दारिद तथाऽऽर-स्मः कर्त्तव्यो यथा वसन्ते यजनीये सुत्या भवन्तीति ॥ ७॥

न्यज्य समिधं व्रते प्रतो प्रतोऽन्नपत(१)

इत्याघानम्॥ ८॥

स चार्यं समित्संस्कारो व्रतसंस्कारश्चेति सम्प्रदायः । ततश्च सः मिश्रोऽवयवाः सर्वव्रतेषु त्यज्यन्ते । नेत्यपरे । न हात्र व्रतसंस्कारत्वे प्रमाणमस्ति । समिधस्त्वाधीयमानत्वात्संस्कार एवेति गम्यते । एवं च इत्वैकस्मिन्नेव व्रते न्यञ्जनं व्रतबहुत्वेऽपि, न सर्वेष्विति ॥ ८ ॥

संबत्सरभृतिनोऽसंबत्सरभृतेऽपि ॥ ९॥

अग्नी चयनं भवति, ''कामंन्वाऽएन} सचिन्वीत येन पुरा सम्बन्स्यां भृतः स्यात्' (रा. ब्रा. ८-५-१-६५) इति वचनात्॥ ९॥

संबत्सर् सोष्यतः ॥ १०॥

सम्बन्सरमिषवं करिष्यतः असंवत्सरभृतेऽपि चयनं भवति, "कामम्बेवने सिचन्वीत यः सम्बन्सरमभिषविष्यन्तस्यात्"(श्राज्ञाः ९-५-१-६६) इति वचनात् ॥ १०॥

सम्बत्सराहिताग्नेः॥ ११॥

असम्बत्सरभृतेऽपि चयनमिष्यते। पतच सौमाधानिकस्य मवति ना∙ न्यस्य। एवं हात्र श्रूयते-"यः सम्बत्सरमग्निहोत्रं जुहुयात्"(रा.बा.९-५-

⁽१) अन्नपतेऽस्नस्य नो देहानमीवस्य शुम्मिणाः। प्रत्य दातार न्ताः रिष ऽऊर्जं स्रो घेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ (वा० सं०११-८३)

१-६७)इति । तच्च सौमाधानिकस्यैव घटते नान्यस्य । कथमेकस्मिन्द सन्ते कृत आधाने द्वितीयेऽगेनस्सम्मवो भवति १ नचाऽनिष्ठप्रथमसोम् स्याग्नेः सम्भवः । तस्मात्सम्बन्सराहिताग्निः सौमाधानिकः, तस्यापि (१)च नोध्वे सम्बन्सरात्सद्योभृतः स्यात् । एवं हि श्रूयते "यः सम्बन्स्समग्निहोत्रं जुहुयात्" (इ. ब्रा. ९-५-१-६७) इति ॥ ११ ॥

जानस्य च॥ १२॥

सम्बन्धरे जातस्य च असम्बन्सरमृतेषि चयनं भवति । एवं हि वचनम् "कामम्बेवैनः सिचन्वीत यः संबन्धरं जातः स्यात्" (श. ब्रा. ९-५-१८) इति ॥ १२॥

वणमास्यमन्त्यम् ॥ १३ ॥

अन्तयं ज्ञानयमिदं पक्षान्तरं षणमासाचुख्यभरणं कृत्वाऽिनश्चीः यतं इति । "षणमास्यमन्तमं चिन्वीतेत्याद्युः" (शव्झा०९-५-१-६३) इति ॥ १३ ॥

अचयनं वा परस्मै ॥ १४ ॥

चयनं वेति विकल्पः। एवं हि श्रूयते "त्रयो ह वै समुद्राः अग्निर्यः जुषां महावत साम्नां महदुक्थमृचाम्" (श्रुव्या ९-५-२-१२) इति प्रकृत्याह—"एतान्ह स समुद्राञ्छोषयते य एतानि परस्मे करोति" (श्रुव्या ९-५-२-१२) इति। निन्दार्थवादः प्रतिषेधार्थः। तथाचाह—"तस्माद्येवं विकामं परस्माऽअग्निं चित्रयात्" (श्रु. ब्रा. ९-५-२-३) इति प्रतिष्यस्वः। प्रतिष्धप्रतिप्रसवाभ्यां विकल्पः।

अन्ये त्वाहुः—अर्थासिद्धत्वाद्विकस्पो न वास्यः। तेन चयनप्रतिषे-धप्रतिप्रसवौ अन्यार्थौ । कोऽन्योऽर्थ इति चेत् ? दक्षिणासंवादप्रति-षेधः। "त्रयो ह वै समुद्राः"(श. ब्रा. ९-५-२-१२) इत्यत आरम्य एत-देकं वाक्यं यावद् "दक्षिणासु त्वेव न संवदितव्यम्" इति ॥ १४॥

⁽१) सोमाधाने च सुत्यायां पर्वकालो ह्यपेक्षितः। ततः सम्वत्सरं पूर्णे होतव्यमन्निहोत्रकम्॥ वर्षान्ते तत्र दीक्षाऽग्नेःसुत्या सा चापि पर्वणि। तत्र सम्वत्सरस्याद्यामावास्यायां वसन्ततः॥ आद्या सुत्याऽत्र वर्षान्ते दीक्षाग्नेः प्रथमा ततः। पर्वसुत्यानुरोधेन दीक्षाः स्युद्वादशापि च॥ तत्रश्चोपसदस्तिस्वद्वैड्यां सुत्येति युज्यते।

पागनः कृत्वोख्यस्योत्तरतः समिदाधानः समिधाः जिनमिति ॥ १५ ॥

उख्यस्योत्तरतः प्राङ्मुखमनः क्रत्वोख्य एव समिदावानः "समि वाग्निम्"(१) इति ॥ १५ ॥

सासन्दीकमुद्यम्योदु त्वेति दक्षिणतोऽनसि करोति॥१६॥ सासन्दीकमुख्यम "उदु त्वा"(२) इत्युत्क्षिण्यानसो दक्षिणतोऽभ्यः

वसितोऽनसि करोति॥ १६॥

स्थाल्यां गाईपत्यं पश्चात् ॥ १७ ॥ अनिक करोति दक्षिणानि च वितृतीये करोति(३)॥ १७ ॥ अनड्वाही युक्तवा प्रदग्न(४) इति प्राङ्यात्वा यथार्थम् ॥ १८ ॥

गच्छेत्॥ १८॥

आरोहेत्पादर्वतो वा गच्छेत्॥ १९॥

यजमानः संस्कारात्॥ १९॥

अक्षे खर्जत्यकन्दद्गिन(५)रिति जपति ॥ २०॥ खर्जनं च शब्दकरणम् ॥ २०॥

- (१) सिम्बाग्निन न्दुवस्यत घृतैन्वोधयतातिथिम् । आस्मिन्नहृद्या जुहोतन्॥ (वा० सं० ३-१)
- (२) उद्दुस्वा विद्द्वेद्वाऽअग्ने भरन्तु चि।त्तिभः। स नो भव शिवस्त्वः सुप्रतीको व्विमावसुः॥ (वा०सं०१२-३१)
- (३) सभ्यावसथ्ययोस्तु न सहानयनम् । नापि शालायाम्, समा-ख्यानात्, कार्यामावाच । किं तु समावसथयोरेव । दक्षिणाग्नेः सहन-यनात्यत्म्यपि सह गञ्जूति, तत्साध्यत्वाचद्वतस्य व्रवदुवे अपि नेये ।

अत्र ऋत्यतुरोधेन वास्रो वा दीक्षितस्य हि । श्रूयते युज्यते चैवं तस्मात्यत्यपि गच्छति ॥

(४) प्रेदगने ज्ज्योतिषमान्त्याहि शिवामर्श्विमिष्ट्वम् । बृहद्ग्द्रिक्भोनुभिक्मीसन्मा हिऽसीस्तन्त्वा प्रजाः ॥

(वा० सं० १२-३२)

(५) अक्कन्दद्गिन स्तनयन्निव द्याः क्षामा रेरिहद्द्वीरुघः समञ्जन्। सद्यो जन्नानो न्त्रि हीमिद्धोऽअख्यदा रोदसी भानुना मास्यन्तः॥ (वा० सं० १२-३३)

वासेऽवहरत्युद्धताचोक्षित उत्तरतः समिदा-घानं प्रप्रेति ॥ २१ ॥

यत्र वासस्तत्रैवाव(१)हरणं न प्राग्वसतेः। एवं ह्याह—"ल यदि पुरा वसत्ये विमुश्चेतानस्येवाग्निः स्यात्" (श्वाव्याः ६-८-१२)इति। वसत्यां तु उत्तरतोऽग्नीनवतार्यं समिदाधानं "प्रप्र" इति(२)। उद्धतावोधित्रहणं च परिसमृहनादीनामुपसंत्रहार्थम(३)पि। स्मार्ते ह्येतदन्यूवते- "उद्धते वा अवोक्षितंऽग्निमादधाति" (शव्द्याः ६-४-४-१८) इति। एवं च सति तदपचारे स्मार्ते प्रायक्षित्तम् ॥ २१॥

वनीवाहनमेतहीक्षासु यदेच्छेत् ॥ २२ ॥

वनीवाहनसंज्ञाऽस्य कर्मणः। सा च संव्यवहारार्था—ऊद्ध्वं वनी-वाहनादिति। तच दक्षिासु कर्चव्यं यदेच्छोपजायते । महावीर-करणयूपच्छेदनवनीवाहनानि दक्षिासु क्रियन्ते। क्रमस्तु नैषाम्, पाटा-भावात्॥ २२॥

अप्मूरुपभस्मावपनं ऋयणीयादौ ॥ २३ ॥ उख्यमस्मावपनमप्तु कर्त्तस्यम् । आदौ ऋयणीयस्याद्वः ॥ २३ ॥ अन्यक्र चेरुछन् ॥ २४ ॥

करोति॥ २४॥

ऊद्ध्वे वनीवाहनात्क्रमयोगात् ॥ २५ ॥ अन्यत्रेच्छया कुर्वन्वनीवाहनादृद्ध्वे करोति, मन्त्राणां पाठकमः योगात्॥ २५ ॥

पलाशपुरेनापो देवीरित्येकया ॥ २६ ॥ पलाशपुरेन मस्म गृहीत्वा अप्स्वावपति 'आपो देवीः" (४)इत्ये-कयर्चा ॥ २६ ॥

⁽१) अवहारः सपात्राणामग्नीनां स्थापनं तथा।

⁽२) प्र प्रायमागिनर्भरतस्य शुण्णेव व्वि यत्स्सूरयो न रोचते बृहद्भाः। श्रमि यः प्र म्णृतनासु तस्त्यौ दीदाय दैञ्ज्यो ऽञ्जतिथिः शिवो नः॥ (वाण सं० १२-३४)

⁽३) अप्यर्थो ध्येयः।

⁽४) आपो देवीः प्रतिगृब्स्णीत सस्मैतत्स्योने कृणुद्ध्वश्वरभाऽउ लोके । तस्मैनमन्त्ताञ्जनयः सुपत्नीमतिवपुत्रं विभृताप्स्वेनत् ॥

⁽ बा० सं० १२-३५)

ततो द्वाभ्याम् ॥ २७ ॥

पुनश्चावपति द्वाभ्या(१)स्ग्भ्याम् ॥ २७॥

आचाभ्यां वा पूर्वम् ॥ २८ ॥

पूर्वमावपनं द्वाभ्यामुग्भ्याम् , तत पक्तयर्चा । वाशब्दो विकल्पार्यः, तुल्पश्चतित्वात् ॥ २८ ॥

अनामिकया प्रास्तादाद्ते प्रसद्येति ॥ २९ ॥ प्रास्ताद्रस्मनः कियदण्यनामिकयाऽऽद्ते "प्रसद्य"(२)इत्येभिर्मन्त्रैः। "चतुर्भिरपादत्ते" (द्यव्याव ६---२७) इति वचनात् ॥ २६ ॥

प्रास्योखायासुपतिष्ठते बोघा म हति॥ ३०॥ यत्तदात्तं भस्म तत्त्रास्योखायासुपतिष्ठते "वोघा मे"(३)इति ॥३०॥

> प्रावश्चित्तिः समिघोपहत्य — इति वोडशाच्याये वष्टी कण्डिका ।

आज्यं विश्वकर्मण(४) इति जुहोति ॥ १ ॥ प्रायश्चित्तिति अस्य होमस्य संज्ञा । आज्यप्रहणं न कर्त्तव्यम्, उक्तत्वात्—'तस्य होमो नादेशः' इति । कर्त्तव्यं वा गुणार्थम्—'सिमि

(१) अटस्वाग्ने सधिष्टव सौ षधीरनुरुद्धयसे । गर्ने स आयसे पुनः॥(३६) गर्को ऽअस्योषधीनां क्रन्मी व्यनस्पतीनाम् ।

गन्भों व्विश्वस्य भूतस्याग्ने गन्भों ऽअपामसि । (वावसंवर्श-३७) (२) प्रसद्य अस्मना योनिमपरश्च पृथिवी मग्ने ।

(२) प्रसद्ध मस्मना जानमपरश्च पृथ्या मन्ता स्री स्टब्ड्य मानृभिष्टु ब्ड्योतिष्मान्युनरासदः॥(३८) पुनरासद्य सद्नमपश्च पृथिवीमग्ये । शेषे मातुर्थ्यथोपस्थेऽन्तरस्याॐशिवतमः॥(३९) पुनर्क्ता निवर्त्तस्य पुनरमनऽद्दपायुषा । पुनर्काः पाह्या हसः॥(४०) सह रथ्या निवर्त्तस्याग्ये पिन्त्वस्य धारया । विवश्यवप्स्त्या विश्यवतस्परि॥(वा० सं० १२-४१)

(३) बोधा मेऽअस्य व्वचलो यविष्ठ म्हाहिष्ठस्य प्रसृतस्य स्वधावः। पीयति स्वोऽअनुस्वो गुणाति ब्वन्दारुष्टे तन्त्वं व्वन्देऽअग्ने॥ (वा० सं० १२-४२)

(४) ब्विद्द्वकर्मणेस्वाहा ॥ (वा० सं० १२-४३)

घोपहत्य' इति । उपपूर्वश्च हन्तिर्महणार्थे । हष्टोऽन्यत्रापि — "अथ स्रवः णोपहत्याज्यम् (द्याञ्जा० ३-४-१-२५) इति ॥ १ ॥

जन्थायादघाति समिधं पुनस्त्वेति ॥ २ ॥ अनेन मन्त्रेण(१)। उत्थानप्रहणं च प्रतिपत्तित्वात् गुणार्थं चेति॥२॥ नैमित्तिकान्यत्रैव प्रकरणे प्रव्यन्ते तदर्थमाह—

गाईपत्येऽनुगते निर्मध्य ॥ ३ ॥ आद्धाति । मन्धनं प्राप्तत्वादवाच्यम् ? उच्यते प्रायश्चित्तार्थम् ॥३॥ सुत्यास्त्राह्वनीये साङ्काशिनेन हृत्वा ॥ ४ ॥

सुत्या(२)स वर्त्तमानास्वाहवनीयेऽनुगते साङ्गाशिनेन हृत्वा तमा-द्याति । साङ्गाशिनशन्दः प्रगुणवाची । प्रगुणमेव हृत्वेत्यर्थः । एतस्रो च्यते पूर्ववत् प्रणयनं मा भृत् इति ॥ ४ ॥

आग्नीधीयमुत्तरण सदः॥ ५॥

(३)आग्नीधीयमञ्जगतमुत्तरेण सदो हत्वा निद्धाति। 'उत्तरेण सदो हत्वा' इतीध्मन्युदासार्थम् ॥ ५॥

प्रवृञ्ज्यादावृतोख्ये ॥ ६ ॥

- (१) पुनस्त्वादित्या खदुद्दा व्यसवः समिन्धता म्मपुनर्क्षह्माणो व्यसुनीथ यृक्षैः। घृतेन त्व न्तन्न्वँ व्यक्तसम्य सत्याः सन्तु युजमानस्य कामाः॥ (वा० सं० १२-४४)
- (२) 'सुत्यासु' इति विशेषापादानादन्यत्र सधर्मकं प्रणयनम् ।
 द्रव्यं यत्स्यात्क्रियार्थे तत्प्रधानं द्रव्यमीतितम् ।
 तिव्रनाद्याच्च तिष्ठष्ठाः प्रकृतापूर्वसाधकाः ॥
 संस्कारा नाद्यमापन्ना अतः संस्कारसंयुतम् ।
 पुनरावर्तयद् द्रव्यं तेन निर्वर्तयत् क्रियाम् ॥
 अतः कर्मणि यद्यग्निनाद्यस्तत्र सधर्मकम् ।
 अग्नेराहरणं ये वाऽपूर्वप्रयोजिताः ॥
 संस्कारास्ते पुनः कार्याः पूर्वाग्निव्यक्तिनाद्यतः ।

पूर्वेक्कतान् प्रकृतापूर्वप्रयुक्तान्संस्कारान् पुनः क्रयीत् । तदुक्तम्— "प्रधानद्रव्यव्यापत्तौ साङ्गावृत्तिस्तदादेशात्" इति । अतश्च होमोत्तरं तस्विमिश्राधे नाधीयते ।

(३) अवापि प्रकृताऽपूर्वप्रयुक्ताहतरे संस्काराः पुनरावर्तन्ते एव ।

उष्ये चानुगते पूर्वंसम्बृङ्ग्यात । अयं तु विशेषः—आवृता । आः बृद्ग्रहणं च मन्त्रनिवृत्त्यर्थम्, "एतयैवावृता अनुपहरन्यज्ञः" (श॰ब्रा॰ ६-६-४-९) इति श्रुतेः ॥ ६ ॥

अध्वरप्रायश्चित्तिं च सर्वेषु यथाकालं पूर्वी पूर्वाम् ॥ ७॥

अध्वरप्रायिश्विति च करोति । सर्वेषु निमित्तेषु तां च पूर्वी पूर्वीम् । चशब्दादागितकीं च । सर्वेष्ठहणं भस्मापोऽभ्यवहरणार्थम् । तत्रापि हि विधीयेते—"उमे प्रायिश्वत्ती करोति ये प्रवाग्नावनुगते" (श० व्रा० ६-८-२-११) इति । 'यथाकालम्' इति चाध्वरप्रायश्चित्त्यर्थमुच्यते । आग्तिकी तु विश्वकर्मण इत्येव ॥ ७॥

उखाभेदने नवस्थाल्यां महामुख्यामुखाक-

पालमवघायावपति॥ ८॥

"यद्येषोस्ना भिद्यत" (शव्बाव्६-६-४-८) इति प्रक्रत्य सर्वभिदमास्नाः तम्। एतच्चकोस्नापक्षे भवति। जित्वपक्षे तु द्वयोरेवैकस्यामावपनम्। "ता हैके तिस्नः कुर्वन्ति" (शव्बाव ६-५-२-२२) इति हि प्रकृत्य "बदी तराभेत्स्यतेऽयेतरस्यां भरिष्यामा यदीतराऽयेतरस्याम्" इति॥ ८॥

उन्बीपदाये पिष्ट्रा मुदा सहोन्त्रां करोत्यावृता ॥ १ ॥

उखाखण्डमेकमुखायां प्रक्षितम् । द्वितीयमुपरायया सह पिष्ट्वा मृदा सहोखां करोत्यावृता मन्त्रवर्जम् । आनुष्टजुन्देन क्रियामात्रमुच्यते । तथा बोक्तम् "एतयैवावृता अनुपहरन्यजुः (राण्डा०-६-६-४-९) इति ॥९॥

पक्वायामावपति कपालं च ॥ १०॥

पकायामुखायामावपत्यरिंन कपालं च ॥ १०॥

ङखोपद्यापे पिष्ट्रा स्राह्मस्य निद्धाति ॥ ११॥ डखाकपाळं च उपदायां चांपष्ट्रा स्राह्मस्य स्थापयति॥ ११॥ इदानीं चयनप्रकारमाह—

अभ्यातमं चयनमुपिषद्य ॥ १२ ॥

आत्मानमाभिमुख्येन चयनं कत्तंत्वं न परागिति। तथा च नैऋतीषु वचनात्पराक् चयनमुक्तम। "पराञ्चमेव निर्ऋति पाप्मानमपहन्ते"(१)॥१२॥ अपरो विदेशः—

सव्यवाहुमन्तरं कृत्वोत्तरलक्षणाभिरिष्टकाभिः॥१३॥

⁽१) "पराञ्चमेव तत्पाप्मानं निर्ऋतिमपहते" (श० जा० ७-२-) १-१३) बार्छेनराजघान्यां सुद्धितशतपथे एवं पाठः।

चतच्यः ॥ १३ ॥

नित्ये सादनसद्दोहसा उपधानादुत्तरे तथा देवतथा ता अस्येति ॥ १४ ॥

सर्वास्विष्ठकास्वेते नित्ये भवतः। "तया देवतया"(१) इति सादनम्। "ता अस्य"(२) इति सूददोहसाऽधिवदनम्। ॥ १४॥

कुत एतत् 'सर्वास्विष्टकास्वेते भवतः' इति ?

अविशेषापदेशात्॥ १४॥

अविशेषेण हानारम्य कञ्चिदिष्टकाविशेषमेते श्येते—"तया देव-तया" इति सादनम्, "ता अस्य" इति सुददोहसाऽधिवदनम् ॥१५॥

किंच-

धनाम्नातप्रतिषेधाच ॥ १६॥

यत्रापि नाम्नायेते सादनसुद्दोहसौ तत्रापि प्रतिषेधति । "यथा नै. र्ऋतीषु न सादयित प्रतिष्ठा वै सादनं नेत्पाप्मानं प्रतिष्ठापयानीति, न सुद्दोहसाधिवद्ति प्राणो वै सुद्दोहसा नेत्पाप्मानं प्राणेन सन्तनवानि सन्द्धानि" इति । तस्मात्सर्वत्रैते भवतः ॥ १६ ॥

एकचोदनास्वेकदेशासु तन्त्रेण ॥ १७ ॥

पकचोदना अपस्या वयस्या इत्येवमादि । एकचोदना अपि यद्ये कदेशा मवन्ति । यथा तालामेव देशमेदः—अपस्याः पञ्चपञ्चानूकान्ते-ध्विति । अतश्च प्रत्यनुकं नित्ये । देशमेदे त्वलति तन्त्रेणेति ॥ १७ ॥

आत्मिन यजु(३)ष्मतीः ॥ १८ ॥

रष्टका उपद्याति न पक्षपुच्छेषु, "स वा आत्मन्नेव यज्जुष्मतीरूपः द्याति न पक्षपुच्छेषु" (राष्ट्राष्ट्र ८-७-२-९) इति ॥ १८ ॥ स्रोकंप्रणासु द्रासु द्रासु मन्त्रो स्रोकं प्रणे(४)ति ॥१९॥

(वा० सं० १२-५४)

⁽१) तया देवतयाङ्गिरस्वद्ध्रवा सीद् ॥ (वा० सं० १२-५३)

⁽२) ता अस्य सुददोहसः सोमण् श्रीणन्ति पृददनयः । जन्मन्देवानां विवशस्त्रिष्यारोचने दिवः॥ (वाठसं०१२-५५)

⁽३) पृश्न्यदमानमृते सर्वा आत्मन्येव यज्जुष्मतीः।

⁽४) लोक म्पृण व्छिद्दं म्पृणाथो सीद द्धुवा स्वम् । इन्द्रागनीस्वा बृहस्पतिरस्मिनन्योनावसीषदन्॥

"तस्मादश्चरशेष्टका उपधाय लोकंपृणयाऽभिमन्त्रयते" (श० जा० ९-१-२-१९) इति श्रुतेः ॥ १८॥

श्रसाद्नं च॥२०॥

लोकंपृणानाम् । सुददोहसाऽधिवदनं तु भवति, अप्रतिषिद्धः त्वास् ॥ २०॥

मतिचिति वे वे उपधाय॥ २१॥

लोकंपृणामन्त्रवचनम् । पुनर्दशसु दशसु ॥ २१ ॥

अयुग्मगणमध्यमाऽनृके ॥ २२ ॥

अयुग्मो य इष्टकागणः; यथा वालिखल्याः सप्त, तासां मध्यमाऽन्-क उपघेया॥ २२॥

एका च ॥ २३ ॥

या चैकेष्टका साप्यमूक एव । यथा विश्वज्योतिर्द्धियजुश्चेत्ये । वमादि ॥ २३ ॥

अभिनो युग्याः ॥ २४॥

अनूकमितोऽर्घाधिकया युग्मा उपधीयन्ते। यथा धाणभृतो दश, छुन्दस्या द्वादश ॥ २४ ॥

उदश्चो वर्गाः पूर्वापरे ॥ २५॥

यत्र पूर्वापर इति देशव्यपदेशः तत्रोदग्लक्षणा इष्टकावर्गा उप-घीयन्ते ॥ २५ ॥

पाश्चो दक्षिणोत्तरे ॥ २६ ॥

यत्र तु दक्षिणोत्तरव्यपदेशः तत्र प्राग्छक्षणा इति ॥ २६ ॥

भिन्नकृष्णयोर्चयनम् ॥ २०॥

"न भिन्नां न कृष्णामुषद्घ्यात्" (शञ्जा०८-७-२-१६) इति ॥ २७॥ दक्षाणामुत्तमेऽहनि वेद्यगिनमानम् ॥ २८॥

कर्तब्यम् ॥ २८॥

उख्यस्थानेऽर्घव्यामेन गाईपत्यस्य परिलिखाति ॥२९॥ मण्डलमिति शेषः ॥ २९॥

मण्डलाह्या प्रक्रमणमन्तः पालस्य ॥ ३०॥

"पूर्वार्धाद्यामस्य जीन्प्राचः प्रकमान्त्रकामित'' (श्वाव १०-२-३-१) इति वचनात् । यद्येवं वाशब्दोऽवधारणार्थः । पूर्वार्धादेव ब्यामस्य प्रक मणं मण्डलादिति न स्तम्भादिति । स्तम्भाद्धि प्रक्रमणमनग्नौ चरि-१४ काव तार्थम् ॥ ३० ॥

पश्चाग्यावद्यात्पादमात्रे चित्यस्य ॥ ३१ ॥

स्थानं भवतीति रोषः ॥ ३१ ॥

यजमानेनोद्ध्ववाह्यपदोच्छितेन समस्थितेन वा ॥३२॥

इति षोडशाध्याये सप्तमी कण्डिका।

ब्रिपुरुवार्र रज्जुं मित्वा(१) ॥ १ ॥ उभवतः पाद्यां मध्ये लच्चणमभितोऽर्ध(२)पुरुषयोश्च ॥२॥ मध्य(३)मात् पुरुषपञ्चमे ॥ ३ ॥ अर्धे(४) च ॥ ४ ॥

अनुएष्ट्यामायम्य ॥ ५ ॥
पाद्यायोः द्याङ्क् मध्येऽर्धपुरुषयोश्च॥ ६ ॥
पाद्या उन्मुच्यार्धपुरुषीययोः प्रतिमुच्य दक्षिः
णायम्य मध्यमे नितो(५)दं करोति ॥ ७ ॥
उन्मुच्य पाद्यावेकं मध्यमे प्रतिमुच्य दक्षिणाऽधिनितोदमायम्य मध्यमे द्याङ्गः॥ ८ ॥
तस्मिन् पाद्यं प्रतिमुच्य पूर्वार्थे च दक्षिणाः
यम्य मध्यमे द्याङ्गः॥ ९ ॥

⁽१) षोडशाध्यायस्याष्टमी कण्डिका यद्यपि कर्काचाँग स्वभाष्ये ऽत्र न ब्याख्याता केवलम् 'निगद्ग्याख्यातम्' इत्येवोक्तम् । तथाप्यु पयोगित्वात्सा ब्याख्यायते ।

⁽२) लक्षणम् ।

⁽३) मध्यमारलक्षणात्युरुपपञ्चमे ।

⁽४) पुरुषपञ्चमस्यार्घ ।

⁽५) नितोदं गर्तम् ।

पश्चादर्घपुरुषे च ॥ १०॥ उन्सुरुष प्रविधीत्पश्चार्थं प्रतिसुरुष दक्षिणाः यम्य मध्यमे शाङ्कः॥ ११॥ अभितोऽर्घपुरुषयोश्च ॥ १२॥ एवसुत्तरोऽन्तः॥ १२॥ दक्षिणे पाइवें पूर्ववदायम्य ॥ १४॥

दक्षिण पाइवं पूर्ववदायम्य ॥ १४ ॥ पत्रमभागीय राहुः ॥ १५ ॥

तिसन्पाञ्चं प्रतिसुच्य पूर्वे चार्षपुरुषीय ॥ १६ ॥ पञ्चमभागीयार्षपुरुषीययोः संनिपात्य तस्मिञ्छङ्कः॥१७॥

एवं पश्चात् ॥ १८॥

एवमुत्तरः पक्षः ॥ १९ ॥ तथा पुरुष्ठं वितस्त्या ॥ २० ॥

इच्छ(१)न्पक्षपुच्छाऽप्ययेषु चतुरङ्गुलं चतुर-ज्ञुल्णासङ्गर्षति चिकर्पत्यन्ते ॥ २१ ॥

पञ्चा(२)रितः पुरुषो दशपदो द्वादशाङ्गुलं पदं प्रक्रमस्त्रिपदः समविभक्तस्य ॥ २२ ॥

⁽१) यत्र पक्ष आत्मानमप्येति स पक्षाप्ययः। एवं पुच्छाप्ययः। अप्ययेषु पक्षयोः पुच्छस्य च आत्मसन्धिसमीपे चतुरङ्गुलं-चत्वारि चत्वार्यङ्गुलान्युभयोः पादर्वयोः सङ्कर्षति-सङ्कोचयति । तथा अन्ते पक्षपुच्छप्रान्ते उभयोः पादर्वयोः चतुरङ्गुलं विकर्षति-विस्तारयति ।

⁽२) पञ्चारत्वयो यस्य सः। पञ्चिसररित्तिभः पुरुषः, दशिभः पदैः
पुरुषो द्वादशिसरङ्कुळैः पदम् इत्येवमर्थो न भवति, इतः प्रागरत्त्यादीनां लक्षणस्यानुक्तत्वेनासिद्धत्वात्। पुरुषस्य पञ्चाराति-दशपद इति
लक्षणद्वयंकथनवैयर्थ्यप्रसङ्गाच्च। अतश्चेवम् —पुरुषस्य समिवभक्रस्य यः पञ्चमो मागः सोऽरित्तः, तस्य दशमो मागः पदम् , पदस्य
द्वादशमागोऽङ्कुलम् , त्रिभिः पदैरेकः प्रक्रमः इति तु मवति, पदस्य
सिद्धत्वात्।

परि(१)तत्य रज्ज्वा सहितं बहीरज्ज्वा ॥ २६ ॥
एकषष्ट राते परिश्रितो निनाति ॥ २४ ॥
चतु(२)णेवतीनि वा त्रीणि ॥ २६ ॥
जर्ध्वाः रार्कराः खाते ॥ २६ ॥
उर्द्धाः रार्कराः खाते ॥ २६ ॥
उर्द्धाः रार्कराः खाते ॥ २६ ॥
उर्द्धाः रार्कराः खाते ॥ २० ॥
यथाऽग्नि वेदी(४)ष्टकाप्रमाणम् ॥ २८ ॥
अन्तः(५)पात्यगाईपत्ययोरिच्छन् ॥ २९ ॥
उत्तरः(६)पक्षस्यापरस्या ३ स्त्रत्यां परिश्रितो मिनोति
जङ्घामात्रीं नाभिमात्रीं सुखमात्रीमिति
सुखमात्रीमिति ॥ ३० ॥
निगदव्याख्यातम् ॥ ३० ॥

इति षोडशाध्याये अध्यमी कण्डिका।

⁽१) रज्जवा परितत्य सर्वतो वेष्टयित्वा रज्ज्वा बर्हिभागे सहितं रज्जु संस्मानं यथा भवति तथा एकषण्ट्यधिकं द्वे राते परिश्रितो मिनोति।

⁽२) चतुर्णवत्याधकानि त्रीणि रातानि।

⁽३) उत्तरेषु अष्टविधादिषु चयनेषु आ एकशतविधात् एकशत-विधचयनं यावत् एकाधिकशतपुरुषात्मकपञ्चनवतितमचयनपर्यन्तं पुर् रुषोच्चयेन एकैकपुरुषवृद्धा अक्षिमानं भवति ।

⁽४) वेदिश्च इष्टकाश्च वेदीष्टकाः तासां प्रमाणं वेदीष्टकाप्रमाणं तद्यधाऽग्नि भवति । अग्निमनतिक्रम्य यथाऽग्नि । यथाऽग्निक्षेत्रस्य प्रमाणं वर्धते तथा वेदिप्रमाणं वर्धते इष्टकाप्रप्राणं च वर्धते । न हि वेश्विद्यद्विद्या विना तन्मध्ये वर्धितस्याग्नेमानं सम्भवति । नापि इष्टका अवर्धिता वर्धितमग्निक्षेत्रं पूर्यितुं शक्तुवन्ति । अतो युक्तमुभयोर्द्वद्विः ।

⁽५) अन्तःपात्यस्य गार्द्वपत्यस्य गार्द्वपत्यचितेश्च इच्छन् इच्छया वृद्धि सुर्यात् इच्छया न सुर्योत् ।

⁽६) अग्नेक्तरपक्षस्यापरस्नक्त्वां पश्चिमकोणे एवग्प्रमाणास्तिः स्रः परिश्रितो मिनोति ।

सप्तद्शोऽध्यायः।

श्वोऽभ्यवहरणादि प्रायश्चित्यन्तं कृत्वा वि

ष्णुकमबात्सप्रसमासः ॥ १ ॥

दिक्षाणामुत्तमेऽहित वेद्यग्निमानमुक्तम्। अतः दवःशब्देन क्रवणीयमहर्रिभधीयते। तत्र भस्माभ्यवहरणादि प्रायश्चित्र्यन्तं कृत्वा विष्णुक्रमवात्सप्रसमासः कर्त्तव्यः। अव्स्वयमस्मावपनं क्रयणीयादावुक्तमिष सद्वथ्यर्थमुच्यते। विष्णुक्रमणं हि कृतावथिकम्—"उदिते समिवमाधाय हक्तमविमोचनादि प्राग्वात्सप्राहिष्णुक्रमाः" (का० औ० १६-६-५, ६) इति। ततः प्राग्मस्माभ्यवहरणं यथा स्थादिति। तथा च श्वतिः—"तदहः प्रातहित आदित्ये
भस्मैव प्रथममुद्भपति भस्मोदुव्य वाचं विस्तृतते वाचं विस्तृत्य समिधमाद्याति समिधमाधाय मस्मा(१)पोऽभ्यवहरित यथैव तस्याभ्यवहरणं
तथाऽपादाय भस्मनः प्रत्येत्योखायामोप्योपतिष्ठतेऽध प्रायश्चित्तीकरोति"
(श० वा० ६.७.४.१४.) इति। ततो विष्णुक्रमवात्सप्रसमासः॥ १॥

बात्सप्रं कृत्वोपस्थेषं चेत्॥ २॥

यदि पुनः परिपाट्या बात्सप्रोपस्थानं तस्मिन्नहत्यापति तत उप-स्थानं कृत्वा विष्णुक्रमवात्सप्रसमासः कार्यः। एवमपि हि श्र्यते-"यदि बात्सप्रीयं वात्सप्रेणोपस्थाय विष्णुक्रमान्क्रान्त्वा बात्सप्रमन्तःकुर्यात्" (श्र० ब्रा० ६.७.५.१५.) इति ॥ २॥

पलाशशाख्या गाहेपत्यं च्युदृहत्यपेत वीतेति पच्छः प्रतिदिशं पुरस्तात्प्रथमम् ॥ ३ ॥

पलाश्चशाखया गाईपत्यस्थानं व्युद्हति "अपेत बीत" (२)इत्यस्य मन्त्रस्य पादेन पादेन प्रतिदिशम् ॥ ३ ॥

(१) ततश्च उदिते सस्मोद्वायः । वाग्विसर्गप्रैषः । व्रतकरणप्रैषः । व्रतकरणं त्रिस्तनम् । वाग्विसर्गः समिदाघानम् । सस्मापोऽभ्यवहरणं प्रायश्चित्यन्तम् । ततो विष्णुकमवात्सप्रसमासः ।

(२) "अपेत ब्वीत ब्वि च सर्पतातः" इति पुरस्तात्। "येऽत्र स्थ

प्राणा ये च नृतनाः" इति दक्षिणतः।

ं "अद्दासमोद्यसान म्यृथिन्य।" इति पश्चात् । "अक्कश्विम मिपतरो स्रोकमस्मै" (वा॰ सं॰ १२-४५) इत्युत्तरत ।

उदीचीं, जाखामुदस्योखां निवपति संज्ञानमिति॥४॥ शाखानिरसनं प्रतिपत्तिः । तेन द्वादशाहे न तावित्रर(१)सनम्। उखां नियपति "संज्ञानम्"(२) इत्यनेन मन्त्रेण ॥ ४ ॥

वण्डलं छात्यति ॥ ५॥

ततस्तेनैव मण्डलं छादयति ॥ ५ ॥ सिकताश्चामेर्भस्मेत्यूववत् ॥ ६ ॥

ततो मण्डलं छाइयति॥ ६॥ परिश्रिद्धिः परिश्रयति पूर्ववदेकविः शत्या चित(३)स्थेति॥७॥ पूर्वविदिति ''ऊर्द्धाः शर्कराः खाते" (का० औ० १६-८-२६)॥ ७॥ मध्येऽर्धबृहतीश्चनस्रो दक्षिणोत्तराः प्राचीरुपद्धाति दक्षिणत उदङ्ख्य सो अग्निरिति प्रत्यूचम् ॥८॥ परिमण्डलमध्येऽर्घवृहतीरिष्टकाश्चतस्रो दक्षिणोत्तररिया प्राग्लक्ष-व्यवस्थित उपद्धाति "अयःसो अग्निः"(४) इति णा दक्षिणतो प्रत्य्चम् ॥ ८॥

सकृत्रित्ये ॥ ९ ॥

नतु चैकदेशानां सङ्जित्यत्वं परिमाणितमाचार्येण 'सङ्जित्ये' इति न वक्तव्यम ?

अन्नोच्यते, तच्च अलोकम्पृणाविषयम् । एतास्तु लोकंपृणाः । अः

(१) इतरेषां गाहंपत्यानासुपवसये विघानात्।

(२) सँज्ञानमासि कामधरण स्मायि ते कामधरणस्मृयात्। अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमासि (वा० सं० १२-४६) ॥

(३) चितस्थ परिचितऽऊद्ध्वंचितः श्रयद्धम् (वा० सं० १२-४६)

(४) अयुक्तो ऽअग्गिनयंस्मिनसोमामिन्द्रः सुत न्द्ये जठरे व्वावशानः । सदृक्षिय म्वाजमस्य च सिश्वस्वान्तसन्तर्यसे जातवेदः॥ (80)

अन्से यसे दिवि व्यन्तेः पृथिन्यां रयदोषधीष्वयस्वा यजत्र । येनान्तरिक्षमुर्वाततन्य स्वेषः स भानुरर्णवो नृवक्षाः॥ (४८) असे दिवोऽअर्णमन्द्वाजिगास्यच्छा देवार ८ऊचिवे विचण्या ये । या रोचने परस्तारस्र्य्यंस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्तऽभापः॥(४९) पुरीष्यासे(ऽअग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः । जुपन्तां व्यवसद्दृहोनमीवाऽरवो महीः ॥ (वा॰ स॰ १२-५०)

तोऽत्राप्राप्तिः। तेन नित्ये एवात्र दुर्छभे कुतः सक्तस्वमिति । अतोऽन्ये वचनाश्चित्ये विधीयेते सक्तस्वं च। लोकम्पृणा एता इति कुत(१) एत- दिति चेत् ? "अथ या लोकम्पृणा मुहूर्तलोकास्ता मुहूर्तानामेव प्राप्तिः कियते" इति हि प्रकृत्याह —"तासामकविश्वाति गाईपत्य उपद्धाति द्वाभ्यां नाशीति थिष्ण्येष्वाहवनीय इतराः" इति लोकम्पृणासंज्ञानात् ।

नतु च प्रवमिष सित अत्रैवाष्ट्रानामिष्टकानामुप्रधाने कते पुनरु च्यते ''अध स्टोकम्पृणामुप्रद्धाति'' (शःवा० ७.१.१.३३) इति । तेन नैता स्टोकम्पृणा इति गम्यते ?

अत्रोच्यते — अष्टानामिष्टकानां मन्त्रान्तरविधानावळोकम्पृणाम नत्रो न भवति । त्रयोदशानान्तु मन्त्रान्तराविधानावळोकम्पृणामन्त्र-प्रवृत्त्यर्थे पठ्यते "लोकम्पृणा लोकमुपद्धाति" इति । तथाऽऽचार्य आह्—"गाईपत्यलोकम्पृणाः(२) प्रथमायां धिष्णीया उत्तमायाम्" (का०श्रो०१७-७-२७. २८) इति ॥ ९ ॥

पश्चात्सिहिते पादमात्र्यौ तिरश्चयौ पुरस्ताच्च ॥ १०॥ उपद्याति सिंहतराब्दश्च संलग्नवचनः ॥ १०॥ अपरेण परिकम्य परिकम्य चयनमिडामग्न इति

पश्चिमे प्रतिमन्त्रमुत्तरतः ॥ ११॥

अपरेण परिक्रम्योत्तरतो व्यवस्थित "इडामग्ने" (३)इति प्रतिमन्त्रं पश्चिमे उपधाति ॥ ११ ॥

चिदसीति पूर्वे दक्षिणतः प्रतिमन्त्रम् ॥ १२ ॥ तैनैव मार्गेण परीत्य दक्षिणतो व्यवस्थितः "चिदासि"(४) इति प्रतिमन्त्रं पूर्वे उपदधाति । अपरयोदिक्षणा प्रथमा, पूर्वयोक्तरा । तिर्थग्ठक्षः णाख्येता भवन्ति, "तिरद्वयौ" इत्युक्तत्वात् ॥ १२ ॥

(१) 'कथम्' इति पाठः।

(२) नेतु गाईपेत्येष्टकाः प्रथमायामित्येव वाच्यं, न लोकम्पृणेति । (३) इडामग्ने पुरुद्देस्य सिन क्षोः शर्दवत्तम्यहृदयमानाय साध । स्याद्यः सुनुस्तनयो व्विजावाग्ग्ने साते सुमितिवर्भूस्वस्स्मे ॥ (५१) अय न्ते योनिक्षास्त्रियो यृतो यातो ऽअरोचथाः।

तञ्जानम्बगनऽआरोहाथानोवर्द्धयारियम् ॥ (वा॰सं०१२-५२) (४) "चिद्धि तया दवतयाङ्गिरस्वद्धुवा सीद्" इति उत्तराम् । "परिचिद्धि तया देवतयाङ्गिरस्वद्धुवा सीद्" इति दक्षिणाम् ॥ (वा०स०१२-५३)

नित्ये प्रतीष्टकं तिरश्चीषु ॥ १३॥

वचनात्॥ १३॥

स्रक्तिषु पादमाश्रीः॥ १४॥

उपघीयन्ते ॥ १४॥

तत्र च-

वूर्वदक्षिणस्यामर्घपचे ॥ १५॥

उवधेये ॥ १५ ॥

शेषेऽष्टी बकाः॥ १६॥

उपघीयन्ते क्षेत्रपूरणाय ॥ १६॥

तिसृषु लोकम्पृणासु मन्त्रो दशसु च॥ १७॥ ह्योर्वा दशस्वेकस्यां च॥ १८॥

लोकंम्पृणानां (१)मन्त्रवचनम् ॥ १८ ॥

चात्वालदेशात्पुरीषं निवपतीन्द्रं विद्वा (२)इति॥ १९॥

अनेन मन्त्रेण ॥ १९ ॥

समिनवलां कृत्वोल्पं निवपति समितमिति ॥ २०॥ गार्ह्यपत्यिचिति पुरीवेण समस्विलां करवोख्यमीम निवपति "समितम्" (३) इत्यनेन मन्त्रेण ॥ २० ॥

(१) लोक म्पृण व्छिद्र म्पृणायो सीद द्ध्वा त्वम । इन्द्रागनीत्वाबृहस्पतिरोस्मन्योनावसीषदन् ॥ (वा० सं० १२-५४)

(२) इन्द्रं व्विरवा ऽअवीवृधन्त्समुद्द्व्यचस ङ्गिरः। रथीतमंदरथीनां व्याजाना ऐसत्पति म्पतिम् ॥ (श० सं० १२-५६)

(३) समित्रः सङ्गरूपयेथा असम्प्रयोशोचिष्ण् सुमनस्यमानी । इवमुजंमाम संन्वसानौ ॥ (५७)

सं ब्वा स्मनाऐसि सं ब्वता समुचित्तान्त्याकरम्। अग्द्रे पुरीष्याधियां भव स्व घऽइषमूर्जी रयज्ञमानाय घेहि ॥(५८) अग्ने त्व म्पुरीव्यो रियमान्म्पुष्टिमाँ २॥ असि । शिवाः क्रस्वा दिशः सन्दोः स्वं य्योतिमिहासदः॥ (५९) भवत हाः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यक्कः हिःसिष्टं मा यक्षपति ज्ञातवेदसी शिवी भवतमद्यनः॥

(बा० स० १२-६०)

रिक्तां नावेक्षेतोखाम् ॥ २१॥

तामेच ॥ २१ ॥

सिकताभिः समं विलां कृत्वा मातेव (१)पुत्रमिति द्विर क्याब्रिसुच्याभ्रिवन्निधायासिश्चाति पयो मध्ये तृष्णीम्॥२२॥ अभ्रिवदित्यरित्तमात्रे गाईपत्यस्योत्तरतः। तृष्णीमिति लौकिकवाः गुवारणप्रतिषेधः॥२२॥

त्रिचितमेके ॥ २३॥

गाईपरयं कुर्वन्ति । तत्र च त्रिभागोत्सेघा रष्टका इति सम्प्रदायः । अस्मिश्च पक्षे प्रथमचितिलोकम्पृणानां पूरणं सृग्यम् ॥ २३ ॥ नैर्ऋतीः कृष्णास्तुषपक्वास्तिस्रोऽलक्ष्मखाः पादमान्ती-सेविष्यकास्त्रोधवक्षेको तथियाोन्तमः कत्वा तथियामनोः

हेविष्यशसहोमवहेशे दक्षिणोत्तराः कृत्वा दक्षिणासुलो-ऽनुपस्पृश्चान्-

रति सप्तद्शाध्याये प्रथमा कण्डिका।

असुन्व(२)न्तिमिति प्रत्यृचं पराचीः ॥ १ ॥ उपद्याति, "ताः पराचीर्छोकमाजः इत्वोपद्याति"(द्या० ब्रा० ७.२.१.८.) इति श्रुतेः ॥ १ ॥

अध्यात्ममंके ॥ २ ॥

उपद्धाति॥२॥

(१) मातेव पुत्र म्यृथिवी पुरीष्यमग्गिन∜स्वे योनावमारुषा । तां व्विद्वेदेवैऋतुभिः संविदानः प्रजापितिर्विद्वकम्मा विमुञ्जतु ॥ (वा० सं० १२-६१)

(२) असुन्त्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येश्यामिन्वहितस्करस्य।
अन्यमस्मदिच्छ सा त ऽदृत्या नमो देवि निर्फते तुन्त्रस्यस्तु॥ (६२)
नमः सु ते निर्फते तिग्मतेजोयसम्मयं व्विचृतायन्धमेतम्।
यमेन स्वं रुयमस्या संव्विदानोत्तमे नाकेऽअधिरोहयैनम्॥ (६३)
यस्यास्ते धोरऽआसञ्ज्ञहोग्मयेषा म्बन्धानामवसर्जनाय।
या न्त्वा जनो भूमिरिति व्यमन्दते निर्फति न्त्वाह म्परिवेद विश्वतः॥
(वा० सं० १२-६४)

नियामावः॥ ३॥

निखशब्देन सादनस्दरोहसौ उच्येते॥३॥ शिक्यक्कमपाद्योण्ड्वासन्दीः परेणास्यति यं त इति ॥४॥ नैर्ऋतीनां "यं त" (१)दत्यनेन मन्त्रेण॥४॥ डदपात्रं निषिच्यान्तरात्मेष्टकसुक्तिष्टन्ति

नमो भूत्वा इति ॥ ५ ॥

आत्मनश्चेष्टकानां चान्तराले उद्पात्रं निषच्य उत्तिष्ठन्ति (२) ''नमो भूत्ये" (३) इत्यनेन मन्त्रेण ॥ ५॥

अनपेक्षमेत्य शालाद्वार्थोपस्थानं निवेशान(४) इति ॥ ६ ॥ अनेन मन्त्रेण । अनपेक्षणं च नैर्ऋतीविषयम् ॥ ६ ॥

> प्रायणीयहविष्कृदन्ते महावेदेस्स्पयाचाः संमर्शनास्त्ररोति ॥ ७ ॥

पूर्वेद्यमहावेदेवत्करकरणान्ताः पदार्था गताः। इदानीं स्पयाधाः सं-मर्शमान्ताः क्रियन्ते ॥ ७ ॥

प्रायणीयान्ते सीरं युनस्यौदुम्बरम् ॥ ८ ॥ तत्र च—

मीलं जिवृद्रज्ञन्यम् ॥ ९॥

भवति ॥ ९ ॥ चड्डादश चतुर्विंशातिं वा युनक्ति ॥ १० ॥ बळीववान् ॥ १० ॥

पूर्वेणोक्तराक्षंदक्षिणामग्निश्रोणिमपरेण ति-छन्युज्यमानमभिमन्त्रयते सीरा युञ्जन्तीति ॥ ११ ॥

- (१) य न्ते देवी निर्ऋतिरावबन्ध पाश ङ्कीवास्वविचृत्यम् । त न्ते व्विष्याम्यायुषो न मद्भाद्यैत म्पितुमद्भि प्रस्ताः॥ (वा० सं०१२-६५)
- (२) बहुवचनात् ब्रह्मयजमानाभ्वर्यवः । "प्रत्येत्याद्विमुपतिष्ठते" (श्राव्याव ७.२.१.१८) इति श्रुतेरते एव ।
 - (३) नमोभूरये येद अकार । (वा० सं० (१२-६५) इतिपादन ।
- ं (४) निवेशनः सङ्गमनो व्वस्नां व्विश्श्वा रूपाभिचष्टे शचीभिः। देवऽदवं सविता सत्यधम्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम्॥(वा०सं०१२-६६

अग्न्यंसमुत्तरं पूर्वेण सीरं युज्यमानं दक्षिणाग्निश्रोणिमपरेण ति-ष्ठन् प्रतिप्रस्थाताऽभिमन्त्रयते "सीरा युञ्जन्ति" (१)इत्योनन मन्त्रेण । योजनं तु प्रधानत्वाद्श्वर्युः ॥ ११ ॥

आत्मनि कूषत्यनुपरिश्रिच्छन् सुफाला

इति प्रत्यूचम् ॥ १२॥

अम्यातमाने क्रषति परिश्चित्संखग्नं "शुन् सुफाछ।" (२)इति ॥१२॥

दक्षिगतः प्राचीम् ॥ २३ ॥

प्रथमां सीताम्॥ १३॥

प्रदक्षिणमितराः ॥ १४॥

प्रत्यृचमुत्तराभिर्ऋगिमः॥ १४ ॥

तृर्णीं तिस्रस्तिस्रः प्रदक्षिणम् ॥ १५ ॥

मध्येसीताः क्रपति ॥ १५॥

तत्र च प्रथमम्--

तिर्धगन्ते ॥ १६॥

ततः--

अक्ष्णपा श्रोण्यासयोः ॥ ५७ ॥ अनुके ॥ १८ ॥

ुनः प्रागनुके ॥ १८॥ ततः—

> श्रोण्यक्षयोः ॥ १९ ॥ दीर्घप्रयुक्तेषु वा पुरुषाः कृषन्ति ॥ २० ॥

(१) सीरा युञ्जान्ति कवयो युगा व्वितन्त्वते पृथक। भीरा देवेषु सुम्तया॥(वा० सं०१२-६७)

(२) शुन्धं सुफाला विक्रयन्तु भूमिः शुन द्वीनाशा ऽअभियन्तु व्वाहैः। शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पलाऽओषधीः कर्चनास्मे(॥६९) धृतेन सीता मधुना समज्ज्यतां विवश्वेदेंवैर सुमतामहिद्धः। ऊर्ज्यस्वती पयसा पिन्न्वमानास्म्मान्त्सीतेपयसाब्भ्याववृत्त्स्य॥ (७०) लाङ्गल भ्पवीरवस्सुशेवः सोमपित्सह। ततुद्वपति गामवि म्प्रफाल्यंश्च पीवशि म्प्रस्थावद्वथवाहणम॥ (७१) काम द्वामदुषे शुक्ष्य मित्राय व्वरणाय च।

काम श्वामञ्जन शुक्र । मनाय जन्यपाय चा इन्द्राबाहित्रवस्था स्पूर्णे व्यजान्त्रयायां चा

(वाव संव १२-७२)

दीर्घप्रयुक्तेषु वा कर्षणं भवति । तत्र च पुरुषाः कृषन्ति । तिर्यः कृष्ययुक्तेष्वध्वर्युरेव ॥ २० ॥

अनुडुहो विमुच्य विमुच्यध्व(१)मिति ॥ २१॥ अनेन मन्त्रेण ॥ २१॥

पशुवदुतसृज्य दक्षिणाकालेऽध्वयंचे ददाति ॥ २२ ॥
पशुवदुतसृज्य उत्तरपूर्वी दिशे प्रति दक्षिणाकालेऽध्वयंवे ददाः
तीति। अत्र च स्यवादेश आचार्येण पदार्थीनदेशार्थः प्रयुक्ती न समाः
नकर्त्वकार्थः। तेनाऽध्वयाँरेच विमोचनोत्सर्गः। दानं तु यजमानस्य।
न हि श्रीतो स्यवादेशः॥ २२॥

सीरमुन्करे कृत्वा

इति सप्तदशाष्याये द्वितीया कण्डिका ।

कुशस्तम्बसुपद्धाति मध्ये तृष्णीम् ॥ १ ॥ अग्निक्षेत्रस्य । 'तृष्णीम्' इति वचनान्नित्याभावः ॥ १ ॥ पञ्चगृहीतेनोद्धस्त्रभिजुहोति सजुरब्द इति ॥ २ ॥ कुशस्तम्बे पञ्चगृहीतेनाज्येनोद्गृह्वन्नभिजुहोति "सजुरब्द"(२)इत्यः नेन मन्त्रेण ॥ २ ॥

चतसृषु चतसृषु त्रींखीतुद्वमसान्निनयति यथाः कृष्टमौदुम्बरेण चतुःस्रक्तिना ॥ ३ ॥

खतसृषु सीतासु यदा त्रयोऽभिनिनीयन्ते तदा स त्रिभागा सी तैकैकस्य भवति। पवं हि श्रूयते-"द्वादशोदचमसान्कृष्टे निनयति"(श्रूव ब्राव ७.२.४.४.) इति । पोडरा च कृष्टास्सीताः । येन क्रमेण कृष्टाः सी तास्तेनैवोदचमसनिनयनं, 'यथा कृष्टम्' इति सुत्रितत्थात् ॥ ३॥

त्रीन्कृष्टाकृष्टयोः ॥ ४ ॥

े निनयत्युद्चमसान्, "श्रीन्कष्टे चाक्रष्टे च निनयति'' (श्र० आ० ७.२.४.६.) इति श्रुतेः। सर्वभेवाग्निक्षेत्रं कृष्टं चाक्रष्टं च ॥ ४ ॥

(१) विमुच्यद्ध्वमण्डन्या देवयानाऽअगन्नमः तमसस्यारमस्य । ज्योतिरापाम॥ (वा॰ सं॰ १२-७३)

⁽२) सज्रूष्ट्रो ऽअयबोभिः सज्रूह्याऽअहणीभिः । सज्जोषसावः दिश्वना द्रश्वोभिः सज्जुः स्ट्रियन्थेन सज्जूब्वैश्वानरऽरह्नया घृतेन स्वाह्य ॥ (चा० सं० १२-९४)

तत्र निनयने माप्त आह—

कृष्टमात्रे वा ॥ ५॥

निनयति । क्रष्टपरिच्छित्तं यद्कष्टं तत्क्रप्टमात्रम् । तदेव क्रष्टं चा कृष्टं च । यानत्क्रप्टपरिच्छित्रं तावत्क्रप्टम् , अक्रप्टत्वाच्चाक्रप्टमिति । कृ ष्टे पुनर्यक्षमाणे कृतत्वादोषप्रसङ्गः ॥ ५ ॥

तस्मिन्सर्वीषप्रमाचपत्वेकवर्जमभोजनं तस्यो

च्छ्वासात्॥६॥

तिस्मश्चमसे सर्वोषधमावपति एकं वर्जायित्वा । तस्य चामोजनं यावर्जावम् ॥ ६॥

या ओषधीरिति तृचैर्वपत्युद्पात्रवत् ॥ ७ ॥ "या ओषधीः" (१)रित तृचैः उद्यात्रवदिति तिस्मिस्तिस्मि

(१) या ऽओषधीः पूर्वा जाता देवेन्म्यस्त्रियुग म्पुरा। मनेजु बन्ध्रणामह्रशातन्थामानि सप्त च ॥ (७५) शत म्ब्बो ऽअम्ब धामानि सहस्रमुत वो रहः। अधा शतकस्वो यूर्याममम्मे ऽअगदङ्कृत ॥ (७६) ओष बीः प्रातिमोदव्धवम्पुष्पवतीः प्रस्वरीः । अश्यवाद्यव सजित्वरीवर्वीवयः पारियण्यः॥ (७७) ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुपव्यवे। स्रतेयमस्य क्षां व्यास ऽआत्मानन्तव प्रव ॥ (७८) अश्रवस्थे वो निपद्न म्पण्णें वो व्वसतिब्कृता । गोमाजऽहात्किलासथ यृत्सनवय पृहषम् ॥ (७९) यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव । विष्यः सऽउच्यते भिषग्यक्षोहामीव्यवातनः ॥ ८०) अध्यावती ऐ सोमावती मुर्जं वन्ती मुद्रोज सम् । आवित्ति सन्वीऽओषधीरस्माऽअरिष्ठतातये ॥ ८१) उच्छ्याऽओवधीना द्वावो गोष्टादिवेरते। घनः सनिष्यन्तीनामात्मान न्तव पृष्ठव ॥ (८२) र्ष्क्वतिर्नाम वो माताथो यूपण स्थ निष्क्रतीः । सीराः पत्रज्ञिणी स्थन यहामवति निष्क्रथ ॥ (८३) अति विश्ह्याः परिष्ठा स्तेनऽहव व्यज्ञमञ्जूः। ओषवीः प्राचुक्यब्युप्रीतिकञ्च तन्त्रोरपः ॥ (८४)

र्कंग्निश्चतस्यु चतस्यु सीतासु वर्णते । ततश्च अत्रापि प्रत्युर्व सित्रभागा सित्रभागा सीतेति । इष्टमात्राणि तु त्रिभागन्यूनानि त्रीणि त्रीणि । उद्कासेकेप्येवमेव चमसानाम् ॥ ७ ॥

सोमनिवपनाद्यातिथ्यहविष्कृतः कृत्वाऽऽहवनीयपः

रिश्रितोऽभिमन्त्रपते चितस्थेति॥ ८॥

प्रायणीयाया वेदयोक्रविमोकान्ते सीरयोजनादि छनम्। घ्रौवस्य ह्याज्यस्य विनियोगविधानात्तत उत्तरासु प्रतिपत्तिस्वसमाप्तास्वेव सोमनिवपनं कृतम् । इहापि तद्वदेव सोमनिवपनाद्यातिश्यहविष्कृतः कृत्वा आहवनीयपरिश्रितोऽभिमन्त्रयते"चितस्थ"(१)इत्यनेन मन्त्रेण॥८॥

सप्तस्य वा ॥ ९॥

अविशेषस्य विशेषस्यवस्थापनन्यायात्मस्वतिवेत्युक्तम् ॥ ९ ॥ लोगेष्ठकाः स्प्येनाहृत्य बहिर्वेदेरन्कान्तेष्पद्धाति तिष्ठनमा मा हिश्वीदिति (२)प्रत्यृचं प्रतिदिशं पुरस्ताः स्प्रथमम् ॥ १० ॥

आहत्योपद्याति ॥ १० ॥

गृदिमा ब्वाजयन्नहमोषधीर्हस्तऽआदघे । आत्माय्हमस्य नदयति पुरा जीवग्रमो यथा ॥ (८५) यस्योषधीः प्रसर्वधाङ्गमङ्ग म्यरूपकः। नतो य्हमं व्विवाधवृद्वऽउग्रमे मद्धमग्रीरिव ॥ (८६) साकं यहम प्रपत चाषेण किकिदीविना । साकं व्वातस्य द्वाज्ज्या साकं भ्रष्य निहाक्या ॥ (८९) अन्या वोऽअन्यामवरवन्यान्यस्याऽउपावत । ताः सर्वोः संविव्यानाऽद्द् म्मे प्रावता व्यवः ॥ (८८) याः पिलनीय्गेऽअफलाऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः । यहस्पतिष्प्रस्तास्ता नो मुखन्त्वहसः ॥ (वा०स०१२-८९) (१) चित स्थ परिचितऽऊद्ष्वंचितः श्रयद्ध्वम् ।

(वा० स० १२-४६) (२) मा मा हिं¦सीजानिता यः पृथिन्त्या यो वादिव¦सस्यवस्मी न्त्यानद् । युरुश्चापश्कान्द्राः प्रथमो जजान करूमो देवाय हविषा व्विवेम॥ (१०२)

अध्ययावर्तस्य पृथिवि यश्चेन पयसा सह । स्वपा न्वेऽअभिनीरेषितोऽबरोहत् ॥ (१०३)

उत्तरापरस्याः पञ्चात् ॥ ११ ॥

उत्तरा परस्याः दिश आहत्य पश्चादुपदधाति "स न सम्प्रतिपश्चा-दाहरेन्नेचक्रपधाद्गसमाहराणि" (श॰वा॰ ७.३.१.२२,) इति निषिध्य "इत इवाहरति" (श॰वा॰ ७.३.१.२२;) इत्युक्तत्वात् ॥ ११ ॥

उत्तरस्याः सिकताः प्रमाष्टिं जहामि (१)संदिमिति ॥१२॥ अनेन मन्त्रेण। तत उपद्याति॥ १२॥

उत्तरवेदिं निवपति चत्वारिः। शत्यदां युगमात्रीं वा सर्वतः कुशस्तम्वे ॥ १३॥

छादमान्तां करोति॥ १३॥

अग्ने तवेति सिकतान्युष्य च्छादयत्यात्मानम् ॥१४॥ "अग्ने तव" (२)श्त्येनन मन्त्रेण सिकतान्युष्यछादयत्यात्मानम् ॥१४॥

> अगने यसे शुक्कं व्यवस्तं व्यक्त्यं व्यवस्तं व्यवस्तं व्यवस्तं । तदेवेक्क्यो भरामसि ॥ (१०४) इवमृज्जंमहमितऽवादसृतस्य योति म्महिषस्य धाराम् । व्या मा गोषु व्यिशस्या तन्तुषु ॥ (वा० सं० १२-१०५) इति पूर्वादिक्रमेण प्रस्यूचमुपद्याति ।

(१) जहामि सेविमनिशममीवाम् ॥ (वा० सं० १२-१०५)
(२) अग्ने तव १अवो व्वयो महि ब्याजन्तेऽअर्धयोग्विमावसो ।
बृहद्मानो शवसा व्वाजमुक्वथ्य न्दधासि दाशुष कवे ॥ (१०६)
पावकवर्ष्याः शुक्रवर्ष्याऽअन्नवर्ष्याऽउदियपि भावना ।
पुत्रत्रो मातरा व्विचरन्तुपावासे पृणाक्ष रोदसीऽउमे ॥ (१०७)
ऊज्जीनपाज्जातवदः सुशस्तिमम्मन्दस्व घीतिमिहितः ।
त्वेऽदयः संन्दधुद्भृंशवर्षसादश्चत्रेत्रयो व्यामजाताः (१०८)
इरज्यक्रग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायोऽअमस्यं ।
स दर्शतस्य व्वपुषो व्वराजास पृणाक्ष सानास इक्तनुम ॥ (१०६)
इष्कर्तारमद्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्त्रशाससोमदः ।
राति व्वामस्य सुभगा म्महीमिष न्दधासि सानसिश्वरियम्॥ (११०)
ऋतावान म्महिषं व्विद्वद्वदर्शतमग्निश्वम्माय दिघरे पुराजनाः।
श्वत्वण्णीसप्त्रध्वस्तम त्वा गिरा दैव्वयम्मानुषा युगा ॥सं०(१२०-१११)

आप्याय(१)स्वेति सिकतालम्भनसुग्स्याम्॥ १५॥

न्युप्तानामेव ॥ १५ ॥ आतिथ्यदोषाचोषसदः कृत्वा रोहिते चर्मण्यानहुहेडन्तः

पाल पुरस्तादिष्टकाः करोति प्रथमचिते।॥ १६॥ वैकृतावसरे प्राकृतानुवृत्यर्थम् 'आतिश्यरोषाद्योपसदः कृत्वा' इत्यु पुनराग्निकमेचोच्यते-'अन्तःपास्य पुरस्तादिष्टकाः करोति

प्रथमचितेः । प्रथमचितिसम्बन्धिन्यः ॥ १६ ॥

इतरासां च चितीनां स्वयमातृण्णाः॥ १७॥ हतरासां च स्वयमातृण्णाः ॥ १७॥

मत्या च ॥ १८ ॥

करोति॥ १८॥

आज्ये न्यज्य कुशायाणि तृष्णीं प्रोक्षति खेतेऽइवे पुर स्तासिष्ठति इवेताभावेऽइवेतेऽइवाभावेऽनडुहि ॥१९॥

कुशाग्राण्याज्ये न्यज्येष्टकाः प्रोक्षति ॥ १९ ॥

अग्निभ्यः प्रहियमाणेभ्योऽनुवाचयति ॥ २०॥

अग्निभ्यः प्रहिसमाणेभ्योऽनुबृहीत्येवम् ॥ २० ॥ त्रिरुक्तायामदवपूर्वी चिति हत्वा पुन्छाहाक्ष-

णां निद्धाति ॥ २१॥

विरक्तायां प्रथमायामृचि अर्वपूर्वी चिति हत्वा अग्निपुच्छाद् दक्षि णों निद्धाति॥ २१॥

तिथिनादवमारोहयन्युत्तरपक्षमपरेण॥ २२॥

स्वश्रद्धाभिहितत्वात्प्रदेशस्य तीर्थशब्दोपादानमन्यत्राप्यनेनैवा रोहणावरोहणं यथा स्यादिति ॥ २२ ॥

पुरस्तात्पआवैके ॥ २३ ॥

अद्वमारोहयन्ति। सं चायं विकल्पोऽदवविषय एव ॥ २३ ॥

(१) आव्यायस्य समेतु ते व्यिद्वतः सोम व्युक्तण्यम् । भवा व्याजस्य सङ्गर्धे ॥ (११२) स न्ते पयात्रींस समु यन्तु ब्वाजाः सं ब्रबुषणयान्त्यभिमातिषाहः । आप्यायमानोऽअमृतायसोमदिविद्श्रवाॐस्युत्तमातिविष्द्य ॥ (वा० सं० १२-११३)

अनुयजुःकृष्टं परिणयत्युत्तरतः प्रथमम् ॥ २४ ॥ अञ्चम् ॥ २४ ॥

प्रत्यश्रमागतं चितिमवद्याप्य परिणीयोतसः

जित पशुवत्॥ २५॥

प्रत्यञ्चमागतमस्वं चितिमवद्राप्य परिणीयोत्स्जति पशुवत् उत्त-१ रपुर्वो दिशम् ॥ २५ ॥

उत्तरवेदियोक्षणाद्यासम्भारनिवपनात्कृत्वोत्तरवेदिम-परेण तिष्ठन्यजमानो मयि(१) गृह्णामीति जपति ॥२६॥

"आरुह्याग्निमौत्तरवेदिकं कर्म कृत्वात्मक्षाग्ने गृह्णीत" (शिंवा ७.३.२ १७) इति श्रुतेः । एवं च व्याघारणान्तमेव क्रियते न सम्भारिनः वपनिमिति । तथा वक्षत्याचार्यः "पैतुदारवाद्यत्रके" इति । अग्न्यर्थत्वात्सम्भाराणां तत्रैव निवपनिमिति । 'यजमानो जपति' इति चोत्तः रपदार्थार्थम् । इह प्रत्यगाशीर्योगादेव प्राप्तिः ॥ २६ ॥

सत्यसाम गायति ॥ २७ ॥ इति सप्तदशास्याये तृतीया कण्डिका ।

पुरकर्पणसुपद्धाति स्तम्वे पूर्ववत् ॥ १ ॥

प्रकृतत्वात्तदेव। "पूर्ववत्"(२) इति च मन्त्रो लभ्यते विमार्जनं च॥१॥

तिस्मन्द्वसमधः पिण्डं ब्रह्म(२) जज्ञानामिति ॥ २ ॥

अनेन मन्त्रेणोपद्धाति हिरण्यम् । दक्मोऽपि च स एव ॥ २ ॥
उत्तानं प्राश्च हिरण्यपुद्धं तस्मिन्हिरण्यगर्भे इति ॥ ३ ॥

मामु देवताः सचन्ताम् (वा० सं० १३-१)

⁽१) मिय गृह्वास्स्यग्येऽअग्गिः रायस्पोषाय सुष्वजास्त्वाय सुवीर्ट्याय

⁽२) ततोऽध्वर्युः कुशस्तम्बोपरि कमिलनीपत्रमुपदघाति। 'पूर्वः वत्' इति उखासंभरणवत् तेन "अपां पृष्ठम्'' (वा० सं० १३-२) इति पादत्रयात्मकमन्त्रेण उपघानं, ''दिवो मात्रया" इति पादेन तस्य मार्जनम्।

⁽३) ब्रह्म जञ्जान मध्यथम मपुरस्ताहि सीमतः सुरूचे। खेनऽआः वः। स बुध्व्याऽउपमाऽसस्य व्विष्ठाः सतक्ष्य गोनिमसतश्च विववः॥ (वा० सं०१३-३)

तस्मिन्छक्मे प्राञ्चमुत्तानं हिरण्यपुरुषमुपद्धाति "हिरण्यगर्भः" (१)इत्यनेन मन्त्रेण ॥ ३ ॥

पुरुषे चिन्न साम गायति ॥ ४ ॥ सप्तमीनिर्देशादालन्थे पुरुषे चित्रलिङ्गमन्त्रे साम गायति ॥ ४ ॥ पूर्वेणापरीत्योऽतः ॥ ५ ॥

"तमुपधाय न पुरस्तात्परीयात्" (श० ब्रा॰ ७-४-१-२४) इति वचनात् ॥ ५ ॥

डपतिष्ठते यजमानो नमोऽस्त्वि(२)ति ॥ ६॥ पुरुषम्॥ ६॥

उपविदय पश्चगृहीतं जुहोति पुरुषे कृणुष्व (२)पाज इति प्रत्यृचं प्रतिदिशं परिसर्पम् ॥ ७ ॥

(१) हिरण्यगर्काः समवर्त्तताग्ये भृतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्। स दाधार पृथिवी न्द्यामुतेमा ङ्कस्ममै देवाय हविषा व्विधेम॥ (वा० सं १३-४)

(२) नमोस्तु सप्पैंब्स्घो ये के च पृथिवीमनु।
येऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेब्स्यः सप्पब्स्यो नमः॥(६)
या ऽइषवो यातुधानानां य्ये वा व्यनस्पतीः रेनु।
ये वावटेषु शेरते तेब्स्यः सप्पैंब्स्यो नमः॥(७)
ये वामी रोचने दिवो ये वा सुर्यस्य रिश्मिषु।
येषामप्ससु सदस्कृत न्तेब्स्यः सप्पैंब्स्यो नमः॥(वा० सुं० १३-८)

(३) क्रणुष्व पाजः प्रसिति च पृश्यों य्याहि राजेवामवा २॥ ऽइभेन तृष्वीमनु प्रसिति न्द्दूणानोस्तासिव्विद्ध रक्षसस्तिपष्ठैः॥ (९) तव ब्यमास ऽथाशुया पतन्त्यनुस्पृश धृषताशोशुचानः। तप््षेष्ण्यग्ने जुह्वा पत्ङ्गानसन्दितो व्विस्त व्विष्ण्वगुल्लकाः॥(१०)

प्रति स्परो व्विस्त त्णितमो भवा पायुर्वियशो ऽश्वस्याऽशदब्ब्धः।
यो नो दूरेऽश्रधद्या हे सो योऽश्वस्यग्ने मा किष्ठे व्यथिरादधर्षीत् ॥(११)
उदग्ने तिष्ठ प्रस्यातमुख्य न्यमिन्त्रार् ॥ ओषतात्तिग्म हेते।
यो नो ऽश्वराति समिधान चक्रे नीचात न्ध्रक्श्यतस श्र शुष्क्रम् ॥ (१२)
ऊद्दुर्दो भव प्यतिविद्धाद्धास्मदाविष्कृणुष्य दैव्यान्यग्ने।
अव स्थिरा तमुहि यानुजूना ञ्जामिमजामि स्प्रमृणीहि शस्त्रून्॥
(वा० सं० १३-१३)

उपवेशनग्रहणाच यजमानो जुहोति। द्वादशाहे चैकः कर्ता। पुरुषे जुहोति प्रत्यृचं स्टप्ता स्टप्ता॥ ९॥

प्रत्येत्व दक्षिणतः॥ ८॥

अवस्थितो जुहोति॥ ८॥

पञ्चात्मयमान्त्ये ॥ ९ ॥

पश्चात् प्रथमान्त्ये होमकर्मणी । पश्चात्प्राङ्मुखः ॥ ९ ॥ पुरुषमवच्छाच्योरसाऽस्पृष्टं बाह्वोः प्रापणान्ते लिखति॥१०॥ अस्पृष्टं पुरुषमवच्छाचोरसा बाह्वोः प्रापणान्ते लिखति । स चायं

याजमानः पदार्थः, प्रमाणत्वात् ॥ १०॥

तत्र स्रुपधानं प्राच्योः ॥ ११ ॥

तत्र परिलेखयोः स्हबोहपधानं प्राच्योः प्रागत्रयोः ॥ ११ ॥ कार्ष्मर्थमधीं दक्षिणतः पाणिमात्रपुष्करां बाहुमात्रीं पादमात्रीं वा सामध्यीत् चृतपूर्णामग्रेड्य्वोति ॥१२॥

तत्र परिलेखयोः स्हचोरुपधानं प्रागम्रयोः काष्मर्यमयीं दक्षिणतः पाणिमात्रपुष्करामिति तन्मात्रं स्हचः पुष्करमुक्तम् । बाहुमात्रीमिति परिमाणत्वात्स्रुचम् । पादमात्रीं वा । कुत पतत् ? आस्नातसामर्थ्यात् । 'पादमात्रीः प्रथमायां चोत्तमायां च चित्योरुपदध्यात्'' (द्या ब्रा० ८-७-३-१७) इति । यद्येवं पादमात्रीमेव । तां च पृतपृणीम् "अग्ने द्यां' (१) इत्यनेन मन्त्रेणोपदधाति ॥ १२ ॥

एवमौदुम्बर्मिस्तो दिविषुणीमिन्द्रस्य (२)त्वेति॥ १३॥

अनेन मन्त्रेण ॥ १३ ॥

तिरश्रयाचेके ॥ १४॥

प्राच्या वेति विकल्पः। अर्धपये चैते भवत इति सम्प्रदायः॥१४॥ स्वयमातृण्णां पुरुषे ठाकरां छिद्रां भ्रवासीति ॥ १५॥ स्वयमातृण्णामिष्टकां पुरुषे उपद्धाति, शर्करां छिद्रां "भ्रवासि"

(बा० सं० १३-१४,१५)

⁽१) अगनेष्ट्रा तेजसा सादयामि। (वा० सं० १३-१३)

⁽२) इन्द्रस्य त्वीजसा सादयामि॥ भुवो युज्ञस्य रजसम्ब नेता युज्ञा नियुद्धिः सवसे शिवाभिः। दिवि मुर्ज्ञान न्द्धिषे स्वषां जिह्नामगने चरुषे हञ्यवाहम्॥

(१) इस्यनेन मन्त्रेण ॥१५ ॥ भूरित्येतस्याः साम गायति ॥ १६ ॥ आलम्य, सप्तम्युपदेशात् ॥ १६ ॥

अन्यत्रापि व्याहृतिषु ॥ १७ ॥

अतोऽन्यत्रापि स्वयमातृण्णासु व्याहृतिषु साम गायति । "अध स्वयमातृण्णासु सामानि गायति" (श० ब्रा० ८-७-४-१) इति प्रकृत्य "स वै भूभुवःस्वरित्येतासु व्याहृतिषु गायति" (श० ब्रा० ८-७-४-५) इति आह । सुत्रे च बहुवचनं पृविपेक्षम् ॥ १७ ॥

मूलाग्रवतीं दूवीं तस्यां पुरस्ताद् भुमिपासां

काण्डा(२)त्काण्डादिति ॥ १८ ॥ तस्यां स्वयमातृण्णायां यथा भवत्यर्धमर्धे च भूमौ तथोण्घेया॥१८॥

पूर्वी पृत्रीमुत्तराः ॥ १९॥

इष्टका उपद्याति॥ १९॥

यास्त इति द्वियजुषं द्वितीये ॥ २० ॥ "यास्त" (३)इत्यनेन मन्त्रेण द्वितीये लोके उपद्याति ॥ २० ॥ 'द्वितीये' इति कृत एतत् १

(१) श्रुवासि घरुणास्तृता व्विश्ध्वकम्मणा । मा स्वा समुद्गुऽउदुद्धधीन्नमा सुपण्णीव्व्यथमाना पृथिवी न्दुदृहह (१६) प्रजापतिष्ट्वा सादयस्वपा म्युष्ठ्ठे समुद्गूस्येमन् । व्व्यवस्वती म्प्रथस्वती म्प्रथस्व पृथिव्व्यसि ॥ (१७)

भूगिस भूमिरस्यदितिरसि व्विश्वधाया वित्रश्वस्य भुवनस्य धार्त्री।
पृथिवी य्युच्छ पृथिवी न्दुह्रह्र पृथिवी ममा हिहुसोः॥ (१८)
व्विश्वस्मे प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्यतिष्हायै चरित्त्राय।
अग्निब्धामिपातु मह्य्या स्वस्त्या च्छिद्दिषा शन्तमेन तया
देवतया ङ्गिरस्वद्भुवासीद॥ (वा० सं०१३-१९)

(२) काण्डास्काण्डास्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि । पना नो दूर्व्वे प्यतनु सहस्रोण शतेनच ॥ (वो० सं० १३-२०)

(३) यास्ते ऽअगने सुर्ये हवो दिवमातन्त्वन्तिर हिम्मभिः। ताभिन्नी ऽअद्द्य सर्व्वामी हवे जनाय नस्कृषि॥ (२२) या वो देवाः सुर्ये हवो गोष्वश्वेषु या दवः। इन्द्रागनी ताभिः सर्व्वामी रूचन्नो घत्त बृहस्पते॥ (वा०सं० १३-२३) उत्स्वलस्य रेतःसिग्बेलापामरात्रमात्रभुतेः॥ २१॥

उल्लंखमुसले हि प्रकृत्याह-"ते रेतःसिचोर्चलयोपद्धात्यरिक्तमाः नेऽरिक्तमात्राद्धन्नमद्य ते" (श॰ त्रा॰ ७-५-१-१३-) इति श्रुतेः । रेतःसिचोर्द्वियज्जबश्चानन्तर्यमुक्तम् "ते अनन्तर्हिते द्वियज्जब उपः द्धाति" (श॰ त्रा॰ ७-४-२-२४) इति । तेन द्वियज्जबो द्वितीये लोके उपधानम् ॥ २१ ॥

बिराट् स्वरा(१)डिति रेतः सिचौ प्रतिमन्त्रम् ॥ २२ ॥ उपद्याति ॥ २२ ॥

प्रजापति(२)रिति विश्व उद्योतिषम् ॥ २३ ॥ उपद्याति ॥ २३ ॥

ऋतव्ये मधुश्च(३) माधवश्चेति ॥ २४॥ उपधीयेते॥ २४॥

अवाहासी(४)त्यबाहाम् ॥ २५ ॥

उपद्याति ॥ २५ ॥

स्वयमातृण्णारेतःसिण्विद्वज्योतिर्द्धन्याषादासु लच-

णानि कुरुते रज्ज्वां वेलार्थानि ॥ २६ ॥ उपरिष्ठादेलायाः प्रयोजनमास्त ॥ २६ ॥

कूमें दिधमधुचुतैरनिक मधुवाता(५) इति ॥ २७॥

⁽१) विवराङ्ज्योतिरधारयन्स्वराङ्ज्योतिरधारयत्॥(वा॰सं०१३-२४)

⁽२) प्रजापतिष्टा सादयतु पृष्ठे पृथिव्या उउयोतिष्मतीम् । विवश्यस्ममे प्राणायापानाय व्ययानाय विवश्य व्ययोतिर्ध्ने च्छ । अग्निनच्ट्रेधिपतिस्तया देवतयाङ्गि रस्वद्श्रवासीद् ॥ (वा० सं० १३-२४)

⁽३) मघुश्च माधवश्च व्वासिन्तकावृत् ऽअग्रेरन्तः स्त्रेषोसि कल्पेता न्द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषघयः कल्पन्तामग्रयः पृथङ्मम उज्यै-ष्ठ्याय सञ्जताः। येऽअग्रयः समनसोन्तरा वावापृथिवीऽइमे । व्वास-न्तिकावृत्ऽश्रमिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवाऽश्रमिसंविवशन्तु तथा देवतः याङ्गिरस्वद्धुवे सीदतम्॥ (वा० सं० १३—२५)

⁽४) अषाढ़ासि सहमाना सहस्वारातीः सहस्वपृतनायतः। सहस्र वीर्थ्यासि सा मा जिन्न्व॥ (वा० सं० १३—२६) (५) मधुव्याताऽऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः।

मन्त्रेः॥ २७॥ अर्जिमात्रेऽषाढां दक्षिणेनावकासूपरिष्टाच पुरुषमभिमुखम् इति सप्तदशाध्याये चतुर्थी कण्डिका।

अपां गम्मन्निति तिस्भिः ॥ १॥

अवाढादक्षिणतोऽरितमात्रे देशेऽवकातु कूर्ममुपदधाति पुरुषमभि मुखम् । उपरिष्ठाञ्चावका भवन्ति । अवकाशब्देन सेवालमुच्यते । "अपं गम्भन्" (१) इति तिसृभिस्तमुपदधाति ॥ १॥

घद्दयति सध्यमया॥ २॥

क्रचा चालयति॥२॥ उत्वलसुसले स्वयमातृण्णामुत्तरेणारितमात्रेऽग्री दुम्बरे प्रादेशमात्रे चतुरश्रमुख्यलं मध्यसङ्गृहीतमृद्धे वृत्तं मुसलं दक्षिणमुल्खलाबिष्णोः(२) कर्माणिति ॥३॥ 'अथोलूबलमुसलेऽउपद्याति" (श० बा० ७-५-१-१२) हति

'अथालूबलमुसलऽउपद्वात (स्व मान प्राचित प्राचत प्राचित प्राचित प्राचित प्राचित प्राचित प्राच प्राचित प्राचित प्राचित प्राचित प्राचित प्

माद्वीर्त्तः सन्त्वोषघीः॥ (२७)
मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पाधिवः रजः।
मधुद्द्यौरस्तु नः पिता॥ (२८)
मधुमान्नो व्वनस्पतिम्मधुमाँ २८अस्तुस्य्येः।
माद्वीर्गावो भवन्तु नः॥ (वा० सं० १३—२९)

(१) अवा द्भम्मत्स्सीद मास्वा स्वयोभिताप्सीन्नमाग्निव्वैश्वानरः। अच्छित्रपत्राः प्रजाऽअनुवोक्षस्वानुस्वा दिव्य्या व्वृष्टिः सचताम्॥ (३०)

त्रीन्त्समुद्रान्त्समस्पत्स्वर्गानपा स्पतिव्र्वृषभऽइष्टकानाम् । पुरोषं व्यसानः सुरुतस्य लोके तत्त्र गच्छ यत्त्र पृथ्वे परेताः॥ (३१)

मही द्यौः पृथिवी च नऽइमं व्यंज्ञ मिमिक्षताम् । पिपृता स्रो भरीमभिः॥ (वा॰ सं॰ १३—३२)

(२) दिवण्णोः कम्माणि पश्स्यत युतो व्वतानि पस्परे । इन्द्रस्य युज्ज्यः सखा॥ (वा० सं०१३—३३)

(३) "ते रेतःसिचोर्वेळयोपद्याति "(द्या० ब्रा० ७-५-१-१३) इत्यादिना रेतःसिग्वेळायां दक्षिणोत्तरोपघानविघानादेकळोके इत्योरुपघानम् । तथोश्च पद्यात्वे एकळोके उपघानासंभवात् 'पद्य' इति भेदेन(१) चोपधानं लिङ्गात्। "सक्तसादयति समानं तत्करोति" (श० बा॰ ७-५-१-२५)। यदिह युगपदुपधानं स्थान्न सक्तत्वमुच्येत ॥ ३॥ उत्कृत्वल ऽउस्तां कृत्वोपश्चायां पिष्ट्वा न्युप्य पुर

स्ताद्धुवासी(२)त्युखाम्॥ ४॥

"अथोपरायां पिष्ट्वा लोकमाजमुखां इत्वा पुरस्तादुखाया उपनिवपति" (राष्ट्रा०७-५-१-२८) इति श्रुतिक्रमणानुष्टानम् । लोकमाक्करणोत्तरः कालं मन्त्रवचनम् ॥ ४॥

अग्ने युक्ष्वा(३) हीति प्रत्यृच्यु स्क्वाहुती जुहोत्युखायाम्॥५॥ ऋज्ञम् ॥ ५॥

उपस्थानं वाऽसम्बत्सरभृतिनः ॥ ६ ॥

सम्बन्सरभृतिनो होमः। असम्बन्सरभृतिनः उपस्थानं होमा वा। विकल्पेन हि तस्य श्रवणीमीत ॥ ६॥

भाष्यकारेणोक्तेऽपि अर्धपद्ये पव ते भवतः । किञ्च यत्र सूत्रकृता "पादमात्रीं वा सामर्थ्यात्" (का० श्री० १७-४-१२) इत्यभिहितेऽपि 'अर्धपद्ये चैते भवत इति सपदायः' (का०श्री०१७-४-१४) इति भाष्य- इताऽभिहितम् किमुतात्रार्धपद्यात्वे वाच्यम्। नच तिरश्च्यौ इत्यनेन सुचोर्षपद्यात्वं वक्तं शक्यम् , पुष्कराग्राविवक्षया हि अत्र तिर्यक्तम् । तथा चवाक्यशेषे श्रूयते "तिर्यञ्जो वा इमौ बाह्र" इति । नचु चोलूखलः मुसलयोर्षपद्यात्वे उल्टुखोपधानश्चातिर्वाच्यते, उभयत्रोखोपधानात् । सुत्रं च "उल्लुखल उखां इत्वा" इति ? उच्यते,

उभयत्रोपधानेऽपि भवत्येव ह्युलूखले। उखाया उपधानं तच्छुतिबाधोऽपि नो भवेत्। पद्यात्वे तु तयोरेकवेलालोकैक्यबाधतः। सर्वथा श्रुतिबाधः स्यादितस्ते अर्धपद्यके॥

(१) भेदे मन्त्रावृत्तिः सन्निपातिस्वात्।

(२) ध्रुवासि घरणेतो जञ्जे प्रथममेन्स्यो योनिन्स्योऽअधिजातवेदाः। स गायञ्या त्रिष्टुभानुषुमा च देवेन्स्यो हव्व्यं व्वहतु प्यजानन्॥ (वा० सं०१३—३४)

(३) अग्रे युश्वा हि ये तवाश्श्वासो देव साधवः। अरं व्वहन्ति मन्यवे॥ (३६) युश्वा हि देवहतूमां २॥ऽ अश्वां २॥ऽ अग्ने रथीरिव। नि होता पूर्व्याः सदः॥ (वारु सं०१३—३७)

प्रतिशिरः सप्तसप्त हिरण्यशकलान्मुखे करोति सम्यक्सवन्तीति ॥ ७ ॥

प्रतिशिष्टः सप्त सप्त हिरण्यशकलान्त्रास्यति प्राणायतनेषु मुखे प्रथमं "सम्यक्स्रवन्ति" (१)इत्येनन मन्त्रेण॥ ७॥

उत्तरां ही हो॥ ८॥

मन्त्री प्रतीयात्॥ ८॥

नासिकयोर्ऋचे(२) त्वेति ॥ ९ ॥ मन्त्रद्वयभिधानादेव शकलद्वित्वमधिष्ठानभेदास्य ॥ ९॥

अध्योभीसे(३) त्वेति ॥ १० ॥

श्रास्यति ॥ १० ॥

श्रोत्रयोरभृदि(४)दमिति ॥ ११ ॥

प्रा**स्यति ॥ ११** ॥

सर्वानप्येकस्मिन्नेके॥ १२॥

पकिसम्भिष पशौ सर्वानेव शकलानेक आचार्याः प्रास्यन्ति, "तः देकेऽपि यद्येकः पशुर्भवति पञ्चैव कृत्वः सप्त सप्त प्रत्यस्यन्ति" (श्रवे ब्रा॰ ७-५-२-१०) इति श्रुतेः॥ १२॥

उखायां प्रत्यिश्च ॥ १३ ॥

् पद्मशीर्षाण्युपदघातीति शेषः ॥ १३ ॥ तत्र च—

सहस्रदा इति पुरुषशिर उद्गृह्य मध्ये ॥ १४ ॥ "सहस्रदा''(५) इत्यनेन मन्त्रेण पुरुषशिर उद्गृह्य मध्ये उपधेयम्॥१४॥ अञ्चाट्योरुत्तरतः पूर्वीपरे ॥ १५ ॥

- (१) सम्यक्सवन्ति सरितो न घेनाऽश्वन्तह्रदामनसा पृथमानाः। घृतस्य घाराऽश्रमिचाकशीमिहिरण्ण्य यो व्वेतसो मङ्ग्रोऽशग्येः॥ (वा० सं०१३—३८)
- (२) ऋचे स्वा, रुचे स्वा (वा० सं० १३—३९)
- (३) भासे स्वा, ज्ज्योतिषेत्वा। (बा० सं०१३-३९)
- (४) अभूदिदं व्विश्वस्य भुवनस्य व्वाजिनमग्रेव्वेश्श्वानरस्य च ॥ (वा० सं०१३—३९)
- (५) सहस्रदाऽश्रसि सहस्राय स्वा॥ (वा० सं० १३-४०)

उपधी येते शिरसी, पूर्वमद्वस्यापरमेवः ॥ १५ ॥
गो ऽजयोश्च दक्षिणतः ॥ १६ ॥
वश्चात्पूर्वापरे एव । पूर्व गोरपरमजस्य ॥ १६ ॥
आदित्यं(१) गर्भीमिति प्रतिमन्त्रं मन्त्रक्रमेण ॥ १७ ॥

शिरांस्युपधीयन्ते ॥ १७ ॥ चित्रं देवानामित्यर्धर्चशः स्हवाहृती मध्यमे ॥ १८ ॥

"चित्रन्देवानाम्" (२) इत्येककेनार्घचंशः स्टवाहुती जुहोति, पुरुष-शिरसि, "अथ पुरुषशीर्षमभिजुहोति" (श० त्रा० ७-५-२-२३) इति वचनात्॥ १८॥

बहिवेंगुदङ् तिष्ठन्तुपतिष्ठतऽउत्सर्गेरिमं मा हिः।सीरिति प्रतिमन्त्रम् ॥ १९॥

वहिर्वेशुद ङ्मुखस्तिष्ठन्तुत्सर्गमन्त्रैरुपतिष्ठते पशुशीर्घाणि 'इमं मा हि;सी" (३) इति प्रतिमन्त्रम् ॥ १६॥

- (१) आदित्य जुर्ब्सम्पयसा समङ्घि सहस्रस्य प्रतिमां व्विश्वहृपम् ।
 परिवृङ्घि हरसामाभिमऐस्थाः शतायुष ङ्कुणुहि चीयमानः॥(४१)
 व्वातस्य जृति व्वरुणस्य नाभिमश्व अज्ञानः सरिरस्य मध्ये ।
 शिशु न्नदीनाऐ हरिमद्द्रिवुष्टनमग्रे मा हिः सीः परमे व्योमन॥(४२)
 अजस्य मिन्दु सरुष म्भुरण्युमग्रिमीडे पूर्व्वचित्तन्नमोभिः ।
 अजस्य मिन्दु सरुष म्भुरण्युमग्रिमीडे पूर्व्वचित्तन्नमोभिः ।
 स पर्व्वभिन्नतृशः करपमानोगा स्मा हिः सीरदिति व्विराजम्॥(४३)
 स पर्व्वभिन्नतृशः करपमानोगा स्मा हिः सीरदिति व्वराजम्॥(४३)
 महीऐसाहस्रोमसुरस्य मायामग्ये मा हिःसीः परमे व्व्योमन् ॥(४४)
 योऽअग्वरग्वरेग्द्रमजायत शोकात्पृथिव्व्याऽउत वा दिवस्परि ।
 योऽअग्वरग्वरेग्द्रमजायत शोकात्पृथिव्व्याऽउत वा दिवस्परि ।
 योऽ प्रजा व्विश्वक्रममां जजानतमग्वे हेडः परि ते व्वृणकु ॥
 येन प्रजा व्विश्वक्रममां जजानतमग्वे हेडः परि ते व्वृणकु ॥
 - (२) चित्रत्र न्देवानामुदगादनी कञ्चञ्जिमित्रस्य व्वरुणस्यागनेः। आत्रा द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्ष्यस्यर्थेआत्मा जगतस्त्रस्थुषश्च॥ (वा० सं० १३-४६)
 - (३) इम मा हिं,सीहिंपाद म्पशुं, सहस्राक्षो मेघाय चीयमानः।

 मयु म्पशु मोघमग्रे जुषस्व तेनचिन्न्धानस्तन्न्वो निषीद।

 मयु न्ते शुगृच्छतु यृन्द्विष्मस्त न्ते शुगृच्छतु॥ (४७)

 इम मा हिं,सीरेकशफ म्पशु ङ्कतिक्तदं व्वाजिनंव्वाजिनेषु।

 शीरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्न्वानस्तन्न्वो निषीद।
 १७का०

उलां परिकाममेक ॥ २०॥

एके आचार्या उद्यां परिक्रम्य परिक्रम्येह स्थिता एव तस्य तस्य पशोरुपस्थानं कुर्वन्ति । एवमपि हि श्रूयते — "विपरिकाममु हैक उप-तिष्ठन्ते"(श० ब्रा० ७-५-२-३०) इति विकल्पः॥ २०॥

उपघायोपघाय वा तस्य तस्य यथालिङ्गम् ॥ २१ ॥

'तदेके यं यमेव पशुमुपद्घति तस्य तस्य शुचमुत्सुजन्ति' (शo बा० ७-५-२-२९) इतिश्रुतेः। अस्मिश्च पक्षे प्रागजशिरउपस्थानाः त्पुरुषाहुती इति ॥ २१ ॥

सर्वमन्त्रान् प्येकस्मिनेके॥ २२॥

एकस्मित्रपि पद्युश्चिरसि सर्वमन्त्रानेके आचार्याः प्रयुक्षते॥ २२ ॥

डपधानमन्त्रान्विपरिहर बङ्गिलं प्रथिष्ठं शिरासि ॥२३॥

देशे संलागयति । एतच यद्यकस्मिञ्जिरासि पञ्चकः नेहिरण्यशकः लप्रश्लेपः कृतस्तदैव भवति ॥ २३ ॥

एख च-

इति सप्तद्शाध्याये पश्चमी कण्डिका।

त्वं(१)यविष्ठेति चित्योपस्थानम् ॥ १ ॥

गौर न्ते शुग्रुच्छतु यन्द्रिष्ममस्त न्ते शुग्रुच्छतु ॥ (४८) इमः साहस्रः शतधारमुत्सं क्यच्यमानः सरिरस्य मध्ये। चृत न्दुहानामदिति ञ्जनायाग्ये माहि सीः परमे क्योमन् । गवयमारण्णयमतु ते दिशामि तेन चिन्न्वानस्तन्न्वो निषीद । गवय न्ते शुगुच्छतु य् न्ह्रिष्ममस्त न्ते शुगुच्छतु ॥ (४९) इममृण्णांयुं व्वरुणस्य नामि न्त्वच म्पशूना न्द्विपदाश्चतुष्पदाम्। त्वण्टुः प्रजाना म्प्रथम अनिज्ञमग्ग्ने मा हि,सीः परमे व्वयोमन् । उष्ट्रमारण्ण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्न्वानस्तन्नवो निषीद । उष्ट्र न्ते शुग्रच्छतु य् न्द्रिप्समस्त न्ते शुग्रच्छतु ॥ (५०) अजो ह्युग्नेरजनिष्ट शोकात्सोऽअपश्यज्जनितारमग्त्रे। तेन देवा देवतामग्त्रमायँस्तेन रोहमायन्तुपमेख्यासः। शरभमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्न्वानस्तन्न्वो निषीद । शरभ न्ते शुग्रुच्छतु य न्हिष्म्मस्त न्ते शुग्रुच्छतु ॥ (आ० सं० १३-५१)

(१) त्वं थ्यविष्टु दाशुषो नृं: पाहि श्रृणुघो गिरः। रक्षा तोकमुत त्वमना । (वा० सं० १३-५२) बहिर्वेद्युत्सर्गैरुपस्थानं कृतभ् । तेन 'पत्य' इत्युच्यते । चशब्दादने । त्या । उसापरिक्रमणपक्षेऽ शित्यर्थः ॥ १ ॥

अपरेण स्वयमातृण्णामेत्यापस्याः पश्च पश्चानृकान्ते । रवपां(१) त्वेमान्निति प्रतिमन्त्रम् ॥ २ ॥

"आरुह्यादि जञ्चनेत स्वयमातृष्णां परीत्यापस्या उपद्घाति" (राष्ट्रा ७-५-२-४०) इति । अत्र च प्रत्यमुकान्तं नित्ये भवत इत्युक्तमेवै-कादशस्वेकचोदनासु तन्त्रेणेति ॥ २॥

व्याघारणवत्प्राणभृतः कर्णसहिता दश दश पुरुषः मुपाप्येके रेतःसिश्वेलायां च सर्वतो यथायोगमयम्पुर इति प्रतिमन्त्रम् ॥ ३॥

'प्राणभृत' इतिष्टकानां नाम । ताश्च व्याघारणवद्दक्षिणपूर्वाः सादारभ्य कर्णसिंदता उपद्याति "अयम्पुरः" (२)इति प्रतिमन्त्रम् । तत उत्तराश्चे।णरारभ्य एवमेवोपधानम् । पुनर्दक्षिणाश्चोणरारभ्य एवमेवोपधानम् । पतं चत्वारो दशका उपरिवाः । शिष्टा दश रेतःसिवेळायां यथायोगं समित्रमागेनोपधीयन्ते । पुरुषमुपार्थं वा सर्वासामुपधानम्, "ता हैके पुरुषमुपार्थापद्याति" (श० बा० ८-१-४-१) इति श्वतेः । ततश्च कर्णसिंदता इति विकल्पः॥३॥

द्वितीयमयं पश्चादिति॥ ४॥

⁽१) अपा न्त्वेमन्त्सादयाम्म्यपा न्त्वोद्द्यन्त्सादयाम्यपान्त्वा भरम न्त्सादयाम्यपा न्त्वा उज्योतिषि सादयाम्म्यपा न्त्वायते साद्याम्म्यणांवे त्वा सद्दे साद्यामि समुद्दे त्वा सद्दे साद्यामि सिरिरे त्वा सद्दे साद्याम्म्यपा न्त्वा क्षये साद्याम्म्यपा न्त्वा सिष्ठिष साद्याम्म्यपा न्त्वा सद्दे साद्याम्यपा न्त्वा स्थले साद्याम्म्यपा न्त्वा योती साद् याम्यपा न्त्वा पुरोषे साद्याम्यपा न्त्वा पाथिस साद्यामि गायत्रेण त्वा च्छन्दसा साद्यामि त्रैण्डुमेन त्वा च्छन्दसा साद्यामि जागतेन त्वा च्छन्दसा साद्यामि॥ (वा० सं० १३-५३)

⁽२) अय म्पुरो सुवस्तस्य प्याणो सौवायनो व्वसन्तः प्राणाय नोगा-यत्त्री व्वासन्तो गायज्यैगायत्र ङ्गयत्रादुपार्थशुरूपार्थशोस्त्रिः वृत्तिवृतो रथन्तरं व्वसिष्ठऽऋषिः प्रजापतिगृहीतया स्वया प्राण ङ्गृह्णामि प्रजाब्भ्यः ॥ (वा० सं० १३—५४)

द्वितीयं दशानामुपधानं 'अयम् पश्चात्" (१) इति । अत्र चैके खण्डशो मन्त्रान्प्रयुखते, "पञ्चाशदिष्टकाः पञ्चाशयजू ऐषि" (श॰ बा॰ १०-२-४-८) इति चचनात् । तत्पुनरयुक्तम् , क्यानामपरिसमाप्तत्वात्। कथं तिहि यजुषां पञ्चाशत्वम् ! अप्रयासे नेत्यदोषः। लिङ्गाचा। "कथमस्यैताः सर्वाः प्राजापत्या भवन्तीति"(श० ब्रा०८-१-३-२) इति प्रकत्याह "यदेव सर्वास्वाह प्रजापतिगृहीतया त्व येत्येवमु हास्येताः सर्वाः प्राजापत्या भवन्ति" (श० ब्रा० ८-१-३-२) **इ**ति । तस्मात्स्वकलमन्त्रप्रयोगो न खण्डश इति ॥ ४ ॥

लोकम्पृणादक्षिणाः साद्ध्यामध्यात्प्रदक्षिणमाः नुकान्तात्पूर्वस्मात् ॥ ५ ॥

उपद्याति॥५॥ प्रतित्व दोषम् ॥६॥

पूर्यति ॥ ६॥ पचपुच्छानि पराग्मिरप्ययेभ्योऽघि ॥ ७ ॥ (२)अप्ययेभ्य आरभ्य पक्षपुच्छानि पराग्मिरिष्टकाभिश्चिनोति॥७॥ एव्यमवैत्र ॥ ८॥

सर्ववितिष्वेचं पराग्भिरिष्टकाभिः पक्षपुच्छानां चयनम् ॥ ८॥ मध्ये पुरीषं निवपति पूर्ववत् ॥ १ ॥

पूर्ववदिति मन्त्र (३)उपलभ्यते ॥ ९॥ पूर्वमघीनुकं छादयति॥ १०॥

व्हीचेवा ॥ १० ॥

aa:---

प्रदक्षिणमात्मानम्॥ ११॥

पुरीवेण च्छादयति ॥ ११ ॥

(१) अय स्पश्चाद्विष्ट्यव्ययस्तस्य चश्चव्वेश्वव्ययसं व्वपश्चाः क्षुष्यो जगती व्वाषीं जगस्याऽऋवसममृक्समाच्छुक्रः शुक्राः स्सप्तदशः सप्तदशाद्द्रहेक्प अमद्ग्यिऋंषिः प्रजापतिगृहीतया स्व-या चक्षुर्गृह्यामि प्वजाव्स्यः ॥ (वा० सं० १३—५६)

(२) अप्ययः पक्षपुच्छातमसन्धिः।

(३) इन्द्रं व्विश्थाऽअवीवृधनसमुद्रुव्यचस ङ्गिरः। रथीतमः, रथीनां ब्बाजानाऐसत्पति स्पतिम् (वा० सं० १२—५६)

पक्षपुच्छानि च॥ १२॥

चशब्दात्वदक्षिणं पुरीषेण च्छाद्यति । "दक्षिणं पक्षमथ पुच्छमः थोत्तरम्" (श० त्रा० म-७-३-५) इति ॥ १२ ॥ एवः सर्वत्र ॥ १३ ॥

सर्वीचितिषु इत्यर्थः॥ १३॥

इति सप्तद्शाध्याये पष्टी कण्डिका।

चिति पुरिषयतीमुपतिष्ठते वार्बेहत्याये(१)ति सप्ताभिः ॥१॥
पुरीषवतीग्रहणात यदैव पुरीषवती तदैवोपस्थानं न प्राणिति ॥१॥
अष्टाभिरेके ॥ १ ॥

उपतिष्ठन्ते ॥ २॥

द्राभिवी॥ ३॥

(१) ब्वार्त्रहस्याय शवसे पृतनाषाद्याय ज। इन्द्रस्वावर्त्तयामिस॥ (६८) सहदातु म्युरुहृत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सम्पिणक्कुणारुम् । अभि वृत्त्रं व्वर्द्धमान म्यियारुमपादमिन्द्रतवसा जघन्य॥ (६९)

व्वि नऽइन्द्र मुघो जहि नीचा युच्छ पृतन्त्यतः। योऽअस्माँ र अभिदासत्यघर क्षमया तमः॥ (७०) मृगो न भीमः कुवरो गिरिष्ठाः परावतऽभाजगन्था परस्याः स्कः सः शाय पविमिन्द्र तिगमंदिव दात्र न्ताहि विव सुघो नुदस्व॥ (७१) ब्वैश्वानरोनऽऊतयऽभाप्रयातुपराचतः । अग्मिर्नः सुष्तीरुप॥ (७२) पृष्हो दिवि पृष्ट्वाऽअग्निः पृथिक्वां पृष्हो न्विश्वाऽओषघीराविवेश व्वैष्ट्यानरः सहसा पृष्ट्वाऽअग्यिः सनो दिवा स रिपस्पातु नक्तम् ॥(७३) अश्याम त ङ्काममग्त्रे तवोतोऽभश्याम रियः। रियः सुवीरम्। अश्याम व्वाजमभि वाजयन्तोश्यामध्यम्भ्रमजराजरन्ते ॥ (७४) व्वयन्ते अद्य रिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसापसद्य । युजिष्टठेन मनसा युक्षि देवानस्रेष्टतामन्तमना व्विप्पाऽअग्रे ॥ (७५ धामच्छद्ग्यिरिन्द्रो ब्ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः। सचेतसो व्विश्वेदेवा युज्ञ म्यावन्तु नः शुभे ॥ (७६) त्वं व्यक्तिष्टु दाशुषा नुः पाहि श्रुणुधो गिरः। रक्षा तोकमुत त्क्मना ॥ (वा॰ सं॰ १८—७७)

वेति विकल्पः ॥ ३॥

उपसत्सु पौर्वाहिक्यापराहिक्यन्तरे चयनपुरीषनिवपने॥४॥ कर्त्तव्ये, "अन्तरोपसदौ चिनोति" (श्र० श्रा० १०-२-५-१) इति श्रतेः॥ ४॥

त्रिरइवं परिणीयोपास्तमयं पशुबदुतसुज्य तावत्प्रतिपर्येति ॥ ५ ॥

अस्तमयकाले किः कृत्वोऽभ्यमार्त्रे परिणीयोत्तरपूर्वी दिशं प्रत्युत्सुङ्य तावत्प्रतिपर्यति ॥ ५ ॥

परिणयनमाग्निनिधानात् ॥ ६ ॥

वतन्त्र परिणयनमाञ्चिनिधानादर्वाक्तर्तव्यम् । वतन्त्र यद्यपि बहुमि रहोभिश्चितिः क्रियते तथापि प्रत्यस्तमयं क्रियत पन, विशिष्टकाले अवणात् ॥ ६॥

इयुपसत्के दे प्रथमायां तिस्रो मध्यमायाम् ॥ ७॥ ज्युपसत्के क्रतौ प्रथमायामुपसदि हे चिती उपचीयेते, मध्यमा याश्च तिस्रः॥ ७॥

पश्चगृहीतागुत्तमा ॥ ८॥

उत्तमोपसत्पञ्जगृहीतादि भवति । "उपवस्थीयेऽहन्पातस्विते आदित्ये वाचं विस्ताते वाचं विस्तव पञ्चगृहीतमाज्यं गृह्णीते" (श० ब्रा० ९-२-१-१-) इत्येवमासुपक्रम्य "प्रवार्योपसद्भ्यां प्रचरति" (श० ब्रा० ९-२-१-१८-) इति हि श्रूयते ॥ ८॥ उत्तरासु च॥९॥

उत्तरासु च बहुवूपसत्सु पञ्चगृहीतः द्युत्तमोपसद्भवति ॥ ९ ॥ सपुरीषा षद्स्वेकेका ॥ १०॥

षट्सुपसःसु सपुरीषा चितिरेकेका ॥ १० ॥

द्वादशोपसरके व्यत्यासं चितिपुरीषे ॥ ११॥ द्वादशोपसन्ते कतौ व्यत्यालेन चितिपुरीषे भवतः॥ ११॥

विकण्याचिकादश्याम् ॥ १२ ॥

तत्र चेकादश्यामुपसींद विकर्ण्यादि कर्त्तव्यम् ॥ १२ ॥

चतुर्मोसोपसन्के ब्राद्काह्यः ॥ १३॥ द्वादशभिद्वादशिभरहोभिश्चितिपुरिषे देथे। अन्तयम्पुरीषमेकादशः भिरहोभिर्विकण्योदि च । पञ्चगृहीताद्युत्तम। तु स्थितेव ॥ १३ ॥

षट्ति (इ.स. १८ ।। १४ ।। एतच साम्यास्त्राः प्रमानत्सरे ।। १४ ।। एतच सामर्थास्त्रिसंबासरोपसत्के द्रष्टव्यम् । संबासरोपसत्के हि विशेषं वस्यत्वेव । तथा च तिस्मिस्तिस्तिः प्रदिश्चितिपुरी-पाणि भवन्ति ॥ १४ ॥

तापश्चिते मास्यशिश्वितिपुरीषे चतस्याम् ॥ १५ ॥ चतस्यां चितीनां मासेन मासेन चितिपुरीषे चीयेते । मासेन चि तिः मासेन पुरीषम् । एवमधौ मासाः ॥ १५ ॥

पञ्चम्यामसपता विराजः प्रथमेऽहन् ॥ १६॥ पञ्चम्यां चितौ प्रथमेऽहन्यसपता विराजश्चोपधीयन्ते॥ १६॥

स्तोमभागा अन्वहम् ॥ १७ ॥ चीयन्ते । एवं नवमासा गता भवन्ति ॥ १७ ॥ सासं पुरीषं तृष्णीस् ॥ १८ ॥ एवं दशमासाः ॥ १८ ॥

नाकसन्त्रभृति मासम् ॥ १९॥ एवमेकादश मासा भवन्ति ॥ १६॥

पुरीषश्च ॥ २० ॥

चशब्दान्मासमेव॥ २०॥

उत्तमयोरहोर्विकण्यादि पूर्वे ॥ २१ ॥ अत्रोत्तमयोरहोर्विकण्यादि पूर्वेऽहानि । पञ्चगृहीतायुत्तमा तु स्थितेव ॥ २१ ॥

द्विसाहस्री प्रथमा लोकम्पृणानां पञ्चादादृना ॥ २२ ॥ भवन्ति ॥ २२ ॥

उत्तराध्य ॥ २३ ॥

तःसंख्या भवन्ति ॥ २३ ॥

त्रिसाहस्च्युत्तमा ॥ २४ ॥

उत्तमा चितिः त्रिसाहस्री छोकम्पृणानां भवति ॥ २४ ॥ यक्रास्त्रिखितानां दक्षिणात्तरे मध्य इतरासाम् ॥ २५ ॥

वक्रालिखितानां दक्षिणोत्तर देशे उपधानम्। ऋज्वा लिखितानां च मध्ये। "अध पञ्चमी चितिमुपधाय वेधार्त्रे विमिमीत" (श० झा० १०-२-१-९) इति प्रकृत्य प्रवमेव श्रुतत्वात्॥ २५॥ षट्त्रिश्वाच्छत्या वा तृतीयाष्ट्रादश्वात्या इतराः ॥२६॥ अयमपरो लोकम्पृणानां परिमाणविकल्पः॥ २६॥

गाईपस्यलोकम्प्रणाः प्रथमायाम् ॥ २७ ॥

चितौ विगणियतच्याः॥ २७॥

धिरणीया उत्तमायाम् ॥ २८॥

अपरिभितेष्ठको वा॥ २९॥

अग्निभवति । अयं चापरिमितशब्दोऽपरिमाणवचन इत्युक्तमि च्याम ॥ २९ ॥

प्रथमोत्तमयोः पादमात्रीरतिरिक्ता ॥ ३०॥ प्रथमोत्त मयोश्चित्योर्या अतिरिका सा पादमात्री भवति नातोः

धिकेति ॥ ३० ॥

द्शगणाधिका भिरवोस्करे कुर्यात् ॥ ३१ ॥ गाईपस्याहवनीयावष्टौ च घिष्ण्या इति दशगणाः। अतो या अ धिकास्ता भिस्तोत्करे कुर्यात् ॥ ३१ ॥

इति सप्तद्शाध्याये सप्तमी कण्डिका।

हितायायामाश्विनीः प्रतिदिशम्॥१॥

द्वितीयात्रहणं प्रथमायाः परिसमाप्तिज्ञापनार्थम् । आदिवनीरिति च इष्टकानां संज्ञा। ताः प्रतिदिशमुपर्धायन्ते॥ १॥ रेतः सिग्वेलायामनृकसुत्तरेण पूर्वा द्वितीये॥ २॥

ळोक उपधीयते ॥ २ ॥

दक्षिणा पूर्वेण ॥ ३ ॥

अनुकसुपधीयते ॥ ३॥ अपरा दक्षिणेन ॥ ४ ॥ उत्तराडपरेण ॥ ५ ॥

दक्षिणामुत्तरेण पश्चमी ॥ ६ ॥

अर्धपुद्ये चेत भवतः ॥ ६ ॥

वैचवदेवीः॥ ७॥

वे श्वदेवीरितीष्टकानां संज्ञा ॥ ७ ॥ तासा देशमाह—

पूर्वी दक्षिणेन ॥ ८॥

दक्षिणामपरेण ॥ १ ॥ ग्रपरामुत्तरेण ॥ १० ॥ उत्तरां पूर्वेण ॥ ११ ॥

एवं वैद्वदेविभ्यः प्राणभृतः ॥ १२ ॥ उपधीयन्ते ॥ १२ ॥ प्राणभृद्भ्योऽपस्याः ॥ १३ ॥ उपधीयन्ते ॥ १३ ॥

पूर्ववत्पश्रम्यः सर्वासाम् ॥ १४ ॥

पत्रशाचार्येण लाघवार्थमुपदिष्टम् ॥ १४ ॥

इदानीमुपधानकममाह—

आहिवनीर्ध्वविश्विति(१)रिति प्रतिमन्त्रम् ॥ १५ ॥ उपद्याति ॥ १५॥

शुक्रस्र (२)शुचिश्चेत्यृतव्ये पूर्वयोद्दपरि ॥ १६ ॥ उपधीयेते ॥ १६ ॥

(१) भ्रुविक्षितिद्भुवयोनिद्भुं वासि द्भुवं य्योनिमासीदसाधुया। उक्छ्यस्य केतु म्प्रथम ञ्जुषाणाश्विनाद्ध्वय्यूंसाद्यतामिह त्वा॥(१) कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिक्याः। अभिस्वा रुद्दा व्यसवो गुणन्तियमान्त्रह्म पीपिहि सौमगायाश्विनाद्ध्य-र्य्यू साद्यतामिहस्वा॥(२)

स्वैद्क्षैर्द्क्षिवितेह सीद देवाना ऐसुम्म्ने गृहते रणाय । पितेवैधि स्नवऽआ सुशेवा स्वावेशा तन्त्वा संविवशस्वाश्विनादुर्ग्यू सादयतामिह स्वा॥(३)

पृथिक्याः पुरोषमस्यप्तो नाम ता न्त्वा व्विश्वेऽअभिगृणन्तु देवाः। स्तोमपृष्टा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे दद्वविणायजस्वाश्विनाद्ध्ययू सादयतामिह स्वा ॥(४)

अदित्यास्त्वा पृष्ट्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य घटत्रौ व्विष्ममनी न्दिशाम धिपत्यनी म्सुवनानाम् ।

अभिर्मर्द्रप्स्सोऽअपामसि व्विश्वकरमां तऽ ऋषिरश्विनाषुरयूं सादयता-मिह त्वा॥ (वा॰ सं॰ १४-५)

(२) शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृत् (अग्नेरन्तः इलेषोसि कल्पेता न्धावा-पृथिवी कल्पन्तामाप (अशेषधयः कल्पन्तामग्नवः पृथङ्गम ज्यैष्ट्र्याय सञ्जताः।

वसराध्य ॥ १०॥

ऋतस्याः पूर्वयोरेवोपरि ॥ १७ ॥ वैद्वदेवीः सजूर्ऋतुभि(१)रिति प्रतिमन्त्रम् ॥ १८ ॥ उपर्याति ॥ १८ ॥

उसराख्य ॥ १९॥

चराव्दात्प्रतिमन्त्रम्॥ १९॥

प्राणभृतः प्राणं (२)म इति ॥ २० ॥

प्रतिमन्त्रमुपद्धाति ॥ २०॥

अपः पिन्वे(३)त्यपस्याः ॥ २१ ॥

उपद्रभाति ॥ २१ ॥

वयस्याः पश्च पञ्चानृकान्तेषु मूर्द्धाव्वय(४) इति प्रतिमन्त्रम् ॥ २१ ॥

चेऽअग्नयः समनसोन्तरा दुद्याचापृथिवीऽइमे ।

व्रैष्मावृत्दुऽअभिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवाऽअभिसंव्विशान्तुतया देव

तयाङ्गिरस्वद्धवे सीदतम् ॥ (वा॰ सं॰ १४-६)
(१) सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्द्देवैः सजूर्देवैः वंशोनाधैरप्रये त्वा व्येश्वानरायाश्विनाद्ध्यपू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्व्देवैः वंशोनाधैरप्रये त्वा व्येश्वानरायाश्विनाद्ध्यपू सादयतामिह त्वा सजूर्द्देवैः वंशोनाधैरप्रये त्वा व्येश्वानरायाश्विनाद्ध्यपू सादयतामिह त्वा सजूर्द्देवैः वंशोनाधैरप्रये त्वा व्येश्वानरायाश्विनाद्ध्यपू सादयतामिह त्वा सजूर्द्देवैः वंशोनाधैरग्वये त्वा व्येश्वानरायाश्विनाद्ध्यपू सादयतामिह त्वा सजूर्द्देवैः सजूर्द्देवैः वंशोनाधैर्ययो स्वा व्येश्वानरायाश्विनाद्ध्यपू सादयतामिह त्वा सजूर्द्देवैः सजूर्देवैः वंशोनाधैरण्ये त्वा व्येश्वानरायाश्विनाद्ध्यपू सादयतामिह त्वा ॥ (वा॰ सं० १४-७)

(२) प्राण म्मे पाह्यपान म्मे पाहि व्यथान म्मे पाहि चश्चम्मंऽउ-र्व्या व्विमाहि श्रोत्त्र म्मे श्लोकय॥ (बार्व्संट्रास्ट्र)

(३) अपः पिन्नवौषधीर्ज्ञिन्नव द्विपादव चतुष्पात्पादि दिवो ह्वृ-ष्टिमेश्य ॥ (वा० सं० १४-८)

(४) मूर्ज्ञा व्वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं व्वयो मयन्द्रञ्छन्दो विवर्षः म्मो व्वयोधिपतिश्छन्दो व्विश्वकर्मा व्वयः प्रमेष्ट्ठीच्छन्दो वस्तो व्व- चतस्रः पुरस्तात् ॥ २३ ॥

उपद्याति । तासाञ्च द्वे जङ्का(१)माऽयौ समलोकःयाप्त्यै द्वे चाः ध्यर्धे रोषा अध्यर्धा एव ॥ २३ ॥

दक्षिणत उत्तरतः पश्चात् ॥ २४ ॥ अनेन क्रमेणोपधानम् ॥ २४ ॥ दक्षिणाश्चोणेरधि लोकम्प्रणाः(२)पूर्ववत् ॥ २५ ॥ उपधीयन्ते ॥ २५ ॥

इति सप्तदशाध्याये अष्टमी कण्डिका।

तृतीयायाः स्वयमातृष्णामिद्रामी (१)इति मध्ये ॥ १ ॥

उपद्धाति । तृतीयाग्रहणं द्वितीयान्तप्रश्नप्यर्थम् । तदन्तप्रश्नतेश्च प्रयोजनं पुरीषदानादि भवति । हे प्रथमायां, तिस्रो मध्यमायामिति च ज्ञापनाय ॥ १ ॥

यो विववलङ्कन्दो व्यक्तिव्वयो विशाल ङ्कन्दः पुरुषो व्ययस्तन्द्र ङ्कन्दो व्याग्त्रो व्ययोनाष्ट्रष्ट ङ्कन्दः सिन्धो व्ययश्कदिश्कन्दः पष्ट्ठवाड्वयो बृहती च्छन्द्ऽउक्षा व्ययः ककुष्कन्द ऽऋषभो व्ययः सतोबृहती-च्छन्दः॥ (९)

अनड्वान्न्वयः पङ्किश्छन्दो घेतुर्वयो जगतीच्छन्द्स्य विर्व्यक्ति •दुष्क्रन्दो दित्यबाड्वयो व्विराट्छन्दः पञ्चाविर्वयो गायत्री च्छन्दस्तिः वत्सो व्वयऽउण्णि क्छन्दस्तुर्य्यवाड्वयोतुष्टु प्छन्दः॥(वा॰सं० १४-१०)

- (१) संघेराच्छादनार्थं तु जङ्घादेः परिकरुपनम् । तदुक्तं पुरणकृता "चयनयोगात्त्रिग्याहिणी जङ्घामाज्यध्यर्घा इति ।
- (२) लोकम्पृण०॥ (५४) ता ऽअस्य०॥ (५५) इन्द्रं व्विश्वा०॥ (वा०सं० १२–५६)
- (३) इन्द्रागनी ऽअव्ययमानामिष्टकान्दुद्वशहर्तं य्युवम् । पृष्ठेन द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षञ्च िववाधसे ॥ (११) व्यिश्वकम्मा स्वा साद्यस्वन्तरिक्षस्य पृष्ट्ठे व्ययवस्वतीम्प्रयस्वः तीमन्तरिक्षं य्यच्छान्तरिक्षन्द्वशहान्तरिक्षम्मा हिश्लीः ।

व्यिश्वसमै प्राणायापानाय क्यानायोदानाय प्यतिष्ठायैचरित्राय । ब्वायुष्ट्वाभिषातु मह्या स्वस्त्या स्छद्धिंग शन्तमेन तया देवतयाङ्गिर-स्वद्घुवा सीद् ॥ (वां०सं० १४-१२)

अनृकेषु पञ्च दिश्या वैश्वदेवीवद्राज्यसी(१)ति पतिमन्त्रम् ॥ २ ॥

वत्करणं च रेतःसिग्वेळार्थं दक्षिणामुत्तरेण पञ्चमीत्येवमर्थं च ॥२॥ विञ्चकर्में(२)ति विञ्चज्योतिषमुपरि पूर्वस्थाः ॥ ३॥ उपद्याति ॥ ३॥

उत्तमायां च ऋतव्ये नमस्य नमस्यश्चे(३)ति ॥ ४ ॥ उपधीयते ॥ ४॥

अवकाः कूर्मवत् ॥ ५ ॥

भवन्ति ॥ ५ ॥ इषश्चोजिश्चे(४)त्यपरे ॥ ६ ॥

कतव्ये प्रवापधीयेते । अर्घीत्सेघाश्चैताः, चयनयोगात् ॥ ६ ॥ पूर्वार्घे प्राणभृतो द्ञायुर्म(५) हति प्रतिमन्त्रम् ॥ ७ ॥

(१) राज्यसि प्याची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक्सम्झाडसि प्यतीः ची दिक्स्वराडस्युदोची दिगधिपत्कन्यसि बृहती दिक्॥ (वा०सं० १४-१३)

(२) विश्वकर्मा स्वा सादयस्वन्तरिश्चस्य पृष्ठे उज्योतिष्मतीम् । व्विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय व्विश्व ब्ज्योतिर्थ्यच्छ । व्वायुष्टेचिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्बद्धभुवा सीद् ॥ (वा०सं०१४-१४

(३) नमश्च नमस्यश्च व्वार्षिकावृत्ऽअग्नेरन्तः श्लेषोसि कल्पेता-न्द्यावापृथिवी कल्प्वन्तामाप ऽश्रोषधयः कल्प्यन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्ज्यैष्ठ्याय सम्बताः। ये ऽश्रग्नयः समनसोन्तराद्यावापृथिवीऽइमे ।

ब्दार्षिकावृत्ऽआभकरूपमाना ऽइन्द्रमिव देवाऽअभिसंब्विशन्तु तः या देवतयाङ्गिरस्वदुभ्र्वेसीदतम् ॥ (वा०सं० १४-१५)

(४) इष्योर्जाश्च शारदावृत्ऽअग्ग्नेरन्तः श्लेषोसि कल्पेतान्याः बाषृथिवी कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्गम उज्यै प्रधाय सम्बताः।

ये ऽअग्गनयः समनसान्तरा द्यावापृथिवी इमे ।

्रशारदावृत्ऽअभिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवाऽअभिसंव्विशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वदुभुवे सीदतम्॥ (वा॰सं•१४-१६)

(५) आयुम्में पाहि, प्राणम्मे पाहि, अपानम्मे पाहि, ब्व्यानम्मे पाहि, चक्षुम्में पाहि, श्रोत्रम्मे पाहि, ब्वाचम्मे पिन्न्व, मनो मे जिन्न्व, आक्तमा नम्मे पाहि, ज्ञ्योतिर्म्मेयच्छ ॥ (वा०सं० १४-१७) उपद्धाति ॥ ७॥

छन्दस्या द्वादश हादशाप्ययेषु मा च्छन्द इति प्रतिमन्त्रम् ॥ ८॥

पश्चपुच्छाप्ययेषु छन्दस्या इष्टका द्वादश द्वादश 'मा च्छन्द''(१) इति प्रतिमन्त्रम् उपद्धाति ॥ ८ ॥

वालिक्या लोकं पश्चाच्छिष्ट्या ॥ ९ ॥ याःपश्चादुपधीयन्ते ता वालिक्या लोकस्य पुरस्तात् शिष्टुा ॥९॥ वालिक्याः सप्त पुरस्तात् ॥ १०॥

उपद्धाति ॥ १० ॥

प्राणभुद्भयो वापराः ॥ ?१ ॥

वा पूर्वा इति विकल्पः ॥ ११ ॥

बाद्वाभ्योऽपरास्तु ॥ १२ ॥

द्वादशभ्यस्त्वपरा एव ॥ १२ ॥

मुर्घासि राडि(२)ति प्रतिमन्त्रम् ॥ १३॥

उपधीयन्ते ॥ १३ ॥

यजुष्मतीश्च जानन् ॥ १४ ॥

उपद्याति, "यां कां च यजुष्मती। मेष्टकां विद्यात्तां मध्यमायां चिता उपदध्यात्"(श० ब्रा० ८-७-२-१८) इति वचनात् ॥ १५ ॥

(१) माच्छन्दः प्रमाच्छन्दः प्रतिमाच्छन्दो ऽञ्चलीवयश्चन्दः पः ङ्किश्छन्द ऽउष्णिक्छन्दो बृहती च्छन्दोऽनुष्ट् छन्दो व्विराद्छन्दो गायत्रीः च्छन्द स्त्रिष्ट्र प्छन्दो जगतीच्छन्दः ॥(१८)

पृथिवी च्छन्दोन्तिरिक्षञ्छन्दो घौरछन्दः समारछन्दो नक्षत्राणि चछन्दो ब्वाक्कछन्दो मनरछन्दः ऋषिरछन्दो हिरएयञ्छन्दो गौरछन्दो ऽजारछन्दो ऽश्वरछन्दः॥ (१८)

अगिनहेंबता ब्वातो देवता सुर्यो देवता चन्द्रमा देवता ब्वसवो देवता रुद्रा देवतादिस्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्प-तिहेंबतेन्द्रो देवता ब्वरुणो देवता ॥ (वा०सं० १४-२०)

(२) मुद्धांसि राङ्ध्रवासिघरूणा धर्म्यसि घरणी। आयुषे स्वा व्यक्षंसे स्वा कृष्यै स्वा क्षेमावस्वा॥ (२१) युन्त्रो राङ्गन्व्यसि युमनी ध्रुवासि घरित्रो। इषे स्वोज्जें स्वा रण्यै स्वा वाषाय स्वा॥ (वा०सं०१४-२२) उत्तराश्चोणेराधि स्रोकस्पृणाः (१)पूर्ववत्(२) ॥१५॥ उपधीयन्ते ॥ १५॥

रति सप्तद्शाध्याये नम्मी कण्डिका। चतुर्थ्यामनृकान्तेषु दक्षिणोत्तरे दे वे ॥ १ ॥

चतुर्थीप्रदणं तृतीयान्तप्रज्ञापनाय । पुरस्तात्पश्चाच्च जङ्कामाऽयौ । दक्षिणत उत्तराश्च पद्याः ॥ १ ॥

पूर्वाभ्यामपराश्चतुर्दश ॥ २॥

ताश्चार्थपद्याः ॥ २ ॥

ताम्यः वर् ॥ ३ ॥

ताभ्यो ऽपराः षट् पद्याः॥ ३॥

पुर्व(२)दक्षिणेऽवान्तरदेश एके ॥ ४ ॥

चतुर्दश षट्चोपद्घाति ॥ ४ ॥

उत्तरा(४) वा दक्षिणाभ्याम् ॥ ५॥

उपधीयन्ते । लाघविकेन सताऽऽचार्येणैवमुपदिष्टाः ॥ ५ ॥

उपधानकमः पुनिरहोच्यते —

उत्तरां पूर्वयोर। ग्रुस्त्रिवृदि(५)ति ॥ ६ ॥

(१) लोक म्पृण०॥ (५४) ता ऽअस्य०॥ (५५) इन्द्रं व्विश्वा०॥ (वा०सं० १२-५६)

(२) पूर्ववत् प्रथमाचितिवदित्यर्थः॥

(३) पताश्चतुर्वश षट्च पूर्वदक्षिणेऽवान्तरदेशे आत्मन आग्नेयको णे कोणोपधीयमानजङ्घामात्रीतोऽन्तरा उपद्धाति । तत्र चैवम्, दक्षि-णांसोपहितजङ्घामाञ्याः पश्चात्संलग्ना वा अध्यर्धा तस्या उत्तरतो न-वार्धपद्याः प्रागायताः प्राग्लक्षणाश्चोपधेयाः। द्वितीयमध्यर्धा जङ्घामात्रीं चोत्तरतः पश्चार्थपद्याः उदगायता उदग्लक्षणा उपधेयाः। तदनन्तरं त त्संलग्नाः षट् च पद्या उपधेयाः। ताश्च नवानामधश्चतस्यः प्राग्लक्षणाः पञ्चानामुत्तरतो हे उदग्लक्षणे इति ।

(४) अथवा एताश्चतुर्दश षर्च दक्षिणोत्तराभ्यां दक्षिणानूकाः न्तोपहिताभ्यां दक्षिणोत्तराभ्यां पद्याभ्यामुत्तरा उपदधाति । अनूकमिम तोऽर्घाधिकया तत्संलग्ना एव । तयोरुत्तराश्चतुर्दश । तासामुत्तराः षट् उदगायताः ।

(६) आशुस्तिवृत् ॥ (२३)

उपद्घाति ॥ ६॥

दक्षिणामपरयोर्घहण एकविश्वा(१) इति ॥ ७ ॥ दक्षिणां दक्षिणयोर्मान्तः पञ्चद्दा(२) इति ॥ ८ ॥ दक्षिणामुत्तरयोद्धीमा सप्तद्द्वा(३) इति ॥ ९ ॥ चतुर्दद्वा प्रतिमन्त्रं प्रतृतिरष्टाद्द्वा(४) इति ॥ १० ॥ उपस्थाति ॥ १० ॥

दक्षिणां पूर्वयोरग्नेभांग(५) इति ॥ ११ ॥ उत्तरामपरयोर्मित्रस्य भाग(६) इति ॥ १२ ॥ उत्तरां दक्षिणयोर्च्चक्षमां भाग(७) इति ॥ १३ ॥ उत्तरामुत्तरयोरिन्द्रस्य भाग(८) इति ॥ १४ ॥ षद् प्रतिमन्त्रं वस्नां भाग इति ॥ १५ ॥ षदुपद्धाति "वस्नां भाग"(९) इति प्रतिमन्त्रम् ॥ १५ ॥

⁽१) घरुण ऽएकविश्वाः॥ (२३)

⁽२) भान्तः पञ्चदशः॥ (२३)

⁽३) ब्व्योमा सप्तदशः॥ (२३)

⁽४) प्रत्तिरद्यादशस्तपो नवदशोभीवर्त्तः सिविश्शो व्यक्षी द्वाविश् शः सम्भरणस्त्रयोविश्शो योनिश्चतुर्विश्शो गव्माः पञ्चविश्श प्रथोज-स्त्रिणवः कतुरेकत्रिशः प्रतिष्ठा व्रयस्त्रिशो व्यष्टनस्य विवष्टपञ्चतुस्त्रिः श्शो नाकः पर्विश्शो व्यवसीष्टाचस्वारिशो धर्वञ्चतुष्टोमः॥

⁽ वा०सं० १४-२३)

⁽५) अगनेदर्भागोसि दीक्षायाऽञाघिपस्यम्ब्रह्म स्पृत न्त्रिवृ-स्स्तोमः॥(२४)

⁽६) वित्रस्य भागोसि व्वरूणस्याधिपस्य न्दिबोव्बृष्ट्विर्बात स्पृत ऽपकविश्व स्तोमः ॥ (२४)

⁽७) नृत्रक्षसा स्मागोसि धातुराधिपस्य जनित्त्र ४सपृत हसप्त-दश स्तोमः॥ (२४)

⁽८) इन्द्रस्य भागोसि व्विष्णोराघिपस्य ङ्कृत्वॐ स्पृत स्पश्चदश स्तोमः॥ (वा०सं० १४-२४)

⁽२) ब्बसुनाम्भागोसि रुद्राणामाधिपस्यश्चतुष्पात्स्यृतश्चतुर्विश्व स्तोमः, आदित्यानाम्भागोसिमस्तामाधिपत्यंङ्गर्भा स्पृताः पश्चविश्व

ऋतव्ये सहस्र सहस्यक्षे(१)ति ॥ १६॥

उपद्घाति ॥ १६ ॥

(२)रेतःसिग्वेलायां च सप्तदश सर्वतो नव दक्षिणे नानृकः सृष्टीरेकया स्तुवते(३)ति प्रतिमन्त्रम् ॥ १७॥ सृष्टीरितीष्टकानाम । तत्र च दक्षिणतोऽनूक्यमभिनोऽर्घपद्ये ॥ १७॥

स्तोमः, अदित्यै भागोसि पूष्ण आधिपत्यमोज स्पृत न्त्रिणवस्तोमः, देव-स्य सवितुक्रांगोऽसि वृहस्पतेराधिपत्यःसमीचोद्दिश स्पृताश्चतुष्टोम स्तोमः॥ (२५)

युवाना स्भागोस्यय्वानामाधिपस्य स्प्रजा स्पृताश्चतुर्वस्वानिः दा स्तोमः, ऋभूणाम्भागोसि व्विश्वेषा न्देवानामाधिपस्यं म्भूत र्रस्पृत

न्त्रयस्त्रिः श स्तोमः॥ (वा० सं० १५-२६)

(१) सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृत् ऽअग्नेरन्तः श्लेषोसिकल्पेता न्द्र्यावापृथिवी कल्पन्तामाप Sओषधयः कल्पन्ताममनयः पृथङ्ममञ्ज्यै-ष्ह्र्याय सन्वताः।

य ऽअगनयः समनसोन्तरा इघावापृथिवी ऽइमे । हैमन्तिकावृत् ऽअभिकल्पमाना ऽइन्द्रमिव देवा ऽअभिसंव्विशन्तु तया देव तयाङ्गिरस्वदुध्रवे सीदतम् ॥ (वा०सं० १४-२७)

(२) सर्वतः सर्वासु दिश्च सृष्टिसंज्ञका उपद्याति। तासां मध्ये प्रागनूकं दक्षिणेन नव उपद्याति, अर्थाद्यावुत्तरेण। तेन प्रतिदिशं चत-स्रश्चतस्रः, अन्कमभितो हे हे। दक्षिणतः पञ्च, मध्ममानूके पद्या, तामः भितो द्वेऽर्घपद्ये, ते अभितो द्वे पद्ये, एवं पञ्चेति।

(३) एकयास्तुवत प्रजा ऽअधीयन्त प्रजापितरिष्ठपितरासोत्तिः सृभिरस्तुवतः ब्ब्रह्मासुरुज्यतः ब्ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीरपञ्चभिरस्तुवन भूतान्त्यसुज्ज्यन्त भूतानाम्पतिरिधपतिरासीत्सप्तभिरस्तुवत सप्तऽऋष-

योसुङ्ख्यन्त घाताघिपतिरासीत्॥ (२८)

नवभिरस्तुवत पितरोसृज्ज्यन्तादितिरधिपत्कन्यासीदेका−

द्शभिरस्तुवतऽऋतवोस्रुञ्यन्तार्त्तवा ऽअधिपतय ऽआसँख्रयोदश-भिरस्तुवतं मासा ऽअसुज्ज्यन्तसंव्यतसरोधिपतिरासीत्पञ्चदशभिरस्तुवत श्रुत्त्रमसुज्ज्यतेन्द्रोधिपविरासीत्सप्तद्दाभिरस्तुवत ग्राझ्याः पश्रवोस्-ज्ज्यन्त बृहस्पतिरिघपतिरासीत्॥ (२१)

नवदशसिरस्तुवत शृहुग्य्यांवसुज्येतामहोरात्त्रे ऽश्रघिपत्को ऽआस्तामेकविश्वात्यास्तुवतेकशफाः वशवोस्डच्यन्त व्वरुणोधिपति-

उत्तराहुसाद्धि लोकम्पृणाः(१)पृर्ववत् ॥ १८॥ इति सप्तदशाध्याये दशमी कण्डिका।

(२)पञ्चम्यासन्तेष्वाहिवनीवदसपत्नाः ॥ १॥ इष्टका उपधीयन्ते । अन्तग्रहणं रेतःसिग्वेळाव्युदासार्थम् । आश्विः नीवदिति । द्वितीये लोके उपघानं चतस्णामपि ॥ १॥

दिचिणयोर्रतन्यन्तरम् ॥ २ ॥

प्रश्रुमी च पद्या भवति प्राग्लक्षणा । आश्विनीवदित्यर्थपद्ये मा भूतामिति॥२॥

अग्रेजातानि(३)ति प्रतिमन्त्रम् ॥ ३ ॥

रासीत्त्रयोविहरात्यास्तुवतस्रुद्धाः पद्मचोस्रुज्ज्यन्त पूषाधिपतिरासीत्पञ्च-विश्रास्यास्तुवतारण्याः पश्वोस्उज्यन्त व्वायुरिघपतिरासीत्सप्तविश्राः स्यास्तुवत इघावापृथिवी क्येतां वसवो रुट्टा ऽआदिस्याऽ अनुक्यायँस्त ऽएवाधिपतयऽथासन् ॥ (३०)

नविविश्वास्तानत व्वनस्पतयोख्उज्यन्त सोमोधिपतिरासीदेकित्रिः शतास्तुवत प्रजाऽअसुज्ज्यन्त य्वाश्चायवाश्चाघिपतयऽआसंस्त्रयस्त्रिः शतास्तुवत भूतान्त्यशाम्यन्त्रज्ञापतिः परमेष्ठयिषपितरासीत्॥ (बा॰सं॰ १४-३१)

- (१) लोक म्पूण०॥ (३१) ता ऽअस्य०॥ (३१) इन्द्रं व्विश्वा०॥ (बा॰सं० १४-३१)
- (२) अन्तेष्वनृकान्तेषु। पूर्वाऽसपतां प्रागनृकमुत्तरेण द्वितीये लो-के, अपरामनुकं दक्षिणेन द्वितीये लोके, दक्षिणां तियंगनृकं पूर्वेण द्वितीये लोके, उत्तराऽसपलां तिर्थगनूकमपरेण द्वितीये लोके उपद्याति।
 - (३) अग्ग्रे जातान्स्प्रणुदानः सपत्कनान्त्र्यज्ञातान्तुद्जातवेदः। अधि नो ब्ब्रूहि सुमनाऽअहेडँस्तव स्थाम शर्म्म स्विवस्थऽउद्गो॥(१)

इति मन्त्रेण पुरस्तादुपघानम्। सहसा जातान्त्प्रणुदानः सपन्यनान्त्प्रत्यजाता ञ्चातवेदो नुदस्य। अघिनोञ्जूहि सुमनस्यमानो व्वयं स्याम प्रणुदानः सपत्कनान्॥ (२)

इति मन्त्रेण पश्चादुपञ्चानम् ।

षोड़शी स्तोम ऽथोजो द्रविणम् ॥ इति मन्त्रेण दक्षिणत उपधानम् । चतुश्चत्वारि/शरस्तोमो व्वची द्विणम् । इति मन्त्रेण उत्तरत उपघानम् । अगनेः पुरीष मस्यप्सो नाम ता न्त्वा व्विश्श्वे ऽश्रमि गुणन्तु देवाः।

स्तोमपृष्ठा घृतवतोह सीद प्यजावदस्मे दुद्रविणायजस्य ॥ (वा॰ सं॰ १५-३) इति च मध्ये उपधानम् । असपसोपधानम् ॥ ३ ॥ पश्चिमा द्वितीया ॥ ४ ॥ उपधीयते, "पुरस्तादुपधाय पश्चादुपदधाति" इति वचनात् ॥ ४ ॥ विराजो दश दश प्रतिद्शिं पुरस्तात्प्रथममेवः

इछन्द्(१) इति प्रतिमन्त्रम् ॥ ५ ॥ उपद्वाति । बहिविँराजत्वे च सर्वाः पद्या भवन्ति ॥ ५ ॥ गायत्र्यसपत्ना गणसध्येऽसम्भवात् ॥ ६ ॥ गायत्र्य इष्टका असपत्ताश्च विराड्गणस्य या इष्टकास्तासां मध्ये भवन्ति । न हि विराड्गणस्य वहिः सम्भवः ॥ ६ ॥

उद्घिषणभ्यो वाडपरा अर्घपद्या उपभाय ॥ ७ ॥ उद्याहमत्रानुपहितत्वाच्छोकस्यापरा अर्घपद्या विराजो भवन्ति ॥ ॥ असपत्ना स्पृद्योऽन्यतोन्तराः ॥ ८ ॥ अन्यत्र विराजः असपत्ना संलग्ना अन्तरा उपधीयन्ते ॥ ८ ॥ सर्वेतो(२)ऽषाढावेलायाः स्तोमभागा रहिमना स स्थाये(३)ति प्रतिमन्त्रम् ॥ २ ॥

(१) एवश्छन्दो व्वरिवश्छन्दः शम्मूश्छन्दः परिमूश्छन्दः ऽआच्छ-च्छन्दो मनश्छन्दो व्ययचश्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्दृश्छन्दः सरिर ब्छन्दः ककु प्छन्दस्त्रिककु प्छन्दः काव्वयं ब्र्छन्दो ऽअङ्कुपब्छन्दोक्षरपङ्किश्छ-न्दः पदपङ्किश्छन्दोविवष्टारपङ्किश्छन्दः भ्रुरोब्म्रजश्छन्दः॥ (४)

आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः संय्यच्छन्दोविवयच्छन्दो बृहच्छन्दो र-थन्तर ब्लन्दो निकायश्चन्दो विववधश्चन्दो गिरश्चन्दो ब्य्रज्ञश्चन्दः सर्भन्तुष्छन्दोत्रुष्टु प्छन्द ऽप्रवश्चन्दो व्वरिवश्चन्दो व्वयश्चन्दो व्वयः स्कृच्छन्दः विष्पर्धाश्चन्दो विवशाल ब्लन्दश्चिदिश्चन्दो दूरोहण ब्लन्द स्तन्द्र ब्र्ञ्जन्दो अङ्काङ्कब्दन्दः ॥ (बा० सं०१५-५) एतन्मन्त्रद्वयगतः लन्दःशब्दान्तदशकेन मागेन प्रतिमागं पूर्वादिक्रमेणोपधानं कर्तव्यम् ।

(२) सर्वतः सर्वासु दिश्च ।

(३) रिश्मना सस्याय सस्य जिन्न्व प्रेतिना घर्म्मणा घर्म जिन्न्वा नित्वस्था दिवा दिवजिन्न्व सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्ष जिन्न्व प्रतिधिता पृथिक्या पृथिकी जिन्न्व विष्ट्रमीन व्यृष्ट्या वृष्ट्र जिन्न्व प्रवयाहाह- जिन्न्वातुया राज्या रात्त्री जिन्न्वाशिजा व्वसूभ्यो वस्जिन्न्व प्रकेतेना- दिस्येभ्य ऽश्रादिस्याष्टिजन्न्व ॥ (६)

उपघीयन्ते ॥ ९ ॥

(१)पश्चदचा दक्षिणेनानुकस् ॥ १० ॥

तत्र चान्कमाभेतो (२) ऽर्धपद्य ॥ १०॥

वेषश्रीः क्षत्राय क्षत्रं जिन्वेति त्रिश्वत्तमीमेके ॥ ११ ॥ उपद्रधाति, एके नेति ॥ ११ ॥

पुरीषमास्वावपति मन्त्रेण वा तापश्चितस्य तृष्णी हे खुतेः ॥ १२ ॥

आसु स्तोमभागासु पुरीषमावपाते मन्त्रेण । कुत पतत् ? ताप-श्चितस्य तृष्णी ३ श्वेतः। तत्र हि श्र्यते-"तृष्णीं मास ३ स्तोमभागा पुरीषमाभिहरान्ते"(शश्त्रा०१०-२-५-१३) इति । तेनात्र मन्त्रवदिति गम्यते । एवं प्राप्ते वादाब्देन पुनर्व्यावर्द्धते । न वा मन्त्रेण पुरीपावापः । न हात्र मन्त्रो विहित इति

नतु तापश्चिते तूर्णीमित्युक्तत्वात् १६ मन्त्रो गम्यते, नेत्युच्यते, 'तूर्णीम्' इत्यजुवादोऽयम् । मास्रो हि अत्र विधीयते । तूर्णी मास्र ह स्तोमभागा पुरीषमभिहरन्तीति मास्रोऽत्र विधीयते । यदि मन्त्रानिवृ त्तिर्विधीयेत, वाक्यं भिद्येत । तस्मान्ग्णीमेवेह पुरीषावापः ॥ १२ ॥

इति सप्तद्शाध्याये पकादशी कण्डिका।

तन्त्रना रायस्वायेण रायस्योप जिन्न्य स ; सर्पेण श्रुताय श्रुत जि न्नवडे नौषघीमिरोषधीर्जिन्न्वोत्तमेन तन्मिस्तन्जिन्नव व्ययोधसाधीतेः नाधीत जिन्न्वाभिजिता तेजसा तेजो जिन्न्व॥ (७)

प्रतिपद्सि प्रतिपदे स्वानुपद्स्यनुपदे स्वा सम्पद्सि सम्पदे स्वा ते-जोसि तेजसे स्वा॥(८)

डिअबुद्सि डिअबुते रवा प्रवृद्सि प्रवृते रवा व्विबृद्सि व्विबृते रवा सबदिस सबते स्वा क्रयोस्था क्रमाय स्वा सङ्क्रमोसि सङ्क्रमायः रवो स्क्रमोस्युरक्रमाय स्वोत्क्रान्तिरस्युत्कान्त्यैस्वाधिपतिनोर्जीर्जाञ्जन्य॥ (वा०सं०१५-९)

(१) अत्र विभागः पुरणकृता कृतः 'अष्टौ पुरस्तात्स्तोमभागाः पश्चा-च दक्षिणतः सप्तोत्तरतः शिष्टा' इति ।

(२) समानत्वाय सर्वास्ता अर्घपद्या भवन्ति तः। अन्यथा त्वर्घपद्ये हे पादाने हे च पद्यकाः॥ पद्योगाः स्युविराजोऽत्रोष्णिहस्तिस्रोऽर्घपद्यकाः ॥

नाकसदोऽनुकेषु पूर्वचर्जसृतव्यावेलायामाहिव-नीवद्राह्यसी(१)ति प्रतिसन्त्रम् ॥ १ ॥

नाकसद इष्टकाः अनुकेषूपधीयन्ते । पूर्ववर्जमृतन्यावेलायामाहिवः नीवदिति दक्षिणामुत्तरेण पञ्चमी अर्धपद्ये चिते इति च गम्यते । सर्वा श्चेता अर्थोत्सेयाः, पूर्वा तु द्वितीये लोके ॥ १ ॥

पुरीषमोप्योपर्यं पुर(२) इति पश्चचूडाः प्रतिमन्त्रम् ॥ २ ॥

उपद्याति । पता अव्यर्घोत्सेघाः । पुरीषावापश्चोर्ध्वं नाकसत्सु ॥२॥

(१) राइयसि प्राची दिग्वसवस्ते देवाऽअधिपतयोग्निहेंतीना म्प्र-तिघत्तां वित्रवृत्त्वा स्तोमः पृथिव्व्या एश्रथस्वाउज्यमुक्थमव्व्यथाये स्त-व्यनातु रथन्तर ह सामप्रतिष्ठित्या ऽअन्तिरिश्चऽऋषयस्त्वा प्रथमजा दे-वेषु दिवोमात्त्रया व्वरिम्णा प्रथन्तु व्विघत्तां चायमधिपतिश्चते त्वा सर्वे संव्विदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्णो लोके युजमान श्च सादयन्तु ॥(१०)

वित्रराडिस दक्षिणा दिश्रद्वास्ते देवाऽअधिपतयऽइन्द्रो हेतीना स्त्र-तिधर्त्ता पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्व्याणं श्रयतु प्यऽउगसुक्थमव्व्यथायै स्तब्मनातु बृहत्साम प्यतिष्ठित्या०॥ (११)

सम्ब्राहिस प्रतीची दिगादिस्यास्ते देवा ऽअधिपतयो व्वरूणो हे तीना म्यतिश्वर्त्ता सप्तद्शस्त्वा स्तोमः पृथिव्व्याणं श्रयतु मरुस्वतीयमु क्रिथमव्य्यथायै स्तब्भनातु व्येखप हु साम प्यतिष्टिठस्या०॥ (१२)

स्वराडस्युदीचो दिङ्मस्तस्ते देवा ऽअधिपतयः सोमो हेतीना स्प्र तिधर्त्तैकवि र शस्त्वा स्तोमः पृथिव्व्या ७ श्रयतु निष्ककेवल्व्यमुक्त्थम स्यथायै स्तब्स्नातु व्वैराज र साम प्रतिष्दिठस्या०॥ (१३)

अधिपत्वन्त्यसि बृहती दिग्ग्विश्वे ते देवा ऽअधिपतयो बृहस्पति हेतीना द्यतिधर्सा त्रिणवत्रयस्ति ३ शौत्वा स्तोमौ पृथिञ्याॐ श्रयतां वैश्वदेवाग्यिमायते ५३क्त्ये ऽअञ्च्यधायै स्तब्भ्नीताॐ शाक्कररैवते सा मनीप्प्रतिष्ट्ठित्या० ॥ (वा०सं१५-१४)

(२) अय म्पुरो हरिकेशः सुर्थ्यरिशमस्तस्य रथगुत्सश्च रथौजाश्च सेनानोग्यामण्ययौ । पुञ्जिकस्त्यला च कतुस्रवला चाप्सरसौ दङ्शणवः पश्चो हेतिः पौरुषेयो व्वधः प्यहेतिस्तेब्भ्यो नमो ऽअस्तु ते नोवन्तु ते नोमृडयन्तु ते य न्द्रिप्मो युश्च नो द्वेष्टितमेषा अम्मे दृष्टमः॥ (१५)

अय न्दक्षिणा व्विश्वकरमां तस्य रथस्वनश्च रथे चिज्ञश्च सेनानी

प्रतिदिशं यथालिङ्गम् ॥ ३ ॥ उपधानम् ॥ ३ ॥

पश्चिमोत्तमा॥ ४॥

उपघीयते॥ ४॥

छन्दस्यास्तिस्रस्तिस्रोऽनुकान्तेषु पुरस्ताङ्गायत्रीराग्नेः

र्भूचेति प्रत्यृचम् ॥ ५ ॥

छन्दस्या इष्टकास्तिस्रस्तिस्रोऽन्कान्तेषु उपधीयन्ते, पुरस्ताद्वायत्री उपद्याति ''अग्निर्सूर्घो''(१) इति प्रत्यृचम् ॥ ५ ॥ उत्तराश्च ॥ ६ ॥

चशन्दात्त्रत्यृवम्(२)॥ ६॥ पुरस्ताब्रिष्टुभो रेतःसिग्वेलायां सुवो यज्ञस्ये(३)ति ॥७॥ पभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रम् ॥ ७॥

ग्यामण्यौ । मेनका च सहजन्त्याचाप्सरसौ यातुधाना हेतीरक्षा**ए**सि प्रहेतिस्तेच्भ्यो० ॥ (१६)

अय म्पश्चादिश्वन्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्याम-पण्यौ । प्रम्मळोचन्ती चातुम्मळोचन्ती चाप्सरसौ व्याग्वा हेतिः सप्पाः प्रहेतिस्तेब्भ्यो०॥ (१७)

अयमुत्तरात्संय्द्दसुस्तस्य तार्श्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्मामण्यौ। व्विश्वाची च घृताची चाप्सरसावापो हेतिग्वांतः प्रहेतिस्ते-बम्यो०॥ (१८)

अयमुपर्याः व्याग्वसुस्तस्य सेनजिच सुपेश्व सेनानीग्त्रामण्यौ। उर्व्यशो च प्र्वित्रिक्षाप्सरसाववरूपूर्ण्जन्हे तिबिद्दुपुरश्रहेतिः स्तेञ्यो०॥ (वा० सं० १५-१९) अत्र 'अयं पश्चादिति मन्त्रेण पश्चिमा मध्यपठितत्वेऽपि वचनात्सर्वासामन्त्ये उपधेयेति बोध्यम्।

(१) अग्निम्मूर्ज्ञादियः ककुरपतिः पृथिव्याऽअयम् । अपार्थः रेतार्थसिजिन्त्वति (२०)

अयमित्रनः सहस्रिणो न्वाजस्य शतिनस्पतिः।

मूर्द्धा कवी रयीणाम् ॥ (२१)

स्वामगर्ने पुष्करादद्वधथर्का निरमन्त्यत । मूध्धनो व्विश्वस्य व्वाघतः॥ (वा० सं० १५-२२)

(२) तैरेव 'अग्निर्भृषी' इत्यादिमन्त्रैस्त्रिभिः प्रागुक्तेः।

(३) भुवो युवस्य रजसञ्च नेता युत्त्रा नियुद्धिः सचसे शिवाभिः।

जगतीश्च पश्चादयमिहे(१)ति ॥ ८ ॥ चशक्तादेतःसिग्वेलायामेव ॥ ८ ॥ अपरास्ताभ्योऽनुष्टुभः सम्बायः सं च (२)इति ॥ ९ ॥ प्रिर्मन्त्रेर्जगतीभ्योऽपरा अनुष्टुभः ॥ ९ ॥ अषादावेलायाः पुरस्ताद् बृहतीरेना व (३)इति ॥ १० ॥

दिवि मृद्धां नन्दिषिषे स्वर्षां जिह्यामग्ने चकुषे हव्यवाहम् ॥ (२३) अवोद्धयियः समिधा जनाना म्यतिषेनुमिवायतीमुलासम् । यृह्याऽद्व प्यवयामुजिहानाः प्रमानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥ (२४) अवोचाम कवये मेद्ध्याय व्वचो व्वन्दारु व्वृष्माय व्वृष्णे । गिविष्ट्रिरो नमसा स्तोममग्गौ दिवीवरुक्ममुख्व्यञ्चमश्रेत् । (वा० सं० १५-२५)

(१) अयमिह प्यथमो घायि घातृभिहाँता य्जिष्ठोऽअद्धरेष्वोड्ड्यः। यमप्तवानो भृगवो व्विष्ठस्त्रुव्वनेषु वित्रत्रं व्विभ्व्वं व्विशेविशे॥ (२६) जनस्य गोपाऽअजनिष्ट जागृविरग्गिः सुदक्षः सुविताय नव्ययसे। घृतप्यतीको वृहता दिविस्पृशा सुमद्दिसमाति भरतेन्भ्यः शुचिः॥२०॥ त्वामग्गेऽअङ्गिरसो गुहा हितमन्त्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने। स जायसे मध्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुटत्रमङ्गिरः॥ (वा०सं० १५-२८)

(२) सखायः सं व्वः सम्म्यश्चिमष्णं स्तोम श्चाग्यये । , व्विषिषष्ठाय श्चितीनामुर्ज्ञोनप्त्रत्रे सहस्वते ॥ (२६) स्रासमिद्युवसे व्वषत्राग्ये व्विश्वान्त्य र्थ्यंऽआ । इडस्पदे समिद्यसे स नो व्वसुन्त्यासर ॥ (३०)

त्वा श्चित्रश्चस्त महवन्ते व्विश्च जनतवः।
शोचिष्केशम्पुरुष्प्रियाग्ने हव्वयाय व्वोद्धवे॥ (वा॰ सं॰ १५ ३१)
(३) एना वो ऽथिया समसोक्षीन पातमाहुवे।
प्रियञ्चेतिष्हमरतिः स्वद्धरं व्विश्वस्य दूतममृतम्॥ (३२)
व्विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम्।
स योयते ऽथरुषा व्विश्वसाजना स दुद्धवत्स्वाहुतः॥ (३३)
स दुद्धवत्स्वाहुतः स दुद्धवत्स्वाहुतः॥ (३३)
सुद्धवत्स्वाहुतः स दुद्धवत्स्वाहुतः॥ (३३)

भद्रो न इति ककु भस्ताभ्यो बृहत्यन्तरश्चुतेर्मन्त्रक्रमेण॥११॥

'भद्रो न'' (१) इत्येसिर्मन्त्रैर्वृहतीनां पुरस्तान्मन्त्रक्रमेण ककुम उप-द्याति। कुत प्तदिति चेत् ? बृहतीनामन्तरालश्चतेः। "सोऽन्तरेण त्रिष्टुमश्च ककुमश्च बृहतीरुपद्याति" (श० ब्रा० ८-६-२-१०) इति व-चनात्॥ ११॥

उद्धृतान्यपक्रुष्येच्छन् ॥ १२ ॥

पवं हि भ्र्यत—"अधैतासां ककुभां चत्वारि चत्वार्णक्षराण्यादायातिच्छन्दस्युपदधाति। सा सातिच्छन्दा एव भवति गायम्य इतराः
सम्पद्यन्ते" (श० मा०८-६-२-३) इति। एवं च सत्यपकर्षः प्राप्नोति।
तथा च 'गायम्य इतराः सम्पद्यन्त' इति। एवं स्थिते बच्यते—'इच्छुष्रपष्ठस्य' इति। ककुप्छन्दस्य छन्दोविषयत्वाश्चतुर्धक्षरेषृद्धृतेषु ककुप्वमेव द्याये। अपूर्णा च अगर्थाभिधानसमर्था न भवति। तथा सत्यदृष्टार्थता स्यात्। न चासौ न्याय्या। अपि च चतुर्णामझराणामतिच्छन्दासि प्रत्यवधानेनार्थवद्वाक्यं सञ्जातम्। तदूनानां ककुमां प्रयोग इति निःप्रमाणकमेव स्यात्।

ननु च श्रूयते ''गायव्य इतराः सम्पद्यन्ते" इति, त, अविधायक त्वात् । न ह्ययं विधिर्वर्तमानापदेशादितरसंस्तव इति । तस्मादन-एकुच्यैवेति ॥ १२ ॥

अपरा गायत्रीम्ब उष्णिहोऽसे बाजस्ये(२)ति ॥ १३ ॥

भद्दा ऽउत प्रशस्तये। भद्द स्मनः क्रणुष्य ब्हुन्नत्य्यें। येना समत्सु सासहः॥ (३९॥) येना समत्सु सासहोव स्थिरा तनुहि भूरिशर्द्धताम्। ब्वनेमा ते ऽथमिषदिभिः॥(वा० सं०१ ५–४०)

(२) अग्ने ब्वाजस्य गामत ऽईशानः सहसो यहा । अस्मे घेहि जातवेदा महि श्रवः॥ (३५) स ऽइधाने ब्वसुष्टकं विरम्मिरीडेन्स्या गिरा । रेवदस्मक्ष्य म्युर्व्याक दोदिहि॥ (३६) क्षपा राजन्तुस स्कमनागने ब्वस्तास्तोषसः। स्रतिगमजम्म रक्षसा दह प्यति॥ (बा० सं०१५-३७)

⁽१) भद्दो नो अग्नराहुतो भद्दा रातिः सुमग भद्दोऽअद्दूरः। भद्दाऽउत प्रशस्तयः॥ (३८)

्रपतिमन्त्रम् उपद्याति ॥ १३ ॥ ६दानीं ककुमामुपधानम्—

> अनुकान्ते दक्षिणे पङ्कीरग्निं तमि(१)ति ॥ १४ ॥ उपस्थाति ॥ १४ ॥

उत्तरे पदपङ्क्तीरग्ने तमचे(२)ति ॥ १६॥ उपद्याति ॥ १५॥

पुरीषवत्याः पूर्वामतिच्छन्दसं प्राच्यौ पुरीषसहिते अद्रा रातिर्वृत्रतृर्येऽवास्थिराग्निः होतारमि(३)ति ॥ १६॥

दक्षिणयोष्ट्रस्पा ऽसपत्ना पुरीषवती । तस्यां हि पुरीषं विहितं 'पुर् रीषसहिते' इति । 'प्राच्यौ' इति प्राग्लक्षणे चेते भवतः । ''भद्राराः तिः" इत्येवमादिना मन्त्रेण पुरीषवत्याः पूर्वामतिच्छन्दसमुपद्धाति । भद्रारातिः इत्येतानि चत्वारि चत्वार्यक्षराणीति ॥ १६ ॥

(१) अग्निनन्त स्मन्न्ये यो व्वसुरस्तं य्यं य्यन्ति घेनवः । अस्तमर्वन्त् ऽथाशवास्त न्निस्यासा व्वाजिन ऽइवॐ

स्तोतृब्भ्य ऽमाभर ॥ (४१) स्रो ऽअग्निन्थ्यों व्यसुर्युणे सं य्यमायन्ति घेनवः । समर्थ्यन्तो रघुदुदुवः सःस्रजातासः स्रय ऽइषॐस्तोतृब्भ्य ऽभाभर॥(४२) उमे सुरचन्द्र सर्ण्यिषो दवीं रश्रीणीष आसित । उतो न ऽउत्पृष्ट्या ऽउक्त्येषु शवसस्प्यत ऽइषॐस्तेःतृब्भ्य ऽभामर ॥

(वा० सं० १५-४३)
(२) अगने तमद्द्याश्व न्न स्तामैः ऋतु न्न भद्द्व हृ हृद्स्पृशम्।
ऋद्ध्यामा तऽ ओहैः॥(४४)
अधा ह्यग्ने ऋतोर्भद्दस्य दक्षस्य साधोः।
ग्योर्ऋतस्य बृहता बभूथ॥(४५)
एभिन्नो ऽअक्केंश्मेवा ना ऽअर्थ्वा ङ्क्स्वण्णंडस्यातिः।

अगने व्विश्वेभिः सुमना अनीकैः॥ (वा० सं० १५-४६)
(३) भद्रारातिः, वृत्रत्ये, अवस्थिरा इति ककुभां (१५, ३८-४०)
वतुश्चतुरस्रसहितया अग्निः होतार म्मन्ये दास्वन्तं व्वसुः स्तुः
सहसा जातवेदसं व्विम्न न जातवेदसम्।
य ऊद्ध्वया स्वद्ध्वरा देवा देवाच्या कृषा।
घृतस्य व्विश्चाण्डि मनुव्विष्ट्रिशोचिषाजुह्यनस्य सर्विषः॥ वा०सं०१५-४७)
इति श्वचा। "चत्वारि चत्वार्यस्रराणि" (श० ब्रा० ८-६-२-३) इति
स्वनात्।

अग्ने त्व(१)मित्यनुकान्तेऽपरे द्विपदाः ॥ १७ ॥ उपधीयन्ते । सर्वछन्दस्यास्वभितोऽर्धपद्ये । उष्णिहस्तु तिस्नः स्तिर्यगर्धपद्याः ॥ १७ ॥

मध्येऽष्टेष्टकं गाईपत्यम् ॥ १८॥

उपद्याति । 'अष्टेष्टकम्' इत्युक्तत्वात् अधिका न भवन्ति । 'गाईपत्यम्' इति च नामध्यात् तद्वदेवोपवानमष्टानामपि । तथा चाह—"तं
वा पतैरेव यद्धिमेरेतयावृता चिनोति" (श० ब्रा॰ ८-६-३-७) इति ।
इयांस्तु विशेषोऽर्धवृहतीनां स्थानेऽर्धपद्याः ॥ १८ ॥
पुनश्चितिं चोपरि तद्वचेन ऋष्य इति प्रत्यृचम् ॥ १९ ॥

तस्यैव गाईपत्यस्योपरि तद्धदेव पुनश्चितिमुपद्धाति । इयांस्तु वि-दोषः "येन ऋषयः" (२)इति प्रत्यृचम् । अस्मिश्च पद्म अर्थोत्सेधा इष्टका भवन्त्युत्सेधायोगात् ॥ १९ ॥

- (१) अगने त्व न्ता ऽअन्तम ऽउत इत्राता शिवा भवा व्वह्रत्थ्यः। व्वसुरिग्नव्यंसुश्रवा ऽअच्छा नक्षि चुमत्तमः रियन्दाः। त न्त्वा शोचिष्ट दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिव्भ्यः॥ (वा० सं०१५-४८)
- (२) यंनऽऋषयस्तपसा सञ्जमायिनःधानाऽअग्निःस्वराभरन्तः।
 तिसमञ्ज्ञिद्धे नाकेऽअग्नि यमाद्वम्मन्यस्तीर्णविहेषम् ॥ (४९)
 त म्पत्ननीभिरतुगच्छेम देवाः पुत्त्रेच्म्रांतृभिरुत वा हिरण्यैः।
 नाकङ्गुव्मणानाः सुक्रतस्य छोके तृतीये पृष्ष्ठे ऽअधि रोजने दिवः॥ (५०)
 आ वाचे। मद्ध्यमरुहृद्धुरण्युरयमग्निः सत्पतिश्चेकितानः।
 पृष्ठे पृथिच्या निहितो द्विद्द्यु तद्धस्पद ङ्क्जुतां च्ये पृतन्त्यवः॥ (५१)
 अयमग्निव्वरितमो व्ययोधाः सहस्त्रियो द्योततामप्रयुच्छन्।
 विवन्ध्राज्ञमानः सरिरस्य मद्ध्य ऽउप प्रयाहि दिव्यानि धाम॥ (५२)
 सम्प्रच्यवद्ध्वमुप सम्प्रयातागने पथोदेवयाना न्क्जुद्ध्वम्।
 पुनः कृण्ण्वाना पितरा युवानान्त्वातार्थसीत्विय तन्तुमेनम् ॥ (५३)
 उद्वुद्धयस्वागने प्रतिज्ञागृहि त्विमिष्टापूर्त्तेस्युत्त्यामथञ्च।
 अस्मिन्तसध्यत्थेऽअद्धयुत्तरस्मिन्त्वश्वेदेवा युजमानश्च सीदत॥ (५४)

येन व्वहसि सहस्रं य्ये नाग्ने सर्व्ववेदसम्। तेनेमं य्युज्ञ स्नो नयस्वदुर्देवेषु गन्तवे ॥ (५५) अयन्तेयो निक्रंत्वियो यतो जाती ऽअरोजधाः। तं जाननगन ऽआरोहाथा ना व्वद्या रियम् ॥(वा॰सं१५-४६)

पुच्छसन्धावेके ॥ २०॥

पुनश्चितिमुपद्धाति, "ताः हैके जघनार्धऽउपद्यति"(श० त्रा० ८-६-३-११) इति श्रुतेः । अस्मिश्च पक्षे द्विपदा अर्घोत्सेघा ॥ २० ॥

पूर्वार्धे वा ॥ २१ ॥

पुनश्चितिमुपदध्यात्। अत्र यथा सम्मवमर्घोत्सेघाः ॥ २१ ॥ गाईपांत्रं पुरुष्ठसन्धौ कृत्वा ॥ २२ ॥

पुनश्चिति पूर्वार्चे उपद्याति, "तद्येके जघनार्घे गार्हपत्यमुपद्यति पृ र्वार्घे पुनश्चितिम्" (रा॰ ब्रा॰ ८-६-३-१४) इति श्रुतेः ॥ २२ ॥

ऋतव्ये नपश्च तपस्यश्चे(१)ति ॥ २३ ॥ विश्वज्योतिषं परमेष्ठी त्वे(२)ति॥ २४ ॥ (३)दिचणाःसात्प्रत्यगरत्निमाञ्चादिषे लोकम्पः

णाः(४) पूर्ववत् ॥ २५ ॥

उपद्धाति ॥ २५ ॥

प्रच्छाद्य पुरीषेण विकर्णीस्वयमातृण्णे ठार्करे सः स्पृष्टे छिद्रे प्रोथद्द्व इत्युत्तरां विकर्णीमायोष्ट्रेति स्वय-मातृण्णाम् ॥ २६ ॥

(१) तपश्च तपस्यश्च शैशिराचृत् ऽअगनेरन्तः श्लेषेशि करुपे ता न्ह्यावापृथिची करूपन्ता मापऽओषधयः करूपन्ता मगनयः पृथ-ङ्मम उच्चेष्ठ्याय सम्बताः ।

े ये ऽअगनयः समनसोन्तरा द्यावा पृथिवी ऽहमे । शैशिरावृत् ऽअ भिकल्पमाना ऽहन्द्रमिव देवा ऽश्रमिसंग्विशन्तु तथा देवतयाङ्गिरस्व द्धुवे सीदतम् ॥ (वा० सं० १५-५७)

(२) परमेष्ट्री स्वा सादयतु दिवसपृष्ट्ठे ज्ज्योतिष्मतीम्।

व्यिश्वसमे प्याणायापानायव्ययानाय व्यिश्व ब्ज्योतिर्थ्युच्छ । सूर्य्युस्तेधिपतिस्तया देवतया क्षिरस्वद्ध्या सोद ॥ (वा० सं०१५-५८)

- (३) आसमनो दक्षिणांसादाग्नेयकोणात्प्रत्यापरस्यां दिशि अरितः मात्राद्घि अन्तिमपद्यालोकं परित्यज्य तृतीयपद्यालोकादारभ्य पञ्च-भ्यां चितौ लोकम्पृणा उपद्घाति । पूर्ववदिति प्रथमं चित्युक्तप्रकारेण । तेनात्रापि प्रथमं द्वे ततो दश अरितमात्रादारभ्य आ मध्यात् ।
 - (४) लोक म्पूण ॥ (५२) ता ऽअस्य ।॥ (६०) इन्द्रं व्विश्वा ।॥ (वा॰ सं० १५-६१)

प्रच्छाच पुरीषेण चिति विकर्णीस्वयमातृण्णे उपवीयेते। संलग्ने "प्रोथदरवः" (१)इत्युत्तरां विकर्णीमुपदवाति। स्वयमातृण्णाम् "आयो-ष्ट्वा"(२) इति । 'दार्करे' 'छिद्रे' इति च विकरपार्थमुच्यते ॥ २६॥

सकृत्रित्ये ॥ २७ ॥

सादनस्दरोहसौ सक्तदेव। बोदनासदादारस्सः॥ २०॥ पुरुषाभिहोमवत्तिष्ठक्षय्नि प्रोक्षति(३) हिर्णयशकलः सहस्रण शते हे हे प्रकिरति सहस्रस्ये(४)ति प्रतिमन्त्रः (५)सहस्रस्योति प्रतिमन्त्रम् ॥ २८॥

इति सप्तदशाध्याये द्वादशी कण्डिका।

इति श्रीकर्कोपाध्यायकृतौ कात्यायनसूत्रभाष्ये सप्तद्शोऽध्यायः।

अष्टादशोऽध्यायः।

शतस्त्रियहोम उत्तरपक्षस्यापरस्याः स्रक्त्यां परि श्रित्स्वर्भपणेनार्भकाष्ठेन शातयन्त्सन्ततं जर्तिलमिश्रा-नगवेधुकासक्तृनजाक्षीरमेके तिष्ठन्तुदङ् नमस्त इत्य-ध्यायेन॥१॥

'शतरुद्रियम्' इति नाम, "अधातः शतरुद्रियं जुद्दोति" (श० ब्रा० ९-१-१-१) इति । स चोत्तरपक्षस्यापरस्याः स्नन्त्वां परिश्रित्सु कर्तः

- (१) प्रोथदश्वो न यवसेविष्ध्यन्यदा महः संवरणाद्वयस्थात्। आदस्य बातोऽअनुवाति शोचिरध स्म ते व्वजनङ्कष्णमस्ति॥(६२)
- (२) आयोष्ट्रा सदने सादयाम्म्यवतश्कायाया १० समुद्रहस्य हृद्ये। रश्मीवतीम्भास्वतीमा या द्या म्मास्यापृथिवी मोर्वन्तरिक्षम्॥ (वा०सं०१५-६३)
- (३) ''अथैनः) हिरण्यशक्तैः प्रोक्षति'' (शब्बाव ८-७-४-७) इति-श्रुतेः । सहस्रस्य मध्याद् हे हे शते प्रकिरति ।
- (४) सहस्रस्य प्रमासि, सहस्रस्य प्रतिमासि, सहस्रस्योन्नमासि, साहस्रोसि, सहस्राय स्वा ॥ (वा॰ सं॰ १९-६५) इति पञ्चभिर्मन्त्रः।
 - (५) अयमभ्यासोऽध्यायसमाप्तिञ्चकः । वर्षाचर्नभ्यस्त एव पाठः

व्यम । परिश्रित आहवनीयकार्ये । तालां समुदितानाम् नैकैकस्याः,
"परिश्रित्सु जुहोति" (श० ब्रा० ९-१-१-५) इति वचनात् । प्रयोजनं
समुदितानां धर्मसम्बन्धः । अर्कपणेनार्ककाष्ट्रेन शातयन्, अकपणे ज्ञहाः कार्ये "अर्कपणेन जुहोति" (श०ब्रा० ९-१-१-४) इति । काष्ट्रमपूर्वः त्वादुपकल्पनीयम् । तेन शातयन्त्सन्ततमविच्छित्रं जर्तिळामेश्रान् गवे-धुकासकत्न्। "जर्तिळेर्जुहोति" (श०ब्रा०९-१-१-३) इति । तथा "गवेधु-कासकतुमिर्जुहोति" (श०ब्रा०६-१-१-८) इति विकल्पे प्राप्ते शाखान्तरा-त्समुख्यः । तेन 'जर्त्तिळमिश्रान्' इत्युक्तम् । 'अज्ञाक्षरिणेके जुह्निते' शाखान्तरात् 'तिष्ठन्तुदङ् जुहाति' इति जुहोती स्ति विष्ठति-श्रिया वाचनिकी 'उदङ्' इति च दिङ्गियमार्थम् । "नमस्ते" (१) इत्य-ध्यायन मन्त्रद्रव्यं सन्ततं जुह्गोति(२) । बह्नि चेतानि कर्याणि श्रूयन्ते— "षष्टिश्र ह वै शीणि च शतान्येतच्छतरुद्दियमथ त्रिश्वद्य पञ्चत्रिश-त्" (श०ब्रा० ६-१-१-४३) इति । पतावन्ते। द्रव्यदेवता (३)सम्बन्धाः।

(१) नमस्ते० ॥ (वा० सं० अध्याय १६) सम्पूर्णेन षोडशा-ऽध्यायेन ।

(२) अग्नेः प्रोक्षणानन्तरं तदानीमेव शतस्त्रियसंज्ञको होमो भवति। तस्याऽऽहवनीये प्राप्तौ अपवाद माह-उत्तरपक्षस्य पश्चिमकोणे याः पर्राप्तितो जङ्घामात्र्यादयः सन्ति तासु कर्तव्य इति । समुदितानामेवाह्यवनीयकार्यत्वं नैकस्याः । अत्र जिल्लिमिश्रान् आरण्यतिल्लिमिश्रान् गवेषुकासकत्न् कशकुसकत्न् अर्ककाष्ठेन शातयन् अनवस्तं क्षारयन् अर्कपन्नेण जहोति । अर्कपत्रं दक्षिणकरेण, अर्ककाष्ठं च वामेनादाय तद्धविः सन्ततं पातनीयमित्यर्थः ।

(३) ते च यथा—"नमस्ते" इत्यध्याये नवानुवाकाः सन्ति । 'नमस्ते' इत्यारभ्य 'सदिमत्वा हवामहे' इत्यन्तः षोडशकण्डिकात्मकः प्रथमोऽनुवाकः। 'नमो हिरण्य' इत्यारभ्य 'नमऽ आनिर्हतेभ्यः' इत्यन्ता-स्त्रिशत्कण्डिकात्मकाः सप्तानुवाकाः। 'द्रापे अन्धसस्पते' इत्यारभ्याव-शिष्ठविशतिकण्डिकात्मकश्च चरमो नवमोऽनुवाक इति।

तत्र प्रथमानुवाकस्य प्रथमकण्डिका गायत्रीछन्दस्का, तत्र त्रयः ३ पादाः। ततस्तिसः कण्डिका अनुष्टुप्छन्दस्काः, तत्र प्रतिकण्डिकं चत्वारः पादा इति द्वादश १२ पादाः। ततस्तिसः कण्डिकाः पंकि-इछन्दस्काः, तत्र प्रतिकण्डिकं पञ्चपादा इति पञ्चदश १५ पादाः। ततः सप्त कण्डिका अनुष्टुप्छन्दस्काः, तत्र प्रतिकण्डिकं चत्वारः पादा इति अष्टाविंशतिः २८ पादाः। ततो हे कण्डिके जगतीछन्दस्के, तत्र

प्रतिकण्डिकं षट् पादा इति द्वादश १२ पादाः । सर्वेषां सङ्कलने प्रथमेऽजुनाके सप्ततिः पादा मवन्ति । एकैकस्य पादस्य च साकांक्षत्वेऽपि
"जहामि सेदिम्" इतिवत् 'दिवो मात्रया' इतिवच्च मन्त्रत्वं "पष्टिश्च ह वै
जीणि" इत्यादिशतपथश्रृत्यनुरोधात् । प्रथमग्रेऽप्यूह्मम् । एवडच प्रथमेऽनुवाके सप्ततिसंख्या मन्त्राणां सिद्धाति ।

ततिस्थात् कण्डिकाः सप्तानुवाकभूता यज्ञ्षि । तत्राऽऽद्यासु दशकण्डिकासु 'नमो हिरण्यवाहवे' इत्यारभ्य 'अर्भकेभ्यश्च वो नमः' इत्यनतासु प्रतिकण्डिकमप्ट यज्ञ्षीति अशोति८०र्यज्ञ्षि । ततो 'नमस्तश्चभ्य'
इत्यारभ्य 'सुधन्वने च' इत्यन्तासु दशकण्डिकासु तथ्येगाशित८०र्यज्ञ्षि
ततो 'नमः स्त्याय च' इत्यारभ्य 'अरुणाय च' इत्यन्तासु तिस्रुषु
कण्डिकासु प्रतिकण्डिकमप्टेति चतुर्विशतियज्ञ्षि, 'नमः शङ्गवं च'
इति कण्डिकायां दश, 'नमः शम्भवाय च' इत्यस्यां पट्, 'नमः पार्याय
च' इत्यारभ्य षद्चत्वारिशत्तमकण्डिकास्थ 'धनुष्ठद्भ्यश्च वो नमः'
इत्यन्तासु सार्धवतस्यु कण्डिकासु प्रतिकण्डिकमप्टाण्टेति सङ्कुलतेऽशीति८०र्यज्ञ्षि । ततो 'नमो वः किरिकेभ्यः' इत्यवशिष्टकण्डिकायां
चत्वारि ४ यज्ञ्षीति सर्वेषां यज्ञुषां सङ्कुलने चतुश्चत्वारिशदधिकशतद्वयसंख्या यज्ञुषां विशत्कण्डिकासु संप्यते । अत्राणि पूर्ववत् प्रत्येकं
यज्ञुषो मन्त्रत्वमिति सप्तस्वनुवाकेषु चतुश्चत्वारिशदधिकशतद्वयसंख्या
२४५ मन्त्राणां सिद्यति ।

नवमेऽनुवाके प्रथमा कण्डिका वृहती, तत्र प्रथमः पादः सप्ताक्षरो वितीयोऽष्टाक्षरस्तृतीयो दशाक्षरश्चतुर्थो द्वादशाक्षर इति चत्वारः पादाः। ततो द्वितीया कण्डिका जगती, तृतीया अनुष्टुप्, चतुर्थी त्रिष्टुप्। चत्स्व्यिष कण्डिकासु प्रतिकण्डिकं चत्वारः पादा इति पोडश १६ पादाः। पश्चमी च यवमध्या त्रिष्टुप्, तत्र तृतीयः पाद पकादशाक्षरोऽन्ये चत्वारश्चाष्टाक्षरा इति पश्च ५ पादाः। ततो 'विकिरिद्रः इत्यारम्य 'नमोऽ स्तु रुद्देभ्यः' इत्येतत्प्राक्तनद्वादशकण्डिका अनुष्टुभः, प्रतिकण्डिकं च चत्वारः पादा इति अष्टाचत्वारिशत् ४८ पादाः। सर्वेषां सङ्कुलने पक्तानस्त्रतिः पादाः सप्तदशकाण्डिकासु । स्कृत्यः च पादस्य पूर्ववन्मन्त्रत्वम् । ततोऽवशिष्टास्तिन्नः काण्डिका यज्ञंषि, तत्र प्रतिक्षित्वः चतुर्वशं चतुर्दशं चतुर्वशं यज्ञंषीति द्वाचत्वारशद् यज्ञंषीति तावन्तो मन्त्राः पूर्वैः सह सङ्कृत्वता पकादशाधिकशतं मन्त्रा नवमेऽनुवाके सिद्धान्तोति हरिस्वाम्यादय इति रुद्दकल्यद्वमे स्पष्टमः।

देवयाज्ञिकादयस्तु प्रथमेऽनुवाके षट्षष्टिर्मन्त्रास्ततः सप्तस्वनुवाकेषु षटषष्ट्यधिकशतद्वयं, नवमेऽनुवाके च सप्तदशसु कण्डिकासु पूर्ववदे-कोनसप्तिरन्तिमासु च तिसृषु कण्डिकासु प्रतिकण्डिकमष्टाष्ट्रेति चतुर्विशतिरिति गणनाप्रकारमाहुः। तत्र प्रथमेऽनुवाके पञ्चदशषोड शक्षिडकयोर्जगतीछन्द्स्कयोः प्रतिकिष्डकं चन्वार एव पादाः, ततः सप्तस्वनुवाकेषु प्रथमासु पञ्चकण्डिकासु प्रतिकण्डिकं द्वाद्शयज्ञीष, षद्यां च नव, सप्तमीमारभ्य सप्तदशकण्डिकासु प्रतिकण्डिकमण्डा ध्देति, तत एकस्यामेकादश, ततोऽग्रिमायां षद्, ततश्चतसृषु अष्टा-ष्टेति, ततश्वैकस्यां द्वादश, सर्वान्ते च तिसृषु कण्डिकासु प्रतिकण्डि-कमण्राष्ट्रीत । हिरण्यवाहवे सेनान्ये, वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः, शब्पिञ्जराय रिवर्षीमते, हरिकेशाय उपवीतिने, वभ्द्यशाय व्याधिने, भवस्य हेत्यै, हद्राय आततायिने, स्ताय अहन्त्ये, रोहिताय स्थापतये, सुवन्तये वारि वस्कृताय, मन्त्रिणे वाणिजाय, उच्चैघीषाय आक्रन्दयते, कुरस्नायतया भावते, सहमानाय निव्याधिने, निषङ्गिणे ककुमाय, निचेरवे परिचराय, वञ्चते परिवञ्चते, निषङ्गिण इषुधिमते, स्कायिभ्यो जिद्या असद्भ्यः, असिमदुभ्यो नक्तंचरदुभ्यः, उष्णीषिणे गिरिचराय, बृक्षभ्यो हरिकेशेभ्यः इति ह्योईयोरेकार्थबोधकत्वेऽपि सर्वेषामपि गुणपदस्वेनैकविशेष्यकः त्वेनैकार्थबोधकत्वाविशेषाद् गुणार्थानि द्रव्यार्थाने वा सर्वाण्येव पदानि मन्त्रभेदप्रयोजकानि इति पृथगेव मन्त्रत्वमिति तदाशयः।

तन्न, "स वा अशीत्यां च स्वाहाकरोति, अथाशीत्यामथाशीत्याम्" 'अथैतानि यज्ञ्षि जपित नमो वः किरिकेम्यः" इति श्रुतिविरोघात्। अनया हि श्रुत्या मध्येषु सप्तस्वनुवाकेषु त्रिंशत्किण्डात्मकेषु चतुश्चत्वा- रिशद्धिकशतद्धयसंख्यैव मन्त्राणामवगम्यते नतु षदण्ड्यधिकशतद्धयसंख्यैव मन्त्राणामवगम्यते नतु षदण्ड्यधिकशतद्धयसंख्यैत । किञ्च हिरण्यवाहचे इत्यादीनां पृथङ्गन्त्रत्वे 'सेनान्ये' इत्यादित्रयक्षराणामिष मन्त्रत्वं प्रसञ्चते । नचेदं महीघरसंमतं "चतुरक्षरं देवी वृहतो, पञ्चाक्षरं देवी पंक्तिः, षडक्षरं यज्जुर्गायत्री, सत्राक्षरं यज्जुरक्षणक्, अष्टाक्षरं यज्जुरतुष्टुष्, नवाक्षरं यज्जुर्वहतो, दशाक्षरं यज्जुर्विष्कः, एकादशाक्षरं यज्जित्वाक्षरं यज्जित्वाक्षरं यज्ज्वर्वाक्षरं यज्जित्वाक्षरं सामोष्टियोक्षय किरिकेम्य इति" इत्युक्त्वा 'एतान्येवात्र छन्दां स्थि" इत्युक्त्या इतोऽन्येषामस्वीकारात्।

ाल रेड. यद्पि कात्यायनः सर्वानुकमे "नमो चः किरिकेभ्य इत्य[ा]नवायु-सूर्यहृदयभूताः पञ्च व्याहृतयो बहुरुद्देवत्या" इति एकाधिकां संख्या-माह्य तद्पि मन्त्रविभागशकारान्तरपरतया कथञ्जित्रयम् । "एते होद् ∜ एवं च सित एतावन्ति चतुर्मुष्टिकानि गृह्यन्ते । अजाक्षीरपक्षे चैताव-न्त एव षड्वर्गाः ॥ १॥

त्र्यनुवाका(१)न्ते स्वाहाकारो जानुमात्रे ॥२॥ "स वै जानुद्दने प्रथमं स्वाहाकरोति" (श्र० त्रा० ९-१-१-११) इति वचनात्॥२॥

पञ्चान्ते च नाभिमात्रे ॥ ३॥

पश्चातुवाका(२)न्ते नाभिमात्रे । चशब्दात्स्वाहाकारः ॥ ३॥

प्राक्च प्रस्पवरोहेभ्यो(३)मुखमात्रे ॥ ४ ॥ स्वाहाकारः ॥ ४ ॥

प्रतिलोमं प्रत्यवरोहाञ्जुहोति प्रमाणेषु नमोस्थिवति प्रतिमन्त्रम् ॥ ५ ॥

प्रातिलोम्यं च प्रथमं मुखमात्र, ततो नामिमात्रे, पुनर्जानुमात्रे इति । प्रत्यवरोहाश्च "नमोऽस्तु रुद्रेभ्य "(४) इति ॥ ५ ॥

हयने प्रास्पति चात्वाले ॥ ६ ॥ अर्कपर्णार्ककाष्ठे इत्यर्थः । आगन्तुत्वाच कर्मापवर्गान्ते ॥ ६ ॥ इत्यष्टादशाध्याये प्रथमा कण्डिका ।

सबै कुर्वन्ति देवानां हृदयेभ्य इति' इति श्रुत्या 'देवानां हृदयेभ्य' इत्यस्य सर्वत्रानुषङ्गबोधनेन यज्ञश्चतुष्कस्यैव लाभादिति सूत्रमाष्यकाः । चतुर्णामेवादौ नमःशब्दायज्ञश्चतुष्कत्विमिति संहितामाष्यकाराः ।

कर्मसु सर्त्रत्र मन्त्रमञ्योदेवता इत्यन्यत्र निर्णीतम् । तेन प्रकृते उक्त-विधया संपन्नेभ्यः पञ्चविद्यात्यधिकचतुःशतमन्त्रेभ्यः प्रतिपादितानां तत्संख्याकदेवतानां सम्बन्धा अभिहिना भवन्तीत्यर्थः ।

- (१) अर्ड्सकेडभ्यश्च वो नमः॥ (बा॰ सं०१६-२६) इति तृतीः याज्ञवाकान्ते जङ्घाम। त्र्यां परिश्रिति स्वाहाकारः कार्यः।
- (२) नमस्तक्षम्य (वा०सं०१६-२७) इत्यादिमिः सुधन्वने च इत्य-न्तैः पञ्चमानुवाकान्तैः नाभिमात्रेपरिश्रितिस्वाहाकारः।
- (३) नमोस्तु रुदुद्रेभ्य० इत्यादयो मन्त्राः प्रत्यवरोहसंज्ञकाः तैभ्यो मन्त्रेभ्यः प्राक् मुखमात्र्यां परिश्रिति स्वाहाकारः ।
- (४) नमोस्तुरुद्देभ्यः० (बा० सं०१६-६४, ६५, ६६) इति कण्डिकात्रयेण प्रतिलोमं होमः । 'ये दिवि' इति मुखमाने 'येन्तरिक्षे' इति नामिमात्रे । 'ये पृथिव्यां' इति जानुमाने ।

चित्यं परिषिश्चत्यग्नी इक्षिणे निकक्षेऽद्रिं कृत्वा-ऽइमन्नूर्जिमित्यद्रेराधि ॥ १॥

चित्यमग्निमग्नीत्परिषिञ्चेद्दक्षिणे निकक्षेऽद्धिं कृत्वा (१)"अश्मन्मूर्ज-म्"(२) इत्यनेन मन्त्रेणाद्धेरारभ्य ॥ १ ॥

अइमंस्ते श्चिदि(३)त्यद्रौ क्रम्भं कृतवा मधि त

कर्गित्यादाय ॥ २ ॥ एवं बिरपरम् ॥ ३ ॥

परिषिञ्चाति ॥ ३ ॥

ताबत्प्रतिपर्यति॥ ४॥

"निधायोवहरणं, त्रिविंपल्ययते"(ज्ञण्डा॰९-१-२-६) इति श्रुतेः॥४॥ कुम्भेऽद्रिं कृत्वा दक्षिणस्यां वेदिश्रोणौ प्राङ् तिष्ठन्

दक्षिणास्यति (४)यं ब्रिष्म(५) इति ॥ ५ ॥

अनेन सन्त्रेण ॥ ५॥

अभिन्ने भेत्तवै ब्रयात्॥ ६॥

यदि न भिद्यते 'मेत्तवै' ब्रूयादिति । तच प्रतिप्रस्थाता प्रेषे । मेदने तु प्रधानत्वादध्वर्युः ॥ ६ ॥

अत्रैतच्चिन्यते । कि कुम्भविषयमेतद्भेदनम् , उताद्विविषयमिति । कि तावत्यासम् ? सुत्रेणवोषकमः—

कुम्भे भेदन् सामध्यति ॥ ७॥

कुम्भविषयमेतद्भेदनम्, नाद्भिविषयम्। कुत एतत् ? एवमेतद्भवनं समर्थे भवति-"यदि न भिद्येत भेत्तवै ब्यात्" (रा० ब्रा०९-१-२-१२) इति । अद्रौ त्वसमर्थमेव । न दि तस्य कठिनत्वाद्भेदनमाराङ्क्यते ॥ ७ ॥

- (१) दक्षिणपश्चस्यापरसिन्धसमीपवितन्यातममागेऽद्धिं कृत्वा अ-इमानं निधाय उदकुम्ममादाय अद्रेरारभ्य सपश्चपुच्छमस्रि प्रदक्षिणं जळधारया समन्तादग्रीत् सिञ्चति ।
 - (२) अश्मन्तूर्जम्०॥ (वा० सं०१७-१)
- (३) सेकान्ते "अश्मैंस्तेश्चत्" (वा० सं० १७-१) इत्यतेन कुर स्प्रमन्त्रमिन निधाय पुनः "मयितऽऊक्" (वा० सं० १७-१) इति मन्त्रेण कुस्समादाय परिषिक्वेत्।
 - (४) दक्षिणस्यां निरस्यति इत्यपिपाठः ।
 - (५) यन्द्रिद्रपाः०॥ (वा॰ सं॰ १७-१)

एवं प्राप्त आह—

अइमनि वाऽर्धवादात्॥ ८॥

वाशब्दः पक्षव्यावृत्तौ । अश्मिन वैतद्भेदनं प्रतिपत्तव्यम् । न कुम्म-विषयत्वम् । कुत पतत् ? अर्थवादात्-"यदा हाव स भिद्यतेऽध तः ग्रु-गृच्छति यं द्वेष्टि" (श० ब्रा॰ ९-१-२-१२) इति । सा च ग्रुगरम-नि निहिता "तद्दमनि शुचं द्धाति" इति ॥ ८ ॥

बाच्यत्त्राच ॥ ९ ॥

अपि चारमन्येव वाच्यं भेदनं न कुम्मे, स हारम(१)गर्भः क्षित्रो-ऽवस्यमेव भिद्यत इति ॥ ९ ॥

अनपेक्षमेत्योदङ्पाङ् तिष्ठन्नात्मन उपरि प्रापणानते जपतीमा म[२] इति ॥ १०॥

आत्मा चात्राग्न्यात्मोच्यते(३)॥ १०॥

मण्डूकावकाचेतसशास्त्रा वेणी वद्धवाऽवकर्षति मन्त्र-

कृष्टवत्समुद्रस्य त्वेति प्रत्यूचम् ॥ ११ ॥

मण्डूकादीन्वेणौ वद्ध्वाऽनि विकर्षति मन्त्रकृष्ट्(४)वन्त्रमेण "समु-दूस्य त्वा"(५) इति प्रत्युचम् ॥ ११ ॥

पचपुरुष्ठानि चाभ्धात्ममग्ने पायकरोचिषेति ॥ १२ ॥ अग्न्यात्मानमाभिमुख्येन पक्षपुरुष्ठानि कर्पति ''अग्ने पायकरोचिः षा''(६) इति प्रत्युचमेव ॥ १२ ॥

⁽१) 'असमर्थः' इ० पा०।

⁽२) इमामे० ॥ (वा० सं० १७-२,३)

⁽३) ततः कुम्भिनरसनानन्तरं यजमानो ऽपश्यन्नेत्य दक्षिणाश्रोः णिसमीपे उदङ् प्राङ् इत्यैशानदिगिभिमुखस्तिष्टन् अग्नेरुपरि हस्तौ प्रलः म्बौ प्रसार्य प्रापणान्ते चयनप्रदेशं स्प्रष्टुं यत्र शक्नोति तत्र स्पृष्ट्वा जपित कण्डिकाद्वयमित्वर्थः।

⁽४) मन्त्रकृष्टवदिति दक्षिणश्रोणेरारभ्य दक्षिणांसं यावत्, दक्षिः णश्रोण्यायुत्तरश्रोण्यन्तम्, उत्तरश्रोणेश्तरांसपर्यन्तम्, उत्तरांसाद्दक्षिः णांसं च यावद् भूमिसंलग्नेन वेणुना क्रमेण चतुर्भिमंन्त्रैः कर्पति।

^{, (}५) समुद्रस्य त्वा०॥ (वा० सं० १७-४,५,६,७)

⁽६) अग्ने पाचक रोचिषाः ॥ (वा॰ सं॰ १७-८,९,१०) तत्र प्रथममन्त्रेण दक्षिणं पक्षं, द्वितीयेन पुच्छं, तृतीयेन चोत्तरं पक्षं कर्षेत्।

अन्त्यमुत्तरम् ॥ १३ ॥ अन्त्यमुत्तरं पक्षम् ॥ १३ ॥ वेणुमुत्करे कृत्वा चित्यमालभ्य तिष्ठन्— इत्यष्टादशाध्याये द्वितीया कण्डिका ।

हिङ्कत्य साम गायति ॥ १॥

सामगानमुद्गातुः स्थात् , समास्थानात् । अध्वयोवी तचनसामध्यीः तः । "नान्योऽध्वर्योगीयत्" (श्रव ब्रा० ९-१-२-४३) इति समास्याः नमप्यध्वयोरेव । विधानानुसारिणी हि समास्याः । विधानं चाध्वर्यव वेदविहितम्-"अथैनः सामभिः परिगायति" (श्र० ब्रा० ९-१-२-३२) इति । एवं च 'नान्योऽध्वर्योगीयते' इत्यनुवाद एव ॥ १॥

पुरस्ताद्वायञ्चम् ॥ २ ॥

साम गायति ॥ २ ॥

दक्षिणे पचे रथन्तरम् ॥ ३॥

उत्तरं बृहत्॥ ४॥

आत्मनि वामदेव्यम् ॥ ५ ॥

पुच्छे यज्ञायज्ञियम् ॥ ६ ॥

दिचिणे निकचे[१] प्रजापतिहृद्यम् ॥ ७॥

अग्न्युक्धरं चारुसेत्याह ॥ ८ ॥

होतुः प्रेषणम् ॥ ८ ॥

औपवस्थ्ये विसृष्टवाचि(२) पञ्चगृहीते हिर्ण्यदाकलाः न्यास्यति पञ्चा। ९॥

"उपवस्थीयेऽहन्त्रातरुदित आदित्ये वाचं विस्तृजते"(श० ब्रा०-९-२-१-१) इति प्रकृत्येवं श्रुतत्वात् ॥ ९ ॥

द्धि मधु घृतं पात्र्याः समासिच्य स्थाल्यां वा महा-मुख्यां कुदामुष्टिं चोपर्युभयमादाच चित्यारोहणं नम-स्त इति ॥ १०॥

(२) औरवसथ्ये उपसदामन्तिमे इसीषोमीयेऽहनि वाग्विसमें कृते।

⁽१) दक्षिणे निकक्षे—कक्षो दक्षिणपक्षस्यापरसन्धिः तस्समीपस्धं देशं निशब्द आचष्टे । तस्मिन् आत्मप्रदेशे अध्वर्युर्हीतारं प्रत्याह ।

दध्यादीन् ाद्यां प्रास्य महामुख्यां वा स्थाद्यां तदुपरि च कुशमुः ष्टिमुभयं गृहीत्वा चित्यमारोहेत् "नमस्ते"(१) हत्यनेन मन्त्रेण ॥ १० ॥ स्वयमातृण्णायां पश्चगृहीतं जुहोति नाभिवद्धिरण्याः दर्शनं च नृपदे वेडिति प्रतिमन्त्रम् ॥ ११ ॥

स्वयमातृण्णायां पञ्चगृहीतं जुहोति नामिन्याघारणवत्(२) "नृपदे वर्"(३) इति प्रतिमन्त्रम् । हिरण्यदर्शनं च न भवति(४) ॥ ११ ॥ समासिक्तान्कुद्धाः प्रोक्षाति सपरिश्रित्कं वाह्येन

च ये देवा (५) इति ॥ १२ ॥

"अधैन हे समुक्षति" (द्रा० ब्रा० ९-१-१२) इति प्रकृत्य "सर्वतः समुक्षत्यिष वाह्येन परिश्रित" (द्रा> ब्रा० ९-२-१-१२) इति श्रुतेः ॥१२॥

प्राणदा (६)इत्यवरोहित ॥ १३ ॥

अवतराति ॥ १३ ॥

एवमारोहणावरोहणमतः ॥ १४ ॥

अत ऊर्ध्वमेवमेवाऽऽरोहणावरोहणे(७) कार्ये ॥ १४ ॥

उपसदन्ते प्रवर्गीतसादनं यथोक्तमग्रौ परिष्यन्दे वा॥१५॥

वाद्यब्दो विकल्पार्थः । विकल्पेन हि अवगमत्र । परि समन्तादापः स्यन्दन्ते यत्र प्रदेशे स परिष्यन्दः ॥ १५ ॥

स्वयमात्रणास्यृष्टं प्रथमम् ॥ १६ ॥

अग्निपक्षे—"स्वयमातृण्णया संस्पृष्टं प्रवर्ग्यमुत्सादयति" (श० ब्रा० ९-२-१-२३) इति वचनात् ॥ १६ ॥

(२) दक्षिणांसश्चोणिद्वयोत्तरांसमध्येष्वित्वर्थः।

(३) नृषदं व्वेड्०॥ (वा० सं०१७-१२) अस्यां कण्डिकायां पञ्ज मन्त्रा बोध्याः।

(४) नाभिन्याघारणे हिरण्यं पश्यन् जुहोति, अत्र तु नेति भावः।

(५) ये देवा० (वा० सं० १७-१३, १४) पाज्यां सिकान् दिधम-धुचृतान् परिश्चित्सहितं सपक्षपुच्छमित्रं मध्ये बहिश्च कुशैः प्रोक्षति मन्त्र-द्वयेनेत्यर्थः ।

(६) प्राणदाः ॥ (वाः सं०१७-१५) प्रोक्षणानन्तरमग्रेरवतरः

त्यध्वर्युः ।

(उ) अतः परमस्याग्नेरोहणमवतरणं च एवमेव सर्वैः कर्तव्यम् ।

⁽१) नमस्ते हरसे॰ (वा॰ सं॰ १८-११) इति मन्त्रेणाध्वर्युः, ब्रहः यजमानौ तु अग्नेर्यक्षिणत उपविशेताम् ।

पश्चगृहीतं जुहोत्यग्निहित्मेनेत्यृचा(१) षोडग्रगृहीताः र्धमत्याकशेषेण ॥ १७ ॥

पुनः षोडशगृहीतं गृहीत्वा तद्यमनुवाकशेषेणाप्टामि (२)र्फे ग्मिजुहोती(३)ति ॥ १७॥

चक्षुषः पितत्यपरमनुवाकेन ॥ १८ ॥ अपरमर्द्ध "चक्षुषः पिता"(४)इत्यनुवाकेन अष्टाभिक्रंग्मिः । सर्वा णि चैतानि शालाग्नो जहोति ॥ १८ ॥

> आर्द्रोंदुम्बरीघृतोषितास्तिस्र उदेनमित्याः द्याति प्रत्युचम्॥ १९॥

औदुम्बरीः समिधः घृते न्युत्ताः सर्वी रात्रिमुपिताः तिस्र "उदे-नम्"(५) इत्यादधाति प्रत्युचम् ॥ १९॥

वेक्रतावसरे पाकतानुवृत्यर्थमाह-

अग्निं प्रणयति ॥ २०॥

तत्र विशेषमाह—

े प्रेष्यत्यु चच्छेष्ममुपयच्छो पयमनीः ॥ २१॥ अयं च वैषः प्रतित्रस्थातुः । तदर्थोऽध्वर्योः ॥ २१॥

अग्नये प्रहिचमाणायानुबृद्धग्नीदेकस्प्रयानृदेहि ब्रह्मन्न प्रतिरथं(६) जपेति ॥ २२ ॥

च प्रेष्यति ॥ २२॥

⁽१) अग्निस्तिग्मेन० (वा० सं० १७-१६)

⁽२) यर इमा० (वा० सं०१७-१७, १८, १९, २०, २१, २२, २३,२४)

⁽३) शालाउग्नौ इति शेषः ॥

⁽४) चक्षुषः पिता०॥ (बा० सं० १७–२५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३२)

^{् (}५) उदेनम्॰ (वा॰ सं॰ १७-५०, ५१, ५२) अस्य प्रादेशमात्रीः रित्यादिः।

^{् (}६) 'आशुः शिशान' (वा० सं०१७-३३) इत्यारम्य 'तमसा सच-न्ताम्' (वा०सं०१७-४४) इत्यन्तं द्वादश्चीत्मकं ब्रह्मा 'अप्रतिरथनामकं सूक्तं जप' इति प्रेम्यति ।

त्रिहस्तायामुग्रम्योदु(१) त्वेति(२)॥ २३॥ चित्यं गच्छन्ति पश्च दिश(३) इति॥ २४॥

त्रिरुक्तायां होत्रा वधमायामृचि 'उतुत्वा' इत्युद्यम्याधि चिरु प्रति गच्छन्ति "पञ्च दिश" इत्यनेन मन्त्रेण ॥ २४ ॥ आग्नीभ्रदेशादक्षिणं पृष्ट्यासहितं पृठ्न्यइमान(४)मु-पदभाति विमान(५) इति ॥ २५ ॥

अनेन मन्त्रेण(६) ॥ २५॥

न नित्ये ॥ २६ ॥

नित्ये सादनसुददोहसी न भवतः। इष्टकासंस्तवात्मात्तयोनिषेधः॥२६॥ निधायैन(७)मितिकामन्तीन्द्रं विश्ववा (८)इति ॥ २०॥ "तं निधाय यथा न नश्येदथोपायन्ति" (श्र० ब्रा०९-२-३-१९, २०) इति वचनात्॥ २७॥

इत्यष्टादशाध्याये तृतीया कण्डिका।

क्रमध्वमिति (९) ति चित्यमारोहिन्त ॥ १ ॥ अतश्च 'नमस्ते'(वा० सं० १७-११) इत्ययं निवर्त्तते ॥ १ ॥ स्वयमातृण्णामध्यप्तिं धारयञ्जुक्लवत्सापयसा-ऽभिजुहोति कृष्णाया दोहनेन स्वयमातृण्णामवसिश्च-व्रक्तोषासेति ॥ २ ॥

⁽१) उद्देशा० ॥ वा० सं० १७-५३

⁽२) होत्रा प्रथमायामृचि त्रिः पठितायां सत्यां प्रति प्रस्थाता 'उ-दुःवि'ति मन्त्रेण प्रदीत्रमिष्मं चालाद्वार्यादृष्वंमुत्पाद्रयतीत्यर्थः।

⁽३) पञ्च दिशोः ॥ (वा० सं० १७-५४, ५५, ५६, ५७, ५८)

⁽४) पुरन्यदमानं तर्जुं वृत्तं पाषाणं चित्रवर्णे वा।

⁽५) डिवमानऽ एष०॥ (वा० सं० १७-५९,६०)

⁽६) कण्डिकाद्यसमकेनेत्यर्थः।

⁽ ७) पनं पृदन्यश्मानं कचिद्गुप्ते देशे स्थापयित्वा सर्वे चयनं प्रति। गच्छन्ति ।

⁽८) इन्द्रं व्यिक्त्वा०॥ (वा० सं० १७-६१, ६२, ६३, ६४)

⁽९) क्रमद्श्वमिन ॥ (वा० सं० १७-६ ५, ६६, ६६, ६८, ६८)

स्वयमातृष्णाया उपरि(१) धारयन्नाग्नं कृष्णाया गोः शुक्कवासायाः पयः सा(२) दोहनेनाभिज्ञहोति "नकोषा(३)सा" इत्यनेन मन्त्रेण स्वयमातृ-ण्णा मवसिश्चन्। अयं जुहोतिः,ततश्च सान्नाय्यधर्माः प्रवर्तन्ते जुहोतित्वा-नमन्त्रवर्जम् । दोहनस्य जुहुकार्यापत्तिरतश्च तद्धर्मा भवन्ति । महावेदेश्च सम्मर्शनान्ता धर्माः कृताः, तत उत्तरपरिश्रहाद्यत्र कर्तव्यम् । शतक्रिये तु सननादि ॥ २॥

पैतुदारवाद्यज्ञैके ॥ ३ ॥

पके प्राङ् 'मिय गृह्णामि' इति जपात् । तत्र ह्युक्तमाचार्येण "उत्तर-वेदिप्रोक्षणाद्या सम्भारनिवपनात्कृत्वा" (का. श्रो. १७-३-२६) इति । यद्येविमद्द कस्मात्सम्भारनिर्वापः ? अग्न्यर्थत्वात् । यद्येविमहैच सन् मभारनिर्वापः ॥ ३ ॥

तस्यामग्निं निद्धाति सुवर्णोऽसीति वषद्कारेण ॥ ४ ॥

तस्यां स्वयमातृण्णायां "सुपणोंसि"(४) इत्यनेन मन्त्रेण वषट्काः रान्तेनाग्नि निद्धाति ॥ ४ ॥

नित्ये च ॥ ५॥

अत्र मवतः। इष्टकासंस्तवाद्ग्रेः॥ ५॥

समिद्धानः ज्ञामीलीवैकङ्कत्यौदुम्बर्धस्ताः सवितु(५)

रितिप्रत्यृचमुत्तमा संकर्णका(६)॥६॥ समिज्ञवति॥६॥

कर्णकाऽसावे दाधद्रप्सा(७)क्ताः॥ ७॥ कर्तव्या॥ ७॥

स्हवाहुती जुहोत्यमे तमचे(८)ति च प्रत्युचम् ॥ ८॥ पृणीहुतिं च सप्त त(९) इति ॥ ९॥

- (१) प्रतिप्रस्थात्रा।
- (२) मृन्मयदोहपात्रेण।
- (३) नक्तोषासा०॥ (वा० सं० १७-७०, ७१.)
- (४) सुपर्णोबिन ॥ (वान सं १७-७२, ७३)
- (५) तार्थ सवितुः०॥ (वा० सं० १७-७४, ७५, ७६)
- (६) कर्णको दाखस्फोटो रोगः तद्वती सकर्णका इति केचित्।
- (७) घनी मृतं द्धि द्रप्स इत्युच्यते ।
- (८) अग्नेतम्०॥ (वा॰ सं॰ १७-७७, ७८)
- (९) सप्त ते०॥ (वा० १७-७९)

जुहोति॥ ९॥

तिष्ठन्त्सिमधः सर्वेत्र मध्ये ॥ १०॥

सर्वत्रप्रहणात् समितुदेशेन विहितत्वातिष्ठातिक्रिया सर्वत्र भव-ति । समिदाधानं ब्रह्णाहुत्योर्मध्ये, "अन्तेष्वाहुतीः" (का० औ० १=-४-११) इति स्त्रितत्वात् ॥ १० ॥

अन्तेष्वाहुतीरुपविदय ॥ ११ ॥

तिष्ठतिक्रियानन्तर्यात् 'उपविदय' इत्युच्यते ॥ ११॥

अत्र पञ्चम्याः ससर्चोपस्थानः सर्वोपधानात् ॥ १२ ॥ अस्मिन्नवसरे पञ्चम्याश्चितेः सतर्वोपस्थानं कर्तव्यम् । अत्र हि सक्का पञ्चमी चितिरुपहिता भवति ॥ १२ ॥

धिष्ण्यान्वा चित्वोत्तमसंघोगात् ॥ १३॥

अथवा धिष्णयांश्चित्वा सप्तचोंपस्थानं कर्त्तव्यस् । कुत पतत् ? धिष्ण्यानां हि पञ्चम्याश्चितेः अन्तरमावः । तस्मात्तत्रैव युक्तमुपः स्थानम् ॥ १३ ॥

अभिमृशेदिच्छन्तसम्बत्सरोऽसी(१)ति॥ १४॥ अग्निम्॥ १४॥

एवं यथाचिति ॥ १५॥

सम्मर्शनं कर्तव्यस । यन्नामा चितिस्तद्भिधायकेन(२) मन्त्रेण॥१५॥ वैद्यानरमादतां निर्वपति यथोक्तम् ॥ १६ ॥

⁽१) सम्बत्सरोऽसि०" (वा० सं० २७-४५)

⁽२) 'सम्बन्सरोऽसि' इति मन्त्रस्य मध्ये ''सुपर्णचिदासि" (वा०सं० २७—४५) इति पठितमस्ति तेन तत्पदं सुपर्णचितिपक्षे प्रयोज्यम् । एतमेव द्रोणविदादिपक्षे यथाचिति ।

वैद्यानरमधिशित्य दक्षिणोत्तरौ माहतौ ॥१७॥

अधिश्रयति । 'अवरोक्तमुत्तरम्'' (का० श्रौ० १-१०-५) इत्य-स्यापवादोऽयम् ॥१७॥

पश्चाच संकृष्टतरौ ॥१८॥ चरान्दाइक्षिणाचरावधिश्रयति ॥ १८॥ एवमपरौ ॥१९॥

द्वावधिश्रयतीति शेषः। एवंशब्देन च दक्षिणोत्तरता संक्रष्टतरता च छभ्यते ॥ १९ ॥

पश्चाद्रण्येऽनुच्यम् ॥२०॥ अरण्येऽनुच्यं च पुरोडाशं पश्चाद्धिश्रयति ॥२०॥ होमासाद्नयोश्च ॥२१॥ चशच्दाद्यमेव विधिः॥ २१॥ पुच्छाद्परान् कुशानास्तीर्योह्वनीयसाहितान्वा तत्रासाद्नम् ॥२२॥

कुशानास्तीर्येति प्राकृतमेव परिस्तरणमन्यते । प्रदेशविधानाय 'पुच्छादपरान्' इति । कुत पतत् ? सपुच्छोऽयमाहवनीय इति । प्रकृते वाहवनीयमपरेण स्तरणं वृत्तमिहापि तथैव कर्त्तव्यम् । आहवनीयसहितान्वेति । कुत पतत् ? आहवनीयशब्दो ह्यान्यभिधायक उप वारवृत्या स्थळे वर्तते । तस्मादाहवनीयसहितानेवेत्यवधार्यते । तत्रासादन कर्तव्यम् ॥ २२ ॥

वैद्यानरेण(१) प्रचर्ध सर्वहुतेन इस्तेन मारुतान् जुहो-त्युपविदय वैद्यानरे वा वैश्वानरं पृथुं कृत्वा ग्रुकज्योति रि(१)ति प्रतिमन्त्रम् ॥२३॥

मारुतान् जुहोति । विकल्पश्चायं वैश्वानरे होमोऽशौवेति ॥ २३ ॥ विमुखेनारण्येऽनृच्यम् ॥२४॥

अरण्येऽनूच्यं पुरोडाशं विमुखेन जुहोति । विमुखश्चाध्येतृणां

(२) शुक्रज्योतिः॥ (वा० सं० १७—८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५)

⁽१) वैश्वानरेण द्वादशकपालेन पुरोडाशेन यागं करवा उपविश्य हस्तेन आहवनीये मारुतान् पुरोडाशान् सर्वहृतान् जुहोति । यद्वा, प्र थनकाले वैश्वानरपुरोडाशं विस्तीणे कृत्वा तदुपर्येव जुहोति ।

प्रसिद्धः "उप्रश्च मीमश्च"(१) इति ॥ २५ ॥ इन्द्रं दैवीरि(२)ति जपाति ॥ २५ ॥

आगन्तुत्वादन्ते ॥ २५ ॥

इस ह स्तनाधि(ह) ति वाचयाति वा ॥ २६॥

जपति वेति विकल्पः । वैद्यानरमाठतानामेकतन्त्रम् । तत्र च यः साधारणपदार्थः स मन्त्रवान्कर्तव्यः। मारुतानां हि पदार्थमात्रे ण प्रयोजनम् । समन्त्रकोऽपि पदार्थः ५दार्थ एवेति ॥ २६ ॥ इत्यप्राद्याध्याये चतुर्थी कण्डिका ।

वसोर्घारां जुहोत्योदुस्वर्धा पश्चगृहीत; सन्ततं यज-मानोरण्येऽनृच्येऽग्निप्राप्ते योजश्रम इत्यष्टानुवाकेन ॥१॥

'वसोधारा' इति कर्मनामधेयम् । तच समुदायस्य । एवं हि अयते "पष्टिश्च ह वै त्रीणि च हातान्येषा वसोर्घाराऽथ पड्य पश्चित्र, शत्(४)" (श्व बा ९-३-३-१८) इति । अत्र च यदन्तरितं तस्यावृत्तिर्भवति । औदुम्बर्या स्हचा पञ्चगृहीतमारुवं जुहोति अग्नौ प्राप्ते "वाजश्चमे" (५) इत्यष्टानुवाकेन । सन्ततमिति च द्रव्यसन्ततं

⁽१) उग्प्रक्षण॥ (वा० सं०३९—७)

⁽२) इन्द्रन्दैवीः०॥ वा० सं० १७ –८६)

⁽३) इमणं स्तनम्०॥(वा० सं० १७—८७, ६८, ८९, ९०, ६१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९)

⁽४) अनया अत्या एकाधिकशतचतुष्टयसंख्या वसोर्घाराह्यतीनां गम्यते । ताश्च थथा-'वाजश्च मे' इत्यारभ्य 'वेट्स्वाहा' इत्यन्तमेको-नित्रशत्कण्डिका अष्टानुवाकेषु वर्तन्ते । तत्र आद्यासु एकविशतिक-ण्डिकासु चतुर्थीपञ्चदश वर्जितासु प्रतिकण्डिकं त्रयोदश यज्रंषि, च तुर्थां पञ्चद्द्या, पञ्चद्द्याञ्च नवेति । ततः द्वाद्द्या, षद् , त्रयस्त्रिञ्चत् , वयोविशतिः, एकादश, नव, चतुर्दश, एकविशतिरिति कमेण द्वाविः शतिकण्डिकामारभ्य एकोनिविशत्कण्डिकापर्यन्तं यज्जीष वर्तन्ते । सर्वाणि मिल्लिवा एकाधिका चतुःशती संख्या सम्पद्यते । प्रत्येकं यञ्जूषो मन्त्रत्वं चोद्धव्यम्।

⁽५) 'वाजश्र मेव' (वा॰ सं॰ १८-१) इत्यादि, 'वेट् स्वाहा' (वा॰ सं॰ ३८-२९) इत्यन्तेनैकोर्नावशस्किण्डकात्मकेनेत्यर्थः ।

च। अत्र च श्रयते—"अष्टासु करुपयति दशसु करुपयति" (श॰ बा॰ ९-३-२-८) इत्येवमादिना वाक्यपरिसमाप्तिः। प्रतिवाक्यं च स्वा-हाकारकरणम्। अत्र च देवतापदान्तराये पञ्चगृहीतमेव च सकलवा-क्येन होतन्यं न हान्ययैतदृदृष्टमिति ॥ १॥

हुत्वा सुक्पासनम् ॥ २ ॥

तच्चाझौ। पवं हि श्रूयते-"अत्र ताः स्रुचमनुप्रास्यति यदत्राज्यः छिप्तं तम्नद्वहिद्धान्नेरसत्" (श० ब्रा० ६-३-३-१४) हति ॥ २॥

अग्नये स्वाहे(१)ति षद् पार्थानि जुहोति ॥ ३॥ सानि च राजस्थिकानि, तत्राम्नानात् । इह च श्रूपते-"स वै राज-सुयस्य पूर्वाणि जुहोति" (श० ब्रा० ९-३-४-८॥ इति ॥ ३॥

बाजप्रसवीयानि वप्रावत्सम्भृत्य चमस्वत्स्रुवेण बाजपेयिकानि बाजस्येममिति ॥ ४ ॥

'वाजप्रसवीयानि' इति नामधेयं, विद्यर्थवादमन्त्रत्वासम्मवात् समुदायनामधेयञ्चेतत् । सप्त द्यातानि कर्माणि वाजपेयिकानि । प्रयोज-नमन्यतमाऽपाये तस्यैवावृत्तिः । तानि च वप्रावत्सम्भृत्य चमसवत्स्रवेण-वप्राज्ञव्देनाग्निक्षेत्रकेदाराभिधानम् । तद्वद्त्रापि सम्भृत्य चमसवत् चतुः स्राक्तिना उद्धम्बरेण स्रवेण वाजपेयिकानि "वाजस्येमम"(२) इति प्रति-मन्त्रं जुहोति । वाजपेयिकप्रहणाञ्च अप्पयसी प्रक्षिप्येते । एवं हि त-त्राचार्येणाभिहितम—"मौदुम्बरे पात्रेऽप आसिच्य पयश्च सप्तद्शा-ष्रान्यावपति यावस्मृति वा" (का० श्रो०, १४-४-३४, ३५, ३६) इति । एवं च सति सप्त षड्वर्गाः सप्त चतुर्मुष्टिकान्युदादेयान्यापश्चेति ॥ ४॥

आग्निकानि च वाजस्य न्विति ॥ ५ ॥

आश्निकानि च वाजमसवीयानि 'वाजस्य(३) तु" इति प्रतिमन्त्रं जुहोति । आश्निकेष्वपि सप्तैव सर्वोषधस्य चतुर्मुष्टिकानि ॥ ५ ॥ स्दवं प्रास्य परिश्चितस्युक्कृष्णाजिनमास्तीर्थ

पुच्छादुत्तर्रु शेषेऽपः कृत्वा ॥ ६ ॥

'अभिषिश्चति' इति सुत्रशेषः । स्रुवमग्नौ प्रास्य तदन्ते परिश्चित्सं-लग्नं पुच्छादुत्तरतः कृष्णाजिनमास्तीर्य हुतशेषेऽपः कृत्वा ॥ ६ ॥

⁽१) अग्नये स्वाहा० (वा० सं० १०-५)।

⁽२) व्वाजस्येमम्० (वा०सं० ९-२३,२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०)।

१३) व्वाजस्य मु० (वा०सं १८–३०,३१,३२,३३,३४,३५,३६) ।

कुत पतत्{-

अभिषेकतामध्यति ॥ ७ ॥ अन्यथाऽभिषेक एव न भवति(१)॥ ७॥

क्षीरोदके वा(२) बाजपेयिकानीति श्रुतः ॥ ८ ॥ वा नैवापामासेकः येन क्षीरोदके वाजपेयिकशेषे विद्येते एव । अतथा भिषेकोऽपि सम्भवत्येव ॥ ८ ॥

तत्राभिषिच्यते ब्रह्मचच्चेसकामश्चित्यन्वारच्यो दे-वस्य त्वेति॥ ९॥

तत्र ऋष्णाजिनेऽभिषिच्यते यज्ञमानश्चित्यन्वार्डघो "देवस्य त्वा(३)-इत्यनेन मन्त्रेण । ब्रह्मवर्चसकामस्य च कृष्णाजिनेऽभिषेकः, "क्र-ष्णाजिने ब्रह्मवर्चसकामम्" (श्र० ब्रा० ९-३-४-१४) इति वचनात् ॥९॥

तिष्ठन्बुभूषुः ॥ १० ॥

भृतिमिच्छंस्तिष्ठन्नभिषिच्यते ॥ १० ॥

भूत उपविष्टः ॥ ११ ॥

प्राप्तभृति(४)रुपविद्योऽभिषिच्यते ॥ ११॥

बस्तचर्माण पुष्टीच्छुः ॥ १२ ॥

पुष्टिमिच्छन्बस्तचर्मण्य(५)मिथिच्यते ॥ १२॥

उमयेन्छ्रमयोः ॥ १३॥

⁽१) अभिषेकस्य द्रवद्रव्यसाध्यत्वात्केवलेन सर्वौषघरोषेण तदः सम्भवात्सामर्थ्याच्छेषेऽपामासेकं कृत्वा सोद्केन रोषेणाभिषेकः कर्तः व्य इति पूर्वः पक्षः।

⁽२) अथ सिद्धान्तः—वाशब्दः पूर्वपक्षितरासार्थः नैव शेषेऽपामाः सेकः कार्य इति । यतः शेषमध्ये श्लीरोदके विद्येते । कुतः? "वाजपेथिः काित" इति श्रुतेः । अत्र वाजपेथिकाित वाजप्रसवीयाित, जुहोतीित श्रवणात् । तत्र च नामधेयात्श्लीरोदके स्त एवेति सांप्रदायिकाः । "औदुस्वरे पात्रेऽप आसिच्य पयश्च" (का० श्लौ० १४-४-३४) इत्युः केरिति महीधरः ।

⁽३) देवस्य त्वा० (वा० सं १८–३७)।

⁽ ४) प्राप्तभूतिः ग्रामादिस्वामी ।

⁽५) बस्तो महाजस्तस्य चर्माख।

यो नाम पुष्टिब्रह्मवर्चस उभेऽपी च्छति स उमयोश्चर्मणोर्व्यवस्थिन तोऽभिषिच्यते ॥ १३ ॥

एके दक्षिणतिश्चित्ये वा ॥ १४ ॥

स्थितमभिषिञ्चति, "त्र हैके दक्षिणतोऽसरभिषिञ्चन्ति" (श० ब्रा॰ ९-३-४-१२) 'आहवनीय उहैकेऽभिषिञ्चन्ति' (श० ब्रा॰ ९-३-४-१२) इति च श्रुतेः ॥ १४ ॥

पास्य चमसमिन्द्राय स्वाहेति षड् जुहोति प्रतिमन्त्रम् ॥१५॥

अग्नो प्रास्य चमसम् "इन्द्राय स्वाहा"(१) इति षट् पार्थानि जुहोति। पतान्यपि राजस्यिकानि। ततश्च पूर्वपार्थाज्यसंस्कारोऽत्रापि भवति॥१५॥ द्वाद्वायहीतं विग्राहं जुहोत्यृताषाडिति प्रतिस्वाहाकारः

राष्ट्रसृतो वाद्कारान्तः पूर्वः पूर्वो मन्त्रः॥ १६॥

द्वाद्यगृहीतमाज्यं विगृद्ध जुहोति "ऋतावाड्" इति प्रति-स्वाहाकारं राष्ट्रभृत्संककान्होमान् । तत्र च वाट्कारान्तः पूर्वः पूर्वो मन्त्रो भवति । उत्तरस्तु स्वाहाकारान्तः । एवं द्यत्र श्रूयते "मि-धुनानि जुहोति" (श० ब्रा० ९-४-१-५) "गन्धर्वाव्सरोऽस्यो जु-होति" (श० ब्रा० ९-४-१-४) "पुरेक्ष पूर्वस्मे जुहोत्यथ स्त्रीस्यः, एकस्माऽ इव पुरेक्षे जुहोति, बह्वीभ्य इव स्त्रीस्य, उमाभ्यां वषट्कारेण च स्वाहाकारेण च पुरेक्षे जुहोति, स्वाहाकारेणेव स्त्रीभ्यः" (श० ब्रा० ९-४-१-६) इति । एवं श्रवणे स्ति समाम्नायपरिपिटते मन्त्रे विभागः कर्त्तव्यः—यानि पुश्चिङ्गानि पदानि तान्येकवाक्यतामुपनेयाः नि । एवं स्त्रीलिङ्गान्तान्यपि । "ऋताषाङ्कृतधामाग्निर्गन्धर्वः स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मे स्वाहा वाद्" इति पूर्वो मन्त्रः । "तस्योषध्ययो प्सरसो मुदो नाम ताभ्यः स्वाहा" इत्युत्तरः । अत्र च "तस्योषध्य" इति सापेक्षत्वादताषाद्बुतधामाग्निर्गन्धवं इत्यज्ञवर्तते(२) ॥ १६ ॥

ॐऋताषाङ्डृतघामाऽग्निर्गन्धवस्तस्यौषधयोऽप्सरस्रोसुदा े नाम ताभ्यः स्वाहा (३८)

ॐसः/हितो व्विश्वसामा स्य्यो गन्धर्वः स न ८इदं ब्रह्म क्षत्त्रं पातु तस्मै स्वाहा व्वाद्।

⁽१) इन्द्राय स्वाहा० (वा०सं० १०-५)।

⁽२) तथाचैवं द्वादश मन्त्रा विभक्ता भवन्ति—ॐऋताषाङ्ड्त-धामाऽग्निर्गन्धर्वः स न ऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा ब्वाट्।

पश्चगृहीतं च रथशिरस्यध्यध्याहवनीयं वियमाणे प-

अकृत्वः स नो सुवनस्येति ॥ १७॥

पश्चगृहीतमाज्यं खरान्दाज्जुहोति । रथशिरस्यध्यध्याहवनीयं मि यमाणे पश्चग्रत्यः "स नो भुवनस्य"(१)इत्यनेन मन्त्रेण ॥ १७ ॥

अत्र विशेषमाह—

प्रदाक्षिणाः रथनी डपारिहारः(२) ॥ १८॥ कर्तव्यः ॥ १८॥

पुरुषाहुतिबद्धा ॥ १९ ॥

वेति विकल्पः॥ २६ ॥

ॐलःहितो व्विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीवयोप्सरसऽया-युवो नाम ताभ्यः स्वाहा (३९)

े **उँ सुषुरणः** स्र्यंशिमअन्द्रमा गन्धर्यः स न ऽइदं ब्रह्म स्रत्रं पातु तस्मै स्वाहा व्वाट्।

ॐसुषुम्णः सूर्यरशिमश्चन्द्रमा गम्यव्यस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकु-रयो नाम ताभ्यः स्वाहा (४०)

उँ इषिरो व्विश्वव्यचा ब्वातो गन्धर्वः स न ऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा ब्वाट्।

ॐइषिरो व्यिश्वव्यचा ब्वातो गन्धव्यं स्तस्यापोऽप्सरसऽऊजी नाम ताभ्यः स्वाहा (४१)

ॐभुज्युः सुपर्णो य्श्रो गन्धवः स न ८६दं त्रह्य क्षत्रं पातु तस्मै स्वार हा खाद्।

ॐभुज्युः खुपणी युज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणाऽअप्सरसस्तावा नाम ताभ्यः स्वाहा (४२)

ॐप्रजापति विवंश्वकर्मा मनो गन्धव्वः स न ऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा व्वाट्।

ॐप्रजापतिवित्रश्वकम्मां मनो गन्धव्वंस्तस्यऽऋक्सामान्यप्सरसऽ-प्रथ्यो नाम ताभ्यः स्वाहा (वा० सं० १८-४३)

- (१) स नो भुवनस्य०(वा० सं०१८-४४) इत्यनेन पञ्चघाऽऽवृत्तेन मन्त्रेण आहवनीयोपरि प्रतिप्रस्थानादिना धार्यमाणे रथशिरसि पूर्वसंस्कृत्ये तं पञ्चगृहीतमान्यं पञ्चघा विभज्य पञ्चछत्वो जुहोति इति तद्र्थः।
- (२) प्रतिहोमं प्रदक्षिणं रथनोडस्य परिहारः कर्तव्यः । सर्वासु दिक्षु परिहार परिहत्य-परिहत्य परिणीयेत्यर्थः।

पक्षद्वयेऽपि—

अध्वर्षुरिममुखो स्थाद्वारः(१)॥ २०॥ जुहोति॥ २०॥

इत्यद्यद्याययाये पञ्चमी कण्डिका।

वातहोम। त् जुहोत्यञ्जलिनाहृत्य पुरस्ताद्विहेंदेरधो द-क्षिणस्यां धुर्युत्तरत उत्तरस्यां दक्षि(२)णतो दक्षिणाः

प्रष्टेः समुद्रोऽसीति प्रतिमन्त्रम् ॥ १ ॥

वातहोमान् जुहोति अञ्चलिना आहत्य पुरस्ताद्वहिवेदेः अघो द क्षिणस्यां घुरि । पवमेवोत्तरत आहत्वोत्तरस्यां घुरि । दक्षिणतः पश्चात् आहत्यान्यं दक्षिणा(३)प्रष्टेरेवमेव । "समुद्रो(४) शिसे" द्दित मन्त्रैः प्रति । मन्त्रम् ॥ १॥

योकत्रपारहरणं च सर्वत्र ॥ २ ॥ चशब्दाद्धोमसमनन्तरमेव(५) ॥ २ ॥ प्रमृद्धाध्वयोरावसथहरणम् ॥ ३ ॥ रथस्य कर्तव्यम् ॥ ३ ॥ दक्षिणाकालेऽध्वर्धवे ददाति ॥ ४ ॥

अम्बांश्च ॥ ५ ॥

ददाति॥ ५॥

रथम्॥४॥

नव जुहोति यास्त(६) इति प्रतिमन्त्रम् ॥ ६ ॥

- (१) रथशिर इति द्वितीयैकवचनम्।
- (२) इदमधिकं कचित्।
- (३) युरामध्याध इत्यर्थः।
- (४) समुद्वोसि० (वा० सं० १८-४५)।
- (५) सर्त्रत्र त्रिष्वपि होमेषु योक्रण तस्य तस्य हुतस्य वातस्याः इवस्थानीयस्य योजनं करोतीत्यर्थः।
- (६) यास्ते॰ (वा॰ सं० १८-४६, ४७, ४८, ४६, ५०) अत्र यास्ते॰ ऽअग्ने, या वो देवाः, रुव त्रः, तस्वा यामि एतेचत्वारः, पञ्चाशत्कण्डि॰ कायां च स्वाहान्ताः पञ्चेति नव मन्त्रा बोद्धच्याः।

आहुतीः॥ ६॥

जानन्द्वाह्मणोक्ता जुहुयाद्वा ॥ ७ ॥
"यां कां च ब्राह्मणवतीमाहुति विद्याचामेनस्मिन्काले जुहुयात्"
(श॰ ब्रा॰ ९-४-२-२७) इति श्रुतेः । तामेव प्रकृत्याह-"न जुहुयानेदितिरचयानि" (श॰ ब्रा॰ ९-४-२-२८) इति । विहितप्रतिषेघाद्विः
कल्पः ॥ ७ ॥

हविधीनप्रचालनाचाग्रीधालम्भनात्कृत्वा धिष्ण्यांश्चि नोत्पष्टेष्ठकाँह्योकम्पृणाभिश्चतुःस्रक्तीस्तिरश्चो न्युप्य न्युप्य ॥ ८ ॥

वैक्रतावसरे प्राकृतानुवृत्यर्थमाह—हविधानप्रक्षालनाद्याग्नीभ्राल-ममनात्माकृतं कर्म कृत्वा धिष्ण्यांश्चिनोत्यष्टेष्टकान्। 'लोकम्पृणाभिः' इति तद्धमेप्रवृत्यर्थम्। चतुःख्रकीन्, तिरश्च इति-तिर्थनप्रस्तारान् नोप रिस्थलिकया चयनम्। न्युप्य न्युप्येति "यं यमवाष्वरधिष्ण्यं निर्वप् ति तं तं चिनोति" (श० ब्रा॰ ९-४-३-५) इति वचनात्॥ ८॥ पृद्यस्मा चाप्रीश्चीये॥ ९॥

उपघेयः ॥ ६ ॥

सकृत्मन्त्रवचनम् ॥ १०॥ होत्रीये त्रिरेकविश्वात्या ॥ ११॥

होत्धिणये त्रिमेन्त्रवचनम् (१)। एकविंशतिभिरिष्टकामिश्चयनम्॥११॥ ब्राह्मणाच्छारुगे ब्रिरेकाद्शसु वण्मार्कालीये ॥ १२॥

शेषा अष्टेष्टकाः ॥ १३ ॥

याविष्ठकं परिश्रितः परिनिधाय(२) ॥ १४ ॥
"तेषां वै यावत्य पव यज्ञुष्मत्यस्तावत्यः परिश्रित" (दा० ब्रा०
९-४-३-९) इति वचनात्। परिनिधानं परिश्रितां श्रूयते न निखननम्।
"स वै पटर्येव निद्धाति" (द्या० ब्रा० ९-४-३-९)॥ १४ ॥

पुरीषं च तृष्णीम् ॥ १५ ॥ पुरीषिनवीपे मन्त्रो मामुदिति 'तृष्णीम्' इत्युक्तम् ॥ १५ ॥

(१) लोक स्पृण् (वा० सं०१५-५९) इति मन्त्रस्य त्रिः पठनम्।

(२) यस्मिन्धिकये यावत्य इष्टका उपहिताः तस्मिन् तावतीः परिश्रित उपद्याति परितो भूमावेच स्थापयति । प्राकृताजुबृत्यर्थमाह— अनुदेशाचा पुरोडाशस्विष्टकृतोऽभिषेचनीयवत् ॥ १६ ॥ कमे भवति(१)। 'एप वोऽमी राजा' इत्यस्य वचनसामर्थ्यात् वि-छिङ्गस्यापि प्रयोगो भवति । ''अथैनं पूर्वाभिषेकेणामिमुशति" (श्रव्यात् पर्वा-६-४-३-१६) इति प्रकृत्याह् ''एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाः राजा'' (श्रव्यात ९-४-३-१६) इति ॥ १६ ॥

अग्नियोजनम्पातरत्वाकसुपाकरिष्यनपरिश्वीनालम्भ्य यथापूर्वमग्नि (२)युनज्मीति प्रत्यूचम् ॥ १७ ॥

प्रातर्विमोचनम्। प्रातरनुवाकमुपाकरिष्यन्नाग्नयोजनं करोति यथासूत्रितम्॥ १७॥

आग्निमारतस्तोत्रपुरस्ताहिमोचनं परिधिषंध्योर्दिनो मूर्चेति पत्यूचम् ॥ १८॥

अ।ग्निमारुतस्तोत्रस्य पुरस्तादग्निमोचनं परिधिषंध्यास्मनं स्रता ''दिनो सूर्घा''(३) इति प्रत्युचम् ॥ १८॥

प्रायणीयेऽतिरात्रे युक्तोदयनीये विमोक्तमेके ॥ १९॥ एके अहरहर्युक्षन्ति च विमुक्षन्ति च ॥ १९॥

अध्वरसमिष्ठयजुरन्त इष्टो (४)यज्ञ इति प्रत्यृचमपरे ॥२०॥ समिष्ठयज्जवी जुहोति॥ २०॥

पशुपुरोडाशमन्वनृबन्ध्यस्य देविकाहवीः िषे निर्वपति यज्ञवैषाणि ॥ २१ ॥

अनुबन्ध्यस्य पशुपुरोडाशमनु देविकाहविषां निर्वापः क्रियते । यजप्रैषाणि ॥ २१ ॥

तानीदानीमाह—

अनुमतिराकासिनीवालीकुहूभ्पश्चरवो घात्रा द्वादशकपालः सर्वेहुतः॥ २२॥

- (१) अनुदेशादि "सदोद्वारं पूर्वेण" (का० श्रौ० ८-६-२१) इति एतस्मादारम्य आपुरोडाशस्त्रिष्टकतः अभिषेचनीयवत् इति राजसूयाः न्तर्गताभिषेचनीयसोमस्येव कमं सवति।
 - (२) अग्नि रयुनितमः ॥ (वा० सं० १८-५१, ५२, ५३)
 - (३) दिवो मुर्दासि॰॥ (वा॰ सं॰ १८-५४, ५५)
 - (४) इंडा युजाः (वा० सं० १८-५६, ५७,)

कर्तव्यः ॥ २२ ॥ हृद्यश्चान्ते स्ह्वाहुतीर्जुहोति वदाकूतादिति प्रत्यूचमष्टो ॥ २३ ॥

अनुबन्ध्याहृश्यशुळान्ते "यदाकृतात्"(१) इति प्रत्युचमधौ स्वा-हुतीर्ज्जहोति ॥ २३ ॥

चित्रोसीति चित्यनाम कृत्वोपतिष्ठते ये अग्नय(२) इति॥२४॥ तमेव बित्यम् ॥ २४॥

पयस्या मैत्रावरुणी तृपरमिथुनदक्षिणोद्वसानीयान्ते॥२५॥ उदवसानीयान्तप्रहणं मा भृतुपस्थानान्ते। पयस्यायाश्च तृपरा छागौ मिथुनोही दक्षिणा ॥ २५॥

वर्षत्यसरणयतः ॥ २६ ॥

''अग्निविद्वर्षति न धावेत्'' इति वचनात् ॥ २६ ॥ पक्ष्यभोजनम् ॥ २७ ॥

''न वयसोऽग्नि(३)चिदश्नीयात्'' (श्वा० १०-१-४-१३) इति॥२७॥ सवर्णोपायी ॥ २८ ॥

सवर्णशब्देन द्विजात्यभिधानम् । ततश्च शुद्रानिवृत्तिः । एवं ह्यामः नन्ति । "अभिन चित्वा" प्रथमं चित्वा "न रामामुपेयात्"इति । रामा च शुद्री । सा हि "रमणायोपेयते न धर्माय" (निरु० १२-१३) इति ॥२८॥

डितीये स्वामेव ॥ २९ ॥

द्वितीयेऽग्निचयने विनिवृत्ते स्वामेबोपेयात् 'क्षित्रयां वैश्यां च'' इति । एवमपि हि श्रूयते इति ॥ २९ ॥

तृनीये न कां चन ॥ ३०॥

तृतीयेऽभिचयनेविनिवृत्ते न काञ्चनोपेयात् ब्रह्मद्यर्थेव मवति ॥३०॥ यावज्जीवं व्रतान्यविद्योषात् ॥ ३१॥

"अग्निचिद्वर्षति न घावेत" इत्येवमादीनि भनेयुः। कुत एतत् ? अविः शेषात् । न द्यत्र कालविशेषः श्रूयते । एतावन्तं कालमेतानि वतानीति ३१॥ एव हिथत आह—

सम्बरसरं वा कालस्थानवस्थितत्वात् ॥ ३२ ॥ संबरसरं वा यावदेतानि वतानि भवेयुः । कुत पततः १ कालस्याः नवस्थितत्वात् । न हि कालो व्यवस्थितः । शास्त्रे व्यवस्थितेन च

⁽१) यदाकृतात्०॥ (वा०सं०१८-५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६५, ६५)

⁽२) य्ऽअग्नयः (चार्ल्स्०१८-६७) (३) पक्षिणो मांसमनिसित्। २३ कार्

भावितव्यम् ॥ ३२ ॥

तहतञ्चतेश्व॥ ३३॥

अपि च तद्रतश्रुतिभवित "संवत्सरसम्मिता वै व्रतचर्य।" (रा॰ व्रा॰ ५-५-३-२) द्दति । तदेतत्पश्च व्र्यं प्रदर्शितमाचार्येण । अत्र यः श्रेयस्करतरः पक्षः स प्रवास्युपेयः । कोऽसा ? "यावज्ञीवं व्रतान्येता नि"देति । कुत पतत् ? अग्निचिः संयोगात् । अग्नि चितवान् यः सोऽग्नि चिदुच्यते । यावज्ञीवं चासाविग्नाचित् । अतो व्रतान्यपि तावदेवेति । आचार्यस्याप्ययमभित्रायः । येन विश्वजिद्याजिनः संवत्सरसम्मितां व्रतचर्यामाद्द-"संवत्सरं न याचेत्" (का॰ श्रो॰ २२-१-३२) दति । यावुनककं "संवत्सरसम्मिता वै व्रतचर्या" दति, उक्तविधिशेषत्वात्तिः प्रयमेव तदिति ॥ ३३ ॥

चित्याद्यास्तौ पुनः सोमेज्यायां स्वयमातृण्णाविश्व-ज्योतिर्ऋतव्यानामन्यतमाः ॥ ३४ ॥

े उपधियाः। "स्रवत्यु हैषाऽग्निचित आहुर्तः सोमाहुतिर्यामिति । एके जुहोति" (शव ब्राव ९-५-१-५७) इति प्रकृत्यैवमेव श्रुनत्वात्। "स स्वयमातृण्णा प्रवोपदधीत" "तिथा ऋतव्या प्रवोपदधीत" "विश्वच्योतिष प्रवोपदधीत" (शव ब्राव ९-५-१-५८, ५९, ६०) ॥ ३४॥

पुनिश्चातिम् ॥ ३५॥

"पुनिश्चितिमेवोपदधीत" (श॰ ब्रा॰ ९-५-१-३१) इति च ॥३५॥ अच्छमं चा(१) ॥ ३६ ॥

कुत पतत्?—

चित्यस्याहवनीयाभिसम्पत्तेः(२)॥३७॥

आहवनीय एव चित्यामिसम्पत्तिश्रवणात्। "यो वावचितेऽग्निः र्निधीयते तामेवेष्टकामेष सर्वोऽग्निरमिसम्पद्यते" (श० ब्रा० ९-५-१-६१) इति ॥ ३७॥

इत्यष्टादशाध्याये पष्टी कण्डिका। इति श्रीकर्कोपाध्यायकृतौ कात्यायनसूत्रभाष्ये अष्टादशोऽध्यायः।

⁽१) स्वयमातृग्णादानां अचयनमेव भवति ।

^{् (}२) एकवारं त्रित्यस्योपरि निधानेनैवाहवनीयाष्ट्रेः सर्वदा चित्यात्मकता सम्पन्ना ।

एकोनविंशोऽध्यायः।

आचार्येणाग्तिरनुविहितः । इदानीमव तरप्राप्तं सौत्रामण्यनुविधाः नं क्रियते ।

ब्राह्मणयज्ञः सौत्रामण्यृद्धिकामस्य ॥ १ ॥

"तस्मादेष ब्राह्मणयत्र एव यत्सौत्रामणी" (रा॰बा०१२-९-९-१)हति वचनात् । ब्राह्मणग्रहणं श्रत्रियवैश्ययोर्निवृत्यर्थम् । सा च ऋदिकामस्य

भवति, शाखान्तरात्।

नतु तयोरपि निधनविशेषविधानमस्ति—"सञ्जित्यै विजिल्पे सत्यः जित्ये जित्ये" इति क्षत्रियस्य, "सम्पुष्ट्ये विपुष्टये सत्यपुष्ट्येपुष्ट्ये" इति वैश्यस्य । उच्यते, क्षत्रियवैश्ययोविशेषश्रवणमग्न्यद्गसामणी विषयम्। कुत पतत् ? अग्नौ हि तयोरपि प्राप्तिरस्ति । तस्माद् वृद्धिः कामस्य ब्राह्मणस्येव, नेतरयोर्वर्णयोशित । 'सौत्रामणी' इति कर्मनाम-धेयम् । तबेष्टिपशुससुरायस्य, सन्निधानात् लिङ्गाच । "उभयं वै सौ त्रामणीष्टिश्च पशुबन्धश्चः' (२०००० १२-७-२-१२) इति । तथा च आचार्यप्रस्थानम्-'सोत्रामण्यामिष्टिपरावा भिन्नतन्त्राः कालमेदात्' इति। एवं प्राप्त उच्यते-त्रिपशोर्वा नामधेयम् । कुत एतत् ! लिङ्गादेव । "आ-त्मा वै यज्ञस्य सौत्रामणी बाह्न ऐन्द्रश्च वयोधश्च"(श० ब्रा० १२-९-३-१६ इत्यैन्द्रवायोधसम्यतिरिक्ते बस्तुनि सौत्रामणीशब्दमाह । तथा-''तद्य देत्र सौत्रामणिकं यूपमेतौ यूपावभितो भवतः" (श॰ बा॰ १२-९-३-१६) इति सौत्रामणीशब्दं त्रिपशाववाह। यद्योक्तम् "उमयं वै सौ-त्रामणीष्टिश्च पशुबन्धश्च" इति, तदितरेषामङ्गत्वेऽपि सम्भवत्येव। यद्वा पर्योग्रहसुराग्रहसम्बन्धेनोभयरूपासौत्रामणीति । आचार्यप्रस्थाः नन्तु प्रकरणोपलक्षणार्थम् । प्रयोजनं त्रिपशोरेवान्तराये प्रयोक्तृत्व-मिति॥१॥

अग्नित्सोमगाजिसोमातिवृतसोमनामिनाम् ॥ २ ॥

प्रिश्च निमित्तैः सौत्रामणी भवति । तत्र 'अग्निसिसोमयाजि' इति ग्रहणम् अग्निमतः सोमस्यान्नं यथा स्यादिति । स हि फळवान् , निष्फः लोऽग्निरिति । एवं च सत्यग्निमस्सोमयागान्ते सौत्रामणी भवति ।

नतु च 'अप्नि चिस्वा सोत्रामण्या यजेत' इति वचनसामध्यात् चयनसमनन्तरमेव प्राप्नोति । नेत्युच्यते 'अप्नि चित्वा' इत्यत्राग्नेः पाराः ध्वेनोपादानम् "अग्निं चित्वा" इति चयनेन तत्कार्यमभिनिर्वर्येत्येतदुः कं भवति। किं च तत्कार्थे ? तत्र स्थितेनाग्निना सोमयागाभिनित्तृतिः। तस्मादग्निमतः सोमस्याङ्गमिति। तदुक्तमाचार्येण "अग्निचित्सोमयाः जि" इति।

नतु च 'भिन्ने जुहोति' 'स्कन्ने जुहोति' इति यथाऽत्र निमित्तका-छता नैमित्तिकस्य, एविमहापि चयनाभिनिर्मृत्तिकाछता किन्न भवति ? विषमोऽयमुपन्यासः, यत्र हि निमित्तं स्वतन्त्र(१)मेव भवति तत्र निमित्तकाछता नैमित्तिकस्य युक्ता । तदुक्तमाचार्येण "काछो वा प्रत्य-यात्" (का॰ श्रौ॰ २५-१-३) इति । इह पुनरग्नः सोमाङ्गतया विधा-नसामध्यात् अग्निकार्याभिनिन्द्रस्युत्तरकाछतेव युक्कपेति 'अग्नि-चित्वा इत्यस्यार्थः। तस्माद्गिनमतायः सोमेनेष्ठवांस्तस्यैव सौत्रामणी।

ननु चानिनमतोऽपि सोमस्याङ्गत्वेन सौत्रामणी श्रूयते-"सोमनेष्ट्वा सौत्रामण्या यजेत" (श्राव्हा०११-८-२) इति । नैतदेवम्, 'अग्निञ्चिः त्वा' इत्यस्य वाक्यस्याग्निप्रकरणे श्रुतत्वात्तदङ्कता युक्ता। यस्य प्रकरणं तस्यान्यद्विधीयमानं तदङ्कमेव भवतीति न्याय्यम् । "सोमेनेष्ट्वा सौत्रामण्या यजेत" इति सौत्रामणीप्रकरणे पाठः। तेन प्रत्युत विपरीतवृत्या सोमस्यैव सौत्रामण्यङ्कता भवति, न सौत्रामण्याः स्नोमाङ्गता । यथा 'वाजपेयनेष्ट्वा वृहस्पतिस्वेन यजेत" इति वाजपेयं प्रकृत्य विश्वानात् वाजपेयाङ्गता वृहस्पतिस्वस्य ।

तस्मान्नानिमात सोमे सौत्रामणी। ''लोमेनेष्ट्रा सौत्रामण्या यजेत' इति किमर्थस्तर्दि पाठः ? अग्निमत्लोमस्यानुवादोयीमत्यदोषः ।

्यद्वा 'अग्निञ्चित्वा' इत्यस्यव शेषोऽयम् । आग्नमता(२) 'सोमेनेष्ट्वा' इस्पेतदुक्तं भवति ।

नतु च क्रमार्थमेतद्वाक्यं कस्मात्र भवति ? यथा "द्र्यपूर्णमासाभ्याः मिष्ट्वाइन्येन यजेत" इति, एवं "सोमेनेष्ट्वा सौन्नामण्या यजेत" इति ? नैनदेवम्-अङ्गत्वप्रतिपादनस्वरूपो द्वर्थवादोऽत्र मवति । "सोमेनेष्ट्वा सौन् त्रामण्या यजेत" इत्युक्तवाश्राह "यथा धेतुर्दुग्धा पुनराप्यायेतैवः हैव पुनराप्यायते" इति । तस्मादग्निमत्सोमाङ्गमेवेति । सोमातिपूतसोमन् वामिनोश्च सौत्रामणी भवति, शाखान्तरश्रवणात् । (३)सोमातिपृतः

⁽१) 'स्वयमेव' इ० पा०।

⁽२) 'अग्निचिता' इ० पा०।

⁽३) मुखेतरच्छिद्रेण सोमवामो सोमातिप्तः, मुखेन च तद्वामी सोमवामी इति स्पष्टं महीश्वर भाष्ये ।

सोमवामी च ब्राह्मण एव । न हि क्षत्रियवैश्ययोरताद्वेशेषणमिति ।

नन च सोमकार्यं तयोराप न्यब्रोधविधानम्, तेन तद्तिपवने तह मने च किरोमीत न भवाते ? नैतदेवम्, यदि नाम कार्यापत्या धर्मप्राप्तिः भवति । न चायं सामधर्मः । कि तहिं तदातिपवने यागान्तराविधानिमः ति । अग्निचितस्तु वर्णत्रयस्यापि भवति, अग्निसंयोगविधानात्॥ २ ॥

राज्ञो(१)परुद्धस्य च ॥ ३॥

सौत्रामणी भवति । राज्ञः अपरुद्धस्य राज्यात्प्रच्यावितस्येखर्थः, "दृष्टरीतुई पौर्रसायनो दशपुरुषः राज्यादपरुद्ध आस" (श० आ० १२-९-३-१) इति तांद्रधानात् ॥ ३॥

अलम्पन्नोरपन्नोः ॥ ४ ॥

सीत्रामणी भवति । पश्योग्यः सन् यो नाम पश्च विन्दते सोऽः ळम्पशरपशः॥ ४॥

आदित्य(२)श्रहः॥ ५॥

'मवति' इति सुत्रशेषः "आदित्यं चहं यश्यमाणा निर्वपति" (श० बा० १२.६-२.११) इति श्रतः॥ ५॥

अन्ते(३)च ॥ ६ ॥

आदित्यश्चहर्भवति । "आदित्यमीजान" (श० त्रा० १२-९-२-११) इति । ईजानशब्द इष्टबत्येव भवति ॥ ६ ॥

आमिक्षाया(४)वा पूर्वः ॥ ७॥

आदित्यश्चर्भवति । तस्य हि कक्षौ चरव इति कक्षलंस्तवः। वायोधसस्य च बाहुसंस्तवात् पयस्यान्ते च विधानात् आमिश्चायाः पूर्वी भवतीति सम्प्रदायः । विकल्प इत्यपरे ॥ ७ ॥

घेत्रदक्षिणा ॥ ८॥

अस्यादित्यस्य बरोभेवति ॥ ८ ॥ तत्र विभागमाह-

बत्सः प्रबे ॥ ९ ॥

- (१) स्वराज्यात्प्रच्यावितस्य राज्ञः स्वराज्यप्राप्त्यर्थः स्रोत्रा-णमी भवति।
 - (२) अदितिदेवताकः प्रथमं चरुर्भवति ।
 - (३) अन्ते समाप्तौ स पव चर्क्सवति।
 - (४) अन्ते य आदित्वश्चकः स आमिक्षायाः प्रयस्याः पूर्वी भवति ।

व(१)से॥९॥

मातोत्तरे ॥ १० ॥

दीयते । "वत्सं पूर्वस्यां ददाति मातरमुत्तरस्याम्" (श० ब्रा० १२: ५-२-११) इति । इष्टयपेक्षया स्त्रीलिङ्गान्तता ॥ १० ॥

अभ्याद्धामी(२)ति प्रत्यूचमाहवनीय तिस्रः समिघोभ्याद्वाति ॥ ११ ॥

उद्घृत्याहवनीयम् ॥ ११ ॥ सत्यवादी ॥ १२ ॥

'यज्ञमानो भवति' इति शेषः। अत्र चेष्टिषु केचिद् वतत्रहणं नेच्छुः नित, सौत्रामणिकस्य सत्यनियमस्य विद्यमानत्वातः। यथा दीक्षितस्य सत्यवदनियमन ज्योतिष्टोमे वत्रव्रहणामावः, प्वामेहापीति । तदेतः न्नातीव युक्तरूपम्। येन चोदकपरिप्राप्तस्यनियमाबाधेनापि सौत्राः मणिकस्य सत्यनियमस्य प्राप्तिरस्त्येव तद्व्याप्यपदेशाद्धहिः। अपि चिष्ठिविधानेन स प्व पूर्वसत्यनियमः प्राप्नोति। प्राक्तसत्यनियमः गृहीता प्व इष्ट्यो विधीयन्ते । तस्माद्यमन्तरालधर्म इति । ज्योति छोमेप्येवमेवास्त्विते चेत् १ न, दीक्षितिनव्यवत्वात्तस्य यावद्दीक्षितः कालमावित्वाच सत्यनियमस्य प्राक्षतस्य नावसर इति बाध्यते। प्रः योजनमिष्टिषु व्रतं गृह्यत प्व॥ १२॥

हुतोच्छिष्टभक्षः ॥ १३ ॥

यजमानो भवति । अग्निहोत्रहुतशोषमक्ष इत्यर्थः ॥ १३॥

चत्रात्रम् ॥ १४ ॥

'अयं ऋतुर्भवंति' इति सुत्ररोषः । किं वा स्यात्, पौर्णमास्यां सर्वेः ष्ट्यो मा भूवित्रिति ॥ १४ ॥

आग्निहोंत्रं जुहोति ॥ १५ ॥ पुनर्विधानसामध्यात् स्वयमेवेति नियमः ॥ १५ ॥ ऐन्द्रः(३) पद्धाः ॥ १६ ॥

(१) पूर्वे प्रथमे आदित्यचरौ वत्सो दक्षिणा भवति।

(२) अब्भ्यादघामि० (वा० २'०२०-२४,२५२६) आदित्येष्ट्यत-इतरं त्रिपश्वर्थमाहवनीयद्विणाग्नी चिहृत्याग्यत्वाघानं ब्रह्मवरणं च कृत्वाऽऽहवनीयमुद्धृत्य तत्र यजमानस्तिस्नः समिष्यः प्रत्यृचमादघाति । (३) प्रथममैन्द्रः पशुभविति तत् आदित्यश्चरः। 'कर्तव्यः' इति शेषः ॥ १६ ॥ चरुपद्योर्विपर्यास्त्रमेके ॥ १७ ॥

इच्छन्ति, कक्षसंस्तवाच्चरोः बाहुसंस्तवाच्चेन्द्रस्येति । यद्येवं पूर्वः कस्मादादित्य एकः ? "यहयमाणो निर्वपति" इत्यतो वचनात् । अस्तु तथेति चेत् ? न, कक्षसंस्तवात्, बाहुसंस्तवाच्चेतरस्य । अन्तर्वहिः मावमङ्गीकृत्य संस्तवोऽयमिति । कथं तर्हि यहयमाण इति भवति । प्राक्तित्रयक्षतात् यह्यमाणो भवति ॥ १७ ॥

अन्तः पात्यस्थाने चर्माची सुरासोमविक्रयिणः सी-सेन शब्पकयस्तोकमानामूर्णाभिलीजानाः सुत्रैः सुरासो-मविक्रयिन् क्रय्यास्ते सुरासोमाः इत्यामन्त्र्यामन्त्र्य सर्वेषु ॥ १८ ॥

प्रक्रमतृतीयेन सोमबदुत्तरामिति वक्ष्यति । तत्रान्तःपात्यस्थानमः स्ति । तत्र सुरासोमविक्रयिणः सकाशान्त्रमणि सीसेन शष्पक्रयः कर्तन्यः । सीसं प्रासेद्धमेव । 'शष्प'शन्देन बीह्यो विक्रदा उन्यन्त इति सम्प्रदायः । अपरे तु 'शष्प'शन्दं तृणमात्रवाचकमाहुः । प्रसिद्धो स्थं तृणेष्वपीति । 'तोक्म'शन्देन विक्रदा यवा उन्यन्ते । तेषामृणीं-भिः(१) क्रयः, लाजानां(२) च स्त्रैः । यन्त्र पठ्यते-"ऊणीस्त्रेण कीः णाति" (श॰ वा॰ १२-७-२-११) इति, स इन्द्रैकवद्भावः । 'सुरासोः मविक्रयिन् कर्यास्ते सुरासोमा' इत्यामन्त्र्यामन्त्र्य क्रयः कर्तन्यः । 'सर्वेषु' इति च सर्वप्रहणं नम्रह्रविषयम् । तस्यापि चामन्त्र्यानियतद्र व्येण क्रयणं कर्तन्यम् ॥ १८॥

क्लीबादेके ॥ १९॥

केतुमिच्छन्ति । क्लीवः प्रसिद्ध एव ॥ १६॥

दिचिणेन हृत्वा नम्नहुचूर्णानि कृत्वा तांश्च त्रीहि-द्यामाकौदनयोः पृथगाचामौ निषिच्य चूर्णेः स्रुख्डय निद्धाति तन्मासरम् ॥ २० ॥

ि दक्षिणेन द्वारेण प्रवेश्याग्न्यागारं नग्नहु(३)चूर्णानि क्रता । नग्नहुः

⁽१) उर्णाभः मेषरोमभिः।

^{; (}२) लाजानां भृष्टवीहीणाम्।

⁽३) नग्नहुशब्दार्थमाह—

किण्व उच्यते । तांश्च राष्पादीन् चूर्णियत्वा ब्राहिस्यामाकौदमयोः पृथ-गाचामौ निषिच्य चूर्णैः संस्कृत निद्धाति 'तन्मासरम्' उच्यते । बीन हिश्यामाकाभ्यां च सुरा निष्पाद्यते । सा च यागसाधनम् । तेन सा तद्भौरभिसम्बध्यते । अतस्तयोश्चतुर्भृष्टिकग्रहणपूर्वकं पृथगोदनौ नि-ष्पाद्येते ॥ २० ॥

ओदनी चूर्णमासरैः मृश्युज्य स्वादीं त्वाः-

शुना त इति॥ २१॥

चूर्णमासरस्र सष्टाबोदनौ ''स्वाद्वीं(१) त्वा'' इति मन्त्राभ्यां कुम्भ्यां प्रक्षिपति ॥ २१॥

त्रिरात्रं निद्धाति॥ २२॥ प्रक्षिप्ता च त्रिरात्रं निधेया(२) सुरा ॥ २२ ॥ एकस्याः पयसाऽपाकृतेनादिवनेन परिचिश्वति परीतो षिञ्चतेति ॥ २३ ॥

सर्जत्वित्रफला चैव, शुण्डी चैव पुनर्नवा । चतुर्जातकसंयुक्ता, :विष्वली गजविष्वली ॥ वंशाऽवका बृह्च्छत्रा, चित्रकं चेन्द्रवारुणी। अश्वगन्धां समुत्पाद्य, मूलान्येतानि निर्दिशेत्॥ धान्यकं च यवानी च, जीरकं कृष्णजीरकम्। द्वे हरिद्वे वचा चैव, विरुद्धा बीहयो यवा ॥ इति ।

क्रयणानन्तरं तानि शष्पादीन्यादाय दक्षिणेन हत्वा उग्न्यगारं प्रवे रय पूर्व नग्रहुचूर्णानि कृत्वा सर्जत्वगाद्यौषघानि त्रणीं विद्वा शरपतो क्मलाजांश्च चूर्णीकृत्य दर्शपूर्णमासधर्मेण पात्रासादनादि बीहि श्या-माकचतुर्मुष्टिप्रहेणपूर्वकं फलीकरणान्तं समन्त्रकं कृत्वा बहुतरोदके पृथक्षृथक्वरं पक्त्वा श्रतालस्भनानन्तरं ब्रोहिश्यामाकौद्नयोः पृथगाः वामौ निषिच्य पृथग्भिन्नयोः पात्रयोश्चर्वोर्मध्यादतिरिक्तमुष्णोदकम्बः स्राज्य तदुदकं नग्नहुप्रभृतिभिश्चतुर्भिश्चूणैः संसुज्य स्थापयति । तन्मा-सरं तस्य चूर्णसंसृष्टस्याचामस्य मासरमितिसंजा।

(१) स्वाद्वोत्तवा० (वा०सं०१९-१) अःग्रुना ते० (वा०सं०२०-२७)

(२) पवमाचामयोश्चूर्णसंसर्गानन्तरमोदनौ चतुर्भिश्चूर्णः संसुज्य "स्वाद्वीत्त्वा" "अःशुना त" इति द्वाभ्याम्मन्त्रास्यां एकस्मिन्महित पात्रे प्रतिष्य ''तिस्रो रात्रीः' (रा० ब्रा० १२-७-३-६) इत्यादिश्रतेः त्रिरात्रं निद्घाति सुगुप्ते देशे स्थापयति इति जीर्णसम्बद्धायः।

एकस्या गोः पयलाऽपाक्ततेनादि नेन सुरां परिविश्वति 'परीतो षि श्वता''(१) इत्यनेन मन्त्रेण । 'एकस्यै दुग्येन प्रथम। हराश्चिं पारेषिश्वति'' (श० ब्रा० १२-८-२-११) इति वचनात् । आदेवनः द्वांद्वद्यापाकरणं कर्तेन्यम् । तच्चापृर्वत्यादप्रधानत्वाच्च पयसः 'आदेवस्यामपाकरोमि' इति । 'गोस्पर्शनमात्रमेव' इति सम्प्रदायः । अपरे तु धर्मवद्पाकरणः मिच्छन्ति ॥ २३ ॥

शब्पचूर्णानि चावपति ॥ २४ ॥

च शब्दारसुरायाम् ॥ २४॥

सारस्वतेन बयोः पातः ॥ २५ ॥

प्रातः शब्देन च द्वितीयमहरिमधीयते। तत्रापि च रात्रावेवािमः वेकः। "प्रथमाः रात्रिं परिविञ्चति" इति प्रकृत्य "द्वयोर्दुग्धेन द्वितीयाम्" (श्रव त्रा॰ १२-८-२-११) इत्याह । द्वितीयां रात्रिमिति गम्यते(२)॥ २५॥

तोक्सचृणांति च ॥ २६ ॥

आवपति ॥ २६ ॥

ऐन्द्रेणोत्तमे तिखणाम् ॥ २०॥

(३)गवां दुग्धेनैन्द्रेण परिषिञ्जति ॥ २७ ॥

लाजचूर्णानि च ॥ २८॥

आहपति । अत्र चूर्णानां पयसश्च संस्कारकत्वम् । साधनं तु बीहि-इयामाकावेव । अतस्तयोरेव देवतो हेशेन प्रहणम् ॥ २८ ॥ इत्येकोनविंशेऽध्याये प्रथमा कण्डिका ।

वेदी मिमीने वरुणप्रघासवत् ॥ १॥

्र उत्तराऽन्या भवति दक्षिण।ऽन्येति । दक्षिणस्याः प्रतिष्रस्थातुकर्तुः कता वितना ऌभ्यते ॥१॥

प्रक्रमतृतीयेनावृत्तेनोत्तराः मोमबत् ॥ २ ॥

- (१) परीतो षिञ्चताः (वा० सं० १९-२)
- (२) "सरस्वत्या अपाकरोमि" इति गावौ स्पृष्ट्वा दोहितेन त-योर्दुग्धेन तेनैव मन्त्रेण सुरां सिञ्जतीत्यर्थः ।
- (३) तृतीयेन्हि ''इन्द्राय जुत्राम्णेऽपाकरोमि'' इति स्पृष्टानां तिसृणां गन्नामित्यर्थः।

प्रक्रमस्य तृतीयं (१)प्रक्रमतृतीयम् । तेनोत्तरस्यां वेद्यामावृता माः निक्रया खोमवरकर्तन्या । 'खोमवत' इति च प्राची षट्तिशत् प्रश्चाः क्षिश्चात्याख्रिशदा पुरस्ताचतुःविश्वातः । तृतीयेनित कुतोऽध्यवसितम् १ 'वितृतीये यजेत वितृतीयं च सोप्रस्य सौजामणी' इति चचनात् । एवं च सति यदि प्रक्रमस्य तृतीयं गृद्धोत ततः क्षेत्रस्य नवमभागः परिचित्रवात । तत्र वितृतीये यजेतेत्यसमर्थे स्यात् । तस्मात्प्रक्रमशब्देन प्रक्रमपरिचित्रत्रं क्षेत्रममिधीयते, यथा पादावृत्या । परिचित्रत्रं क्षेत्रं पादावर्तशब्देनामिधीयते, यथा पादावृत्या । परिचित्रत्रं क्षेत्रं पादावर्तशब्देनामिधीयते, यवं प्रक्रमपरिचित्रत्रं प्रक्रमशब्देन । तस्य तृतीयं प्रक्रमतृतीयम् । तेन च मानस्याशक्यत्वात् परिच्छदकरणं प्रमाणं स्थाते । तेन प्रमाणेन सोमवद् कियोत्तरस्थाः । यद्वा प्रक्रमप्रिचित्रक्षेत्रतृतीयकरणीप्रमाणेन सोमवदावृत्तेनिति । प्रक्रमतृतीयकरणीप्रमाणेन सोमवदावृत्तेनिति । प्रक्रमतृतीयकरणीप्रसाणेन सोमवदावृत्तेनिति । प्रक्रमतृतीयकरणीप्रमाणेन सोमवदावृत्तेनिति । प्रक्रमतृतीयकरणीप्रमाणेन सोमवदावृत्तेनिति । प्रक्रमतृतीयकरणीप्रमाणेन सोमवदावृत्तेनिति । प्रक्रमतृतीयकरणीप्रसाणेन सोमवदावृत्तेनिति । प्रक्रमतृतीयकरणीप्रसाणेनित्ते । स्रमतृतीयकरणीप्रसाणेनितः स्व

तयोः पश्चात्खरौ करोति ॥ ३॥

तयोवेंद्योर्निष्पन्नस्वद्भपयोः पश्चाद्भागे खरौ करोति । ख(२)रकरणं च शा(३)खान्तरे विहितमेव ॥ ३ ॥

श्वः (४)प्रणयनीयाधानादि करोत्याज्यासादनात् स्प्या-

दि करोति दक्षिणस्यां वरुणप्रधासवत् ॥ ४ ॥

पवं चतुर्दश्यां उत्तरवेदिच्छादनान्ते। चरा वेदिर्भवति, दक्षिणोत्कर-करणान्ता । तस्यां च 'वरुणप्रघासवत्' इति चत्युपदेशात्प्रतिप्रस्थाता कर्ता ॥ ४ ॥

सौरमेवास्याम् ॥ ५ ॥

दक्षिणस्यां (२)सौरमेव मवति । एवकारकरणं च तद्ङ्वाभावज्ञा-पनार्थम् । तत्कुतः ? अत्र हि श्रूयते "आश्विनोऽजो धूस्रः सारस्वतो मेष ऐन्द्र ऋषभ" इति । तथा "पयश्च सुरा च मवतः" (३१० ब्रा० १२-

- (१) प्रक्रमतृतीयञ्च—शुल्बस्त्रे ४५। तत्कारिकायां च—
 पदस्याक्ष्णया तिरश्चो तयोरक्षणया च भवेत्।
 सोत्रामण्या मिमातन्या वेदिः सोमवदुत्तरा॥ (शुल्का० १६)
- (२) संश्कारनिमित्त कत्वात्खरशब्दस्य।
- (३) 'धदेशान्तरे' इ०.पा०।
- (४) श्वः शब्देन चतुर्थं यजनीयमहरूच्यते पौर्णमासी समावा-स्या द्या।
 - (५) अस्यां दक्षिणस्यां वेदौ केवः सौरमेव कर्म भवति।

७-३-८) इति सर्वस्यास्यैकतन्त्र्यस् । तत्र वचनाहक्षिणेऽग्रौ सुराग्रह-होमः। ''दक्षिणेऽग्रौ सुराग्रहान् जुह्वति'' (श्व०त्रा० १२-९-३-१२) इति। तद्कान्युत्तर एव । तथा चाह-"उत्तरेऽबी पद्मामेःप्रोडाबीः पयोबहै-रितिचरन्ति यदुचान्यत्' (श्वा व्हा ०१२-६-३-१४) इति । अन्य प्रहणेन सौर-प्रहाङ्गान्युच्यन्ते । तान्युत्तरस्यामेवैकतन्त्रयात् । अतश्च आचार्येण श्वापि-तमेतत् 'सौरमेवास्यां' मवति । एवकारकरणात् अङ्गान्युत्तर एव । एवं च कृत्वा तन्त्रैकत्वाम दक्षिणवेद्यर्थे प्रणीताः क्रियन्ते । 'अग्निप्रणयनम्' इत्याहवनीयादेव दक्षिणस्याम् । सपाद्यकेषु चातुर्मास्येषु तु तन्त्र-मेदाहाक्षणवेद्यर्थे प्रणीताप्रणयनं क्रियते गाईपत्याच्चाशिप्रणयनम् ॥५॥

श्व(१) भ्रं खात्वा खरमपरेण चमांवधाय प(२) रिस्-तमासिच्य कारोतरमवद्याति कारोतराहा चर्मणि मन्त्रलिङ्गात्पुतामाद्त्रे सिञ्चन्ति परिषिञ्चन्तीति ॥ ६॥

दक्षिणां वेदिश्रोणिमपरेण श्वभ्रं खात्वा चर्मावधाय परिस्तुतमासिः च्य तत्र कारोतरमवद्रशाति सुरापावनाय । कारोतरं च (३)सुरापावनं प्रसिद्धं शौष्डिकानाम्। ततः पृतां सुरामाद्ते "सिञ्चान्त परिषिश्च-न्ति" (४) इत्यनेन मन्त्रेण। कारोतराद्वा पतितां चर्माण गृहन्तीति। कुत पतत् ? चर्माण मन्त्रलिङ्गात्। "कारोतरेण द्वतो गर्वा त्वाचि" (वा॰ सं॰ १९-८२) इति मन्त्रलिङ्गमप्यर्थप्राप्तस्योपायस्य नियामकं भवति। यद्येवं कारोतरादेव पतितां चर्मणि गृह्णाति। सम्प्रदाये तु विकल्पः(५)॥६॥

(१)सते पुनाति गोऽइववालवालेन पुनाति ते परिस्तामिति॥ ७॥

सतराब्दः पात्रवाची । तच पालाशम् । तत्र हि सुरा न विनाशः मुपयाति । तत्र गोऽश्ववालपवित्रेण सुरां पुनाति "पुनाति ते परि पुनाति ॥ ८॥

(२) सुराम्।

⁽१) गर्तम्।

⁽३) चाळनिका।

⁽४) सिञ्चन्ति परिषिञ्चन्ति० (वा० सं० २०-२८)

⁽५) अथवा पूर्व चर्मणि कारोतरमवधाय तत्र सुरामासिञ्जति तथा च सति कारोतराचर्माण सुरा पति । कुतः ? मन्त्रलिङ्गात् ''का रोतरेण द्घतो गवास्त्वचि" इति पूर्वा सुरामादत्ते।

स्तृतम्"(१) इत्यनेन मन्त्रेण ॥ ७ ॥

वायोः पुत(२) इति सोमातिपृतस्य ॥ ८ ॥ प्रास्ति(३)ति तद्वाभिनः ॥ ९ ॥

'पुनाति' इति शेषः ॥ ९ ॥

उत्तरस्यां पयो वैतसेऽजाऽविलोमपवित्रेण

ब्रह्मक्षत्रामिति ॥ १०॥

उत्तरस्यां वेद्यां अज्ञाऽविकामपावित्रेण वैतसे(४)पात्रे पयः पुनाति ''ब्रह्मक्षत्रम्" (५)इत्यनेन मन्त्रेण । तच्च पयो यागार्थत्वाद्धर्मवद्भवति१०॥

ब्रह्मानुमन्त्रणमध्वयों अद्विभिरिति ॥ ११ ॥ प्रमानं पयो ब्रह्माऽनुमन्त्रयते "अध्वयों अद्विभिः"(६) इति ॥११॥ प्रयोष्णदान् गृह्णाति क्कविदङ्गे(७)ति ॥ १२ ॥

अनेन मन्त्रेण ॥ १२ ॥

पृथगुपयाम(८)योनी ॥ १३ ॥

प्रतिग्रहं भवतः ॥ १३॥

खरयोः सादनम् ॥ १४॥

पयोत्रह(९)सुराम्रहाणां च कर्तव्यम् ॥ १४ ॥

ग्राहिबनमा(१०)इचत्थेन ॥ १५॥

- (१) पुनाति ते परिस्तृतं (वा० सं० १९-४)
- (२) घायोः पृतः पवित्रेण प्रत्यङ्० (वा० सं० १९-३)
- (३) बायोः पृतः पवित्रेण प्राङ्क्सोमो० (वा० सं० १९-३)
- (४) वेतसवृक्षविकारे पात्रे (वैतसो जलजम्बुकः)
- (५) व्यक्ष क्षञ्जम् (१९-५)
- (६) अदुध्वय्योऽअद्दिभिः० (वा॰ सं० २०-३१)
- (७) कुविदङ्ग० (वा० सं० १९-६)
- (८) अत्र सन्त्रसमाद्वाये 'उपयामगृहीतोस्ति' 'पष ते योतिः' इत्येते. द्वे यज्जपी सकृत्पठिते अपि त्रिषु प्रहेषु पृथग्मवतः ।
 - (९) 'पयोग्रहाणाम्' इ० पा०।
 - (१०) द्रवत्वात्तत्स्रवेण स्थान्नवा गृह्णातिशब्दतः। यत्रावचितशब्दः स्थात्स्रवस्तत्र प्रवर्तते॥ इति वाजिनभाष्ये हि प्राक्तं तेनात्र नोदितम्। उपस्ताराभिघारौ स्तो न तयोचिनिवर्तकम्॥

पात्रण गृह्वाति ॥ १५॥

गोधूमकु(१)वलचूर्णानि चावपति तेजोसी(२)ति ॥१६॥

'च' शब्दाह्रहे ॥ १६॥

सारस्वतमौदुस्वरेण ॥ १७ ॥

पात्रेण गृह्णाति ॥ १७ ॥

उप(२)वाकवद्रचूर्णानि च वीर्यमसी(३)ति॥ १८॥

'च' शब्दादावपति । उपवाकशब्देन इन्द्रयवः ॥ १८ ॥

एन्द्रं नैयग्रोधन ॥ १९ ॥

यवक(४)र्कन्धुचूर्णानि च वलमसी(५)ति॥ २०॥

आवपति ॥ २०॥

स्थालीभिः सौरान्नाना हि वामिति व्यत्यासम् ॥ २१ ॥

सौरान् त्रहान् गृह्वाति "नाना हि वाम्"(६) इत्यनेन मन्त्रेण । तांश्च गृह्वन् व्यत्यासेन गृह्वाति। पयोग्रहं गृहीत्वा ततः सुराग्रहं (७) पुनर्त्येव मेव(८)। "व्यतिषकान् गृह्वाति" (दा० ब्रा०१२-७-३-१५) इति

> गमकं किंचिदबास्ति सम्प्रदाये द्धिप्रहे। आस्नातौ च परं तबावदानं द्विरितीरितम्॥ उपस्ताराभिधारौ तु बाजिनेऽपि प्रदर्शितौ। चसाहोग्रे पशौ सुत्रे श्रुतौ वाऽपि निदर्शनात्॥

तथा च आज्यग्रहमाश्वतथेनैत्यत्र भाष्यम्—'ततश्च आहवनीययज्ञः तिकत्वाद् भ्रुवायाः सवषट्कारत्वाचतुर्गृहीतमाप्यायैव' इति ।

- (१) कुवलान्यामलकतुल्यानि बदराणि।
- (२) तेजोऽसि० (वा० सं० १९-९)
- (३) बद्राणि निरुपपद्बद्राणि चणकवद्राणि।
- (३) ब्वीर्थ्मसि० (वा० सं० १९-९)
- (४) कर्कन्धृनि-अनुपजीव्यानि आरण्यबद्रराणि ।
- (५) बलमसि०॥ (वा० सं० १९-६)
- (६) नाना हि वाम्०॥ (वा० सं १९-७)
- (७) यद्यपि कलिवर्जप्रकरणे 'सौत्रामण्यां सुराग्रहा' इति । 'न' इत्यनुषज्यते । कातीयसूत्रे ऋषभस्थाने छाग उक्तस्तेन किमायातम्, स्-त्रभाष्यकारमते सुराग्रहनिषेघो नास्ति ।
- (८) अयमर्थः-आदावाध्वनं पयोग्रहं गृहीत्वाऽऽसाच तत आ-श्विन सुराग्रहस्य ग्रहणासादने । ततः सारस्वतौ पयोग्रहसुराग्रहौ । तत

वेंचनात्॥ १२॥

पयोग्रहान्वा पूर्वम् ॥ २२ ॥ पयोग्रहान्वा पूर्व गृह्णाते(१) । प्रमपि हि श्रूपते इति ॥ २२ ॥ सुराग्रहाञ्छीणात्योजोऽसीति वृक्तव्याघासिः हलोमाभिः प्रतिमन्त्रं मिश्रैः ॥ २३ ॥

"थोजोऽसि"(२) इत्येभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रं वृकादिलोमिर्मिष्ठैः सुराप्रहाञ्क्रीणातीति॥ २३॥

एके यथासंख्यम् ॥ २४॥

लोमिमः श्रयणं कुर्वन्ति ॥ २४ ॥

सोमो राजे(२)त्यनुवाकेन ग्रहानुपातिष्ठते युगपत् ॥२५॥ योगपदेन च॥२५॥

े चतुःर्भिर्वा पयोग्रहाञ्छेषेण सौरान् ॥ २६॥ उपतिष्ठते ॥ २६ ॥

दीक्षावत्पावयतोऽन्तःपात्वे इयेनपत्राभ्यां

या व्याघामिति ॥ २०॥

अध्वर्युपतिप्रस्थातारावन्तःपात्ये स्थितं यजमानः इयेनपत्राभ्यां पावयतो "या ब्यान्नम्" (४)इत्यनेन मन्त्रेण । दीक्षावदिति अर्ध्वम-वाञ्चं च (५) ॥ २७ ॥

पेन्द्री पयोग्रहसुराग्रही। उपयामयोनी अत्र सुराग्रहेषि पृथक् प्रथमे 'नाना हि' इति पिठस्वा 'उपयामगृहीतोऽस्याश्विनं तेजः' इति ग्रहणम्, 'एष ते योनिर्मोदाय त्वा' (वा०सं० १९-८) इति सादनं, द्वितीये सारस्वतग्रहे 'नाना हि' इत्यन्ते 'उपयामगृहीतोऽसि सारस्वतं वीर्थम् इति ग्रहणम् एषते योनिरानन्दाय त्वा' इति सादनम्; तृतीये ऐन्द्रग्रहे 'नाना हि' इति मन्त्रान्ते 'उपयामगृहोतोस्यैन्द्रं बलम्' इति ग्रहणम्, 'एष ते योनिर्महसे त्वा' इति सादन मिति।

- (१) सर्वेषामपि पयोग्रहान् गृहीत्वा ततः सुराम्रहानित्यर्थः।
- 🖯 (२) ओजोसि० (वा० सं० १२-२)
- ः (३) सोमो राजा०॥ (वा० सं० १६-७२,७३,७४,७५,७६,७७,७८,) इत्यष्टचेनानुवाकेनाध्वर्युरुपतिष्ठते युगपत्पयोग्रहान् सुराग्रहांश्च ।
- ् (४) याञ्चाम्ब्रम्० (वा॰ सं० १९-१०)
 - (५) एकेनार्धेन नामेहरवं प्रदक्षिणं, ब्रितीयार्धेन नामेरघः, उसाः

अग्नि प्रेक्षयानि यदापिपेषोनि ॥ २८ ॥ 'प्रेक्षयित'' इति कारितत्वादध्येषणा(१)। "यदापिवेष''(२) इति यजमानः प्रेक्षते ॥ २८॥

> पयोग्रहसंमदीनः सम्एचस्थे(३)ति ॥ २९ ॥ विष्टचस्थेति(४)

> > इत्येकोनविशेऽध्याये द्वितीया कण्डिका ।



अभिमर्शनम्। सौरानिभमृश्योदकस्पर्शनिमिति सम्प्रदायः। स्य-त्यासप्रहणेऽप्येवम्॥१॥ वैकृतावसरे प्राकृतानुवृत्यर्थमाह—

अभ्रयादि करोति ॥ २ ॥ आश्विनोऽजो घूमः ॥ ३ ॥ पशुभवति । अजमहणमुत्तरिवस्त्रया ॥ ३ ॥ सारस्वतो मेषः ॥ ४ ॥

ऐन्द्र ऋषभः ॥ ५ ॥

मध्ये यूपः ॥ ६ ॥ दक्षिणोत्तराचैन्द्रवायोधसयोः ॥ ७॥

पवं देशाध्यवसानं कर्तस्यम्। एवं हि श्रूयते—"तद्यदेतः सौत्रामः णिकं यूपमेतौ यूपावभितो भवतः" (श्रूण ब्रा॰ १२-९-३-१६) इति ॥॥

वपामार्जनान्ते ग्रहानादाय पूर्ववदनुवाचनः सुरासोमेभ्योऽनुवृहीति ॥ ८ ॥

'पूर्ववत' शब्देन च राजस्यसीत्रामणिक उच्यते । तत्र ह्युक्तम्-

भ्यामर्थाभ्यां नामेरूध्वै पुनश्च ताभ्यामेवाघ इति वा ।

- (१) 'अग्नि प्रेक्षस्व' इति प्रेषेणाध्वर्युर्यजमानमप्ति दर्शयति, स च प्रेषित औत्तरवेदिक मिंग्र प्रेक्षते ।
 - (२) यदापिषेष० (वा० सं० १९-११)
- (३) सम्पृचस्थ० (वा० सं०१९-११) इत्यनेन मन्त्रेणः त्रयाः णामपि पयोग्रहाणां यजमानः सहैव स्पर्शं करोति।
 - (४) विवपृचस्थ० (वा० सं० १९-११) अनेन च सुराब्रहाणाम् ।

"अश्विभ्यां सरस्वत्या इन्द्राय सुत्रामण" (श० वा० ५-६-४-२४) हित, 'पता हि प्र३देवता' हित । अत्रक्ष ययोग्रहार्थे तदुहेरोनोपाकरः जम् । सुराष्ट्रहार्थे च वीहिश्यामाकयोश्चतुर्मुशीनां ग्रहणामिति । अयं च चरकसौत्रामण्यतुवाचनातिदेशोऽयरो विशेषः ॥ ८ ॥

स्प्रेषं तु॥ ९॥

'तु' राब्दो विरोषणार्थः ॥ ९ ॥

प्रस्थितमिति च॥ १०॥

'च' राब्दादपरो विशेषः । प्रस्थितराब्दस्य प्रयोगः सुरासोमान्त्र-स्थितान्त्रेष्येति ॥ १० ॥

त्रिपशोः सर्वम् ॥ ११ ॥

प्रस्थितशब्दवद्भवति । सर्वप्रहणं च वपाऽर्थम् । पशुपुरोडाशार्थः मित्यपरे । तञ्चानुपपन्नम् । येनायं सवनीयेषु पठ्यते—"प्रस्थितमिति च प्रसुते" (का० श्रौ० ६-६-२३) तेनेह प्राप्तस्योपसंहारार्थमिदं वचनम् न च पुरोडाशे प्रस्थितशब्दस्य प्राप्तिः । तस्मात्सर्वप्रहणं वपाऽर्थमेव । पशुराब्दस्याङ्गेषूपचरितत्वात्तत्रेव मा भूदिति 'सर्वे' प्रहणम् । इह चोपः संहारात्र्पस्थितशब्दस्य पशुगणान्तरेष्वप्रवृत्तिः ॥ ११ ॥

सुरावन्त(१)मिति जुहोति॥ १२॥

पयोग्रहान्(२)॥ १२॥

पालादोः सौरान्न सन्मयमाहुतिमानश इति श्रुतेर्यस्त इति ॥ १३ ॥

पालाशैः सुराग्रहान् जुहोति "यस्त"(३) इत्यनेन मन्त्रेण । कुत एतत् 'पालाशैः' इति ? यस्मात् मृन्मयमाद्वितं न व्यामोति । कथं झायन्ते ? "यद्वानस्पत्यैकेनेन्यो जुह्वत्यथ कस्मादेतं मृन्मयेनैव जुह्वोति" (श्राव झाव १४-२-१-५३) इति । बानस्पत्यं देवानामुचितं मृन्मयं चानस्वितिमिति झापयति । अपि च "पालाशान्युपशयानि भवन्ति" (श्राव झाव १२-७-२-१५) इति अत्र श्रूयते मा भृद्दद्वशर्यता तेषामिति ॥१३॥

अध्वर्युः प्रतिप्रस्थाताग्रीचम्बिननेत्वादिवनं अक्षयन्ति ब्रिविरावर्तम् ॥ १४ ॥

⁽१) सुरावन्तम्० (वा० सं०१९-३२)

^{ः (} २) अध्वर्युस्त्रीनपि पयोग्रहान्सहैव जुहोति ।

⁽३) युस्ते० (बा० सं०१५-३३) इति मन्त्रेण प्रतिप्रस्थातः पाळाकोलुक्लैः सुराग्रहान् दक्षिणेऽग्रौ यजति ।

अध्वय्वादय आहिवनप्रहरोषं द्विद्विरावर्त्यावस्यं "यमहिवना"(१) इति मन्त्रेण भक्षयन्ति ॥ १४ ॥

होतृ ब्रह्ममे त्रावरणाः सारस्वतमा हिवनवत् ॥ १५ ॥ 'मक्षयन्ति' इति रोषः ॥ १५ ॥

रोषः दोषमासिञ्जत्युत्तरे पूर्वस्य ॥ १६॥ भक्षितरोषं पूर्वस्य प्रहस्योत्तर आसिच्यते(२)॥ १६॥ ऐन्द्रं यजमानः ॥ १७॥

'मक्षयति' इति शेषः॥ १०॥

यदत्रेति सौरान्मक्षयन्ति यथाभिततं प्राची-

नाचीतिनो दक्षिणतः ॥ १८ ॥

दक्षिणते। वितानस्य व्यवस्थिताः प्राचीनावीतिनः सन्तो "यदत्र" (३) इत्यनेन मन्त्रेण सौरान्मक्षयन्ति। यथा प्रयोग्रहाणां मक्षणं कृतं तः थैवेति ॥ १८ ॥

प्राणभचमेके ॥ १९ ॥ कुर्वन्ति । संचायं विकल्पः । शास्त्रस्य तुल्यत्वात् ॥ १८ ॥ परिक्रीतो वा वैद्यराजन्ययोरन्यतरः ॥ २० ॥ 'भक्षयेत' इति ॥ २० ॥

अङ्गारेषु वा बहिष्परिधि दक्षिणतो जहोत्यादिव-नमुत्तरे मध्यमे सारस्वतमैन्द्रं दक्षिणे पितृभ्य(४) इति प्रतिमन्त्रम् ॥ २१ ॥

जुहोति(५) ॥ २१ ॥ अक्षन्पितर(६) इति प्रक्षालनेनोपसिञ्जति(७) ॥ २२ ॥

- (१) यमश्रियना० (वा० सं १९-३४)
- (२) पूर्वस्य पूर्वस्य ग्रहस्य शेषमुत्तर उत्तरे ग्रहे आसिश्चति ।
- (३) यद्त्र० (वा० ं० १९-३५)
- 🧽 (४) पितृब्भ्यः० (वा० सं०,१९-३६)
- (५) सुरात्रहाणां भक्षणं त्राणम् परिकोतभूपाछवैश्यान्यतरकतुं-कंपानमिति पक्षत्रयमुक्तम्। चतुर्थमाह यद्राऽऽहवनीयस्याङ्गरेषु परिधे-बंहिर्द्क्षिणदिकस्थेषु होमशेषान्सुरात्रहान्पितृभ्य इति मन्त्रत्रयेण जुहोति।
 - (६) अक्षन्त्वितरः० (वा॰ सं० १९-३६)
 - (७)सौरप्रहहोमपात्रक्षालनजलेन यथास्वमङ्गारान्सिञ्चति प्रतिमन्त्रम् । २५ का०

यथाहोमं पात्रे ॥ २२ ॥

पितरः शुन्धध्व(१)मिति जपित ॥ २३ ॥
कुम्भीमास्य कुम्भवत् शतिवतृण्णां वालपवित्रहिरण्यान्यन्तर्धाय नवर्चे वाचयित पुनन्तु मेति ॥ २४ ॥
'कुम्भवत्' इति दक्षिणस्याग्नेरुपरि सुरावतीमासञ्जति वालपवित्रहिरण्यान्यन्तर्धीय मध्ये नवर्चे वाचयित "पुनन्तु मा"(२) इति ॥ २४ ॥

सोमवतां बर्हिषदामग्निष्वात्तानां च॥२५॥

'च' शब्दान्नवर्च(३) वाचयति ॥ २५॥

पूर्ववन् सोमातिपूतश्चेत्॥ १६ ॥

सोमातिपूतसौत्रामण्यां पूर्ववहुपस्थानं कर्तब्यम् 'सोमवदादि' इति ॥ २६ ॥

ये समाना(४) इति यजमानो जुहोति ॥ २७॥ उत्तरे च यज्ञोपवीत्युत्तर्या ॥ २८॥

ऋचा(५) जुहोति । चशब्दाद्यजमानः । अत्र च श्रूयते—"सर्वे यञ्जोपवीतानि कृत्वोत्तरमग्रिमुपसमायन्ति" (श॰ ब्रा॰ १२-८-१-१९) इति ॥ २८ ॥

(६)अन्वारब्धेषु पयो जहोति हे सृती (७)इति ॥२९॥ तब्बैतब्जुहोतिधर्मैर्धर्मवद्भवति ॥ २६॥

(८)शेषं यजमानो सक्षयतीद्ध हविरिति ॥ ३० ॥

(९)अनेन मन्त्रेण ॥ ३० ॥

चात्वाले मार्जयन्ते सपत्नीका हिरण्यमन्तर्भाध इत्येकोनविशेऽध्याये तृतीया कण्डिका।

⁽१) पितरः शुन्धदुष्त्रम् (वा० सं० १९-३६)

⁽२) पुनन्तु मा० (वा० सं०१९-३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४,) अत्र प्रथममन्त्रे ऋग्द्रयमिति नव।

⁽३) स्वःह स्रोम०॥ (बार संट १९-५२, ५३, ५४, ५६, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०) (४) य समानाः० (बार संट १९-४५)

⁽५) ये समानाः० (वा० सं०१९-४६)

⁽६) ऋत्विष्यज्ञमानेषु कृतान्वारमभेषु अध्वर्धुः।

⁽७) इ सृती० (वा० सं० १९-४७)

⁽८) उखास्थितं शेषं पयः। (९) इद्वृह्विः० (वा० सं० १९-४८)

पद्मपुरोडाजान्निवेपन्यैन्द्रः, सावित्रं वारुणं दशकपालम्॥१॥

"अन्यदेवत्याः परावो भवन्ति" वचनात् "अन्यदेवत्याः पुरो-डाशाः" (श० त्रा० १२-७-२-१६) इति । पशुपुरोडाशस्य च प्रकृती पशुदेवतासंस्कारार्थतोकाः, सा चात्र न सम्भवति । तत्र केचिदाहुः—पशुपुरोडाश पेन्द्रः पशुदेवतासंस्कारकः, सावित्रः संस्कारसामान्यात् सारस्वतस्य, वाष्ण आश्विनस्य। एवं संस्कार् रकत्वमेषाम्। तत्पुनः युकायुक्तविचाराईमिति॥१॥

एककपालं चावभृथाय ॥ २ ॥

वारुणं चैककपाळं तैरेव सहावभृधाय निर्वपति । वारुणस्य द्श-कपाळतेन्द्रसावित्रयोरिप कपाळसंख्योपळक्षणार्थम् । पवं हि अप्यते-"पकादशकपाळ पेन्द्रो भवति, द्वादशकपाळः सावित्रो, दशकपाळो बारुणः" (श० ब्रा० १२-७-२-१८, १९, २०) इति ॥ २ ॥

आसाचैनानाष्यभागौ यजत्यत्र स्विष्टकृद्धनः स्पत्योः प्रैषद्र्धनात् ॥ ३ ॥

पशुपुरोडाशानासाद्याज्यमागौ यजीते । अत्र हि क्रमे स्विष्टक्रद्वः नस्पत्योः प्रेषे आज्यभागदेवतयोः सङ्गीर्तनदर्शनात् ॥ ३ ॥

यथोक्तं वा मन्त्राणामविधानात्॥ ४॥

'वा'शब्दः पक्षव्यावृत्तौ । नात्र आज्यमागौ विद्येते । यथाप्राप्त-मेवाज्यभागयोरनुष्ठानम् । कथं च प्राप्तिः प्रह्यागात्पूर्वम् १ तेषां हि दर्शपूर्णमासचोदकेनाज्यभागयोः प्राप्तिः । यत्तु-'स्विष्ठकृद्धनस्पत्योः प्रेषदर्शनात्' इत्युक्तम् । तन्न, मन्त्राणामविधायकत्वात् । न हि विधा-यका मन्त्राः ॥ ४ ॥

त्रयाञ्चि दातं दक्षिणा ददात्यनु शिशुं च वडवधेनुम् (१)॥६॥

ननु च घेनुत्रहणादेवानुशिशुत्वं प्राप्तम् अनुशिशुप्रहणं न कर्त-व्यम् ? न तत्क्वतोपकाराभावाच्छिशुनं छभ्यते, तस्मात्कर्तव्यमेव । घेनुप्रहणं तिहें किमर्थम्, अनुश्चिशुप्रहणमेव कर्तव्यम् । कर्तव्यं वा । अक्रियमाणे हि परशिशुरपि प्राप्नुयात् । तन्मा भूदित्युभयमुक्तम् । अस्मिन्नवसरे दक्षिणादानमुक्तं पशुपुरोडाशान्ते यथा स्यादिति ॥ ५ ॥

⁽१) वडवा चासौ, शिशुश्च सः, तयैव जातो यः शिशुः। तेन सहितां वडवां दद्यादित्यर्थः।

एकाद्शिनिधर्माः पशुगणेषु(१) ॥ ६ ॥ भवन्ति, गणत्वसामान्यात् ॥ ६ ॥

शमित्रनुशासनप्रभृति वनस्पत्यन्तं कृत्वा सोमा-सन्दीवदासन्दीं जानुमात्रपादीं वेद्योनिंदघाति सत्रस्य योनिरिति॥७॥

"द्वाऽ उत्तरस्यां वेद्यां पादौ भवतो द्वौ दक्षिणस्याम्" (राञ्जा० १२-८-३-६) इति श्रुतेः(२)। रामित्रनुरासनं तु द्वितीयं कर्तव्यम्। प्रथमं हि सवनीयचोदकपरिप्राप्त्या पशुपुरोडाशस्योदकदानान्ते तत्पात्रसम्मार्गे कृत्वा निर्वृत्तमिति ॥ ७॥

कृष्णाजिनमस्यामास्तृणाति मा स्वे(३)ति ॥ ८ ॥ आसन्दाम्॥ ८॥

तस्मिन्नास्ते यजमानो निषसादेति ॥ ९ ॥ "निषसाद"(४) इत्यनेन मन्त्रेण यजमान उपरि विशेत् ॥ ९ ॥

> पाद्योद्यमा उपास्यति राजतः सन्ये सुस्रोरिति ॥ १० ॥

(५)अनेन मन्त्रेण ॥ १० ॥

सौवर्णी शिरस्येके विद्योदिति ॥ ११॥ सौदर्ण पुनः शिरस्येके आचार्याः उपास्यन्ति, एके दक्षिणवादे ।

⁽१) पशुनां गणाः द्वित्रभृतिपशुसम्हाः वेषु पशुगणेषु पकादशिनि-धर्मा नियोजनादयो भवन्ति ।

⁽२) ज्ञत्त्रस्य योनिः० (वा॰ सं॰ २०-१) इत्यनेन मन्त्रेण जानुत्रमाणपादामासन्दीं तथा निदघाति यथा तस्या द्वौ पादौ उत्तर-वेद्यां द्वौ च दक्षिणस्यां भवेताम् । सोमासन्दीवदिति मुञ्जरज्जुन्युता-मित्यर्थः।

⁽३) मा स्वा०॥ (वा० सं० २०-१)

⁽४) निषसाद०॥ (बा० सं० २०-२)

⁽५) आसन्द्यपविष्टस्य यजमानस्य पादयोर**धः रुक्मो** मण्डलाकारी भूषणविशेषौ न्यस्यति । मृत्योः पाहि (वा॰सं०२०-२) अनेन मन्त्रेण राजतं सन्ये, "विद्योत्पाहि" (वः॰ सं॰ २०-२) अनेन च दक्षिणे सौवर्णम्।

'विद्योत्' (१)इत्यनेन मन्त्रेण ॥ ११ ॥

खुरैर्वसाग्रहान् बााबिश्वातं जहोति सीसेनेति(२)

प्रत्युचम्(३)॥ १२॥

खुराश्चार्षभाः प्रतिपत्तव्याः ॥ १२ ॥

द्रौ द्वौ हुत्वा शेषान्त्सते करोति ॥ १३॥ तांश्च द्वौ द्वौ हुत्वा तच्छेपान्त्सते करोति वैतसे ॥ १३॥

सर्वसुरभ्युनमृदितः शेषराभिषिश्रत्या मुखादवस्राः वयन्त्रतिदिशः सर्वत्र सावित्रमिश्वनोः सरस्वत्या इः नद्रस्येति प्रतिमन्त्रम् ॥ १४ ॥

सर्वसुरिभिभश्चन्दनादिभिरम्युन्मृदितं यज्ञमानं प्रहशेषैरभिषिश्चिति । आमुखादवस्नावयन् । असुखादिति मर्यादेयम् । अकर्माविषयत्वात् । प्रतिदिशं व्यवस्थितः । ''सर्वतः परिक्रामम्'' (श्च॰ ब्ना॰ १२-८-३-१७) इति वचनात् सर्वत्र सावित्रं सर्वाभिषेकेषु सावित्रं मन्त्रमाह--'अ दिवनोः' 'सरस्वत्या' 'इन्द्रस्य' (४)इति च प्रतिमन्त्रम् ॥ १४ ॥

सर्वाभिश्चतुर्धम् ॥ १५॥

अभिषेकं सर्वाभिर्देवताभिः करोति । "पुरस्तात्प्रत्यङ्ङभिषिञ्चिति पुरस्ताद्धि प्रत्यगन्नमद्यते शीर्षतः शीर्षतो ह्यन्नमद्यते" (श्र० मा० १२-८-३-१७) इति प्रकृत्य श्रुतेः ॥ १५ ॥

महाठ्याहृतिभिरेके ॥ १६ ॥ सा चेयं स्वपदविभाषा "तः हैकऽ एतासिश्च देवतासिरिभिषिः

(१) व्विद्योत्पाहि । (वा० सं० २०-२)

(२) सीसेन तन्त्रं० (वा० सं० १६-८०, ८१, ८२, ८३, ८५, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ६५,)

(३) 'पञ्चपलो ब्रहः' इति परिशिष्टोक्तेः ऋषभखुराणां महस्वाद्यार्षभैः खुरैः पश्चनां वसां गृहीत्वा 'सोसेन' इति प्रतिमन्त्रं द्वात्रिशत्संख्याकाः नसुराब्रहान् जुहोति । पकेन मन्त्रेण द्वयोहीम इत्यर्थः ।

(४) 'अश्वनोर्भेषज्येन०' 'सरस्वत्यै भैषज्येन०' 'इन्द्रस्येन्द्रियेण०' (बा०सं०२०-३) इति त्रिभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रम् । अत्र 'देवस्य त्वा' इति । त्रिष्वपि मन्त्रेष्वन्येति । आन्ति भूर्भुवः स्वरित्येताभिश्च व्याह्वातिभिः" (रा०ब्रा० १२-८-३-१८) इति वचनात् ॥ १६ ॥

अत्र न श्रायते किं व्याहृतिपदं पूर्व देवतापदेश्य उतोत्तरिमः त्यत आह —

उत्तमेन वा॥ १७॥

उत्तमेन (१)व्याहृतिपदेनाभिषेको न पूर्वेण न चानियमः । कुत प-तत् १ पाठक्रमात् । "त्र हैकऽ पताभिश्च देवताभिरभिषिश्चति भूर्भुवः स्वरित्येताभिश्च व्याहृतिभिः" (श० ब्रा०१२-८-३-१८ इति ॥ १७॥

उन्मर्दनमभिषेके ऽवनीयैके ॥ १८ ॥ उन्मर्दनं चन्द्रनादि तद्मिषेके ऽवनीयाभिषेकमेके कुर्वन्ति ॥ १८ ॥ यजमानमालभते कोऽसीति ॥ १९ ॥

अनेन मन्त्रेण(२)॥ १९॥

सुश्होके(३)त्यालब्घो ह्रयति ॥ २०॥ बदुकं भवति यजमानः(४) ॥ २०॥ अङ्गानि चालभते यथालिङ्गः शिरो म(५) इति

प्रतिमन्त्रम् ॥ २१ ॥ 'च'शब्दाद्यजमान एव यथालिङ्गमङ्गान्यालभते । अत्र च 'अस्तु' इति क्रियापदाध्याहारः, साकाङ्कत्वात् यथायोगं 'प्रे' इति च पद-

स्यातुषङ्गः ॥ २१ ॥

उचच्छन्त्येनः दातरुद्रियवत्प्रमाणेषु ॥ २२ ॥

पनं यजमानं सुन्होकादय आहूता उत्क्षिपन्ति रातरुद्रियवजानु-द्भादिषु प्रमाणेषु । कुत पतत् १ पवं रष्टार्थताऽऽह्वानस्य भवति । सु-न्होकादिम्रहणं च राजसूयवदेव नामोपळक्षणार्थम् ॥ २२॥

कुष्णाजिनेऽ वरोहित प्रतिक्षत्र इति ॥ २३॥

(६)कृष्णाजिनेऽ वतरति यजमानः "प्रतिक्षत्र" (७)इत्यनेन मन्त्रेण॥२३॥

⁽१) उत्तमेनेन्द्रस्येन्द्रियेणेन्यनेन चतुर्थमभिषिञ्चति इति संप्रदा-यभाष्ये ।

⁽२) कोऽसि॰ (वा॰सं॰ २०-४) (३) सुश्लोक० (वा॰सं॰ २०-४)

⁽४) अध्वर्युणा आङब्धः कृतान्वारम्भो यजमानः सुरक्षोकादिसं-ज्ञानपुरुषानाह्वयति । (५) शिरो मे० (वा० सं० २०-५, ६, ७, ८, ५)

⁽६) आसन्दोत इति शेषः। (७) प्रति क्षत्रे० (वा॰ सं॰ २०-१०)

त्रयासिश्वां वसायहं गृह्णाति(१) यो भूतानामिति ॥२४॥ वयस्त्रिश्चेष्ठव्याच्च (२)खुरेण प्रहणम् ॥ २४॥

आज्यग्रहमाश्वत्येनैके ॥ २५ ॥

पके आचार्या आज्यप्रहमाइवत्थेन पात्रेण गृह्वन्ति । ततश्चाहवनीः ययजितत्वाद् ध्रवायाः सवषट्कारत्वाच्चतुर्प्रहणमाप्यायनं च ॥ २५ ॥ इत्येकोनविंदोऽध्याये चतर्थी कण्डिका ।

साम प्रेच्यति ॥ १ ॥

'सा(३)म गाय' रूपेवं 'ब्र्हि' रित वा । ब्रह्मा गायित ॥ १ ॥ ऐन्द्रयां जृहत्यां गायित ॥ २ ॥ रन्द्रिक्षायां वाहेतेन छन्दसोपेतायामृचि(४) गायित ॥ २ ॥ स्रश्रवसे विश्रवसे सत्यश्रवसे श्रवस इति सर्वे निधनमुपयन्ति ॥ ३ ॥

सञ्जित्ये विजित्ये सत्यजित्ये जित्या इति चित्रियस्य ॥४॥

सम्पुष्टयै विपुष्टयै सत्यपुष्टयौ पुष्टया इति वैद्यस्य ॥५॥ विधनम्। अग्न्यद्गतया आग्निचितयोरपि प्रापितत्वात्सौत्रामण्याम्॥५॥ यथाम्नातं वा सर्वेषाम् ॥ ६ ॥

सर्ववर्णानां यथाऽऽम्नातं निधनं भवति । तक्क "सःश्रवस" (२० ब्रा० १२-८-३-१६) इत्येवमादि ॥ ६ ॥

आस्ते प्रतिगरिष्यन् ॥ ७ ॥

होतुरप्रतः॥७॥ व्यादेवा (५) इति शस्त्रान्ते जुहोति॥८॥

- (१) यो भूतानाम्० (वा० सं०२०-३२) इति सार्घकण्डिकात्म-केन मन्त्रेण। (२) आप्नेणेत्यर्थः।
- (३) अत्र च सामगाने 'तथा च स्त्रान्तरम्' (का० श्रौ० भा० ४-९-६) इत्यादिना ब्रह्मणः कर्तृत्वमुक्तम् आधानप्रकरणे।
 - (४) बृहदिन्द्राय० (वा० सं० २०-३०)
- (५) त्रया देवा० (वा० सं० २०-११, १२) इति कण्डिकाद्वयात्मः केन मन्त्रेण शस्त्रसमाप्तौ वषद्कते त्रयस्त्रिशं वसाग्रहं जुहोति।

ग्रहम्। तच्चानुवाचनयजप्रैषपूर्वकम्। देवताश्चात्र प्रकृता पव । तथा च(१) याज्यानुवाक्ययोः तद्मिधानं दृश्यते । "अदिवना तेजसा" "अदिवनापिबतम्" इति ॥ ८॥

शेषमृत्यिजः प्राणमक्षं भचयन्ति प्राणपाम इति ॥९॥ ्र ब्रह्शेषसृत्विजः प्राणमञ्ज मञ्जयन्ति(२) "प्राणपा म" इत्यनेन मन्त्रेण ॥९॥

प्रत्यक्षभक्षं यजमानो लोमानि प्रयतिरिति ॥ १०॥ अनेन (३)मन्त्रेण ॥ १०॥

स्विष्टकृत्प्रभृत्याबाहीं हों मात्कृत्वा परिस्नुत्क्षीर लि-🧯 ः सान्यादायावभृथवद्गमनम् ॥ ११॥

स्विष्टकत्रमृतिबाहें होमान्तं कृत्वा परिस्तुत् क्षीरिक्तान्यादायावसृथ वद्गच्छन्ति । शुलावभृथेन व्यवधानात् 'अवभृथवद्' इत्युच्यते ॥ ११ ॥ **आञ्च**लामिमन्त्रणात्कृत्वोदकाधिष्ठानप्रमृत्यावसृथेष्ठेः॥१२॥ शुलाभिमन्त्रणान्तं कर्म कृत्वा उदकाधिष्ठानप्रभृति आ अवभृथेष्टेः॥१२॥

मासर्क्रम्मं ह्याचयति यहेवा इति ॥ १३ ॥ अनेन(४) मन्त्रेण ॥ १३ ॥

पूर्ववन्मजनम्॥ १४॥ मासरकुम्भस्यैवावभृथे निमन्जनम्(५)॥ १४॥

सुमित्रिया न इत्यपोऽञ्जलिनादाय दुर्मित्रिया इति बेष्यं 🖟 परिविश्वति (६) दी विकमा उदङ्गस्वा ॥ १५॥

(१) अश्विना तेजसा० (वा० सं० २०-८०) अश्विना पिबताम्० (वा० सं० २०-९०) इमे याज्यानुवाक्ये।

(२) अवजिञ्चन्ति प्राणपा मे० (वा० सं० २०-३४, ३५) इति कः ण्डिकाद्यशासकेन । (३) लोमानि प्रयतिः० (वा० सं० २०-१३)

(४) अवसृथेष्टि ऋत्वा 'यद्देवा' इत्यादिना 'वरुणनोमुञ्ज (वा० सं० २०-१४, १५, १६, १७, १८,) इत्यन्तेन सार्धकण्डिकाचतुष्कात्मकेन मन्त्रेण मासरकुम्भं जले तारयति ।

(५) 'पूर्ववत्' इति "अवभृथः" (१८) इत्यादि "ओपघो स्तापः" (वा० सं० २०-१९.) इत्यन्तेन सुराकुम्भस्य जले निमजनम् :

(६) ह्री विक्रमाञ्जदङ्गत्वा सुमित्रियान इत्यपः। आदायाञ्जलिना सिचेद् द्वेष्यं हुम्मित्रिया इति ॥ इति श्रुतेः । (१) "सुमितिया न" इत्यनेन मन्त्रेणापोञ्जलिनादाय द्वौ विक्रमा उ दङ्गत्वा "दुर्मित्रिया" (२) इति द्वेष्यं प्रतिषिञ्चति "यामस्य दिशं द्वेष्यः स्यात्तां दिशं परासिञ्चत्" (श॰ ब्रा॰ १२-९-२-६) इति वचनात् ॥१५॥ अवभृथवत्स्नात्वा वास्रोऽपासनं दुपदादिवे(३) ति॥ १६॥ अवभृथवत्स्नातग्रहणं वास्रोऽपासनार्थ(४) प्राप्तत्वादेव॥ १६॥

सोमवदुत्क्रमणमागमनं च ॥ १७॥ सोमवदेव 'उद्ययम' (५) इत्युत्तयनं आमहीयज्ञपवदागमनम् ॥ १७॥ आहवनीयमुपतिष्ठते ऽपो भ्रचेति ॥ १८॥ अनेन (६) मन्त्रेण ॥ १८॥ एघोसीति(७) समिधमादायाहवनीयेऽभ्याद्याति

समिद्सीति(८) ॥ १९ ॥

राळावसृथसमिदाधानं सौत्रामणिकं च तन्त्रेण काळेकत्वाज्जु-होति ॥१९॥

जुहोति च समाववर्ती(९)ति ॥ २० ॥ 'च' शब्दाव्छेषपरिसमाप्ति करोति ॥ २० ॥

उदवसाय पयस्या मैत्रावरणी ॥ २१ ॥ कर्तव्या । अस्याश्च पूर्वम् आहित्येष्ट्रिक्क्वे ॥ २१ ॥

तदन्ते पञ्चारिन्द्राय वयोधसे ॥ २२ ॥ तब्छब्देन पयस्या परामृहयते ॥ २२ ॥ इत्येकोनविंदोऽध्याये पञ्चमी कण्डिका ।

- (१) सुमित्रिया न० (वा॰ सं० २०-१९)
- (२) दुम्मि त्रियाः० (वा० सं० २०-१९)
- (३) द्रपदादिव० (वा० सं० २०-२०)

(४) जलस्थावेव जायापती सौमिकावभृथवत् स्नात्वा कर्मकाले धृतं वासोऽप्सु ज्ञिपतः ।

- (५) "उद्वयम्०" (बा॰ सं॰ २०-२१) इति मन्त्रेण जलान्नि-कमणम् । 'अपाम सोममसृता अभूम' इति जपतां सर्वेषां त्रिपशुदे-शमागमनम् ।
 - (६) अपोऽअद्या० (वा० सं० २०-२२)
 - (७) पश्रोसि॰ (वा० सं० २०-२३)
 - (८) समिद्धि० (घा॰ सं० २०-२३)
 - (९) समाववर्ति० (वा० सं०२०-२१)

शक ३५

आचार्येण सौत्रामण्यजुविहिता। इदानीमध्वर्युवेद्दविहितहौत्रव्याः ख्यानोपन्यासाय न्यायोपप्रदर्शनायाचार्य आह—

सौत्रामण्यामिष्टिपशयो भिन्नतन्त्राः कालभेदात्॥१॥

इह चादित्यपयस्यात्रिपश्चामन्यत्रापि सम्भवात्ताद्विषयताऽपि मा भृदिति 'सौत्रामणी' प्रहणम् प्रयोगवचनैकत्वप्रज्ञप्यर्थे च। 'एको हि प्रयोगवचनोऽत्र 'ऋदिकामः सौत्रामण्या यजेत' इति । अत्रेष्टिपश्चो भिन्नतन्त्रा भवन्ति। कुत एतत्? काळभेदात्। भिन्नो हि काळः। "आ-दित्यं चहं यस्यमाणो निर्वपति । आदित्यमीजा न" (रा० ब्रा० १२-९० २-११) इति चैवमादि ।

नतु च प्रयोगवचनैकत्वे 'राजस्येन स्वाराज्यकामोयजेतं' इत्यत्र कालभेदाचन्त्रमेद उकः 'इष्टिपशवो मिश्नतन्त्राः कालभेदात्' इति, किमर्थे पुनरुच्यते ! सत्यमेतदेवम् । तत्र ह्यतुमत्यादीनां फ-लैकत्वे तन्त्रभेदोऽभिद्दितः, इह पुनस्तथा नेति । इह यागविशेषाणां सौत्रामणीसंशब्दितानाम् 'ऋदिकामः सौत्रामण्या यजेत' इति फलस-म्बन्धः, तत्सिश्वधानादितरेषां तदङ्गतेति वैषम्याद्भेदेनोच्यते । अङ्गानां प्रधानानां च प्रयोगवचनैकत्वादैकतन्त्रयं मा भूदित्युच्यते ।

नतु च ज्योतिष्टोमवदैकतन्त्रयं कस्माश्व भवत्यङ्गानां प्रधानानां च । न इत्युच्यते । तत्र हि ऋत्विग्वरणदेवयजनजोषणादीनामुसरकाळं दी-क्षणीयादिविधानम् । इह पुनरादित्यादीनामङ्गत्वेऽपि स्रति काळभेदास्तः नत्रभेद इति न दुष्कम् ॥ १ ॥

सप्तद्श सामिषेन्यः॥२॥

अत्र भवन्ति । अनारभ्य समधीतं साप्तदश्यं प्रकृतितः पाञ्चदश्ये-नोत्काछितं यत्र यत्र श्रूयते तत्र तत्र भवति ॥ २ ॥

वार्त्रद्वावाज्यभागौ ॥ ३ ॥

अत्र भवतः ॥ ३॥

वृधन्वन्तौ वा पशुषु सान्नाय्याविकारात्॥ ४ ॥ पशुषु यस्याज्यभागौ तस्य वृधन्वन्तौ भवतः । पशुषु पथोग्रहा भवन्ति । तेषां साम्नाय्यविकाराद् वृधन्वन्तौ भवतः॥ ४ ॥

आमिक्षायां च॥५॥

वृधन्वन्तावेव साम्राज्यविकारत्वात्। अधस्तनसूत्रे पशुषु इति विशेषितत्वादामिक्षायामगातिमा भूदिति भेदेन प्रदणस् ॥ ५ ॥

उपारुशुदेवतेष्टिषु ॥ ६ ॥

'मवति' इति वाक्यशेषश्च ॥ ६ ॥

विराजी संयाज्ये अविशेषोपदेशात्॥ १॥ संयाज्याश्चर्नेन स्विष्टकृत्सम्बन्धिन्यौ याज्यानुवाक्ये उच्येते। ते च "प्रेखोऽअग्न" "इमोऽअम" (ऋक्सं० ७-१-३,१८) इति। अविशेषेण हि सौनामणीं प्रकृत्य 'विराजौ संयाज्ये' इति समाम्नायते॥ १॥

विसष्टशुनकानां नाराश्वासः॥ ८॥ विसष्ठानां शुनकानां च नाराशंस्रो द्वितीयः प्रयाजो भवति ॥८॥ (१)अन्नणां चैके ॥ ९॥

द्वितीयं नाराशंसिम्छिन्ति । एके तनूनपातम् ॥ ९ ॥ प्राकृताः प्रथमोत्तमयोः (२)प्रयाजानुयाजप्रैषाः ॥ १० ॥ चोदकपाण्या भवन्ति ॥ १०॥

ऐन्द्रा(१)नेके प्रथमस्य वायोधसानुत्तमस्य ॥ ११॥ तत्कृतः ? लिज्ञात्। "होता यक्षत्स्तिभेनद्गमिडस्पद" इत्येवमादि। तत्पुनर्वहिः प्रकरणात्पाठे सति लिङ्गं विनियोजकमिति पर्यालोचनीः यम्॥ ११॥

समिद्ध इन्द्र इत्याप्रियः प्रथमस्य ॥ १२॥

(१) अनुकं वेति स्त्रेण सिद्धमेतत्कथं पुनः।
उच्यते स्वेकयाज्यायां यद्यप्यात्रीषु पठ्यते।
उभौ तनूनपाद्वापि तत्र यागो यथिं तु।
विसष्टादिग्रहो हौत्रस्त्राम्नातोपळक्षकः।
अन्यत्रापि विकल्पार्थमत्रीणां चैक इत्यपि॥

(२) बहुचानां प्रैषाध्याये पठिताः प्राकृता इत्युच्यन्ते । प्रथमोत्त-मयोः पश्वोः ।

(३) पेन्द्रस्य पशोः प्रैषे पेन्द्राच-"होता य्क्षत्सिमिधेन्द्रमिडस्परे०" (वा० सं० २८-१) इत्यादीन् "होता य्क्षदिन्द्र छे स्वाहा०-व्यन्तु हो त्यं जा" (वा० सं० २८-११) इत्यन्तानेकादश मन्त्रान् , "होता य्क्षत्सः मिधानं महद्यशाः " (वा० सं० २८-२४) इत्यादीन् "होता य्क्षत्स्वाहा कृतीः" (वा॰ सं० २८-३४) इत्यन्तानेकादश मन्त्रांश्च वायोधसस्य प्रेषे पके आहुः।

आवियः प्रयाजयाज्याः 'सिमिस्ट इन्द्र'' (१)इति प्रथमस्य पद्योर्मः विति ॥ १२ ॥

याज्यातुवाक्याश्च वपापुरोडाद्यापग्धनामायात्वि-न्द्र(२)इति ॥ १३ ॥

'च' शब्दात्मधमस्य भवन्ति ॥ १३॥ होता यचत्समिधामि(३)मिति प्रधाजप्रैषाः

स्त्रिपद्याः ॥ १४ ॥

भवन्ति ॥ १४ ।

आप्रियश्च सामिद्धो आग्निरिइवने(४)ति ॥ १५॥ 'च' शन्दात्त्रिपशोरेव ॥ १५॥

अधिवनाहबिरि(५)ति तिस्रो वपानां याज्यानुवाक्याः॥१६॥ भवन्ति ॥ १६॥

⁽१) समिद्धऽइन्द्र० (वा० सं०२०-३६,३७,३८,३२,४०,४१,४२,४३ ४४, ४५, ४६)

⁽२) आयात्विन्दः० (वा० सं०२०-४७,४८,४९,५०,५१,५२) इ. त्यादयः षड्ऋचः यथाक्रममैन्द्रस्य वपापुरोडाशपशूनां याज्यानुवाक्मा भवन्ति। तत्र प्रथमो मन्त्रो वपानुवाक्मा, द्वितीयो वपायाज्या, तृतीयः पशुपुरोडाशानुवाक्या, चतुर्थस्तद्याज्याः पश्चमः पश्चनुवाक्मा षष्टस्तद् याज्येत्यर्थः।

⁽३) होता यक्षत्स्विभिधाग्निम्० (वा० सं० २१-२९,३०,६१,३२,३३. '३४३५,३६,३७,३८,३०,४०) इत्यादयो द्वादश कण्डिकाः त्रिपशोः प्रयाज-प्रेषा भवन्ति ।

⁽४) समिद्धोऽ अग्निरम्बिना० (वा० सं० २०-५५,५६,५७,५८,५९, ६०,६१,६२,६३,६४,६५,६६) इत्याद्या द्वादशानुष्टुमः त्रिपशोः प्रयाजः याज्या इत्यर्थः।

⁽५) अश्विनाहिवाः० (वा० सं० २०-६७,६८,६९) इति तिस्नः क णिडकास्तिस्णामिष आश्विनसारस्वतैन्द्रसम्बन्धिवपानां याज्या अनुः वाक्याश्च मवन्तीत्यर्थः । तत्प्रकारविधिश्चोत्तरस्वेण प्रदृश्यते । स च पथा—आश्विनवपायागे प्रथमा अश्विनेति अनुवाक्या, यमश्विना इति च द्वित्येखा कण्डिका याज्याः सारस्वतवपायागे यमश्विनेति द्वितीया कण्डिका अनुवाक्याः, तमिन्द्रमिति तृतीया च याज्याः ऐन्द्रवपायागे तु तमिन्द्रमिति तृतीया अनुवाक्याः, अश्विनेति प्रथमा च याज्याः।

"सर्वाः पुरोनुवाक्या भवन्ति, सर्वा याज्याः" (श॰ ब्रा॰ १२-८-२-३५) इति श्रुतेः । तथा "सर्वाः प्रथमा भवन्ति सर्वा मध्यमाः सर्वा उत्तमाः" (श॰ ब्रा॰ १२-८-२-३५) इति ॥ १७ ॥

य इन्द्र(१) इति पुरोडाशानां पूर्ववत् ॥ १८ ॥ पूर्ववच्छव्देन 'प्रथमामनुच्य' इत्येवमादि लभ्यते ॥ १८ ॥ अश्विना गोभिरि(१)ति च हविषाम् ॥ १९ ॥ चशव्दात्पूर्ववद्याल्यानुबाक्याः॥ १९ ॥

ग्रहाणां (३)युवः सुरामं पुत्रमिवेति ॥ २० ॥ याज्यानुवाक्ये भवतः ॥ २० ॥

पद्यस्विष्ठकृतो यस्मिन्नदवासो(४)ऽहाव्यम् इति ॥ २१ ॥

- (१) 'यऽइन्द्र' (वा० सं० २०-७०, ७१, ७२) इति तिस्नः कित्रः कास्त्रयाणामिष आश्विनसारभ्वतेन्द्रपशुपुरोडाशानां पूर्वोक्तक्रमेण याज्या अनुवाक्याश्च भवन्ति । स यथा—प्रथमस्याऽऽश्विनपशुपुरोडाशस्य प्रथमा किष्डिका अनुवाक्या द्वितीया च याज्या; द्वितीया अनुवाक्या तृतीया च याज्या सारस्वतपशुपुरोडाशस्य, पेन्द्रपशुपुरोडाशस्य च तृतीया किष्डिका अनुवाक्या प्रथमा च याज्येति ।
- (२) 'अभ्विनागोभिः' (घा० सं० २०-७३, ७४, ७५) इति तिस्रो याज्या अनुवाक्याश्च त्रयाणामिष पशुह्विषाम् । अत्रापि प्रथमा अनुवाक्या आश्विनह्विषो द्वितीया च याज्या; सारस्वतस्य ह्विषो द्वितीया अनुवाक्या तृतीया च याज्या; पेन्द्रस्य ह्विषश्च तृतीया अनुवाक्या प्रथमा च कण्डिका याज्येति बोध्यम् ।
- (३) प्रहाणां पयोप्रहाणां त्रयाणां खुराप्रहाणां च त्रयाणां "युव्ध सुराम॰" (वा॰ सं॰ २०-७६, ७७) इति हो कण्डिके याज्यानुवाक्ये भवतः। "पड्प्रहा भवन्ति" "सर्वेषां प्रहाणां हो याज्यानुवाक्ये भवतः" (श॰ बा॰ १२-८-२-३४ ३५) इति श्रुतेः। तत्र प्रथमाञ्जवाक्या हि-तीया च याज्येति महीघराचार्यः।
- (४) पशोः सम्बन्धिति स्विष्ठकृद्यागे 'युस्मिन्नश्वास' (वार्ष्ट संक् २०-७८, ७९) इति द्वे कण्डिके याज्यानुवाक्ये । तत्र प्रथमाऽनुवाक्या द्वितीया याज्येति बोध्यम् ।

याज्यातुवाक्ये ॥ २१ ॥ होता यक्षदाश्विनाविति (१)न्नयो वपानां प्रैषा यथालिङ्गम् ॥ २२ ॥

श्रेषा भवन्ति ॥ २२ ॥

प्रहाणां (२)चतुर्थः ॥ २३ ॥

प्रेषो भवति ॥ २३ ॥

इविषामुत्तरे (१)यथालिङ्गम् ॥ २४॥ प्रैषा भवन्ति ॥ २४॥

उत्तमौ वनस्पतिस्विष्टकृतोः ॥ २५ ॥ यथालिक्रमेव भवतः(४) ॥ २५ ॥ प्रतिगरिष्यत्युपविष्टेऽध्वयों शोधनावेत्याह्नया-

दिवना तेजसेस्यनुवाकः; श्राःसति ॥ २६ ॥ केचिदुपविषेऽ(५)ध्वर्थाविति पठन्ति । तेषां शोर्णसावेत्येतावानेवा-हावः "अश्विना तेजसा" (६)इत्येतमनुवाकं शंसति ॥ २६॥

- (१) होता युझद्श्विनौ० (४१) होता युझत्सरस्वतीम्० (४१) होता युझदिन्द्रम्० (वा० सं० २१-४१) इति त्रयो वपात्रयस्य क्रमात् प्रेषा एककण्डिकायामित्यर्थः ।
- (२) होता युश्चदिश्वनौ० (बा० सं०२१-४२) अयं चतुर्थः प्रैषो प्रहाणां भवति ।
- (३) चतुर्थारप्रेषादुत्तरे "होता यृक्षद्श्विनौ च्छागस्य० (वा० सं० २१-४३,४४,४५) इत्याद्यास्त्रयो यथालिङ्गं प्रेषा भवन्ति ।
- (४) अन्तेपट्ट्यमानौ 'होता युश्चद्दनस्पतिमभि०" "होता युश्च-दिनि ए स्विष्ट् कतम्०" (वा० सं० २१-४६,४७) इमौ प्रेषौ भवतो क्रमे-ण वनस्पतियागे स्विष्टकृषागेच।
- (५) अध्वर्योशींसावोमित्याहावेत्यगादिस्थाहावोऽप्येवमेव स्थात्त-स्मादु 'अध्वय्यौं' इति युक्तः पाठः ।
- (६) त्रयस्त्रिशवसाग्रहसादनानन्तरमध्वयोद्योतुः पुरस्तात्प्रतिग्र-रार्थमुपवेशनमुक्तम् । ततश्च प्रतिगरार्थमध्वयौ होतुः पुरस्तादुपविष्टे स्रति होता अध्वयौ शौसावोमित्याहृय 'अश्विना तेजसा चक्षुः'(वा०सं० २०-८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८०, ९०) इत्येकादश-चंग्रतुवासं शस्त्रं शंसति ।

त्रिःप्रथमान्त्ये ॥ २० ॥

प्रथमान्त्ये च त्रिः शंसति॥ २७॥

ञिचादिष्वाहुय(१) ॥ २८ ॥

त्रिचस्य त्रिचस्यादौ आहावं कुर्यात् ॥ २८ ॥

उत्तमाएं शिष्ट्वा पाङ्नवस्या दशस्या वा त्रया देवा इति

(२)निवित्ससद्यावसानोङ्घारः॥ २९॥

उत्तमाया ऋचः प्राङ्नवम्या वा दशम्या वा निक्तिसप्तदशावसाना शंस्यते । (३)अवसाने ओङ्कारो भवति ॥ २९ ॥

ऋगन्तेऽन्त्येऽक्षरे स्वर्प्रभृति प्रणवे लोपः ॥ ३०॥

ऋचो (४)यदन्त्यमक्षरं तस्य प्रणवे परत्रावस्थिते स्वरप्रभृति सुप्यत इत्यर्थः । 'इन्द्राय दधुरिन्द्रियम्' इत्यत्र अभित्यस्य लोपः । एवं सर्वत्र॥३०॥

तस्मिन्प्रणवान्तं चैके ॥ ३१ ॥

तिस्मिन्नेव प्रणवे चैकेऽन्तमपि लुम्पिन्त । तत्र मकारो लुप्यते । ओ इत्येताबानेव प्रणवो भवति ॥ ३१ ॥

इत्येकोनविशेऽध्याये षष्ठी कण्डिका।

अदिवनातेजसाऽश्विना पिवतामिति याज्या-

नुवाक्ये सञ्ज्ञस्य ॥ १ ॥ सञ्ज्ञस्य प्रहस्य "अश्विना तेजला" "अश्विना पिवताम्" इति

(१) अस्मित्रज्ञवाके पकादशर्ची वर्तन्ते । तासां प्रथमोत्तमयोस्त्रिः शंसनमुक्तम् परिशिष्टास्त्रयस्तृचाः तेषामादिष्वाहावः कार्यः ।

(२) त्रयादेवा० (वा० सं० २०-११,१२)

(३) अवसानीकारः सर्वस्य निवित्पदाऽवसाने ओंकारः प्रयोक्तन्य इति श्रीअनन्तः। सप्तद्शावसानः शंसनीय ओंकारः निवित्पदावसाने इति, सन्निधेः इति वासुदेवः, निवित्सप्तद्शावसाना ओंकारसंगतेः इति देवः।

(४) ऋचः सम्बन्धिन्यन्त्येऽक्षरे प्रणवे परे स्वरप्रमृतिवर्णजातस्य लोपो भवति । तद्यथा ''इन्द्रायदधुरिन्द्रियम्'' (वा० सं० २०-८०) 'अम्' इत्येतावदत्र लुप्यते तेन इन्द्रियोमित्येवं सम्पद्यते। एवं सर्वत्र ज्ञेयम । याज्यातुवाक्ये भवतः। अनयोश्च ऋचोरपि नियुक्तत्वाच्छस्ने अपयोगो मा भृदिति अनुवाकप्रहणमधस्तात्कृतम् ॥ १ ॥

अनुवाचनप्रैषौ समस्याऽनुवाजप्रैषा देवं बर्हिरि(१)िन ॥ २ ॥ याज्यास्त्र ॥ ३ ॥

पता पव(२) ॥ ३॥

अग्निमद्ये(३)ति सुक्तवाकप्रैषः ॥ ४ ॥ भवति ॥ ४॥

(४)प्राकृतः सुक्तवाकप्रभृति प्रागवभृषेष्ठेः ॥ ५ ॥ अनुक्तं च ॥ ६ ॥

(५) यच्चान्वयेन होतुः प्राप्नोति तदप्यत्रैव भवत्येव ॥ ६॥ इमं मे (६)तन्वेत्येककपालस्य ॥ ७ ॥ याज्यानुवाक्ये भवतः ॥ ७ ॥

अग्नीवरुणयोस्त्वन्नः (७)सं त्विमिति ॥ ८ ॥ याज्यानुवाक्ये ॥ ८॥

⁽१) अनुवाचनप्रैषो समस्य कर्तव्यो 'अनुबृह्धि' इस्यनुवाचनम् 'अ-मुं यज' इति प्रेषश्च । तद्यथा—अश्विभ्याः सरस्वत्या इन्द्राय सुत्राम्णे 'अनुबृह्धि' इस्येवम् । "देवं बहिं: सरस्वती" (वा० सं० २१—४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५८) इत्याद्या एकादश कण्डि-कास्त्रिपशोरनुयाजानां प्रेषा भवन्ति इत्यर्थः।

⁽२) 'देवं वर्हिः' इत्याचा एवानुयाजानां याज्या भवन्ति।

⁽३) अग्निमच० (वा० सं० २१—५९, ६०, ६१) इत्यादिः कविङ्ग-कात्रयात्मकः सुक्तवाके प्रैषो भवति ।

⁽ ४) सबे प्राकृतं प्रकृतिचदेव भवति ।

⁽ ५) यच प्रायणीयानुवाचनाग्निमन्थनीयामनोतायूपाञ्चनोच्छ्यणाः दिव्राकृतं तत्सर्वमन्नापि भवति ।

⁽६) इम म्मे॰ (वा॰ सं॰ २१—१, २,) इति हे कण्डिके अवसृ-थेष्टौ वारुणस्यैककपालस्य पुरोडाशस्य पुरोजुवाक्यायाज्ये क्रमेण सवतः।

^{़ (} ७) त्वन्नाव (वाव संव २१—३, ४) अत्रापि प्रथमा करि**डका** पुरोनुवाक्या द्वितीया याज्या पर्व सर्वत्र ।

आदित्यस्य सुत्रामाणं महीम्षु (१)मातरामिति ॥ ९ ॥ आ नः प्र बाह्वेति पयस्यायाः(२) ॥ १० ॥ वाजिनस्य दा स्रो(३) वाजे वाज इति ॥ ११ ॥

अयं तु विशेषः —

सनवानं याज्या ॥ १२ ॥

वायोधसात्रियः समिद्धो अग्निः समिषे(४)ति ॥ १३॥ वायोधसस्य पद्योराग्नियः प्रयाजयाज्याः "समिद्धो व्यानः समिधा" इत्येता मबन्ति ॥ १३॥

याज्यानुवाक्याश्च वपापुरोडाशपर्यनां वसन्तेन ऋतुने(५)ति ॥ १४ ॥ 'व' श्रन्ताद्रायोधसस्यैव ॥ १४ ॥

इत्येकोनविशेऽध्याये सप्तमी कण्डिका।

इति उपाध्यायकर्कविरचिते कास्रायनसूत्रभाष्ये एकोनविंशतितमोऽध्यायः समाप्तः ।

⁽१) सुत्रामाणम्०, महीस्षु० (वा० सं० २१—६, ५) इति पुरोतु-वाक्या याज्या च क्रमेण भवत इत्यर्थः ।

⁽२) आ नः० (वा० सं०२१--, ९) इति हे किण्डके पयस्यायाः पुरोतुचाक्या याज्या च क्रमेणेत्यर्थः।

⁽३) श न्नः० (वा॰ सं॰ २१—१०, ११) इति हे कण्डिके पयः स्थान्तर्गतवाज्ञिनयागस्य पुरोतुवाक्या याज्या च क्रमेण भवत इत्यर्थः।

^{् (}४) समिद्धोऽ अग्निः० (वा० सं० २१-१२, १३, १४, १५, १६,१७, १८, १९, २०, २१, २२)।

⁽५) वसन्तेनऽ ऋतुना० (घा० सं० २१--२३, २४, २६, २६, २७, २८) इति षड्ऋचः पुरोजुवाक्या याज्येति क्रमेण वायोघसस्य पद्मोर्वपा• दीनां भवन्ति ।

विंशोऽध्यायः।

सौत्रामणीविधानसमन्तरं श्वतिमन्त्रपाठावसरप्राप्तोऽ इवमेत्रोऽ-त्रविधीयते ।

राजयज्ञोऽ ववमेधः सर्वेकामस्य ॥ १ ॥

राजशब्दोऽभिषकवित क्षत्रियं वर्धत इत्युक्तं प्रदेशान्तरे। तथा च-"श्वत्रिययञ्च ड वाऽ एव यदश्वमेधः" (शव् व्राव १३-४-१-२) इति। "तस्माद्राष्ट्रयश्चमेधेन यज्ञेत" (शव् व्राव १३-१-६-३) इति। राज्ञो यज्ञः राजयञ्चः, न ब्राह्मणवैश्ययोरिति। अश्वमेध इति निरात्रस्य यज्ञकतोर्नामधेयम्। स सर्वकामस्य भवति। सर्वकामावासिश्च परमारमाध्यसस्वव्याप्तिमन्तरेण न भवति यावच्छरीरकालभाविनो हि काम्माध्यसस्वव्याप्तिमन्तरेण न भवति यावच्छरीरकालभाविनो हि काम्माधित। तेन 'सर्वकामस्येति मुमुक्षाः' इत्येतदुक्तं भवति। तथा चाह- "सर्वान्ह वै कामानामोति सर्वा व्यष्टीव्यंश्वते योऽश्वमेधेन यज्ञते" (शव्याव १३-४-१-१) इति॥ १॥

अष्टम्यां नवम्या वा फाल्गुनीशुक्कस्य ॥ २ ॥ फाल्गुनशुक्कपक्षेऽष्टम्यां नवस्यां वा प्रारम्सः । "वा यासौ फाल्गुनी पौर्णमासी भवति" इति प्रकृत्व "तस्यै पुरस्तात्वद्वद्दे वा सप्ताद्दे वऽत्विज उपसमायस्ति" (श० बा० १३-४-१-४) इति श्रुतेः ॥ २ ॥

ग्रीष्म एके॥ ३॥

आरम्भं कुर्वान्त (१)श्वतेरेव ॥ ३ ॥

ब्रह्मीदनं पचित चतुर्णा पाञ्चाणामञ्जलिय

स्तानां च ॥ ४ ॥

ं "चतुरः पात्रांश्चतुरोऽञ्जलीश्चतुरः (२)प्रखुतान्" (श्च० ब्रा० १३– ४-१–५) इति श्वतेः ॥ ॥

अन्दवैनमाचार्तिगभ्यः प्रयच्छाति ॥ ५ ॥ अन्दवैनमोदनमाद्यार्तिगभ्यः समर्पयति ॥ ५॥

. (२) प्रस्तरचैकहरताङ्गुलिकोशः। चतुर्णां पात्राणां, चतुर्णामञ्जली-नां, चतुर्णां प्रस्तानां चेत्यर्थः।

⁽१) "ग्रीष्मेऽभ्यारमेतेति" (श० ब्रा० १३-४-१-२) ज्येष्ठशुक्के आषा-ढशुक्ले वा अष्टम्यां नवस्यां वा प्रारमेत् इत्यर्थः ।

तेभ्यश्वत्वारि सहस्राणि द्वाति ज्ञतमानांश्च तावतः ॥ ६ ॥

चत्वारि गोसहस्राणि (१)चत्वारि च सुवर्णरक्तिकाशतानि ऋत्वि-ग्भ्यो ददाति ॥ ६ ॥

अक्तबाज्य होषेण रहानां हाइहारितं स्रयोदः गारितं वा निद्याति ॥ ७॥ (२)वद्योदनाविकाज्यरोषेण ॥ ०॥

आदानकाले वाऽञ्जनस् ॥ ८ ॥ कार्याध्यात् । एवं चाउयशेषं स्थाप्यते । 'वा'शस्त्रोऽवधारणार्थः ॥८॥ नि(३) दकं प्रतिमुञ्जन्दाचधित तेजोऽसीति ॥ ९ ॥ चतुःसौवर्णिकं निष्कमाभरणविशेषं यज्ञमाने प्रतिमुञ्जन्वाचयितुं ''तेजोऽसि'' (४) इत्यमुं मन्त्रम् ॥ ९ ॥

वार्च यच्छेति चाह् ॥ १०॥ 'च'शब्दादनन्तरम्॥ १०॥

आ वर्दानाद्वाग्यनम् ॥ ११॥ (५) भवति ॥ ११॥

(१) प्रत्यृत्विजं गवां सहस्र सुवर्णरिककाशतं च द्वादित्यर्थः।

(२) ब्रह्मीदनाञ्जनार्धत्यर्थः ।

(३) वस्तुतस्तु 'निष्कः सुवर्णाश्चत्वारः' इति चतुःसुवर्णपरिमितं रौप्याभरणं रूप्यप्रकरणे पाठात्, शतमानमपि रौप्यमेव तस्य प्रकरणे पाठादिति प्राप्ते सौवर्णग्रहणम्।

याज्ञवरुक्तः—हे छण्णले रूप्यमाषी घरणं षोडशैव ते। शतमानं तु दशमिर्घरणैः पलमेव तु॥ विशाधिकशतत्रवरूण्णलपरिमितम्।

(४) तेजोऽसि० (वा० सं० २२-१) इति'पाहि'इत्यन्तं कण्डिकार्घमः ध्वर्युर्वाचयति । स निष्कश्च पश्चात्प्रातर्होमान्ते पूर्णाहुत्यनन्तरं यजमाः नेनाध्वर्यवे दीयते ।

(५) द्वाणादानपूर्यन्तिमस्यर्थः "वरेण वाचं विस्तृजते" (श० ब्रा०

१३-४-१-१०) इति भ्रतेः।

पत्न्य(१) आयन्त्यलङ्कृता निष्किणयो महिषी वावाता परिष्टुक्ता पालागली सानुवर्धः शतेन शतेन ॥ १२ ॥ "वतस्रो जाया उपक्लमा मवन्ति" (श० त्रा०१३-४-१-८) इति महत्य श्रुतत्वात् । ताश्च सहानुवरीभिरायन्ति शतेन शतेन ॥ १२ ॥ ता विशेषयति —

राजदुहितरः प्रथमायाः १३॥ अनुचर्यः(२)॥१३॥

राजन्यानां वितीयायाः १४॥ पत्या राजन्यदुहितरोऽ(३)नुचर्यः॥ १४॥

सृतग्रामण्यां तृतीयायाः १५॥

स्तः (४)सङ्करजातः, श्रामणीर्महत्तरः । तयोर्दुहितरस्तृतीयाया अनुचर्यः॥१५॥

क्षात्र(५)संग्रहीतृणां चतुष्टयीः ॥ १६ ॥

ं पत्न्याः अनुचर्यो भवन्ति । क्षता प्रतीहारो दृतो वा, सङ्घदीता च सारथिः ॥ १६॥

अग्न्याधेयवत्र्राविद्य हुतेऽग्निहोन्नेऽपरेण गाहिपत्यसुद-क्रिशराः संविद्यात्यूवन्तरे वावाताया ब्रह्मचारी॥१०॥

'अग्न्याधेयवत्' इति (६)पूर्वया द्वारा यजमानो, दक्षिणा पन्त्य इत्युक्तं भवति । हुतेऽ ग्लिहोत्रे गाईपत्यमपरेणोदक्शिराः संविद्यति यजः मानो वावाताया ऊर्व(७)न्तरे । ब्रह्मचारी भवति ॥ १७ ॥

- (१) पूर्वोक्तिष्काभरणं घारयन्त्यः पत्न्यो यजमानसमीपे आगच्छ-न्ति । महिषी प्रथमपरिणीता स्त्री । द्वितीया वावाता वल्लमा । तृतीया परिवृक्ता अवल्लमा । चतुर्थी पालागली दूतपुत्री । अनुचरीणां शतेन-श-तेन ताः पत्न्यः साज्ञवर्थो भवन्ति ।
 - (२) महिष्या राजपुत्रयोऽनुत्रयों भवन्ति ।
 - (३) क्षत्रियजातिमात्राणां दुहितरः।
 - (४) सुतोऽध्वयोषकः।
 - (५) क्षतार आयव्ययाध्यक्षाः तेषां समूहः झात्रम् ।
- (६) "पूर्वेण प्रविद्याति दक्षिणेन परनी" (का० ध्रौ० ४–५–१८) इस्युक्तेः ।
 - (७) 'अन्तरोद्धऽयसंचर्तमामः शेते" (द्याव्यावर्श्व-४-१-९)इतिश्रुतेः।

इत्राखान्बर्॥ १८॥

इतराश्च पान्यो यजमानमनुसंविशन्ति(१)॥ १८॥ प्रातराहुत्याः हुतायां पृणाहुत्यन्ते वरदानं ब्रह्मणे ॥१९॥ प्रातराहुत्यन्ते पूर्णाहुत्याः हुतायां ब्रह्मणे वरं ददाति॥ १९॥

अध्वर्धवे च प्रातिमुक्तं निष्कम् ॥ २०॥

'च'शब्दाहदाति॥ २०॥

पुरोडाशोऽप्रये पथिकृते ॥ २१ ॥ कर्तव्यः । स (२)चोपांद्यभवति ॥ २१ ॥

शतमानं दक्षिणा सौवर्णम् ॥ २२॥

शतसंख्यामितं सुवर्णम् । तथावमया मात्रया मितं मवति । अवमा च मात्रा रक्तिका ॥ २२ ॥

हिरण्यपरिमाणेऽ न्यत्रापि ॥ २३ ॥

हिरण्यपरिमाणे मृग्येऽन्यत्रापि दाश्चायणादौ शतमानमेव भवति । अपरे तु वर्णयन्ति—'शतमाने श्र्यमार्णे सौवर्णो भवति(३) न राज-तम्' इति ॥ २३ ॥

पौष्णं चर्कं निर्वेपति वासःदातं दक्षिणा ॥ २४॥ तस्य च वाससां द्यतं दक्षिणा । अयम्ब्युषांश्वेव(४) ॥ २४॥

देवस्य त्वेति (२)रश्चनामादाय ब्रह्मन्नइवं भन्तस्यामीत्याह ॥ २५ ॥

ब्रह्मौदनाज्यशेषेण रशनामक्काऽऽदानम् "तेन रशनामभ्यज्यादत्ते"

- (१) ''तदेवापीतराः संविशन्ति'' (श० ब्रा० १३-४-१-९) इतिश्रुतेः ।
- (२) ''अथाग्नेयीमिष्टिं निर्वपति'' इति प्रकृत्य ''उपारृशु हविषो या-ज्यानुवाष्ये'' (३१० त्रा० १३-४-१-१३) इत्युक्तवात् ।
- (३) यत्र यत्र रातमानं श्रूयते तत्र हिरण्यपरिमाणे ज्ञातव्यं न तु रा-जतपरिमाणे इस्यर्थः ।
- (४) "अथ पौष्णीं निर्वेपति" इति प्रकृत्य "उपा;शु हविषो याज्यानु-वाक्ये" (श० ब्रा० १३-४-१-१५)इति श्रुतेः।
- (५) देवस्य स्वा०(वा० सं० २२-१) इत्यारभ्य "सरमारणतो" (वा० सं० २२-२) इत्यन्तेन मन्त्रेण द्वादशारति त्रयोदशारति वा दर्भमयी द्वि-

(१)तं बधानेति (२)ब्रह्माऽनुज्ञातोऽभिषा असीति(३)

वस्तात्यम्बं निरूपस् ॥ २६ ॥

रूपशब्दो वर्णवाची। त्रिवर्णसिखर्थः। "त्रिरूप एवेषोऽश्वः स्यात्" (श॰ त्रा०१३-४-२-४) इति वचनात्॥ २६॥

सर्वरूपं वा॥ २७॥

'वा' विकल्पार्थः । ''यश्मिन्त्सर्वाणि रूपाणि भवन्ति'' (रा० त्रा० १३-४-२-१) इति श्रुतेः ॥ २७ ॥

राधिम् ॥ ९४ ॥

प्रसिद्ध मेव(४) ॥ २८॥

दक्षिणधुर्यसमम् ॥ २९॥

दक्षिणेन घुर्येण तुल्यांमत्यर्थः । अथवा यो दक्षिणस्यां घुरि असाः मान्येन, तत उत्कृष्टतर इत्यर्थः ॥ २९ ॥

साहसम् ॥३०॥

गोसहस्राई(५)म्॥३०॥

छलामम् ॥ ३९॥

नीलीपौण्ड्कम्(६) ॥ ३१॥

कृत्तिकाञ्जि वा ॥ ३२ ॥

कृतिका शकटमिव यस्य छळाटे पीण्ड्राणि। अत्र येषां वर्णानाः मविरोधस्ते समुज्बीयन्ते। येषां विरोधस्ते आम्नानसामध्यात् वि-कल्प्यन्ते॥ ३२॥

पूर्वकायकृष्णः। शुक्रापरम् ॥ ३३ ॥

'तस्य कृष्णः पूर्वीर्धः, ग्रुङ्कोऽपरार्धः" (হাত রাত ংই-४-২-४) इति श्रुतेः॥ ই३ ॥

गुणमश्वबन्धनार्था रज्जुमादाय"ब्रह्मन्नश्व स्मन्त्स्यामिः"(वा॰ सं॰ २२-५) इत्यादि ''तेन राद्धासम्' इत्यन्तं मन्त्रं ब्रह्माणं प्रत्याह इत्यर्थः ।

- (१) "त स्वधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राष्ट्राहि" (वा० सं० २२-४)
- (२) 'ब्रह्मा' इति प्रतिनिधिन्युदासार्थम् असन्निधानादिना तत्प्राप्तेः।
- (३) अभिधाऽ असि० (वा० सं० २२-३) इत्यारभ्य "देवेभ्यः प्रजाप-तये (२२-४) इत्यन्तेन ।
 - (४) वेगवत्तरमिति यावत्।
 - (५) गवां सहस्रं मूल्यं योऽईति।
 - (६) नीलवर्णलाञ्चनयुक्तम् ।

क्रिट्यासारहं वा ॥ ३४॥

कृष्णवर्णसहितान्यवर्णम् ॥ ३४ ॥

स्थावरा अपो गत्वा प्रजापतये त्वेति प्रोचत्पद्वं प्रतिमन्त्रम् ॥ ३५॥

या न वहान्ति ता स्थावरा आपः(१), ता गःवा "त्रजापतये त्वा०'(२(इति प्रतिसन्त्रमञ्जं प्रोक्षति ॥ ३५ ॥

आयोगवमाह इवानं चत्रचवाभिमन्यस्वति ॥ ३६॥

आयोगवः—सङ्करजातः, वैद्यायां शुद्धेण जातः, तमाह-'द्यानं चः तुरक्षमभिमन्यस्व' इत्येवम् । चतुरक्षद्वाभावायस्याक्षिसमीपे पौण्ड्राः णि स गुणवृत्या चतुरक्षः ॥ ३६ ॥

पुँखत्हमें के ॥ ३७॥

'श्वानं चतुरक्षमभिमन्यस्व' इत्येवमाहुः । पुंश्चलू—स्त्रीलोखुप उ च्यते ॥ ३७ ॥

सिश्रकसुसलेने(३)न्दृ हन्ति ॥ ३८ ॥
स प्वं प्रेषितस्सन् सिश्रकसुसलेनेन्द्वानं हन्ति ॥ ३८ ॥
दिति विशेऽध्याये प्रथमा कण्डिका ।
यो अर्चन्तिमिति वाच्यति ॥ १ ॥
"यो अर्चन्तम्" (४) दृश्यमुं मन्त्रं वाच्यति ॥ १ ॥
वेतसकटेनाधोऽद्वं हाव्यति प्रो मते हति ॥ २ ॥
वेतसकटेना(६) श्रवस्थाध्यतात प्रावयति—"परे। मर्ते" दृश्यनेन

अग्निसमीपमानीयाऽग्नये स्वाहोते जुहोत्यनुवाकेन प्रतिमन्त्रय् ॥ ३॥

मन्त्रेण ॥ २॥

⁽१) तडागादिस्था इति यावत्।

⁽२) प्रजापतये स्वा० (वा० सं० २२-५) इति पञ्चिमिः यञ्जिमः प्रो-श्रत्यध्वर्युः ।

⁽३) सिधकत्रक्षोद्भवेन।

⁽४) योऽ अर्बन्तम्० (वा० सं० २२-५) इत्यादि 'वरुणः' इत्यन्तम् ।

⁽५) परो सर्चः० (वा॰ सं० २२-५) इतिमन्त्रेण वेतसवृक्षशाखानिमि-तेन कटेन तं मारितं श्वानमध्वस्थाधः प्रदेशे जलमध्ये तार्यति ।

अग्निसमीपमानीयाश्वम् । अनुवाकेन जुहोति प्रतिमन्त्रम् "अमये स्वाहा" (१)इत्येव ॥ ३ ॥

सहसं वावतीस् ॥ ४॥

सहस्रं वाहुतीनां जुहोति अनुवाकमावर्खावर्त्य "सहस्रं जुहोति" (श० बा० १३-१-३-१) इति वचनात् ॥ ४ ॥

आइवस्रवणविरमणाद्वा ॥ ५ ॥

जुहोति। 'वा' (२)शब्दो विकल्पार्थः॥ ५॥

वादशकपालाशिर्वपति भिन्नतन्त्राञ्छतमानदाचि यान्मध्यमस्य राजतः, सवित्रे प्रसवित्रे, सवित्रऽआसः चित्रे, सावित्रे सत्यप्रसवायेति॥ ६॥

काळेक्यात्तन्त्रेक्यं मा मृदिति 'भिन्नतन्त्रान्' इत्युक्तम् । मध्यमस्य राजतः शतमानो दक्षिणा, इतरयोः सौवर्णः ॥ ६॥

मयाजेषु दक्षिणतो ब्राह्मणो यजमानस्य यज्ञदानयुः काः स्वयंकृतास्तिको गाथा गायत्युत्तरमन्द्रायाम् ॥९॥

प्रयाजेषु तायमानेषु दक्षिणतो व्यवस्थितो ब्राह्मणः, ब्राह्मणप्रहणा-दित्विग्वयतिरिक्तः। यजमानस्य घन्नद्यानयुक्ताः स्वयं कृता एव तिस्रो गाथा गायत्युत्तरमन्द्रायाम् । उत्तरमन्द्रा च गायनप्रसिद्धा । वीणासन इतं च गानम् "बीणागाथी" (रा० ब्रा० १३-४-२-८) इति श्रुतेः ॥आ

राजन्यो धृतिषु(३) युद्धजपयुक्ताः ॥ ८॥

गाथा गायत्युत्तरमन्द्रायाम । नीणागाथी स्वयंकता युद्धजः पयुक्ताः॥ ८॥

अध्वर्युयजमानी देचिणेऽइवकणे जपतो विभूमीत्रेति॥ ९॥

(४)अमुं मन्त्रम् ॥ ९॥

⁽१) अग्नये स्वाहा०(वा० सं० २२-६)इति एककण्डिकात्मकेन अ-नुवाकेन प्रतिमन्त्रं सऋद्गृहीत्वा जुह्वा स्तोकीयसंज्ञा दशाज्याहृतीर्जुहोति।

⁽२) अथवा न सहस्रस्य नियमः किन्तु यावत्कालं क्लिन्नाद्श्वश्रारीः रादुदकं स्वति तावज्जहोतीत्यर्थः। शाखान्तरात्।

⁽३) हयमानासु ।

⁽४) विभूमोत्रा० (बा॰ सं॰ २२-१९)

पशुबद्रसर्जनं निरष्टे ऽइवराने ॥ १० ॥ 'पशुबत्' इत्युत्तरपूर्वा दिग्ळभ्यते । निर्हे निरमणे इदात्या ऽरवः ्राते(१) ॥ १० ॥

(२)देवा आशापाला इति रक्षिणोऽ स्पाद्भित्यस्य-रीजातीयांस्तावतस्तावतः कवाचिनिषाङ्गिकलाः

पिदण्डिनो यथासंख्यम् ॥ ११ ॥

पंव हि अयते-'राजपुत्राः कवाचिनः रातम्' (श. अ.११-४-२-५) इत्येवमादि ॥ ११॥

बहवाभ्यो(३) बार्णस् ॥ १२ ॥

अर्बस्य ॥ १२॥

(४) प्रलेपाचोदकात् ॥ १३ ॥

इदानीं रक्षितृणां ब्रिसमाह—

ब्राह्मणोऽइबमेषेऽविद्वान्द्वातिः स्व वः ॥ १४॥ अरवमेथानभिज्ञो ब्राह्मणो वो दुचिः(५)। तामेव हि प्रकृत्य श्रूयते-''स पानं करवाय खाइं निवपाय'' (इा० ब्रा०१३-४-२-१७) इति ॥१४॥ पकार्य च सर्वेष ॥ १५ ॥

अद्वमेघविद्वत्स्विपि(६)॥ १५॥

⁽१) अध्वर्युयजमानौ अश्वगते शताभ्यानां मध्ये चतुर्विशतिवर्षवयः स्कारवे पशुवदुःसर्जनं कुरुतः। कीइशे ? निरुद्धे अश्वस्य दन्तगतान्यष्टौ वयोव्यञ्जनानि, एकैकं त्रोणि-त्रीणि वर्षाणि अनुवर्तन्ते। तानि निर्गतान्यः स्मादिति निरष्टम् अतीतचतुर्विशतिवर्षमित्यर्थः।

⁽२) उत्सृष्टस्याश्वस्य रक्षिणः पुरुषान् अध्वर्युः 'देवाऽ आज्ञा-पाला॰" (वा॰ सं॰ २२-१९) इति मन्त्रेणादिशति शतं राजपुत्रान् , शतं राजन्यपुत्रान्, शतं सूतयामणीपुत्रान्, शतं क्षात्रसंप्रहोतृपुत्रान्। को-द्रशानित्याह्-कवचीत्यादिना । सन्नाहवन्तः कवचिनः, खडगघारिणो निषड्गियः, शरावपनमस्त्रावन्तः कलापिनः, वंहादिधारिणो दण्डिनः।

⁽३) वर्षपर्धन्तम् ।

⁽४) प्रस्तेयात् स्नानाहीत्।

⁽५) ताद्रशद्राह्माह्मणस्य गृहे खानपानादि करुत ।

⁽६) अभ्वमेधवेदितृज्ञाह्मणानामपि गृहे यत्पकवान्नं तहु गृणहीध्वम् "अथ यत्किंच जनपदे जुनान्नः सर्वा वः" (श० ब्रा० १३ ४-२-१७) इति श्रुतेः।

रथकारगृहवासाध्य ॥ १६॥

"रथकारकुळ एव बोबसितः" (श्र० बा० १३-४-२-१७) रित ॥१६॥ आभिषेक्या भविष्यत समाप्तुवन्त इत्याह राजपुत्रान् १७

नेतरान्(१)॥१७॥

दक्षिणतो वेदेहिरणमयेषूपविद्यानित ॥ १८ ॥ सम्प्रत्यभावाद् भृतकालीना वेदिः ॥ १८ ॥ तेषां विशेषमाह—

अध्वर्युयज्ञमानौ (२)कूर्चयोः ॥ १९ ॥ सौवर्णयोः ॥ १९ ॥

(३) फलकवोर्वा ॥ २०॥

होतृब्रह्मोद्गातारः कशिपुषु ॥ २१ ॥ कशिपुशन्देन मसुरक उच्यते(४) ॥ २१ ॥ होतर्भूतान्याचक्ष्य भृतेष्टियमं यज्ञबानमध्यूहोति ॥२२॥ इति विशेष्ट्याये द्वितीया कण्डिका ।

पारिस्रवं प्रेष्यति ॥ १॥

पारिष्ठवसृष्ट्वन्द्वमाख्यानम् ॥ १ ॥ तस्मिञ्जस्यमाने—

हवै होतरिति प्रतिगृह्णाति तद्दन्ते प्रेष्यति (५)वीणागः णगिनो राजर्षिभिर्यजमान्। सङ्गायतेति ॥ २ ॥ बीणागणागिन उपसमेता भवन्ति "तानध्वर्युः सम्प्रेष्यति" (२० बा० १३-४-३-३) श्रीत श्रुतेः ॥ २॥

(३) पादरहितमासनं फलकम् । (४) मृद्धासनमित्यर्थाः।

⁽१) राजपुत्रान्त्रत्याह-यूयम् अश्वरक्षणं समाप्नुवन्तः पर्टाभिषे-कयोग्या भविष्यथ । (२) सपादमासनं कूर्वः।

⁽५) वीणानामलाबुबीणा त्रितन्तिः सप्ततन्तिः श्वततन्तिः इत्या-दीनां गणो वीणागणः, तेन ये गायन्ति ते वीणागणगाः, ते सन्ति शि-ष्या येषां गायनावार्याणां ते वीणागणगितः तत्सम्बोधनं हे वीणागण-गिनः। राजिषिभिरुपमानभूतैः सहोपमेयभूतं यजमानं 'सङ्गायतः इति प्रैषं दद्यादध्यर्थुः।

दिखणात्री जुहोति हिङ्काराय स्वाहेति प्रक्रमान् ॥ ३ ॥

"हिङ्काराय स्वाहा"(१) इत्येभिर्मन्त्रेः प्रतिमंन्त्रं प्रक्रमसंज्ञकान् होमान् दक्षिणायौ जुहोति ॥ ३॥

आहवनीयेऽस्तमितं चतस्रो धृतीरिह रन्तिरिति(२) ॥४॥

'जुहोति' इत्यनुवर्तते । 'चतस्त' इति प्रहणं मन्त्रविवेकार्थम् । आहः वनीयप्रहणमधिकृतदक्षिणाऽग्निन्युवासार्थम् ॥ ४ ॥

वावातासम्बेकानसावित्युत्तरमन्द्रागानपारि-

स्वधृतीः सम्बन्सरम्(३) ॥ ५ ॥

वावातासम्वेशनसावित्रीणां चान्द्रमसः सम्बत्सरः। तेन हि सर्वश्र व्यवहारः। पारिष्ठवध्नतीनां तु सावनः(४)। एवं हि श्रृयते पारिष्ठवं प्रकृत्य "वड्निश्वातं द्शाहानाच्छे" (श्रुण् अ१० १३-४-३-१५) इति। धृतिषु च "पोड्श नवतीरेता वाऽ अश्वस्य वन्यनम्" (श्रुण् १३-१-६-२) इति। इयं च संख्या सावन एव संवत्सरे ब्रुटते न चान्द्रमस इति॥ ५॥

अर्थमासमासञ्जेमास्यवणमास्यानि चैके ॥ ६ ॥ वादातासंवेशनादीनि कुर्वन्ति शाखान्तरात्। अस्मिश्च पक्षे मासाः विरोधनोपक्रमः कार्यः ॥ ६ ॥

वीण।गाथिभ्यां पृथक् दाते ददाति ॥ ७ ॥ शत्र शतं ददातीत्यर्थः॥ ७ ॥

्राजर्षिभिः सङ्गायनमा दक्षिणियायाः ॥ ८ ॥ कर्तव्यः(५) ॥ ८ ॥

दक्षान्ते देवेरीपवसध्यात् ॥१॥

⁽१) हिङ्काराय स्वाहा० (वा० सं० २१-७,८) इत्यादि **एकोनप** आशन्मन्त्रेर्जुहोति।

⁽२) इह रन्ति० (वा० सं० २२-१९) इत्यादीनि चस्वारि यजूषि ।

⁽३) सम्वत्सरपर्यन्तं प्रत्यहं भवन्ति । संवत्सरश्चोत्सर्गदिवसादा-रभ्य गणनीयो न ब्रह्मौदनदिवसादिति देवयाहिकः ।

⁽४) तत्साहचर्याद्वाचातासम्वेशनसाविष्युत्तरमन्द्रागाना**ना**मपि सावन एव संवत्सरः। न होकः शब्दो विधेयभेदेन अर्थभेदमाश्रयते। तस्मात्सावन एव सर्ववेतिरुपण्टं देवयाज्ञिके।

⁽ ५) संबत्सरे पूर्णे सत्यपि इति शेषः ।

"दोक्षणीयायाः सः स्थितायाः सायं वाचि विस्धायाम्" (श॰ झाणाः १३-४-४-२) इति प्रकृत्याह्—"देवैरिमं यज्ञमानः सङ्गायतः" इति ॥९॥

पद्यादी प्रजापतिना सुन्यासु ॥ १० ॥ सुरवासु परवादी 'प्रजापतिनेमं यजमानः सङ्गायत' इति वेषः ॥१०

अन्ते च ॥ ११ ॥

प्रक्रेव प्रेषणम् । 'अन्त' ग्रहणेगोदवसानीयान्त उच्यते । "उदय-सानीयायामन्ततः स्कृष्टियतायाम्" (श० ब्रा० १३-४-४) इति श्रुतेः । प्रविभवाहरहः परिद्वतास्वेव वस्ततीवर्णिवपि । प्रतद्प्यन्तग्रहणेन सुचितम् ॥ ११ ॥

अश्वापदीज्या (१) वर्षामः सावित्रयन्ते ॥ १२ ॥ तःकालता मा भूदिति 'लावित्रयन्त' प्रहणम् ॥ १२ ॥ पौष्णः स्नामे ॥ १३ ॥

स्नामः—सिंहापक (२)उच्यते ॥ १६ ॥ सौर्योऽक्ष्यामये ॥ १४॥

अक्षिरोंगे ॥ १४ ॥

वाहणोऽप्सु स्ते ॥ १५॥

'यनमयों भवति' इत्युक्तमेव ॥ १५॥

मृमिकपालो वैद्यानरोऽरिष्ट्यामये॥ १६॥

अरिष्टरोगे द्रोण्यामये(३)॥ १६॥

लोडकपालं जानूकपर्यो भेदान्॥ १७॥

प्यं हि श्रूगते—''वैश्वानरं हावशकपाछं भूमिकपाछं पुरोडाशम-जुनिवेपेत'' (श॰ शा॰ १३-३-८-३) इति । तःपुनरजुपपन्नम् , ये-नात्र वैश्वानरो द्वादशकपाछोऽनृद्यते—यो वैश्वानरो द्वादशकपाछः स भूमिकपाछः कर्तव्य इति । द्वादशकपाछताया भूमिकपाछतायाश्चासः समवात् । छोष्टकपाछत्वे च भूमिकपाछतानुपपतिरेव । 'तस्माद्ध्मिक-

⁽१) अश्वस्य रोगाद्यभिभवे चक्तिरिज्या भवति।

⁽२) सिंदाणकः शालिहोत्रे प्रसिद्धः।

⁽३) द्रोण्यामयो हाक्षताऽऽमय उच्यते। रिष्टिः आयुधं तस्कृत बा मयो रिष्ट्यामयः, न रिष्ट्यामयः अशिष्ट्यामय इति ब्युत्पत्तेः। कपालस्था ने चास्य भूमिरेच भवति।

पाळ एवं इति सम्प्रदायः(१)॥ १७॥

नाशे तन्त्रेण चाबाएथिव्यः पयो वायव्यः सौर्यः ॥१८॥

'तन्त्र'शब्दस्तन्त्रेक्यार्थ इति केचित्। तत्पुनरनुपपन्नम्,। काला-यमेदादिना प्राप्तत्वात्। तस्माद्वैद्वदेविकमत्र तन्त्रं यथा स्यादिति।

नतु च वैश्वदेविकप्रकृतित्वेन प्राप्नोत्येव तत् । नेत्युच्यते । वायव्यसीयोभ्यां न हि नवप्रयाजतादिविधिष्ठच्यते । अतस्तत्प्राप्यर्थे 'तन्त्रेण' इति वचनम्(२) ॥ १८॥

अन्यत्रापि ॥ १९॥

अन्यहिमञ्चिष नष्टे द्रव्ये द्यमिष्टिर्भवति । 'स यद्यस्याप्यन्यश्रद्ये देतयैन यजेत'' (श॰ ब्रा॰ १३-३-८-६) इति । 'अस्य' दति च ब्रह्णाः त्रकरणाद्वहिन(३) भवति ॥ १९॥

प्रजाते वायच्यम् ॥ २०॥

"यशक्वो वडवार स्कन्देद्वायब्यं पयोऽनुनिर्वपेत्" (श्र॰ बा॰ १३-३-८-१) इति वचनात्(४) ॥ २०॥

स्ताद्शंनयोः-

सृते चाऽदर्शने(५) च। इति विद्योऽच्याये तृतीया कण्डिका।

- (१) वस्तुतस्तु लोष्टकपालस्व भूमिकपालस्वमपि सिद्ध्यति। तदा-ह-लोष्टा एव कपालानि यस्यासौ। कुतः? 'भेदात्' कपालेषु संख्यायोगे-न भेदोपदेशात्। न चासौ भूमिकपालस्व सम्भवति। तस्मालोष्टानि सृ-खण्डानि कपालस्थाने उपधेयानि। एवं सति उभयानुष्रहो भवति। जोष्टानां भेदाद् द्वादशकपालता, भूमिकपालता चेति।
- (२) अश्वस्य नाशे तन्त्रेण त्रिहविष्केष्टिर्भवति । "अथ यदि नश्येत् त्रिहविषमिष्टिमनुनिवंपेत्" (श० ब्रा० १३-३-८-६) इति श्रुतेः ।
 - (३) अभ्वमेघयाजिनाऽन्यत्रापि हिरण्यादिद्रव्ये नष्टे इयमेवेष्टिर्भवति ।
 - (४) वडवायां कृतरेतःस्कन्दनः प्रजात इल्युच्यते ।
- (५) मृते अश्वस्यादर्शने अपुनरागमनसंग्रवे च अन्यस्याश्वस्य रशनादानादि अश्वयुक्तम् अश्वसम्बन्धि अश्वोपकारकं सर्वे कर्म पुनः करोति। तत्र प्रथमं लौकिकेनाज्येन रशनाञ्जनं, ततो मन्त्रेणादानं, ब्रह्मा प्रश्वमिति प्रश्नः, ब्रह्मानुकातस्य श्ववन्धनम्, अपःप्रति नयनं, प्रोक्षणम्, अश्वहननं, 'लावनम्, 'अश्रये स्वाहा' इति अनुवाकेन होमः, कर्णजणः, उत्सर्गः, प्रक्रमहोमाश्च यावन्तः पूर्वमनुष्टितास्ते सर्वेऽप्यत्र आवर्त्यन्ते इति स्पष्टं देवयास्कि।

अन्यस्य रदानादानादि करोत्यदवयुक्तम् ॥ १ ॥

रशनादानाद्यन्यस्याद्वयुक्तं कर्तव्यम् । अश्वहननं तु न भवति, अश्वयोगाभावात् । "अग्नयं स्वाहा" इति चानुवाकेन होमः(१)। प्रक्रमः होमधृतिहोमावपी(२)ति चत् । न, अश्वसम्बन्धात् । अद्यसम्बन्धां हि भवति, "हिङ्काराय स्वाहा" इत्येवमादिप्रक्रमाणां घृतिहोमानामपि "षोडश नवतिरेता वा अद्यस्य बन्धनम्"(शव्वाव्यदे—१-६-२) इति । अन्यस्य रशनादानादि करोतीत्यर्थः । प्राप्तत्वाद्वाच्यमेनदिति चेत् ? स्यात्, प्रायश्चित्तव्युदासाधित्वात् । तत्कुतः ? "अन्यमानीय प्रोक्षेयुः सेव तत्र प्रायश्चित्तः" (शव बाव १३-३-८-६) इति वचनात् ॥ १ ॥ प्रव्वालम्भनाद्याऽऽध्वरदीक्षणियायाः कृत्वा चत्वार्थी-

द्रमणानि(३) जुहोत्याध्वरिकाणि ॥ २ ॥

परवास्त्रमनं च पौर्णमास्यामेव । तदाद्यध्वरदक्षिणीयान्तं च । यत्कारणं द्वादशाहचोदकानुष्रहेण षष्ठधामाग्निके च सप्तम्यां निर्वपति इति भवति ॥ २ ॥

काय स्वाहेति(४) चादवमेधिकानि जीणि ॥ ३॥ 'औद्रमणानि जुहोति' इति वर्तते ॥ ३॥

कृष्णाजिनदक्षाितः ॥ ४ ॥ (५)अतोऽनन्तरं कृष्णाजिनदीक्षाः ॥ ४ ॥

⁽१) अत्र न भवतीत्यनुषज्यते । देवयाज्ञिकस्तूमावि कर्तव्यौ तयोरभ्वयोगस्य सत्त्वादित्याह ।

⁽२) अस्यापि 'न भवतः' इति शेषः।

⁽३) सामितित्ये कतौ य इष्टकापशुविहितः तस्य आलम्मनादि कर्म कृत्वा चरवायौँद्रमणानि "आकृत्यै प्रयुज्ञः" (वार संर ४-७) इत्यादीनि जुहोति । अत्र देवयाक्षिकः— वैत्र्यां पौर्णमास्यां पश्वालम्मः नादि कर्तव्यं, चैत्रकृष्णषष्ठ्यां सप्तमो दोक्षणोया, ततः प्रभृति द्वादश दीक्षाः, ततो वैशाखशुक्लतृतीयायां क्रयः, वैशाखशुक्लचतुर्दश्यामग्नीषोम् मीयः, वैद्याख्यां च प्रथमा सुत्येति ।

⁽ ४) चत्वारि आध्वरिकाण्योद्ग्रभणानि हुत्वा "कायस्वाहा०" (वा० सं० २२-२०) इति आध्वमेधिकानि, त्रीण्योद्ग्रभणानि जुहुयात् ।

⁽५) अत औद्रुमणहोमानन्तरं दीक्षणीयाशेषं समाप्य ऋष्णाजिनः दीक्षा तत्रोपवेशनान्ता कर्तथ्या ।

अध्वरदीक्षणीयायाख्यत्वारि ज्ञीणि ज्ञीणि चाइवसेविकानि ॥ ५॥

अध्वरदीक्षणीयाया आग्नावैष्णवस्य चत्वार्थोद्धमणानि त्रीणि त्रीः णि चारवमेधिकानि(१) जुहुवात्परिपाट्या ॥ ५ ॥

कृष्णाजिनान्तमन्वहं प्राकृतव्रतो ऽकृतत्वात् ॥ ६ ॥

कृष्णाजिनान्तमन्वहं कर्तव्यम्(२) सप्ताहं दीक्षणीयाप्रचारे प्राकृतः मेव वतं भवति । कुत एतत् ? अकृतत्वाहिक्षासंस्कारस्य । दण्डान्तेन हि दीक्षितो भवति ॥ ६॥

आग्निके च ससम्यां निर्वेपति ॥ ७ ॥

आग्निके च(३) हविषी सप्तम्यामिष्ट्यां निर्वपति । ते च "वैश्वान· रो" "घृते चरुरादित्येभ्य" (का॰ श्री० १६-४-२८, २९) इति ॥ ७ ॥

अभ्यञ्जनप्रभृति करोति ॥ ८॥

इहाभ्यञ्जनविधानात्पुर्व(४) न अवति, इति गम्यते ॥ ८ ॥

षडाग्निकानि चतुःस्थाने ॥ ९॥

चतुर्णामौद्रभणानामाध्यरिकाणां स्थाने वडाग्निकानि जुडुयात् त्रीणि चारवमेधिकानि(५)॥९॥

- (१) 'सप्ताहं प्रचरित" (श्राव्हाव १३-१-७-२) इति श्रुतेः सप्ताहं दीक्षणीया कार्या। तत्र प्रत्यहं कर्तव्यमाह—अध्वरदीक्षणीयायाश्रत्वारि चत्वायौंद्रमणानि 'आकृत्यै प्रयुज्ञव' इत्यादीनि त्रीणि त्रीणि चाश्वमेधिकानि 'कायस्वाहा' इति कण्डिकापिठतानि प्रत्यहमन्यान्यस्यानि पाठक्रमेण। एवं सप्त-सप्त प्रत्यहं ह्यन्ते। 'काय स्वाहा' इति कण्डिकायां सप्त त्रिकाणि पठितानि तन्मध्ये सप्तसु अहःसु क्रमेणैकेकं त्रिकं ह्यते। तत्र द्वितीयत्रिके स्वाहाकारायं मन्त्रत्रयं 'स्वाहाधिमाधीताय' इत्यादि।
- (२) कृष्णाजिनोपवेशनान्तं कर्म प्रत्यहं षट्स्वपि दीक्षणीयासु भवति।
 - (३) अत्र चकाराद् आग्नावैण्णवश्च भवति ।
 - (४) षद्सु दीक्षणीयास्वित्यर्थः।
- (५) प्रत्यहं यानि चरवायौंद्रमणानि आध्वरिकाणि ह्यन्ते तेषां चतुणा स्थाने सप्तम्याम् ''आकृतिमश्चिम्०'' (वा०सं० ११-६६) इति पडाग्निकानि जुहोति । त्रीणि चाश्वमेधिकानि ''विष्णवे स्वाहा' (वा० सं० २२-२०)इत्यादीनि ।

दशमं विश्वो देवस्ये(१)ति ॥ १० ॥ जुहोति ॥ १० ॥

कृष्णाजिनाचासमिदाघानाःकृत्वाऽऽ-ब्रह्मसिति जपति(२)॥११॥ उत्सर्गकाल एके॥१२॥

"आब्रह्मन्" (३)इति जपमिच्छन्ति । ततश्च विकल्पः ॥ १२ ॥

दीक्षा द्वादशोपसद्ध ॥ १३ ॥

(४) किमधीमदमुच्यते ? अत्र हि पक्षे महात्रतमुत्तमं भवति । अ-हीनानां च त्रतवतां सर्वजिहीक्षात्वमुक्तं, तन्मा भूदिति द्वादशदीक्षाः प्रहणम् । श्रूयते चात्र-"द्वादश दीक्षा द्वादशोपसदस्तिसः सुत्याः" (श्रु० त्रा० १३-४-४-१) इति ॥ १३ ॥

निस्योदकं देवयजनं पुगस्तात् ॥ १४ ॥ नित्यं सर्वदा स्थायि उदकं यत्र तद्देवयजनमध्यवसेयम् ॥ १४ ॥ आद्योऽग्निर्द्विगुणस्त्रिगुण एकविश्वातिविघो वा ॥ १६ ॥ यास्त्रसाद्विकत्यः(५) ॥ १५ ॥

एकाद्शिनीवदेकविरैकातिर्युपाः ॥ १६ ॥ 'भवन्ति' इति शेषः । 'पकादशिनीवत' इति किमर्थमुच्यते ? प्राः प्रत्वादेव, ''ब्रे त्वेवेते पकादशिन्याबालभेत" (श० ब्रा० १३-५-१-३)

- (१) सप्तस्यां दीक्षणीयायां षडाग्निकानि त्रीणि चाश्यमेधिकानि एवं नव हुत्वा दशममौद्रुमणं "विश्वो देवस्य०" (वा०सं० २६-२१) इति जुहोति ।
- (२) कृष्णाजिनदीक्षात आरभ्योखायां त्रयोदशसमिदाधानान्तं कृत्वाऽप्रवर्युरेव "आब्रह्मन्०" (वा॰ खं॰ २२-२२) इति जपति ।
- (३) उत्सर्गैरुपतिष्ठतः इत्युत्सर्गोपस्थानकाळे एके 'आब्रह्मन्०' इति जपमिच्छन्ति। यद्वा अध्वस्थात्सर्गकाळे ''विभूमीब्रा०'' (वा० सं० २२-१९) इति जपानन्तरम् इत्यर्थाः।
- (४) अश्वमेघस्याहीनत्वेन द्वादशाहपकृतिकतया चोदकेनैव द्वाद-शोपसस्वे सिद्धे इत्यादिः।
- (५) आद्येशी सार्धसत्युक्षाः क्षेत्रफलम् । तत्र द्विगुणपक्षे स पः श्चदशयुक्षो भवति । त्रिगुणपक्षे सार्धद्वाविंशतियुक्षः ।

श्ति मा भूत्तव्रक्तियाव्यत्यालेन च मानार्थम् 'पकाद्यिनी'(१)रित ॥१६॥ (२)रज्जूदालो सध्ये ॥ १७ ॥

भवति ॥ १७ ॥

अभितः(३) पैतुदारयो ॥ १८ ॥

भवतः ॥ १८॥

षद् षद् बैल्बखादिरपालाजाः ॥ १९ ॥

युपा सवन्ति ॥ १९ ॥

त्रयस्योऽभितः ॥ २० ॥

''त्रय दत्थात्'' (रा॰ ब्रा॰ १३-४-४-५) इति वचनात् ॥ २० ॥ प्रतियूपमग्नीषोमीयाः ॥ २१ ॥

पश्चो नियुज्यन्ते । ते च दक्षिणयूपादारभ्य वचनसामर्थात् । अतस्य 'पकादशिनीवत' उक्तेऽपि सर्वेषामधैबोळ्यणम् ॥ २१ ॥

वातरविष्टोनः ॥ २२ ॥

सवति ॥ २२ ॥

एकाद्शिन्यो सवनीयाः (४)पदायो भवन्ति ॥२३॥ "द्वे त्वेवेते एकाद्शिन्यावालभेतः" (२० व्रा०१३-५-१-३) इति श्रुतेः ॥२३॥

77 **च** –

(५)मध्यम आसेयो ॥ २४॥

'नियुज्येते' देशवा व्यन्यासेन ॥ २४ ॥

(६) उत्तरयोश्च ॥ २५॥

अहारेकादशिन्यावालभेत ॥ २५ ॥

(७)उत्तमे गावो बहुरूपाः॥ २६॥

- (१) सर्वे च यूपा एकविंशात्यरत्नयो भवन्ति।
- (२) रज्जदालः श्लेष्मातकः 'शृंदी' इतिलोके प्रसिद्धः।
- (३) पैतुदाकः देवदाकः।
- (४) 'पशवो भवन्ति' इति पाठः अत्र पुस्तकेऽधिकः।
- (५) मध्यमे यूपे प्रथमी पशू आग्नेयी आलम्मनीयौ ।
- (६) उत्तरयोरोप द्वितोयतृतीययोरह्नोद्वे द्वे एकादशिन्यौ सवनीयाः पद्मवो भवन्ति ।
- (७) उत्तमेहि एकादशिन्योः पशवो बहुरूपा, विनिन्नवर्णा गाव आलम्भव्याः।

आलभ्यन्ते ॥ २६ ॥

विजयमध्याद्वोतुः प्राची दिक् दक्षिणा ब्रह्मणोऽध्व-योः प्रतीच्युद्गातुरुदीची ॥ २७ ॥

विजयमध्यात्राच्यान्दिशि चहुत्पन्नं द्रव्यं तद्धेतुदीयते(१)दक्षिणा ब्रह्मणः प्रतीच्यध्वयोददीच्युद्धातुः ॥ २७ ॥

तृतीयं तृतीयमन्वहं ददाति भूमिपुरुषत्राह्मणस्ववर्जम् ॥२८॥

(२)आद्यत्विक्वतिपुरुषाणां च तत एव चोदकानुरूपो विभागः। ''अथातो दक्षिणानाम्'' (श॰ त्रा॰ १३-५-४४) इति प्रकृत्य सर्वमेचै तदेवं श्रूयत इति । बाह्मणस्वं यहण्डादुत्पन्नं तन्न देयम् । तस्य हि ब्राह्मणेष्वेव विनियोगः स्मृतौ विहित इति ॥ २८ ॥

तृतीयस्वनडकथ्यं गृहीत्वाऽऽिनमाहतः

काले श्रेषं विग्रह्वाति ॥ २९ ॥ तद्यस्माननुहोमभवौ ॥ ३० ॥

आशिमारतचमसानतु होममक्षौ भवतः ॥ ३० ॥ चसतीचरीर्युहीत्वा ग्रहीत्वा प्रतिदिशः

समासिच्य परिहरति(३)॥ ३१॥

प्रतिदिशं वस्तीवरीगृंहीत्वा गृहीत्वा समासिच्य परिहरति। स चायं मध्यमस्य धर्मो वचनात्। ततश्च स्वमेधेशास्त्रमधिके मध्यमेऽ-हिन वर्तमाने प्रतिदिशं 'वस्तिविरि'म्रहणं प्रवतंते ॥ ३१॥ आज्यसक्तुधानाळाजानामेकैकं जुहोति प्राणाय स्वाहे-

ति(४) प्रतिमन्त्रः सर्वरात्रमावर्तम् ॥ ३२॥

(२) होतृगणान्तःपातिनां त्रयाणां पुरुषाणामित्यर्थः।

(३) द्वितीयस्याहोऽर्थे प्रतिदिशं सर्वाभ्यो दिग्भ्यः सकाशात् वस-तीवरीर्गृहीत्वा आसादनान्तं पृथक्कृत्वा परिहरणकाळे पकस्मिन्महति-पात्रे समासिच्य मिश्रीकृत्य परिहरति ।

(४) आज्यादीनां प्रतिप्रहरमेकैकं क्रमेण सर्वरात्रमुस्रेवेदिस्थाशी "प्राणाय स्वाहाण" (वाण्सं० २२-२३) इत्यादि द्वादशकण्डिकात्मकै-रनुवाकैः जुहोति। कि कृत्वा ? आवर्तम् 'प्राणाय स्वाहा' इत्यादिकम् 'प्रकशताय स्वाहा'इत्यन्तं मन्त्रगणमावत्यांवर्त्यं 'सर्वरात्रम्' इति द्विती-

⁽१) दिग्विजयकाले प्राच्या दिशो यदुद्रव्यमानीतं तद्घोतुर्देयम् , एवमग्रेऽपि ।

आज्यादीनामेकैकेन द्रव्येण होममिनिर्वर्तयि "प्राणायस्वाहा" हत्येमिर्मन्त्रः प्रतिमन्त्रम् आवर्थावर्यं सर्वरात्रम् । अत्र च रात्रः प्रति-द्रव्यं विभागः प्रहरमेकमाज्येन, द्वितीयं सक्तुभिः, तृतीयं धानाभिः, चतुर्थं लाजः । इह च कर्मपरिमाणानवगमास्कालपरिमाणेन कर्मपरिमाणपरिच्छेदः । न ह्यत्र कर्मपरिमाणं श्रूयते । यथा शतरुद्धियं सन्ति निर्मापरिच्छेदः । न ह्यत्र कर्मपरिमाणं श्रूयते । यथा शतरुद्धियं सन्ति तहोमेऽपि सति "विष्टश्च ह व जीणि च शतान्येत्रच्छतरुद्धियम्य तिश्चित्रयं पञ्चित्रश्चात्" (श्रूष्ट जाव १-१-१-४३) इति । नैविमह वचनं भवति । तेन यावन्तो होमाः प्रहरेण नियर्थन्ते, तावन्ति प्रतिद्वयं चतुर्मुष्टिकानि प्राह्माणि । दिविहोमानां पौर्णमासवर्मत्वेन आज्यस्य तृपांशुयाजविष्यन्तरेव परिमाणमेव ।

केचिस्वाज्यस्य पूर्णाहुतिकं विध्यन्तिमच्छन्ति । तद्वुपपन्नम् , सक्त्वादिमच्ये अभ्मानात्तस्य होमस्य । तत्रश्च द्विहोमोऽयमुपांशुः याज्ञाविध्यन्तमाहक इति । अतश्च श्रीवाचतुरचत्तेन होमः । इह च 'पः कस्मै स्वाहा' 'द्वाम्या' स्वाहा' श्वतुम्येः स्वाहा' 'वतुम्येः स्वाहा' 'पश्चम्यः स्वाहा' इत्येवमादिः छुप्तः स्वाध्यायो द्रष्ट्यः । पवं ह्वत्र श्रूयते—''अनुपूर्व जुहोति'' इति, ''एकोत्तरा जुहोति" इति तथा ''नेकद्यतमायेति" (दा ० ब्रा० १३-२-१-५, ६) इति ॥ ३२ ॥

व्युष्ट्या इति (१)व्युष्टाचाम् ॥३३॥ रजन्यां जुहोति । तच्च-लाजैरेवेतिसम्बदायः॥३३॥ (२)स्वर्गाचेत्युदिते ॥३४॥

जुद्देशित । पूर्णोद्वतिवन्संस्कारपूर्वकमाज्येन । युक्तद्वपता पुनकम

याप्रहणात् होमिक्रयाया रात्रेः कात्स्त्यैन संयोगः कार्यः। ततः प्रथमयामे घृतेन यागः, द्वितीये सकुभिः, तृतीये घानाभिः, चतुर्थे लाजैः। ''एक स्मै॰'' (बा॰ सं॰, २२-३४) इति द्वादशेऽनुवाके ''एकस्मै स्वाहा'' 'द्वाः भ्यार्थ स्वाहा' इत्यत्र त्रिभ्यः स्वाहा, चतुर्भ्यः स्वाहा, पञ्चभ्यः स्वाहा, पञ्चभ्यः स्वाहा, पञ्चभ्यः स्वाहा, पञ्चभ्यः स्वाहा, त्रवभ्यः स्वाहा इत्ये वमादयो मन्त्रा अपितता अपि एकैकोचयेन शतपर्यन्ताः प्रयोज्या ''प्रकोत्तरा जुदोति'' (श॰ ब्रा॰ १३-२-१-५) इति श्रुतेः।

(१) ब्युष्टायां समाप्तायां रात्री "ब्युष्ट्य स्वाहा" (वा॰ सं० २२-३४) इति घृताहुतिमेकांजुहोति।

(२) उदिते सूर्ये ''स्वर्गाय स्वाहा'' (वा० सं० २२-३४) इति च जुहोति । योराज्येन(१)। अत्र च कर्मविरचना अनस्तमिते आदित्ये आज्यमागान्तं कर्तव्यम्, तत आज्यादिभिहोंमः । विरोधाचापररात्रिकं कर्म, प्रतिप्र-स्थाता करोति । अध्यर्युर्हि अन्नहोमेषु व्यावृत्त इति ।

नतु वैपरीत्यं कस्मान भवति । न, अध्वर्धुकर्त्वकताया अपररात्रिके ऽन्यत्र चरितार्थत्वात् । अन्नहोमेषु त्वचरितार्थतेति । तस्माद्धवर्धुरेवाः महोमेषु । तथा च लिङ्गम् "अध्युरन्नहोमाञ्जुहोति" (श ० ब्रा० १३-५-१-४) इति । विधिरेवार्यामत्यपरे ॥ ३८॥

इति विशेष्टयाये चतुर्थी कण्डिका ।

प्रातरुक्थ्यः ॥ १ ॥

'भवति' इति स्त्रशेषः ॥ १॥ महिमानौ गृह्णाति सौवर्णन पूर्वः हिरण्यगर्भः(२) इति, क्रिनीयः, राजतेन यः प्राणतः(२) इति ॥ २॥ "महिमानौ" (श० बा० १३-२-११-१) इति प्रह्योनीम । महिमा नौ प्रह्यो गृह्णातीति सामानाधिकरण्यात ॥ २॥

बहिष्यमानाय संपंणमश्वम(लम्भ्य(४)॥३॥ बहिष्यमानं च वाचिनिकमत्र अहर्गणे सदिस विहितत्वात्॥३॥ वडवा द्दायत्यभिरस्ति तत्स्तोन्नम् ॥४॥ अद्दस्य वडवा द्दीयति। द्दीनेन यद्धिङ्करोति तदेवे स्तोत्रम्॥४॥ स्तुवीरन्वा॥५॥

उद्गातार इति विकल्पः। शास्त्रस्य तुल्यत्वात्॥५॥ शतमानं ददाति॥६॥

स्तोत्रदक्षिणा इति उद्गात्भयः ॥ ६ ॥

अच्चेनाक्रमयन्त्यास्तावम् ॥ ७ ॥

(५)आस्तावप्रदेशमञ्बनाक्रमयान्ति ॥ ७॥

- (१) 'न्युष्टचे स्वाहा'इत्याहुतिरपि आज्येनैव होतन्येति महीधरोऽपि।
- (२) हिरण्यगर्कः० (घा० सं० २३-१)।
- (३) यः प्राणतो० (वा० सं० २३-३)।
- (४) अष्ट्रशलम्मश्च पुच्छे ।
- (५) बहिष्पवमानस्तवनप्रदेशम्।

ऐकादशिवानुपाकृत्याद्यवादीश्च ॥ ८ ॥ 'उपाकरोति' इति शेषः॥ ८ ॥

होतरइयमभिष्टुहीति प्रेष्यति ॥ ९ ॥ प्रेषार्थश्च "तमेकादशभिहींताऽभिष्टीति यदक्रन्दः प्रथमं जायमान" (श॰ बा॰ १३-५-१-१६, १७) इति ॥ ९ ॥

युनक्त्येनं युज्जन्ति ब्रध्नमिति ॥ १०॥ पनमश्वं रथे "युज्जन्ति ब्रध्नम्" (१)इत्येनन मन्त्रेण ॥ १०॥ इतरांश्च युज्जन्त्यस्ये(२)ति ॥ ११॥

त्रीनश्वान्युनक्ति॥ ११॥

अश्वाः सौवर्णालङ्काराः ॥ १२ ॥ भवन्ति ॥ १२ ॥

रथआ। १३॥

संविर्णालङ्कारः॥ १३॥

अपो यात्वाऽनगारेषु वाचयति यद्वात इति ॥ १४ ॥ अपः प्रति यात्वाऽवतीर्जेष्वइवेषु ''यद्वात''(३) इत्यमुं मन्त्रं वा-चयति ॥ १४ ॥

आयाय विमुक्तमहवं महिषीवाबाता परिवृक्ताः ऽऽडचेनाभ्यञ्जन्ति पूर्वकायमध्याप्रकायान् यथाः

देशं वसवस्ति प्रतिमन्त्रम् ॥ १५ ॥ पत्य विमुक्तमश्वं महिष्याद्याः पत्त्योऽभ्यञ्जन्ति पूर्वकायमध्याप-रकायान् यथादेशं हति। महिषी पूर्वकायं, मध्यं वावाता, अपरकायं परि-वृक्ता। "वसवस्त्वा"(४) हत्योभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रम् ॥ १५ ॥

- (१) युअन्ति ब्रध्नम्० (वा० सं० २३-५)
- (२) युजन्त्यस्य (वा ० सं० २३-६)
- (३) ततः चतुर्भिरश्चैयुक्ते रथे अध्वर्ययज्ञमानौ उपविश्याश्वान्त्रः धावयतः तङ्गगादिकं प्रति । ततः जलमध्ये प्रविष्टेष्वश्वेषु "यूद्वातो०" (वा० सं० २३-७) इत्यमुं मन्त्रं यज्ञमानं वाचयति इति ।
- (४) आयाय जळप्रदेशाहेवयजनमागात्य रथाद्विमुक्तमश्वं महिष्याः द्यास्तिन्नः पत्न्यो यथाक्रममश्र्वस्य पूर्वादिकायानभ्यञ्जति घृतेन । महिषी पूर्वकायं "वसवस्त्वा०" इति, वावाता देहमध्यं "खद्रास्त्वा०" इति, परिवृक्ता पश्चाद्वागम् "आदित्यास्त्वा०" (वा० सं २३-८) इति मन्त्रेण।

अभ्रह्यमानान्मणीन्सीवर्णानेकशतमेकशतं (१)केसरपुच्छेच्यावयन्ति सूर्भुवःस्वरिति प्र

तिमहाव्याहाते ॥ १६॥

अञ्च श्रमानान् इति यथा न पतन्ति सीवर्णान्मणीन्केसरयोः पुः च्छे च प्रवयन्ति । (२)"मृः" इति महिषी, "मुवः"इति वावाता, "स्वः" इति परिवृक्ता ॥ १६ ॥

अनुचर्यश्च तृष्णीमेकेषाम् ॥ १७ ॥

आवयन्ति । एकेषां त्विति विकल्पः ॥ १७ ॥ अइवाय रात्रिहुतद्योषं प्रथच्छति लाजि६ठ्छाची ३निति॥१८॥ (३)यनेन मन्त्रेण ॥ १८॥

अप्स्वबहरणमखाद्ति ॥ १९ ॥ अखादत्यक्षे अप्स्ववहरणम् । सा वेयं प्रतिपत्तिः॥ १९ ॥ ब्रह्मा पृच्छति होतारं (४)यूपमभितः कः स्वि

देकाकी(५)ति ॥ २०॥

"यूपमभितो वदतः" (दा० ब्रा० १३-२-६-९) इति वचनात् ॥२०॥ (६)सूर्य इत्याचष्टे ॥ २१ ॥

होता॥ २१॥ हाता ब्रह्माणं का खिदासीदि(७)ति॥ ९२॥ 'पृच्छति' इत्यतुवर्तते॥ २२॥

- (१) अत्र केसरयोः पुच्छे चेति भाष्ये बहुत्वगीः । सृत्रस्था व्याकृता सैवं व।सुदेवैविवेचिता ॥ तद्यथा—शिरोप्रीवापुच्छवालेष्विति ।
- (२) 'भूः' इति एकशतं मणीन् सुवर्णमयान् अश्विशारोगेमसु म-हिषी प्रवयति, वावाता ग्रीवारोमसु 'भुवः' इति, प्रस्कृता पुच्छरोमसु 'स्वः' इति ।
 - (३) लाजी३ज्लाची३न्० (वा० सं० २३-८)
 - (४) परिधौ च खलेवाल्यां यूपसंस्कारवादिभिः। अभ्वेऽपि यूपसंस्कारा वाच्या अस्त्वित चेच्छिवम्॥ इति।
 - (५) कः स्विदेकाकीः (वा० सं० २३-९)
 - (६) सूर्यंऽएकाकी० (वा० सं २३–१०)
 - (७) का स्थिदासीत्० (बा० सं० २३-११)

चौरिति (१)प्रत्याह ॥ २३ ॥

अक्षा ॥ ४३ ॥

इति विरोऽध्याये पश्चमी काण्डका ॥

पश्चपाकरणान्तेचारवमेधिकमामिहितमस्वामिष्टवादि । इदानीं प्राकतानुवृत्यर्थमाह—

आग्निमन्थनादि करोति॥ १॥

अग्निष्ठेऽइवतूपरगोसृगान्नियुनाक्ते ॥ २ ॥ युषे ॥ २ ॥

यथोक्तमइवादौ देवताः ॥ ३ ॥

यथाऽदवस्तूपरोऽध्याये (२)उक्तास्तधैन प्रतिपत्तव्याः । ब्राह्मणमेने-दमिति ॥ ३॥

(३)पर्यक्रधान दवे ॥ ४॥

'नियुनकि' इति वर्तते ॥ ४ ॥

पश्चर्श पश्चद्श(४)रोहितादीन्तसौर्यान्तानितरेषु ॥ ५ ॥ रतरेषु यूपेषु पष्टदश रोहितादीन् सौर्यान्तान्नियुनकि । यूपोच्छ्र-यणक्रमेण प्रवृत्तेः ॥ ५ ॥

(१) द्यौरासीत्० (वा० सं० २३-१२)

(२) अश्वस्त्परः (वा० सं० २४-१) इत्यादि सम्पृणीध्यायः।

(३) "कृष्णप्रीच ऽआशेषो रराटें॰" इत्यादयः "वैष्णवो वामनः" (वा॰ सं॰ २४-१) इत्यन्ताः पर्यङ्गयसंबक्ताः, तानश्चे यूपस्थानीये नियु॰ निक्तः। अत्र अश्वस्य द्वारीरं तरणार्थं तुम्बीफलिय सर्वतो रज्जवा गुःम्फतीयम्। तथासित उक्तस्थाने पर्यङ्गयालम्भस्तस्वत्स्थाने गुम्फितरः उज्वां सुकरः स्यादिति देवयाविकाचार्यः।

(४) "रोहितो घूम्ररोहितः । वा॰ सं॰ २४-२) इत्यादीन् पञ्चदश पञ्चदश पशून् सौर्यान्तान् "श्वेताः सौर्याः" (वा०सं० २४-१९) इत्यन्तान् इतरेषु यूपेषु उच्छयणक्रमेण नियुनिक । अत्र देवयाश्विकस्तु विशेषमाह—

येषां पशुवाचकानां पदानामर्था न ज्ञायन्ते ते निगमनिरुक्तन्याकरः जोजादिवृत्यभिधानप्रन्थेभ्यो विलोक्यावगन्तव्याः । अत्र २२ ऐकादशि-नाः, ३२७ अश्वादयः सौर्यान्ताः, २६० कपिञ्जलादयः, एवं ६०९ पश्चाः । स्रोकश्च—

षट्शतानि नियुज्यन्ते पशुनां मध्यमेऽहनि । अश्वमेधस्य यञ्जस्य नवभिरधिकानि हि ॥ इति ।

(१)कापिअलादीन्द्रपतान्तांस्त्रयोद्दा जयोद्दा यूपान्तरेषु ॥ ६॥

"त्रयोदश त्रयोदशारण्यानाकाशेष्वालभते" (शश्त्रा० १३-५-१-१५) इति वचनात् । तांश्चाकाशोत्पत्तिक्रमेण । अपरे तु दक्षिणत आरभ्येः च्छन्ति ॥ ६॥

अरवप्रोक्षणमञ्ज्यस्त्वा वायुष्ट्वाति(२)॥ ७॥ "आध्वरिकं यजुरजुदृत्याश्वमेधिकं यज्जः प्रतिपद्यत" (रा॰ ब्रा॰ १३-२-७-१) इति समुखयश्रवणात्॥ ७॥

उपगुह्णात्यपाम्पेस्र्गिनः पशुरिति॥ ८॥

(३)मन्त्रद्वयेनाइवस्य मुखे ॥ ८॥

किपिञ्जलादीनुत्सृजनित पर्यगिनकृतान् ॥ ९॥ देवतामुद्दिरयोदिस्य नियोगकमेणोत्सर्गः॥ ९॥

हिरण्यवासोधीवासे व्वदवसंज्ञपनम्॥ १०॥

"वासोऽधिवासः हिरण्यमित्यद्वायोपस्तृणन्ति" (श० ब्रा० १३-२-८-१) इति वचनात् । तृणमपि प्रवर्तत एव, (४)अदृष्टार्थत्वात् ॥१०॥ (५)परिपशन्ये हुत्वा प्राणाय स्वाहेति तिस्रोऽपराः॥११॥

- (१) "वसन्ताय किपञ्जलान्" (वा० सं० २४-२०) इत्यादीन् "विश्वेषान्देवानाम् पृषतः" (वा० सं० २४-४०) इत्यन्तान् त्रयोदशः त्रभ्योदशः त्रभ्योदशः त्रभ्योदशः त्रभ्योदशः त्रभ्योदशः त्रभ्योदशः व्यादशः व्यादशः व्यादशः व्यादशः व्यादशः विश्वेषाः व्यादशः विश्वेषाः विश्वेष
- (२) अद्भयस्त्वीषधीभ्यः० (वा० सं० ६-९) इति प्राकृतेन मन्त्रे ण, ''वायुष्ट्वा०'' (वा० सं० २३-१३, १४, १५, १६) इत्यारभ्य ''तत्र त्वा देवः सचिता दधातु'' इत्यन्तेन कण्डिकाचतुष्ट्यात्मकेन वैकृतेन आश्वमेधिकेन मन्त्रेण च अश्वप्रोक्षणं करोति ।
- (३) अपां पेकः० (बा० सं० ६-१०) इति प्राकृतेन मन्त्रेण "अ-ग्निः पशुः"० (बा० सं० २३-१७) इति वैकृतेन च प्रोक्षणीः अश्वमुखे उपगृह्णाति ।

(४) पूर्व' तृणं, तदुपरि वासः, तदुपरि अधिवासः, तदुपरि हिरण्यम्, तदुपरि अश्वस्य संज्ञपनिमत्यर्थः।

(५)-परिपशब्ये—स्वाहा देवेभ्यः, देवेभ्यः स्वाहा इति हे आहुती हुत्वा, आहुती जेहोति ॥११ ॥ वाचयति (१)पत्नी नेयन सस्ते ऽस्य इति ॥ १२ ॥ मन्त्रसमुख्यः ॥ १२ ॥

(२)अश्वं जिस्तिः परियन्ति पितृवन्मध्ये गणानां वियाणां निशीनामिति ॥ १३ ॥

"गणानान्त्वा" इति त्रिः प्रदक्षिणम् । "त्रियाणाम्" इति त्रिरप्रद् क्षिणम् । "निधीनान्त्वा" इति च प्रदक्षिणम् । "वसो मम" इति च सः वैत्रातुषद्गः, तुल्ययोगात् ॥ १३ ॥

प्रसालितेषु महिष्यइवसुवसंविद्यात्याहमजानीति ॥ १४॥

प्रश्नािकतेषु पशुषु महिषी अश्वमुपसंविद्याति "आहमजािन" (३)इ-त्यनेन मन्त्रेण। "निष्ठितेषु पान्नेजनेषु महिषीमश्वायोपनिपादयन्ति" श॰ त्रा॰ १३-५-२-२) इति वचनात्॥ १४॥

अधीवासेन प्रच्छाद्यति खर्गे लोकऽइति ॥ १५ ॥ भश्वमहिष्योदपरि वासो ददाति ''स्वर्गे लोके'' (४)इत्यनेन मन्त्रेण ॥ १५ ॥

अरविशादनमुपस्थे कुरुते वृषा वाजीति(६) ॥ १६॥

^{&#}x27;प्राणाय स्वाहा॰' (वा॰ सं॰ २३-१८) इत्याद्यास्तिस्र आहुतीर्जुहोति । एकामभ्वसंत्रपनस्य आदौ चतस्रोऽन्ते इति महीघरः ।

⁽१) सर्वाः परनीः पशुशोधनाय पान्नेजनीहरूताः पशून् प्रतिनयन् "नमस्तऽ आता ना०" (वा० सं० ६-१२) इति प्राकृतस्मन्त्रम्, "अस्वे ऽश्रम्बिके" (वा० सं० २३-१८) इति आश्वमेधिकं च वाचयतीति ।

⁽२) सर्वाः पत्यः पान्नेजनहस्ता एव प्राणशोधनात्प्राक् अश्वं त्रिक्तिः परियन्तिः, मध्ये पितृवत् अप्रदक्षिणं परियन्ति त्रिभिर्मन्त्रैः। ''वसो मम" इति त्रिष्वपि अनुषङ्गः। ततश्चैवं प्रथमं "गणानाम्" (वा० सं० २३-१९) इति त्रिः प्रदक्षिणं परियन्ति। तत्र सक्तमन्त्रेण विस्तृष्णीम्। ततः "प्रियाणाम्" इत्यप्रदक्षिणं त्रिः, 'निधीनाम्' इति प्रदक्षिणं त्रिः, एवं नवकृत्व इति।

⁽३) शोधितेषु पशुनां प्राणेषु "आहमजानि०" (वा०सं० २३-१९) इति पत्नी अश्वसमीपे शेते ।

⁽४) स्वर्गे लोके (वा० सं० २३-२०)

⁽५) बृषा व्वाजी० (वा० सं० २३-२०)

"निरायत्याद्वस्य दिवनं सहिन्युपस्थे निधनं" (शः श्रा०११-५-२-२) इति वचनात्। 'महिन्युपस्थ' इति वचने न समासोऽयप्। कृत पतत् १ षष्ट्रचश्रवणात्।

ननु समासलक्षणेन लुप्ता षष्ठी। नैतदेवम्-अश्वतां षष्ठीं करणः वित्वा लोपे। ब्यावर्णयितव्यः । महिष्या एव पुनः कर्तृत्वे एष दोषो न

मर्वात ॥ १६ ॥

(१)उत्सक्थ्या इत्यद्वं यजमानोऽभिमन्त्रयते ॥ १७॥ अध्वर्युमी भृदिति 'यजमान'ग्रहणम्॥ १७॥

अध्वर्धेत्रस्रोद्गातृहोतृक्षत्तारः कुमारीपत्नीमिः संव-दन्ते यकासकाविति दश्चर्यस्य द्वाभ्यां द्वाभ्याः हथे हथे इसावित्यामन्त्र्यामन्त्र्य॥ १८॥

अध्वर्थादयः कुमारीपलीभिर्यधासंख्येन सम्बदन्ते "यकासकी' (२)इति दश्चर्य 'द्वाभ्यां द्वाभ्यासृग्भ्यां ह्ये ह्येऽसी' इति पूर्वतरः मामन्त्र्यामन्त्र्य ॥ १८ ॥

सानुचर्यः प्रत्याहुः॥ १९॥ अनुचर्य एकेषाम्॥ २०॥

अतश्च विकरूपः ॥ २०॥

महिषीमुन्थाच्य पुरुषा दिधिकाडण[३] इत्याहुः ॥ २१ ॥ उत्थापनं च पत्या अनुचरीकर्तृकसः। "उत्थापयन्ति गदिषीं ततः स्ता यथेतं प्रतिपरायन्ति" (श० ब्रा० १३-५-२-९) इति श्रुतेः। "अथेतरे सुरिममतीमृजमन्ततोऽन्वाहुः"(श० ब्रा० १३-५-२-९) इति ॥ २१॥ इति विशेऽध्याये षष्ठी कण्डिका।

तिस्रः पत्न्यो ऽसिपथान्करुपयन्त्यश्वस्य सुचीभि-लींहराजतसीवर्णीभिर्भणिसंख्याभिर्गायत्रीत्रिष्टुविति ब्राभ्यां ब्राभ्याम् ॥ १ ॥

⁽१) उत्सक्थ्याऽ अवगुदम्० (वा० सं० २३-२१)

⁽२) युकासको० (वा० सं० २३-२२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१)

⁽३) द्धिकाम्णः० (वा० सं २३-३२)

महिष्याद्याक्तिकः पत्नये। ऽसिमार्गान्कद्वयान्तः । अश्वस्य सूचीः भिर्माणसंख्याभिरेकशतेनैकशतेन । तास्त्र छोहराजतसीवण्यों भवन्ति । 'गायत्रीत्रिष्टप्' (१)इति द्वाभ्यां हास्यायुग्ध्याम् ॥ १॥

रजतस्वर्णसीसाभियी मन्त्राज्ञानात् ॥ २ ॥

'वा' शब्दः पक्षव्यावृत्ती । न लीहरजतसीवण्यों भवन्ति राजतसुः वर्णसीसाख्या भवन्ति । कुत पतत् ? मन्त्राम्नानात् । मन्त्रे हि रजताः हरिणीः सीसा (२)इति च दृश्यते । तेन लीहराब्दस्य ताम्रमात्रविः पयत्वात् मन्त्रवर्णेन व्यवस्थापन् युक्तमिति सीसादिमय्यो भवन्ति ॥२॥

(३)सोवणीसिरहवः॥ ।॥

भवति ॥ ३॥

(४)लोहाः पर्वङ्गवाणाम् ॥ ४ ॥

अलयो भवन्ति ॥ ४ ॥

आपसा इतरेपान् ॥ ५॥

इतरेषां पश्नामायसा (५)असया सवन्ति ॥ ५ ॥

अइवं विशास्त्यनुवाकेन कस्त्वा च्छयतीति(६)॥ ६॥

विशसनमवदानकालीनम् । विशसनशन्दस्य तत्र द्रष्टार्थत्वात् । "विशास्ति पशुमन्यः" (का० श्ली० ६-७-१) इति । वपाकालीनं वा

⁽१) गायत्री त्रिष्टुप्० (वा० सं० २३-३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३-) इति षड्चे द्वाभ्यां द्वाभ्यामृत्भ्यां महिष्याद्यास्तिम्नः पत्न्यः ताम्ररजतसुवर्णमयीभिः प्रत्येकमेकाधिकशतसंख्याभिः सुचीभिः अश्वाङ्गे असिपथान् करुपयन्ति । शासस्य सुखप्रवेशाय स्चीभिः वितुद्य वितुद्य अश्वस्य त्वचं जर्जरोकुर्वन्ति ।

⁽२) रजता हरिणीः सीसा० (वा० सं० २३-३७)

⁽३) सुपर्णपरिष्कृतासिरित्यर्थः । न हि केवलसुवर्णमयस्य छे-दने सामर्थ्यं भवति, मृदुत्वात् इति देवयान्निकः।

⁽४) ठौहास्ताम्रपरिष्कृताः। तथैव विशसनसामर्थ्यात् । यदि तु ताम्रहिरण्यगर्भघारा एव स्युः ततो विशसनमेव तैः कर्तुं न शक्यते इति देवयात्रिकः।

⁽५) अयोविकाराः न तु तत्परिप्कृताः।

⁽ ६) कस्त्वा SSच्छ्यति० (वा०सं० २३-३९,४०,४१,४२,४३,४७) इति षड्चेन अनुवाकेन अध्वर्युः अध्योदरं पाटयति मेदस उद्धरणाय।

तत्रापि हि विशसनशन्दो भवति । शसिहिंसार्थः । तत्रापि हि हिसा विद्यत इति । प्राथम्याच्य वपाकार्ळानमेव ॥ ६ ॥

मेदोऽस्योद्धरान्ति चपार्थे ॥ ७ ॥

अस्थाऽश्वस्य वपाकार्ये मेदो गृह्यते । कार्यापस्या चात्र धर्मः प्रवृत्तिः ॥ ७ ॥

लोहितं चास्य श्रपपन्ति ॥ ८॥

'अस्य' इत्यद्वस्य ॥ ८॥

प्राजापत्यवपानामुत्तरतः श्रपणः होमो हविषश्च॥ ९॥ आहवनीयस्योत्तरतः श्रदणः होमश्च। तथा हविषः॥ ९॥ प्राम्वपाहोमाद्धोताध्वर्यं च सद्सि संवदेते चतस्रामः

कः स्विदेकाकीति पूर्ववत् ॥ १०॥

वपाहोमान्पूर्वं स्वाहाकृत्युत्तरकालं होताऽध्वर्युश्च सदासे सम्बदेते "कः स्विदेकाकी" (१) एति चतस्त्रिक्तिमः । 'पूर्ववत्' इति उक्तिप्रत्युः क्या । 'शृतासु वपासु स्वाहाकृतिभिश्चरित्वा प्रत्यञ्चः प्रतिपरेत्य सदिस ब्रह्मोद्यं वदन्ति पूर्वया द्वारा प्रपद्य यथा धिष्णयं ब्युपविद्यन्ति" 'स्त होताऽध्वर्यु पृच्छति" (श० ब्रा० (३-५-१-१९, १२) इति श्रुतेः । यद्व सुत्रे नाभिहितं तच्चशब्देन लभ्यते 'प्रत्यञ्चः प्रतिपरेत्य' ए- वमादि ॥ १० ॥

ब्रह्मोद्गातारौ च पृच्छा।म त्वेति ॥ ११ ॥ 'च' शब्दा(२)च्चतस्मिक्तंग्मिशक्तिप्रत्युक्त्या ॥ ११ ॥ युनः पूर्वावपरेणोत्तरवेदिं का स्विदासीदिति(३)॥ १२ ॥ सम्बदेते । 'पूर्वी' इति होताध्वर्यू ॥ १२ ॥

उत्तरौ च कत्यस्येति ॥ १३ ॥ 'च' ब्रब्दात्संबदेते चतस्रभिरेव(४) ॥ १३ ॥

⁽१) कः स्थिदेकाकी० (वा० सं० २३-४५, ४६, ४७, ४८)

⁽२) पृष्ठछामिस्बा० (बा॰ सं० २३-४९, ५०, ५१, ५२)

⁽३) ततः सदसो निष्कम्य द्दविर्घानस्य पुरतः उत्तरवेदेः पश्चा-दुपविश्य पूर्वोक्तौ होताध्वयूं "का स्विदासोत्०" (वा० सं० २३-५:, ५४, ५५, ५६) इत्यादिचतस्रभः ऋग्मिः सम्बदेते इत्यर्थः ।

⁽ ध) कत्यस्य० (बा० सं० २३-५७, ५८, ५९, ६०)

यजनानोऽध्वर्युं (१)पृच्छामि त्वेति ॥ १४ ॥ (२)इयं वेदिश्यिष्वर्युः ॥ १५ ॥

प्रत्याह ॥ १५॥

सर्वेहुतेन महिम्ना चर्ति (३)यस्ते ऽहिति जहोति ॥१६॥ 'महिम्ना' इति प्रहस्य संज्ञा ॥ १६॥

अञ वा ग्रहणम् ॥ ११॥

''ढिदिते ब्रह्मोद्य" इति प्रकृत्य "अध्वर्धुर्हिरणमयेन पात्रेण प्राजापः त्यं महिमानं प्रहं गृह्णाति" (द्या० बा० १३-५-२-२३) इति श्रुतेः । तः तश्चात्रेव ब्रह्मणम् । पूर्व सामान्यश्चतेरध्यवस्तितम् ॥ १७ ॥

(४) वपाभिश्चरति ॥ १८ ॥

वपाप्रचारं करोतीत्यर्थः॥ १८॥

अत्र कुरुवतूपररोहितादिसिर्गुणशब्दैश्चोदितानां पश्नां द्रव्यं प्रति सन्देष्टः किं जातीयाः पश्च इति । जातिशब्देन चोपलक्षणं प्रकृतौ कतः मिहापि तद्वदेव कर्तव्यमिति । अत इद्मुच्यते-अन्वयाव्छागा पत इति । ततश्च तच्छव्देनोपलक्षणिनःयेवं प्राप्त आह—

छागोस्रमेषाः पद्दसिधानाच्यपालिङ्गम् ॥ १९ ॥

'छागोस्रमेषा' एते पश्चो यथालिङ्गम्। येन येन लिङ्गेन यो यः पशुलिङ्ग्यते अवगम्यते स स मत्येतव्यो न सर्वे छागा इति। तेन रोहितलिङ्गेन गौर्महीतव्यः। तूपरत्वेन छागः, कुरुवलिङ्गेन मेषः। कुत एतत् ? पश्चभिधानात्। एते हि विशिष्टजातिव्यविष्ठिन्नद्रव्यगतगुः णामिधायकाः, न द्रव्यमानगतगुणाभिधायकाः इति। ततश्चोस्रादिशब्दै- हपलक्षणं कर्तेव्यमिति।

- (१) पृच्छामि स्वा० (वा० सं० २३-६१)
- (२) इयं ब्वेदिः० (वा० सं० २३-६२)
- (३) युस्तेहरसंवरसरे महिमा० (वा० सं० २३-२)
- (४) एवं प्रयाजशेषेणाभिघारणान्ते वैकृतं कर्म विधाय अधुना प्राकृतप्रवृत्त्यर्थमाह्-महिमग्रहहोमानन्तरमध्वयुंः वपाभिश्चरति। प्रथम्ममेकादशिनीपशुनां वपाभिः, ततः अश्वत्परगोमृगःणां वपाभिः तन्त्रेण। ततः क्रमेण पृथक्-पृथक् 'कृष्णश्रीव ऽथाग्नेथोरराष्टे' इत्यादीनां 'श्वेताः सौथां' इत्यन्तानां वपाभिश्चरति। अयमेको वपाचार पृश्चः। अस्यानग्ने वश्यति इति देवयाज्ञिकः।

यदि रोहितादयः शब्दाः पश्वामेश्रायकाः ततस्तैरेवोपलक्षणं युक्तं नोस्नादिभिरिति । एवं च विधिशब्दस्य 'मन्त्रत्वे भावः' इति न्यायातुः प्रहो भवति । कोऽसौ न्याय इति चेत् ? मन्त्रस्य द्यामिहितार्थप्रकाशः कत्वमुदितम् । श्रभिधानञ्ज रोहितादिभिरिति । एवं प्राप्त उच्यते । न, एतद्युक्तम् ॥ १९॥

कस्मात् १

गुणवचनाचोदनाचाब्दस्य ॥ २० ॥

यस्माद् गुणवचनाश्चोदनाशब्दाः। न च प्रकृतौ गुणशब्देनोपलक्षः णं कृतम् ।

निवदानीमेबोकं यथालिक्षं पद्यसिधायका रो।हितादयः राज्दाः, द्वानीं गुणवचना इति विरुद्धमुख्यते। नै तद्धिरुद्धं, रोहिनादिराज्दा हि स्वार्थमिधाय तद्धति द्रव्यविद्येषे वर्त्तन्ते न गुक्कदाब्दादिवद् द्रव्यमात्रे। कुत एतत् ? गोद्रव्य एव प्रयोगात् प्रत्ययाच । तेन गुणवचन त्वेऽिप स्रति द्रव्यामिधायकत्वमविरुद्धम्। यथा कलभिक्सोरवर्कराः द्यः शब्दा वयोविद्येषवचना अपि सन्तो विशिष्ठजातिव्यवविष्ठक्षः द्रव्यगतं वयोऽभिद्धाति, एवञ्च स्रति छागोस्त्रमेषशब्दैरेवे।पलक्षणं युः किमिति।

नमु च रोहितादिशन्दानां जात्यभिधायकत्वे गोऽन्यजशन्दैरप्युप स्कक्षणं प्राप्तोति । तेऽपि हि तन्जात्युपस्कक्षणसामर्थ्ययुक्ता इति । ततः किम् १ स्नागेस्रमेषशन्दानासुपस्कक्षणसामर्थ्यसुपनीयते । पतैरेवोपस्क क्षणमिति न नियोगतः प्राप्तोति ॥ २०॥

अत्रोच्यते-

प्रकृतो चावचनात् ॥ २१ ॥

प्रकृती 'अग्निषोभीयं पशुमालभेत' इति चोदनायां छागशब्देनोपः लक्षणं दृष्टम् । तथा 'गौरनृष्यध्यः' इति चोदनायामुक्शशब्देन शाः खान्तरे । तथा काठके छौत्रामण्यामृषभेण सह विकल्पकपता पद्ध्यते मेषस्य, तत्र च भेषशब्देनोपलक्षणं दृष्टम् । तेनेह चिन्त्यते—तज्जातीयः दृष्याणि कि तैरेव शब्देवपलक्षणं क्रियताम्, उत शब्दान्तरेरिति । तरेवेति युक्तकपत्रम् । ते ह्यन्यत्र दृष्याणामुपलक्षणं कुर्वाणा दृष्टाः, इद्दापि च तज्जातीयान्येच दृष्याणीति । तक्माचैरेवोपलक्षणमिति । अत आचार्येण साधृकं 'छागोस्त्रमेषाः पश्वभिधानात्' इति । अपि चैवं कियमाणे वैदिकमेवोपलक्षणं भवति, इत्रधा लौकिकं स्यात । तस्मा-

च्छागोस्रमेषराव्दैरेवापलस्माम् । अपि च निगमेष्वेवं द्रव्येषु छागोस्र मेषराव्दाः प्रयुक्ता दृश्यन्ते । न च निगमकारस्य कश्चित्प्रतारणीयः । अतस्तत्स्मरणमपि समुख्तवाद्धिरोधास्य प्रमाणमेवेति ॥ २१॥

(१)एकविंदातिप्रदानानेकेऽन्यक्चातुर्मास्यदेवताः

पितृत्रैयम्बकपुनहक्तवर्जम्॥ २२॥

(चातुर्मास्यदेवतानां हुत्वा दुःवा देवतानाम् इति ।) (२) "पकवि । श्राति चातुर्मास्यदेवता अनुदुःयैकवि । श्रातिचा ऋवा प्रचरेयुः" (श्रा० ब्रा० १३-५-३-४) इति अतेः ॥ २२ ॥

(३)ऐन्द्राञ्जनैश्वदेवकायानेके ॥ २३ ॥

कमेणेन्द्रामस्य वपारहत्वा इतरासां होमः । प्रवमपि हि अ्यते "पेन्द्रामस्य वपायार हुतायां तद्ग्वितरा जुहुगुः" इति । तथा "वैश्वदे वस्य वपायारे हुतायां" तथा "कायस्य वपायारेहुतायां तद्ग्वितरा जुहुगुः" (दा० बा० १३-५-३-१,२,३) इति ॥ ॥ २३ ॥

देवतातन्त्रेण तु(४) ॥ २४ ॥

- (१) एके अध्वत्परगोसृगव्यतिरिकानां ''कृष्णग्रीवऽ आग्नेयो रराटे॰'' (वा॰ सं॰ २४-१) इत्यादीनां "वृतेताः सौयांः' (वा॰ सं॰ २४-१९) इत्यन्तानां सर्वपश्नां वपा एकविशितधा कृत्वा तेषां विभागानां क्रमेण पितृत्रयम्बकपुनदकवर्ज चातुर्मास्यदेवता एकविशितिः संख्या अनुदुत्यानुपूर्वमुद्दिश्य तासामन्त्रक् अन्वश्चि अनुसारीणि तद्देवतानि एकविशितसंख्यानि प्रदानानि कुर्वन्ति। सुत्रे 'प्रदानान्' इति व्यत्ययेन पुलिङ्गनिर्देशः प्रदानानीत्यर्थः।
 - (२) कंसानार्गतं नास्ति चर्लिन पुस्तके।
- (३) एके अग्रिमसर्वपशुनां क्या पेन्द्रासवैश्वदेवकायानतु ज्ञह्वति । ऐन्द्रास्तो वारुणप्रधासिकः । वैश्वदेवो वैश्वदेवपर्वसम्बन्धी । कायश्च वारुणप्रधासिकः । अयमभिप्रायः आदित आरभ्य वारुणप्रधासिकः ऐन्द्रास्रपर्यन्तं क्रमेण पृथक्षृथक् वपाप्रचारं इत्वा पेन्द्रासस्य वपायाः हतायामविशिष्टाः सर्वा वपा अनुहोतव्याः । अथवा कायस्य वपामनुः सर्वा वपा होतव्याः । अनयोरि पक्षयोः प्राचीनवपानां पृथक्षृथक् क्रमेण प्रचारः । एतेषि त्रयः पक्षा वाचनिकाः ।
- (४) तु शब्दो अस्यपक्षस्य स्वश्रत्यिममतत्वेन पक्षान्तरेभ्यो विश् शिष्टत्वस्वनार्थाः । देवतानां तन्त्रं सङ्दुबारणम् । तच "विश्वेभ्यो देवेभ्यः" इत्यादिरूपम् । "विश्वे वै सर्वे देवाः" इतिश्रतेः । तेनायमर्थः-

अत्र सह प्रश्नेपे याः समानदेवतास्तासां तन्त्रेणोबारणं, सक्त्यः योगोदेव कार्यसिद्धेः ॥ २४ ॥ द्यवस्थितास्वपि तन्त्रेण प्राप्त आइ—

(१) न कालभेदात्॥ २५॥

भिन्नो हि तत्र कालः देवतान्तरव्यवधानात् ॥ २५ ॥ चपान्ते द्वितीयेन प्रवेवस्यस्ते रात्राविति जुहोति ॥ १६॥ वपाहोमान्ते द्वितीयेन महिम्ना चराति "यस्ते रात्रो" (२)इति जुहो ति । पूर्ववट्छव्देन सर्वहोमो लम्यते ॥ २६ ॥

रूळेऽठ्वरोषश्चपणम् ॥ २७ ॥
'कर्तव्यम्' इति रोषः । शूलस्य चाप्वैत्वात्मोक्षणं न भवति ॥ २७ ॥
स्पर्णणप्रभृत्यापर्वासाद्नात् कृत्वा ॥ २८ ॥
इति विशेऽध्याये समग्री कण्डिका ।

लोहितमवद्यति गोसृगकण्ठाञ्चकाप्तयोरः यसम्ये चरौ ॥ १॥

अश्वस्य लोहितमवद्यति गोमृगकण्डेऽश्वराफे अयस्मये चरौ ॥१॥ वेतस्य हार्खास्य प्राजापत्यानाम् ॥ २॥

'अवद्यति' इत्यचुवर्तते । प्राजापत्यानां चेतसशासास्ववद्यति, 'चेतः सकटे प्राजापत्यान्ससञ्जिनोति' इति वचनात् ॥ २ ॥

देवतातन्त्रेण सर्ववपानां प्रचारो भवति। "विश्वेभ्यो देवेभ्यः" इत्येवं सर्वासां देवतानां तन्त्रेणोचारणं कृत्वा सर्ववपानां सकृदेव प्रचारः सहैव कर्तव्यः।

(१) एकादिशन्योः पशूनां 'कृष्णग्रीवा०' आदिभिः सह एकतन्त्रेण प्रचारो न भवति । कुतः ? कालभेदात् । तत्कुतः ? अश्वादिभिव्यंवधाः नात् । तेषां च पृथक्षवारवचनात् । अतस्तद्वपानां प्रथमं पृथक् पृथक्षवारः । तेषामपि मध्ये द्वयोरेकदेवत्ययोः तन्त्रेण प्रचारः । ततोऽश्वादीनां त्रयाणां, कृष्णग्रीवादीनां सर्वेषां तन्त्रेणेति सर्वे निरवद्यम् ।

(२) युस्ते रात्री० (वा० सं० २३-४)

अश्वस्य वा ॥ ३ ॥

वेतस्याखास्ववद्यति, नान्येषां पश्नाम्। एवं हि श्रूयते-"प्ल-श्रशाखास्वन्येषां पश्नामवद्यन्ति, वेतस्यशाखास्वश्वम्य" (श्र० श्रा० १३-५-३-८) इति। यत्तु शाखान्तरीयं वचनं "वेतस्कटे प्राजाप-त्यान्सिविनोति" इति। तद्देन विद्योषे स्थाप्यते। अद्दोऽपि हि प्राजापत्य एवेति॥ ३॥

(१)हिवष्टकृष्टनस्पत्यन्तरे शूल्य^ह हुत्वा देवताऽ-

(१) स्विष्टक्रद्रनस्पत्योरम्तरे वनस्पतियागानम्तरं स्विष्टक्र्यागाः त्पूर्वं शूले श्रपितं मांसं 'प्राजापत्योऽश्व' इति वचनात्प्रजापतये हुरवा 'अमुष्मे स्वाहा' इति प्रतिदेवतं शादादित्वगम्तेभ्यो देवताश्वाङ्गेभ्यो देवः ताभ्योऽश्वाङ्गेभ्यश्च घृतंजुहुयात् । द्रय्यानुकौ

"आज्यंद्रव्यमनादेशे हहोतिषु विश्वीयते"

इति घृतस्योक्तत्वात् । तत्र "शादन्दद्भिः" (वा० लं० २५-१) इत्यादि "पृथिवीं त्वचा" (वा० लं० २५-९) इत्यन्तः संहितामागो ब्राह्मणं न मन्त्राः । शादादयो देवाः, दन्तायङ्गानि । तत्रश्चतुर्गृहीत-माज्यं गृहीत्वा 'शादाय स्वाहा' 'दङ्गयः स्वाहा' 'अवकाभ्यः स्वाहा' 'दन्तमूलेभ्यः स्वाहा' इत्यादि 'पृथिन्ये स्वाहा' 'त्वचे स्वाहा' इत्यन्तं जुहुयादित्येकः पक्षः शाखान्तरोदितः । स्वपक्षे तु 'शादन्दद्भिः प्रीणामि स्वाहा' इत्यादिहोममन्त्राः । देवता मोक्नी द्वितीयया निर्दिश्यते । अश्वाकं भोग्यं तृतीयया करणविभक्त्या निर्दिश्यते । क्वचित्केवला देवतैव यथा—'शुक्काय स्वाहा' 'ऋणाय स्वाहा' इति । क्वचिदन्यविभक्त्येव द्वद्वेवतयोनिंदेशः, यथा-'अग्नेः पक्षतिर्व्यायीनिंपक्षतिः' इति । तथाच श्रुतिः "शादन्दद्भिरवकान्दन्तमूलेरित्याज्यमवदाना कृत्वा प्रत्याख्यायं देवताभ्य आहुतीर्ज्ञहोति या पव देवता अपिभागास्ता भागधेयेन समर्थ्यतिः' (श० ब्रा० १३-३-४-१) इति । अस्यायमर्थः—शादं नाम देव-मश्चस्य द्विद्वर्दन्तैः प्रीणामीति शेषः । स्वाहाकारो दानार्थः ।

ततश्च "शादं दिद्धः प्रीणामि स्वाहा" इति । एवमन्यान्यपि योज्यानि । आज्यमवद्गानि कृत्वा आज्यमेवाश्वाङ्गत्वेन परिकल्प्य प्रस्थाख्यान्यमवद्गनं प्रति शादादिदेवता आख्यायाख्यायाज्याहुतीर्ज्ञहोति सङ्गिल्पताश्वाङ्गमावा घृताहुतीः शादादिश्यो ददाति । एवं कुर्वत्रपिन्मागाः कल्पितमागास्ता मागेन समर्थयति प्रोणातीति महीधरः।

चवाङ्गेभ्यो जुहोत्यमुष्मै स्वाहेति प्रतिदेवत् श्वाद्प्रभु-तित्वगन्तेभ्यः ॥ ४ ॥

स्विष्ठह्मनस्पत्यन्तरे शूरुषः हुत्वा, शूले श्रिपतं हुत्यं तद्धुत्वा हुद्दोतित्वाचास्योपविष्टहोमः। "प्राजापत्ये। ऽद्दाः" इति च प्रजापतर्देव तात्वम् । 'देवताभ्योऽश्वाङ्गेभ्यश्च जुहोति शादप्रभृतित्वगन्तेभ्यः' 'अम्मुष्मे स्वाहा' इति चतुर्गृहीतमाज्यम्। "आज्यमवदाना हृत्वा प्रत्या ख्यायं देवताभ्य आहुतीर्जुहोति" (श० ब्रा० १३-३-४-१) इति वचनात्॥ ४॥

(१)विमुखाच परेभ्यः ॥ ५॥

विमुखोऽध्येतुप्रसिद्धः" उप्रश्च भीमश्च" (वा० सं० ३-९७) इत्ययम् । ततः परं ये देवताविशेषास्तेभ्यश्च जुहोति "अग्निः हृदयेन" (वा०सं० ३९-८) इत्येवमादिभ्यः ॥ ५ ॥

(२)मानो मित्र इति च प्रत्यृचमनुवाकाभ्याम् ॥ ६ ॥ जुहोति॥ ६ ॥

(३)अन्त्यां चावापृथिवीयाम् ॥ 🤊 ॥

"द्यावापृथिब्यासुत्तमामाहाति जुहोति" (रा० ब्रा० १३-३--४-१) इति वचनात्॥ ७॥

(४)स्विष्टकृदन्तेऽग्निभ्यः स्विष्टकृद्भयः स्वाहेति ले।-हितं जुहोति यथावत्तम् ॥ ८ ॥

- (१) उप्रश्चेति मन्त्रो विमुखः। ततः परेम्यो देवताश्वाक्षेभ्यः 'अग्निः हृदयेन" (वा॰ सं॰ ३९-८) इत्यादिभ्यश्चतुर्गृहीतमाज्यं गृही-त्वा जुहोति। तत्रापि पूर्ववत् पक्षद्रयम्-'अग्नये स्वाहा' 'हृदयाय स्वाहां 'अग्नत्ये स्वाहा' 'हृदयाय स्वाहां 'अग्नत्ये स्वाहा' 'हृदयायाय स्वाहा' इत्यादीति कात्यायनादीनामिम्प्रा-यः। 'अग्निः हृदयेन प्रीणामि स्वाहा' इत्यादि हरिस्वामिमते प्रयोगः। ततः 'अग्निः हृदयेन' इत्यादीन् 'विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा' इत्यन्तान् जुहोति।
- (२) मा नो० (बा० सं०२५-२४) इत्यादि षोडशकण्डिकात्म-केनानुवाकद्वयेन पूर्ववचतुर्ग्रहोतमाज्यं गृहीत्वा षोडशाहुती र्जुहोति।
- (३) "द्यावापृथिवीभ्याणे स्वाहा" (वा० सं० ३९-१३) इति च रमाहुति जुहोति इति स्वार्थः ।
- (ध) गोम्रगकण्ठेन प्रथमाहुतिम्, अश्वदाफेन हितीयाम्, अयस्मये-न चरुणा तृतीयाम्। तदाहुतित्रयं स्विष्टकदनन्तरमेव जुहोतीत्येकः पक्षः।

यस्मिन् यस्मिन्नवत्तनेव जुहोति, मा भूवजुहा होम इति 'यथा-वत्त' प्रहणम् ॥ ८ ॥

अञ्चहाफेन वाडनुवाजान्ते ॥ ९ ॥ जुहोति । 'वा' शब्दो विकल्पार्थः(१) ॥ ९ ॥ अयस्मयेन पत्नीसंघाजान्ते ॥ १० ॥ जहोति ॥ १० ॥

(२)इमानुकसिति च द्विपदाः ॥ ११ ॥

"द्विपदा उत्तमा जुहोति" (श॰बा०१३-३-६-५) इति ववनात् ॥११॥ अतिहास्र उत्तमः ॥ १२ ॥

उत्तममहरतिरात्रसंस्थं भवति । नतु चाहीनत्वाद्तिरातः प्राप्त एव । किमधे पुनरुवन्ते ? गवादीनां नाम्ना स्वसंस्था मा भुवन्निति पुनरुव्यते ॥ १२ ॥

सर्वस्तोमो उपोतिगौरायुरभिजिबिष्यजिन्महा-

त्रतमसंगीमां वा ॥ १३ ॥

पते चाहविंशेषा भवन्ति । असीर्थामी वेति ॥ १३ ॥ असोर्थामे विशेषमाह—

अप्तोर्घामे तिरोऽहिथिभ्या राजिपर्याय उत्तमः ॥ १४॥ (३)तिरोऽहनीयभ्योऽवसितेभ्य उत्तमी राजिपर्यायश्चतुःस्तोत्रो भवति॥ १४॥

अग्निष्ठे प्राजापत्यी च ॥ १५ ॥

प्राजापत्यो उत्तमाहःसंयोगन । उत्तमसहः प्रकृत्य हि श्रूयते—"चतुर्विश्वाति त्वेवैतान् गव्यानाळमेत" (रा॰ ब्रॉ॰ १३-५-३-११) इति
वचनात् । एवं चान्यत्राप्तीर्थासस्यातिरात्रिका एव कतुपश्चवस्तिहकारत्वात् ॥ १५ ॥

⁽१) प्रथमाहुति स्विष्टकद्नन्तरमेव हुत्वाऽनुयाजान्तेऽश्वराफाहुति जुहोति इति विकल्पः।

⁽२) इमा नु कम्० (वा॰ लं॰ २५-४६, ४७) इति कण्डिकयोः षड्यांनि सन्ति तैः षडाहुतीर्जुहोति इति सुत्रार्थः।

⁽३) तिरश्च तदहश्च तिरोऽहः, तरिमन राज्यन्तहितेऽहिन भवाः सोमास्तिरोहीयाः तेभ्यः।

अवस्थेष्ट्यन्ते ऽप्सु मानस्य पिङ्गलखलतिविक्तित्र शुः क्रस्य सूर्वनि जुहोति जुम्बकाय स्वाहेति ॥ १६॥

अवभृधान्ते ऽप्तु मग्नस्य (१)पिङ्गलस्य खलतेः। खलतिः-खल्वाटः, विक्रिघो—दन्तुरः, शुक्कः-अतिगौरस्तस्य मूर्घनि जुहोति "जुम्बकाय स्वाहा" (२)हति ॥ १६ ॥

उत्क्रान्ते यज्ञमाने पापकृतोऽभ्यवयन्त्यचरिः त्वा व्रतानि ॥ १७॥

(३)अवभृधातुत्तीर्णे यजमाने पापक्रतोऽभ्यवयन्ति अचरित्वा वतानि । प्रकान्तप्रायश्चित्तस्य चैतद्भवति । 'अचरित्वा वतानि' इत्युक्तवात् । 'पापकृत्'प्रहणेन च ब्रह्महा उच्यते ॥ १७॥

अञ्बमेचपूनाख्यास्ते ॥ १८ ॥

'अइवमेधपूता' इत्याख्यास्तेषाम्।पूता भवन्तीत्यर्थः। अपि च 'अ इवमेधावभूये स्नात्वा पूता भवन्ति' इति स्मृतेः॥ १८॥

नानाऽवभृषानि (४)वा ॥ १९ ॥ भवन्ति । 'प्रत्यहमवभृषेन चरन्ति' इति वचनात् ॥ १९ ॥

(५)कुम्भोपमारणान्तं पूर्वयोः॥ २०॥

अह्योभवति ॥ २० ॥

कुत पतत् ? द्योषे दीक्षात्रताभावात् ॥ २१ ॥

(१) पिङ्गाक्षस्य।

(२) अवभृथयागान्ते प्वंविधस्य पुंसो मूर्घनि "जुम्बकाय स्वाहा" (वा० सं० २५-९) इति मन्त्रेणाज्यं सङ्द्गृहीतं जुहुयात्।

(३) यजमाने ज उमध्यादुत्कान्ते उत्तीर्णे सित ब्रह्महत्यादिकर्तार-स्तच्छुद्धधर्ये तत्राध्वभेषावभृथसम्बन्धिनि जले अभ्यवयन्ति तत्र स्ना न्ति । द्वादशाब्दक्रच्छाचरणादिवतान्यकृत्वा ।

(४) अथवा अश्वमेघसम्बन्धीनि त्रीण्यपि सौत्यान्यहानि नानाऽः वभृधानि भवन्ति । त्रयाणामप्यहां समिष्टयज्ञरन्ते पृथकपृथक् अवस्

यो भवति ।

(५) प्रत्यहमवभृथे क्रियमाणे पूर्वयोरहोः कुम्भोपमारणान्तं कर्म भवति । "अवसृथ्यः" (वा० सं०८-२७) इति मन्त्रेण ऋजीषकुम्मस्य मजनान्तमित्यर्थः । कर्मशेषे दीक्षावतस्याभावात्। 'अवभृथस्नानेन उन्युक्तदीक्षी मवति' इत्यभित्रायः(१)॥ २१॥

सर्वे वा अतेः॥ २२॥

सर्व वा स्नानाचिप भवति । 'प्रत्यहमवसृधेन चरन्ति' इति श्रुतेः । यदुक्तं 'स्नोननोन्मुक्तदीक्ष' इति, तम्र, वचनसामर्थ्यात् । सर्वावसृधाः नत उन्मुक्तदीक्षो भवति । साम्यासो हावसृथोऽ वसृथकार्यं वर्तते । यथा—'सप्ताइं दीक्षणीयया चरति' इति साम्यासा दीक्षणीया दीक्षः णीयाकार्यं वर्तते ॥ २२॥

एकावि;शातिरन्यन्थ्याः ॥ २३ ॥

'मयन्ति' इति शेवः। अभ्यस्तद्भपमिद्मेकं कर्भ प्रकृतावेव, इत्र त्वात्॥ २३॥

उद्वसानीयान्ते भाषी द्दाति यथासंवादः, सानुचरीः॥२४॥

"उद्वसानीयायाः संऐस्थितायां चतस्रश्च जायाः कुमारीं पञ्चमीं चत्वारि च शतान्यनुचरीणां यथा समुद्तितं दक्षिणां ददाति' (श॰ बा० १३-५-४-२७) इति श्रुतेः ॥ २४ ॥

(२)कुमारीं पालागलीं चाध्वर्यवे ॥ २५ ॥ कुमारी यजमानदुहिता। एतेऽध्वर्यवे ददाति ॥ २५ ॥ अनुचरीर्वा फलाधिकारादितरासाम् ॥ २६ ॥

'वा' शब्दः पक्षव्यावृत्तो । न भागी ददाति अनुवरीरेव द्यात्। कुत पतत् ? फलाधिकाराद्भार्याणां यजमानतृत्या एवेता इति । मध्यमकं हि यजमानस्य पत्नीनां च द्रव्यं साधारणत्वाद्वोशसर्गः सहैव भवति नान्यथेति । तःकथं तर्हि वेदवाक्यं नेयम् ? चतस्रश्च जाया यः जमानश्च चत्वारि च शतान्यनुवरीणां कुमारीं पश्चमीं यथासंवादं दः श्चिणां ददाति ॥ २६ ॥

अनार्भगत्वाच ॥ २०॥

⁽१) यदि च प्रत्यहं स्नानान्तं क्रियेत ततो दोक्षोन्मोकः स्यात्। तथा चादीक्षितेनाऽहर्द्रयं कृतं स्यात्, न हि तदिष्यते। अतः कुम्भोद-मारणान्तमेव कर्तव्यं तृतीयेऽहि स्नानान्तमिति।

⁽२) कुमारी पालागलीं वाऽण्ययंत्रे दद्यादेव पुनर्वचनात् इति वाः सुदेवः । तत्प्रत्याम्नायद्रव्यं देयमिति तु साम्प्रदायिकाः ।

अपि च यथा पत्न्यो यजमानदाने ऽसमर्थाः एवं यजमानोऽपि पः स्त्रीनाम् । तस्मादनारभ्योऽयमर्थः(१) ॥ २७ ॥

द्वाद्शाहमाग्नेयः पुरोद्धादाः ॥ २८ ॥ गृहेषु कर्तव्यः । 'आन्नेय' इति न्यायस्त्रम् ॥ २८ ॥ द्वाद्यीदनो वा ॥ २९ ॥

"द्वाद्य ब्रह्मोदनानुत्थाय निर्वपति द्वादशिमवेषिभियेजत'' (शुक्रा० १२-२-६-६) इति श्रुतेः । २९ ॥

प्रत्यृतपञ्चनालभते षद् षड्वसन्तायाग्नेयानैदाः न्पार्जन्यान्मारुतान्वा मैत्रावरुणानैन्द्रावैष्णवानैन्द्रावा-र्हस्पत्यान् ॥ ३०॥

(२) प्वमिप हि श्रूयते ॥ ३० ॥

इति विशेऽध्यायेऽष्टमी कण्डिका ।

इत्युपाध्यायकर्षकृतौ काखायनसूत्रविवरणे विंदातितमोऽध्यायः समाप्तः । अद्यमेघः समाप्तः ।

⁽१) न ह्ययमर्थ आरब्धुं शक्यो यद्भार्यो ददाति इति ।

⁽२) ''अधात्तरः संवस्तरमृतुपशुभियंजते—षड्भिराग्नेयेर्वसन्ते, ष ङ्भिरेंन्द्रैग्नींक्मे, षड्भिः पार्जन्येर्वा मारुतैर्वा वर्षासु, षड्भिमञ्जावरुणैः शरदि, षड्भिरेंन्द्रावैष्णवैर्हेमन्ते, षड्भिरेन्द्रावार्ह्स्पत्यैः शिशिरे, षड् ऋतवः संवस्तरः, ऋतुष्वेव संवस्तरे प्रतितिष्ठति, षट्त्रिश्वदेते पशवो भवन्ति' (श० श्रा० १३-५-४-२५)।

पुकार्विज्ञोऽध्यायः।

पुरुषमेधस्त्रयोविश्वातिदीचोऽतिष्ठाकामस्य ॥ १ ॥

'पुरुषमेध' इति कर्मणो नामधेयम्(१)। स च पञ्चरात्रः स्यात्। "स वाऽ एष पुरुषमेधः पञ्चरात्रो यहक्रतुभेवति" (श० त्रा० १३-६-१-७) इति श्रुतेः। त्रयोविशतिद्धाः। "तस्य त्रयोविश्वातिद्धाः" (श० त्रा० १३-६-१-२) इति वचनात्। 'अतिष्ठाकामस्य' इति। सर्वाणि म्-तान्यतीत्य तिष्ठते इति 'अतिष्ठ' इत्युच्यते तत्कामस्य॥ १॥

ब्राह्मणराजन्ययोः ॥ २ ॥

भवति, न वैदयस्य ॥ २ ॥

(२)अग्निष्टोमावन्तरेणातिरात्र उन्ध्यपक्षः ॥ ३ ॥

पश्चरात्रस्याद्यन्तयोरिनहोस्रो मध्ये ऽतिरात्रः तमित उक्थ्यौ(३)। संस्थामात्रविधानाच्य सर्व एते ऽपूर्वाः । अतश्च द्वादशाहिको विध्यन्तः प्रत्येकम् ॥ ३॥

यूपैकाद्धिनी अवति॥ ४॥

(४)अत्र॥४॥

तावन्तोऽग्नीयोभीयाः॥ ५ ॥

"एकाद्शाक्षीषोमीयाः पश्चव उपवस्थं" (श० ब्रा० १३-६-१-४) इति श्रुतेः । ते च मध्यमे यूपे नियुज्यन्ते । न हात्राद्वमेधवस्प्रतियूप-श्रवणम्(५) ॥ ५ ॥

पञ्जुपाकरिष्यन्नतिराचे (६)देवसावितरिति प्र-

त्यृचं तिस्रो जुहोति ॥ ६ ॥

"स वै पश्च नुपाकरिष्यन्" इति अक्रत्य "एतास्तिस्नः सावित्रीराः हुतीर्जुहोति" (रा० बा० १३-६-२-९) इति श्रवणात् ॥ ६ ॥

- (१) अस्य चैत्रशुक्लदशम्यामारम्मो भवतीति महीघरः।
- (२) अथ सुर्यादिनान्युच्यन्ते ।
- (३) उक्थ्यौ पक्षौ पक्षाचिव उमयतो वर्तमानौ यस्येत्यर्थात्।
- (४) प्रत्यहमित्यपि चोध्यम् ।
- (५) प्रतियूपं मध्यमे वेति विकल्पः।
- (६) सकुद्गुहीतेन आज्येन ''देव सवितः॰'' (वा॰ सं॰ ३०-१,२,३) इति प्रत्यृचं तिस्र आहुतीराहवनीये जुहोति।

ऐकाद्शिनानुपाकृत्य ब्राह्मणादींश्च ॥ ७ ॥ 'च'शब्दादुपाकरोति । ''ब्रह्मणे ब्राह्मणम्'' (१)इति चैते ब्राह्म णादयः ॥ ७ ॥

नियोजनकाले(२)ऽष्टाचत्वारि¦दातमाचानाग्रेष्ठे ॥ ८ ॥ 'नियुनकि' इति दोषः॥ ८॥

इतरेष्वेकादशैकादश ॥ ९ ॥ इतरेषु(३) पकादशैकादश नियुनिक ॥ ९ ॥ द्वितीयोच्छिते शेषान् ॥ १० ॥ (४)अन्ते मा भूदिति 'द्वितीयोच्छित'प्रहणम् ॥ १० ॥ नियुक्तान् ब्रह्माऽभिष्ठौति होतृवद्नुवाकेन

(१) ब्रह्मणे ब्राह्मणम्० (वा० सं० ३०-५) एते ब्राह्मणादयः अध्यायसमान्तिपर्यन्ताः। (२) 'ब्रह्मणे ब्राह्मणम्०' इत्यादीन् "प्रकामोद्यायोपसदम्" (वा०

सं० ३०-९) इत्यन्तान अष्टाचस्वारिश्यतं पश्चनिन्छे यूपे आलमते। तत्र "ब्रह्मणे जुन्दं नियुनिक्म" इति अग्निष्ठे यूपे प्रथमं ब्राह्मणं नियुनिक

इति सर्वेषां नियोजनप्रकारो बोध्यः।

(३) अन्येषु दशसु यूपेषु एकादश एकादश पुरुषान नियुनिक ।
तद् यथा—द्वितीये यूपे "वर्णायानुरुधम्" इत्यादीनेकादश, तृतीये
"मर्यादाये प्रश्नविवाकम्" इत्यादीनेकादश, चतुर्थे "भाये दार्वाहारम्"
इत्यादीनेकादश, पञ्चमे "वैरहत्याय पिशुनम्" इत्यादीनेकादश, षष्ठे
"योगाय योक्तारम्" इत्यादीनेकादश, सप्तमे "परिवत्सराय अविजात्ताम्" इत्यादीनेकादश, अष्टमे "पाराय मार्गारम्" इत्यादीनेकादश,
नवमे "पश्चादोषाय ग्लाविनम्" इत्यादीनेकादश, दशमे "आक्कत्दाय
सभाक्थाणुम्" इत्यादीनेकादश, एकादशे "महसे वीणावादम्" इत्यादीनेकादश,

(४) प्रतियूपमेकादशस्वेकादशस्य नियुक्तेषु येऽधिका अवशिष्टा स्तान् "बीणावादम्" इत्यादीश्चतुर्दश "अतिदीर्घम्" इत्यादीनष्टी "मान् गधः" इत्यादीश्च चतुर एवं पङ्विशति पूर्वोक्ते द्वितीये एव यूपे नि-युक्त्यात्। एवश्चतत्र पूर्वनियुक्तेकादशपुरुषः सह सप्तत्रिशलपुरुषा नि-

युक्ता भवन्तीति दिक् ।

(१)सहस्राचिति ॥ ११॥

'होत्वत्' इति चळवद्भिष्टवः ॥ ११ ॥ कपिञ्चलादिवहुत्सृजन्ति ब्राह्मणादीन् ॥ १२ ॥ पर्यन्निङतानुः खजनतात्वर्धः ॥ १२ ॥

स्विष्टकृद्धनस्पत्यन्तरे युद्धपदेवताभ्यो(१) जुहोति ॥१३॥ आज्येन ॥ १३ ॥

सपुरुषमञ्चमेधवहिता।। १४॥ (३)राज्ञः ॥ १४॥

सर्वस्वं ब्राह्मणस्य ॥ ॥ १५ ॥

'अथ यदि ब्राह्मणो यसेत सर्ववेदलं दद्यात्' (रा० ब्रा० १३-६-२-१९) इति अतेः ॥ १५॥

प्रतिदेवतं तिस्रस्तिस्रोत्यन्थ्याः पञ्चोत्तः

मायास् ॥ १६ ॥

तिस्रो मैत्रावरण्यः, तिस्रो वैश्वदेग्यः, पश्च बाईस्पस्यः ॥ १६ ॥ त्रैधातव्यन्ते समारोह्यात्मलयी सूर्यसुपस्थायाह्यः सम्भृत इत्यनुवाकेनानपेक्षमाणोऽरण्यं गत्वा न प्रत्ये यात् ॥ १७ ॥

- (४) त्रेघातव्यन्ते आत्मक्षत्री सवारीहा "अद्भवः सम्मृतः०"(५) इत्यनुवाकेन सूर्वमुपस्थावारण्यमियात्, अपुनर्गृहाय । ततस्राप्रमाः न्तरप्राप्तिरियामिति ।
- (१) नियुक्तान्ब्राह्मणमित्यादिपशुन् "सहस्रशीर्षा॰" (वा. सं. ३१-१, १६) इत्यनुवाकेन पोडशर्चेन ब्रह्मा स्तौति 'होतृवत्' इति त्रिः प्रथमां त्रिरुत्तमाम् ऋगन्ते प्रणव इत्यादिशस्त्रशंसनधर्मेणेत्यर्थः।
- (२) ब्राह्मणादिपुरुषाणां या देवता ब्रह्मादयस्ताभ्यः 'ब्रह्मणे स्वा-हा' 'क्षत्राय स्वाहा' इत्यादि जुहोतीत्यर्थः ।
- (३) "विजयमध्याद्योतुः" (का० श्रौ० २०-४-२७) इत्युक्तपुरुषः वर्जिताऽप्यत्र पुरुषसहिता द्क्षिणा भवतीत्यर्थः।
- (४) त्रैधातवीष्ट्यनन्तरं गार्हपत्याह बनीयाचग्नी 'अयं ते योनि-र्ऋत्वियः०" (वा॰ सं० १५-५६) इत्यनेन मन्त्रेण आत्मनि स्वशरीरे (आस्ये कोन्डे वा) समारोह्येत्यर्थ इति देवयाहिकभाष्ये स्पष्टम ।
 - (५) अद्भयः सम्भृतः० (वा० सं० ३१-१७, २२)। का० इर

यस स्मृतिष्डयते-

प्राजापत्यां निरूप्येष्टि सर्ववेद्सद्क्षिणाम्।

आत्मन्नग्नी(१) समारोध्य ब्राह्मणः प्रवजेद् गृहात्॥ (म० स्मृ० ६-३८) इति ।

साचेयं पुरुषमेधाष्या सर्वस्वदक्षिणा प्राजापत्येष्टिस्तां निरुष्य पा-रिव्रज्यं ब्राह्मणस्य । एवं च "यावज्जीवमाग्निहोत्रं जुहुयात्" इति श्रुति-रनया श्रुत्या विकरतते । अध स्मार्चेष्टिः प्राजापत्या स्यात्तदानीं स्मृत्या श्रुतिर्वाधिता स्यात् । न चैतदिष्यते । पुरुषमेघः कथं प्राजापत्येष्टिरिति चेत् १ सन्ति द्यत्र प्राजापत्याः पश्चवस्तद्वपस्त्रीता प्राजापत्येत्युक्ता/१७॥

ग्रामे वा विवत्सन्नरण्योः॥ १८॥

"बद्यु प्राप्त विवत्सेदरण्योरग्नी समारोह्योत्तरनारायणेनैवादित्यमुः पस्थाय गृहेषु प्रत्यवस्येत्" (श॰ ब्रा॰ १३-६-२-२०) इति ॥१८॥ इत्येकविशेऽध्याये प्रथमा कण्डिका ।

सर्वमेषः सर्वकामस्य ॥ १॥

'सर्वमेघ' इति कर्मनामधेयम्, विष्यर्थवादमनत्रत्वासम्भवात्। स सर्वेकामस्य भवति ॥ १॥

दशरात्रः॥२॥

उपक्रमात्तित्वदेर्दशरात्रग्रहणं न कर्तस्यम्। क्रियते च। तिकमर्थम्? ''अग्निष्टुत्त्रय उक्थ्याः'' (का०श्रो० २१-२-४) इति वश्यति । तत्रेन्द्र स्तुदादिभ्योधिका उक्थ्यामा भूवित्रिति(२)। इन्द्रस्तुदादय प्रवोक्थ्याः॥२॥

अग्निरुत्तमः ॥ ३ ॥

एकशतविधोऽप्तिरत्र(३) ॥ ३ ॥

(४)अग्निष्टुत्त्रय उक्थ्या इन्द्रस्तुत्सूर्यस्तुद्दैश्वदेवस्तुद्वतं वाजपेयोऽसोर्यामः सर्वमस्मिन्नालभते ॥ ४ ॥

अस्मिश्रप्तोर्थामे सर्वमाळभ्यते। "तस्मिन्त्सर्वान्मेध्यानाळभते" (श्व बा० १३-७-१-९) इति श्रुतेः। अशक्यार्थोपदेश इति चेत् १ न हि नि

⁽१) 'आत्मन्यग्नीन्' इति पाठो सनुस्मृतौ।

⁽२) सर्वमेधस्य दश सुत्याहानि भवन्तीति यावत्।

⁽३) 'एकशतविधोऽत्रभवतीति शेषः' इ० पा०।

⁽४) दशरात्रे प्रथमानि सप्त अहानि प्रदर्श्यन्ते अग्निष्टुत् , त्रय उप्रथ्याः, व्रतम् , वाजपेयः, अप्तोर्यामक्त्रेति ।

रवप्रहः सर्वालम्भः शक्यते कर्तुम् । एवं चेद्येषामेवीपलम्भी दष्टस्तेषां सर्वतोच्यते। ते च "पुरुषोऽद्यो गौरविरज" रति। अपि चान्ते सर्वः शब्दो हर्यते—"पुरुषोऽह्वो गौरविरज" इति प्रकृत्य "प्तावन्तो वै सर्वे पद्मवः" (श्र० ब्रा० ६-२-१-१५) इति । तस्मात् सर्वशब्देन पञ्चपद्रवालस्म उच्यते । अतिराज्ञविकारत्वास्त्रायांमस्य तत्स्तोः मायनदेवताभ्य (१)आलभ्यन्त एकैकस्यै देवतायै पञ्च पञ्च प्राव आलभ्यन्ते, विभागाभावात् । लिङ्गाच-'अवपाकानां त्वचो जुहोति' (का० औ० २१-२-५) इति । यदि पञ्चेत पराव पते स्यः, . ततः 'अवपाकानां त्वचा जुद्दोति' इति बहुवचनमुपपन्नम् । तः स्मारप्रतिदेवतं पञ्च पञ्च पशवः । सर्वे चैते यूपे नियुज्यन्ते । स्तोमायनं ह्येतदिति सर्वत्र चात्र स्तोमायनम् । न ह्येकादिशिनी विहता सभ्मवति । न चैन्द्रासः क्वचित्मत्यक्षविधानात्॥ ४॥

(२)अवपाकानां त्वचो जहोति ॥ ५॥ अवपाकानां वपावर्जितानां त्वचो जुहोति । पुरुषाश्चावपाकाः ॥५॥ असेर्थिम एवायमपरी विदाय:-

ओषधिवनस्पतीना७ संत्रश्चम् ॥ ६ ॥ 'प्रकिरति' इति शेषः । संत्रखः-कुट उच्यते(३) ॥ ६ ॥ अन्नमन्नं(४) जहोति चपान्ते ॥ ७ ॥ तृतीयसरने च हुतेषु इविःषु ॥ ८॥

अयं च सर्वाज्ञेदिविहोमः पूर्वतरमोषधिवनस्पतिसंत्रश्चं प्रकीर्यं कः तंब्यः(५)। एवमपि हि अ्यते—''संवश्चमोषधिवनस्पतीनां प्राकरित

⁽१) 'आस्मः' इ० पा०।

⁽२) वपारहितानामश्वादीनां त्वच उत्कृत्य जुहोति वपासहि-तानामजादीनां तु वपा पव जुहोतीत्यर्थसिद्धमिति स्पष्टं देवयाज्ञिके।

⁽३) संबक्षमिति णमुलन्तमेतत् । छित्वा छित्वा खण्डानि ओष-धिवनस्पतीनामाहवनीये प्रकिरतीरयर्थः ।

⁽ ४) सर्वविधमन्निमत्यर्थः । अयं होमो द्रव्यं क्रियते ।

⁽५) सर्वाश्वहोमः प्रातःसवने अप्तोर्यामसम्बन्धनामातिरात्रिः काणां चतुर्णामाग्नेयादिपशुनां वपामार्जनान्ते कृते, तथा तृतीयसवने एतेषामेव परानां हवि:षु हतेषु मवति । उभयसवने प्रतिद्रव्यं होममः न्त्राश्च ''तदेवाग्तिः०" (वा० सँ० ३२-१) इत्यारभ्य 'देवेभ्यो हिं' (वा० लं ३३-५४) इत्यन्ताः, देवता त सर्वातमा प्रधानपुरुषो हिरण्यगर्भः।

युष्काणां चार्द्राणां चात्रमनं जुहोति" (श॰ बा॰१३-७-१-९)॥८॥ आइवमेधिकं मध्यमं (१)व्रतस्थाने ॥ ९॥

(२) इदमपरं विकल्पक्रपतयोज्यते । वतस्थाने आश्वमेधिकं मध्य-ममहर्भवति(३) ॥ ९ ॥

(४)पौद्यमेधिकं वाजपेयस्य ॥ १० ॥

मध्यममहर्भवति । अत्र चाद्यमेधिकार्थे यूपानामेकविद्यातिर्भवति । मध्यमस्य तज्जात्यनुप्रहे तु बहुनामहां विरोधस्तस्मात्वादिरो भवति । प्रमाणं त्वविरोधाद्भवत्येव वाजपेयिकपक्षे सप्तदशाराह्मिता(५)॥ १०॥

(६)ञ्चिणवत्रयस्त्रिःहाः डक्थ्वौ ॥ ११ ॥

त्रिणवत्रयास्त्रिश्यो(७) कत् उक्ययसंस्थी भवतः । तौ च पूर्वस्तोमः सम्बन्धिनी, तत्र दप्रवात् ॥ ११ ॥

अतिराम्नो विश्वजित्॥ १२॥

मवति। "विश्वजित् सर्वपृष्ठोऽतिरात्रो दशममहर्भवति" (शब् बा० १३-७-१-१२) इति श्रुतेः॥ १२॥

(८)पुरुष मेघवद्क्षिणा सभूमि ॥ १२ ॥ इत्येकविद्योऽध्याये द्वितीया कण्डिका ।

सर्वमेध उक्तः। इदानीमवसरप्राप्तः पितृमेघोऽनुविधीयते — पितृमेघः संवत्सराऽस्मृतौ ॥ १॥ 'पितृमेघ' इति कर्मणो नामघेयम्। स च(९) संवत्सराऽस्मृतौ म

(१) एतच स्वशाखीयम् । वतं तु शाखान्तरीयम् ।

(२) 'मध्यमपदं विकटप' इ० पा०।

(३) पूर्वोक्तस्य पञ्चमस्याहो महाव्रतस्य स्थाने अश्वमेधसम्बन्धि मध्यममहरुक्थ्यसंस्थं मवति। (४) एतदपि स्वशासीयम्।

(५) प्रागुकस्य षष्टस्याहो वाजपेयस्य स्थाने पौरुषमेथिकं मध्य-ममतिरात्रसंस्थं भवति ।

(६) दशरात्रे सप्ताहान्युक्त्वाऽएमनवमे अहनी आह ।

(७) प्रतत्स्तोमकौ अष्टमनवमौ इति शेषः।

(८) पुरुषमेधे यथा पुरुषसहिता दक्षिणा तथैवात्र भूमेरन्यत्र निषेधेऽपि तस्सहिता दक्षिणा भवति ।

(९) मृतस्य मरणसंवत्सरास्मृतावित्यथेः ।

वति । यदा न स्मर्थन्ते संवत्सराः मृतस्य । "यत्र समा नानु चन स्मरे युः" (श॰ झा॰ १३-८-१-२) इति श्रुतेः ॥ १ ॥

अयुग्भेषु(१) वा ॥ २ ॥

"अयुग्मेषु संवत्सरेषु कुर्योत्" (श्र० त्रा १३-८-१-३) इति श्रुतेः । अतश्च विकरणीयम् ॥ २ ॥

एकमहाने ॥ है ॥

"एकनक्षत्र) हि पितृणाम्" (श० आ० १३-८-१-३) इति । एक-नक्षत्रं च-यत्रैका तारका(२) चित्रास्यातिरेवतीत्यादि यथा ॥ ३॥

असावास्यायास् ॥ ४॥

'वा' इति सामर्थाद्दृष्टव्यमः । समुख्यः करमाक भवति एकनक्षत्रेः ऽमावास्यायां च १ नैतदेवम् । अमावास्यायामेकनक्षत्रसंस्तवश्रवणात् । ''अमावास्यायाममावास्या घाऽ एकनक्षत्रम्'' (२१० त्रा० १३-८-१-३) इति । तथा समुख्ये न घटते ॥ ४ ॥

निदावशरन्मावेषु ॥ ६॥

निदाय:-प्रीष्मः। शरद्-शरदेव। माघोऽपि माघ एव। एवं हि श्रूपते-"निदाधे वा नि नोऽघं घीवाता" इति, "शरिदं कुर्यात्स्वधा वे सरस्वधो वे पितृणामसं" "माघे वा मा नोऽघं भूत्" (श. ब्रा. १३-८-१-४) इति च॥५॥

(३)याचन्तो धुविष्यन्तः स्युस्तावतः क्रम्भाः

नादाय छत्राणि चापरिमितानि(४) ॥६॥

धुविष्यन्तः पुत्रपौत्राः । वश्यति हि-'अमात्या(५)धृन्वतिस्रास्त्रः परि-क्रामन्ति' (का० औ० २१-३--७) ॥ ६ ॥

- (१) बहुकाळव्यवधानेनापि मृतमरणसंवत्सरविस्मृत्यभावे पितृमेधानुष्ठानाभावप्रसङ्ग इति अयुग्मेषु संवत्सरेषु वा कुर्यादिति व्यवस्थितो विकल्पः।
- (२) यत्रैकैव तारका आकारो हृश्यते इत्यर्थः। यत्तु हिवचन-बहुवचनान्तशब्देन क्वचित्रशसिद्धं पुनर्वस् विशाखे कृत्तिकाः भरण्योऽ बुराधा इत्यादि, तद्नेकनक्षत्रमिति।
 - (३) पितृमेधस्य कालमुपदिश्य विधिमुपदिशति यावन्त इति।
 - (४) कुम्मसंख्यातोऽमारयसंख्यातश्चाधिकानि ।
 - (प) 'धून्वतः' नास्ति स्त्रे।

श्रारीराणि ग्रामसमीवमाहत्य क्रम्भेन तत्वे कृत्वाः हतपचेण परितत्यायसेषु वाद्यमानेषु वीणायां वोद्यताः याममात्यास्त्रिक्षः परिकामन्त्युत्तरीयैद्यवाजनैवीववाः जयन्तः॥ ७॥

कुम्भेन रारीराणि प्रामसभीवमाहत्याहतस्य वाससः पक्षेण परि-तस्य(१) आयसेषु वादिश्रेषु वाद्यमानेषु उद्धतायां वीणायां च वाद्य-मानायाम् अमात्या(२) उत्तरीयैः उपवाजनैत्रीपवाजयन्तः त्रिस्तिः परि-कामान्ति ॥ ७ ॥

वियो वा ॥ ८॥

परिकामन्ति। 'वा'(३) इति विकल्पः ॥ ८॥

(४)पूर्वरात्रमच्यापररात्रेषु च ॥ ९॥ 'च'शब्दात्परिकामन्ति(५)॥ ९॥

विफल्फान्नमहरेतत्(६)॥ १०॥ फल्फ वृद्धौ। बहुन्नयेतदहर्भवात ॥ १०॥

(७)**त**त्यगीतवादित्रवच ॥ ११॥ भगति ॥ ११॥ अन्नमस्मा उप(८)संहरत्लेके ॥ १२॥

- (१) कुम्मे पवास्थिलंचयनं "श्मशानं विकीर्षतः कुम्मे सञ्चयः नम्" (का०श्री० २५-८-७) इत्युक्तः इत्वाऽरण्ये भूमिमध्येऽस्थोनि पितृः मेधं चिकीर्षता पुत्रेण स्थाप्यन्ते । तेनैव कुम्मेन शरीराणि तान्यस्थीनि ग्रामसमीपमाहत्य पूर्वमेव तत्र स्थावितायाः खट्वाया उपरि निधाय अहतस्य वस्त्रस्य एकदेशे नास्थिकुम्भं सर्वतो वेष्टियत्वेत्यर्थः।
- (२) सृतस्य पुत्रपौत्राद्याः उत्तरीयैः प्रावरणवस्त्रैः उपवाजनैः व्यज-मैर्षा तमस्थिकुम्मं वाजयन्तस्त्रिस्त्रिरप्रदक्षिणं परियन्ति ।
 - (३) स्त्रीणां परिक्रमणविकल्पेन पुत्रादीनां तन्नियतमिति गस्यते।
 - (४) परिक्रमणकालमाह।
 - (५) रात्रेः पूर्वभागे मध्यभागे पाश्चात्यभागे च परिकामिनत ।
- (६) पतित्पतृमेघारम्भसम्बन्धि दिनं विफल्फान्नम् अस्मिन्दिने बहुन्नदानं कर्तव्यमित्यर्थः।
 - (७) अनवरतं मृत्यगीतवादित्राणि अस्मित्रहनिकारियतस्यानीति।
 - (=) 'सं' अत्र पुस्तके अधिकः पा०।

अस्मा ग्रह्थकुम्भाय पकेऽलोपहारं कुर्यन्ति(१) ॥ १२ ॥ उपन्युषस्र स्वारीरा दक्षिणा अच्छान्ति ॥ १३ ॥ उपनि वि(२)गच्छन्यां सह (३)श्रीरेण (४)इक्षिणा गच्छन्ति ॥१३॥ यथाकुर्यनो ऽभ्युद्यिग्नस्त्रेः ॥ १४ ॥ तथा यस ग्रास्थेय(५) ॥ १४ ॥

कक्षेऽवताचिति ॥ १५ ॥

स्मशानं कर्तव्यम् । कक्षाः —गहनप्रदेशः(६) । अवतापी वस्मिन्तु-परि स्थितः सूर्यस्तपति, न पार्श्वस्थः(७)॥ २५ ॥

> (८) ऊपर उद्क्षयणे समे वा ॥ १६॥ दक्षिणात्रवण एके ॥ १७॥ अद्धीनाद् ग्रामात्(९)॥ १८॥ आराज्यथः॥ १९॥

हुरात्मथ इति(१०)॥ १२ ॥

न्यग्रोबाचबस्थ(११)लिल्बक्हारिहुस्फूर्जक(१२)वि**भीदक**-

- (१) प्रथमपरिगमनानन्तरमिति सम्प्रदायः।
- (२) 'विगच्छन्ति' इ० पा०।
- (३) 'शरीरैं:' इ० पा०।
- (४) अस्थिकुरभसहिताः यज्ञमानाध्वर्यमात्या दक्षिणदिशि गच्छेयुः।
- (५) यथास्थिनिवापं कुर्वतः स्योऽभ्युदियात् तथा कर्तव्यम्। सर्योदयास्यागेष षश्यमाणमस्थिनिवापं कर्म प्रारभेतेतियावत्।
 - (६) गहरो चूक्षलतादिसंवृतः प्रदेशः।
- (७) अधस्तापोत्यर्थः । यो गहरप्रदेश उपरिष्टात् स्थितेनैव सूर्येण मध्याहेऽधस्ताचाप्यते पार्श्वतो वृक्षगुल्मादिभिरावृतत्वासाहश इति यावत ।
- (=) ऊषाः श्वारमृत्तिकाः सन्ति यस्मिन् उदीच्यां दिशि प्रवणं निम्नं यत्र वा।
 - (९) सप्तस्यर्थे पञ्चमी ब्रामाददर्शने। यत्रस्थितैर्वामो न दृश्यते।
 - (१०) सार्गाइद्रेकर्तव्यम्।
 - (११) तिल्वकः तिणिसः।
 - (१२) विभीदको वहेदकः।

(१)पापनासस्यश्च ॥ २० ॥

द्रात्करोति॥ २०॥

(२)चितियच ॥ २१ ॥

देशो भवति । तद्गुणयुक्त इत्यर्थः ॥ २१ ॥

शंबात कंवति वा॥ २२॥

'शम्' इति सुखनीयः प्रदेशः, 'कम्' इति रमणीयः, तत्र करोति(३)। 'वा'शब्दो विकल्पार्थः ॥ २२ ॥

चित्रं पश्चात ॥ २३॥

चित्रमनेकप्रकारं वनं यस्य प्रदेशस्य खो(४)ऽङ्गीकर्तव्यः ॥ २३ ॥ तद्भाव उदक्रमुत्तर्गो(५) वा ॥ २४ ॥

प्रदेशस्य, भवति ॥ २४ ॥

कर्ववीरिणवति॥ २५॥

'कर्षू' राब्देन कुहसार उच्यते । वीरिणानि तुणानि, तद्वति प्रदेशे करोति ॥ २५ ॥

> (६)ग्रामतस्तेजनीमुच्छित्य न न्यस्येद्ग्रहेपूः च्छ्येत् ॥ २६ ॥

(१) पापनामानः श्लेष्मातककोविदाराद्यः।

(२) चितिचत् सृतस्य दाहार्थं यादृशे देशे काष्ट्रैश्चितिविहिता तादृशे देशे। ततश्च ''उद्धृत्य स्रीरिणीः पुरुषाह्वतोः" "विशाखशराः इमगन्त्रापृष्टिनपण्यंध्याण्डाश्च" (का० श्रौ० २५-७-३०, ३१) इत्येत-ल्लभ्यते।

(३) केचिनु शंवति शमीवने कंवति करीषवति करीरवने वेति

व्याचक्षते।

(४) तस्य शमशानस्य पश्चात् चित्रं दर्शनीयं वनगिरिदेवगृहादिकं पश्चाद् भवति।

(५) बाशब्देन पश्चाद्या ।

(६) यदा पतत्कर्माः श्राममध्यात् बहिरागम्यते तदा कश्चिद्यज्ञमानपुरुषो श्रामतो श्राममध्यात् तेजनीं तृणपूलकमुच्छित्य वंशादिवद्धाम् ध्वींकृत्य तत्रागच्छेत् न न्यस्येत् तां तेजनीं नीचैभूमो न निद्ध्यात्। किन्तु
यावत्कालं कर्म भवति तावत्कालमुत्तरस्यां दिशि धारयेत् कर्मान्ते
धृतामेव गृहं प्रति नीत्वा गृहंषूच्छ्येत्।

"तां न न्यस्येद् भ्रुत्वा वैनामृद्वा वा गुहेपूरकृयेत्" (शावज्ञा० १३-८-३-१२) (ति अतेः ॥ २६ ॥

दिक्सक्ति पुरुषनात्रं निकीते ॥ २०॥ तच्छमशानं(१) दिक्सकि पुरुषमात्रं मेयन् ॥ २०॥ इत्तरतः पृथु पश्चाच(२)॥ २८॥

कर्तव्यम् ॥ २८ ॥

विहृत्य[स्राक्तिषु राङ्कृताहरित ॥ २९ ॥ (३)'विहृत्य' इति मित्वा कोणेषु शङ्कृताहरित ॥ २९ ॥ पालाशं पुरस्ताच्छामीलयारणदेहशाङ्कृनन्यासु ॥ ३०॥ स्रकिषु अप्रवृक्षिणम्(४) ॥ ३०॥

देहराहुईसराहु।(५) ॥ ३१॥

हुनः पावाणः । "वृत्रश्चर्दुं वृक्षिणतः" (शञ्जा० १३-८-४-१) इति श्रुतेः ॥ ३१ ॥

अपसलविस्ष्ट्या रङ्खा परितश्यापेनो यन्तिवानि

पलाचाषाखया च्युद्हति॥ ३२॥

अपस्र विख्या—अम्बद्धिणविष्ठता, तथा परितत्य "अपेतो यन्तु" (६)इत्यनेन मन्त्रेण पर्वाशास्त्रया न्युट्हति मितप्रदेशम् ॥ ३२ ॥

- (१) दिक्कोणमित्यर्थः। "यैत्वयां हिपुरुषं समचतुरसं कृत्वा करणी-मध्येशङ्कवः स समाधिः" (शु० स्० २-६) इत्युक्तविधिना समशानार्थं क्षेत्रं प्रमेयम् ।
- (२) उत्तरस्यामीशानपार्थे विस्तीर्णं विपुळं भवति। प्रवमपरस्यां दिशि वायव्यपार्थे च। (३) तरक्षेत्रमिति शेषः।
- (४) उत्तरतः पश्चाद्दक्षिणेति कमेण । उत्तरस्यां सकौ वृत्रशङ्कः 'वृत्रो चे सोम आसीत्तस्यतेच्छरीरं यद्गिरयो यदश्मानः' (श० ष्रा॰ ४-२-५-१५) इति चचनाद्ववृत्रोऽश्मा, ततश्चाश्ममयः शङ्कः, पश्चिमायां वारणशङ्कः, दक्षिणस्यां शमीशङ्कः, पृवंद्भयां पालाशशङ्करिति दिक् ।

(५) इदं सूत्रं नास्ति बर्छिनमुद्रितपुस्तके मूलपुस्तके च।

(६) अपसलिस्ष्या अप्रादक्षिण्येन निष्पादितया रज्ञा तस्क्षेत्रं समन्तादप्रदक्षिणं संवेषयः "अपेतो यन्तु" (वा० सं० ३५-१) इति मन्त्रेण क्षेत्रमध्यपतितं तृणपणीदिकं पलाशास्त्रया इत्वा क्षेत्राद्वहिर्नि-क्षेण क्षेत्रमध्यपतितं तृणपणीदिकं पलाशस्त्रास्त्रया इत्वा क्षेत्राद्वहिर्नि-कास्यसीति।

दक्षिणा शास्त्रां निरस्य परिश्रिद्धः परिश्रवति (१) एवं यदपरिधिताधिः ॥ ३३ ॥

गाईपत्य(चिति) परिभिद्वेक्षया इहापरिमितत्वम्। एवं हि श्रू-यते—''यजुषा ताः परिश्रयति तुष्णीमिमाः''(श्रु- वा॰ १३-८-२-२) इति। यजुषा च परिश्रयणं गाईपस्थपरिश्रिताम् ॥ ३३॥

औदुम्बरसीर उत्तरतो वा षड्गवे युज्यमाने युङ्क्तेति सम्प्रेष्य सविता त (२)इति जपति ॥ ३४॥

'शेषितेन योजनमीदुम्बर(३)लीरेभ्यः यहभिर्बलीवहैं युंज्यमाने 'स विता ते' इति जपति । सम्बेषणजपौ याजमानौ ॥ ३४ ॥ इत्येकविद्योऽध्याये तृतीया कण्डिका ।

अनुरन्जु चतस्रः सीताः कृषित वायुः पुनाः स्विति प्रतिमन्त्रम् ॥ १ ॥

उत्तरतः व्रतीचीं प्रथमाम् ॥ २ ॥

''अम्रेश्चीजसा सुर्वस्य वर्वसा''(४) इति चान(५) 'क्रषामि' इत्य-ध्याहारः साकाङ्कत्वात् ॥ २ ॥

- (१) 'पूर्वचत्' इति ''ऊर्ध्वाः शर्कराः खाते' (का॰ श्रौ॰ १६-८-२६) ''रज्ज्वा सहितं बहीरज्ज' (का॰ श्रौ॰ १६-८-२३) इति पूर्वोक्तरीस्ये स्यर्थः। अपरिमितासिः एकविशतिसंख्यातोऽधिकाभिरित्यर्थः।
- (२) ततोऽध्वर्युस्तां पठाशशासां दक्षिणस्यां निरस्य परिश्विद्धिः वैष्टियस्वा ताक्षेत्रस्य दक्षिणत उत्तरतो वा षड्भिरतडुद्धिः सीरं युनिक तस्मिन् युज्यमाने यजमानो 'युङ्क' इति संप्रेष्य ''सविता ते" (वा० सं०३५-२) इति मन्त्रं जपति।
 - · (३) हलेन रेखायाः पादं प्रतिकृषात ।
- (४) अध्वर्युः परितो वेष्टितां रज्जुमनुळ श्लीकृत्य 'बायुः पुनातु' (बा० सं० २५-२) इति प्रतिमन्त्रं पादेन पादेन चतसः सीताः अप्रद्श्विणं कृषति । तत्र प्रथमां सीतामुत्तरपाद्दे प्रतीचीं कृषति । दक्षिणतः सीरयोजनपश्चेऽपि तत्सीरमप्रदक्षिणमुत्तरत आनीय प्रथममुत्तरत एव कृषति । ''तद्पसळिव पर्याहृत्योत्तरतः प्रतीचीं प्रथमां सीतां कृषित वायुः पुनात्विति, सविता पुनात्विति, जघनार्धेन दक्षिणाऽग्नेभ्रांजसेति दक्षिणार्धेन प्राची , सूर्यस्य वर्चसेत्यप्रेणोदीची म्' (श० ब्रा० १३-८-२-६) इति श्रुतेः । (५) इत्यत्र चेत्यर्थः ।

अपरिक्ति। सध्ये तृष्णीत् ॥ २ ॥

खीताः इपति(१) ॥ ३ ॥

अनुद्धों विद्धान्य (२)विद्धान्य मामिति द्विणा सीरं निरस्पाद्यत्ये व (२)इति स्वर्णेवरं वर्णाते ॥ ४॥ इष्टे॥४॥

सविता त इति चरीयाचि निययति नध्ये ॥ ५॥

(४)"सविता ते" श्यनेन मन्त्रेण इन्सम्ये हारीराणि विवर्णते ॥५॥ तृरणीयन्यः कुरम्यमाक्ष्णीति दक्षिणाऽनवानन्तस्वा।।६॥

अन्यः-अध्वर्धे व्यतिरिक्तः (५) तृष्णीयनवार्तः(६) वृद्धिणाः गत्वा कुस्स-माश्णोति श्रिपतीत्वर्थः । धिनचि इत्यपेर ॥ ६ ॥

प्रत्यागते परं ख्रयविति जपति ॥ ७ ॥ प्रत्यागते क्षेत्ररि "वरं द्रव्यो" (७) इति जपति ॥ ७ ॥ (८) शं चात इति यथाङ्कं कल्पयिल्वेष्टकां निद्-

धाति सच्चे तृष्कीत् ॥ ८ ॥

"अयेनं यथाङ्गं करपविति" (२० आ० १३-८-३-५) इति श्रुतेः। 'तुर्वाम' इति लोकिकवागुव्याग्यमितिष्यः॥ ८॥

- (१) पवं चतुर्षु पार्श्वेषु सन्त्रेण कर्षणं कृत्वा अथ तस्यैव स्वश्रस्य मध्येऽप्रादक्षिण्येन तृष्णीयेच कर्षणमपरिजितं कार्यमित्यर्थः।
 - (२) बिमुच्यन्ताम्० (बा० सं० ३२-३)
 - (३) अध्वत्ये चः० (वा० सं ३५-४)
- (४) सविता ते० (वा० सं० ३५-५) इत्यनेन मन्त्रेण तस्य पुरु-प्रमात्रस्य क्षेत्रस्य मध्ये शरीराणि मृतस्य अस्थीनि अस्थिनिधानकुरमा-द्वहिनिष्कास्य राशीकरोति। पतन्य सुर्योदयकालं कर्तञ्यम्। 'वधा कुर्व-तोऽभ्युदियात्' (श० बा० १६-८-३-३) इति श्रुतेः।
 - (५) अनृतो ब्राह्मणः।
 - (६) श्वासोच्छ्वासरहितं यथा स्यान्तथा।
 - (७) परं मृत्यो० (वा० सं० ३५-५७)
- (८) 'शं वातः०'' (वा॰ सं॰ ३६-८) इति मन्त्रहयेन तानि मध्ये न्युप्तान्यस्थीनि यथाङ्गं करुपयित्वा यदस्थि यस्याङ्गस्य तेनास्थना तदङ्गकरुपनया प्राक्शिरसं पुरुषाकृति कृत्वा तन्मध्ये पाद्मात्रामिष्ठकां तृष्णीं निद्याति।

मितिदेशमन्तेषु (१)पराचीस्तिस्रास्तिस्रो ऽन्नक्ष-णाः पादमात्रीः॥ ९॥

'पराची:' इति नाभ्यात्वम् ॥ ६ ॥

(२) प्रदरात्पुरीचमाहत्य परिकृष्य वा सर्वतो

ऽपुरस्तात् ॥ १०॥

पुरीषं प्रक्षिपति इमझाने ॥ १०॥

शकरा अनिमिचितः(३) ॥ ११ ॥

रार्करा इष्टका भवन्ति ॥ ११॥

ऊर्द्धप्रमाणमास्यं ब्राह्मणस्य ॥ १२ ॥ (४)इमशानं भवति । तत्रश्च परिश्चितस्तावत्त्रमाणा भवन्ति ॥१२॥

(५) उरः क्षित्रयस्य ॥ १३ ॥

त्रमाणम् ॥ १३॥

ऊर्द्धवाहु वा ॥ १४॥

'वा' इति विकल्पः ॥ १४ ॥

कर वेदयस्य ॥ १५॥

उपस्थः श्वियाः १६॥

(६) जानु शहरण ॥ १०॥

- (१) पराचोः पूर्वापराः नाभ्यात्मम् । लक्षणं लेखाः तद्रहिताः ।
- (२) प्रकर्षेण स्वयमेव दीर्णो भूप्रदेशः प्रदरः तस्मात्पुरीषमाहृत्य श्मशाने निवपति । अथवा सर्वतः सर्वाम्यो दिग्भ्यः परिकृष्य परिक-र्षणं कृत्वा पुरीषमाहृत्य श्मशाने निवपति । अपुरस्तात् प्राच्या दिशः पुर रीषाहरणं न कर्तव्यम् ।
- (३) अनमिचितः संस्कार्यस्य इष्टकास्थाने त्रयोदश शर्कराः पाषाः णा उपधेयाः तेष्वेव स्थानेषु तद्वदेव ।
- (४) संस्कार्यो ब्राह्मणस्चेत्तन्मुखस्थानं पुरीवावापेन स्मशाने उन्हें तावश्त्रमाणं कर्तव्यम् । एवमग्रेऽपि ।
 - (५) उरो इदयम् तत्रमाणमित्यर्थः।
- (६) शूद्रस्य शूद्रदौहित्रस्य रथकारस्य जानु जङ्घा प्रमाणम् । अत्र हरिस्वामिनः—यद्यपि शूद्रोऽग्निचिन्नास्ति अग्निचितश्चायमधिकारः तथापि परिमाणप्रसङ्गादाचारतः मातस्यामन्त्रम् स्य परिमाणमाहेति ।

। ७३ । प्राणम

सर्वेवां बाडवांचाल ॥ १८ ॥

प्रमाणम् । 'वा'शन्दे। विकल्पार्थः ॥ १८॥

अवकाभिः कुर्वेश्च पञ्छाच ॥ १९ ॥

परिकृष्टं येचवान्वपेत् ॥ २०॥

यदि परिकृष्टं-पुरीषं ततख(१) तत्र यवानां वापः श्रुति(२)क्रमेण॥२०॥ (३)दक्षिणतः क्रुटिले कर्ष् खास्या चीरोदकाभ्यां

पूरपन्ति सप्तोत्तरतः प्राचीनद्कस्य ॥ २१ ॥

कर्वनपुरवन्ति ॥ २१ ॥

त्रींकीनावपन्यर्मनः ॥ २२ ॥

अमात्वाः कर्षुषु ॥ २२ ॥

अध्यविगच्छन्खर्मन्वतीरिति॥ २३॥

अनेन मन्त्रेण (४)कर्षुषु ॥ २३ ॥

अपाचित्यपामागैरपम् जते ॥ २४॥

"अपाचम्" (५) इत्यनेन सन्त्रेण (६) अपायार्गैरात्मानममास्या अपस्-जन्ति ॥ २४ ॥

सुमित्रिया न हाते स्नात्वा ऽइतवाससो ऽन्दुत्पुच्छमः न्वारभ्यानड्वाहमित्युह्यमित्यागच्छन्ति॥ २५॥

(१) परिकृष्टात्पुरीवाहरणपक्षे न तु प्रद्रात्पुरीयाहरणे।

(२) "कृत्वा यवान्वपति " (श० ब्रा १३-८-३-१३) इत्यादि ।

(३) श्मशानस्य दिल्यातः ईषद्रको कर्ष् गर्ती खात्वा पूर्वदिनोप-क्लृतेः घटैः दुग्धेन उदकेन च पूरयन्ति। 'पूरयन्ति' इति बहुवचनात्प्र-कृता अध्वयुंपजमानामात्याः। तथा श्मशानस्योत्तरतः सप्त कर्ष्न प्रा-चीः प्रागायतान् दक्षिणोत्तरान् दक्षिणसंस्थान् खनन्ति। तांश्च प्रागुप-क्लुप्तैः घटैः केवलेनोदकेन पूरयन्ति।

(४) अध्वर्युयजमानामात्यास्त्रीन्पाषाणाग्विस्य "अङ्गन्वती०" (वा॰सं० ३५-१०) इति मन्त्रेण तहतौपरि गच्छन्ति । अङ्गसु पादान्

निद्धत उदकं गच्छन्तीति वासुदेवः।

(५) ते अमास्या यत्नोपनीतिनो भूत्वाऽप उपस्पृश्य हस्तगृहीतरपा-मार्गेः अपामार्गबोजैर्वा "अपाधमप०"(बा०सं० ३५-११) इत्यनेन मन्त्रेण स्वदारीर कोश्ययन्ते । (६) 'अपामार्गोद्धर्तनेनामास्याः इ० पा०। ''सुमित्रिया न''(१) इति स्नात्वा अहतानि वासांति परिधाय ''अनद्वाहम्'' इत्यनेन मन्त्रेणात्युत्युच्छमन्वारस्य ''उद्वयम्' इत्यागः च्छन्ति ॥ २५ ॥

प्रामद्मशानान्तरे सर्पादालोष्टं निद्धातीमं जीनेभ्य इत्यनेन मन्त्रेण ॥ २६॥

अनेन (२)मन्त्रेण ''मर्वादाया एव लोखमाहत्य'' (दा॰ झा॰ १३-<-४-१२) इति वचनात् ॥ २६ ॥

अञ्जनाभ्यञ्चने कृत्यीपासनं परिस्तीर्ध वारणान्य-रिधीन्परिधाय वारणेन सुवेणकासाहुर्ति जुहोत्यग्न आयु/ट्यायुष्मानग्न हति॥ २७॥

(३) अञ्जनमध्योः, अभ्यञ्जनं(४) च पाद्योः इत्वा औपासनं परि-स्तीर्थ चारणान्परिधीनपरिवाय परिधानोपदे शाक्यशारः परिवयः। वा-रणेन स्ववणैकामाद्वातें जुद्दोति "अग्नऽ आयू्पंषि" "आयुष्मानग्न"(५) इति द्वाभ्यामुग्न्याम्। औपास्तनश्चात्र कर्तृस्वभ्वन्थी न प्रेतसम्बन्धी। तेन हासौ विद्यिकमां गुष्ठानसाधनमादायादित इति(६) तत्परिधीनां स्व संस्कारो न मवति, अपूर्वत्वात्॥ २७॥

अथैषां परिदां बदाति(७)परीमे गामनेषतेति॥ २८॥

- (१) सुमित्रिया न० (वा०सं० ३५-१२) इति मन्त्रेण स्नात्वा मू-तनवस्त्राणि परिहितवन्तः "अनड्वाहम्०" (वा०सं० ३५-१३) इति म-न्त्रेण वृषपुच्छमन्वारभ्य "उद्धयं तम०" (वा० सं० ३५-१४) इति म-न्त्रेण युज्ञमानामात्या ग्राममागच्छन्ति । यद्यपि अत्र 'सुमित्रिया न०' इति मन्त्रेण स्नानमुक्तम् तथापि "सुमित्रिया न इत्यपाऽञ्जिलनादाय दुर्मि त्रिया इति द्वेष्यं परिविञ्चति" (का० श्रौ० १९-५-१५) इति द्वयं वि धेयम्, "दुर्मित्रिया...द्विष्म इति यामस्य दिशं द्वेष्यः स्याक्तां दिशं परा सिञ्चेत् तेनैव तं पराभावयति" (श० जा० १३-८-४-५) इति श्रुतेः।
- (२) स्वित्वालयामस्य समग्रानस्य च मध्ये मर्यादाळोष्टं महत्तरं मृत्खण्डमध्ययुनिंदघाति "इमं जीवेभ्यः" (वा० सं० ३५-१५) इति मन्त्रेण । (३) कज्जलादिना । (४) तैलेन ।
 - (५) अग्प्रऽ आयूर्णिष० (चा० सं० ३५-१६, १७)
- (६) अग्निस्तस्यैव प्रेतस्यौपासनः स हि प्वमर्थमेव घारणीयः 'अद्वारेण च निरसनीयः' इति श्रुत्यन्तरादिति हरिस्वामिनः।
 - (७) परीमे गामनेषतः (बार्वः ३५-१=)

'यथ' शब्दो मङ्गकार्थः । पिष्ट्यं कर्मः निष्ट्समिति । आनन्तर्यार्थः मिखपरे । तस्यानन्तरमर्थकस्यमि न कर्तव्यम् । परिदावाद्यः यजमाननिषयोऽमार्थकिवय्यः । हेरः 'एवास्' इत्युक्तम् ॥ २८ ॥

अद्वारेणौपासनं निरस्यति हृद्याहाभिति ॥ २९ ॥

(१)अनेन मन्त्रेण । शौषालतस्य यहिनसाहितिईता स प्रव प्रहीत-दयो न प्रेतौपालनः । लहेंद्रसदेशं निरस्यति । स एव ह्यानन्तर्योत्स-म्यथ्यते । (२)तदेकदेशं निरस्यति । तथा च सन्त्रवर्णः—"इहेवायमि-तरो जातवेदा देवेभ्यो हब्दं वहतु सज्ञावन्" इति । जपमन्त्र पतद्भिधी यने—पकदेशो निरस्तः । एकदेशे इतरहाहशे वर्तत हति ॥ २९ ॥

(३)इहेंबायासीति जपति ॥ ३० ॥

आसन्दी सोपधाना हाक्षिणान इवान्यवाँ अ सर्वे

पुराणं स्वसीक्षेट्यस ॥ ३१ ॥

(४)भूयसीस स्टबर् ॥ ३१ ॥

द्रवेकवितेऽच्याये चतुर्थी कण्डिका । इत्युपाध्यायककेविर्याचिते काखायनसूत्रभाष्ये एकवित्रवितमोऽच्यायः समामः।

इविंशीऽध्यायः।

अभूसादाः ॥ ६ ॥

उकान्याधानादीन्यध्वश्वेदिविहितानि पित्मेधानतानि कर्माणि। इदानीं छान्दोग्यवद्विहितान्येकाहादीनि सङ्गाणि व्याचिष्यासुरा

- (१) आहुतिहोमानन्तरं यस्मिन्नाहुतिर्हुता तस्यौपासनस्यैकदेशं "क्रव्यादमग्त्रिम्०" (वा॰ सं॰ ३५-१९) इति मन्त्रेण निरस्यति । प्रेत-स्यैवौपासन इति पक्षे सकलो निरसनीय इति हरिस्वामिनः । औपासनः प्रेतस्यैव, मन्त्रवर्णाद्विमागानुपदेशाच इति वासुदेवः ।
 - (२) 'तदेकदेशो निरस्यते' इ० पा० ।
 - (३) इहैवायमितरो० (वा० सं० ३५-१९) इति जपति यजमानः।
- (४) उपधानम् उच्छीपंकं तस्तिहिता आसन्दी पुराणा दक्षिणा, एवं पुराणो बृद्धोऽनद्वान् बृषमो दक्षिणा, पुराणा जोणां यवाश्च दक्षि-णाऽस्य यागस्य भवति । इतोऽप्यधिकं दातुमिच्छन् यजमानो दिर-णयादिकं भूयसीत्वेन दद्यादित्यर्थः।

बार्य इत्माह-अधैकाहा इति । तत्रायम् 'अथ'शब्दोऽधिकारान्तरप्रक्ष प्त्यर्थः । वेदान्तरविद्वितानि कर्माणि ब्याख्यातुमधिकियन्ते । अधि-कारान्तरप्रवृत्तेः किं प्रयोजनिमिति चेत् १ इह चोद्कपरिप्राप्ताञ्चपदार्थः व्यतिरेकेणोद्गातुः कर्तृत्वं यथा स्यादिति । कुत प्तिदिति चेत् १ उद्गात्वेदसमधीतत्वात्समाख्ययोद्वातुरेव कर्तृत्वमिति ।

ननु च सर्व यमेते उद्भिदाद्य उद्भात्वेदसमधीताः १ सत्यमेवं, प्रधानेषु न समाख्यया कर्तृत्वम्, 'उद्भिदा यजेत पशुकामः' इति सर्व प्रस्युपदेशात् । अङ्गेषु त्वप्नेषु समाख्यया कर्तृत्वभिष्यते । यानि पुन-श्चोदकप्राप्तानि तान्यपि ग्रहीतकर्तृकाण्येवति । (१)एकाहाः 'व्याख्या-स्यन्त' इति स्त्रशेषः । एकाहैश्चोपस्क्षणमहीनसञ्ज्ञाणामपि ॥ १ ॥

अवचने ऽभिष्टांमः॥ १॥

संस्थान्तरस्यावचनेऽग्निष्टोमो भवति । न्यायसुत्रमेतत् । प्राथस्याः दविरोघाभित्यस्वाच्चाग्निष्टोम पद्य भवति ॥ २ ॥

सूर्वेनुदक्षिणः ॥ ३॥

भूनीमा पकाहरस घेतुदक्षिणो भवति। तद्दक्षिणासंयोगेन घेतुचिः घानात्सकळस्य दाक्षिण्यस्य निवर्तिका घेतुः। अत्र च दक्षिणाभिमन्त्रः णमन्त्रो विपरिणम्यते ॥ ३॥

ड्योतिः ॥४॥

ज्योतिर्नाम एकाहः,(२) नात्र कश्चित्रिरोषः ॥ ४॥

गोआयुषी उक्थ्यौ ॥ ५॥

पको गौः अपर आयुः। ताबुक्ध्यसंस्थी भवतः॥ ५॥

अभिजिहिखाजिती॥६॥

(३)अपरावेकाही ॥ ६॥

(४)सहस्रमभिजितो दक्षिणा॥ ७॥

ततश्च यत्सहस्र संख्या संयोगेन श्यते, तदत्र भवति । यथां इवदाः भ्यष्रहणम् (५)तिस्रोऽन्वन्ध्यास्त्रैधातवी'(६) इति ॥ ७ ॥

(१) पकस्त्याः कतव इत्यर्थः। (२) अग्निष्टोमसंस्थः।

(३) अग्निष्टायसंस्थी। (४) सहस्रं गवाम्।

(५) "सत्रसहस्रसर्ववेदसवाजपेयराजस्यविश्वजित्सर्वपृष्ठेषु प्रह-णमवकाश्यश्वेत्" (का० ध्रौ० १२-५-११) इत्युक्तेः । प्रहणम् अंश्व-दाभ्यप्रहणम् ।

ं (६) "संवासरावरंषु सत्रेष्वसारस्वतेषु सहस्रदक्षिणावरेषु च" (का० श्रौ० १३-४-५) क्रतुषु तिस्रोऽनूबन्ध्या भवन्ति इत्यर्थः। "त्रैधाः तन्युदवसानीया सर्वत्र" (का० श्रौ० १३-४-८) इत्युक्तेः।

वाताइवं वा ॥८॥

रातमस्वानां विस्मन्सहस्रे तच्छतः इवं सहस्रम् । तद्वाऽभिजिहः स्निणेति विकरुपः ॥ ८ ॥

सहस्रः सर्ववेदसं विश्वजितः ॥ २ ॥ सहस्रस्वेदस्योविश्वजिति विश्वतः अवेदस्यके रदमुच्यते॥९॥ ज्येष्ठं पुत्रमपभज्य सृक्षिशहर्यर्ज योगावि-

शेषास्सर्वास ॥ १०॥

ज्येष्ठपुत्रस्य विभागं द्रस्या भूमियद्वतर्जं ददाति । कुत पतत् र सः वैमनुष्याणां हि भूस्या योगोऽविधिष्टः वारणं(१) बङ्कमणद्वारेण । शदस्य च शुभूषोपनतन्त्रेनेति ॥ १०॥

श्राहरानं (२)वा द्वीनाविराधाभ्यास् ॥ ११ ॥

'वा' शब्दः पक्षस्यावृत्ती । शृहस्य वानं सवति । वस्यते हि खड़-स्य दानं पुरुषमेश्व "सपुरुषं प्राची दिग्वोतुः" (शब्झा० १३-६-२-१८) इति । न च विरोदो गर्भदासस्य । तस्यादकृदो दीयत प्रव । अनेन च न्यायेन भूमेरच्येकदेशादाने वेच विरोधः । कव्याद स्थते "सभूमि सपुरुषम्" (श्व० ब्रा० १३-७-१-१३) इति ॥ ११॥

I FY II SHEPHING

दक्षिणादानान्तो विश्वजिद्भवति । कुत पतत् १ द्रन्याभावात् । सर्वः स्वदाने स्ति द्रन्यभव नास्ति इति तद्नतो विद्वजित् ॥ १२ ॥

समाप्तिर्वा चोदितावभृथश्चतेः ॥ १२ ॥

'वा' शब्दः पक्षव्यावृत्तौ । समाप्येत वा विश्वजित् । सोदितो हासौ
"विश्वजिता यजेत" दत्यपवर्गपर्यन्त आख्यातार्थः । अपि चावभृयश्वतिभवति । "अवभृथादुदेत्य वत्सक्वविं परिद्धाति" (ला०स्० ८-२-१)
इति वत्सक्वविपरिधानविधिपरे वाक्ये अवभृथं दर्शयति ॥ १३॥

(३)दीचासु चापदेशात्॥ १४॥

वीक्षासु च क्रत्वभिनिर्वृत्यर्थे द्रव्यमणदिष्टम्(४)। अतस्तद्यतिरिक्तं

- (१) भूमेस्तावद्धारणशयनासनवङ्कमणादिसम्बन्धः सर्वेषामवि-शिष्टः। यः शुद्धो धर्मार्थं सेवां कुरुते सोपि सर्वेषामविशिष्ट एव।
 - (२) 'बा' अवधारणे । भृत्या स्वीकृतस्य शुद्रस्य दानं भवति ।
 - (३) दीक्षास्वेच कत्वर्थस्य द्रव्यस्य अन्यस्मै अपदेशात्।
 - (४) "कस्वर्थमपदिश्यान्यस्मा०" (का०भ्रौ०७-२-७) इति सुत्रेण ।

सर्वस्वभिति ॥ १४ ॥

न समस्यात ॥ १५॥

भैतदेवं युक्तं 'विश्वजिल्लमाण्येत' इति । समं ह्येतदुभयं 'विश्व-जिता यजेत' इति समाप्तिश्चोदिता, 'सर्वत्वञ्च ददाति' इति च सर्व-स्वदानम् । अतो विशेषाद्विकत्य एव युक्तक्तः। एवं स्थिते पुनः आधीतेन व्याख्यायते। सम्मेगदिति चेत् ! नैतत्समम् । विश्वजिता यजे-त' इति पूर्वचोदना प्रधानकोदना च । 'सर्वद्वं ददाति' इति गुणचो-दना पश्चात्कालवाचिनी च । तेन विशेषे स्वति अयमेवाधौ प्रदीतुं स्याख्य इति । विकत्यश्च तुरुवत्वं भवति, न चेह तुरुवत्वमित्युक्तम्॥१५॥ विश्वजिति सदस्त्ववंदेदस्योविकत्य उक्तः। तत्र सन्देदः किं प्रागिष सहस्रात्सवंवेदस्यं भवति, उतोध्वं सहस्रादिति । किं ताच-स्थातम् ! सुत्रेणेबोपक्रमः-

परिमाणे सर्वमिवशेषात्॥ १६॥

ं (१)सर्वस्वपरिमाणे मृग्ये यस्य यावत्स्वं तत्सवै गृहाते । 'सर्वे वेदः सर्वेषेद्सम्' इति । तेन मागपि सहस्रात्सर्ववेदसं सविति ॥ १६ ॥ पर्वे प्राप्त आह-

अधिकं वा प्रकृत्यनुग्रहात्॥ १७॥

अधिकं वा सहस्रात्सवेचेद्सं प्रहीतव्यम्। प्रकृत्य हि सर्ववेदः सं सहस्रेणानुप्रहं दर्शयदि-"कोऽईति मनुष्यः सर्ववेदसं दातुं, तस्मा रसहस्रं देयम्" इति । एतचा सहस्राद्धिके उपपद्यते नेतर्था॥ १७॥

पवं तावदत्र सहस्राधिकं सर्वेथेर्सिमत्युक्तम् । अन्यत्रापि प्रतिहर्त्रः पच्छेदादौ सहस्राधिके प्राप्ते आह-

नानिस्यत्वात् ॥ १८ ॥

े नैतदेवम्-सहस्राद्धिकं सर्ववेदसमिति । न हि नित्ये किस्मि भित्परिमाणविशेषे सर्ववेदसम्बद्धान्दः प्रसिद्धः । यद्यस्य वेदः सर्वे तत्स र्वस्वमिति ॥ १८॥

क्रमेशन्त्राच ॥ १९॥

अस्ति चायं लोके (२)व्यापारशब्दः सर्वमनेन दत्तमिति । तस्मा-

(१) सर्वस्वपरिमाणे अपेक्षिते सर्वस्वं यस्य याग्रद्धनं गुहे सुव-णांदि तत्सर्वं देयम्। कुतः ? अविशेषात्। न च 'सर्वस्वं ददाति' इति चाक्यशेषः श्रुतः, येन सहस्रान्ग्युनमतिरिक्तं वेति विशेष आश्रीयते।

(२) कर्मशब्दस्य पर्यायः।

त्यागिष सहस्रात्सवेन्यमिति । विश्वजिति त लिङ्गेन व्यवस्था ॥१९॥ अवसृथाद्देश्य रोहिण्यो बस्लबन्यो सक्तर्पपुच्छाः

डबजाने परिह्याने ॥ २० ॥

अवभ्याद्रश्याव रोहिण्यो यस्तक्रयो स्वर्णप्रकामिकने (१)परिद्धाते(२) ॥ २० ॥

बादशरात्रं परिवसत्युकावदिभं विस्नत्॥ २१॥ (३)उसावदिति वैणवीम ॥ २१ ॥

खींबुस्बरी बा ॥ २२ ॥

(४)बब्बाजिस ॥ ३३ ॥

(५)तिस्रितसः ॥ २४॥

Bigariata garia: 11 55 11

अहिन्यरे स्वक्रस्य वा १५॥ मोतुम्बरबहुले देशे मुलक्षलमश्रवितको राजीवैस्रति ॥ २५॥

क्लिबारे ॥ २६ ॥

(६)निषादानां अध्ये अपरास्तिलो बसति ॥ २६ ॥

màn 100 li

तिस्रो रामीबेसित ॥ २७॥

समाने जने । १८ भ

अपरास्तिलः ॥ २८॥ अप्रसिद्धत्वात्स्वयमेवाह-

वैद्यो जनो राजन्यः समानजनः अतेः ॥ २९ ॥

(१) परिदधीयाताम्।

(२) रक्तवर्णे वत्सस्य वर्मणी सकर्णपुच्छे अञ्चन्छाते अविच्छन्ने परिदधाते ।

- (३) 'उषावत्' इति वैणवी सुषिरा कलमाची (का० औ० १६-२-५) अतिदिश्यते एवंतिधामौदुम्बरी वाऽधि विस्नत् द्वादशरात्रं वश्य-माणेषु स्थानेषु वसति।
 - (४) शिरोवेष्टनमित्यर्थः।
 - (५) एकैकस्मिनस्थाने यजमानस्तिखस्तिको राजीर्यस्ति।
 - (६) अरण्ये तिस्रो रात्रीनिषादानां सर्वापे वस्रति ।

माम्याभोजनं निवादानां सन्नयापानं च ॥ ३०॥ (१)निवादानां मध्येऽवस्थितस्यैव नियमः॥ ३०॥ संबन्सरं न याचेत्॥ ३१॥

किञ्चिद्धि ॥ ३१॥

दीयमानं न प्रत्याचचीत ॥ ३२ ॥ संवत्सरमेव ॥ ३२ ॥

यमाभ्यां (२) वा चजेत पूर्वीपराभ्याम् ॥ ३३ ॥ यमाभ्यां वा-अभिजिहिश्वजिद्धयां चजते । तत्र पूर्वे कत्वाऽपरः क्रियते । पौर्वापर्ये हि 'यम' शब्दो लोके दृद्धः ॥ ३३ ॥ पत्रं प्राप्त आह—

त्रवायद्वा ॥ ३४॥

'वा' शब्दः पक्षव्यावृत्तौ । न पौर्वापर्येण, कि तर्हि ? युगपरेव। न हि कर्मणोः पौर्वापर्ये 'यम'शब्दो वर्त्तते । तस्मात्सहैव किया । यस्तु लोके पौर्वापर्येऽपि 'यम'शब्दो हश्यते, तत्रान्यशोपपद्यत हति ॥ ३४ ॥ यमयागपक्षे कर्म निकण्यते—

दक्षिणोत्तरे(३) देवयजने ॥ ३५॥ मवतः॥ ३५॥ तत्र च—

दक्षिणमाभिजितः॥ ३६॥ भवति॥ ३६॥

पतीशालसुत्तरे ॥ ३७॥

- (१) तत्र वसता यजमानेन निवादानां सम्बन्धि यद्ग्राम्थं ब्रीहिः यवादि तस्याभोजनम् । मृन्मयापानं च तत्र वसता मृन्मयपात्रेणोदकः पानं न कर्तव्यमित्यर्थः ।
- (२) अथवा विश्वजिद्धिजिद्दस्यां यनाभ्यां दर्शपूर्णमासवत्संहः ताभ्यां यजेत । पूर्वमभिजितेष्ट्वाऽणन्तरमवश्यं विश्वजिता यजेतेत्यर्थः । (२) तच्च—आर्वेद्धिणतः कार्यमास्रकायं द्वितीयकैः ।

उत्तरे दक्षिणे कार्यं द्वितीयानां तृतीयकैः ॥ स्वीयं सोत्तरतः कार्यं द्वितीयानाञ्चतुर्थकैः । कथंचियत्र नो योगपद्यं युज्येत तत्र तु ॥ मुख्येरेवोभयत्रापि कार्यं दक्षिणतः पुरा॥ देवयजने भवति ॥ ३७॥

नामधिता । ३४ ॥

नाना प्रथमप्रयम्तिको सवन्ति, देशमेदात् ॥ ६८॥

त प्रवास अस्वास ॥ ३८ ॥

त एव वा ऋत्विजो भवन्ति, न पृथक्षेतः अभवन्ति हि ते उमयोः
रिष देवयज्ञनयोः। दक्षिणेऽष्यर्थुराष्ययं करोति। विरोधादुत्तरे प्रतिप्रस्थाता। उक्तमाचार्येण-"वचनविरोधाभ्यानन्यः" (का० श्रौ० १-८३०) इति। इह च युगपस्प्रवृत्तौ योद्यासंख्येत्र ऋत्विन्विषया भवति।
कतुद्वयाभिनिर्वृत्यर्थतया ब्रह्मा वियते, तथोद्वानाद्यः। तस्मात्तेरेव
कतुद्वयमि निर्वाहरूथमिति(१)॥ ३२॥

वाहिचें(२)दिकानि समानानि ॥ ४० ॥

वाहिवैदिकानि यान्यक्षानि दीक्षणीयादीनि तानि समानानि भव-न्ति, अगृद्यमाणविद्येषस्वात्॥ ४०॥

मानेतराणि ॥ ४१ ॥

याति पुनरान्तर्वेदिकानि तानि पृथम्मवन्ति। यथा-अर्जाषोमीः यादीनि। युद्धते एव हि निरोषस्तत्र ॥ ४१॥

कर्मसातिपाते पूर्व (३)पूर्वमिभितितः ॥ ४२॥

कर्म मवति । यथा-"सयजमाना धिष्णयानुतिष्ठन्ते" (का० श्रौ० ९-८-१२) इति ॥ ४२ ॥

(४)प्रथक्सहसे दक्षिणा ॥ ४३ ॥

दक्षिणेऽपि 'देवयजने सहस्रमुत्तरेऽपि' इति सहस्रयुक्तं चोमयोः भेवति । 'त्रैघातवी तु बाहिर्वेदिकी' इति तन्त्रेण ॥ ४३ ॥

सर्वेजित्समहात्रतः संवत्सरदिक्षः सप्ताहाभिषव-

स्तिस्र उपसदः षड् वा ॥ ४४ ॥ सर्वजित्रामैकाहः स समहावतो भवति । संवत्सरं दीक्षा भवन्ति ।

- (१) कुतः ? ब्रह्मादयो यत उभयत्र कर्म कर्तुं प्रभवन्ति ।
- (२) बेदिरत्र महावेदिः।

चारवालोरकरशामित्रो वस्यश्वस्रं समानकम्। इति।

(३) अभिषविधणयोपस्थानादौ सर्वर्त्विक्साध्ये पूर्वमभिजितः कर्म भवति।

(४) प्रथम गर्वा हे सहसे दक्षिणा।

ककेभाष्य सहिते कात्यायन शतिस्वे-

450

संवरसरादृष्वं सप्ताहेऽतीते (१)सुखा भवति । तत्र च तिस्र उपसदी भवन्ति चतस्रो दक्षिः। यड् वा उपसदो भवन्ति पका दक्षि।॥ ४४॥

(२) अभिवदा दीक्षाः ॥ ४५ ॥ भवन्ति । उपसद्ां तु विकरपः स्थित एव ॥ ४५ ॥ हाते द्वाविशेऽच्याचे मथमा काण्डका ।

रातारवरथमध्वधेवे ददात्यमी चीयमाने॥१॥

(३) शतं गवामश्वरथं चैकमसौ चीयमाने अध्वर्यवे ददाति । तच प्रान्धिक्यवयनात , 'वीयमान' इति अवणात् । तत्र च अश्वांदुतेः अः पकर्षः कियते ॥ १ ॥

उहाचे (४)वतकाले ॥ २ ॥

राताइवरथं द्वाति॥ २॥

होत्रे गलकाले ॥ ३॥

वतसमनन्तरं यञ्चलं तस्काले होने ददाति ॥ ३ ॥

ततो ब्रह्मणे ॥ ४॥

तःसमनन्तरमेव च ब्रह्मणे ददाति । 'शताश्वरयम्' इत्यतुवर्तते ॥४॥ दक्षिणाकाले सर्वेभ्यः सहस्रम्॥ ५॥

(५)ददाति । प्रकृतेभ्य एव मा मृद्धित 'सर्व'ब्रहणम् ॥ ५॥

साहस्राश्चत्वारः सहस्रदक्षिणाः॥६॥ 'साहस्रा' इति चतुर्णामपि सामान्यसंज्ञा । सहस्रदक्षिणांस्ते भवन्ति ॥ ६॥

तेषां च-

त्तीय उक्थ्यः ॥ ७॥

संस्थो भवति । ब्राह्मणे हि सर्वज्योतिस्तृतीय उक्थसंस्थः पठ्यते ॥आ

- (१) संबत्सरादृध्वं सप्ताहान्यतिकस्य सवः सुत्या ।
- (२) अग्निवद्वा चयनवरेव संवत्सरं दीक्षा।
- (३) सर्वजियहे अग्रौ चीयमाने गवां रातमस्वयुक्तं रथं च अध्वः र्यवे ददावीत्यर्थः।
 - (४) महामतस्तोनकाले।
 - (५) माध्यन्दिने सवने मदस्वतीययागात्पाक् ।

लंबाविशेषमह-(१) ज्योतिर्विद्वरपोतिः सर्वेरपोतिस्त्रिरात्रसम्मतः॥८॥ रिस ॥ = ॥

वर्षाद्यःहाः ॥ २ ॥

साधःक्षसंत्रकाः षट् कतवो भवन्ति ॥ ९ ॥

स्वर्गेकामपशुकामभातृत्यवतां प्रथमः ॥ १० ॥

साद्यःकाल्यः कतुर्भवति ॥ १० ॥

(१) रुक्मल लाटो ऽचनः चनेतो दक्षिणा ॥ ११ ॥

अरवामावं गों!! १२॥

दक्षिणा भवति ॥ १२ ॥

rugià equa u 20 11

तमस्यं गां चा उद्गाने ददाति ॥ १३॥

प्राकृतस्वानिष्टिनिहत्तुवोगास् ॥ १४ ॥

प्राष्ठतस्य दक्षिणाजातस्य च न निकृत्तिः। कुत यनत् ? उद्गातृयोः गादभ्यस्य ॥ १४ ॥

वर्ष प्राप्त आह-

निवृत्तिः अतुयोगात् ॥ १५॥

निवृत्तिः प्राकृतस्य भवति । कुत पतत् ? कतुना हि युज्यते च तस्य 'अइवः इवेतो दक्षिणा' इति । तेन यहिंसणायुक्तं तिमवर्तत इति ॥ १५ ॥

वचनादेकस्य ॥ १६ ॥

यन्तम् 'उद्घाने ददाति' इति तत्कतुयोगेऽपि वचनादित्यदोषः ॥१६॥ दीर्घव्याधिप्रतिष्ठाकामानाचकामानां वितीयः॥ १७॥

साद्यःको भवति। एषामत्राधिकार इत्यर्थः ॥ १७॥

(३)अववैकविश्वा दक्षिणाऽद्यो वा ॥ १८॥

(१) प्रथमो ज्योतिः, द्वितीयो विश्वज्योतिः, तृतीयः सर्वज्योतिः, उद्भ्यसंस्थः चतुर्थस्त्ररात्रसंमितसंज्ञः।

(२) रुक्माः सौवर्णः अश्वस्याभूषणविशेषो ललाटेऽलङ्कारतया

भारणीयः । ताहुशश्च श्वेतोऽश्वो दक्षिणा भवति ।

(३) अश्व एकविशो यासां ता विश्वतिर्गाव एकोऽश्वश्च वः क्षिणेत्यर्थः ।

तत्रभ्र विकल्पः॥ १८॥

हीनस्यातुकीः ॥ १९॥

अनुकीर्नाम खाद्यःकः, स (१)हीनस्य भवति । यः कर्मणा हीन दव तस्यासौ भवति ॥ १९ ॥

साइवर दातं दक्षिणाऽह्वो वा ॥ २० ॥ 'वा' इति विकल्पः ॥ २० ॥

विद्विजिच्छिल्पः ॥ २१ ॥

विश्वजिष्किल्पे नाम साद्यः कः ॥ २१ ॥

तत्र विशेषः-

(२)यथाद्रव्ये जनपदे यजेत तेषां यथोत्साहं द्यात् ॥२२॥ दक्षिणाः । यद्द्व्यं यत्मिन्यस्मिन् जनपदे प्रायोवुत्या तेषां यथोत्साहं दानम्॥ २२॥

(३)तान्याचष्टे-

आ(४)जानेयानपरजने ॥ २३ ॥ आजानेयानस्वानपरजने दहाति ॥ २३ ॥ (५)प्राच्येषु हस्तिनः ॥ २४ ॥

ददाति ॥ २४॥

स्रदेवतरीरथानुदीव्येषु ॥ २५ ॥ वेसरीयुक्तात्रथानुदीव्येषु ददाति ॥ २५ ॥ स्रवस्वप्रतिनिधिर्वा ॥ २६ ॥

दीयते ॥ २६॥

(१) अनुजाद्प्यघमो भवति स हीनः तस्य।

(२) यानि यानि उत्हृष्टानि द्रव्याणि यम्मिन् जनपदे स यथाद्रव्यः तस्मिन्देशे यथोत्साइं यथाशक्ति इत्यर्थः ।

(३) 'यथाद्रव्यमाचष्टे' इ० पा०।

(४) अपरतने प्रत्यक्प्रदेशे यागे क्रियमाणे आजानेयानश्वान्दद्यात्। आजानेयाः कुळीनाः स्युविनीताः साधुवाजिनः।

(असर० २-८-४४) इत्यभिधानादाजानेयानभ्यान् प्रत्यक्वदेशे यागे क्रियमाणे दक्षिणात्चेन दचादित्यर्थः।

(५) प्राच्यां दिशि हस्तिनो दद्यात्।

द्वाविद्येऽच्याये पेकाहेषु इयेननिरूपिका वृतीया कण्डिका। २७३

अप्रसिद्धः वादुष्यते —

(१)चेन्यनडुरसीर्थान्यप्रयदाल्बियुनसहानसा-

रोहणविमितज्ञयनानि ॥ २७॥

भेग्वादीनि दासमिथुनान्तानि प्रसिद्धानि । महानसोपयोगिकं द्रव्यं ताम्चर्यादि महानसघान्द्रेनोच्यते । आरोहणं च युग्यम् , विमितः शयने प्रसिद्धे एव, विभितं गृहम्॥ २७॥

हति हाविशेऽध्याये हितीया कण्डिका ।

इयेनोडिं जिन्हरतः ॥ १ ॥

रयेनो नाम साद्यकः पञ्चनः। लोऽभियरते। सवति ॥ १ ॥ यञ्जीष्ययो न जायेर्हतदेवयजनञ् ॥ २ ॥ भवति ॥ २ ॥

विदाहि वा ॥ ३ ॥

यत्र जाता ओषधयो दह्यन्ते (२)अम्न्यादिना ॥ ३॥

(३)वृक्षस्तम्बिङ्गस् ॥ ४ ॥

यत्र वृक्षाः, स्तम्बाक्ष विख्यास्तव् वृक्षस्तम्वविख्यम् ॥ ४ ॥

वा निवेस्तस् ॥ १ ॥

वा निर्देषणम्ला वृक्षा भवन्ति वा अनिर्देकणम्लाः । अपरे तु स्त्रः द्वयमन्यया वर्णयन्ति—वृक्षस्तस्विच्छन्नं वा अच्छिनं वा' यदा छेदनं तदा निर्वृक्षणम्ला वृक्षा भवन्ति ॥ ५ ॥

द्विणायवणम् ॥ ६ ॥

देवयजनं भवति॥ ६॥

अचवाली यूपः स्प्यागः॥ १॥

- (१) घेतुः प्रसिद्धा, अनुदुद् बलीवदः, सीरं हलम्, घान्यं गोधू-मादि, 'पल्यं' पलादिमानाईम्। पल्यः पलायनशीलः स चासौ दासश्च तयो मिथुनम् दासीदासौ, महानसं ताम्रचर्वादि गृहोपकरणम्, आरो-हणं हस्त्यश्वादि, विभितं गृहम्, शयनं सद्वादि, पतानि दद्यादित्यर्थः।
 - (२) दावाग्तिना।
- (३) वृक्ताः पळाक्सादयः स्तम्बा घोरिणकाशाद्याः। स्तम्बानां छेदनं स्यादेव।

```
२७४ कर्कमाध्यसहित कात्यायनश्रीतस्त्रे-
```

रूप्यस्येवामं भवति ॥ ७ ॥

तैल्वको बाधको बा॥ ८॥

युपो भवति । (१)तिस्वकः श्रसिद्धः । बाधको यो गिरिमालक इति प्रसिद्धः ॥ ८॥

इध्मा (२)वैभीदकः ॥ ९॥

अवति ॥ ६ ॥

(३) शर्मयं वार्हः ॥ १०॥

शरमयं च बहिंभंबति॥ १०॥

अधिववणे (४) शवनभ्ये ॥ ११ ॥

धावं येना इनसा ऊढं तन्नाभिसम्बन्धिनी अधिषवणे फलके ॥११॥

रथी हविर्धाने॥ १२॥

नानसी ॥ १२॥

लोहितः सवनीयोऽग्रपे रहवते ॥ १३ ॥ 🦠 🦈

भवति ॥ १३॥ लोहितवाससो लोहितोच्णीषाः प्रचरन्त्यृत्विजः॥१४॥

लोहिते वाससी येषां ते लोहितवाससः लोहितोष्णीषाश्च प्रच-रन्त्युत्विजः(५) ॥ १४ ॥

निर्वाताः ॥ १५॥

कण्डावसक्त(६)यञ्चोपवीताः ॥ १५ ॥

उद्ययम्बानः ॥ १६॥

उद्गता ज्या धनुषा येषां ते उज्ज्यधन्त्रानः(७)। आरोपितधन्त्रान इलर्थः॥ १६॥

कलापिनः ॥ १७॥

कळापराब्देन (८)मखोच्यते । तत्वन्त इत्यर्थः॥ १७॥

- (१) तिल्वकः-तिणिसः।
- (२) बहेडकः।
- (३) शरकाण्डस्येति श्रोअनन्तः । मौक्जं वासुदेवः ।

(४) शर्व मृतं येनानसा शकटेनोढं भवति तच्चकस्य यन्नभ्यं फलकं ततो घटिते अधिषवणफलके भवत इत्यर्थः।

- (५) 'दीक्षणीयादिखु' इति शेषः।
- (६) उत्तरीया इति बासुदेवानन्ता ।
- (७) ऋत्विजः कर्म कुचान्त ।
- (८) शरपूर्णा चर्ममयी भस्ता।

(१)काणखोरक्टवण्डाहुनभिश्रा नद-नव

दक्षिणा ददाति लिङ्गानाम्॥ १८॥

काणाः-प्रसिद्धाः। स्रोरा-लङ्गाः(२)। कृटाः-सग्तरुङ्गाः। वण्डाः-छिः न्नपुच्छाः । इरुतमिश्राः-ज्वरगृहीतमिश्रा इत्यर्थः । 'नव काणा(३)स॰ यति' 'तव खोरान्नयति' एवमादि अवणात् ॥ १८॥

(४)पुरुषाणां वा दानाधिकारात्॥ १९॥

पुरुषाणां वा नवसङ्ख्यासम्बन्धः। प्रतिपुरुषं नव नव ददाः र्वाखर्थः ॥ १९ ॥

प्राकृतस्य (५)वा नयनं भेदेन ॥ २०॥

प्राकृतस्य वा दक्षिणाजातस्य पतानि छिज्ञानि भवन्ति, तेषां च नयनं भेदेन। एवं प्रकृतिरचुगृहीता सवति। 'नव नव नयति' इति च यथाश्रतम् ॥ २० ॥

दक्षिणाकाले (६)कण्टकेरेना विरुजेयुः ॥ २१॥

समाख्ययोद्वातारः ॥ २१ ॥

(७)उपतप्तास्वचुपतमानामाच्यम् ॥ २२ ॥ उपतसासु या अनुपतसाः तदीयमाज्यं भवति ॥ २२ ॥ (८)साराष्क्रधर्मा हिरण्यस्रवत् ॥ १३॥

(१) काणादिचिह्नयुक्तानां गवां नवसङ्ख्या नवसङ्ख्या दक्षिणा द्दातीत्यर्थः। (२) पादेन खञ्जाः। (३) नयतिद्रीनार्थः।

(४) प्रतिपुरुषं प्रत्यृत्विजं नव-नव काणादिका नयति ददाति । कुतः ? दानाधिकारात् दानस्य प्रस्तुतत्वात् दानं च पुरुषेभ्य पव ।

(५) 'बा' शब्दः पूर्वपक्षनिरासार्थः । न प्रतिपुरुषं नव-नव किन्तु प्राकृतस्यैव गवां मतस्यैतानि काणादीनि भवन्ति । तस्य च दक्षिणा-दानं भेदेन भवति नवभिर्नयनं भवतीत्यर्थः।

(६) कण्टकैर्विल्वादिवृक्षोद्भवैरेनाः काणादिकाः विक्तेयुः वित्रु-

ख्येयुरिस्यर्थः ।

(७) उपतप्तासु न्वरितासु गोषु मध्ये या अनुपतप्ताः रोगरहिताः

तालामाज्यम् ।

(८) साद्यक्रधर्मा लोहितबस्रादयः, यथा वाजपेये हिरण्यस्रजो यथोपयुक्तं दीयन्ते, एवमजापि येन येन यद्यद्रस्त्रादि परिहितं तत्तत्त्रसमै देयमिति भावः।

कक्माष्यसाहते कात्यायनश्रीतस्त्रे—

'साद्यक्त'राब्देनात्र रयेनोऽभिधीयते । तस्य धर्मा लोहितोष्णीषाः दयः हिरण्यसम्बद्यस्योपयुक्तं तत्तस्य भवति ॥ २३ ॥

एक जिके दक्षिणा षष्टिशतः पद्च॥ २४॥ पक्तिकः षष्ठः सायकाः (१)तत्र षद्पष्टिशतं दक्षिणा ॥ २४॥

सायदक्षयमीः॥ २५॥ 'व्याख्यास्यन्ते' इति स्त्रद्येषः॥ २५॥

दीक्षादि सचाः सर्वे क्रियते ॥ २६ ॥ अञ्चः ॥ २६ ॥

सह पर्तालभते ॥ २७॥

अग्नीषोमीयसवनीयानुबन्ध्यान् । सद्यस्ते च सति सौत्येऽहिन तर्वे कर्तव्यम् । तत्र च स्थानित्वात्(२)सवनीयकाळ एव पश्नामाळम्मः तदीय एव स्थाने युक्त इति स्वस्थानं सवनीयो अग्नीषोमीयस्तु स्वस्थानादुत्काछितः परतो गच्छति ॥ २७ ॥

पुरोडाको वाऽग्नीषोमीयस्थाने ॥ २८॥ "अग्नीबोमीयोऽतः पद्युः" (का० औ० ८-७-२३) इत्यत्राऽग्नीबे।

मीयः पुरोडाशो वा भवति वा न वेति ॥ २८॥

वपान्ते सुब्रह्मण्यानिवृत्तिः॥ २९॥

वपान्ते या सुब्रह्मण्या सा न भवति ॥ २९ ॥

प्रतिद्शं वसन्त्यृत्विजः॥ ३०॥ अतश्च पूर्वस्मिन्नहानि ऋत्विग्वरणं कर्तव्यम्(३)॥३०॥

पुरस्ताचोजने होता॥ ३१॥

'वस्ति' इतिशेषः ॥ ३१॥

इतरे को शप्रत्यवायेन को शप्रत्यवायेन ॥ ३२ ॥ इतर उद्गात्रादयः पृर्वपृर्वपरिमाणापेक्षया कोशप्रत्यवायेन (४)॥३२॥

⁽१) 'तस्य' इ० पा० ।

⁽२) सवनीयं नियुज्य ततो ऽन्वन्ध्या पुनरम्नीषोमीय इति घोषणा । संबनीयानन्तरमग्नीषोमीय इति सम्प्रदायः।

⁽३) तदेव विवृणोति।

⁽ ४) क्रोशप्रयवायेनापचयेन परिमितेऽध्वनि वसन्ति ।

द्वाविशेऽत्याये पेकाहेषु साद्यक्तधर्मनिकविका तृतीया कविडका । २७७

उद्यानोत्तरतः ॥ ३३॥

बस्तति विभिः कोतीः ॥ ६३ ॥

अध्वर्षुः पश्चात् ज्ञह्मा दक्षिणतः ॥ ३४ ॥

वस्ति॥ ३४॥

चतुर्भिरइवरथैः सर्वारहतिभिरावहन्त्येनास् ॥ ३५॥ होत्रादीन् (१)॥३५॥

(२)यथाक्रोद्यामद्वाः ॥ ३६ ॥

यस्य यावन्तः कोशास्तस्य तावन्तोऽभ्या मवन्ति रथे॥ ३६॥

ततो नवनीतमाउवम् ॥३७॥

ततो हतेर्यज्ञातं नवनीतं तदाज्यं भवति॥ ३७॥

सोमकवणस्त्रिवत्सः (३)साण्डः ॥ ३८ ॥

विवरसः विवर्षः ॥ ३८॥

(४)वेदिकवरा ॥ ३९ ॥

(५)सस्यमाछिनी सवति॥३९॥

ब्रीहीन्यवान्वा पक्तानच्यवस्यति(६)॥ ४०॥

(७)खल उत्तरवेदिः॥ ४१ ॥

भवति ॥ ४१ ॥

(८)घान्यवलः प्रत्यवात् ४२॥

(१) खबोदुग्धेन श्लीरेण पूर्णाः सञ्जीरा द्वतयश्चर्ममयो अस्त्रा येषु रथेषु तैश्चतुर्मारश्वयुक्तरथैः पनान्यजमानपुरुषा आवहन्ति आनयन्ति ।

(२) रथेषु क्रोशसंख्यानतिक्रमेणाश्वा युज्यन्ते होतुश्चत्वारः, उद्गाः

तुस्रयः, अध्वयोद्धी, ब्रह्मण एक इत्यर्थाः ।

(३) आण्डसंयुक्त ऋषमः।

(४) सस्याद्या मूमिवैदिर्भवति।

(५) अतपत्र वसन्तस्य नियमेनेति छिङ्गयते । तिङ्गशेषमाह-त्रीहीनिति ।

(६) अत्र ब्रीहीन्यवान् वेदित्वेनाध्यवस्यति । ब्रीहियवसस्येनाद्या

भूमिवेदिभीवतीत्यर्थः।

(७) अत्र सन्देहः किं घान्यखलः पांसुखलो वा ?

(=) खळ इत्युक्ते घान्यखळः प्रतीयते, ज्ञायते यतः।

कक्ताध्यसाहत कात्यायनश्रोतस्त्रे-

प्रयोगप्रत्ययौ तत्रैव भवतः॥ ४२॥ ये बेदिमाभितस्तानुत्तरवेदिदेशे सुझन्ति॥ ४३॥ धान्यखळे सति सम्निधानात वेदिममितो ये सस्यविशेषास्तानुः त्तरवेदिदेशे मध्नन्ति(१)॥ ४३॥

पाएंसुखलो(२)वा प्रत्ययाविद्योषात् (३)प्रकृत्यः वयहाच ॥ ४४ ॥

'वा' शब्दः पक्षान्तरपरिश्रहे। पार्णसु खले बोत्तरवेदिर्भवति। तत्रापि हि 'सलं रान्द्रयोगप्रत्ययो स्त प्रवेति । अपि चैवं प्रकृतिरनु प्रदीता भवति ॥ ४४ ॥

(४)खलेबाली यूपो लाङ्गलेषा॥ ४५॥ बले धारणं यया कियते सा खलेवाली यूपकार्ये भवति । सा व पूर्वमेव निहिता द्रष्टव्या ॥ ४५॥

कलापी चषालार्थे ॥ ४६॥ कलापी च तृणप्लकः चपालार्थे समति ॥ ४६ ॥

निर्देत्तग्रहणात् पाकृतनिवृत्तिः॥ ४७॥

'निर्देता हि खलेवाली यूपकार्ये विद्यीयते'।

अतश्च प्राकृतानां यूपधर्माणां निर्वृत्तिर्भवति(५)। यूपशब्दो हि सं-स्कारनिमिक्तः। छेदनाद्यश्च स्वर्ववमूहनपर्यन्ताः यूपस्वरूपम्युक्ताः, न कार्यप्रयुक्ताः । तस्मात्साध्कां निर्वृत्तप्रहणात्माक्वतिनृत्वाः' इति॥४०॥

आवेशादनिवृत्तिः॥ ४८॥

(३) ''मक्त्यनुप्रहाश्व'' इति पृथक्त्वं बर्छिन पुस्तके।

⁽१) मर्दयन्ति स्तम्बेभ्यो विमोकार्धमनडुद्धिः परितो गच्छद्भिरा-

⁽२) 'वा' सिद्धान्ते । पार्थसुखळो । छिराशिः प्रस्थेतन्यः । हुतः १ प्रत्ययाविशेषात् । 'खल' इत्युक्ते धान्यकलोऽपि प्रतीयते पांसुखलोऽपि प्रतीयते ।

⁽४) श्रौताभिधानं पर्यायेण ज्याचछे। खलमध्ये निखाता मेथी खलेवाली सैव यूपो भवति । लाङ्गलेषा हलस्येषा हलसम्बन्धी ईपा-दण्डो यूपः कार्राः।

⁽५) निर्वृत्ताया निष्पन्नाया लोकसिद्धायाः खलेवाल्या प्रहणात् प्राकृतस्य यूपन्नश्चनादेर्घामीजातस्य निवृत्तिभीवतीत्यर्थाः ।

हाविशेऽध्याये पकाहेषु बात्यस्तोमनिकपिका चतुर्थी कण्डिका। २७६

स्यादेतदेवं यदि कार्यविशिष्टा धर्मा भवेगुः । न चैते कार्यदि-शिष्टाः । स्वरूपप्रयुक्ता पवैत इति । न हि यूपशब्द आकृतिवचनः । अलौकिकत्वारसंस्कारनिभित्तः । सरसु संस्कारेषु प्रयोगात्(१) ॥ ४८॥

(२)डर्वरादि वा हिलीगस्य सन्नियः ॥ ४२ ॥

दर्बरादिधर्मजातं द्वितीयस्य भवति । तत्सिविधौ हि तापठ्यत इति । वा सर्वेषां भवति(३) साद्यकान् प्रकृत्य श्रवणात् । यत्तु 'स-विधानाद् द्वितीयस्य'इति, तत्रोव्यते 'अवश्यमेव पठ्यमानं कस्यचिदेव सिविद्विं भवति' इति ॥ ४९ ॥

इति द्वाविशेऽध्याये त्तीया कण्डिका।

बाह्यस्तोमाश्चरवारः ॥ १ ॥

व्रात्यस्तामसंबक्षाध्यः वारः कतवी भवन्ति । वास्याः प्रसिद्धा एव विषुष्ठवं पतितसावित्रीकाः । प्रायश्चित्तार्थस्वाक्ष लौकिकेऽग्नौ भवन्ति । न ह्येतराधानं प्रयुज्यते, अतद्कृत्वात् । तदुक्तमाचार्येण 'स्थपतीर्धि' प्रकृत्य 'लौकिक' (का०श्री० १-१-१२,१४) धति ॥ १ ॥

बितीय उद्ध्यः ॥ ३ ॥

सवति ॥२॥

ब्रात्यगणस्य ये सम्पाद्येयुरते(४)प्रथमन यजेरन् ॥ २ ॥

सम्पादनं च गायनमर्तकादीनाम्। तेषां प्रथमेऽधिकारः॥ ३॥ द्वितीयेन निन्दिता (५)नृश्वः साः ॥ ४॥ नृशंसत्वेन ये निन्दितास्तेषां द्वितीये ऽधिकारः॥ ४॥

(३) प्रकरणात्।

ें (५) ये नृशंसा निन्दिता नृभिर्मनुष्यैरभिशंसनेन पापाध्यारोपणेन निन्दिताः गृहिताः शांतिभिर्वहिष्कृताः ते द्वितीयेन यज्ञेरन् ।

⁽१) पर्युक्षणप्रोक्षणादेरनिवृत्तिः निवृत्तिः न भवति । कुतः ? 'क्षावे-शातु' । ते हि खळेवाल्यामप्यावेश्यन्ते विभीयन्ते ।

⁽२) वेदिरुवंरादिकं घर्मजातं द्वितीयस्य साह्यक्कस्य भवति । कुतः ? सन्नि घेः ताण्ड्ये (१६-१३) द्वितीयस्य संनिधौ पाठात् ।

⁽४) ये ब्रात्या नृत्यगीतचाद्वयशस्त्रचारणादौ स्वयं प्रवीणाः सन्तः उपदेष्ठारो भूत्वा स्वां विद्यां ब्रात्यसमूहस्य सम्पादयेयुः शिक्षेयुः पाठयेः युः ते प्रथमेन यजेरन्।

तृतीयेन किन्छाः ॥ ५ ॥

कानिष्ठा लचनः॥ ५॥

च्येष्ठाश्चतुर्येन ॥ ६ ॥

अधिकियन्ते ॥ ६॥

ज्येष्ठराहदार्थमाह-

(१)अपेतप्रजनना (२)स्थविरास्तदारुषाः ॥७॥

तेषां यो(२) दृश्यक्षसत्तमः स्याद् द्रव्यवत्तमो वाऽतूः चानतमो वा तस्य गाईपते दक्षिरत् ॥ ८॥

स्र ग्रहपतिः कर्तव्य इत्यर्थः॥ ८॥

तस्य भक्षमनुभक्षयन्त आसीरन्॥ ९॥

तस्य गृहपतेर्भक्ष(४)मनु इतरे (५)भक्षयन्ति । अतश्च गम्यते उम-यसंस्काराऽयं द्रव्यस्य पुरुषस्य च ॥ ९ ॥

वारयधनानि भवन्ति॥ १०॥

बह्यमाणानि ॥ १०॥

(६)तिर्धङ्नद्धमुष्णीषंप्रतोदः(७) ॥ ११॥

प्रतोदः प्राजनः ॥ ११ ॥

ज्याहोडोडयोग्यं धनुस्तदाख्यम्(८) ॥ १२ ॥ ज्याहासेन यदयोग्यं घनुः तज्ज्याहोडाख्यम् ॥ १२ ॥

वासः क्रुण्णां कृत् ॥ १३ ॥

क्रच्णमशितं येन (९)तत्करणेन(१०)क्रच्णशित्युच्यते । क्रच्णसुत्रोतः

- (१) अपगतप्रजननेन्द्रियसामर्थ्या यौवनापगमेन निर्वायंप्रजननाः।
- (२) स्थविरा वृद्धास्तदाख्याः।
- (३) नृशंसत्तमः अत्यन्तं कूरकर्मा।
- (४) 'अन्वितरेषां मक्ष' इ० पा०।
- (५) इतरे यजमानाः।
- (६) तिर्यङ्नद्धं ति 'ग्बद्धसुग्णीषम्।
- (७) प्रतोदः प्राजनः तीक्ष्णात्रो चंशादिदण्डः ।
- (८) ह्वोडितर्गत्यर्थः । ज्यारहितः केवलो घतुर्दग्डो ज्याह्वोड उच्यते।
- (ह) 'तद्कारलोपेन कृष्णशमिति' इ० पा०।
- (१०) कृष्णशमितिप्रादो । कद्भ कर्नुरं वासः कृष्णशम्। कृष्णम-शितं येन कृष्णाशमिति प्राप्ते अकारलोपश्लान्दसः।

द्वाविद्येऽभ्याये एकाहेषु ज्ञात्यस्तोसनिकापिका चतुर्थी कण्डिका । २८१

मित्यर्थः । तत्कड्वाच्यम् ॥ १३॥

अकृष्णं कृष्णद्शं वा नद्ष्यद् ॥ १४॥

वा अकृष्णं कृष्णाभिद्याभिस्तत्तत् कर्वाष्यम् । उभयत्र हि क्ट्रुः शब्दः प्रसिद्धः ॥ १४ ॥

फलकास्तीणीं विषयः ॥ १५ ॥

(१)फलकैरास्तीणों विषधः। यो नामैना न गन्छति ॥ १५॥ अद्यवा(२)इषतराभ्यां (३)कम्याभ्यां युक्तः स्याः

हिरधेने ॥ १६॥

एके आवार्याः कम्प्राद्वाद्वतरयुक्तं रथमिच्छन्ति । एकप्रहणं वि करुपार्थम् ॥ १६ ॥

निस्ताराज्यः॥ १०॥

(४)निष्क आभरणविशेषः। स राजतो यवति ॥ १७ ॥ अजिने (५) पार्श्वसहिते कुरण(६)यस से आविके ॥ १८॥ आविके वर्षणी पार्थसंस्थेने । कृष्णसिन्धती ॥ १८॥

तद्वहरूतेः ॥ १९ ॥

धनम् ॥ १९॥

एवमेनाजिनानीतरेषास् ॥ २०॥ इतरेषां वात्यानामेवमेवाजिनानि सवन्ति ॥ २०॥

(७)द्रामतृषाणि चल्कान्तानि डिच्डान्याविकानि

बास ऐसि लोहितान्तानि कुष्णान्तानि

वा तदाख्यानि ॥ २१ ॥

दामतृषाणि द्विचूडानि लोहिनान्तानि कृष्णान्तानि वा बलूकान्ता-

(१) फलकैरास्तीर्णो विस्तारितो रथः। स च विषयः विविधं कुटिलं पथो गच्छतीति विषयः यो मार्गेण न विल्ताति ।

(२) अइवतरो वेसरः। (३) कम्पवातयुक्ताभ्याम्।

(४) रजतनिर्मितं कण्डाभरणम्।

(५) पार्श्वतस्तन्तुभिः स्यूते । (६) वरुक्षः शुभ्रवर्णः ।

(७) तृषशब्देन वस्त्रदशोच्यते । दामानीच दामाकारा रज्जुक्षपा दशा येषां तानि । बलुकः कृष्णो लोहितो वा वर्णः, सोऽन्ते येषां तानि ।] हे चुडे येषां तानीत्यादिः ।

THO BE

नीत्याख्यानि ॥ २१॥

दामनी हे हे ॥ २२ ॥ उपानहीं च कर्णिन्यी कृष्णे स्थातामित्येके ॥ २३ ॥ एके अकृष्णे इति(१) ॥ २३ ॥

मागधदेशीयाय (२) ब्रह्मबन्धवे दक्षिणाका ले

ब्रात्यधनानि द्युः ॥ २४ ॥

सवे एक जात्याः मगचदेशनिवासी यः स ब्रह्मवन्धुमिर्जायते स मागचदेशीयब्रह्मवन्धुः तस्मै द्युः । अपरे तु मागर्थं गयमाहुः । तत्र यो देशीयः ईपदसमासौ देशीय इत्युच्यते तस्मै द्युः ॥ २४ ॥

आविरतेभ्यो वा ब्रात्यचरणास् ॥ २५ ॥ अथवा-ये ब्रात्यचरणादविरतास्तेभ्यो दृष्टुः ॥ २५ ॥ पर्व हि श्र्यते—

तेष्वेव मृजाना धन्तीति श्रुतेः(३) ॥ २६ ॥ तेष्वेष वार्येषु मृजाना आत्मानं शोधयन्ति इति ॥ २६ ॥ त्रयस्त्रिश्वतं त्रयस्त्रिश्वतं दक्षिणा द्युः ॥ २७ ॥ पक्षकाः(४) ॥ २७ ॥

विगुणा गृहपतिरित्वेक ॥ २८ ॥ एके आवार्या गृहपतिः 'विगुणा'ददाति' इतीच्कन्ति ॥ २८ ॥ व्रात्यस्तोमेनेष्ट्रा वात्यभावाद्विरमयुः ॥ २९ ॥

'बिरमतिः' उपरम उठ्यते ॥ २९ ॥

व्यवहार्या भवन्ति ॥ ३०॥ अतः परम्(५)॥ ३०॥

अग्निष्दुत् ब्रह्मवर्चसवीयीत्राच्यतिष्ठाकामानां

चश्चापूत इव मन्येत ॥ ३१ ॥ 'शग्निष्ट्त' नामैकाहः। सःवीर्याकायबद्धवर्वसमितिष्ठाकामानां

⁽१) एकैकस्य वस्त्रस्य हे हे दामनी हे हे दशे स्याताम्। उपानही च कर्णिन्यो कर्णी कर्णाकारी चर्मावयवी स्तो ययोः।

⁽२) जातिमात्रोपेतबाह्मणाय ।

⁽३) ''यस्मा पनइद्ति तस्मिन्तेव सृजाना यन्ति" (ताण्ड्य १७-१)।

⁽ ४) त्रयस्त्रिश्चतं गा दक्षिणाः सर्वे द्वात्या दद्यः।

⁽५) विषाद्याजनभोजनादियोग्याः भवन्ति ।

द्वाविशेऽध्याये एकाहेषु अनिन्दुान्निकापेका पञ्चमी कण्डिका। २८३

भवति । (१) ध्यक्षाप्त इव मन्येत' । यश्चातमानं कर्मदोषादप्तमिव मन्यते ॥ ३१ ॥

(१)यज्ञावेष्ठस्य च ॥ ३१ ॥

'अभिन्दुद्' सवति ॥ ३२ ॥

(३)यस्माद्या चिन्ना, शोरन् ॥ ३३ ॥

'स वा सवति' इति विकारपः। प्रतिष्ठाकामानामग्निष्टुतां भेद इत्युक्तमेव॥ ३२॥

इति द्वाविदोऽध्याये चतुर्थी कण्डिका ।

छान्द्रीरचे विदेशों (४)वधाकामम् ॥ १ ॥ भवति ॥ १॥

सुब्रह्मण्याग्नेयी ॥ २॥

अत्राग्निष्टुतसु सुब्रह्मण्याग्नेची अवति ॥ २ ॥

एवं (५)यथास्तुत् ॥ ३ ॥

इन्द्रस्तुतिः 'पेन्द्री' खुब्रह्मण्या, सुर्यस्तुतिः 'सौरी'। इन्द्रस्तुदाद-यस्तु सार्वमेधिकाः ॥ ३ ॥ स्वभैमेके ॥ ४ ॥

अपरे सर्वम् अग्निष्टुत्याग्नेयमिष्छन्ति । प्रकृतौ यत्रेन्द्रपदं तत्राग्निः पद्मयोग इति । एके तस्रेच्छन्ति, उक्तविशेषविधित्वात् । उक्तो हि विशेषविधित्व । "तस्याग्नेच्या महा भवन्त्याग्नेच्यः पुरोक्चः" (श्रव्याविधित्व । "तस्याग्नेच्या महा भवन्त्याग्नेच्यः पुरोक्चः" (श्रव्याविधित्व । इत्येवं महदेवतास्थाने अग्निष्टुत्यग्निपदमृद्यते । पुरोक्चस्तु अस्याजराः संवन्धित्यः। एविमिन्द्रस्तुदादिष्विपि(६) उत्तराज्ञवाः कपुरोक्चो भवन्ति ॥ ४॥

⁽१) यो ब्रह्महत्यादिवापादपूतमपवित्रमात्मानमिव मन्येत तस्य पाः पस्य निवृत्त्वर्थमन्निष्टुद्भवति । (२) यज्ञो विस्रुष्टो यस्य सः तस्य ।

⁽३) प्रारब्धे सोमयागे प्रधानयागानां मध्ये विस्मृतं यदा तदा प्र-धानविस्मरणाद्विसंशेरन् विस्नृष्टा भवेयुः। तेषामपि अग्निष्टुद्भवति।

⁽४) कामं कामं प्रति अग्निषुति छान्दोग्ये विशेषोऽस्ति नाध्वर्यवे।

⁽५) इन्द्रस्तुत्स्यंस्तुद्वेश्वदेवस्तुतः एते पृथगेकाहा भवन्ति । 'यः थास्तुत्' यो यद्देवत्यः स्तुत् तत्र तद्दवस्या सुब्रह्मण्या भवति ।

⁽६) ''आपश्चित्'' (वा॰ सं॰ ३३-१८) इत्यादि।

यघोत्साहं द्यात्॥५॥ अग्निप्डुति॥५॥

आग्नेयानामनङ्कदिरण्याद्याजानाम्(१) ॥ ६ ॥

(१) त्रिवृतअत्वारः ॥ ७ ॥

कतवा भवन्ति ॥ ७॥

(६)अ**निरुक्त**प्रातःस्**वनः प्र**थन (४)हे**ंसुयज्ञः** ॥ ८॥ तस्य 'र्ष्सुयञ्च' इति विशेषसंज्ञा ॥ ८॥

आमकामस्य वा ॥ ९ ॥

भवति ॥ ९ ॥

(५)द्विणाद्वरथश्चतुर्युक् श्वाबोऽन्यतमः॥ १०॥ श्यावः-स्यामवर्णः॥ १०॥

(६)तेजोब्रह्मवर्चसपुरोधाकामस्य बृहस्पतिसवः ॥११॥ भवति। 'बृहस्पतिसव' इति विशेषसंद्वाऽस्य ॥ ११॥ देवसुद्वीर्थिष निर्वपति ॥ १२॥ अत्र ॥ १२॥

आतिप्राह्मवर् प्रहं गृह्णाति (७)वृह्रपते आति पद-र्थ हाति ॥ १३॥

'अतिमा**ह्यव**े' इति प्रहणहोमकालौ(८) लभ्येते ॥ १३ ॥

- (१) अग्निदेवत्यानामनडुहां हिरण्यस्याश्वानामजानां च यथोत्साहं विसंख्यात्रभृतीनां दानं कुर्यात् ।
 - (२) त्रिनृत्स्तोमका अग्निष्टोमसंस्थाश्चत्वारः कतवो भवन्ति ।
 - (३) अनिरुक्तं प्रातःसवनं यस्यासौ प्रथमः।
 - (४) आप्तुमिच्छुरीप्**सुः** तस्येप्सोर्यज्ञः । हिरण्यादीनामीप्**सुः** ।
- (५) अस्य प्रथमस्य त्रिवृतश्चतुर्मिरश्वैर्युकोऽश्वरथो दक्षिणा। तेषां चतुर्णाः मध्ये अन्यतमः श्याचो भवति कपिशः।
- (६) प्रतित्रवयकामिनो बृहस्पतिसवसंको द्वितीयस्त्रिवृद्गिनशेम-संस्थो भवति।
- (७) बृहस्पतेऽअति यृद्ग्रीः० (वा० सं० २६-३) इत्यनेन मन्त्रेण बृहस्पतिदेवतं ग्रहं गृहाति ।
- (८) "तत्रातिष्राद्यबहणं ज्यहे पूर्वे" "माहेन्द्रममुहोमः" इति (का॰ श्रौ॰ १२-३-२, ५) सूत्राभ्यां विहितां इति शेषः ।

बाविशेडध्याये एकाहेषु बृहस्पतिसर्वनिकपिका पश्चमी कण्डिका। २८५

उपालम्भ्यो (१)बाईस्पत्यः ॥ १४॥ वितीयः सवनीयो भवति ॥ १४॥ निहितेषु नाराश्चाःसेषु प्रातःसचनेऽनपाकुर्वन्नेकाः

द्या दक्षिया व्यादिकाति ॥ १५ ॥ नाराश्यस्यमसेषु प्रातःसवने स्थापितेषु अपृथक् कुर्वभेवैकाद्या दक्षिणा व्यादिशति ऋत्विग्म्यः ॥ १५ ॥

(२) अश्वद्याद्शा माध्यन्दिने ॥ १६ ॥ पतस्मित्रेय काले न्यादिशति ॥ १६ ॥ अपाकरोत्युभयीः ॥ १७ ॥

(३)गोमण्डलात् । अत्र च 'अभ्बाहुतेः' अपकर्षः 'दास्यन्' इत्युः कत्वात् ॥ १७ ॥

एकाद्वा तृतीयसवने ॥ १८ ॥
व्यादिशति। पतस्मिन्नेव काळे तृतीयसवने व्यादिशनाम् ॥ १८ ॥
अनृबन्ध्यवपाहोमान्तेऽपाक्तरणम् ॥ १९ ॥
कर्तथ्यम् ॥ १९ ॥

अतिक्रमणं च सर्वासाम् ॥ २० ॥ दक्षिणापथेन । 'च' शन्दात्तिसम्बन्धन काले ॥ २० ॥ एकादशैकादश या शतानि स्युः॥ २१ ॥

सहस्राणि वा॥ २२॥

'वा' इति विकल्पः ॥ २२ ॥

अइवस्त्वेच माध्यन्दिनेऽधिकः ॥ २३ ॥

भवति ॥ २३ ॥ बाजपेयवदाज्येनाभिषिच्यते कृष्णाजिने ॥ २४ ॥ 'वाजपेयवद्' इति माहेन्त्रत्वेम् ॥ २४॥

ग्रुकामान्थिस्यस्यवेण वा ॥ २५ ॥ अभिविच्यते ॥ २५ ॥

⁽१) बृदस्पतिदैवतः पशुरुपालम्भ्यः।

⁽२) अभ्वो द्वादशो यासांगवांताः।

⁽३) ब्यादेशातन्तरं द्विविद्या अपि गा गोयूथात्पृथक्करोति ।

(१)अन्यतस्विभिवाद्यः ॥ २६ ॥ अन्यत प्वाभिवाद्यो भवति ॥ २६ ॥

(२)अप्रत्यवरोही स्वात् ॥ २७ ॥ अनम्युत्थायीलक्षं, अभ्युत्थेयस्यापि ॥ २७ ॥ स्यपतिरित्येनं ब्र्युः ॥ २८ ॥

जनाः ॥ २८॥

(३)सराजानो ब्राह्मणा वं पुरस्क्तवीरन्हस्त एतेन वजेत ॥२९॥ शहस्पतिसवेन ॥ २९॥

(४)इषुः इयेनवद्सद्यः ॥ ३० ॥

'समानिमतरच्छवेनेन' इति वचनात् । इयांस्तु विशेषः । सद्यो न सवति ॥ ३०॥

इति द्वाविशेऽध्याये पश्चमी काण्डिका ।

मरणकामस्य ॥ १ ॥ सर्वेस्वारः कृतान्नदिखः॥ २ ॥ कर्तुर्भवति । तस्य च कृतान्नं दक्षिणा ॥ २ ॥ दक्षिाद्यवाजिन्नस्येच अक्षान् ॥ ३ ॥ न (५)मक्षयति ॥ ३ ॥

(६)अप्स्ववहरणसस्तोमानाम् ॥ ४॥ सोमवर्जितानामध्यवहरणम् ॥ ४॥ आभवे स्तृत्रमाने दक्षिणेनौदुम्बरीं कृष्णाजिने संविद्याति दक्षिणाशिराः प्राष्ट्रतः ॥ ५॥

(१) अयमन्येषामभिवादनाहाँ भवति। अयं तु नान्यमभिवादयति।

(२) प्रत्यवरोहो थानशयनात्तनादेः सकाशात्पृज्यानप्रति अभ्युः स्थानम् सोऽस्यास्तीति प्रत्यवरोही । सोऽप्रत्यवरोही स्थात् गुर्वादेरभ्युः त्थेयस्याभ्युत्थानं न कुर्यात् ।

(३) राजा सहिता ब्राह्मणा यं ब्राह्मणं धर्मस्थापकत्वेन चाङ्गीकु-वीरन् स एतेन यजेत। (४) इषुर्नाम पकाहः।

(५) दीक्षणीयात बारम्य मक्षान् यजमानमारोडामागसोमादीन् अवजिन्नति।

(६) अवद्याणानस्तरं सोमवर्जितानामण्स्ववहरणं कर्तन्यम्।

द्वाविशेऽध्याये पसाहेषु सर्वस्वारनिकविका वष्टी कविडका। २८७

'आभवम्' इति वृतीयस्वनपवमानसुच्यते । तस्मिस्त्यमाने दः क्रिणेनौदुम्बरी दक्षिणाशिराः (१)प्रावृतः संविज्ञाति ॥ ५ ॥

तदेवं जियते ॥ ३ ॥

जीवेदे दैं घे अवस्र स्वासु यज्ञाय ज्ञियस्था ने कुर्युः ॥ ७ ॥ जीवित वेत् दैर्घ अवसं लाम स्वास स्तोवियास यशायिक्यस्य स्थाने कार्यम् ॥ ७ ॥

स्ते तद्न्तम(१)र्थाभावात्॥ ८॥

स्रुते यजमाने तदन्तमेव कर्म भवति । कृत एतत् ? अर्थाभावात् , कार्याभावादिस्यर्थः ॥ ८॥

यजमानपात्रजीषह्वीं थें च्याहवनीये प्रास्य यथार्थ

गर्छयुः ॥ ९ ॥

अन्यवैवमेव हि इष्टावात "आसादनाद्याहवर्नाये" (का० औ० २५-७-८) इति ॥ ९॥

(३)समासिबीभवचोदनात्॥ १०॥

'वा' शब्दः पक्षस्यावृत्ती । लमाप्तिः कर्तस्या न यजमानपात्रजीयाः श्रीनां प्रतिपात्तिः । उभयं हि चोहितसः । 'लर्वस्वारेण यजेत' इति प्रार-इमः समाप्तिश्च । उपक्रमयभृत्यपवर्गपर्यन्तो ह्याख्यातार्थः ॥ १० ॥ समिष्ठयजुरन्ते सं त्वा हिन्वन्तीति (४)दार्वाहरणम् ॥११॥

समिष्टयजुष्पु हुतेषु ''सं त्वा हिन्वन्ति'' इत्यनेन मन्त्रेण आसन्दार्थे हार्वाहरणम् ॥ ११ ॥

(५)सं त्वा ततश्चि रिति तक्षणम् ॥ १२ ॥ तस्यैव दारुणः॥ १२॥

(१) अहतेन वाससा वेष्टितसर्वदेहः शेते।

(२) प्रयोजनाभावात मरणकामः तच स जातम्।

(३) कुतः समाप्तिकर्तन्या 'उभयचोदनात्' उभयं विहितम् यागो, मरणं च । अतः समाप्तिरेव कर्तन्या ।

(४) "सं त्वा हिन्बन्ति" इत्यनेन मन्त्रेण आसन्चर्धं काष्टानामाः नयनं कर्तव्यमिस्यर्थः ।

(५) तेषा मासन्यङ्गानां "संस्था ततश्चः" इत्यनेन मन्त्रेण तक्षणं कर्तव्यम् । सं त्या रिणन्तीति प्रक्षालनम् ॥ १३ ॥ आसन्धाः॥ १३॥ सं त्या शिशन्तीत्यासन्दीविवानम् ॥ १४ ॥ कर्तव्यम् ॥ १४॥

आसन्धैनमवस्थ हत्वाऽभ्युक्ष्य सोमोपनहनेन प्रच्छाचानृबन्ध्यवपाहोमान्ते दिखणस्यां वेदिश्रोणी सर्व-केश्चमश्रुलोमवपनम् ॥ १६॥ अभ्यक्षणं च न्नानकार्ये॥ १५॥

मृताहितारन्यावृच्य ॥ १६॥

इति (१)कर्तब्यसा॥ १६॥

अनुबन्ध्यान्तेऽग्रीनाहृत्य चेदिमध्यमाग्रीब्राहृक्षिणं दक्षिणाधिरसं चिताचाहितसुद्गाता त्रियोमेन परिगार् यात्राके सुपर्णमित्येतस्याम् ॥ १७ ॥

अनुबन्ध्यान्ते वेदिमध्यमग्नीनाहृत्य आग्नीब्राहाक्षेणतो दक्षिणाजिः रसं चिताबाहितमुद्राता वियोमेन साम्ना त्रिःपरिगायात्, 'नाकेसुपर्णम्' इत्येतस्यामृचि । प्रस्तोतुः परिसामस्वधिकार इत्युद्गातुप्रहणम् ॥ १७ ॥

भूमप्राप्तं त्वेषस्ते भूम ऋण्वतीति ॥ १८ ॥ परिगायात् ॥ १८ ॥

अग्निपासमप्ते मुड महां ३ असीत्यन्यतरेण ॥ १९॥ (२)परिगायात्॥ १९॥

उद्वसानीयान्ते वा सर्वस्य समाप्तेः॥ २०॥

उद्वसानीयान्ते वा वोदिमध्ये अग्न्याहरणादिकं कमें कर्तब्यम्। कुत एतत्? सर्वे द्यत्र समातं भवतीति । यत् पृवेमुकं 'अनूव-म्ध्यान्त' इति । तद्वपामाजनान्ते केशस्मश्रुलोमवपनं विहितम् । तत् श्लोक्यते-'अन्त्ये वेदिमध्यमभीनाद्दृत्य' इति । प्रकृतत्वात 'अनुवन्ध्यान्त' एवेति गम्यते । अस्तु तथिति चेत । नान्तमहणस्य निरुपचरितवृत्याः सर्वान्तप्रतिपत्तेः । तस्मात् 'उद्वसानीवान्त' एव ॥ २०॥

⁽१) मृतस्य आहिताग्नेयां आवृत् इतिकर्तव्यता सा सर्वाभवति ।

⁽२) द्वयोर्भध्ये एकेन साम्ना परिगायेत्।

द्वाविरोऽध्याये एकादेषु चातुर्मास्यसोमनिकापेका सप्तमी कण्डिका२८९

जीवेच्चेदेलेनेवारम्भेण सुमूर्पेत् (१) ॥ २१ ॥ आरब्बत्वात् ॥ २१॥

जिलीविवस ॥ १२॥

जोवितुमपि चेदिच्छेदिति॥ ३२॥

(२)ऋत्विगणोहनीयास्त्रयः ॥ २३॥

'ऋत्विगपोद्दनीया' इति लामान्यलंजा ॥ २३ ॥

त्रेकः--

सर्वस्तामः ॥ ३४॥

अहनी बोत्तमे छान्दोमिक एथक् कृत्वा(३)॥ २५॥

क्रियेते । तन्त्रेण दश्त्वात्तयोः पृथाग्रहणम् ॥ २५॥

वावस्तीमाश्चरवारः ॥ २६ ॥

'वाचस्तोम'संबदाश्चरवारः कतवो अवान्ते ॥ २६ ॥

छान्द्रीयये विदेशपः(४) ॥ २० ॥

पृष्टयस्तोमा जिहुत्पभद्शसम् शैकावि शक्षिण-

बचग्रिजाः॥ २८॥

'वृष्ठवस्तोम' संज्ञकाः षद्कतवो सवानेत विवृदादयः ॥ २८ ॥ इति द्वाविशेऽध्याये वष्टी कण्डिका ।

चातुमांस्याः सोमाश्चिषु पर्वत्थानेषु पार्षिकानि

(५)पृष्ट्यो विहृत इति श्रुनेः॥ १॥

चातुमांस्याः सोमाः तत्र च त्रिषु पर्वस्थानेषु पार्षिकान्यहानि च भवन्ति 'पृष्ठयो विहतो भवति' इति श्रुतेः ॥ १ ॥

वैद्वदेवस्थाने प्रथमम् ॥ २ ॥

(१) एतेन सर्वस्वारारमोण मर्नुमिच्छेत्।

(२) ऋत्विगपोहनीयसंज्ञास्त्रयः कतवो भवन्ति।

(३) द्वादशाहिकच्छन्दोमत्रयमध्ये उत्तमे शहनी उपध्यसंस्थे पृथ-क्कृत्वा द्वितीयतृतीयौ ऋत्विगवोहनीयौ कार्यो ।

(४) छन्दोगानां कर्मणि विशेषोऽस्ति ।

(५) पृष्ट्यः षडहः तत्सम्बन्धीनि षडप्यहानि भवन्ति। कुतः? 'पृष्ट्यो विह्नो मवति' इति श्रुतेः। विह्नो विभक्तः शाखान्तरे श्रवणात् (१)पाष्टिकमहर्भवति ॥ २॥

तच-

अयुपस् ॥ ३॥

भवति॥ ३॥

उत्तरवेयकरणं व ॥ ४॥

तत्र च-

परिषो पशुनियोजनम् ॥ ५ ॥ बितीये (२)द्विदिवाख्यो द्यहः ॥ ६॥

द्वितीये पवंस्थाने द्यहो भवति । 'द्विहिव' इत्याख्या तस्य ॥ ६ ॥ अग्निष्टोमं प्रथममेके ॥ ७ ॥

यरप्रथममहरुक्थयसंस्थं तद्भिष्ठोमसंस्थमेके (३)इच्छन्ति । एके उक्थयसंस्थम्। उक्थयस्य च संस्थामात्रान्यत्वं च धर्मास्तु तदीया एव॥७॥

(४)तृतीये व्यहोऽतिराञ्च उत्तमः ॥ ८॥

तृतीये पर्वस्थाने पाष्टिकस्डयहो भवति । तत्र चातिरात्र उत्तमो भवति ॥ ८ ॥

अग्निष्टोमं प्रथममेके ॥ ९ ॥ पके षोडशिनमिन्छन्ति ॥ ९ ॥

ज्योतिष्टोमः शुनासीरीयस्थाने ॥ १०॥

भवति । पार्ष्ठिकान्यहानि द्वादशदीक्षोपसत्कानि भवत्त्यतिष्राद्यवन्ति । कि बहुना पृष्ठ्ये यद् दष्टं तत्सर्वमत्र भवति ॥ १० ॥ पश्चसु स्वनीया वैद्वदेववारुणमास्ताग्रेयैन्द्राग्नाः ॥११॥

(५)पञ्चस्वहःसु वैश्वदेवादयो यथासंख्येन सवनीयाः॥ ११॥ (६)षष्ठे चैकादांशिनाः॥ १२॥

- (१) पाष्टिकम् अग्निष्टोमसंस्थम्।
- (२) वरुणप्रधासे हिदिवसंज्ञको हिरात्रः।
- (३) वारुणप्रघासिकयोर्द्धयोरह्वोर्मध्ये प्रथममग्निष्टोमः। अतश्चा-त्वाळाभावः। पैतुदावादेस्त्वग्न्यर्थत्वात्ववृत्तिः।
- (४) तृतीये साकमेथे पार्ष्टिकश्चतुर्थाहम्भृति ज्यहो भवति। अ-स्मिन् ज्यहे उत्तमोऽतिराजो भवति।
 - (पू) आदित आरभ्य क्रमेण।
- (६) 'षष्टे वा' इति पाटः। साक्रमेधानां तृतीयेऽतिरात्रसंस्थे एकादशिना वा प्राजापत्याः शाखान्तरात्। अतिरात्रस्तृतीयः प्राजापत्यः पशुरैकादशिनावेति । चेति पाठे वा ऽथौं वाष्यः, त्यथैं वा चः ।

द्वाविशेऽध्याये एकाहेचु चातुमास्यसोमनिकपिका सप्तमी काण्डका २६१

भवन्ति ॥ १२ ॥

बायहदः सप्तमे ॥ १३ ॥

(१)सप्तमेऽहिन वायव्यः स्वनीयः॥ १३॥

पञ्चाशासं पञ्चाशासं अत्यहं ददात्यु समे(२)

इंद्वा चलस् । १४ ॥

भवति । हिरण्यादेश्च निवृत्तिरत्र ॥ १४ ॥

बत्सा वा पञ्चाशतो (३)वयतुजाः ॥ १५ ॥

'यथर्तुजा' इति यो यो यस्मिन् यस्मिन् ऋतौ जातः स तत्र तत्र दीयते ॥ १५ ॥

प्रतिपर्वावस्थाः ॥ १६ ॥

भवन्ति। पार्ष्टिकानामेकोऽवभृयो दृष्टः, स मा भूदिति 'प्रतिपर्व' प्रदृणम्। न्यायसूत्रमेतत्॥ १६॥

पर्वान्तरेडवहतं वस्ते(४) ॥ १७ ॥

वासः ॥ १७॥

अस्त्रयुवाची ॥ १८॥

स्त्रियं नोपगच्छेत् ॥ १८॥

अमार्णसाशी ॥ १९॥

मांसं नाइनीयात्॥ १९॥

अन्बन्ध्या बाह्रस्पलामैत्रावरुणीसीयाहितन्यो

वधाऽवस्थम् ॥ १०॥

भवति ॥ २०॥

प्रतिकर्म सोमाः ॥ २१ ॥

'व्याख्यास्यन्ते' इति सुत्र शेषः ॥ २१ ॥

अगन्याचेयपुनराचेयाग्निहोत्रदर्शपूर्णमासदा

क्षावणात्रवणाः ॥ २२ ॥

एता एव संज्ञा एतेषाम्॥ २२॥

उक्थवं पद्मबन्धमेके ॥ २१ ॥

(१) शुनासीरीये। (२) उत्तमे सप्तमे शुनासीरीये।

(३) यिस्मन्त्रतौ वैश्वदेव।दिस्रोमयागाः तस्मिन्त्रतौ जाताः तद्गत्जाः।

ै (४) चतुर्जा[:] पर्वजां त्रीण्यन्तरालानि । तेषु अहतं वस्त्रं परिथत्ते ।

पशुबन्धसोममेके उन्ध्यसंस्थामिन्छन्ति, एकेऽनिष्टोमस् । २३॥ हति व्यक्तिं उच्चाये समनी किष्डिका।

प्रातः सवनीयाननु ह्वीं थे विवेपति ॥ २ ॥ प्रतिकर्म सोमेषु विशेष उच्यते । शतःसवने सवनीयान्तु (१)ह वीं विविधिति ॥ १॥

तत्र च-

पयसी अग्निहोत्रयोः॥ २॥

अग्निहोत्रसोमयोः 'वयसी' अनुनिरूप्येते ॥ २॥

(२)अन्त्यदेवताऽन्बन्ध्याऽचा सवनीया ॥ ३॥

तेषु कर्मस्य यादन्या देवता सादनुबन्ध्यायां भवति, आद्या च सवनीया ॥ ३ ॥

(३)एकदेवतेषूमयम्॥ ४॥

यत्र पुनः कर्मण्येकैव देवता यथा अधिनहोत्रे पुनराधेये च तत्रोमय-**न्तहंबत्यं सवति ॥ ४ ॥**

चातुर्मास्येषु (४)चैके(५) ॥ ५ ॥

- (१) सवनीयपुरोडाञ्चनिर्वापाऽनन्तरं हविर्यञ्जसपाग्न्याधेयादिः सम्बन्धीनि हवींवि निर्वपति ।
- (२) अन्ते भवा अन्त्या। आहुये भवा आद्या। आद्या देवता सं-वनीयपशोभं वति ।
 - (३) एकदेवतेषु पुनराधेयसामादिषु उमयमेकदेवत्यं भवति । यथा-एकैका देवता मुख्या पयसी अग्निहोत्रयोः। इत्युक्तेः सायमाग्नेयां सौरी पार्तारति श्रतेः ॥ सा या पूर्वाहुतिः साग्निहोत्रस्य देवतेति च। योत्तरा स्विष्टरुच्छुरयेकैकाग्निहोत्रदेवता ॥ सवनीये ऽनूबन्ध्यायामेकैवाता ऽग्निहोत्रयोः। यच्छाङ्कायनके प्राजापत्या उनूबन्ध्यकोदिता ॥ हे सायमाहुती पातहैं आहुती हति श्रतेः। वस्तुतः सम्दायानुवाद् । ऽतस्तन्त युज्यते ॥ परन्तु वचनाद्त्र प्राजापत्या ऽनुबन्ध्यका ।
 - (४) चात्पशौ सौम्याग्रयणे च।
- (५) एके चातुर्मास्यसोमेषु अपि प्रातः सवनीयाननु चातुर्मास्यहः धीषि आग्नेयादीनि निर्वपन्ति।

द्वाविशेऽध्याये प्रकाहेषु सत्त्रशानानिकिपिका अपूर्मा कविडका। २९३

चातुर्मास्यसोमेषु चैके निर्वापनिच्छन्ति । एके न । तत्र च मारुत्या न देशभेदः, सोमाङ्गामावात् । अतिप्रणीत एव यागः। पितृयक्षे चैवमेव॥५॥

स्सद्धाः पश्च ॥ ६ ॥

'सतद्या' संबकाः (१)पञ्च कतवो भवन्ति ॥ ६ ॥ तद्विशेपानाइ—

उपहृठ्योऽनिरुक्तो ग्रामकामस्य ॥ ७ ॥ 'उपहृज्य' इति विशेषलंबा। ल ग्रामकामस्य भवति अनिरुक्तश्च ॥७॥

अनुतं (२)वाडिभिशस्यमानस्य ॥ ८॥ अलीकं योडिभिशस्यते तस्याप्युपदःयो भवति ॥८॥

(३)इयाबोऽइबो दक्षिणा तं ब्रह्मणे ददाति ॥९॥

स्वर्गकामस्यर्तपेयः॥ १०॥

'ऋतपेय' इति विशेषसंज्ञा सप्तद्शस्यैव । स स्वर्गकामस्य भवति॥१०॥

दीक्षोपसदो बादश ॥ ११ ॥

"द्वाद्शद्देश्योपसद्दो भवन्ति" (ताण्ड्य० १८-२) इति वचनात् ॥११॥

तिस्र उपसदः॥ १२॥

भवन्ति । "एकाहरूप्रयसत्कः" (का०थ्रो०८-२-३४) इति । शेषा नवदीक्षाः । एवं दीक्षोपसदां द्वादशसंख्या भवति ॥ १२ ॥

षड्वा ॥ १३॥

'वा' शब्दः पक्षव्यावृत्तो । वहणसदो भवन्ति षड्वा दीक्षः । दी-श्रोपसदां द्वादशसंख्या श्रूयते समविभागेनेति न्याय्यं 'समं स्याद-श्रुतत्वात्' दति ॥ १३ ॥

उभयत्र वा हाद्शता गुणत्वात् ॥ १४॥

'वा' शब्दः पक्षान्तरपरिष्रहे । न दक्षिोपसदः संख्यां प्रति श्रूयन्ते कि तर्हिं?दक्षिोपसदः प्रति संख्या श्रूयते । कुत एतत् १ गुणत्वात् सं ख्यायाः । 'दक्षिोपसदे द्वादश भवन्ति' इत्यत्र संख्या दीक्षोपसदः प्रति

⁽१) वश्यमाणाः पञ्च कतवः सप्तद्शस्तोमका भवन्ति।

⁽१) वस्यमाणाः पञ्च नात्यः (२) अथवाऽनृतमसत्यमभिशस्यमानस्य मिथ्यादोषेण तिन्दाः भानस्य ।

⁽३) श्यावः कविशवर्णः।

विधीयते । गुणो हि संख्या । गुणस्य च प्रतिप्रधानमावृत्तिन्यांच्या । तस्माद्दीक्षासूपसत्सु च द्वादरासंख्योति ॥ १४ ॥

घृतं वतयाति ॥ १५ ॥

यद् वतयति तद्घृतम् । ततश्च पयसो निवृत्तिः ॥ १५ ॥ तत्परिमाणमाह—

चमसं पूर्णमङ्गुलिपर्वणा (१)मौल्येन सर्वतः

प्रामितमाचाचामुपसदि ॥ १६ ॥

अङ्कुलिपवर्णा माल्येन सर्वतः प्राप्ततं चमसं घृतस्य पूर्णे वतयति प्रथमायामुक्सदि ॥ १६ ॥

(२)दिनीयेन दिनीयाचाम ॥ १७ ॥

द्वितीयेन पर्वणा प्रमितं द्वितीयायामुपसदि ॥ १७॥

तृतीयेन तृतीयायाम् ॥ १८॥

प्रमितम् ॥ १८॥

मक्षिष्यन्तः सत्यं व्युः(३)॥ १९॥

सोमान्मक्षविष्यन्तः सत्यं वदेयुः । 'उष्णोऽग्निः' शीतमुदकम्' इत्ये-वनादि ॥ १९ ॥

(४) सदो वा रुप्यन्तः ॥ २०॥

सत्यं ब्रयुः । 'वा'शन्दो विकल्पार्थः ॥ २० ॥

सोमचमसा दक्षिणौंदुम्बरः सगोत्राय ब्रह्मणे देयः॥२१॥ औदुम्बरः सोमचमसो दक्षिगा। स सगोत्राय ब्रह्मणे देयः॥२१॥

(५)पृतभृतः सर्वार्थत्वात् ॥ २२ ॥

'पृतभृतः' सोमो गृह्यते । कुत पतत् ? सर्वार्थत्वात् । "अतो हि देवेभ्य उन्नयन्त्यतो मनुष्येभ्योऽतः पितृभ्यः" (श्र० ब्रा० ४-४-१-१२) इति । मनुष्यार्थमिदमेवोन्नयनमित्यमित्रायः ॥ २२ ॥

⁽१) मौरुयेन मूलभवेन अङ्गलिपर्वणाङ्गुरुया मूल्यकाण्डेन सर्वतः स्तिर्यगायामत अर्घ्वं च प्रमितं चमसं पूर्णे यजमानो जनयति।

⁽२) द्वितीयेनाङ्गुलिपर्चणा मध्यमेनाङ्गुलिपर्चणा मितं चमसं व्रः तयति ।

⁽३) ऋत्विजः।

⁽ ४) सदोमध्ये प्रवेशं करिष्यन्तः।

⁽५) पूतमृतः सकाशात्स्योमेन पूरियत्वा चमलो देयः।

द्वाविशेऽध्याये एकाहेषु सप्तरशानान्निकविका नवमी कविदका। २९५

(१)अश्रुग्रुचमसमेके तेन स यजेतेति भूतेः॥ २३॥

सोमा ऐशुचमसमेके इच्छन्ति । यत एवं श्रूयते—'तेन स यजेत' इति । एवं केश्चिद्धिकरूप इच्यते । तत्तुनर्नातीव युक्तस्पम् । अन्यार्थे यागे अन्यस्यान्यद्यागान्तरं विधीयत इत्यसमञ्जलम् । तस्मारत्रथम एव पक्षः 'प्तमृतः सर्वार्थत्वात्' इति ।

ननु च 'तेन स यजेत' इति श्रुतिः कथं नेया। 'तेन स यजेत' तेन स जुहुयादित्यर्थः। 'यजिति'शब्देन लक्षणया होमो विधायते॥ २३॥

अइवबत् ॥ २४ ॥

अधिकरणातिदेशोऽयं 'तमुद्रात्रे ददाति' इत्यस्य । यद्येवं तेनैव गतार्थत्वादवाच्यमेतत् । लिङ्गोपन्यासार्थं पुनर्वचनम् ॥ २४ ॥ तदुच्यते—

(२)पश्पवादाच ॥ २५ ॥

इतरस्य सकलदाक्षिण्यस्य निवृत्तिः । येन पश्पवादो भवति । 'सत्यं वाऽऋतपेयोऽनृतं पश्चोऽनृतं कुर्योद्य ऋतपेये पश्चन् दद्यात्' इति ॥ २५ ॥

(३) दिनामोत्तरो बहुहिरण्यो दृणादाश्च ॥ २६॥ उत्तरः कतुः 'दिनामा' बहुहिरण्यो 'दृणादा' इति च ॥ २६॥ इति द्वाविशेऽध्यायेऽधमी कण्डिका ॥

दीक्षणीयायाणं हिरण्यं हाद्शमानं ददाति ॥ १ ॥

मानं च इन्णलम्। लोके 'रिक्तिका' इति यत्यासिद्धम्। इयं च दः क्षिणाः न कतुदक्षिणाः न चेष्टिदक्षिणायितप्रस्वः। कि तर्हि शिष् वैत्वाइक्षिणान्तरमेव। तत्रश्च दक्षिणायमीं नात्र भवति। अन्ते च दाः नम् भागन्तुदक्षिणेति॥१॥

(४) इनरेषु च ब्रिगुणं पूर्वे पूर्वम् ॥ २ ॥

- (१) अंशुबमसमनभिषुतसोमखण्डपूर्णं चमसं दक्षिणामिच्छुन्ति ।
- (२) पश्रुपवादः पशुदाननिन्दाः पश्रुपवादाद्वपेतोः सोमयमसः प्राकृतस्य दक्षिणादानादेनिवर्तको भवति ।
- (३) उत्तरस्तृतीयः सप्तदशः द्विनामा भवति बहुद्विरण्य इत्येकम् दृणाशश्चेति द्वितीयम्।

(४) चश्यमाणेषु पूर्वीकं डिगुणं देयम् ।

दीयते ॥ २ ॥

पायवीयातिध्योवसत्सु पशुवपान्ते प्रतिसवनं नि-हितेषु (१)सवनसुर्खीयेषुद्यनीयायामनुबन्ध्यायासुद्वसाः नीयायाणं सजं (२)चोद्गाजे ॥ ३॥

हिरणमर्था सजम् ॥ ३॥

रुक्म होने ॥ ४ ॥

अनडुच्छतं (३)काले सर्वभ्यः॥ ५॥

१यं च कतुरक्षिणा ततश्च तद्धमाँ भवति 'सर्व'ग्रहणाख । इतरेषु हिरण्यादिदानेषु तत्कमंयुक्ताः प्रतिपत्तव्याः ॥ ५ ॥

(४)वैश्यपद्मकामयोर्वेद्दयस्तोमः ॥ ६ ॥ वैश्यस्यापद्मकामस्यापि पद्मकामस्य वा वैद्दयस्य ॥ ६॥ स्वनान्या(५)द्मीर्वन्ति ॥ ७ ॥

भवन्ति ॥ ७ ॥

(६)प्रातःस्वने (७)प्रतिदुहा अयणम् ॥ ८॥ दुम्धमात्रेण ॥ ८॥

श्नेन माध्य न्दिने ॥ ९॥

अवन्य ॥ ९॥

(८)तृतीयसवने द्धना, दक्षिणा वत्सतराः पञ्च-वर्षाः पृद्यनयः॥ १०॥

- (१) सवनमुखीयेषु चमसेषु हविर्धानमध्ये निहितेषु ।
- (२) 'च' शब्दात्स्रयुक्मयोख्दवसानीयान्ते एव दानम् । तथा च सम्प्रदाये उदवसानीयान्ते सजा दानमुद्रात्रे, रुक्मस्य होत्रे।
 - (३) बळीवदांनां शतं दक्षिणाकाळे सर्वेभ्य ऋतिवाभ्यः।
- (४) वैश्यस्तोमसंज्ञक एकाहः वेश्यस्य पशुकामस्य च त्रैवर्णिक स्य भवति।
 - (५) आशीःशब्देन श्रयणं पयोद्रव्यं दिध बोच्यते ।
 - (६) अभिषवोत्तरकालमाहवनीये प्रक्षिप्यते इति सम्प्रदायः।
 - (७) प्रतिदुहा—धारोणोन।
 - (८) तृतीये वैद्यतं कार्यं पूर्वमाहवनीयके । पूतभृत्याशिरं पश्चात् प्राकृतं धर्ममाञ्चतः ॥

द्वाविशेऽध्याये पकाहेतु वैदयस्तामनिकपिका दशमी कण्डिका १९७

पुश्रयो विचित्राः ॥ १०॥

वत्सत्येश त्रिहायण्योऽप्रयोताः पश्चवर्षा राजीवपृद्गयो नवनीतपृद्गयोऽद्णाः विद्युद्धयः सारङ्गय इति ॥११॥

अप्रवीताः-अकामिताः(१)। राजीवपृद्दयः-पद्मपृद्दतयः। नवनीतपुः दनयो-नवनीतसदग्रीश्चित्रैः। अवणाः-क्रिपेतः। पिराङ्गयो-मांसवः णाः। सारङ्गयो-वर्णान्तरोपध्वस्ताः(२)॥ १२॥

(३) उभयस्य सहस्रं (४) द्वाद्शं वा शतम् ॥ १२॥ सहस्रपक्षे तसुकं भवति॥ १२॥

सोमातिप्तस्य नीवसुदुक्थ्यः ॥ १३ ॥ 'सोमातिप्तः' तद्विरेचनः ॥ १३ ॥

(५)अपरुद्राजन्यस्य ॥ १४॥ भवति नीवसुत्॥ १४॥

दीर्घटपाचित्रामकासप्रजाकामपञ्जक। मानां वा ॥ १५ ॥ एषां च 'तीवसद' भवति ॥ १५ ॥

(६)पूर्ववस्योमाः १६॥

श्रवणबन्तो भवन्तीत्यर्थः ॥ १६ ॥

इति द्वाविदोऽध्याये नवमी कण्डिका।

घेतुशतमाशिरे दुहान्त ॥ १ ॥

अत्र विशेषः॥ १॥

तदेव दिश्चिमा ॥ २ ॥

भवति ॥ २॥

अच्छावाकविग्रहेषु भक्षणम् ॥ ३॥

(१) वृषभेगाभुका इत्यर्थः।

(२) कर्चुराः, एवस्भृता वस्सतयीं दक्षिणा भवन्ति।

(३) उभयस्येति वत्सतरगणस्य वत्सतरीगणस्य च मिलितं सहस्रं दद्यात्। (४) द्वादशभिरधिकं शतम्।

(५) अपरुद्धः राष्ट्रेण स्वराज्यात्त्रच्यावितः स नासौ राजन्यश्च तस्यार्थं भवति ।

(६) अत्र तीवसुति सर्वेषु सवनेषु सोमाः 'पूर्ववत्' इति वैश्यः स्तोमवदाशीर्वन्तो (का० श्रौ० २२-६-८, ६, १०, ११,) भवन्ति ।

अवञाणांमितरेषु ॥ ४ ॥

न भक्षणम् ॥ ४॥

तेष्वेत्रोत्रयनम् अभ्यमि सोमानुत्रयन्तीति श्रुतेः(१)॥५॥ अध्वर्यू चमसाध्वर्यवश्र सर्वे प्रतिगृणन्त्यच्छावाकाय॥६॥

बन्धानां प्रथमो राद्राजन्यस्य राज्यकामस्य ॥ ७ ॥

बन्द्वानां यः प्रथमे। राट्संडकः स राजन्यस्य राज्यकामस्य (२)क-

(३)यथाशक्येकविश्वानिवर्गान्द्यात्॥ ८॥

ऋषभ ऐन्द्रः (४)पारियञ्जः ॥ ९ ॥ 'परि'शब्दसामध्यीदधस्ताब्बे।परिष्ठाब्ब भवति । यजनीयेषु ॥९॥

अञ्चासकामस्य विराद्॥ १०॥

विराडाख्यो द्रन्द्रसोमः सोन्नायकामस्य भवति ॥ १० ॥ यथाशक्ति दशवगोन्दचात्(५) ॥ ११ ॥

अत्र ॥ ११ ॥

पशुराग्नेयः परियज्ञः(६) ॥ १२ ॥ भवति॥ १२ ॥

प्रजातिकामस्यौपसदः ॥ १२ ॥ भौपसदो नाम द्वन्द्वः स्रोमः स प्रजाकामस्य भवति ॥ १३ ॥

⁽१) तेष्वयद्यातेषु सोमोन्नयनं कर्तव्यम्। कुतः ? "अभ्यभि सो-मातुन्नयन्तिः" (ताण्डयः १८-५) इति श्रृतेः। अत्र छन्दोगसूत्रम् (लाट्या० श्रौ० ८-१०-१२) यानवित्रद्येयुस्तेष्वेवाभ्युन्नयेयुः। अव-ब्रातोऽपि मक्षित एवेति मत्वा न त्याज्य इत्यर्थः।

⁽२) अग्निष्टोमसंस्थः।

⁽३) अत्र एकविश्वतिसंख्याभिगोभिरेको वर्गः। एवंविधान् गवां वर्गान् त्रिप्रभृति यथाशक्ति दद्यादित्यर्थः।

⁽४) यज्ञारम्भात्पूर्वं यज्ञसमाप्तधनन्तरश्चेन्द्रदेवस्य ऋषमः परियज्ञो भवति ।

⁽५) दशांमगोंभिरेको वर्गः। त्रिप्रभृति यथाशक्ति गवां दशवर्गा-न्दद्यात्।

⁽ ६) ऐन्द्रपरियश्चवदिति सूत्रार्थः।

द्वाविरोऽध्याये एकाहेषु द्वन्द्वयत्वानान्तिकविका दशमी कण्डिका। २६९

(१)दिचिणाचतुर्विद्वाहे शतम् ॥ १४॥ पशुर्वेद्यदेवः वरियज्ञः॥ १५॥

भवति ॥ १५॥

बहु प्रतिगृद्य गरगीरिव यो मन्येत तस्य पुनस्तोम उन्ध्यः॥ १६॥

बहु प्रतिगृह्य गरगृहीतिमिव आत्मानं सन्यते तस्य 'पुनस्तोम' सं इक उद्ययसंस्थो भवति ॥ १६॥

(२)दक्षिणा बाद्शिमिथुना पुनर्वतां च यथाशासि॥ १७॥

पशुकासवज्ञी चतुष्टोमी ॥ १८ ॥ चतुष्टोमसंबको हो वज्ञो तो पशुकामस्य भवतः ॥ १८ ॥

तयाश्च—

षोडर्युत्तरः। पूर्वस्मिन्ययाशकत्वेक(१)शफान्द्यात्॥१९॥ उभयाजुत्तरास्मिन् ॥ २०॥

पकशकान् विश्वकांस्य ॥ २०॥ इद्भित्वलिन्दौ (४)चाहरतः संयुक्तौ ॥ २१॥ 'व' शब्दात्पशुकामयश्चौ ॥ २१॥ 'आहरतः संयुक्तो' इति कोऽस्यार्थः —

पूर्वेणे हुं: सरेणाव इयस् ॥ २१ ॥

'यष्टव्यम्' इत्ययमर्थः ॥ २२ ॥

इषुरिष्ठिरन्तरेणैनावारनेयः पुरोडाशः ॥ २३ ॥ उभी उद्भिद्वलभिदी अन्तरेण 'द्युरिष्टि' संज्ञा द्विर्भवति। आग्नेयः पुरोडाशः । 'आग्नेय' दति न्यायसंस्चनम् ॥ २३ ॥

(१) अत्र चतुर्विशस्या अधिकं गवां शतं दद्यात्।

(३) अध्वाध्वतरगर्दभादीनेकखुरान्।

(४) तावेकाही 'च' कारात्पशुकामयज्ञी संयुक्तदर्शपूर्णमासवः स्टेहतावेच फलमाहरतः।

⁽२) अत्र गवां द्वादशिमधुनानि । द्वादशगावो द्वादशसंजाः । तथा पुनर्वतां पुनःशब्दवतां "पुनः संस्कृतोरथः" (का० श्रौ०४-६-१९) इत्यादि वसूनां यथाशक्ति द्यात् ।

अत्र विशेषः—

(१)उद्दृढः मस्तरः ॥ २४ ॥

बृह् निष्कर्षे। ऊर्ध्व निष्कृष्ट इस्तर्थः ॥ २४॥

बाणवन्तः परिचयः॥ २५॥

(२)'बाणवत्' शब्द इपो हि दृष्टः । ''द्वी बाणवन्तौ सपत्नाधिव्या-धिनौ हस्ते इत्वोपोत्तिष्ठत्' (श्र० आ० १४-६-८-२) इति । पतच्च शरेपूपपद्यते । पतच्च शाखान्तरेऽपि पठ्यते । तस्माद् बाणा पव परि-ध्य इति ॥ २५ ॥

अधेमासं मास्य संवत्सरं वा ॥ २६ ॥

(३)'इप्ररिष्टिः' भवति ॥ २६ ॥

दक्षिणा (४)गायत्री चतुर्विः शातिवर्गा यथाशक्ति ॥२७॥ , इयमेव 'गायत्री' इत्युच्यते ॥ २७॥

(५)अपचितिकामस्यापचिती ॥ २८ ॥

द्वौ क्रत् तावपवितिकामस्य भवतः। 'अपचितिः' पूजोच्यते॥२८॥

राजयज्ञावित्यंके ॥ २९॥

पके आचार्या मन्यन्ते 'राजयक्षी' एताविति । एके वैवर्णिकः स्यापि ॥ २९ ॥

दक्षिणाऽश्वरथश्चतुर्युगुमयतः ॥ ३०॥

(६)उभयतश्चत्वार इत्यर्थः॥ ३०॥

कार्णस्यकवचः ॥ ३१॥

(७) रथों मचति ॥ ३१॥

(१) उदुवृद्धां बहिमारादयमार्गेण निष्काशितो मचति न प्रकृतिव-म्मूलमार्गेन । (२) अतिशयार्थे वितः ।

(३) उद्भिदा इष्ट्वा तत एव दिनादारभ्यार्थमासं, मासं, सम्ब

रसरं वा प्रस्यहमियमिषुरिधिर्भवति ।

्(४) गायत्रोशब्दार्थमाह-'चतुर्विशतिवर्गा' इति । चतुर्विशतिसं ख्यामिगोमिरेको वर्गः । एवंविधान वर्गान् त्रिप्रभृति यथाशकि दक्षिणां द्**याव** ।

् (५) अपचितिसंज्ञावेकाहौ । (६) 'चेत्वारश्चत्वार' इ० पा०।

(७) उभयतः पाइर्वे कस्यिकवचो रथो भवेत् । कस्यिघातुनिर्मि-सक्क्षयः । (१) ज्ञाताही अइवाः ॥ ३२ ॥ अरवाः ज्ञाताही भवन्ति ॥ ३२ ॥ सामिचित्पावमेस्तोमी (२) सर्वाजिदीक्षी ॥ ३३ ॥ 'अमेस्तोम'संबन्धी कत् सामिचित्यी भवतः ॥ ३३ ॥ पूर्वः पक्ष्युत्तारो ज्योतिः ॥ ३४ ॥ पूर्वस्य 'पक्षी' इति विशेषसंज्ञा, उत्तरस्य च 'ज्योतिः' इति ॥३४॥ इति द्वाविशेऽध्याये दशमी कण्डिका ।

(३)भान्याचितानि चत्वारि-चत्वारि दक्षिणा ॥ १॥

अग्नेस्तोमयोर्भान्यस्य पूर्णान्यनांसि बत्वारि दक्षिणा ॥ १॥

पूर्वस्य (४)षड्गवान्युत्तरस्य (५)चतुर्गवानि ॥ २॥

पूर्वस्य पक्षिणः षड्गवानि भवन्ति । उत्तरस्य ज्योतिषश्चतुः
र्गवानि ॥ २॥

ऋषमाोस्वा ॥ ३॥

ऋषमश्र गोसवश्र ऋषमगोसवौ ऋत् भवतः॥ ३॥

पूर्वी राज्ञः ॥ ४ ॥

पूर्व ऋषमसंज्ञको राज्ञः॥ ४॥

(६)द्तिण (७)ऋषभसहस्रं द्वादशं वा शतम्॥ ६॥ विकल्पेन॥६॥

उक्थ्यो गोसवोऽयुतदक्षिणः ॥ ६ ॥

'गोसव' संबक्तः ऋतुरुक्थ्यसंस्थो भवति अयुतदक्षिणश्च॥ ६॥ वैद्ययज्ञ इत्येके ॥ ७॥

मन्यन्ते । सर्वेषाभित्यपरे ॥ ७ ॥

ं (१) अत्र रथे गोशतेन मृत्यमूतेन येषामेकैको लभ्यते।

(२) "सर्वजित्समहावतः०" (का० श्री० २२-१-४४) इत्यादि ।

ं (े ३:) घान्यैर्वीहियवादिभिराचितानि पूर्णानि चत्वारि चत्वारि शक्तटानि दक्षिणा।

(४) बड्भिबंछी वर्दे युक्तानि ।

(५) चतुर्भिरनडुद्भियुंकानि।

ें (६) 'दक्षिणा' इ० पा०।

ं (🥱) ऋषभाणां सहस्तं, द्वादशाधिकं शतं घा ।

(१)सराजानो विको यं पुरस्कुर्वीरन्तस एतेन यजेत ॥ ८॥

गोसवेन॥८॥ (२)स्थपिडलेऽभिषिच्यते प्रतिदुहाहवनीयस्य दक्षिणतः॥९॥ स्थितः।आगन्तुत्वादन्ते॥९॥

स्थपतिरित्येनं ब्र्युः॥ १०॥

गोसवयाजिनं जनाः॥ १०॥

वैश्वस्तामदक्षिणालिङ्गो महत्स्तोमो गणयज्ञो

भ्रातृणार्थं सखीनां वा ॥ ११ ॥

वैश्यस्तोमदक्षिणायां यानि यानि लिङ्गानि(३)तान्यत्रापि सवन्ति। म रुस्तोम' शति च संश्वा भ्रातृणां सखीनां वास भवति 'गणयशः'॥११॥ प्रजाकामपशुकामयोरेन्द्राग्रकुलायः कुलदक्षिणः॥१२॥ 'येन्द्राग्रकुलाय' शति संज्ञा । गोकुलञ्चास्य दक्षिणा ॥ १२॥

स च—
(४)द्वियज्ञो आश्रीः सरुपोर्वा ॥ १३ ॥
इन्द्रस्तोमो राजयज्ञः सहस्रं दक्षिणा ॥ १४ ॥
सहस्रं चास्य दक्षिणा ॥ १४ ॥
उक्थ्यः ॥ १५ ॥

उक्थ्यसंस्थश्चासौ भवति ॥ १५ ॥ पुरोधाकामस्येन्द्राग्न्योस्तोमः ॥ १६ ॥ भवति । पौरोहित्यकामस्य ॥ १६ ॥ राजपुरोहितयोर्वा सह यजमानयोः ॥ १७ ॥

(१) राज्ञा सहिता विशः प्रजाः सर्वे पुरुषा यं पुरस्कुर्वीरन् मुख्य-स्वेनाङ्गीकुर्वीरन् स गोसवेन यजेत ।

(२) आहवनीयाहसिणस्यां स्थण्डिले उपविद्यो यजमानः प्रतिदुहा धारोक्णेन दुग्धेनाभिषिच्यते ।

(३) "दक्षिणा वत्सतराः पञ्चवर्षा" (का० औ० २२-९-१२)

इत्युक्तानि इत्यर्थः । (४) द्वयोभित्रोर्द्वयोः सख्योर्वा । कुळदक्षिणः गोकुळानि चास्य द् शिणा। इदं सरस्वत्याः कुळम्, इदं यमुनायाः कुळम् इत्येवमाशतं पूरयेत्। तं प्रकृत्य हि श्रूयते-'एतेन राजपुरोहितौ सायुज्यकामौ य जेयाताम्' (ताण्ड्यः २९-१७) इति ॥ १७ ॥

प्याचा ॥ १८॥

सह। 'वा' इति विकल्पः॥ १८॥

दक्षिणा (१)गावजीसम्पन्ना ब्राह्मणस्य ॥ १९ ॥ यण्डुर्भवति ॥ १९ ॥

जगत्या राजः ॥ २०॥

(२)जगत्यासम्पन्ना राजः। सह पन्ने (३)प्राकृतदक्षिणः॥ २०॥ (४)विद्यमो पद्मकामस्य॥ २१॥

'विघन' संहको ऋतू पशुकामस्य भवतः ॥ २१ ॥ आभिचरतो वा ॥ २२ ॥

तो भवतः ॥ २२ ॥

बृहतीसम्पन्नाः पशुकासस्य ॥ २३ ॥

दक्षिणाः(५) ॥ २३ ॥

अभिवरतः प्रजाताः ॥ २४ ॥

प्राञ्चाः॥ २४॥

सन्दर्शवज्ञावभिचरतः ॥ २५ ॥ सन्दंशस्य वज्रस्र (६)तावभिचरतो मवतः ॥ २५ ॥ पोडकी वज्रः ॥ २६ ॥

वज्रः षोडशिसंस्थो भवति ॥ २६॥

(७)ज्ञुण्ठाधी (८)लोहाकणी षोडिशानः सोमक्रयणी॥२७॥ भवति ॥२७॥

- (१) गायज्यवारसमानसंख्याश्चतुर्विशतिगांवो दक्षिणा।
- (२) जगत्यक्षरसमानसंख्या अष्टाचत्वारिशद्वावो भवन्ति।
- (३) 'प्राकृती दक्षिणा' इ० पा०।
- (४) विघनौ नाम पकाहावग्निष्टोमसंस्थौ द्वन्द्वसोमौ।
- (५) षट्त्रिंशहाचो भवन्ति। (६) इमौ द्वन्द्रसोमौ।
- (७) शुण्टाधी-पीतमुखी। वेष्टितमुखी इति केचित्। पीतपुच्छी इत्येके।
 - (८) छोद्दाकर्णी-छोद्दितकर्णी।

(१)अहर्गणेऽप्यविशेषात् ॥ ६८॥

अहर्गणे गतेऽपि षोडाहानि उक्तलक्षणयेव सोमक्रयणी भवति। कुत पतत् ? अविशेषात् । अहर्गणगतोऽपि षोडशी षोडश्येष । न च सं-स्थान्तरैर्विरोधोऽस्ति ॥ २८ ॥

(२)विश्वजित्परिवासाश्च॥ २९॥

अहर्गणगतेऽपि विश्वजिति परिवासा भवन्ति । तुरुपन्यायः त्वात् ॥ २९ ॥

न वा स्वसम्बन्धात्॥ ३०॥

न वाऽहर्गणगते विश्वजिति परिवासा भवन्ति । सर्वस्वशानसम्बन्धेन हि तेषां अवणमिति । अथवा 'स्वसम्बन्धात्' इति । विश्वजिद्या-जिसम्बन्धात् । न चाहर्गणयाजी । तस्मान्न भवन्ति ॥ ३० ॥

एकराजमेव पूर्वेणाभिचरेत् ॥ ११ ॥

पूर्वेण सन्दंशेन राजानमेवैकमभिचरेत् , न जनपदम् ॥ ११ ॥

(३)जनपदं वज्रेण ॥ ३२ ॥

व्यत्यासं वैनौ प्रयुक्तीत ॥ ३६ ॥ बक्रेण राजानं तजनपदं च सन्दंशन ॥ ३३ ॥ शमित्वा स्तृत्वा बाह्ययोतिष्टोमेन यजेत शा

न्त्यथेंन ज्ञान्त्यथेंन॥ ३४॥

अभिचारादुपदामं गत्वा मारायित्वा वा दाञ्चं ज्योतिष्टोमेन द्यान्त्य र्थेन यजेत ॥ ३४ ॥

> इति द्वाविदेष्टस्थाये एकादशी कण्डिका । इत्युपाध्यायकर्ककृतौ कात्यायनसूत्रविवर्णे द्वाविद्यातिमोऽध्यायः समाप्तः ।

⁽१) यस्मिन्नहर्गणे षोर्डाशसंस्थमहः तस्मिन्नपि शुण्ठाघी, लोहा कर्णी, सोमक्रयणी भवन्ति ।

⁽२) अहर्गणेऽपि विश्वजिति विश्वजित्परिवासा भवन्ति ''द्वाद्श रात्रं परिवसति' (का॰ श्रौ० २२-१-२१) इत्यादयः ।

⁽३) मज्रसंबेन जनपदं सकलदेशमिसचरेत्।

वयोविशीऽयायः।

बादशोपसत्का अहीना मालापवर्गाः ॥ १॥

ननु च द्वादशोपसत्कत्वं च चान्त्रम् , अन्वयान्तत्प्राप्तेः । अद्दीनाः तमकस्य हि द्वादशाहस्य अहिनान्तरेषु जामान्याद्ध्यप्रवृत्तिरिष्यते । तेन द्वादशोपसत्कत्वं प्राप्तमेवात्रति । अत्रोच्यते—"दक्षिः सुत्योपसन्द्वेषे । णा" (का० श्रो० २३-१-९) इति वश्यति । जामद्वस्ये चत्रात्रे दक्षिणां विश्वतिरक्ता (का० श्रो० २३-२-१)। तत्र मासाप्यगत्वे स्रति किं जामः दम्ये मासाप्यगता वाष्यताम्, उत्रोपसदां द्वादशत्विमिति तेन मासा-पर्वगतावाधनाय द्वादशोपसत्कत्व सुच्यते, वचनात्(१) मासाप्यगिस्ते मवन्ति ॥ १॥

(२)दीक्षाः सुत्योपसच्छेषेण ॥ २ ॥ सौत्यान्यहानि परित्रवय औपसदानि च होषा दीक्षाः ॥ २ ॥ द्यहप्रभृतयो जाद्वाहपर्यन्ताः ॥ ३ ॥

द्धिरात्रमञ्ज्यो द्वाददारावपर्यन्ता अहीताः॥३॥

(३)तत्राज्ञानादितराजांश्चेके ॥ ४॥

तन्मध्य आझानात् आतिरात्रांश्च एके अहोनधर्मकानिच्छन्ति आ-योवचनन्यायात्। यथा कितवमध्यस्थो ऽकितवोऽपि कितव रवातु-मीयते साहचर्यादेव। एके तक्षच्छन्ति। धर्मधाप्तिहिं वचनाद्भवति। न चह वचनमस्ति प्रत्यक्षम्, न चानुमानिकम्, न च नामध्यम्। तः स्माजाहीनधर्मका अतिरात्राः। न च सन्निधावास्नानमात्रेण धर्माणां प्रजृत्तिर्युका॥ ४॥

दाशरात्रिकाण्यहानि (४)द्यहादिष्वेकोचयेन तद्गुणदर्शनात् ॥ ५ ॥

(२) सुत्योपसदां शेषेण दीक्षा भवन्तीत्यर्थः।

े (४) द्यहादिष्वहीनेषु एकोश्चयेन दाशराजिकाण्यहानि हादशाहि-कदशराजसम्बन्धीन्यहानि भवन्ति । कुतः? 'तहुणदर्शनात्' दाशरा-

⁽१) मासेनापवर्गः समाप्तिः येषाम्। मासश्चात्र सावनस्त्रिशहिनात्मकः

⁽३) तेषां अहोनानां मध्ये पठनात् अतिरात्रान् नवसप्तदशादीन् वश्यमाणान् त्रयोदशसंख्यान् अहोनधमंकानेके इच्छन्ति । अन्य एका-हधर्मकान् । अतः कठमंत्रादिस्त्रेषु एकाहमध्य एव त्रयोदशातिरात्राः सुत्रिताः । अत एकाहधर्मका एवेति सिख्म् ।

द्वादशाहे यो दशरावस्तरीयान्यहानि भवन्ति द्विरात्रादिषु । कुत
तत् । तद्गुणदर्शनात् । तद्गुणा हि हर्यन्ते द्विरात्रं प्रकृत्य "अत्वाव्यो वै द्विरात्र हत्याहुः द्वे द्यंत छन्दकी गायत्रं च त्रैष्टुमं(च) जग
नीमन्तर्यन्ति जगत्यत्र न भवति" इति । त्रैष्टुममके (इति) वैद्यानसः
विधिपरे वाक्ये सिद्धं गायत्रं प्रथममहरूप्तेष्ट्वं च द्वितीयं दर्शयति ।
तिवि च दाशरात्रिकाण्यहानि द्यहादिषु तदैतदुपपद्यते । तथा त्रिकदुः
विधिपरे वाक्ये पृष्टश्यमवसितं दर्शयति । तिव्हमात्रमुपदिष्टम् । न्यायोऽतिवीयते । द्विरात्रादिष्वहर्गणेषु गुणत्वसामान्याद् द्वादशाहिको विविश्वत्त इत्यते । तत्र च प्रायणियोदयनीयावातिरात्रौ । सर्वत्र प्रत्यक्षो दः
विदात्र पद प्रवृत्तिप्रमंः । अपि च द्विरात्राक्षरात्र इति च रात्रिसामाव्यहात्रात्रको विश्यन्तप्रवृत्तिर्युक्तेति तस्मात्साधूक्तमाचार्यण "दाव्यक्षिकाण्यहानि द्यहादिषु" इति ॥ ५॥

सहस्रद्विणाः || ६॥ क्रिस्टर्

द्विरात्रादयो सवन्ति ॥ ६ ॥

चतूरात्रादिष्वधिकम् ॥ ७ ॥ वत्रात्रादिषु तु सहस्राधिका दक्षिणा(१) ॥ ७ ॥

पाकृतं वा प्रसहस् ॥ ८॥

'वा' शब्दो विकल्पार्थः। प्राकृतं दक्षिणादानं द्विरात्रादिखु वा _{प्रवि}ति(२)॥८॥

पौण्डरीकेऽयुतम्॥ ९॥

दक्षिणा ॥ ९ ॥

समविभक्ताः प्रत्यहं ददाति ॥ १० ॥

(३)प्रस्यहं समविभागेन दक्षिणादानम् ॥ १० ॥

(४)अन्त्येऽहन्याधिकाः ॥ ११ ॥

बिकाहगुंजानां हाहादिषु शाखान्तरे दर्शनात्। एकोश्चयेनेत्येकैकाहः वृद्धा तेन हाहेप्चेकम्, ज्यहेषु हो, चतुरहे त्रीणि।

(१) तेषां गवां सहस्रं किञ्चदधिकम्।

(१) सन्निधानात् चत्रात्रादिष्यित वास्देव इति देवयान्निकपाध्ये।

(३) तेन द्वाहेष्यन्वहं पञ्च पञ्च शतानि, प्रयहेऽन्वहं त्रीणि _{त्रीणि} शतानि त्रयस्त्रिशदिधकानि ददाति ।

^{त्रा}ं (४) समविभागे कियमाणे या अधिका अवशिष्यन्ते ता अन्त्येः _{ऽर्हि} देयाः । विभागाधिकानामन्येऽइनि दानम् ॥ ११ ॥

वयोदवानिरावाः ॥ १२॥

'ब्याख्यायन्ते' इति खुत्रशेषः ॥ १२ ॥

तेषाम् —

चत्वारो ऽषोडशिकाः प्रथमाः ॥ १३ ॥ षोडशिव्रहराहिताश्चत्वारः प्रथमाः ॥ १३ ॥

(१)प्रजातिकासस्य नवससद्दाः॥ १४॥ (२)भवति॥ १४॥

ज्येष्ठस्य (३)ज्येष्ठिनेयस्य विषुवान् ॥ १५॥ अतिरात्रो भवति ॥ १५॥

गौर्ञातृज्यवतः ॥ १६॥ स्वर्गकामस्यायुः ॥ १७॥

आमयाचिनो (४)वा ॥ १८॥

भवति ॥ १८॥

ज्योतिष्टोनविद्यजित्तृतृत्पश्रदशसप्तद्शैकविः शा यथासंख्यमृद्धिपशुत्रस्य चेसवीर्यात्राध्यातिष्टाकाः मानाम् ॥ १९॥

(५)मवान्त ॥ १९॥

असोर्धामः प्र प्रेव यस्मात्पदाची भ्राधारत्॥ २०॥ प्राप्ता इव यस्मात्पद्यचो अध्यन्ते तस्य 'असोर्थामो' मवति॥ २०॥

अभिजिद् भ्रातृब्यचनः ॥ २१ ॥

नैश्चिन्त्यमनुजानां यज्ञ्चेष्ठिनेयं ततुच्यते— तत्कामस्याम्रजस्यात्र विषुवान्बोध्यते मधाः॥ इति वासुदेवः

⁽१) तत्र प्रथममितरात्रमाह—इत्यवनरणिका श्रीदेवयाहिकैः छिखिता। (२) नवसप्तदशसंज्ञकः।

⁽३) यस्या योषितो ज्येष्ठो भ्राता विद्यते सा ज्येष्ठिनी तस्याः पुत्रो ज्येष्ठिनेयः पुमानिति माधवः। ज्येष्ठो वै ज्येष्ठाधिकारं कामयते मयाऽनुजाः कथमपि भोजनाच्छादनादिदानेन निश्चिन्ताः कर्तव्या इति स्येष्ठिनेयं तदिच्छोः स्यात् इति श्रीअनन्तः।

^(😮) श्रामयाधिनो रोगिणा वा ।

⁽५) ऋविकामादीनां षण्णामधिकारिषां उद्योतिष्टोमाद्यः पडतिः रात्रा मवन्ति ।

सर्वस्तोमो बुसूषतः ॥ २२ ॥ भूतिमिच्छतः 'सर्वस्तोमो' भवति ॥ २२ ॥ यूपैकाद्शिनी चास्मिन् ॥ २३ ॥ भवति ॥ २३ ॥ इति त्रयोविशेऽध्याये प्रथमा कव्डिका ॥

द्यहास्रयः॥१॥

(१)भवन्ति ॥ १ ॥ अषोडाशिकावतिरात्रा उत्तरयोः ॥ २ ॥

(२)द्विरात्रयोः॥२॥

आ।द्वरमचैत्ररथकापिवनाः॥ ३॥

एतेषामेष संज्ञाः॥३॥

बिनीयसुक्थ्यपूर्वमेके ॥ ४॥

द्वितीयं द्विरात्रमेके उक्थ्यपूर्वे कुर्वान्त । पार्ष्ठिकस्याग्निष्टोमस्य स्थाने उक्थ्यं कुर्वन्ति । संस्थामात्रान्यत्वं, धर्मास्तु तद्या एव ॥ ४ ॥ प्रथमेन यजेत यः (३)पोण्यो हीन इय स्थात् ॥ ५ ॥

पुण्याहीः सन्पुण्येनं गुज्यतः इत्यर्थः॥ ५ ॥

(४)द्वितियन प्रजाकामः ॥ ६॥ (५)तृतीयेन स्वर्गकामः पशुकामो वा॥ ७॥

(६) इयहाः पश्च ॥ ८॥

गर्भवैदछन्दोमान्तर्वसुपराकाः ॥ ९ ॥

हितीये चिवृतोऽतिराजाः सर्वे(७)राज्यकामस्य।। १०॥ विवृत्स्तोमयुक्ता अतिराजाः राज्यकामस्य भवन्ति कतवः।

(१) हिसुत्यास्त्रयोऽहोना । (२) द्वितीयतृतीययोः ।

(३) पुण्येषु श्रोतस्मातेषु साधुः गौगयः। ताद्वशोऽपि सन्यो हीन इवस्यात्। पुण्यात्मनाम् सर्वैः पूज्यानां मध्ये पूजारहित इव स्यात् स प्रथमेन आङ्गरससंशकेन यजेतेत्यर्थः। (४) सैत्ररथनाम्ना।

(६) कापिवननाम्ना । (६) ज्यहास्त्रसुत्याः पञ्चाहोनाः ।

(७) बैदित्ररात्रे सर्वे त्रयोऽपि सौत्याः कतवोऽतिरात्रसंस्था भवश्ति ।

वयोविशेऽध्याये चतुरहानानिकविका बितीया कण्डिका। ३०५

तत्रापि संस्थान्यत्वसात्रम् ॥ १० ॥

अन्तर्वेतुः पशुकामस्य ॥ ११ ॥

भवति ॥ ११॥

पराकः स्वर्धनामस्य ॥ १२ ॥

अवति ॥ १२ ॥

(१)चतुरहाअत्वारः ॥ १३॥

अत्रिचतुर्वीरजामदग्नविष्टस्यसर्पविश्वामित्राः ॥१४॥

संज्ञा पताः॥ १४॥

जामदण्नो विश्वातिदीक्षः पुष्टिकामस्य ॥ १५॥ सवति॥ १५॥

45 a-

उपसदः पुरोडाशिन्यः॥ १६॥ "उपसदः पुरोडाशिन्यो भवन्ति"(ताण्ड्य०२१-११)इति वचनात्॥१६

अनुपसदं जहोति ॥ १०॥

उपसद्युपसदि पुरोडावान् जुहोतीत्यर्थः॥ १७॥ यदा चानुवसदं पुरोडाशहोमस्तदा चिन्यते। किमाल्यधर्मा भव न्ति, उत औषधयमां इति । किं तावत्यातम् । सुत्रेणैव पक्षः— आड्यधर्मास्यानापत्तेः(२)॥ १८॥

कार्यापचौ हि धर्मप्राप्तिर्युकेति ॥ १८ ॥ एवं प्राप्त आह—

भोषभ्रथमा (३)वा द्रव्यसामान्यात्॥ १९॥ औषधधर्मा वा मवन्ति नाज्यधर्माः । सत्यामपि कार्यापत्तौ पुरोन डाशदृब्यं हात्र पर्युपस्थापकं धर्माणाम् । कार्यापत्तिरिति कृत्वार्धभिहि॰ तमेतत्। न चेह कार्यापानः ॥ १९॥

अनुहोमाश्च पुरोडाञ्चाः ॥ २० ॥ अनुहोमा हि पुरोडाशाः श्रृयन्त इति "अन्यमदं जुहोति" (का॰

(१) चत्वारोऽहोनाश्चतुरहाश्चतुःसुत्या भवन्ति।

(२) पुरोडाशानामाज्यस्थानापन्नत्वात् । प्रकृतौ ह्याज्यमुपसद्याः

गत्रव्यम् । (३) बावधारणे। औषधधर्माः पुरोडाज्ञधर्माः। कुतः १ द्रव्यसा-मान्यात् । पुरोडाशानां पुरोडाशेन सामान्यं यतः ।

श्रौ० २३-२-१७) इति । उपसद्यागमनु जुदोतीत्यर्थः ॥ २० ॥ प्रत्युपसद्मेकोचयेन कपालान्येककपालप्रसृतीनामा-रनेयाहिननवैष्णवसीम्यसावित्रघाञ्चमाङ्तवा-ईस्पत्यमैत्रवारुणेन्द्रवैद्देवाः(१)॥ २**१**॥

पतद्वेचत्याः पुरोडाशाः। तेषां चकोचयेन कपालानि पकप्रभृतीनि भवन्ति। 'अनुपसदं जुहोति'इति च जुहोतिसंशब्दनाज्जुहोतय पते॥२१॥

इति त्रयोविदोऽध्याये वितीया कण्डिका ॥

तेवार्थ होमः॥ १॥

अरने वेहींत्रं वेरध्वरमा पितरं वैद्वानरमवसे करि-न्द्राय देवेभ्यो जुडुता हाविः स्वाहा ॥ २॥

देवाविहवनौ मधुकश्चायायेमं यज्ञं यजमानाय मिमि-

क्षतमिन्द्राय देवेभ्यो जुहुता हविः स्वाहा ॥ ३ ॥

क्षेत्र विष्ण उर्वचास्मिन्यज्ञे यजमानायाधि विक्रमः स्वेन्द्राय देवेभ्यो जुहुता हविः स्वाहा ॥ ४ ॥

देव सोम रेतोघा अचास्मिन्यज्ञे यजमानाचैधीन्द्राय

देवेभ्यो जहुना हविः स्वाहा ॥ ५॥

देव सवितः सुमावित्रमद्यास्मिन्यज्ञे धजमानायासु-वस्बेन्द्राय देवेभ्यो जुहुता हाविः स्वाहा॥६॥

देव घातः सुघाताचास्मिन्यज्ञे यजमानायैघन्द्राय देवेभ्यो जुहुता हविः स्वाहा ॥ ७ ॥

देवा ग्रावाणो मधुमतीमधास्मिन्यज्ञे यजमानाय बाचं बद्तेन्द्राय देवेभ्यो जुहुता हविः स्वाहा ॥ ८ ॥

देव्यसुमने उन्वयेमं यज्ञं यज्ञमानाय मन्यस्वेन्द्राय देवेभ्यो जुहुता इविः स्वाहा ॥ ९ ॥

⁽१) एककपाळादीनां द्वादशानां पुरोडाशानां प्रत्युपसद्मेकोचयेन कपालानि मवन्तीत्यर्थः।

देश्यदिते स्वादित्यमचास्मिन्यक्के यजमानायासुनः स्वेन्द्राय देवेभ्यो जुहुता हविः स्वाहा ॥ १० ॥

देव्य आपो नंनम्यध्वमयास्मिन्यज्ञे यजमानाये -न्द्राय देवेभ्यो जुहुना हविः स्वाहा ॥ ११ ॥

सदः सदः प्रजावानुसुर्जुषाण इन्द्राय देवेभ्यो जुहुः ता हविः स्वाहा ॥ १२ ॥

देव त्वष्टः सुरेतोषा अद्यास्मिन्यज्ञे यजमानायैषी-न्द्राय देवेभ्यो जुहुता हविः स्वाहेति(१)॥ १३॥ इत्येवमादि निगदव्याख्यातम्॥ १-१३॥

एतै: सुत्यान्ते(२) द्वादशाइं यजने प्रतिलोममेकैकेन ॥१४॥ पतद्वमंकैः पुरोडाशैः सुत्यान्ते सुत्यासिश्चौ द्वादशाहानि यजेत प्रातिलोम्येन । 'यजेत' इति संशन्दनाच यजतय पते न जुहोतयः॥१४॥ इति बयोविंशेऽध्याये तृतीया कण्डिका ॥

पञ्चाहास्त्रयः ॥ १ ॥

भवन्ति ॥ १ ॥

देवानां प्रथमः ॥ २ ॥

प्रथमस्य 'देवपञ्चाह' इतीयं संज्ञा ॥ २ ॥

हितीयः पञ्चशारदीयः ॥ ३ ॥

ब्रितीयस्य 'पञ्चशारदीय' इतीयं संज्ञा ॥ ३॥

तेन यह्यमाणः पञ्चवर्षाण्या(३)इवयुजीशुक्लेषु चतु-

स्त्रिश्वातं पञ्जनालमते मारुतान् ॥ ४ ॥ 'तेन' इति पञ्चशारकीयोपलक्षणम् ॥ ४ ॥

वैद्यस्तोमदाचिणालिङ्गान् ॥ ५॥

⁽१) तेषामाग्तेयादीनां पुरोडाशानां ''अग्ते वेहींत्रम्' इत्यादयो होममस्त्राः यथाक्रममेभिमेन्त्रेहोंमः कार्य इत्यर्थः ।

⁽ २) सुत्यानामन्ते यहासमाप्त्यनन्तरं पूर्वाह्वापराह्वयोर्यामं कुर्यात् ।

⁽३) आश्वयुजी पौर्णमासीसम्बन्धिषु शुक्कपक्षेषु आश्विनशुक्कपक्षे सप्तम्यामष्टम्यां वेत्यर्थः।

वैदयस्तोमे दक्षिणायां यानि लिङ्घानि 'राजीवपृश्तय' दत्येवमादीः नि तहिङ्गानालसते॥ ५॥

उस्णो बस्सनरीर्वणांतुष्ट्येंण॥६॥ प्रतिवर्षम्(१) ॥ ६ ॥

(१)अर्घा वस्ततर्यः॥ ७॥ तेषां च पशुनामधां वत्सतयों भवन्ति ॥ ७ ॥ पर्यानकृतानुत्सजन्त्युक्षणो वत्सत्रीभिः

संस्थापयान्त ॥ ८॥

'उक्ष्णां (३)तदङ्गरीतिविधानम् । वत्सतरीभिः परिसमाप्तिः ॥ ८॥ एवं पश्च वर्षाण्युक्षणो नियुक्तन्ति(४) ॥ १ ॥

"ताँश्चेबोहण" (ताण्ड्य० २१-१४) इति वचनात् तानव । वत्सतः र्यस्तु प्रतिवर्षे वर्णानुपृत्र्वेणान्याश्चान्याश्च भवान्त ॥ ९ ॥

(५)षष्टे सवनीया भवन्ति त्रयस्रयोऽन्वहमै-

न्द्रामाह्नाः ॥ १०॥

षष्ठे वर्षे त एवोक्षाणः सवनीया भवन्त्यन्वहं त्रयस्त्रयः॥ १०॥ पञ्चोत्तमं(६) ॥ ११ ॥

उत्तमे ऽहनि पञ्च ॥ ११॥

यः कामयेत बहुः स्यामिति स एतेन यजेत ॥ १२॥ पञ्चशारदीयन ॥ १२ ॥

- (१) तत्र प्रतिवर्षमुश्णो वृषभान् वर्णानुपृथ्यें । वर्णक्रमेण वत्स-तरीश्चालमते । उक्षाणो वृषमाः साण्डाः सेचनसमर्थाः पञ्चवर्षाः पृश्न यो विचित्रवर्णा आलभ्यन्ते । वस्ततर्यश्च त्रिवर्षा अप्रवीता ऋषमेणाः भुकाः । पञ्चवर्णा वत्सतर्यः सन्ति । प्रथमे वर्षे राजीवपृष्टनयः, द्वितीये नवनीतपृश्नयः, तृतीये अरुणाः, चतुर्थे पिशङ्ग्यः, पञ्चमे सारङ्ग्य इति।
- (२) चतुस्त्रिशत्संख्यानां पशुनां मध्येऽर्धाः सप्तदश वत्सतर्थः। अर्घा उक्षाणः । (३) 'तदन्ताङ्गरीति' बर्छिनसुद्दितपुस्तके ।

(४) तानेव पर्याग्नकृतानुत्सृष्टान् तानेव प्रतिवर्षमालभन्ते ।

- (५) ये उक्षाणः पञ्चवर्षाण्यालभ्यालभ्य उत्सृष्टास्त एव षष्टे वर्षे कार्तिके मास्रि सुत्यास विभन्ध सवनीयाः पश्चा सवन्ति । चतस्रुषु सुत्यासु अन्वहं प्रत्यहं त्रयस्त्रय आलभ्यन्ते ऐन्द्रामारुताः।
 - (६) उत्तमे पञ्चमे सौत्येऽहिन पञ्चोक्षाण श्राहस्यन्ते ।

पहवापाद् चरवः ॥ १५॥

पतेषामेव पशुनामायत्सु चरवो भवन्ति ॥ १५॥

(१)अपोनच्छियांऽएस सुते ॥ १६॥

अन्तु सृते पशावपोनिष्त्रयश्चरभ्वति। अत्र चाऽपोनपाहेवता न त्वपोनसा। तत्र यमस्ययसन्नियोगेन प्रातिपदिकव्युत्पस्या 'अपोनिष्त्र-य' इति सपं भवति। पतक तिद्धित एव नासुवाचनादिषु ॥ १६॥

वायच्यः पलाचिते ॥ १७ ॥

नष्टे वायव्यञ्चरभंवति ॥ १७॥

बाईस्पत्यः अवणक्रदशाणश्चेत् ॥ १८ ॥

(२)अवणो-व्याधिविशेषः। ज्ञूटो-भग्नशृङ्गः। काणः प्रसिद्धः। पषु वाह्रस्पत्यश्चरः॥ १=॥

नैक्तेतो(३)ऽवसन्ने ॥ १९॥

अन्ययूर्थावेर्युष्यमानस्यावसाये चहर्मबति ॥ १९ ॥ पुरोडाज्ञाः परे इद्वाभिमानेऽग्रये रहवते ॥ २० ॥

रुद्धायाभिमाने (४)ज्वरगृहीते ॥ २० ॥

(५)स् ज्ञीणेखेदेककपालो (६)भौमः ॥ २१ ॥ संजीर्णो विजीर्णः ॥ २१ ॥

(७)पासहा हृतश्चेदिन्द्राय प्रसहने ॥ २२ ॥

- (१) 'अयोनप्त्रपांनप्तृश्यां घः' इति सुत्रेण घ प्रत्ययः तस्सन्तियोः गेन अपांनपाच्छब्दस्य स्थाने अपोनप्तृ आदेशः। याज्ञिकास्तु अपोन-प्ता एव देवता इति देवयाज्ञिके स्पष्टम् ।
- (२) 'श्रोणो' इत्यपिपाठः माधवीये ताण्ड्यभाष्ये व्याख्यातः। श्रोणो रक्तवर्णा बिन्हाकारस्त्वग्दोष इति ।
 - (३) अवसाये शिथिले । अवसन्नः—अस्यन्तकृश इति माधवः।
- (४) अतःपरं पुरोडाशा उपदिश्यन्ते । तत्र पशोर्ज्वरपीडायाम् । स्द्राभिमानश्च स्वरः; स्ट्रकोपजस्वादिति स्पष्टं भावप्रकाशे ।
- (५) संशोणों रोगान्तरं विनापि आहारापरिपाकेन शरीरपुष्धः भावारक्षयेणावसम्बद्धति याज्ञिकाः । क्षीण इति यावत् ।
- (६) बकस्माच्छरीर प्रकम्ण्य भूमौ पतितश्चेत् तदा भौमः भूमि-देवताकः।
 - (७) केनचिद्धैरिणा इति शेषः।

मासहा हृतः प्रसहा हृतः ॥ २२ ॥ भोजनीयमृते प्राजापत्यो द्वाद्शक्यास्तः ॥ २३ ॥ भोजनीयमृतो ऽजीर्णमृतः ॥ २३ ॥

(१)मृतं ब्राह्मणान्मोजयेत् ॥ २४ ॥ प्रोक्षितस्य हि मांसमक्षणमुचितमिति ॥ २४ ॥ अपसु प्रासनम् ॥ २५ ॥

"दुष्टस्य हविवोऽप्स्ववहरणम्" (का० औ० २५-५-९) इति सप्सु प्रासनमुक्तम् ॥ २५ ॥

निधानं वा दुष्टत्वात् ॥ २६ ॥

निधानं (२) वा भवति नाप्सु प्रासनम्। किं कारणम् ? अदुष्टत्वाः त्। शिष्टमक्षपतिषद्धं दुर्दं भवति(३)। न चेषु दोषेषु शिष्टमक्षप्रः तिषेधः। तस्माक्षिधानमेव॥ २६॥

इद्मिदानी विचार्यते—किमत्रैवेतानि वैमितिकानि, उतान्यत्राः पीति । अत्राह—

अन्यन्नापि दोषसंयोगात् ॥ १७॥ बतोऽप्यन्यत्र प्योभरोंबैः पशुज्यापचौ पतानि नैमिचिकानि भ वन्ति । कुतः १ पशुज्यापस्युपदेशेन(४) बिह्नितस्वात् ॥ २७॥ पवं प्राप्त आह —

न प्रकरणात्॥ २८॥

पश्चशारदीयव्यतिरं कंगैनानि नै।मिलिकानि न अवन्ति। कुतः ! पश्चशारदीयं हि प्रकृत्य श्रुनत्वात् प्रकृतत्वाच्च विशेषावसानम् ॥ २८ ॥

(५)वनवानुसमः॥ २९॥

उत्तमः पञ्चाहः वनवन्यं बका भवति ॥ २९ ॥

- (१) इयं मृतस्य पशोः प्रतिपत्तिः।
- (२) अथवा भन्नणाय निधानं यत्नेन सुगुप्ते देशे स्थापनमिति देवयाश्विकाः।
 - (६) न हि स्वयं मृतस्य शिष्टानां अक्षप्रतिषेध इति।
- (४) पञ्चशारदीयादन्यत्राति कमःण पशुज्यावत्तौ इमानि प्राय-त्रिचत्तानि भवन्ति । पशुज्यागस्युद्देरोन प्रायक्षित्तानां विहितत्वात् ।

(५) इतः पञ्चाहस्तृतीय आरभ्यते।

तत्राद्वास्याह—

(१)ज्योतिगाँभिंहाव्रतं गौरायुः॥ ३०॥ अद्दीना व्रतवन्तः सर्विजिद्दीक्षाः॥ ३१॥ भवन्ति ये व्रतवन्तः(१)॥ ३१॥ द्रति त्रयोविकेऽध्याये चतुर्थी कण्डिका॥

षडहास्त्रयः ॥ १ ॥

ऋतुनां प्रथयः ॥ ३॥

षष्ठीनिर्देशेऽपि सति सङ्गेषा(३)। यथा गवामयनं शाक्यानामयः नमिति च ॥ २ ॥

द्वितीये बुहद्रथन्तरपृष्टः पश्चाहः पृष्ठयावः

श्रम्बाख्यः ॥ ३ ॥

दितीये षडहे पाछिकः पञ्चाह उभयपृष्टः पृष्टवानलम्बाख्यो भवति। पृष्टवानलम्बाख्याया रह च प्रयोजनासानारम्यार्थता । वश्यति हि-"पृः ष्ट्रवानलस्वाश्चरनारस्कृदोमा" (का॰ औ० २३-५-३३) रति ॥ ३॥

तृतीये त्रिभ्यास्त्रिकहुकाः(४) ॥ ४ ॥ तृतीये षडहे त्रिभ्यः पार्ष्टिकेभ्याऽवलितभ्यास्त्रकहुका भवन्ति॥४॥

सप्त सप्ताहाः।।५॥

चत्वारो व्रतोत्तमाः प्रथमाः ॥ ६॥ चतुर्णो महावतमुत्तमं भवति ॥६॥ तृतीयः पशुकामस्य ॥ ७॥

सवति ॥ ७॥

⁽१) ज्योतिः गौः महाव्रतं गौः भायुः पतन्नामकानि पञ्चाहानि मवन्ति ।

⁽२) ये बहीना बतवन्तः ते सर्वजिहीक्षाः। सर्वजिति यथा-"सर्व-जित्समहाबतः संवत्सरदीक्षः सप्ताहां मधवस्तिस्र उपसदः षड्यां" "अग्निबद्धा दीक्षाः" (का॰ श्री॰ २२-१-४४,४५) दीक्षाः कथात्रापि बोद्धस्याः।

⁽३) ऋतुषडह इति तस्य संज्ञा।

⁽४) ज्योतिरादीनां त्रयाणां त्रिकद्वकः इति संक्षाः 'श्वहार्थे ज्योः तिगौरायुरिति त्रिकद्वकाः' (का० श्रो० २४-१-२) इत्युक्तेः।

इन्द्रस्य पञ्चमः॥ ८॥

पञ्चम इन्द्रसताह्संहरूः ॥ ८॥

42--

(१) ब्रितीयप्रभृतिषडेकाहाः ॥ ९॥

अवन्ति ॥ ९ ॥

सर्वस्तोम उत्तमः (२)॥ १०॥

जनकसरात्रः ॥ ११ ॥

चतुभ्यी विद्वजिन्महात्रतम् ॥ १२॥

चतुर्भः पाष्टिकेश्योऽविश्वितेश्यः परो 'विश्वजिन्महावतं'व ॥ १२ ॥ उत्तमे षडहो वृहद्रथन्तरपृष्ठः पृष्ठयस्तोमारूवः ॥ १३ ॥ उभयपृष्ठयस्य षडहस्य 'वृष्ठयस्तोम' इतीयमाख्या संध्यवः हारार्था ॥ १३ ॥

विद्वजित्पशुकामस्य ॥ १४ ॥
(३)विद्वजिद्विरात्रो भवति । पशुकामस्य वायम् ॥ १४ ॥
अष्टाहे षडहान्महात्रतम्(४) ॥ १५ ॥
मद्याहे पडहादवसिवान्महात्रतं भवति । वतोऽतिरात्रः ॥ १५ ॥
नवरात्रे जिकदुकाः ॥ १६ ॥

पडहादेवावसिताद्भवन्ति ॥ १६ ॥ (५)दितीयं त्रिकद्वकेभ्यः पुष्ठचावसम्बः ॥ १० ॥

ततोऽतिरात्रः॥ १७॥

द्शराजाश्चत्वारः॥ १८॥

भवन्ति ॥ १८ ॥

प्रथमस्त्रिककुष् ॥ १९॥

(२) अन्यः सर्वस्तोमोऽतिराज्ञो भवति।

(३) अस्मिन्नेव सप्तमे सप्ताहे सप्तममहो 'विश्वजित्' भवति ।

(४) अष्टसुरये पाष्टिकारषडहादूष्वं महान्नतं भवति ।

(५) व्यत्ययेन 'द्वितोये' इत्यस्यार्थे द्वितीयमिति। द्वितीये नवरा त्रे नवस्येऽहीने त्रिकदुकेस्यः परः पृष्ठवावलम्बः भवति बृहद्रथन्तर पृष्ठः पञ्चाहो भवतीत्यर्थः।

⁽१) तत्र पश्चमे समाहे द्वितीयादेकाहादारभ्य षडेकाहाः सुत्याहाः नि भवन्ति । ज्योतिगींशायुषोशभिजिद्धिश्वजित्सर्वजित्समहावतश्च षष्ठ रुत्येके ।

प्रथमः 'त्रिककुप्' संबक्षो सर्वात ॥ १९ ॥ जन्यथोऽग्निष्ठोमपक्षाक्तिरावृतः(१) ॥२०॥ सर्वे चैंतेऽपूर्वाः ॥ २०॥

(२)प्रातिष्ठाकामस्य ॥ २१ ॥ (३)कौसुरुविन्दः ॥ २२ ॥ 'कौसुरुविन्द' रति संज्ञा ॥ २२ ॥ तत्राहान्याह—

अग्निष्टोमास्त्रिवृतस्त्रयः ॥ २३ ॥ त्रिवृत्स्तोमयुक्ता 'अग्निष्टोमाः' त्रयो सवन्ति ॥ २३ ॥ (४)पञ्चद्शाञ्चोक्थ्याः ॥ २४ ॥ त्रय एव ॥ २४ ॥

सतद्शाय ॥ २५॥

'च' शब्दाश्त्रय उक्टयाः ॥ २५ ॥

एकविश्वाेऽतिराञ्चः ॥ २६ ॥
योऽतिरात्रः स पक्षविधस्तोतको भवति ॥ २६ ॥
(६)पूर्दशराञोऽभिचधैमाणस्य ॥ २९ ॥
'पूर्दशरात्र' रति संजैषा, सोऽभिचर्यमाणस्य भवति ॥ २७ ॥
तत्राहान्याह—

उक्थ्योऽग्निष्टोमपक्षः ॥ २८ ॥ उक्थ्यस्योभयतोऽग्निष्टोमाविति ॥ २८ ॥ गोपचोऽभिजित् ॥ २९ ॥ 'अभिजित्' एकाहः । तस्य गौरुभयतो भवतीत्यर्थः ॥ २९ ॥ आयुर्विश्वजित्पक्षः ॥ ३० ॥

आयुराख्यश्र-एकाहः तस्य विद्वजित्पक्षसंस्थानीयो सवति ॥३०॥

⁽१) अग्निष्टोमा पक्षाविव यस्योक्श्यस्य । त्रिरावृतस्त्रिवारं सव ति । एवं नव । ततस्व पार्ष्टिकश्रमांभावः ततो दशमो विश्वजिद्तिरात्र इति देवयाक्षिकाः ।

⁽२) अयं 'त्रिककुप्' संज्ञको दशरात्रो अवतीतिशैषः।

⁽३) अयं द्वितीयो दशरात्रः।

⁽ ४) पञ्चदशस्तोमाः 'च' कारात्यय उष्ध्या भवन्ति । एवमवेऽपि

⁽ ५) अर्थ तृतीयो दशरात्रः ।

(१)छन्दोमदशाहः पशुकामस्य ॥ ३१ ॥ 'छन्दोमदशाह' इति संश्वा । स पशुकामस्य भवति ॥३१॥ तत्राहान्याह

प्रध्यावलम्याबत्वारइछन्दीमाः(२) ॥ ३२ ॥

अतिरात्र उत्तमः॥ ३२॥

(३)पीण्डरीकः सर्वर्धिकामस्य ॥ ३२ ॥ 'पौण्डरीक' इति संज्ञा, स सर्वर्धिकामस्य भवति । सर्वामुद्धिर्यः कामयते स सर्वर्धिकामः, तस्य पौण्डरीको भवति ॥ ३३ ॥

द्शराञ्चोऽसञ्चात्थानः ॥ ३४ ॥ द्शरात्रो भवति सत्रोत्थानवर्जितः ॥ ३४ ॥

विद्वतिद्तिरात्रः(४) ॥ ३५ ॥ भवति ॥ ३५ ॥

तुरयमाध्वयं बमातिरात्रेषु विद्ववित्र क्षेम् ॥ १६॥ अही नेषु ये ऽतिरात्रास्तेषु समानमाध्वयं नं भवति । विद्ववित्तं व क्षियता । को विदेवस्तेत्रेति चेत्, सर्वभेषे श्रूवते—"विद्वाजित्सर्वः पृष्ठोऽतिरात्रो द्राममद्दभेवति" (रा० त्रा० १३-७-१-१२) इति सर्वः पृष्ठता विदेशः । तेनोच्यते 'विद्वजिद्धर्जम्' इति ॥ ३६॥

यथोक्तमुत्तमो यथोक्तमुत्तमः॥ ३७॥ उत्तमो द्वावशरात्रो (५)यथोक्त एव भवति॥ ३७॥ इति त्रयोविशेऽध्याये पञ्जमी कण्डिका॥ इत्युपाध्यायकर्षकृती कात्यायनसूत्रविवरणे त्रयो

विंदातितमोऽध्यायः समाप्तः ।

(१) अयं चतुर्थो दशरात्रः।

सम्बारमकद्वादशाहसंनिधाने अहीनद्वादशाहोऽण्युकोऽस्ति इति देवयात्रिकाः ।

⁽२) चेतुर्थे दशरात्रे पृष्ठयावलम्बाद्ध्वं द्वादशाहिकाश्चत्यारप्रलः म्दोमा मवन्ति । तत्र पूर्वं बृहद्रथन्तरपृष्ठः पञ्चाहः ततश्चत्वारप्रलः न्दोमाः ततो दशमो विश्वजिवतिरात्रः ।

⁽३) पतस्वंत्रक पकादशरात्रः। (४) एकादशमहर्भवति।

⁽ ५) यथोक्तो यथा पूर्वमुक्तः (का० श्रौ० १२-१-१,६-३३) तथा भवतीत्यर्थः ।

चतुर्विशोऽघ्यायः।

डका अहीनाः । इदानीं सत्राण्यभिधीयन्ते—

बाद्दारात्रादीनि राजिसत्त्राणि ॥ १ ॥

'रात्रिसत्त्राणि' इति नाम । सच्च द्वादशरात्रप्रभृतीनाम् । (१)पूर्वः
पदप्रधानोऽयं बहुवीहिः ॥ १ ॥

एकोचयेन चत्वारिशुद्यदन्तानि ॥ २ ॥ यकोखयेनाम्हां चत्वारिद्यदम्तानि रात्रिसस्राणि ॥ २ ॥ यथोपदेद्यामहानि(२) ॥ ३ ॥

येन क्रमेण यान्यहान्युपदिश्वन्ते, तानि तथैव प्रतिपच्चयानि । किमर्थमिदमुच्यते ? आवापिकानामन्यः क्रमः औपदेशिकानां तु उप-देशकाम एव । अथवा 'यथोपदेशम्' इति ऐहिकानां नाम्नां घर्मप्रति-पस्यर्थम् ॥ ३॥

आपूर्वमाणे (३)द्शराजः परः॥ ४॥

आपूर्यमाणे सत्रे दरारात्र आवापो भवति । स च अवन्परतो भवति न पूर्वः । पद् पाष्टिकानि चरवारि छान्दोमिकान्यदानि दराः रात्र उच्यते ॥ ४ ॥

> (४) प्रकृतिविहितेषु महावनं दशरामादुत्तरः मेकाहार्थे॥ ५॥

यानि प्रकृतिविहितानीत्याचार्येणाभिधीयन्ते, तत्रैकाहार्थे महावतं भवति दशरात्रादुत्तरम् ॥ ५ ॥

(२) एषु त्रयोदशरात्रादिषु सत्रेषु उपदेशक्रमेणैवाहानि भवन्ति।

(४) प्रकृतिविहितानि सत्राणि वश्यित तेषु एकाहार्थे एका**ई विना** सुत्रस्यापूरणे दशरात्रात्वरं महावर्त भवति ।

⁽१) द्वादशरात्रमादिर्थेषाम्। तत्र द्वादशरात्रं द्वादशाह एव स-त्रात्मकः। स च पूर्वमुक्त एव। ततो द्वादशरात्रादारम्य एकैकाहर्वृद्धाः चत्वारिशद्वात्रात्तानि संज्ञाणि भवन्ति।

⁽ ३) द्वादशाहिको दशरात्रः । 'पृष्ट्यः पडहः, त्रयश्छन्दोमा, अवि-वाक्यो दशम' (का॰ श्रौ॰ १२-३-१, २०) इत्ययं परो भवति । सर्वे-बामहामन्ते प्रागुदयनीयानिरात्राद्भवतोत्यर्थः ।

पुरस्तादन्यत् ॥ ६ ॥

थद्व्यदावापान्तरं व्याख्यास्यते तद्वारात्रात्पूर्वे भवति ॥ ६ ॥

पडहार्थेऽभिद्धवः ॥ ७॥

यत्र पड्भिरहोभिर्न पूर्यते सत्त्रम् तत्रामिष्ठवः प्रणो भवति। अभिष्ठवार्थश्चोक्तो गवामयने(१)॥ ७॥

तस्यादितः पश्च पञ्चाहार्षे ॥ ८ ॥ तस्यवाभिष्ठवस्यादितः पञ्चाहानि गृद्यन्ते (२)पञ्चाहार्थे ॥ ८ ॥ इयहार्थे उघोतिगौरायुरिति त्रिकदुकाः ॥९॥ 'त्रिकदुका' इति ज्योतिरादीनां समुदितानां संज्ञा संव्यवहारार्था॥९॥

त्रतं च यथोक्तं चतुरहार्थे ॥ १० ॥ 'च' शब्दात्त्रिकदुकाक्ष । यथोक्तप्रहणाच्च दशरात्रात्परं वतं भवति ॥ १० ॥

गोआयुषी द्यहार्थे ॥ ११ ॥

भवतः ॥ ११ ॥

अतिराज्ञान्तरमावापस्थानम् ॥ १२ ॥

सत्रस्याद्यन्तयोरतिरात्रविधानात् (३)॥ १२॥

(४)आवापसम्बेतानामस्पमस्पं पूर्वम् ॥ १३॥ यत्रावापानां समवायेन सत्रं पूर्यते तत्र यद्यद्वपं तत्तत्पूर्वं भवति॥१३॥ (५)क्वे त्रयोददारात्रे ॥ १४॥

मात्रे भवतः ॥ १४॥

(१) "अभिप्लवः षडहः" (का० श्री० १३-२-१) इत्यादिना ।

(२) यत्र स्वत्त्रपूरणाय पञ्जैवाहानि मृग्यन्ते तत्र तस्याभिष्ठवस्या-दितः सादिमानि पञ्चाहानि गृहान्त इति ।

(३) "उभयतोऽतिरात्रः सत्त्रम्०" (का० श्रौ० १२-१-७) इत्यत्र, तत्रातिरात्रयोः प्रायणीयोदयनीययोरन्तरास्त्रमावापस्थानम् ।

(४) आवापाश्च ते समवेताश्च ते आवापसमवेताः तेषाम्। यत्र आवापानां बहुनां समवायः तत्र अल्पमल्पं पूर्वं पूर्वमावपनीयम्। यथा एकोऽभिष्ठवः षडहः अपरस्तस्यैव पञ्चाहः चतुरहस्त्र्यहो द्रयहो वा। तत्र पञ्चाहादेः पूर्वमावापः ततोऽभिष्ठवषडहस्येति ।

(५) पर्व सत्रपुरणोपयोगिनीं परिभाषामुक्त्वाऽधुना 'त्रयोदशरात्र' प्रभृतीनि सत्राष्युच्यन्ते तत्र हे त्रथोदशसुत्ये सवतः ।

पुट्यात्सर्वस्तोमोऽतिराञ्चः(१)॥१५॥ पृष्ठवादवक्षितात्सर्वस्तोमसंब्रकोऽतिरात्रो सवति । पूर्णमिदमेकम्॥१५॥ प्रकृतिविहितं द्वितीयस्(२)॥१६॥

भवति । प्रकृतिविद्यित्तप्रहणाः वतं द्यरावाद्यरं सवति ॥१६॥ सम्भाषे ततीयम्(३) ॥ १७॥

तृतीयं त्रयोदशरात्रमहोभिः सम्भियते ॥ १०॥

(४)पायगीयाच्चतुर्विश्वामहर्गाजिलयः स्वरसामा नो विषुवांस्रयः स्वरसामानो विश्वजिद्यतः

सदयनीयोऽतिराञः॥१८॥

अत्र चतुर्विशमहरादिषु गावामयनिकेष्द्रात्रालम्मसवनान्तज्ञप भवन्ति गावामयनिकत्वादेव ॥ १८॥

(५)चतुर्दशरात्राणि जीणि(६)॥ १९॥ तत्रैकांस्मन्—

द्वौ पृष्ठवौ ॥ २० ॥

भवतः ॥ २०॥

प्रतिलोमः परः(७) ॥ २१ ॥

(१) त्रयोदशसुत्ये भवतः। तत्र प्रथमस्याहान्याह 'पष्ट्यात्सर्वः स्तोमोऽतिरात्रः'। ''द्वादशाहधर्माः सत्त्रेषु०" (का० औ० १३–१-१) इत्युक्तम् तेन सर्वेषु सत्त्रेषु द्वादशाहश्रमा भवन्ति । अतस्त्रयोदशराज्ञे द्रादशाहः सकलोऽपि भवति । एकमहर्मृग्यते तदर्थमाह-पृष्ठ्यात्परः सर्वस्तोमोऽतिरात्रः । ततस्त्रयश्छन्दोमा अविवाक्यम् 'उदयनीय' इति । अत्र प्रायणीयातिराजः १, पृष्ट्यः षडहः २-७, सर्वस्तोमोऽतिराज्ञः

८, चत्वारश्छन्दोमाः ६-१२, उदयनीयातिराज्ञः १३ इति ।

- (२) द्वितीयं जयोदशराजं प्रकृतिविहितं भवति ।
- (३) तृतीयं त्रयोदशराजं सम्मार्यमन्यैरेवोपदिष्टेरेवाहोसिः सम्भः रणीयं नत्वावापिकैः पूरणीयसित्यर्थः।
 - (४) तदेवसम्भरणमाह (५) तत्राहान्याह —
 - (६) प्रथमे चतुर्दशरात्रे प्रायणीयातिराज्ञो भवतीति बोध्यम् ।
- (७) परो द्वितीयः पृष्ठयः प्रतिलोमः विपरीतक्रमो भवति, त्रयस्त्रिशाः रमणो मवतीत्यर्थः। पृष्ट्ये पडहे हि त्रिवृत्पञ्चदशसप्तदशैकविशत्रिः णवत्रयस्त्रिशा इति क्रमेणाहानि । प्रतिलोमे तु विपरीतक्रमेण ।

भवति । प्रातिलोग्यं च त्रयस्त्रिशारम्भणत्वेन ॥ २१ ॥
सन्द्रमे जिकहुकाः पृष्ट्यमभितः ॥ ३२ ॥
सन्द्रमे चतुर्देशरात्रे पृष्ट्यमभितास्त्रकहुका भवन्ति ॥ २२ ॥
(१)प्रतिलोमाः परे ॥ २१ ॥

आयुर्गेडियोतिरित्येवम् ॥ २३ ॥

विवाहोद्कतरुपस्धायितानामेतत्(२) ॥ २४ ॥ येषां विवाहे संशयो भवति किमस्माकं विवाहो भवति न भवतीति संशयः । तथा डद्कपाने शयने च । तेषामेतत्सत्त्रं भवति ॥ २४ ॥

प्रकृतिविहितं तृतीयम्(३)॥ २५॥ प्रकृतिविहितग्रहणाङ्गोद्यायुषी सवतः॥ २५॥ पञ्चद्दारात्राणि चत्वारि॥ २६॥

भवन्ति ॥ २६॥ तत्र—

उत्तरे (४)प्रकृतिविहिते ॥ २७॥

त्रिकदुकैः प्रणमित्येतदुकं भवति ॥ २७ ॥
चतुर्ददारात्राभ्यां (५)पूर्वे च्याख्याते ॥ २८ ॥
पूर्वे पद्यदग्रात्रे चतुर्दशरात्राभ्या न्याख्याते ॥ २८ ॥
इयांस्तु विशेषः—

पृष्ठययोर्भेष्ये महाव्रतम्(६) ॥ २९ ॥

भवति ॥ २९ ॥

(१) पृष्ठघात्परे ये त्रिकद्युकास्ते प्रतिलोमा भवन्ति ।

(२) विवाहे उदके तहपे अन्येषां संशयिताः तेषामेतद् द्वितीयं चतुर्दः शरात्रं भवति । "यांस्तहपे वोदके वा विवाहे वा मीमांसेरंस्तऽएता रा त्रीरुपेयुः" (ताण्ड्य० २३-३) इति श्रुतेः । उदके अभिषेकाद्यथें इति परे।

- (३) तृतीयं चतुर्दशरात्रं प्रकृति बहितं भवति । आवापप्रकारेण पूरणीयमित्यर्थः । ततश्च-प्रायणीयः १, गोअ युषी २-३, दशरात्रः ४-१३, उदयनीयः २४, इति ।
- (४) तृतोयचतुर्थे पञ्चदशरात्रे प्रकृतिविहिते भवतः। आवापप्रकार् रेण पूरणीये इत्यर्थः। ज्यहार्थे जिकहुकैः पूरणं कार्यमित्यमित्रायः।
 - (५) पूर्वे प्रथमद्भितीये।
- (६) वथमे पञ्चदशरात्रे पृष्ठययोर्मध्ये महात्रतम् । तेन प्रायणीयः १, पृष्ठयः २-७, महात्रतम् ८, पृष्ठयः ९-१४, उदयनीय १५ इति ।

अतिरात्राद्गिनष्डुद्दितीयस्प(१)॥ २०॥ स्रविरात्राद्यसितादक्षिण्डुद्द्दितीयस्य भवति ॥ २०॥ स्र प्रायणीयस्तृतियस्य(२)॥ २१॥ स्र प्रायणियस्य प्रायो भवति। नाम्ना च तद्गियेव संस्था॥२१॥ इति चतुर्विशेड्याये प्रथमा कण्डिका॥

प्रकृतिविहितानि प्राग्विश्वातिरात्रात्॥ १॥

षोडशरात्रादिषु चतुर्षु आवापेन हि प्रणम्(३)। तत्र षोडशरात्रे प्रायणीयात् त्रिकदुकाः दशरात्रादुत्तरवतम् । सप्तदशरात्रे प्रायणीयात् श्रिकदुकाः दशरात्राद्वत्तरवतम् । सप्तदशरात्रे प्रायणीयात्पः श्राहः, अधादशरात्रे पडहः, एकानिवशितरात्रे पडहः, दशरात्राक्षोत्तरं वतम् ॥ १ ॥

(४)विःश्वातिरात्रेऽभिष्ठबोर्डाभीजद्विश्वजितौ च ॥ २ ॥

यथोपदेशम् ॥ २॥

एकविश्वातिरात्रयोरतिरात्रावषोडिं विकौ ॥ ३ ॥ (५)अभिष्ठवास्त्रयः प्रथमाद्तिरात्रः ॥ ४ ॥

(१) द्वितीयस्य पञ्चद्शरात्रस्य प्रायणीयातिरात्रादग्निष्टुद्भवि । अत्राग्निष्टुति सर्वे प्रहादिक्षमाग्नेयं भवित । तेनैवम्-प्रायणीयः १, अग्निष्टुत् २, ज्योतिगौँरायुः ३-५, पृष्टवः ६-११, आयुः गौज्यौतिः १२-१८, उदयनीयः १५ इति ।

(२) तृतीयस्य पञ्चद्शरात्रस्य स पवाग्निष्टुत्वायणीयो भवति । ततश्चैवम्- त्रिवृद्ग्निष्टुद्शिष्टोमसंस्थः १, त्रिकद्वुकाः २-४, दशरात्रः ५-१४, उदयनीयः १५ इति ।

चतुर्थे पञ्चदशरात्रे-प्रायणीयः १, त्रिकदुकाः २-४, दशरात्रः ५-

१७, उदयनीयः १५ इति ।

- (३) तद् यथा-बोडशरात्रे प्रायणीयः १, त्रिकदुकाः २-४, दशरात्रः ५-१४, महावतम् १५, उदयनीयः १६ इति । सप्तद्रारात्रे-प्रायणीयः १, अभिष्ठवस्य पञ्चाहः २-६, दशरात्रः ७-१६, उदयनीयः १७ इति । अष्टादशरात्रे-प्रायणीयः १, अभिष्ठवः षडहः २-७, दशरात्रः ८-१७, उद्यनीयः १८ इति । एकोनविश्वतिरात्रे-प्रायणीयः १, अभिष्ठवः षडहः २-७, दशरात्रः ८-१७, महावतम् १८, उदयनीयः १९ इति ।
- (४) विश्वतिरात्रे-प्रायणीयः १; अभिष्ठवषडद्दः २-७,अभिजित् ८, विश्वजित् ६, दशरात्रः १०-१६, उदयनीयः २० इति ।

(५) त्रयोणां अभिष्ठवानां मध्ये प्रथमाद्भिष्ठवात्परोऽतिरात्रो

परिपूर्णमेवेतत्॥ ४॥

निदाये दितीवं ब्रह्मवर्षेसका सानाम् ॥ ५॥

निद्यो श्रीष्मः । तत्र द्वितीयमेकविद्यक्तिरात्रं ब्रह्मवर्चसकामानां भवति ॥ ४ ॥

त्रयस्रयः स्वरसामानो विषुचन्तमभितः॥ ६॥

वृष्टयों व ॥ ७ ॥

च शन्दाद्भितः॥ ७॥

(१) उत्तरः प्रतिलोमः ॥ ८॥

पृष्ठ्यो भवति ॥ < ॥

(२)मानव्यः सामिधेन्यः ॥ ९॥

विषुवति भवन्ति ॥ ९॥

सीमापौडण डपालस्यः ॥ १०॥

विषुवत्येवम्॥ १०॥

(३)प्रकृतिविहितान्याद्यात्रिश्च दात्रात् ॥ ११॥

सह द्वात्रिशदात्रेण, आङ्भिविधौ कर्मविषयत्वात्॥ ११॥

द्वाविह्यातिरात्रमन्नायकामानाम् ॥ १२ ॥

श्रयोविश्वातिरात्रं प्रतिष्ठाकामानाम् ॥ १३॥ पूर्वे चतुर्विश्वातिरात्रं प्रजाकामानां

पशुकामानां वा॥ १४॥

द्वाविद्यतिरात्रे प्रणम् —प्रायणीयात्त्रिकदुकास्ततोऽभिष्ठवः, दश रात्राच्च परं वतम्(४)। त्रयोविद्यतिरात्रे प्रायणीयात्पञ्चादः, ततः ष भवति। तद् यथा—प्रथमे एकविद्यतिरात्रे-अषोडशिकः प्रायणीयः १, अभिष्ठवः षडहः २-७, अतिरात्रः सषोडशिकः ८, अभिष्ठवौ ९-२०, अषोडशिकः उत्यनीयः २१ इति।

(१) उत्तरो द्वितीयः पृष्ठ्यः प्रतिलोमः त्रयस्त्रिशारमणो भवति ।

(२) अत्र विषुवित विशेषमाह-। मनुना द्रष्टा मानव्य ऋचः। तिर्देश्ये हितीये एकविश्वतिरात्रे—प्रायणीयः १, पृष्ठधः २-७, त्रयः स्वरसा मानः ८-१०, मानव्यृग्युक्तो विषुवान् ११, स्वरसामानः त्रयः १२-१४, त्रयस्त्रिशारम्भणः पृष्ठयः १५-२०, उदयनीयः २१ हित ।

(३) आवाषक्रमेण पूरणीयानि इति तदाशयः।

(४) द्वाविंशतिरात्रे-प्रावणीयः १, त्रिकदुकाः २-४, अभिण्लवः ५-१०, द्वारात्रः ११-२०, महाजनम् २१, उदयनोयः २२ इति । डहः(१)। (२)पूर्वस्मिश्चतुर्विशितरात्रे हो पडहो ॥ १४॥ हितीयः (३)स्मृसदः ॥ १५॥ हितीयं चतुर्विशितरात्रं संसदसंबकम् ॥ १५॥ अत्र विशेषः—

अयो**डशिका**वतिरात्रौ ॥ १६ ॥ विशालः ॥ १७ ॥

वश्यमाणस्यादस्संङ्वातस्य संज्ञा ॥ १७॥

पार्छिकानि श्रीण्युत्तराणि प्रतिलोमानुलोमानि ॥ १८॥ (४)पार्छिकानि श्रीण्युत्तराणि अहानि प्रतिलोमानुलोमानि ॥ १८॥

तमभितोऽग्निष्ठोमाचनिङ्कौ ॥ १९ ॥

तं विद्यालयभितोऽन्निष्टोम्।वृत्तिक्कौ ॥ १९ ॥

पृष्ठयस्तोमी च ॥ २० ॥

'च' शब्दाद् अभितो भवतः(५) ॥ २०॥ तयोः—

उत्तरः प्रतिलोमः(६) ॥ २१॥

- (१) त्रयोविंशतिरात्रे-प्रायणीयः १, अभिष्ठवस्य पञ्चाहः २-६, अभिष्ठवः ७-१२, दशरात्रः १३-२२, उदयनीयः २३ इति ।
- (२) प्रथमे चतुर्विशतिरात्रे-प्रायणीयः १, द्वाविमण्ठवौ २-१३, दः शरात्रः १४-२३, उदयनीय २४ इति ।
- (३) संसद इति षष्ठ्येकवचनम् । यथा द्वादशसंवत्सरं प्रजापतेः षद्त्रिशत्संवत्सरः शाक्यानामित्यादि तेन सः सदोऽयनमित्येवंसंबः मित्यर्थः ।
- (४) प्रतिलोमानुलोमकमेणानुष्टीयमानस्य षडहसम्बन्धिनः पाष्टिं कानि पृष्ठ्यपडहसम्बन्धोनि, उत्तराणि चतुर्धप्रमृतीनि त्रोण्यहानि एकविशित्रणवत्रयस्त्रिशानि प्रतिलोमानि अनुलोमानि चात्र भवन्ति। पूर्वं प्रतिलोमानि षष्टपञ्चमचतुर्थानि तताऽनुलोमानि चतुर्थपञ्च-मषद्यानीत्यर्थः।
- (५) पूर्व हि उक्तम्-''उत्तमे पडहो बृहद्रथन्तरपृष्ठः पृष्ठयस्तोमा-ख्यः'' (का॰ औ॰ २३-५-१३) इति । तौ पृष्ठयस्तोमौ बृहद्रथन्तरपृष्ठौ षडहो । 'व' कारात् तं साग्निष्ठोमं विशालमभितो भवत इति ।
- (६) तयोः साग्निष्टोमं विशालमसितः क्रियमाणयोः ष्टष्टयस्तोम-योर्मच्ये उत्तरः प्रतिकोमोऽन्त्याहःप्रमृति भवतीत्यर्थः ।

तस्माद्गिन्छोमाचनिरुक्तौ(१)॥ २२॥ पूर्णमेतत्॥ २२॥

पश्चिव्यातिरात्रमन्नाद्यकामानाम् ॥ २३ ॥
पड्विर्यातिरात्रं प्रतिष्ठाकामानाम् ॥ २४ ॥
सप्तविर्यातिरात्रमृद्धिकामानाम् ॥ २५ ॥
अष्टाविर्यातिरात्रं प्रजाकामानां पशुकामानां वा ॥२६॥
द्वात्रिर्याद्वात्रं च ॥ २९ ॥

चशब्दात्व्रज्ञाकामानां पशुकामानां वा। (२)पञ्चविंशतिरात्रेभिष्ठवी, स्वस्थाने वतं च(३)। षड्विंशतिरात्रे प्रायणीयाद्रोआयुषो, ततोभिष्ठ वी(४)। सप्तविंशतिरात्रे प्रायणीयाञ्चिकदुकाः, ततोऽभिष्ठवी(५)। अष्टा विश्वतिरात्रे प्रायणीयाञ्चिकदुकाः, ततोभिष्ठवी, स्वस्थाने च वतम्(६)। पकोनिंशत्र्वरात्रे प्रायणीयात्र्ञाद्धः ततोऽभिष्ठवी(७)। विश्वद्दात्रे

⁽१) योऽयं प्रतिलोम उत्तरः पृष्ठयस्तोमस्तस्मात्परौ अनिस्कौ अग्निष्टोमौ भवतः । तदेवं द्वितीयचतुर्विशितिरात्रेऽह्वां क्रमः संपन्नो भवति—अयोडशिकः प्रायणीयः १, पृष्ठयस्तोमः षडहः २-७, अनिस्को-ऽग्निष्टोमः ८, विश्वालः षडहः ९-१४, तत्र पाष्टिकान्यहानि (६-५-४) (४-५-६) अनिस्कोग्निष्टोमः १५, त्रयस्त्रिशारभणः पृष्ठयस्तोमः षडहः १६-२१, अग्निष्टोमावनिस्कौ २२-२३, उद्यनीयः २४ इति ।

⁽ २) द्वाचिशतिरात्रे द्वावभिष्ठवौ इ० पा० पूर्वसंस्करणे ।

⁽३) प्रायणीयः १, अभिष्ठवी षडही २-१३, दशरात्रः १४-२३, महाव्रतम् २४, उदयनीयः २५ इति ।

⁽ ४) प्रायणीयः १, गोआयुषी २-३, अभिष्ठवौ षडद्वौ ४-१५, द् शरात्रः १६-२५, उदयनीयः २६ इति ।

⁽५) प्रायणीयः १, त्रिकद्वुकाः २-४, अभिष्ठवी पडहौ ५-१६, दशरात्रः १७-२६ उदयनीयः २७ इति ।

[्]र (६) प्रायणीयः १, त्रिकद्धकाः २–४, अभिप्लवौ ५डहौ ५–१६, दशरात्रः १७–२६, महाव्रतम् २७, उदयनीयः २= इति ।

⁽ ७) प्रायणीयः १, अभिष्ठवस्य पञ्चाहः २-६, अभिष्ठवो षडहौ ७-१८, दशरात्रः १९-२८, उदयनीयः २९ इति ।

त्रयोऽसिष्डवाः(१)। एकत्रिशदाचे व्रतमधिकप्(२)। द्वाविदादाचे प्रायणी-याह्रोबायुषी, अभिष्ठवास्त्रयः(३) ॥ २७ ॥

त्रयासि(श) ॥ २८॥ तत्र प्रथमे —

(५)पञ्चाहाऋत्दारः ॥ ६९ ॥

न्निभ्योऽतिराच्चो विश्वजित्(६) ॥ ३० ॥ त्रिभ्यः पञ्चाहेभ्योऽवस्तिनभ्यो विश्वजिवतिरात्रः ॥ ३० ॥

व्रतवद्वितीयम्(७) ॥ ३१ ॥

त्रयभिष्ठवमभिष्ठवान्तरयोरतिरात्रौ(८) ॥ ३२ ॥ तृतीये त्रयस्त्रयः पञ्चाहा विश्वजिनमभितः(९) ॥३३॥ भवन्ति ॥ ३३॥

- (१) प्रायणीयः १, त्रयोऽभिष्ठवाः षडहाः । २-१९, दशरात्रः २०-२९, उदयनीयः ३० इति ।
- (२) प्रायणीयः १, त्रयोऽिमण्डवाः २-१९, दशरात्रः २०-२९, महा-व्यतम् २०, उदयनीयः ३१ इति ।
- (३) प्रायगीयः १, गोशायुषी २-२, त्रघोऽभिष्ठवाः ४-२१, दश रात्रः २२-३१, उदयनीयः ३२, इति ।
 - (४) त्रीण सत्राणि त्रयस्त्रिशद्वात्राणि भवन्ति ।
- (५) तत्र प्रथमस्याहान्युच्यन्ते—प्रथमे त्रयस्त्रिशद्रात्रे प्रायणीः यादनन्तरं चत्वारोऽभिष्ठवस्य पञ्चाहा मवन्ति ।
- (६) पूर्वस्त्रविहितानां चतुर्णां पञ्चाहानां मध्ये त्रिम्यः पञ्चाहेभ्यः परो विश्वजिदितरात्रो भवति । तद्यं क्रमः—प्रायणीयः १, अभिष्ठसः स्यत्रयः पञ्चाहाः २-१६, विश्वजिदितरात्रः १७, ततः-चतुर्थः पञ्चाहः १८-२२, ततो दहाराजः २३-३२, उद्यमीयः ३३ इति ।
 - (७) द्वितीयं त्रयस्त्रिशदात्रं व्रतचत् महाव्रतयुक्तं भवति ।
- (८) ज्याभिष्ठवा प्रायणीयादनन्तरं प्रथमं त्रयोऽभिष्ठवा भव-न्ति । तत्र त्रयाणामभिष्ठवानां हेऽन्तराठे भवतः । अन्तराठयोरितरात्रौ भवतः । तद्यं क्रमः-प्रायणीयः १, अभिष्ठवः २-७, अतिरात्रः ८, अ-भिष्ठवः ९-१४, अतिरात्रः १९, अभिष्ठवः १६-२१, दशरात्रः २२-३१, महात्रतम् ३२, उदयनीयः ३३ इति ।
- (९) तृतीये त्रयस्त्रिशदात्रे विश्वजितमभितः त्रयस्त्रयः अभिष्व तस्य पञ्चाद्दा भवन्ति ।

-F E5

प्रतिलोमाः परे(१)॥ ३४॥
प्रकृतिविहितान्या चत्वारि/शहात्रात्(२)॥ ३५॥
चतुस्त्रिश्रदात्रमञ्चायकामानाम्(३)॥ ३६॥
पद्ति/शहात्रं प्रतिष्ठाकामानाम्(४)॥ ३०॥
सप्तत्रि/शहात्रम्द्रिकामानाम्(५)॥ ३८॥
अष्टाञि/शहात्रं प्रजाकामानां पशुकामानां वा(६)॥३९॥

चत्वारिश्वाद्वात्रं(७) च ॥ ४० ॥ 'च' शब्दादेतःकामानामेव । अत्र पूरणं प्रकृतिविहितावापेन यः

थोकम् ॥ ४० ॥

व्रतवन्त्युत्तराणि प्रथमतृतीयवर्जीः सप्तैकान्नपः श्वाद्याद्याणि(८) ॥ ४१ ॥

(१) तेषां मध्ये विश्वजितो ये पश्चाद्धवन्ति ते प्रतिलोमाः । तद्यं क्रमः—प्रायणीयः १, त्रयोऽभिष्लवस्य पञ्चाहाः २-१६; विश्वजि दतिरात्रः १७; प्रतिलोमास्त्रयः पञ्चाहाः १८-३२, उदयनीयः ३३ इति ।

(२) आङ्त्रासिविधौ। चतुर्छिदादात्रमारभ्यचत्वारिहादात्रमिन व्याप्य सप्त सन्नाणि प्रकृतिविहितानि आवापप्रकारेण पूरणीयानि ।

(३) चतुस्त्रिशदात्रे—प्रायणीयः १, त्रिकदुकाः २-४, त्रयोऽभिष्ल वाः ५-२२, दशरात्रः २३-३२, महाव्रतम् ३३, उदयनीयः ३४ । पञ्च त्रिशद्रात्रे—प्रायणीयः १, पञ्चाहः २-६ त्रयोऽभिष्लवाः ७-२४, दशरात्रः २५-३४, उदयनीयः ३५ ।

(४) प्रायणीयः १, चत्वारोऽभिप्लवाः २-२५, दशरात्रः २६-३५,

उदयमीयः ३६।

(५) प्रायणीयः १, चरवारोऽभिष्ळवाः २-२५, दशरात्रः २६-३५ महाव्रतम् ३६, उदयनीयः ३७।

(६) प्रायणीयः १, गोआयुषी २-३, चत्वारोऽभिष्लवाः **४-२७,** दशरात्रः २८-३७; उदयनीयः ३८।

एकोनचत्वारिंशद्रात्रे—प्रायणीयः १, त्रिकद्वकाः २-४. चत्वारोऽभि-प्लवाः ५-२८, दशरात्रः २९-३८, उदयनीयः ३९ ।

- (७) प्रायणीयः १, त्रिकद्वकाः २-४, चत्वारोऽभिष्ळवाः ५-२८, दः शरात्रः २९-३८, महावतम् ३९, उद्यनीयः ४०।
 - (=) उत्तराणि वश्यमाणानि सप्त एकोनपश्चादादात्राणि स्वाणि

्रयथमतृतीयवर्जे वतवन्ति सवन्ति ॥ ४१ ॥ तत्र—

प्रथमो विघृतिः(१) ॥ ४२ ॥ पुछिद्गेनैव सत्रस्याभिधानम् ॥४२ ॥ अषोडशिकाचितरात्रौ(२) ॥ ४३ ॥ इति चतुर्विशेऽध्याये द्वितीया कण्डिका ॥

कौसुरुबिन्दः प्रथमस्त्र्यह(३) उक्थ्यौ तृत्तरौ(४) ॥१॥ कौसुरुबिन्दः प्रथमस्त्र्यहोऽग्निष्टोमास्त्रिनृस्तोमयुक्तास्त्रयः । तत्र विशेषः। उक्थ्यावुत्तरौ भवतः॥१॥

(५)षोडशिद्शमा उक्थ्याः ॥ २॥

भवन्ति । यत्र संस्थामात्रमेशेद्घरते, तत्राऽपूर्वव्यपदेशः । यत्र गौ-ज्योतिरायुरादिवदुपादानम् , तत्रैकाहिकाः, दशरात्रे पुनर्हादशाहिका इति । ऐकाहिके पुनर्नामा धर्मप्रवृत्तिः, अपूर्वेषु तु द्वादशाहिको विषयन्तः ॥ २ ॥

पृष्ट्यं चाभिनो हाद्श हाद्श ॥ ३॥

(६)उक्थ्या भवन्ति ॥ ३॥

भवन्ति । तत्र सप्तानां मध्ये प्रथमतृतीयवर्जमन्यानि पञ्च महावतवन्ति भवन्ति । प्रथमतृतीये तु महावतरहिते भवतः ।

(१) प्रथम प्कान्नपञ्चाशदात्रो विधृतिसंबकः।

(२) प्रथमे एकामपञ्चाशदात्रे अतिरात्रौ प्रायणीयोदयनीयावणोः डशिकौ भवतः।

(३) अत्र प्रायणीयादनन्तरं कुसुरिबन्दसंज्ञकदशरात्रस्य यः प्रथ-मस्त्र्यहः "अग्निष्टोमास्त्रिवृतस्त्रयः" (का० श्रौ० २३-५-२३) इति, स एवात्र मवतीत्यर्थः।

(४) अत्र कौसुरविन्दे इयहे उत्तरी द्वितीयतृतीयी उष्ट्यी उष्ट्य संस्थी भवतः।

(५) ततः ज्यहात्परे **षोड**शिदशमा उक्ष्याः भवन्ति । **षोड**शी दशमो येषां ते ।

(६) अस्मादेव वचनादशैकः पृष्ट्यः षडहः तमभितो द्वादश द्वाः दश उक्थ्याः।

वर्गान्तरेष्वतिरात्राः(१)॥४॥ यमातिरात्रम्॥५॥

'क्याख्यास्यते' इति सुत्रद्येषः ॥ ५ ॥

अभिष्ठवौ गोआयुषी अतिरात्रावभिष्ठवावभिाजि । द्विश्वजितावितरात्रावभिष्ठवः सर्वस्तोमनवसप्तद्शाव । तिरात्रौ(२)॥६॥

आञ्चनाभ्यञ्जनीयेऽभिष्लवाः षद्(३)॥ ७॥ 'आञ्चनाभ्यञ्जनीयम्' इति संज्ञा॥ ७॥ तथ—

चतुभ्यः सर्वस्तोमोऽतिरात्रः ॥ ८ ॥ चतुभ्योऽभिष्ठवेभ्योऽवसितेभ्यः सर्वस्तोमोऽतिरात्रो भवति ॥ ८ ॥ तस्मिन्तुपस्तस्य सर्पिर्विपचेयुगीईपत्ये गुल्गुः स्रुसुगन्धितेजनपीतुदा**रुभिः**(४) ॥ ९ ॥

तिसम्बाजनाम्यञ्जनीये उपचत्तु वर्त्तमानासु गुरगुलुसुगन्धितेजनः पीतुदारुभिः एथक् पृथक् सर्पिनिपचेयुः। पुरुषार्थत्वाद्वार्दपस्ये न प्रार् प्रोति इति वचनम्॥९॥

⁽१) अत्र पञ्चवर्गाः तेषां चरवार्यन्तराणि । तेष्वन्तरेषु चरवारोऽ-तिरात्राः, कर्तव्या इति (ताण्ड्ये॰ २४-११) स्पष्टम् । तद्यं क्रमः-अषोड-शिकः प्रायणीयः १, कोसुरिबन्दस्त्रयहः २-४, अतिरात्रः ५, नवोक्थ्याः ६-१४, एकः षोडशी १५, अतिरात्रः १६, द्वादशोक्थ्याः १७-२८, अति रात्रः २९, एष्ट्यः ३०-३५, अतिरात्रः ३६, द्वादशोक्थ्याः ३७-४८, उदयनीयः ४९ ।

⁽२) प्रायणीयः १, अभिष्ठवौ २-१३, गोआयुषी १४-१५, अभिष्ठवौ १६-२७, अभिष्ठवः ३०-३५, सर्वः स्तोमनवसप्तदशौ३६-२७, दशरात्रः३८-४७, महात्रतम्४८, उदयनोयः४९

⁽३) वाजनाभ्यञ्जनीयसंज्ञके तृतीये एकान्नपञ्चारादावे पडिभिष्ठवा भवन्ति।

⁽४) अत्र दीक्षिताः गार्हपत्ये गुग्गुलुसुगन्धितेजनपीतुदारुभिः सह पृथक् पृथक् सर्पिः विपचेयुः। सुगन्धितेजनं—रोहिणपुष्पाणि । पोतु-दारुः—देवदारुः। उदुम्बर **इत्यन्ये**।

(१)यथासवनन्तैः सरनेष्वाञ्जनाभ्यञ्जने कुर्षी-रनामभिऽहरहः ॥ २०॥

प्रातःसवनान्ते गुरुगुलुना माध्यन्दिने सुगन्धितेजनेन तृतीयस्वने पेतुदारवेण । अञ्जनमक्ष्णोः, अभ्यञ्जनं शारीरस्य। आग्नीक्रेऽहरहः(२)॥१०॥

पुष्ट्ये वा(३) ॥ ११ ॥

वा शब्दो विकटपार्थः ॥ ११ ॥

सबनमुखीयेषु भक्षायिष्यन्तो वा ॥ १२ ॥

(७)वा सवनान्तेषु ॥ १२ ॥

ये आत्मानं नैव जानीरंस्तेषामेतत्(५) ॥ १३॥

य आत्मानं प्रसुतानिव मन्यन्ते तेषामाञ्जनाम्यञ्जनीयेऽधिकारः ॥१३॥

संवत्सरसंमिते चतुर्विंशासहः ॥ १४ ॥ 'संवत्सरसम्मितम्' इति सत्रनाम । तत्र चतुर्विंशामहर्भवति ॥१४॥

अभिष्लवाश्चत्वारः॥ १५॥

गोआयुषी(६) त्रिभ्यो विषुवन्मध्यो नवरात्रा(७) ॥१६॥

(१) अधास्य त्रिधापनवस्य घृतस्य विनियोग उच्यते ।

(२) अहरहः सर्वेषु एकोनपञ्चाशत्संख्ये व्यप्यहःसु अन्नीघः शर्षे गृहे तैगौंग्गुलवादिभिः सर्विभिर्यथासवनं सवनक्रमेण दीविता आञ्ज नाभ्यञ्जने कुर्वीरन्।

(३) पृष्ठये पडहे वा आञ्जनाभ्यञ्जने कुर्युः न तु सर्वेष्वहःसु।

(४) अथेवा सवनान्तेषु चमसेषु मक्षयिष्यन्तः तद्भशणात्पूर्वम् आञ्जनाभ्यञ्जने कुर्युः। सर्वेषु सवनेषु सवनस्य मुखे आदौ भवाः सव-नमुखीयाः प्रस्थितयागचमसा इति यावत्।

(५) जानातिरत्रान्तर्भावितण्यर्थः न ज्ञापयेयुरित्यर्थः । विद्वत्समाः
सध्ये ये स्वात्मानं प्रख्यापयितुमशकाः, तेषामेतत्सत्रं भवति । तस्य चैवं
क्रमः-प्रायणीयः १, अभिष्ठवाश्चत्वारः २-२५ सर्वस्तोमोऽतिरात्रः २६,
अभिष्ठवो २७-३८, दशरात्रः ३९-४८, उदयनीयः ४९ इति ।

(६) यद्यपि सूत्रकारेण 'गोआयुषी' इत्युक्तं तथापि 'पञ्चविशे आयुक्ष गौश्च हे अहनी' इत्येवमत्र विशेषपाठात्। पूर्वमायुस्ततो गौरि त्येवमनुष्ठेयम् सूत्रे त्वल्पाच्तरत्वेन गोशन्दस्य पूर्वनिपात इति देन वयात्रिके स्पष्टम्।

(७) तत्र चतुर्णामभिष्ठवानां मध्ये त्रिभ्योऽभिष्ठवेभ्यः परो विषु

त्रिश्योऽविस्तिश्यो विषुवन्मध्ये गवामयनिको नवरात्रो भवति ॥१६॥
एकष्टिरात्रे पृष्ट्यो नवराज्ञमभितः ॥ १७॥
अत्रतिकातमध्येकषष्टिरात्रं लाधविकेन सताऽऽचार्येणेहाभिहितम्(१)।१७

प्रतिलोमः परः(२) ॥ १८ ॥

तवोः पुष्ठायोः प्रतिलोमः परो भवति ॥ १८॥

(३)सवितुः ककुभः॥ १९॥

'ब्याख्यास्यते' इति सूत्रशेषः ॥ १९ ॥

नवरात्राश्चरवारः॥ २०॥

तानावष्टे-

अग्निष्टोमाः प्रथमसप्तमोत्तमा नववर्गाबासुक्ट्या

इतरे ॥ २१ ॥

सर्वे चैतेऽपूर्वाः(४)॥ २१॥

परे पडिमिष्लवे ॥ २२॥

(५)परे ये हे ते पडिमिश्लवे भवतः॥ २२॥

वन्मध्यो गावामयनिको नवरात्रो भवति । तद्यं क्रमः चतुर्थे पकोनपः क्वाशद्वात्रे-प्रायणीयः १, चतुर्विशमहः २, त्रयोऽभिष्ठवाः ३-२०, (अमितित् १, त्रयः स्वरसामानः ६, विषुवान् ६, त्रयः स्वरसामानः ६-८, विश्वतित् ९,) इत्येवंक्रमो नवरात्रः २१-२९, अभिष्ठवाः ३०-३५, आयुः ३६, गौः ३७, दशरात्रः ३८-४७, महात्रतम् ४६, अतिरात्रः ४९ ।

(१) अथ प्रागप्रतिज्ञातमप्येकषष्टिरात्रं लाघवार्थं संवस्तरसंमितः स्यान्हामनुवृत्तिलोमेनान्तरोपनिवष्नाति । नवरात्रममितः पृष्ट्यः षडः

हो भवति।

- (२) उपरिष्टात्क्रियमाणः पृष्ठ्यः प्रतिलोमः त्रयस्त्रिशार#भणे। सः वित । अन्यत्सवः संवत्सरसम्मितेन समानम् । तद्यं क्रम एकषष्टिरात्रे – प्रायणीयः १, चतुर्विशमहः २, त्रयोऽांमण्डवाः ३-२०, पृष्ठ्यः २१-२६, नवरात्रः २७-३५, प्रतिलोमः पृष्ठ्यः ३६-४१, अभिष्ठवः ४२-४७, आयुः ४८, गौः ४९, दशरात्रः ५०-५९, महात्रतम् ६०, उदयनीयः ६१।
 - (३) फ्लास्यैकासपङ्चाराद्रात्रस्य संज्ञेयम्।
- (४) तद्यं कमः—प्रायणीयः १, चत्वारोनवरात्राः २-३७, दृशः रात्रः ३८-४७, महाव्रतम् ४म, उदयनीयः ४९ ।
- (५) परे पूर्वीकात्पञ्चमात्वरे हे वष्डसप्तमे एकान्नपञ्चाशद्राजे क डमिण्डवे मवतः।

पूर्वस्य चतुम्यों वतम्(१) ॥ २३ ॥ भवति ॥ २३ ॥ प्रजातिकामानामेतत्(२) ॥ २४ ॥

भवति ॥ २४॥

प्रकृतिविहितः शतरात्रं चतुर्दशाभिष्ठवं चतुरहश्च॥१५॥

नतु प्रकृतिविद्दितत्वेनैवैतःशामोति, चतुर्दशामिप्रवं चतुरहश्चेत्यवाः ह्यम्। उच्यते च, तत्किमधम् (३) शतरात्रद्वयप्रश्रापनाय । एकं प्रकृति-विहितम्। तत्र त्रिकदुकाः पूर्वमभिन्नवेभ्यो भवन्ति, दशरात्राच परं व्रतं भवति, (४)द्वितीये यथोपदेशमहानीत्याभिष्ठवेभ्यः परतश्चतुरहः ॥ २५ ॥

सदोहविधानानि चकीवन्ति(५)॥ २६॥

चक्रीवन्ति भवन्ति॥ २६॥

(१) प्रस्तुतयोः पष्ठसप्तमयोर्मध्ये प्रथमस्य पष्ठस्यैकान्तपङ्गाराः द्राजस्य चतुभ्योऽभिष्ठवेभ्योऽवसितेभ्यः परं महाव्रतम् भवति । तद्यं क्रमः पच्छे एकोनपञ्चाशद्राचे-

प्रायणीयः १, चत्वारोऽमिष्लवाः १-२५, महावतम् २६, अभिष्लवी २:-३८, दशरात्रः ३९-४८, उदयनीयः ४६। सप्तमे एकोनपञ्चाशदात्रे त्वयं क्रमः—प्रायणीयः १, षडिमप्छवाः २-३७, दशरात्रः ३८-४७, म-हाब्रतम् ४८, उदयनीयः ४९ इति ।

(३) मन्द्धियां सुखेन प्रतिपत्त्यर्थमित्यर्थः। अन्यथा तेषां झटि-(२) सत्रम्। रयेवंविया प्रतिपत्तिनं भवति, यदेताविद्धरेवाभिष्ठवैः पूरणं भवतीति देवयाज्ञिके स्पष्टम्।

(४) ताण्ड्ये अस्यैव शतरात्रस्य दर्शनात् स्वबुद्ध्या शतरात्रद्धयः

कटानं निर्मूलमिति प्रतिभातीत्याहुर्देवयाहिकाः।

शतसुत्यं सत्रां प्रकृतिविहितं भवति । चतुरहशब्देन त्रयस्त्रिकदुका महाज्ञतं चेति । तद्यं शतरात्रे क्रमः—प्रायणीयः १, त्रिकद्वकाः २-४, चतुर्दशाभिष्ठवाः ५-८८, दशरात्रः ८९-९८, महावतम् ६६, उद्यनीयः १००। प्रायणीयः १, चतुर्दशाभिष्ठवाः २-८५, त्रकद्वुकाः ८६-८८, म हाब्रतम् ८६, दशरात्रः ९०-९९, उदयनीयः १०० इति च । अत्रान्त्यक्रम-कमेकमेव शतरात्रं देवयात्रिकसंमतम् , कर्काणां तूभयम् ।

(५) चक्रीचन्ति मञ्जूषादिवण्यक्र युक्तानि मवन्ति यथा पुरुषेः प्रे-

रितानि चलन्ति।

अभिप्रपायमभिष्ठण्वान्ति देशानुपरोधेन(१) ॥ २७ ॥ यात्वा वात्वामिषवं कुर्वन्ति देशानुपरोधेन प्रतिनिवर्तन्ते ॥ २७ ॥ अहरहराभिष्ठवेषु त्रिकदुकेषु वा(२) ॥ २८ ॥ 'वा' इति विकल्पः ॥ २८॥

आभिष्ठवाभ्यासेनाभिपूरणम् ॥ २९ ॥ भवति(३) सत्राणाम् ॥ २९ ॥

सकुत्प्रयोगी द्शरात्रः(४) ॥ ३०॥ भवति । प्रकृतिविद्यितानामेष घर्मः ॥ ३०॥

वतवान्त सर्वजिद्दीक्षाणि॥ ३१ ॥ यानि वतवान्त सत्राणि तानि सर्वजिद्दीक्षाणि(५) ॥ ३१ ॥ ससद्दारात्रादीनि त्रिश्वादन्तान्येक एकानपञ्चाद्याः द्रात्रे चाष्टाद्यदीक्षाणि पौर्णमासीप्रक्रमाणि ॥ ३२॥ समद्रगरात्रादीनि राजिस्त्राणि जिंगदन्तानि । एकानपञ्चावारां

सप्तदशरात्रादीनि रात्रिसत्राणि त्रिशदन्तानि । एकान्नपञ्चाशद्रात्रे च यानि व्यतवन्ति तान्यष्टादशदीक्षाणि पौर्णमासीयक्रमाणि चैक इ-च्छन्ति । एके यथाप्राप्तम् (६)व्रतवतां सर्वजिद्दीक्षता (७) ॥३२॥

- (१) अहरहः प्रत्यहमभिप्रयायाभिष्रयाय यात्वा पात्वाभिषुण्वन्ति सोमाभिषवं कुर्वन्ति । कथम् ? देशानुपरोधेन । देशस्याभिषवस्थानस्या-नुपरोधोऽवाधो देशानुपरोधः । अभिगमनं कृत्वा पश्चात्स्वस्थानमाग-त्याभिषवः कार्य इत्यर्थः ।
- (२) अभिवयायमभिष्ठ्यवन्तीत्येतदभिष्ठवेष्वेव कर्तव्यं न तद्यति-रिक्तेषु दशरात्रमद्दात्रतत्रिकदुकप्रायणीयोदयनीयेषु । अथवा त्रिकदुकेषु पचैतत्कर्तव्यं नाभिष्ठवदशरात्रमहात्रतप्रायणीयोदयनीयेषु ।

(३) प्रकृतिविहितानामित्यर्थः। यदा चाभिष्ठवाभ्यासो न सम्भ-वित तदा तस्यादितः पञ्च इत्याचुपायः।

- (४) द्वादशाहिको दशरात्रः सङ्कत्प्रयोगी भवति । एकस्य सत्रस्य मध्ये एकवारमेव प्रयुज्यते ।
- (५) यथा सर्वजिति(का०श्रो०२२-१-४४,४५) चतुर्दिनाधिकं संब-स्परं दीक्षाः एकदिनाधिकं संवत्सरं वा संवत्सरं वा वण्मासान् वा, ता एव दीक्षा अत्राणि भवन्तीत्यर्थः।
 - (६) व्रतचस्वमात्रम् इ० पा०।
 - (७) 'च' अधिकः। अत्र सप्तदशरात्रादित्रिंशद्रात्रान्तेषु, एकान्त्र-

"ते शतातिरात्रः सत्रमुपेयुः" (श्र॰ त्रा॰ ११-५-६) इति श्र् यते । तत्र सन्देहः —िकं शातरात्रिकाणामहां संस्थात्वमात्रमुख्यते, उत द्वादशाहस्य यदाद्यमहरातिरात्रसंस्थं तच्छतकृत्वोऽभ्यसितव्यम् , उत दशरात्रस्यातिरात्रसंस्थस्येषोऽभ्यासः, आहोस्विच्छतसंख्यासंयुक्ताः नामतिरात्राणां विश्विरिति । किं तावत्यात्रम् ? स्त्रेणैव पक्षः—

शतातिराञ्जेऽहानि शतरात्रसामान्यात् ॥३३॥

शतातिरात्रे शतमहां श्रूयते। (६)तच्छातरात्रिकाण्यहानि प्रवर्त्तनते । श्रतसंख्याविष्ठश्रस्य हि धर्मापक्षायां सत्यां शतरात्रस्य पर्युपस्थाप कत्वामिति ॥ ३३॥ एवं प्राप्त आह—

द्वादशाहाचं वा तत्प्रकृतेः ॥ ३४ ॥

अत्र वृद्धयात्रिको (१)यशोगोप्याचष्टे—'द्वादशाहस्य यदासं प्रा-यणीयमहरतिरात्रसंस्थं तस्यैतच्छतसंस्याविधानम् रित । एवं चा तिरात्रप्राप्ती शतसंख्याविधानमिति । यत्पुनरुक्तं 'शतरात्रः प्रवर्चत' इति, तद्युक्तम् । न हि रातातिरात्रस्य शातरात्रिकधर्मप्रवृत्तो प्रमाण मस्ति। उभयत्र ह्यातुमानिकेन वचनेन द्वाद्शाहविध्यन्तप्रहृतिरिष्यते तस्माम्न शातरात्रिको विष्यन्तः । यद्ण्युकं — द्वादशाहाद्यस्याह्व इयं संख्या विधीयते' इति, तद्प्ययुक्तम् । पृथकःवनिवेशिनी हि संख्या मन वति । न च प्रायणीयेऽभ्यस्यमाने पृथक्त्वानेचोद्यत्वसम्भवः । तस्मा देतद्प्यनुपपन्नमेव। पितृभृतिराचार्यस्तु सुन्नमन्यथा व्याचछे—"द्वा-दशाहायं वा तत्प्रकृतेः" इति । द्वादशाहायं प्रवृत्तिधर्माणां विजानी यात्, यः सत्रेषु प्रवर्त्तते इति । कश्चासौ ? दशरात्रः । स हि सर्वसत्रेषु प्रवृत्तिधर्म इति(२)। पतद्पि नोपपद्यते। न हि दाद्यरात्रिकंष्वन्वयप्राप्तिष्व हःसु संस्थान्यत्वं शतसंख्याविधानं खोपपद्यते, वाक्यमेदप्रसङ्गात्। अत्रापि च पृथक्त्वनिवेशिन्येव संख्या भवति, दशरात्राभ्यासात्। तस्मादेतद्व्यसदेव । अत्र वदामः — द्वादशाह आचे। मुखमूतो यस्य शतातिरात्रस्य तद् द्वाद्शाहाचं शतातिरात्रम् । द्वादशाहमूलामित्यर्थः। कुत पतत् १ तत्प्रकृतेः। 'द्वादशाहो हि प्रकृतिः सर्वसत्राणाम्' ६ त्युक्तमेव। अपि च यत्राहर्विशेषो नाम्नायते तहः दशरात्रप्रवृत्तिर्थ-

पञ्चाशद्रात्राणां मध्ये महाव्यतरहितयोः प्रथमतृतीययोः विघृत्याञ्चनाम्यः जनोयसंज्ञयोश्चाष्टादशदोक्षाः । जनास्यामारम्म इति साम्प्रदायिकाः।

⁽१) 'यशोगोप्याचार्य आचष्टे' इ० पा० । (२) श्रतातिरात्रे दशरात्रोऽतिरात्रसंस्थ आवर्तते इति सम्प्रदायः ।

वति । ६६ संख्याविशिष्टानामतिरात्रसंस्थानामहिवेशेषाणामाम्नाना दशरात्रप्रवृत्तिनं युक्ता इति । तस्मादियमेव व्याख्या-"द्वादशाह आचः प्रकृतिमृतो यस्य शतातिरात्रस्य तद्द्वादशाहाचं शतातिरात्रम्"इति(१) वहुवीहिः ॥ ३४ ॥

शताग्निष्ठोमे शतोक्ध्ये च ॥ ३५॥

व्य व्य न्यायः॥ ३५॥

श्वतातिरात्र एव कर्म विचारयति—

आदिवनस्याग्नेयान्ते प्रतिप्रस्थाता च्युत्कामतादि कृत्वा मैत्रावरुणाय प्रातरनुवाकसुपाकृत्यान्तर्यामः हुत्वा प्रपीड्य पवित्रं द्राणकलका निद्याति ॥३६॥

आश्विनस्य सञ्चास्य आग्नेयस्कान्ते प्रतिप्रस्थाता व्युक्तामतादि कृत्वा मैत्रावरणाय प्रातरनुवाकमुपाकरोति । अन्तर्यामः हुत्वा प्रपीड्य पविज्ञं द्रोणकलशे स्थापयति ॥ ३६॥

संशेष होत्चमसम् ॥ ३७॥

स्थापयति ॥ ३७ ॥

ततः— तिरोऽहृयादि कशेति पुर्वस्याहः(१) ॥ ३८॥

(१) एवज्व शतातिरात्रं द्वादशाहप्रकृतिकं भवति, न शतरात्रप्र कृतिकम्। अहाति तु समाख्यया विहितानि, शतमितरात्रा यास्मस्त-च्छतातिरात्रमिति हि अन्वर्था संज्ञा विज्ञायते। अन्यथा तद्वेयध्यापत्तेः। तस्मादत्र शतमितरात्रा अपूर्वा एव विधोयन्ते, तेषु च द्वादशाहधर्मा भवन्तीति च।

(२) ततः सूर्यं उदिते आध्विनशस्त्रे समाप्ते अध्वर्युः पूर्वस्याहः तिरोऽह्वयसोमयागादि कर्म करोति। तिरश्च तदहश्चेति। शिवशेषणं विशेष्येण बहुलम्' (पाणि० २-१-५७) इति कर्मधारये तिरोऽह इति रूपम्। राज्या अन्तहितं ज्यवहितमहरिति तस्यार्थः। तिरोऽहे राज्यन्तहितेऽहित भवाः सोमास्तिरोऽह्वयाः। आध्विनशस्त्रक-यागसम्बन्धिनः चमसस्थाः सोमाः पूर्वदिननिष्पन्नत्वाचिरोऽह्वया इत्यु-स्यानेत, तस्प्रचारादि करोतीति देवयाजिकाः।

(१)ग्रहग्रहणाचा विग्रहोमान्क्रत्वा-रति चतुर्वेद्येऽस्याये तृतीया कण्डिका ॥

(२)सवनसन्तिं जुड्रोस्यग्निः प्राप्तः सवन इति(३)॥१॥ पैन्द्रवायवयहणमाविह्द्दोमान्छत्वा सवनसन्तिनसंत्रकं होमं करो। ात "अग्निः प्रातः सवन" (का०थी०६-२-१=) इत्यनेन मन्त्रेण ॥ १॥

संवरसरमभूतीकि गवामयनमञ्जतीनि तद्-

गुणद्शीनात् ॥ ३ ॥ संबन्धरप्रभृतीनि यानि स्वापि तानि नवामयनप्रकृतीनि भवः न्ति, संबन्धरसामान्यात् , तद्युणद्शेनाच । दश्यन्ते हि तेषु गवाः मयनिका गुणाः , "अथ यत्पृष्ठयः यडहमुपयन्ति" "अध यद्भिष्ठवः पडहमुपयान्ते" (श॰ बा॰ १६-१-३-११,२०) इति ॥ २ ॥ आदित्यानामयनेऽभिष्ठवााञ्चित्रत्यव्यव्यस्तोमाः(४) ॥३॥

'आदित्यानामयनम्' इति । संज्ञा स्टास्य । तजाभिष्ठवासिवृत्यः

अदशस्तामा भवन्ति ॥ ३॥

माद्याः बेट्यबद्धाः ॥ ३ ॥ गवामयने हि पृष्ठचान्ता मासाः, इह पृष्ठचमध्या मचन्ति(५)॥ ४॥ बृहस्पतिसवोऽभिजित्स्थाने(६) ॥ ५॥

मविते ॥ ५ ॥

(२) 'सवनसन्तित' इ० पा०।

(३) "अथानुपूर्व' यजपुरुछः सःस्याप्य यऽऊर्ध्वा अन्तर्यामाद्ग्रहा-स्तान्गृहीत्वा विषुषाः होमः हत्वा सन्तनि च बहिष्पवमानेन स्तुत्वा-हरेव प्रतिपद्याध्वाऽइति" (दा॰ ब्रा॰ ११-५-५-११) इति अतेः।

(४) तत्र गवामयनप्रकृतिस्वात्सर्वं तद्धत्प्राप्तम्। तद्विशेषयति तत्राः भिष्ठवास्त्रिवृत्पञ्चदशस्तोमा भवन्ति । तत्रायुग्मान्यहानि विवृत्स्तोम-काति युग्म।ति तु पञ्चदशानीति षडहेषु त्रिवृत्पञ्चदशयोर्विवेकः । उ त्तरपक्षे तु विपरीतम् अयुग्मानि पञ्चदशानि युग्मानि तु त्रिवृत्स्तोम कानीति।

(५) ह्रौ व्यमिष्ठवी पृष्ठ्यः द्वाविभण्ठवावित्येवंस्पाः ।

⁽१) पूर्वस्याह्नो यज्ञपुच्छे समाप्ते पुनः पवित्रं वितत्य होत्चमसे यजमानेन हस्तेन गृहीते प्रकृतिवद्यारायां प्रवृत्तायामध्वयुंरैन्द्रवायवाः दिग्रहग्रहणादि विपुड्ढोमान्तं कुर्यात्।

⁽६) "षष्ठे मास्रे अभिजिदग्निष्टोमः" (का० श्रो० १३–२–६) इः

इन्द्रस्तोमो विश्वजितः(१) ॥ ६ ॥

स्थाने भवति ॥ ६ ॥

विश्वजितः परे ये अयोऽभिष्ठवास्तेषामुत्तरयोः स्थाने त्रिवृतोऽग्निष्ठोमा दश्च ॥ ७ ॥

(२)भवान्ति ॥ ७॥

उद्भिदवलभिदी च(३)॥८॥

षष्ठमासादौ मध्यमस्थाने पृष्ठयः(४) ॥ ९ ॥ षष्ठस्य मासस्य आदौ मध्यमस्याभिष्ठवस्य स्थाने पृष्ट्यो भवति॥६॥

द्वाराञ्चस्य छन्दोमद्वाहः॥ १०॥ इद्यरात्रस्य स्थाने छन्दोमद्याहो भवति॥ १०॥ अङ्गरसामयनमादिस्यानामयनवत्॥ ११॥ 'अङ्गरसामयनम्' इति सत्रसंज्ञा। तदादित्यानामयनवद्भवति॥११॥

विशेषमाह—

अभिष्ठवास्त्रिवृतः ॥ १२ ॥ त्रिवृत्स्तोमका अभिष्ठवा भवन्ति ॥ १२ ॥ मासाः पृष्ट्याद्यः पूर्वपत्ते ॥ १३ ॥ प्रतिलोमाः परे(५) ॥ १४ ॥

सवन्ति ॥ १४ ॥

त्यस्य स्थाने त्रिवृदुवृहस्पतिसवो भवति ऐकाहिकवृहस्पतिसवधर्मक इत्यर्थः।

(१) उत्तरस्मिन्वक्षे सप्तमे मासे पञ्चदशउक्थ्यसंस्थो भवति ।

(२) तेषामुत्तरयोर्द्वितीयतृतीययोः स्थाने त्रिवृत्स्तोमका दशा-ग्निष्टोमाः ।

(३) दशस्योऽग्निष्टोमेश्यः परौ। एवं द्वयोरमिष्ठवयोः स्थानं पूर्णं कृतम् ।

(४) षण्डमासस्यादौ ये त्रयोऽभिष्लया बवामयने (का॰ श्रो॰ १३-२-५) विहिताः तेषां मध्ये मध्यमाऽभिष्लवस्थाने पृष्ट्यः षडहो भवति ।

(५) उत्तरपक्षे मासाः प्रतिलोमाः ।

385

योऽभिष्ठवमध्ये पृष्ठ्य(१) उत्तमः सः ॥ १५॥ भवति ॥ १५॥

गोआयुषी प्रतिलोमे ॥ १६॥

भवतः ॥ १६॥

छन्दोमद्शाहश्र॥१७॥

प्रतिलोम एव ॥ १७॥

द्दतिवातवतोरयनमेकैकेन पुष्ट्यस्तोमेन मासं

मासम्॥ १८॥

दिवातवतोरयनाभिति सत्रस्य संग्ना तत्रेकैकेन पृष्ट्यस्तोभेन मासं मासं नयेत् पृष्ट्यस्तोभाइच त्रिवृदादयः। एवं छत्र श्रूयते—"त्रिवृता मासं पञ्चद्द्योन मासं सप्तद्योन मासमेकविं/योन मासं त्रिणवेन मासं त्रयस्त्रियोन मासम्" (ताण्ड्य०२५-३) इति । अतस्त्रिवृदादिभिरे-काहैमासं मासं नयेदिति ॥ १४॥

तदुक्तमाचार्येण—

(२)एकाहास्तच्छब्दात्॥ १९॥

इति । तेषां शब्दस्तच्छव्दः सत्राभिषायके उपलभ्यते । पृष्ठधस्तो मशब्दोऽपि च एकाहानामेव व।चक उपलभ्यते—पृष्ठधस्तोमशब्दाः स्त्रिमृदादयः । ननु च स्तोमेष्वपि दश्यते पृष्ठधस्य षडहस्य स्तोमाः पृष्ठधस्तोमा इति स्तोमेष्वपि भवति । नैतदेवम् , पृष्ठधस्तोमशब्दः प्रत्यस्तिमतावयवार्थवृत्तितयाऽश्वकणादिवदेकाहानां वाचक इति । स्तो-

⁽१) आदित्यानामयने उत्तरपत्ते मध्यमस्थाने पृष्ठयः, अत्र स उत्तमः।

⁽२) अत्रेदं सन्दिहाते कि पृष्टयस्तोमशब्देन त्रिवृदादय एकाहा अभिघोयन्ते उत पृष्टयस्य स्तोमाः पृष्टयस्तोमा इति पृष्टयस्य षडहस्य सम्बन्धिनस्त्रिवृदादयः स्तोमा इति ? कि चातः? यद्येकाहाभिघानम् एकै केत त्रिवृदादिना एकाहेन मासस्य पूरणं कर्तव्यम् । अथ पृष्टयस्य स्तो-मानामभिघानं तदा चोदकप्राप्तेषु गावामयनिकेषु नानाविधेष्वद्दासु त्रिवृदादेः स्तोममात्रस्य विधानमिति । कि तावस्मासम् ? सूत्रेणेव पक्षः एक्स्हास्तव्छञ्दात् अत्र पृष्टयस्तोमशब्देन त्रिवृदादय एकाहा एवामि-घोयन्ते तच्छुब्दात् । त्रिवृदादय एकाहवाचकाः शब्दा यतः । इति पूर्वः पक्षः ।

भेषु पुनः पष्टीं करुपयित्वा समासलक्षणेन तह्वोपेन च स्तोमेन प्रशृत्तिः। न च तन्त्याय्यम् । तस्मात्पृष्ट्यस्तोमशब्द एकाहानां वाचक इति॥१८॥ एवं प्राप्ते आह—

नानाऽहानि (१)वा सङ्घातकाव्दात्॥ २०॥

'वा' शब्दः पक्षव्यावृत्तौ । नानाऽहानि वा वान्यन्वयप्राप्तानि तेषु स्तोमविधानं, त्रिवृता स्तोमेन मासं पश्चदशस्तोमेन मासिमत्येवमा दि । कुत पतत् ! सङ्घातशब्दो यत्र मवाति तत्रैकाहवचने त्रिवृद्धवित स च मौसिमिति वाक्यं भिद्यते। अथ पुनर्यो मासः स त्रिवृता स्तोमेन इति नेष दोषो भवति ॥ २०॥

मध्ये जनम् ॥ २१ ॥

(२)विषुवत्स्थाने व्रतं भवति ॥ २१ ॥

उत्तरपक्षं प्रतिलोमम् ॥ २२ ॥

उत्तरपक्षः पूर्वपक्षात् प्रातिलोम्बेन(३)॥ २२ ॥

कुण्डपायिनामयनं पौर्णमासीदीक्षम् ॥ २३॥

'कुण्डपायिनामयनम्' इति सत्रस्य संज्ञा । तस्य पौर्णमास्यां दीक्षा भवति ॥ २३ ॥

चतुष्टयी वाऽपरपक्षस्य(४)॥ २४॥

इति विकल्पः ॥ २४ ॥

मासं दीक्षाः ॥ २५॥

तस्य भवन्ति ॥ २५ ॥

⁽१) अधोत्तरपक्षः—द्रतिवातवतोरयनस्य एकैकस्मिन्मासे नानाः

ऽहानि भवन्ति । यानि प्रकृतितः प्राप्तानि तेष्वेव त्रिवृदादिस्तोमविधानं

न तु त्रिवृदादिना एकैकेनैकाहेन मासपूरणम् । कुतः १ सङ्घातशब्दाः

त् । यतस्त्रिवृदादयः सङ्घातशब्दाः । सङ्घातवाचकाः स्तोत्रियासंख्याः
वाचकाः अतो मुख्यया वृत्त्या स्तोत्रियासङ्घवाचिनः गौण्या वृत्त्या स्वे
काहेषु वर्तन्ते त्रिवृत्स्तोमयोगस्त्रिवृद्ति । गौणमुख्ययोश्च मुख्ये सम्प्रव्यय इति स्यायास्त्रिवृदादिशब्दाः पृष्ठयसम्बन्धनां स्तोमानां वाचका

इति सिद्धम् ।

⁽ २) 'बियुवस्तोमे' इ० पा०।

⁽३) त्रयस्त्रिशेन मासं जिणवेन मासमित्यादि कमेणेत्यर्थः।

⁽४) फाल्गुनापरपक्षस्य चतुर्थ्यो वा चेत्र्यां पौर्णमास्यां वेति ।

(१)सोमसुपनश्च सुत्यास्थानेषु मासमग्रिहोत्रं जुह्नति ॥ २६ ॥

सोमोपनहनं कृत्वा यानि सुत्यास्थानानि तेष्विग्नहोत्रहोमः। अशिहोत्रं च सायारम्मं प्रातरप्रवर्गम्। तत्र द्वाविष् होमी (२)फलैक्या-त्तन्त्रेणोपक्रमितन्यौ। प्रधानस्य तु भेदः। चतुर्गृहीतेनाग्नेयीं साय-माहुतिं हुत्वा पुनश्चतुर्गृहीतेन सौरीमाहुतिं सुहोति। तन्त्रेणोत्तरां सुहोति(३)। गाहपत्यकार्ये तत्र प्राजहित एव न शालाद्वार्ये। ज्यो-तिष्टोमे हि तत् श्चतं, न चाग्निहोत्रं ज्योतिष्टोमो न च तदङ्गमिति। आह्वनीयस्त्वतिप्रणीत एव॥ २६॥

द्रशपुर्वमासाभ्यां मासम् ॥ २७॥ नवेयुः(४)॥ २७॥

पक्षादौ यद्यज्ञाविस्तत्सर्वोस्मन् ॥ २८ ॥ पक्षस्यादौ यद्वविस्तत्सर्वस्मिन् पक्षे कर्तस्यम् , अभिप्रवृत्तः त्वात् ॥ २८ ॥

सारस्वते च प्रथमे ॥ २९ ॥

एवमेव ॥ २९ ॥

तस्त्रेण दा समस्तचोदितत्वात्(५)॥ २०॥ 'वा' शब्दः पक्षव्यावृत्तो। तन्त्रेणैव दर्शपूर्णमासी कर्तव्यो। सम-स्तयोहिं चोदना दर्शपूर्णमासाभ्यां मासमिति। न हात्र कालो भेदकः, तस्मादान्तिहोत्रवदत्रापि तन्त्रमेव॥ ३०॥

आग्निहोत्रं च(६)॥ ३१॥

- (१) सोमबन्धनपूर्वकम् । अत्राग्निहोत्रशब्दो नित्याग्निहात्रधर्माः ऽतिदेशार्थः ततश्च तद्धमेकं कर्मान्तरःमासपूर्विपर्यन्तं प्रत्यहमत्र भवति।
 - (२) कालेक्यात् इ० पा०।
- (३) तस्मिन्नेव काले जुहोति,न तु नित्याग्निहोत्रवद् द्वितीयदिवसे प्रातरिति ।
 - (४) सम्पूर्णे शुक्कपक्षे दर्शेष्टिः, सम्पूर्णे कृष्णे च पौर्णमासेष्टिः कर्तव्या।
- (५) न दर्शपौर्णमासस्य पक्षमेदेनानुष्ठानम् । कि तर्हि ? तन्त्रेण । कुतः ? समस्तचोदितत्वात् । समस्तयोरेव दर्शपौर्णमासयोः प्रत्यहं मा-सस्य पर्यन्तं विहितत्वात् । सारस्वते तु पच्चमेदेनैव तत्र तथैव विधा-नात् ।
 - (६) तम्त्रेण। न तु निस्याग्निहोत्रवस्तायं प्रातः पृथकपृथगिति।

अस्य सूत्रस्य पूर्वमेवाभिहितो न्यायः ॥ ३१ ॥
पृथङ्मास् । आतुमस्यपर्वाभिः ॥ ३२ ॥
नीयन्ते । "वैश्वदेवेन मासं वहणप्रवासिमीसः साकमेवेर्मासः ग्रुनाः सीरायेण मासम्" (तांण्ड्य० २५-४) इति श्वतेः ॥ ३२ ॥
साकमेघा दृशीपूर्णमासवत् ॥ ३३ ॥

तन्त्रेणेत्युक्तो न्यायः॥ ३३॥

सोमा वा सामान्यात्॥ ३४॥

सोमा वा पते भवन्त्यिनहोत्राद्यः। कुत पतत् ! सामान्यात्। सत्रं हि सोमयागैः पूर्यते। अथवा सामान्यादिति समानशन्दः अग्निः होत्रादिषु प्रतिकर्म सोमेषु ॥ ३४॥

न जुहोतिशब्दात्॥ ३५॥

नैतदेवं सोमा एत इति । कुत एतत् ? जुहोतिशब्दात् । मासमागिः होत्रं जुहोतीति जुहोतिशब्दोऽत्र भवति । न चासौ सोमयागेषु प्रसिद्धः, तस्मान्न सोमा इति ॥ ३५ ॥

कामामितरे(१)॥ ३६॥

इतरे ति दर्शपूर्णमासादयो भवन्तु सोमाः। न हि तत्र जुहोति शब्द इति । नेत्युच्यते—दर्शपूर्णमासादयः शब्दा निरुपपदा एव दः र्शपूर्णमासादीन् प्रत्याययन्ति, सोपपदाः सोमान्। निरुपपदाश्चैते मासं दर्शपूर्णमासाम्यामिति । तस्माह्शपूर्णमासादयोऽपि न सोमा एते॥३६॥

(२)द्दतिवातवतोरयनपूर्वपक्षेण षणमासान् ॥ ३७॥ दतिवातवतोरयनस्य पूर्वपक्षेण पण्मासान्नयेयुः ॥ ३७॥ (३)उत्तमे त्रयोऽभिष्लवा दशरात्रो महाव्रतम् ॥३८॥

अता दिवसे एव सायम्प्रातस्तनमग्निहोत्रं तन्त्रेणैव हातस्यम् । एककाः स्टब्स्टाइक्रानि तन्त्रेण । प्रधानाहृतयस्त् भिन्नाः ।

- (१) दर्शपूर्णमासादयः कामं सोमा भवन्तु यतस्तत्र जुहोति शब्दे। नास्ति । परमार्थतस्तु तेऽप्यत्र सोमा न भवन्ति यतो दर्शपूर्णमासादयः शब्दा निरुपपदा अत्र श्रूयन्ते न चातुर्मास्यसोमा दर्शपूर्णमाससोमा इ-स्येवं सोमोपपदाः अतस्तेऽपि न सोमा इति सिद्धान्तः । एवं पण्मासाः परिपूर्णाः । मासश्चात्र सर्वत्र सावनस्त्रिशादिनात्मकः ।
 - (२) अथोत्तरेषु षद्खु मासेष्वहान्याह—
 - (३) तत्र विशेषमाह—

(१) उत्तमे मासे त्रयोऽभिष्ठवा दशरात्रो महावतं भवति ॥ ३८॥ डपरिष्टादतिराञं भवति(२) ॥३९॥

अनुप्रहश्चतेः । यदन्यत्रतोऽतिरात्रस्तेनाहीन इति ॥ ३९ ॥ उभवतो वा(३)॥ ४०॥

अतिरात्रो भवति सत्रत्वात् । अनुप्रहथुतिस्तु अहीनत्वेन संस्तौति तत्कथम् ? हविर्धेश्वैद्धेवहितत्वात् ॥ ४० ॥

हविर्यज्ञेभ्योऽतिरात्रमेके सोमानन्तर्यात्(४) ॥४१॥

हवियंत्रभ्योऽवसितेभ्य एके प्रायणीयमातिरात्रमिच्छन्ति । एवं सोमानन्तर्थे भवति । एके तक्षेच्छान्ति । अग्नोषोमीयोत्तरकालता हि तस्य प्रकृती हरटा। इहापि तहदेव। तस्मात्यारेव हविर्यक्रेम्यः प्रायणीयः ॥ ४१ ॥

(५)अत्सद्धाः क्रण्डपातिरूपाश्चमसाः(६) ॥४२॥ अत्सरका अवृन्तकाः कुण्डप्रतिरूपा वृत्ताकाराः ॥ ४२ ॥ पश्चरिवजस्त्रीाणि श्रीणि कर्माणि कुर्युः(७)॥ ४३॥ ताम्याह-

होताध्वर्धवयोञ्जीये च ॥ ४४ ॥

(१) द्वादशे मासे (२) अन्ते एक उदयनीयातिरात्र (का० थ्रौ० १२-१-७)एव भवति न प्रायणीय इति ।

(३) अथवा उभयतोऽतिरात्रं भवति प्रायणीयस्रोद्यनीयस्रात्र

द्राविप भवत इत्यर्थः।

- (४) उभयते।ऽतिरात्रपक्षे प्रायणीयमतिरात्रमेकेथाचार्याः हिवर्यक्षे-भ्योऽग्निहोत्रदर्शपूर्णमासचातुर्मास्यपर्वभ्यः परं कुर्वन्ति । पवं हि सर्वेषां सोमयागानामानन्तर्यमञ्यवधानं कृतं भवति । इतरथा हिवर्यञ्जैर्व्यच-धानं स्थात् । एक एतन्न वाञ्छन्ति । यतः प्रकृतौ प्रायणीयस्थाग्नीषोमीन योत्तरकालता द्रष्टा। इहापि च तद्वदेवानुष्ठानं युक्तम्। तस्माद्धविर्यक्षे-भ्यः पुर्व एव प्रायणीयो भवति ।
 - (५) अन्येभ्यः सत्रेभ्योऽत्र विशेषमाह—
 - (६) अत्र अत्सरुका अवृन्ता भूलज्ञापकविन्हदण्डरहिताः कुण्ड-प्रतिरूपा कुण्डाकारा वृत्ताश्च भवन्ति ।
 - (७) अत्र कुण्डपायिनामयने वश्यमाणाः पञ्चत्विजस्त्रीणि त्रीणि कर्माण कर्चन्ति त्रयाणां त्रयाणामृत्विजां कर्माण एकैकः करोति।

'च' शब्दाह्मैत्रं च॥ ४४॥ उद्गाता नेष्ट्रच्छावाकीये॥ ४६॥ मैद्यावरुणो ब्रह्मत्वप्रातिहर्त्ते॥ ४६॥ प्रस्तोता ब्राह्मणाच्छ्यास्यावस्तोन्त्रीये(१)॥ ४७॥ प्रतिप्रस्थाताप्रीधोन्नेत्रे(२)॥ ४८॥ 'होतास्वर्यवपोशीये च' इति 'च'कारः सर्वत्रात्वर्वते॥ ४६॥ सुख्यासनेश्योऽनुस्युस्पमितराणि॥ ४९॥

आसनराद्यः स्थानवाची मुख्यस्थानेस्यः अनु सृष्ट्वा सुष्ट्वा पर कीयानि कर्माणि कुर्युः। स्वकर्मकर्तृत्वस्य चरितार्थत्वात् ॥ ४९ ॥

(३)सर्पसत्रं व्यत्यासं विराट् कौसुरुविन्द द्वितीयं च(४)॥ ५०॥

'सर्पसत्रम्' इति नाम । तत्राहान्याह—विराडेकाहः। कौसुरुवि-न्दस्य च द्वितीयमहः, वचनसामर्थ्यात् ॥ ५० ॥

गवामयनं वाभिगरश्चुतेः ॥ ५१ ॥

गवामयनमेथ वा भवति । कुत पतत् अभिगरश्रवणात् । (५) "षण्ड-कुषण्डावभिगरापगरा" (ताण्ड्य० २५-११) इति श्रवणात् । अभि-गरापगरा च गवामयने दृष्टा । तेन गवामयनं भवति । अत्र वाद्यव्दं विकल्पार्थमेक इच्छान्ति । न चेतव् युक्तम् । अभिगरापगरा हि छिङ्ग-मात्रम्, "विराद्कौ सुरुविन्दद्वितीयम्" इति वचनात् । तस्मात्तदेव यु-क्रक्पमिति । छिङ्गं तु संस्तवार्थं भविष्यति ॥ ५१॥

इति चतुर्विशेऽध्याये चतुर्थी कण्डिका।

⁽१) सर्वत्र प्रथमान्तः कर्ता ।

⁽२) उन्नेतुः कर्म उन्नेत्रम् । आग्नीधं च उन्नेत्रं च आग्नीधोन्नेत्रे उद्गात्रादिस्वादन् ।

⁽३) गृहपतिगृहपतिः सुब्रह्मण्य इति छन्दोगसुत्रे । तेन सप्तभिः सर्पसत्रं कार्यम् ॥

⁽ क्ष) पूर्वं प्रायणीयातिर।त्रः ततो द्वन्द्वसोमानां द्वितीयो विराडेका-होऽग्निष्टोमसंस्थः तथा कौसुरुविन्दस्य यद्द्वितीयं त्रिवृद्ग्निष्टोमः (का० श्रौ० २३-५-१२,२३) एतद्दृद्धयं व्यत्यस्य प्रयुञ्जानः सर्वं सत्रं पूरयेत् । (५) षण्डकुषण्डाविति पा. भेदः ।

तापश्चितं दीक्षाः संबन्धरमुपसद्भ तथा सुत्याः ॥ १॥ 'तापश्चितम्' इति सत्रनाम । तत्र दीक्षाः संबरसरं भवन्ति । उपः सदः सुत्याश्च ॥ १॥

(१) ध्वानीमहान्याह—

गवामयनेनेयुः॥ १॥

गवामयनेन गच्छेयुः। गवामयनमेव कर्तन्यमित्यर्थः॥ २॥

अग्निष्टोमेन(२) वा ॥ ३ ॥

र्युः। अपूर्वश्चायमाभ्रिष्टोमो नैकाहिको न द्वादशाहिकः, संस्थान-मात्रोपदेशात्॥ ३॥

सर्वजिदभिजिद्विश्वजितां वैकैकेन(३)॥ ४॥ सर्वजिदादय एकाहाः॥४॥

त्रिकड़केवी ॥ ६ ॥

प्तेऽप्येकाहा एव ॥ ५ ॥

(४)महातापश्चितं त्रिपंवत्सरोपसत्कम् ॥६॥ भवति॥६॥

तुल्यमन्यत्(५) ॥ ७ ॥

तापश्चितेनैव ॥ ७ ॥

श्चुल्लकतापाश्चिते चतुर्मासशो दीक्षोपसत्सुत्यानि ॥ ८॥ मवन्ति(६) ॥ ८॥

(७)विषुवन्तमभितो गवामधनपक्षघोः प्रथमोत्तमौ प्रथमोत्तमौ(८) ॥ ९ ॥

(१) अत्र सुरवा आह इति देवयात्रिकः।

(२) अग्निष्टोमसंस्थेन ज्योतिष्टोमेन पूरणं कर्तव्यम्।

(३) सर्वजिदादित्रयाणां मध्ये एकैकेन पुरणं कर्तब्यम्।

(४) 'महातापश्चितम्' सत्रनाम । तच त्रयः संवत्सरा उपसदो यत्र तादृशं भवति ।

(५) अन्यत्सर्वं प्रागुक्तेन वापश्चितेन तुल्यं समानं भवतीत्यर्थः।

(६) 'श्रुह्लकतापश्चितम्' सत्रनाम । इदमतिलघु । चतुर्मिर्मासैँदीः श्रोपसरसुरया भवन्ति ।

(७) तत्राहाम्याह—

(८) विषुवतः पुरस्तादुपरिष्टात् गवामयनस्य पूर्वोत्तरयोः पक्षयोः का० ४४ मासौ भवतः॥ ९॥

सहस्रसाच्यमग्नेः॥ १०॥

(१)सहस्रसाव्यं नामाग्नेः सत्रम् ॥ १० ॥

अभिष्लवानां चतुःपष्टः; शतं चतुरहश्च(२)॥ ११॥

त्रिपंदरसरः, पष्टिदीक्षम् ॥ १२॥

त्रिसंवरसरं सत्रम्। तच षष्टिदीक्षं भवति ॥ १२ ॥ यथादाक्ति वा ॥ १३ ॥

दीक्षा भवन्ति॥ १३॥

आदितस्त्रयः संवत्सराः सौत्याः(३) ॥ १४ ॥ गवामयनाद्यो भवन्ति ॥ १४ ॥

महासत्राण्यतः ॥ १५॥

अतः परं महासत्राणि व्याख्यायक्ते । महासत्रप्रहणं तुरुयघर्मप्र-ज्ञप्त्यर्थम् ॥ १५ ॥

चतुर्भागं चतुर्भागमेकैकस्य ज्यौतिष्टोमिकैः स्तोमैः ॥१६॥ (४)नययुः॥१६॥

तेष्वतिरात्रविषुवन्तः स्युवी न वा ॥ १७ ॥

प्रथमोत्तमो मासो। पूर्व पूर्वपक्षस्य प्रथमषष्टो मासो विषुवत उत्तरमुत्त रपक्षस्य प्रथमषष्टो। ततस्य—प्रायणीयः १,चतुर्विशमहः २,चत्वारोऽभि प्रवाः ३-२६, पृष्ठयः षडहः २७-३२। पवं प्रथमो मासः। त्रयोऽभिष्ठवाः १-१८, पृष्ठयः १९-२४, अभिजिद्गिष्टोमः २५, त्रयः स्वरसामानः १-३, विश्वजित् ४, पृष्ठयः प्रतिलोमः १-१०, त्रयोऽभिष्ठवाः ११-२८, पवं तृः तीयो मासः। त्रयोऽभिष्ठवाः ११-२८, पवं तृः तीयो मासः। त्रयोऽभिष्ठवाः १-१८,गो आयुषी १६-२०, दशरात्रः २१-३०, महात्रतम् ३१, उदयनीयः ३२ इति चतुर्थो मासः।

- (१) सहस्रसुत्यम्।
- (२) प्रायणीयः १, त्रिकदुकाः २-४, चतुः षष्ठं शतमसिष्ठवाः ५-९=८, दशरात्रः ९८९-९९८, महाव्रतम् ९९९, उदयनीयः १०००।
- (३) अस्मिन्सने आदितः प्रथमाद्गवामयनादारभ्य त्रयः संवत्सराः सौरयाः सुत्याहानि भवन्ति इत्यर्थः ।
- (४) एकैकस्य द्वादशसंवत्सरादेर्महासत्रस्य चतुर्थे भागं ज्यौति श्रोमिकैः त्रिवृत्पञ्चदशस्त्रपदशैकविंशेः स्तोमैः पूरशेयुः ।

तेषु महासमेषु अतिराभविषुवन्तो भवेयुवां न वा मवेयुः। भवे युरिति । कुत पतत् १ प्रतिसंवत्सरमादिमध्यावसानेश्वतिराभविषुवतां दृष्टत्वाक्रवेयुरिति गम्यते । यद्यवं न भवेयुः। कथम् १ सत्रसंयोगेन द्यातिरात्रभ्रवणात् । "इभयतोऽतिराभ् स्वभम्" (का० भौ० १२-१-७) दृति । न सम्वत्सरसंयोगेन । अतो न प्रतिसम्बत्सरमतिराभौ (१) ॥१०॥ पतं सत्युपसंहरत्यावार्षः—

आचन्तयोवीतिरात्रौ विषुवांश्च मध्ये मध्ये ॥ १८ ॥

'वा'शन्दोऽवधारणार्थः। आद्यन्तयोरेवातिरात्रौ मवतः सत्रस्यै॰ कःवात्। विषुवांश्च प्रतिसंवत्सरं मध्ये मध्ये, संवत्सरसंयोगेन तस्य श्वतत्वात्॥ १८॥

(२)द्वाद्शसंवत्सरं प्रजापतेः ॥ १९ ॥ प्रजापतिसत्रीमति संशा॥ १९॥

(१)षद्त्रि;शत्संवत्सरः शाक्यानां तरसमयाः

पुरोद्धाद्याः ॥ २० ॥

शाक्यानामयनमिति सत्रस्य सञ्जा। तत्षद्त्रिशत्संबरसरं भव-ति। तत्र तरसमयाः पुरोडाशा भवन्ति। म्रांसमया इत्यर्थः॥ २०॥

(४)सर्वञाविशेषात्॥ २१॥

सर्वत्र सत्रे तरसमयाः पुरोडाशा भवन्ति । आविशेषश्रुतेः ॥ २१ ॥ (५)सवनीया चा चहुश्रुतेः ॥ २२ ॥

'वा'शब्दः पक्षव्यावृत्तो । सवनीया एव तरसमया भवन्ति । कुत एतत् १ बहुत्वश्रुतेः "तरसमयाः पुरोद्धाशा भवन्ति" इति । बहुत्व-प्रयुक्तानां हि तरस्रविधानम् ॥ २२ ॥

- (१) प्रायणीयोदयनोयौ ।
- (२) द्वादशसंवत्सरं सुत्या भवन्ति।
- (३) षट्त्रिशसंबत्सरसुर्यम् ।
- (४) अत्र सर्वत्र दीक्षणीयातिष्यापशुपुरोडाशसवनीयादयः पुरी-ढाशस्तरसमया मांसमया भवन्ति । तथा हि संस्थितेऽहनि मृगपतिर्मृ-गयां याति स तत्र यान्मृगान्हन्ति तेषां तरसाः सवनीयाः पुरोडाशा मयन्ति ।
- (५) सवनीया एव तरसमयाः न सर्वत्र । 'पुरोडाशा' इति बहुत्वः श्रवणात् । अत्र मांसस्य पेषणकाले ''घान्यमसिन्'' (वाट संट १–२०) इत्यत्र मन्त्रे 'तरसमसि' इत्येवमूदः कार्यः न तु 'मृगोऽसि' इति ।

श्चतसंवत्सर् साध्यानाम् ॥ २३ ॥ साध्यानामयनं सत्रम् । तच्छतसंवत्सरं भवति ॥ २३ ॥

(१)सहस्रसंवत्सरं विश्वसृजाम् ॥ २४ ॥

'विश्वस्जामयनम्' इति सत्रस्य संज्ञा । तत्सद्दस्रसंवत्सरं भवति ॥ २४ ॥

(२)यात्सत्राणि सारस्वतानि ॥ २५ ॥

(३)यात्वा यात्वा क्रियन्त इति यात्सत्राणीत्येके । तद्तुपप श्रम्, गमनस्य स्वदान्दाभिद्दितत्वात् । तस्मात् यात्सत्राणि सारस्वत सत्राणीत्युमे अपि च संबे पते ॥ २५ ॥

(४)सदोहविद्धीनाग्नीधाणि चक्रीवन्ति ॥ २६॥ भवन्ति । अन्यथा गमनासम्भवाद ॥ २६॥

(५) उत्स्वलबुभ्नो यूपः (३) प्रकृष्यः ॥ २७ ॥ उत्स्वलमिव बुष्नो यूपस्य भवति । स च प्रकृष्यते न निखन्यते॥२७॥ वत्सतरीशतमृषभाधिकं गर्भिणीनासुतस्जनित

सहस्रपूरणाय(७) ॥ २८ ॥ सहस्रपूरणेन हि सत्रस्य परिसमाप्तिः ॥ २८ ॥

- (१) अत्र संवत्सरशन्दोऽसम्भवाहौण्या वृत्त्याऽहर्लक्षक इति प्रागुः कम् ''अहां वा शक्यत्वात् '' (का० औ०१-६-२५) इत्यत्र । तेन सहः स्रसुत्यमेतत्सत्रं भवति इति देवयाश्विकाः ।
 - (२) अथ त्रीणि सारस्वतसत्राणि क्रमेणाह—
 - (३) यान्ति च तानि सन्नाणि च यात्सत्राणि इति वा।
 - (४) एतच पत्नीशासाया अप्युपस्रक्षणम् ।
- ं (५) उल्लूखलस्येव बुध्नं यस्यासौ उल्लूखलबुध्नः स्थिरासन इत्यर्थः।
- (६) प्रकृष्यो देशान्तरनयने प्रकर्षणीयः भूमिसंख्यन एव प्रेरणीयः न तुत्पाट्य नेय इत्यर्थः।
- (७) ऋषभेणाधिकं गर्भिणीनां बत्सतरीणां शतं सहस्वपूरणायारण्ये उत्स्तर्जान्त । वत्सभावादुत्तीणां वत्सतर्यः । अल्पं तालां वत्सत्वं बहु-तालां गोत्वम् "वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे" (पा० लू० ५-३-९१) इति पृरच् डीण् तेन प्रथमगर्भाणामिति सिद्धम् । सहस्वपूरणायेति या। स्वि यः तालां मातरो न दोग्धन्याः । पत्रं वर्षमानाः क्षिप्रं सहस्रं सम्पद्यन्ते ।

(१) उपिकरन्त्युपरवस्थानेषु न खनन्ति ॥ २९ ॥ उपिकरणं च सदः ॥ २९ ॥ गुक्रपक्षससम्यां दीक्षा सरस्वतीविनदाने ॥ ३० ॥ (२) सरस्वतीविनशनप्रदेशे ॥ ३० ॥

द्वाद्शाह्वद्दीक्षोपसदः ॥ ३१ ॥ अत्रैकाहिकान्यद्दानि तत्र द्वादशाहबद्प्रासौ सत्यां द्वादशाहचदि-त्युच्यते ॥ ३१ ॥

अ**षोड**शिकावतिरात्रौ ॥ ३२ ॥ भवतः ॥ ३२ ॥

तन्त्रेव प्रायणीयोऽतिरात्रः ॥ ३३ ॥ भवति । सरस्वतीवनद्यने ॥ ३३ ॥

सान्नाय्यञ्च नस्मिन् ॥ ३४ ॥

"पक्षादौ यद्यद्विस्तत्सर्वस्मिन्" "सारस्वते च प्रथमे" (का॰ श्रो० २४-४-२८, २६) इत्युक्तम्, तेन साम्राध्यमत्र प्राप्नोति। अत उच्यते साम्राध्यं च तुस्मिन्निति॥ ३४॥

सः(स्थितेऽच्वर्युराहवनीयसमीपे स्थित्वाभ्यध्वः(३) श्रम्यां प्रास्यति तद्गाईपत्यस्थानम् ॥ ३५ ॥ यथोक्तमाहवनीयस्य(४) ॥ ३६ ॥

> रति चतुर्विशेऽध्याये पञ्चमी कण्डिका। यथास्थितं यज्ञाङ्गानि हरन्ति ॥ १ ॥

(१) उपरवातुपकिरन्ति न बनन्ति आलेखनमात्रमेव कुर्वन्ति।

(३) अभ्यष्वं मार्गासिमुखम्।

⁽२) चैत्रस्य शुक्कपक्षे सप्तम्यां विधौ सरस्वतीविनशने सरस्वती समुद्रसङ्गमे प्रभासे इतिदेवः । यत्र सरस्वत्यन्तर्भवति तद्विनशनित्युः च्यते, अतिरात्रस्य द्वितीयायां समाप्तस्वात् (ठाट्या० १०-१५-१) इत्यग्निस्वामिनः । सरस्वती नाम महानदी प्रत्यक्स्रोता प्रवहति तस्याः प्रागपरौ भागौ सर्वछोकप्रत्यक्षौ मध्यमस्तु भागो भूम्यामन्तर्निमन-प्रवहति, नासौ केनापिदृश्यते तद्विनशनिमति माधवाचार्या व्यक्तिः भाष्यकाराश्च । यत्र सरस्वत्यन्तिहैता तद्विनशनिमति जयस्वामिनः ।

⁽४) आहवनीयस्योत्तरवेदिकस्य स्थानं यथा (का ० औ०८-३-७,८) प्रकृताञ्चकं तथेव भवति ।

येषु स्थानेषु स्थितानि (१)तत्समवेतान्येव हरन्ति ॥ १ ॥ पा**ण्स्नादाय भौमानां** यथादेशं निवपन्ति(२) ॥२॥ भौमानामक्षानां पांस्न्यहीत्वा यथावदेशं न्युप्यम् ॥ २ ॥ यजनीययोरन्होगांआयुषी(३) ॥ ३ ॥

भवतः ॥ ३ ॥

पर्वान्तरेषु द्रशपूर्णमासौ ॥ ४ ॥ प्रयमे पर्वान्तरे दर्शः । द्वितीये पौर्णमासम् । एवं व्यत्यासेन(४)॥४॥ शम्यात्रासे शम्यात्रासे वसन्तो यजमानाश्च यान्ति

दक्षिणेन तीरेण॥ ५॥

शस्यात्रास उपित्वा यागं कृत्वा ततो यन्ति दक्षिणेन तीरेण सर-स्वस्याः(५)॥ ५॥

हषद्वत्यच्यचे Sपोनिष्त्रियश्चरः(६) ॥ ६ ॥ रषद्वत्यच्यवे प्रदेशे चर्सवित ॥ ६ ॥ अग्नये कामायेष्टिः (७)प्लक्षे प्रास्त्रवणे ॥ ७ ॥ प्लक्षे प्रास्त्रवणप्रदेशे अग्नये कामायेष्टिभवति ॥ ७॥

(१) शालासदोह्दवर्घानाग्नोधीयादोनि।

(२) भौमानां भूमिमयानां यज्ञाङ्गानां वेदिखरधिष्णयोत्तरवेदीनां पांसुन्पात्रान्तरेणादाय देवयजनानन्तरे वेदिमध्ये तुष्णीं पांसुन् निवपन्ति ।

- (३) यजनीययोरहोः प्रतिपदोरुभयोः यथाक्रमं गोआयुषी भवतः। ताबुभाबुक्थ्यसंस्थी । गौरुक्थ्यः पौर्णमास्यां श्रमावास्यायामाः युक्क्थ्य इति ।
 - (४) अत्राग्ध्यन्वाघानवर्जे पत्नीसंयाज्ञान्तं तन्त्रमिति माधवाचार्यः।
- (५) इष्टवनन्तरमेव देशान्तरं गत्वा तत्र वासः ! प्रातरिष्टवन्ते पुनः शम्यात्रासमादि । इह सत्रे पर्वसु चन्द्रप्रमाणा एव मासाः स्युः न त्रिशिनः सावना इति ।
- (६) द्रषद्धस्यप्यये सरस्वतीद्रषद्धस्योः सङ्गमे एवं दक्षिणेन वीरेण प्रतिदिनं राम्याप्रासे वसतां यदा सरस्वतीद्रषद्धस्योः सङ्गम आयाति तदा अपोनिष्त्रयस्यस्मंवति । अपोनपाद्देवताकः जळातिक्रमदोषपरिहारार्थम् ।
- (७) प्रक्षे प्रास्त्रवणे सरस्वत्या उत्पत्तिस्थाने । "चतुश्चत्वारिशः दाश्चिमानि सरस्वत्या विनशनात्म्यक्षः प्रास्त्रवणः" (ताण्ड्य० २५– १०) इति वचनात्।

(१)तस्यामश्वपुरुष्यो घेनुके द्युः ॥ ८॥ इष्यते अश्वपुरुष्योदीनं घेनुत्वे स्राते तदुपकारामावास्त्रस्तेश्च दानम्। दानं च प्रासर्पकेश्यः॥ ८॥

अविशिष्टं चैके यज्ञोपकरणसुद्यनीयान्ते(२)॥९॥ यदवशिष्टं यक्षोपकरणं तदुद्यनीयान्ते ददाति। सत्रसमाप्ताः वित्यर्थः॥ ६॥

अवभृथमभ्यवयान्ति यमुनां कार्णचवं प्रति(३)॥१०॥ कार्णचवप्रदेशं प्रति यमुनामवभृथमभ्यवयन्ति । अनेन चाव-भृथमहणेन सत्रसमाप्तिरुक्ष्यते॥१०॥

पुरस्ताद्वावभृथादग्रयं कामाय(४) ॥ ११ ॥ इष्टिर्भवति ॥ ११ ॥ उद्वसानीयान्ते वा(५) ॥ १२ ॥

'वा' इति विकल्पः॥ १२॥

यथार्थ विप्रव्रजेयुः(६)॥ १३॥

अपृष्ठवामनानि सारस्वतानि(१) ॥ १४ ॥ अपृष्ठवामनानि हि सारस्वतसत्राणि श्रूयन्ते ॥ १४ ॥ त्रीण्येषाः, साम्युत्थानान्यतिराजैः ॥ १५ ॥

े(२) अवभृथानन्तरमुदयनीयासंज्ञिकेष्टिर्भवति तस्या अन्ते । एके यञ्चोपकरणं घृतघान्यसुवर्णद्रव्यादिकं गुणवते दद्वयुः ।

(३) कारपंचयो देशविशेषः। तन्मध्ये यमुना वर्तते। तां कारणः चवदेशस्थां यमुनां प्राप्य तत्रावसृथमभ्यवयन्ति।

(४) इष्टेः (का०थ्रौ० २४-६-७) काळान्तरविधानम् ।

(५) इष्टिर्भवतीत्यध्याहारः।

(६) इदं सत्रं समाप्तं वतो यजमानाः स्वस्वकार्यार्थं गच्छेयुः।

(७) पृष्ठशमनीयवर्जितानि सारस्वतसत्राणि भवन्ति । पृष्ठशम नीय पषु न भवतीत्पर्थः । सत्राङ्गं हि सः (का० श्रौ० १३-३-३४) अतोऽत्रापि प्राप्नोति । अत्र प्रतिषेधादन्येषु सत्रेषु सत्रान्ते नियमेनायं भवतीति प्रतीयते ।

⁽१) अश्वपुरुष्यौ अश्वां वडवां पुरुषीं मानुषीं स्त्रियं च ते उभेधे-नुके प्रत्यमप्रस्ते सापत्ये दद्युः। दानं चात्र प्रासर्पकाणां मध्ये कस्मै-चिद्युणवते।

पषां सारस्वतसत्राणां मध्ये साम्युत्थानानि त्रीणि भवन्ति ॥१५॥ सहस्रप्रणगृहपतिमरणसर्वेज्यान्यः(१)॥ १६॥ प्रथमं साम्युत्थानं गवां सहस्रप्रणे। द्वितीयं गृहपतिमरणे। तृतीयं सर्वज्यान्याम्। सर्वज्यानिश्च सर्वहानिग्रुच्यते॥ १६॥

सहस्रपुरणे गीः ॥ १७॥

(२) गौरतिरात्रो भवति ॥ १७॥

तदेव दत्त्वा(३)॥ १८॥

तदेव सहसं दत्ता साम्युत्तिष्टेरन् ॥ १८॥

आयुर्ग्रहपातिमरणे॥ १९॥

अतिराभा भवति॥ १९॥

सर्वज्यान्यां विश्वाजित् ॥ २० ॥

अतिरात्रः कर्तब्यः(४) ॥ २०॥

ज्योतिष्टोमो (५)वा सर्वेषाम् ॥ २१॥ भवति॥ २१॥

नावसृथि सरस्वत्याम् ॥ १२ ॥

(६)सरस्वत्यामवसृषं न भवति ॥ २२॥

- (१)पूर्वं सत्रारम्भकाले यहत्सतरीणां गर्भिणीनां शतस्वमेणाधिकं सहस्रपूरणार्थमुत्स्ष्टमभूत् (का० श्रौ० २४-५-१८) तत्र यदा तासां तत्रमुतानां च प्रसवैः गवां सहस्रस्य पूरणं भवति, यदा गृहपतैर्भरणं भवति, यदा सर्वासां गवां हानिः सर्वाज्यानिर्भवति । एतानि त्रीणि पवां विश्वितानां साम्युत्थानानि अर्धसमाप्तसत्रपरित्यागकारणानि । तत्रातिः रात्रैर्वस्यमाणैर्गवादिभिरिष्वा साम्युत्थानं कुर्युः । प्लक्षप्रास्त्रवणात्प्रागेव, समापनं कुर्युः ।
 - (२) सहस्रप्रणे सित यदा साम्युत्थानं क्रियते तदा।
 - (३) गवि अतिरात्रे गवां सहस्रं दस्वा साम्युत्तिष्ठेयुरित्यर्थः।
- (४) अत्र तासामेव गवामधिकारः । तासामेव सहस्रसम्पत्यर्थः मुत्स्रष्टानां हानौ साम्युत्थानेऽधिकारो भवति न द्रव्यान्तरस्य हानौ । कुतः ? प्रकरणमृतत्वात् ।
- (५) अथवा सर्वेषां गवादीनां स्थाने ज्योतिष्टोमातिरात्र प्रवोदः यनीयो भवति ।
 - (६) साम्युत्थाने स्रति।

परिपाइचेंपूदकेषु(१)॥ २३॥

कर्तव्यः ॥ २३ ॥

असरसुद्घृत्य ततः ॥ २४ ॥

यदि नाम न सन्ति ततः सरक्वत्या प्रवादकमुद्धृत्यावभृथः कार्यः॥ २४॥

(१)बितीये दतिषात्वतोरयनस्याहनी त्रिष्टस्पञ्चदः

शस्तोमे पर्वान्तरेषु व्यत्यासम्(३) ॥ २५ ॥

द्वितीये सारस्वते सत्रं द्वतिवातवतोरयनस्य ये त्रिवृत्पञ्चदशस्तोमे अहनी, ते पर्वान्तरेषु व्यत्यासेन कियते ॥ २५ ॥

तयोश्चेदसमासयोरागच्छेचजनीयकालस्तसुपैत्य

शेषमनुसमापयेयुः(४) ॥ २६ ॥

तयोस्त्रिवृत्पञ्चदशस्तोमयोरसमाप्तयोर्यद्यागच्छेद्यजनीयकालस्तं यः जनीयकालीनं परिसमाष्य छेषं पारसमापयेयुः॥ २६॥

शुक्कपक्षख्रोत्त्रबृद्ग्निष्टोम इत्येके(५) ॥ २७॥ एके शेषपरिसमाप्तिमिच्छन्ति ॥ २७॥

- (१) यदि सरस्वत्यामवभृथकरणप्रतिषेधस्तदा सरस्वतीपरिपा-श्र्ववर्तिषु नदीतडागादिषु अवभृथं कुर्युरित्यर्थः।
 - (२) पवमेकं सारस्वतं सत्रमुक्तवा अथ द्वितीयमुच्यते।
- (३) द्वितीये सारस्वतसत्रे पौर्णमास्यमावास्ययोरन्तराले शस्याः प्रासे दर्शपूर्णमासयोः स्थाने द्वृतिवातवतोरयनस्य सम्बन्धिनी त्रिवृत्य अदशस्तोमे अहनी व्यत्यासं भवतः । एकस्मिन्दिने त्रिवृत् , द्वितीये पश्चदशः, तृतीये त्रिवृत् , चतुर्थं पश्चदशः । 'त्रिवृत्' अग्निष्टोमसंस्थः । 'पश्चदशः उक्थ्यसंस्थः ।

(४)यदा तिथिक्षयवृद्धिवशादेकस्मिन्पक्षे समययोगा न सिद्ध्यति । त्रिवृत्पश्चदशस्तोमयोरसमाप्तयोर्यदिपजनीयकाल आगच्छेत् त्रिवृति कृते पञ्चदशे अकृते इत्यर्थः । तदा तं यजनीयकालीनं गामायुर्वा उपत्य शेषं समापयेयुः, तत आरम्याग्रिमपक्षमुपक्रमेयुरित्यर्थः ।

(५) पर्वान्तरेषु व्यत्यासेन त्रिवृत्पञ्चदशयोरनुष्ठानपक्षात्पक्षान्तरः माह । यदि शुक्कपक्षस्तदा सकलेऽपि तस्मिन् त्रिवृद्गिनष्टोमः केवलः कार्यः, कृष्णपत्ते सकलेऽपि पञ्चदश उक्ष्यः केवलः कार्यं इति देव-याज्ञिकाः । पञ्चद्दशाउक्थ्यः कृष्णे ॥ १८॥

'भवति' इत्येके ॥ २८॥

(१)तृलीये यजनीययोग्होरभिजिद्धिश्वजितौ ॥२९॥

(२)भवतः॥ २९॥

(३)पर्वान्तरेषु त्रिकद्वकाः ॥ २०॥

भवन्ति ॥ ३० ॥
पूर्वचद्नुसमापनम्(४) ॥ ३१ ॥
भवति ॥ ३१ ॥

दार्षद्वतम्वात्वगाचार्ययोरम्यतरस्य गा रक्षे-

त्संबत्सरम् ॥ ३१ ॥

'दार्षद्वतम्' इति सवनामध्यम् । तत्र कर्मच्याख्यायते । ऋत्विगाः चार्ययोरन्यतरस्य गारक्षेत्संवत्सरं गवा रक्षणम् (५) ॥ ३२ ॥

अपरं व्यणें नैतन्धवेऽश्निमिन्धीत(६) ॥ ३३ ॥ अपरं संवत्सरं नैतन्धवप्रदेशे विगतोदकेऽग्नीन्धनं कुर्यात् ॥३३॥ (७)कुरुक्षेत्रे पारिणहि स्थलेऽग्न्याधेयमन्दारम्भणी-

यान्तं भवति ॥ ३८ ॥

(१) अथ तृतीयं सारस्वतमाह--

(२) यजनीययोरह्वोः गोआयुषोः स्थाने ।

(३) पौर्णमास्यमावास्ययोरन्तरालेषु श्रम्यात्रासे दर्शपूर्णमासयोः स्थाने त्रिकद्वकाः उमयोः पक्षयोर्भवन्ति ।

(४) अत्रापि निधिवृद्धिश्यवद्यात्त्रिकदुकेष्वसमाप्तेषु यजनीयकाळ आगच्छेत् तदा पूर्ववदनुसमापनं कर्तव्यम् । त्रिकदुकशेपेणात्तरपक्षे उप-क्रमः प्रारम्भः कार्य इति देवयाज्ञिकाः ।

(५) अर्**ण्ये तृषा**द्याशियतुं पालयेत्।

(६) अपरं द्वितोयं संवत्सरं व्यर्णं विगतोदके नैतन्घवे सरस्वत्यां वर्तमाने हुदे अग्नि लौककं काष्टादिमिरिन्धीत । सरस्वत्यास्तोरे नैत-न्धवा नामार्माः पुराणा प्रामाः सन्ति । तथा च मन्त्रान्तरम्—"येषामिमे पूर्वे अर्मास आसन्त्रयूपाः सक्षविभृताः पुरूणि" (द्राह्या० ३१-३) इति ।

(७) ततस्तृतीये संवत्सरे परीणन्नामस्थले अन्याधेयमन्त्रार-स्भणीयान्तं भवतीत्वर्थः । अन्वारम्भणीयान्तमिति । कुत पतत् ? इष्ट्यङ्गवादन्वारम्भणी-यायाः ॥ ३४ ॥

द्शेषूणेवासानतं या ॥ ३५ ॥

'वा' राब्दः पक्षत्र्यावृत्ती । दशेषूर्णमासान्तमेव भवति नान्यारम्भ णीयान्तम् । दशेषूर्णमासस्य होष्ट्यन्तरे प्रवृत्तिन्यार्थतेत ॥३५॥

भाहितारिनश्चेद्व्यणेंऽरिनहोत्रमेव जुहुयात्(१)॥३६॥ संवत्सरम्॥३६॥

पुरोडाशोऽरनये तेन यजमानः पूर्ववत्(२) ॥ ३७ ॥ तेन यागं कुर्वन पूर्ववच्छम्यात्राचे दवद्वनीतीरेण दक्षिणेन गच्छेत॥३०॥

एल च हपद्वतितिरेण॥ ३८॥

सहदेव ॥ ३८॥

(३) अवस्थमभ्यवयन्ति (४) वसुनां जिप्छचा-वहरणं प्रति ॥ ३९ ॥

त्रिष्ठक्षावहरणस्यार्जन्येन यमुनामवभृथमभ्युपैति ॥ ३९ ॥ तत्र च—

स्वयमेव सामगानम्(५) ॥ ४०॥ भवति ॥ ४०॥

(६) आप्लयनमात्रं वा ॥ ४१ ॥ भवति ,नावसृथः । 'वा' शब्दो विकलपार्थः ॥ ४१ ॥

- (१) पूर्वमेवचेत् इतश्रौताग्न्याधानः, तस्यान्यत्यागुक्तमग्नीन्धनं वार्यते गोरक्षण तु भवत्येवेति ।
- (२) अग्नयेऽप्राक्तवालः पुरोडाशः प्रत्यद्दं मवति, तेन पुरोडाशेने-त्यर्थः । 'पूर्ववत्' इति शम्याप्रासे २ वसन्यजमानः द्वषद्वत्या दक्षिणेन ती-रेणेत्येता चल्लभ्यते ।
 - (३) तस्या उत्पत्तिस्थानमागत्य।
- (४) यसुनां प्राप्य त्रिष्ठक्षावहरणे देशे अवभृथमभ्यवयन्ति । त्रिष्ठ-क्षाभिषे जनपदे यसुनायामवसृधं कुर्धन्तीत्यर्थः । तत्रेव हि देशे द्रषद्वती मनुष्येभ्यस्तिरोभवति, बहृदकापि सती तत्रैवान्तर्हिता भवतीत्यर्थः । अत्र दार्षद्वतावभृथे ।
 - (५) यजमानः करोति, प्रस्तोतुरमावात्।
 - (६) स्नानमात्रं भवति, नत्ववभृथेष्ट्यादिकं किञ्चित्।

उदेत्यैतयैवेष्ट्या (१)यजेत ॥ ४२ ॥ परिसमाप्य सत्रमेतयैवेष्ट्या यजेत ॥ ४२ ॥ पद्मना चा तद्देवतेन ॥ ४३ ॥ यजेत ॥ ४३ ॥

अग्निष्टोमेन वा॥ ४४॥

'यजेत' इति ॥ ४४ ॥

इति चतुर्विशेऽध्याये षष्ठी कण्डिका।

तुरायणं वैशाखीशुक्लस्य पश्चम्याम् ॥ १ ॥ 'तुरायणम्' इति सत्रनाम ॥ १ ॥

चैत्रस्य वा॥ २॥

शुक्कपञ्चम्यां भवति ॥ २ ॥

पातराहुत्यन्तेऽदीक्षितो दीचारूपाण्यासजते तृष्णीं कृष्णाजिनादीनि ॥ ३॥

रवयमेव ॥ ३॥

हवीएंषि निर्वपत्यारनेयमैन्द्रं वैद्यवदेवं चरु

सवनका लेष्वेकैकम्(२)॥ ४॥

कुत एतत् ? आग्नेयं प्रातस्सवनम् , ऐन्द्रं माध्यन्दिनम् , वैदवदेवं तृतीयसवनमित्यर्थवादात् ॥ ४॥

तन्त्रेण वा ॥ ५ ॥

'वा' शब्दः पक्षज्यावृत्तौ । तन्त्रेण वा करोति न सवनकालेषु । कृत पतत् ? कालेक्यात् । तस्मात् तन्त्रेणैव ॥ ५ ॥

ग्रन्बहम्(३)॥६॥

हवीशिष निर्वपति ॥ ६॥

वा हवि:दोषभचः(४)॥ ७॥

'वा' प्राकृताशनः ॥ ७ ॥

- (१) अवभृथादागस्य पतयैवाग्नेय्या इष्ट्या यजेत ।
- (२) प्रातमाध्यान्दनापराहणेषु एकैकं हविनिर्वपति।
- (३) प्रत्यहमेकैकं वा हविनर्वपति।
- (४) अत्र तुरायणे यजमानो हविःशेषभक्षो भवति । कर्तृत्वाविशे-षात्परस्यपि ।

संबत्सरं यजते(१)॥८॥

अत्राधस्तनसुत्रे वा शब्दमन्यथा वर्णयन्ति । संवत्सरं यजनीयेषु यागपरिसमासौ सत्यामन्वहं वेत्युच्यते । तत्रश्चावधारणेषा । संव त्सरशब्देन हि सर्वाण्यहानि गृह्यन्ते न यजनीयान्येव , तत्रैव प्रयोग दर्शनात् ॥ ८ ॥

अनियतोदकं दार्षद्वतवदवसृथादि(२)॥ ९॥ अनियतोदकोऽवसृथः कार्यः। आदिग्रहणाच्च "उदेत्यैतयैवे ष्ट्या यजेत"(का॰ थ्रौ० २४-६-४२) इत्येवमादि सम्यते ॥ ६॥

बादशाहाविकल्याः॥ १०॥

'व्याख्यायन्ते' इति सुत्रहोषः ॥ १०॥

सर्वाग्निष्टोमो भरतद्वादशाहः(३) ॥ ११ ॥ भरतद्वादशाहे सर्व प्रवाग्निष्टामा भवन्ति, प्रायणीयोदयनीयवर्जम्॥११॥ सङ्कमद्वादशाहे दशरात्रस्य ज्यहप्रथमानि प्रथमस्त्र्यः

हरूयहदितीयानि दितीयरूयहरूयहतृतीयानि तृतीयस्त्रयहः(४) ॥ १२ ॥

भवति ॥ १२ ॥

⁽१) पवमुक्तप्रकारेण संवत्सरं यजते वर्षपूर्तिपर्यन्तमेतत्प्रत्यहं करोतीत्यर्थः।

⁽२) "स्वयमेव सामगानम्" "आप्छवनमात्रं वा" "उदेत्यैतयै वेष्ट्या यजेत" (का० श्रो० २४-६-४०,४१,४२) इत्येतावदतिदिश्यते । तद्वदेव त्रिष्ठक्षावहरणं प्रति यमुनायां नियमेनावसृथे प्राप्ते 'अनियतो दकम्' इत्युच्यते । अत्रावभृथे उदकनियमो न भवतीत्यर्थः ।

⁽ ३) दशरात्रस्य स्थाने दशाष्यग्निष्टोमा भवन्ति आद्यन्तयोरतिरा-त्रावेव ।

⁽४) संक्रमद्वादशाहे द्वादशाहिकस्य दशरात्रस्य दशमवर्जितानि न-बाहानि त्रेषा विभन्न्य त्रयस्त्रयहाः कर्तव्याः। तेषां त्रयाणां व्यहाणां यानि प्रथमान्यहानि तैरत्र प्रथमस्त्रयहो भवति। तेन प्रथमे व्यहे पृष्ठयस्य प्रथमं चतुर्थं छन्दोमानां प्रथमं चेति सिद्धम्। यानि द्वितोयान्यहानि तैरत्र द्वितोयस्त्रयहो भवति। तेन पृष्ठयस्य द्वितीयं पञ्चमं छन्दोमानां द्वितीयं चेति सिद्धम्। यानि च तृतीयान्यहानि तैरत्र तृतीयस्त्रयहः। तेन पृष्ठ्यस्य तृतीयं षष्टं च छन्दोमानां तृतीयं चेति सिद्धम्।

प्रकृत्या दशमम्(१) ॥ १३ ॥

अविकृतक्ष्यमेव दशमं भवति ॥ १३ ॥ आग्निष्दुदिनद्रस्तुत्त्वर्यस्तुद्वैद्वदेवस्तुतां वैकैकेन(२) ॥ १४॥ दशरात्रस्य पुरणम् ॥ १४ ॥

(३)त्रिकहुकैर्घा ॥ १५ ॥ (४)अहीनैकाहानां वैकैकेन ॥ १६ ॥ असोर्घामराजसूयवर्जम्(५) ॥ १७ ॥ गोआयुभ्धी वा(६) ॥ १८ ॥

सर्व एवेते विकरणाः ॥ १८ ॥ अभ्यासानुषपत्तौ ज्योतिष्ठोमः पूरणः(७) ॥ १९ ॥ भवति । तचैतद्रणपक्ष एव सम्भवति नैकाहपक्षे ॥ १९ ॥ यथोत्तस्य स्तोत्र्य स्तोत्रियं वर्षे वा साम वा यजुर्वोऽहः

र्वान्यत्कृत्वा यजेत ॥ २० ॥

सर्वे चेते शास्त्रार्थप्रकाराः (८) ॥ २०॥

- (१) अविवाक्यमेवेत्यर्थः । अत्रातित्राह्यग्रहणाभावः षडहस्य वि-इतस्वात् ।
- (२) प्रवामेकैकेन दशरात्रपूरणम् । केवलेनाग्निष्टुता अथवा केवले नेन्द्रस्तुतोक्थ्येन अथवा सूर्यस्तुताक्थ्येन अथवा वैश्वदेवस्तुतोक्थ्येन् नेत्यर्थाः ।
 - (३) त्रिकदुकैर्वा समुदितैरेवास्यस्तैर्दशरात्रस्य पूरणम्।
- (४) अथवा अहोनैकाहानां वैकैकेन अहोनाश्च एकाहाश्च अहोने-काहाः तेषामहोनैकाहानां मध्ये एकैकेन द्यहादिना पौएडरीकान्तेनाभ्य स्तेन एकैकेन भ्रादिना एकाहेन दशकृत्वोऽभ्यस्तेन दशराह्यस्य पूरणम्।
- (५) एकाहानां मध्ये अक्षोर्यामेण राजस्याहोभिश्च दशरात्रस्य पूरणं न कर्तव्यमिति ।
- (६) आभ्यां मिलिताभ्यां पञ्चवारमावृत्ताभ्यां पक्षेकेन वा द्शराः त्रस्य पूरणं कर्तन्यमित्यर्थः।
- (७) यदा पृर्वोक्तैरहोमिरभ्यासो नोपपचते तदा ज्योतिष्टोमो दशः रात्रस्यावशिष्टानामहां पूरणो भवतीति बोध्यम् ।
- (=) अथ प्रकारान्तरेण द्वादशाहविकल्पा उच्यन्ते । यथोकस्य द्वादशाहस्य स्वोत्रमेकमन्यत्कुर्यात् । अथवा स्वोत्रं तदेव, केवलमेकां

व्यत्यासमन्ततः(१) ॥ २१ ॥ स्तोत्रियादीनां व्यत्यासेनाप्यन्ततो भवति ॥ २१ ॥ नास्त्येषामन्तः ॥ २२ ॥

एषां विकल्पानामन्त एव नास्ति दिङ्मात्रं प्रदर्शितमाचार्येण ॥१२॥ अयनमुत्सर्गिणां गवामयनविकल्पाः ॥ २३॥ गवामयनविकलपस्पमुत्सर्गिणां गवामयनमुज्यते(२)॥ २३॥ पश्चोक्थ्यां स्त्रीनिभिष्लवानुपेत्य चतुर्थे

चतुरुक्ध्यमुपयन्ति(३)॥ २४॥

इत्येको विकल्पः ॥ २४ ॥

(४)स्तोमात्सर्गो वैकस्याहः॥ २५॥ एकस्मिन्नहति स्तोम एव (५)वा न भवति॥ २५॥

पद्गोर्वा सवनविधिक्रिया(६) ॥ २६ ॥ ततस्र प्रातः सवन पव परिसमाप्यते पद्यः ॥ २६ ॥ अनारम्भो वा(७) ॥ २७ ॥

स्तोत्रियामृत्रमन्यां कुर्यात् । अथवा शस्त्रादौ एकामृत्रमन्यां कुर्यात् । अथवा एकं सामान्यात्कुर्यात् । अथवा प्रहष्रहणादावेकं यजुः प्रस्तुतादः न्यत्कुर्यात् । अथवा यथोक्तानामेकमहोऽन्यत्कुर्यात् ।

(१) अन्ततो दशरात्रस्यान्तिमे दशमेऽहिन न ततः प्राक् नवस्व-हःसु प्रागुक्तं स्तोत्रादीनां व्यत्यासं विपर्यासं कुर्यादित्यर्थः।

(२) उत्सर्गिणामयनमुच्यते । तत्र प्रथमं गवामयनविकल्पा अभि-

घीयन्ते इत्यर्थः।

(३) चतुर्थमभिष्ठवं चतुरुवश्यमुपयन्ति प्रकृतिवदेव (का० श्रौ० १३-२-१, ३) कुर्वन्ति । त्रिष्वभिष्ठवेष्वेकैकस्याद्वोऽग्निष्टोमत्वस्योत्सः गैजास्योत्सर्गिणामयनत्वम् ।

(४) पश्चान्तरमाह—

- (५) अथवा संवत्सरमध्ये एकस्याहः स्तोमोत्सर्गः त्रिविदादेर्वि हितस्य स्तोमस्योत्सर्गो भवति ।
- (६) अथवा पशोरेव सवनविधिना अनुष्ठानं भवति । अत्र पशुरेव केवलस्तस्मिश्वहनि न प्रहस्तोत्रशस्त्रादिकमित्यर्थः ।
- (७) अथवा पकस्य कस्यचिद्हः अनारम्भ पव अवरणमेव कर्तेभ्यम्।

पशोः ॥ २७ ॥

नापश्चितविकल्पः ॥ २८॥

'ब्याख्यायते'हति सुत्रशेषः ॥ २८ ॥

अयमेव प्रायणीयोऽतिरात्रः सर्वेः सत्रः स्वात्(१) ॥२९॥

यथोक्तपृष्ठः॥ ३०॥

(२)अथापरम् ॥ ३१ ॥

विकल्परूपम् ॥ ३१ ॥

ज्योतिष्टोमाश्चरवारोऽभिजित्तैः षण्मासान्(१) ॥१२॥ नवयः॥ २२॥

वतं वियुवतस्थाने(४) ॥ ३३ ॥

भवति ॥ ३३॥

विर्वाजिष्णोतिष्टोमाश्चत्वारस्तैरुत्तरान्(५) ॥३४॥ वण्मासाष्ठवेयः॥ ३४॥

एतत्पुरुषस्य नारायणस्योत्तममेतत्पुरुषस्य नारायणस्योत्तमम्(६) ॥ ३५ ॥ 'नारायणसत्रम्'दत्यस्य संज्ञा ॥ ३५ ॥

हति चतुर्विशेऽध्याये सप्तमी कण्डिका । इत्युपाध्यायकर्ककृतौ कात्यायनसूत्रभाष्ये

चतुर्विद्योऽध्यायः समाप्तः।

⁽१) अयं द्वादशाहिको ज्योतिष्टोमोऽतिरात्रः प्रायणीयसंज्ञक एव सर्वं सत्रं स्थात्। संवत्सरपर्यन्तमयमेव सर्वेषामन्हां स्थाने स्यादिश्यर्थः।

⁽२) अपरं विकल्पान्तरं तापश्चितस्याभिघीयते । (३) एतैः पवंविधैः पञ्चभिरहोभिः प्रतिमासं षड्वारमावृत्तैः पूर्वः पश्चषण्मासान्त्रयेत् ।

^(😮) सच्ये विषुचतः स्थाने महाव्रतम् ।

⁽ ५) तैरेवंविधैः पञ्चभिरहोभिः प्रतिमासं षड्वारमावृत्तैः विषु-वतः परान्षण्मासान्त्रयेत्।

⁽६) एतदुत्तममन्तिमं सत्रं 'नारायणपुरुषसत्रम्' इति ।

पञ्चविंशोऽध्यायः।

अध प्रायधिचानि अध्यर्थुवेदविद्वितान्युकानि साङ्गानि कर्माः णि, तत्समनन्तरमुद्रात्वेदविद्वितानि चे।कानि । इदानीं तेषामेव नैः मिचिकाङ्गव्याचिक्यायेदमाह—

कर्मोपपाते प्रायश्चित्तं (१)तत्कालम् ॥ १ ॥

कर्मण उपपातः कर्मोपपातः उपपातो विनाशो भ्रेष स्त्यनर्थान्तरम्। स च चतुःप्रकारो भवति । अकरणम्, न्यूनकरणम्, अतिरिक्तकरणम्, अयथाकरणं चेति । यद्वा-एक एव प्रकारः सर्वमेषेद्रमयथाकरणम्, य- येतद्विद्दितं तथा न भवतीति । प्रायश्चित्तामिति नीमित्तकस्य संज्ञा । तच तत्काले पव भवति यश्मिनकाल उपपातः । कुत पतत् ? 'भिन्ने जुद्दोति' 'इति निमित्तस्यमीयं, नाधिकरणसम्येषा । अधिकरणसप्तम्यमाहवनीयापवाद्यसङ्गात् । नैमित्तिकस्य च निमित्तकालता न्याय्येति ॥ १॥

एवं प्राप्त आह—

चोदना वाऽकालशब्दात्॥ २॥

'धा' शब्दः पक्षव्यावृत्ती । नैमिलिकस्य चोदनामात्रमेवैतत् न तः त्काळता । कुत पतत् ? अकाळशब्दात् । न हात्र काळप्रतिपाद्कः शः ब्दोऽस्ति । तेनागन्तुत्वात् अन्ते निवेशः प्राप्नोति ॥ २॥

एवं प्राप्त उच्यते—

कालो चा प्रत्ययात् ॥ ३॥

तत्कालतेव नैमिन्तिकस्य स्यात् । प्रतीयते हि निमिशकालता नैमि-निकस्य । प्राक् ताविक्षमित्ताक्षैमिनिकं न भवति । निमित्त उपजाते नै-मिन्तिकं भवति । तेन तत्कालताऽस्य । तस्मात्साधृकं 'कर्मोपपाते प्राय-श्चिशं तत्कालम्' इति । कर्मग्रहणाच्च पुरुषसम्बन्धित्युपपते तत्काल-ता न भवति । यथा 'गेहदाहेऽग्नयं क्षामवत' इति ॥ ३ ॥

(१) प्रायो विनाशः विष्यतिक्रमजनितो दोषः । चिती संज्ञाने इत्य-स्य धातोश्चित्तम् अनेकार्थस्वाद्धातोः सन्धानं चित्तमित्युच्यते । प्रायस्य चित्तं प्रायश्चित्तम् विनष्टस्य कर्मणः सन्धानमित्यर्थः। "प्रायस्य चित्तिः चित्तयोः" इति पारस्करादिगणपठितलक्षणात् सुडागमः । कर्मविनाः शकाल एव कालो यस्य तत्तस्कालम् ।

महान्याहृतिहोमोऽनादेशे॥ ४॥

'मृभुंवः स्वः' इत्येता महाव्याहृतयोऽध्येतृप्रसिद्धाः, तामिहाँमः कर्त्तव्यः । यत्र निमित्तमुपाद्दय नैमित्तिकस्यानादेशः मत्र भवति । यत्र पुनर्निमित्तोद्देशेन नैमित्तिकादेशस्तत्र तदेव । यथा-"प्रणीता स्कन्ता आभिमृशेत्" (का० श्रौ० २५-५-२८) इति । तत्र महाव्याहृतिहामो न भवति । 'अनादेशे' इत्युक्तत्वात् ॥ ४ ॥

व्याहतिहामे विशेषार्थामदमाह—

हौत्रिके भूरिति गाईपत्ये ॥ ५ ॥

होत्रिक उपपाते 'मृः'(१) इति गाईपत्ये जुहोति । होत्रिकं चार्ग्वे-दिकमुच्यते॥ ५॥

दक्षिणाग्नावाध्वर्यवे सुब इति ॥ ६ ॥ अध्वर्युवेदविद्वितोपपाते दक्षिणाम्नौ 'सुवः'(२) इति जुहोति ॥६॥ आग्नीभ्रोये सोसे ॥ ७ ॥

सोमे वर्त्तमाने आध्वयंनोपपाते आग्नांश्रीये जुहोति । प्रागाः ग्नीश्रीयोत्पत्तेः दक्षिणाग्रावेव हूयते । यतो न हीयमाहुतिराग्नीश्रीयं प्रयोजयति स्वकालत्वाद् । अस्यास्य नैमित्तिकत्वात् ॥ ७ ॥

स्वारित्यौद्गान्न आह्वनीये॥८॥

उद्गात्वेदावाहत मेष 'स्वः'(३) इत्याहवनीय जुहाति। (४)('यघृकी भृः इति चतुगृहीनमाज्यं गृहीत्वा गाईपत्ये जुहवध' इति उपक्रमयेषं श्रूयत इति। अत्र च ऋगादिग्रहणं वेदोपलक्षणार्थम् । उपक्रमोपसंहारः योर्हि वेदाः श्रूयत्ते। उपक्रमे तावत्-"त्रयो वेदा अजायन्तामेक्तंवेदो वाः योर्थजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः स इमांस्त्रीत्वेदानभितताप तेभ्यस्त्रोभ्यस्त्रीः णि शुकाण्यजायन्त भृः" इत्येचमादीनि। तथोपसंहारे-"तत ऋग्वेदनैवाः

⁽१) अत्र 'स्वाहा' इत्यध्याहारः ''स्वाहाकारः सर्वत्र साकाङ्क्ष-त्वात्'' (का० श्रौ० ४-४-१५) इत्युक्तेः । अत्राग्नित्वेतता । अयमनादिः उ ष्टहोमो यत्र कर्मण ब्रह्मा भवति तत्र ब्रह्मणा कर्तव्यः । ब्रह्मवरणास्त्राक् निमित्ते जाते व्याहतिहोमार्थं ब्रह्मणो वरणं समन्त्रकं कृत्वा तेन होमः कार्यातव्यः । यत्र ब्रह्मा न भवति अग्निहोत्रादौ, तत्र तत्कत्रैंव कार्यः । सोमे च काळाहतिमिरस्य समुख्य इति देवयाज्ञिकः ।

⁽२) अत्र वायुर्वेदता। (३) अत्र सूर्यो देवता।

⁽ ४) कंसान्तगतो ब्रम्धा मुद्रितपुस्तके इचिन्नास्ति।

र्वेदं भिषज्यति यजुर्वेदेन यजुर्वेदम्" इत्येवमादि । तस्मादगादिग्रहणं वेदोपलक्षणार्थम् । एवं द्येकवाक्यता भवति) ॥ = ॥

चतुर्शहीतान्येतानि सर्वेत्र ॥ ९ ॥

(१)(सर्वत्र प्रहणमविज्ञाते प्रतिमहाव्याहतीत्येवमर्थम् । अथवा 'स-वंत्र'प्रहणात् यत्र यत्र चतुर्गृहीतश्रुतिरास्ति तत्र सर्वत्र चतुर्गृहीतानि भवेयुः । यथा 'अनुभृताभ्यस्तमयः' इत्येवमादीनि) ॥ ९ ॥

सर्वप्रायश्चित्तं च पश्चभिः प्रत्यृचम्(२) ॥ १० ॥ 'सर्वप्रायश्चित्तम्' इति संज्ञा संज्यवहारायाँ ॥ १० ॥ तदाह—

(३)त्वको अग्न इति हाभ्यामयाश्चाग्नेऽस्यनाभिशस्तिः पाश्च सत्त्वमित्त्वमयाऽआसि अया नो यज्ञँवहास्यया नो घेहि भेषज्ञः स्वाहा, ये ते शतं वहण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः तेभिनों ऽअद्य सवितोत विष्णुः विद्वे सुश्चन्तुं महतः स्वर्ताः स्वाहोद्वत्तमामिति च ॥११॥

अत्र द्वयोमन्त्रयोः परशाखीयत्वात्पाटः । एतत् सर्वप्रायश्चित्तं 'च' शन्दात्सर्वत्र भवति । स्यांस्तु विशेषः—सङ्द्युद्दीतेनेति ॥ ११ ॥ (४)आविज्ञाते प्रतिमहाच्याहृति सर्वाभिश्चतुर्थम्॥ १२ ॥

अविश्वातं स्मार्चमिभिधीयते । न हि तज्श्वायते किमार्ग्वेदिकं याजुर्ने-दिकं सामवैदिकमिति । अथ च दढं स्मरणं 'शुचिना कर्म कर्त्ववम्' 'यश्चोपवीतिना कर्त्तव्यम्' 'बद्धशिखेन' इत्येवमादि च । तदुपपाते तद-पचारे प्रतिमहाव्याहृति दुत्वा सर्वामिश्चतुर्थं होमं करोति(१)॥ १२॥

⁽१) कंसान्तर्गता ग्रन्थः क्वचिरपुस्तके नास्ति ।

⁽२) व्याहतिहोमानन्तरं वश्यमाणाभिः पञ्चभिर्ऋग्निः प्रत्यृचं स-र्वप्रायश्चित्तमाहवनीये जुहोति ।

⁽३) "स्व क्षो ऽअग्ने॰" "स स्व क्षो ऽअग्ने॰" (बा॰ सं॰ २१–३, ४) "अयाश्चाग्ने॰" "ये ते शतं॰" इति मन्त्रद्वयौ परशाखोयौ । "उदुत्तः मम्॰" (वा॰ सं॰ १२–१२) एतः सर्वप्रायश्चिर जुहोति ।

⁽ ४) अविज्ञातवेदविशेषमुळे स्मृतिविहितस्य क 'व्यो विनाशे।

⁽५) 'मृभुवः स्वः स्वाहा' इति ।

सर्वप्रायाश्चित्तं च(१)॥ १३॥

अत्र भवति ॥ १३ ॥

अग्निहोत्री चेद्दुहानोपविशेचजुबात्थापनमेक उ-द्स्थादेव्यदितिरायुर्वज्ञपतावधादिन्द्राय क्रुण्वती आगं मित्राय वरुणाय चति॥ १४॥

अग्निहोत्रशब्देन तत्साधनभूतं द्रव्यमुच्यते । तद्द्रवं यस्यां वि द्यते स्वयमाग्निहोत्रिणी मन्वर्थीयलोपेन अग्निहोत्रीत्युक्तं सा चेद्दुह्यमा नोपविशेत् तामेके यज्जपोत्थापयन्त्युदस्थादिति (२) ॥ १४ ॥

दुग्ध्वा ब्राह्मणायेनां द्यायमनभ्यागामिष्यः

न्त्स्यात् (३)॥१५॥

यं प्रत्यनभ्यागिष्यन्मन्येत यज्ञमान इति ॥ १५ ॥ दण्डेन वासुपिष्योत्थाष्य दोहनम् ॥ १६ ॥ 'वा'शब्दो विकदपार्थः ॥ १६ ॥ अदानं च ॥ १७ ॥

तस्मिन्पक्षे ॥ १७ ॥

अदुह्।नायामन्याम् ॥ १८॥

प्राप्तमेवेद्मुच्यते प्रायश्चित्तव्युदासार्थम् ॥ १८ ॥

वाइयेत चेत्तृणान्यालुप्य ग्रास्येत्सूयवसाद्भगः वति हि सुवा अधो वयं भगवन्तः स्याम अद्धि तृणमः दन्ये विश्वदानीं पिष शुद्धसुदक्षमाचरन्तीति॥ १९॥

⁽१) अत्र विप्रतिपत्तिः । 'भूः' इति गाईपत्ये, 'भुवः' इति दक्षिणाग्नौ, 'स्वः' इत्याहवनीये, 'भूभुंबः स्वः' इति सर्वप्रायश्चित्तं चेत्याहवनीये
यात्त्रिकवासुदेवभट्टाश्च । 'भूः' इत्याद्याहुतिनवकमप्याहवनीय एवेति
सम्प्रदायकारिकाकारौ । महापितृयक्षे दक्षिणाग्नौ अवभृथे वाण्स्वेव
द्यातद्वियं परिश्रिस्सु ज्यम्बकासु चतुष्पथाग्नौ ।

⁽२) "तदाहुः। यस्याग्निहोत्री दोह्यमानोपविशेरिक तत्र कर्म का प्राथिश्विचिरिति तार्ण हैके यञ्जकोस्थापयन्त्युदस्थाद्वेच्यदितिरितिः" (शः ब्रा० १२-४-१-९) इत्यादिश्रुतेः।

⁽३) तत्र मतभेदः। यः पुनर्गृहे नागच्छतीति कारिकाकारः। यस्य गृहे कार्यार्थमपि गमिष्यन्यजमानो न भवतीति यात्रिकाः धूर्तस्वामिनश्च।

अनेन मन्त्रेण। "यस्याग्निहोत्री दोह्यमाना वाद्येत" इत्युपकस्य "स्त-स्वमाच्छिद्य प्रास्त्येत्" (शञ्जा०१२-४-१-२२) इति श्रुतेः॥ १९ ॥

इति पञ्चविद्येऽध्याये प्रथमा कार्यज्ञा।

तस्यै पयसा जुहोति ॥ १ ॥ षष्टवर्थे चतुर्थी तस्याः पयसा जुहोतीति ॥ १ ॥ छोहितदोहे दिचणाग्निं परिश्चित्य द्युत्क्रामतेत्यु-क्तबोद्यो भस्मिनि रुद्राय हुत्वा पुर्ववद्दानम् ॥ २ ॥

छोहितदोहे दक्षिणाग्नेः परिश्रयणम् । (१) व्युत्कामते दिति च प्रैषः । दक्षिणाग्नेरेव उच्ने भस्मनि 'रुद्राय स्वाहा' इति हत्वा पूर्ववद्दानं यमनः स्यागमिष्यन्मन्येत तस्मै । मेक्षणकरणं श्रपणं च नोपनिवद्धमाचार्येण । इह च द्रव्यप्रतिपाचिरियम् । होमिकिया द्रव्यार्था नापूर्वोत्पत्यर्था ते नात्रोतिकर्त्तव्यता न भवति । कर्त्वव्यस्य हीतिकर्त्तव्यतापेक्षा मबीत । न चात्राप्रवेस्य कर्त्तव्यता । होमो हात्र द्रव्यार्थः । अतो दोहनपात्रेणैव समस्ते तद्रव्यं भस्मनि प्रक्षिप्यत इति ॥ २ ॥

हौम्यक्षवि सद्रौद्रसुपसृष्टं वायव्यं दुद्यमानमाश्विनं दुग्धः सौम्यमधिश्चितं वारुणसुद्ग्तं पौदणं (२)वि-द्यन्द्मानं मारुतं विन्दुम्हसारस्वतः शान्तं मैत्रसुद्धाः स्यमानः स्वितुरुद्धासितमदितेरुन्नं।यमानं वैश्वदेवसुन्नीतं वार्हस्पत्यं प्रहियमाणं घात्रं प्रहृतं वैश्वकर्मणम् नत्राश्ची वैश्वानरायोपसन्नं द्यावाष्ट्राधिव्योः पूर्वाहुति-रिन्द्राग्न्योरुत्तरा प्रजापतेर्हुतभैन्द्रम् ॥ ३॥

तद्धौम्यं होमद्रव्यं गवि स्थितं सद्दुष्यति चेत् रुद्रदेवत्यं भवति । पवमुपरिष्टाद्पि तस्मिन्तस्मिन्काले देवतासम्बन्धात्तद्दैवतमुच्यते। वश्य-ति हि 'यथाकालोपपाते तद्देवते तद्दैवत्यु हुत्वा' इति । तादर्थात् । गवि

⁽१) "तदाहुः। यस्याग्निहोत्री लोहितं दुहीत कि तत्र कर्म का प्रायश्चित्तिरिति च्युत्कामतेत्युक्ता मेक्षण हत्वान्वाहार्यपचनं परिश्रयि-तवे ब्रूयात्०" (श० ब्रा० १२-४-१-१) इत्यादिश्चतेः।

⁽२) 'विष्पन्दमानम्' इ० पा०।

स्थितस्य च ऋषमाक्रमणादिना दोषः(१)। उपसृष्टं वायव्यम् वरसोप-सर्गकाले वायव्यं भवति ॥ ३॥

यथाकालोपपाते तद्देवते तद्देवत् हुत्वा

तद्रातिदिश्यान्येन जुहुवात् ॥ ४॥

यस्मिन्यस्मिन्काले उपपातस्तहेवत्यं होमं क्वत्वा ततुहेशेन वाति-दिश्यान्येन जुहुयात्॥ ४॥

(२)स्कन्देचेद्स्कन्नचित प्राजनीत्याभिमृइय देाषेण जुद्धपात् ॥ ५ ॥

"थय यत्र स्कन्ना स्यात्त्वसिमृशेदस्कन्नधित प्राजनीति" (श० बा० १२-४-१-७) इति श्वतः ॥ ५ ॥

(३)भिचेत चेदवापचेत स्कन्नप्रायश्चित्तेनाभिः मृश्य व्याहतिभिश्चाद्भिष्णांननीय कपाः

लानि भस्मोद्वापे क्रुयात् ॥ ६ ॥

यधु नीची स्थाली स्थाचि वा मिद्यत स्कन्नप्रायश्चित्तेनैवाभिमृह्य ब्याहृतिभिश्चाद्भिरुपनिनीय कपालानि भरमोद्वापे करोति । यदि भिन्ना स्थाली अन्येन च द्रव्येण होमाभिनिर्शृतिः॥ ६॥

सुवपतय इति हावियेश्चियम्(४) ॥ ७ ॥ स्कन्नमभिमृशेत्॥ ७॥

(१) दुद्यमानप्रभृतिद्वतपर्यन्तस्य अमेष्य-मल, केश, कीटादिपा-तादिना दुष्टता।

(२) तद्गिनहोत्रार्थं पयश्चेत्स्कन्देत्स्थालोतो बहिर्गच्छेत् भूमौ अन्यत्र वा पतेत् ।

(३) "यदि वा भिद्येत स्कन्नप्रायश्चित्तेनैवाभिमृश्याद्भिरुप्तिनीय यदम्यद्विनदेत्तेन जुहुयात्" (श्रव्धाव १२-४-१-६) इति श्रुतेः । भिद्येत विदोर्येत अथवा अवापद्येत अधोमुखीभवेत् । भस्योद्वापशब्देन गाईप्रस्यादिखरेभ्यो भस्मोद्धस्य यो राशिः क्षियते स उच्यते ।

(४) हविर्यन्नशब्देन दर्शपूर्णमासौ तदिकाराश्च । तत्सम्बन्धि हा-विर्यन्नियं वरपुरोडाशाज्यसानायमांसादि । सोमे हावियंन्निये स्कन्ने इदमेव प्रायश्चित्तम् तत्र "भुवपतये स्वाहा" (बा० सं० २-२) इत्य-मिमर्शनात्पृष्वं कासान्नुतिवाचने अधिके । देवान्दिवमगन्निति सोमे(१) ॥ ८॥ सोमे दावियंश्वियं स्कन्नं "देवान्दिवमगन्ठ" (बार्ट्संट द-६०) इत्यनेन मन्त्रेण अभिमृशेत्॥ ८॥

(२) पयोरोजसिति बोदकेनोपसिञ्चेत् ॥ ९ ॥ सोम एव हावियेशियं (३)स्कन्नम् । 'वा' शन्दो विकल्पार्थः ॥ ९ ॥ उन्नीतसर्थस्कन्दनस्रुगेदयोस्तन्नैवासनम् ॥ १० ॥

"यस्याञ्जिहोत्रः स्वच्युक्षीतः स्कन्देत्" (श० ब्रा० १२-४-२-६) इति प्रकृत्यैवमेव हि श्रूयते ॥ १० ॥

अन्यदुर्फ्रीयान्योऽस्मै (४)प्रयच्छेत्तेन होमः॥ ११॥ अन्यस्मिन्तुर्फ्रीयमाने वैषो न भवति। "तददो हैवेक्षेत्यामीत्युक्तं भवति" (द्या० बा० १२-४-२-८) हति श्रुतेः॥ ११॥

हति पञ्चविशेऽध्याये हितीया कण्डिका।

पूर्वाहुतौ हुतायां चेदाहचनीयोऽनुगच्छेत्तदुक्तम्(५)॥१॥ तदुक्तप्रहणं न्यायप्राप्तोद्धरणप्रश्चलययम्। प्राप्तत्वादेवावादयामिति चेत्, उत्तरविधानेन सह विकल्पार्थत्वादित्यदोषः॥१॥

(६)काष्ट्रा दिरण्यं वाभिजुहुयाच्छूतेः॥ २

(१) सोमे रलक्षे सोमद्रव्ये स्कन्ने स्कन्नस्य सोमस्यामिमर्शनं कर्तव्यम्। अत्रापि कालाहुतिवाचने भवतः।

(२) यस्मिनप्रदेशे स्नृग्भिन्ना सर्वस्कन्दनं वा जातं तत्रैवोपवेशनं कुर्यात् । ततः स्कन्नस्य "अस्कन्नघित" "ययोरोजसा" (वा॰ सं० ५-५९) इति मन्त्राभ्यामभिमर्शनम् उदकोपसेचनं च ।

(३) स्कन ं सोमम्। अत्रापि पूर्वं कालाहुतिहोमो बाचनं च।

(४) अन्यो होमकर्तुरन्यः कश्चिरसर्वस्कन्दने तस्यामेव स्नुचि स्रग्मेदे चान्यस्यां प्रतपनादिसंस्कृतायां स्थाल्याः सकाशादुन्नीयोस्नयनं कृत्वा अस्मे होमकर्षे सर्वस्कन्दनभेदनस्थाने उपविष्ठाय प्रयच्छेत्।

(५) "तदाहुः यस्याहवनीय उद्दघृतः पुराग्निह्वोत्रादनुगच्छेत्०" (श॰ ब्रा० १२-४-३-२) इत्यादि श्रतेः ।

(६) अग्निस्थाने कार्छ निघाय होमे क्रियम।णे यदि यजमानस्य हदयविलेखो भवति अविश्वासोऽपरित वो वा भवति तदा। काष्ठं निधायाभिजुहुयात् हिरण्यं वेति विकल्पः। श्रुतिग्रहणं हृदः यविलेखप्रक्षसत्वर्थम्। तथा च श्रुतिः-"यद्यअस्य हृद्यं व्येव लिखेडिरः ण्यमभिजुहुयात् (द्या० ब्रा० १२-४-३-१) इति ॥ २॥

त्रिरुत्धृतश्चेदाहवनीयोऽनुगच्छेदुदक्स्थानान्युपिलः एय निर्मध्य सकृदुद्धृते तस्मिन्तसायम्यातहाँममेके॥३॥

त्रिरुद्धृताहवनीयानुगमने उद्दोच्यां दिशि अग्निस्थानान्युपाछिष्य त्रिमंन्थनोपदेशाद्गाईपत्ये समारोह्य निर्मध्य सक्रुद्धृते तस्मिन्नेव वि हारे पके साथं प्रातहींमिमच्छन्ति। एके शतक्रत्वोप्युद्धरन्ति॥३॥ गार्ह्सपत्येऽनुगते अस्मनाऽरणी स्वृह्म्य मन्धनम्॥४॥

अग्निहोत्रकाल एतज्ञेमिचिकमिति सम्प्रदायः । तथा चोपरितनाः न्यपि नैमिचिकानि तद्विषयाण्येव दृश्यन्ते । येनेदमाह्-"पूर्वेमुपशमध्य पूर्वेवद्योमः" (का॰ श्रौ० २५-३-९) इति । होमग्रहणाद्यिहेत्रविषयता गम्यते । अपरे तु सर्वविषयं मन्यन्ते(१) ॥ ४॥

आहवनीयजागरणे वा तत एवोद्धरणम्(२)॥ ५॥

आहवनीयजागरणे गार्हपत्यानुगमने तत पत्राहवनीयोद्धरणं श्रेषश्च गार्हपत्यकार्ये । तस्मिन्पक्षे दक्षिणाश्चः प्राङ्नयनं कर्तव्यम् ॥ ५ ॥

आहृत्य वा (३) ॥ ५ ॥

गाहेपत्यस्थानमाहवनीयम्। पुनरुद्धरणम्। ज्ञेषश्च गार्हपत्यः ॥६॥ उल्पराज्यागताद्वा ॥ ७ ॥

उरुपराजी तृणवर्षिके।च्यते । तथा वा अवलन्या गाईपसम्थान मागतात् पुनरुद्धरणं भवति ॥ ७॥

निर्मध्य(४)वा ॥ ८॥

- (१) अग्निहोत्रे विहारकाळे गाईपत्यानुगमनप्तद्भवतीति कर्कः सम्प्रदायकारौ अन्ये तु सर्वदैवैतद्भवतोत्याहः।
- (२) इतः प्रभृति अग्निहोत्रहोमविषयाण्येव नैमित्तिकान्यभिधी-यन्ते। यः प्रागृद्धृतः स आहवनीयः प्रश्चाहवनीयस्थाने अविष्णः स गार्हपस्यः। पूर्वोद्धृत एव दक्षिणाग्निराहृत्य वितृतीये स्याप्यः। एवं कत्वाग्निहोत्रं होतव्यम्। होमान्ते गार्हपत्यस्य मन्धनं कार्यमिति दे वयाज्ञिकाः।
 - (३) अत्रापि पक्षे होमान्ते गाईपत्यश्य मन्थनं कार्यम्।
- (४) अथवा गांपत्यं निर्मध्य तत उद्धरणम्। न चास्मिन्पक्षे होमान्ते मन्थनम्। कृतत्त्रात् इति देवयाहिकाः।

"अथ हैकेऽन्यं गाईपत्यं मन्थन्ति" (दा० बा० १२-४-३-८) इति श्रुतेः । अस्मिश्च पक्षे न्यायवासमैवैतदिति नैमिन्तिकं सवति । प्राप्तस्य चोपादानमितरैः सह विकल्पार्थम् ॥ ८ ॥

समारोह्यासमारोह्य वा पूर्वसुपदामयय पूर्व-बद्धोमः(१) ॥ ९ ॥

समारोह्य पूर्ववदुदक्स्थानान्युपछिण्य निर्मय्य सक्रदुद्धृते सायं भातहोमः। असमारोह्य पूर्वस्थोपक्षमनं कृत्वा निर्मय्योद्धृत्यात्रेव होमः। पवं हि श्रूयते-"अय हैकेऽनुगमय्यान्यं मन्थन्ति" "अरण्योरग्नी समा-रोह्य" (रा० ब्रा० १२-४-३-९,१०) हति च ॥ ९॥

बिराहृतो दक्षिणाग्निरतुगच्छेच्चेद-नाहरणमस्य तदहरेके॥ १०॥

्र पके शतकृत्वोष्युद्धरस्ति । अमाहरणपक्षे च तदर्थत्वात् तत्स्वाध्यः कर्मछोपः ॥ १० ॥

जाग्रतमाहवनीयमभ्युद्धरेचेलदुक्तम्(२) ॥११॥ 'तदुक्तम्' इति ब्रहणमुत्तरविवक्षार्थम् ॥ ११ ॥ पश्चान्निषाय पुरस्ताद्वोभयत्र होममेके ॥ १२॥

(३)पश्चादाहवनीयस्य स्थापयित्वा पुरस्ताद्वा तमग्निमुभयत्र हो। ममेके कुर्वन्ति । एके तदुक्तं गाहंपत्योऽसाविति । उभयत्र च होमपक्षे चतुर्गृहीतेन हुत्वेकास्मिन्नभ्रो पुनश्चतुर्गृहीतेन द्वितीये जुहति एके । शे-

⁽१) तत्र असमारोहापक्षे पूर्वमाहवनीयमुगशान्तं कृत्वा गार्हपत्यं स्वस्थान एव संस्थाण्य स्वस्थान एव च आहवनीयमुद्धात्य तजैवाग्नि-होत्रहोमः कार्यः। दक्षिणाग्निश्च पूर्वीद्धात एव। समारोहापक्षे तु आह-वनीयं समारोहा पूर्ववद्योमः। दक्षिणाग्निः तत्र पूर्वीद्धत एव नीयते।

⁽१) अनुपशान्तस्यैवाहवनीयस्य भ्रान्त्या गाहपत्यादभ्युद्धरणं चेत्तदा तदुकं प्रायश्चित्तमाध्वयंवमेव कर्तव्यम् , अन्यस्यानुकत्वात् । एवं च आध्वयंवं पूर्वः हृत्वा भ्रान्त्योद्दभृतस्य गाईपत्यमध्ये पश्चात्यः क्षेपः कर्तव्यः।

⁽३) तं भ्रान्त्योद्घृतं स्थापनात्त्राकातं पश्चान्निधाय पूर्वोद्घृ-तस्याहवनीयस्य अपरस्मिन्देशे स्थापयित्वा पुरस्तात्पृष्ठदेशे वा निधाय उभयत्राग्निद्वये होमं कुर्वन्त्येके । एके गार्हपत्यमध्ये पश्चात्प्रक्षेपं कुर्वन्तीति ।

षमक्षादि तन्त्रेण । अन्ये त्वेतकेच्छन्ति । साध्यो होमः साधनमिः न च साधनमेदात्साध्यमेदो युक्तः । तेनान्यथा वर्णयन्ति । एकेव समिन् साधनमेदात्साध्यमेदो युक्तः । तेनान्यथा वर्णयन्ति । एकेव समिन् सातवती अग्निद्वयेऽण्युपधीयते । तत्र प्रक्षिप्तं होमद्वयमग्निद्वयेऽण्युपधियते । तत्र प्रक्षिपं होमद्वयमग्निद्वयेऽण्युपधियते । एवमुमयत्र होमः कृतो भवति इति सम्प्रदायः । युक्तकप्रमिष चैतत्, न हि साधनापेक्षया साध्यावृत्तिर्युक्तेति ॥ १२ ॥

अभिनिधानेऽग्रयेऽग्निमते पुरोडाद्याः॥ १३ ॥

यदि पुनरुद्धृतोऽभिरग्नाविभिनिहित एव भवति तदान्नयेऽभिमते पुरोदाशः(१) कार्यः॥ १३॥

(२)समितमिति वोपस्थानं हाभ्याम् ॥ १४ ॥ षाशको विकल्पार्थः॥ १४॥

गृहीतानुगमने चान्वग्निहित्याहृत्य ॥ १५ ॥

"ममाग्न" (का॰ औ॰ २-१-३) इत्याँग्न गुण्हातीति गृहीतस्यानुगः मने पतदेव प्रायश्चित्तद्वयं विकरूपेन भवति। "अन्वाग्नः" (वा॰ सं॰ ११-१७) इत्यनेन मन्त्रेण आहृत्य पूर्वतरम् ॥ १५॥

अनादेशे पुरोडाशः सर्वत्र ॥ १६॥

वस्यत्युपरिष्ठात् "अग्नये च सूर्यवते" "सूर्याय च ज्योतिष्मते" (का॰ श्रौ॰ २५-६-१८, २१) इति । तत्र पुरोडाशो भवति । एतज्यो-कमाचार्येण-'यत्र वेदवाक्ये द्रव्यस्य न विधानं तद्विषयम्' इति । इतः रथाग्नयेऽग्निमते पुरोडाश इत्यवाच्यं स्यात् ॥ १६ ॥

अनुत्धृताभ्यस्तमये कुशवडे हिरण्ये (३)पश्चाद्धिः

यमाण इध्मेनोद्धरेदार्षयो ब्राह्मणः॥ १७॥

"यस्याद्वनीयमनुद्धृतमादित्योऽभ्यस्तमियात्" (श॰ ब्रा० १२-४-४-६) इति प्रकृत्य सर्वमेतच्छूयते । प्रैषवचनं तुनोपनिबद्धमाचार्येण ॥१७॥

वैष्णव्याहुतिः॥ १८॥

⁽१) भ्रान्त्या स्थापने इते प्रायश्चित्तार्थमिष्टिः, इष्टेरनन्तरमग्निहो-त्रहोमः कर्तव्यः।

^{े (}२) वित्तकालाद्यमावेनेष्टि कर्तुमशक्तस्य हद्विलेखरहितस्य वाभि निधाने प्रायम्बिकान्तरम्—

[े] तयोष्ठमयोरम्योः "समितम्०" "सं वाम्०" (वा० सं०१२–५७, ५८) इति मन्त्राभ्यामुषस्थानं कार्यम् ।

⁽३) गार्हपत्यस्यापरस्मिन्त्रदेशे ऽन्येन केनचिद्धित्रयमाणे इत्यर्थः।

पञ्जविशे प्रायश्चित्तानां निरूपणाध्याये तृतीवा कण्डिका । ३७१

तत्र देयेति॥ १ =॥

अग्रवे च सूर्ववते ॥ १९ ॥

पुरोडाशः(१)॥ १९॥

अभ्युद्धे रजतघारणं पुरस्तात् (२)वैद्ववदेव्याहुतिः ॥२०॥ स्रयीय च ज्योतिष्मते ॥ २१॥

पुरोडाद्याः ॥ २१ ॥

समानमुद्ररणम् ॥ २२॥

'इध्मेनोक्दरेवार्चयो ब्राह्मण' इति ॥ २२ ॥

वैइवदेवी वोभयत्रापुरोडाञा ॥ २३ ॥

उमयत्र वा वैश्वदेष्याहुतिभवत्यपुरोडाशा चतुर्गृहीतेन ॥ २३ ॥

उभवानुगमने पुनराधेयं ना ॥ २४ ॥

उभयोरनुगतयोः गाईपत्याहवनीययोर्थचभ्यस्तमयो भवत्यभ्युद्रयो वा तदा पुनराधेयं वा भवति, न्यायप्राप्तमग्न्याधेयं वा । को न्याय इति चेत् ? "बभावग्नी युगपदुत्पाचौ युगपदुत्पत्तिश्चाग्न्याधेयेन भवति", यद्येवं 'पुनराधेयं वा' इति कुत एतत् ? वाक्यात् । 'यस्योभावग्नी अनुगताविभिनिम्लोचेदभ्युदियाद्वा सूर्यः पुनराधेयमेव तत्र प्रावश्चिः चिः'। एवं चेत् पुनराधेयमेव भवति नाग्न्याधेयम् इति । न हि न्याः यो वाक्येन विकत्प्यते । एतञ्चानुगतपरिज्ञानोत्तरकालं यद्यभिनिम्लोः चनं भवति तदैव, न अभिनिम्लोचनोत्तरकालमनुगमनपरिक्षाने ॥२४॥

भेदेनाच्युपपातात्॥ २५॥

मेदेनाप्यनुगमामिनिम्लोचने भवत्येव पुनराधेयम् । कुत एतत् ? उपपातात् । उपपातो हि भवति अग्न्यनुगमनेऽभिनिम्लोचनम् । तद्यपुन् भयश्रदेन विशिष्यते सता वाक्यं भिष्येत । तस्माद्धेदेनाप्यनुगतयोः पुनराधेयमिति ॥ २५ ॥

एवं प्राप्त आह—

न सह प्रक्लिसेः ॥ २६ ॥

नैतदेवमन्यतरानुगमने पुनराधेयम् (३) । सहैच हि प्रकारिपता गाः

- (१) दक्षिणाग्निमुद्धृत्य इष्टयन्ते तद्विहार एवाग्निहोत्र होतव्यम् ।
- (२) आहवनीयखरात्पूर्वस्यां दिशि ।
- (३) पुनराघेयसमाप्यमन्तरं चास्मिन्नेच विद्वारेऽग्निहोत्रहोमः कः तंथ्य इति ।

ईपत्याहवनीययोक्ष्पत्तिः। तत्रैकैको न शक्यते उत्पादयितुम् । तस्मा त्सविशेषणमेवात्र निमित्तम्॥ २६॥

इति पञ्चावैद्येऽध्याये तृतीया कण्डिका ॥

(१)मध्यमानश्रेन्न जायेत यमदूरात्परापर्वेत्त-माहृत्याभिज्ञहुवात्॥ १॥

मध्यमानप्रहणं कालासम्भवपश्चव्यर्थम् । न हि कश्चिन्मध्यमानो न जायते । यमेवान्तिकेऽग्निमपरिगृहीतं पश्येत्तमाहृत्याभिज्ञहुयात् । स चायमस्यैवैकस्य प्रयोगस्य साधनीभृतः । ताबन्मात्रश्चवणात् । पुनः स्वयोनेराहरणम् ॥ १॥

(२) त्राह्मणहस्ते वा ॥ २ ॥

जुहोति । 'वा' शब्दो विकल्पार्थः । अयं चाहवनीयविकारत्वेन वि धीयते । ततस्रोत्तरसमिदाधानमन्त्रे विपरिणामः । सा ह्यद्वर्धायात् ब्राह्मणहस्तेऽपि दीयते । पूर्वा तु दश्टार्थत्वादेव न भवति ॥ २॥

तस्मिन्पक्षे वतमाह तस्य-

वासानपनोदश्च ॥ ३॥

बसत्यर्थमानतो ब्राह्मणो नापनोचः ॥ ३॥ अजकर्णे वा दक्षिणे ॥ ४॥

ज्ञहोति(३) ॥ ४ ॥ तर्हिमञ्ज पक्षे वतमाह—

अभोजनं तस्य ॥ ६ ॥

(१) अथ गाईपत्यस्योपशान्तस्य समारुढे वा होमकाले मध्यमानस्य उद्धरणकालात्माग्जन्मासम्भावनायां तत्प्रयोगसिध्युपायार्थमिदम् ।

- (२) अत्र गार्डपत्याहवनीयदक्षिणाग्नीनां स्थाने त्रीन्ब्राह्मणानुपवेष्य दक्षिणेषु तद्धस्तेषु परिस्तरणादि पर्युक्षणोपस्थानानां सर्वं कार्यम्। होमात्पूर्वं यत्समिदाधानं तत्र भवति, दृष्टार्थत्वात्। इन्धनं हि तस्य प्रयोजनम्। न च तदनित्रषु सम्भवति । "समिद्सि०" (वा०सं० २-५) इत्येतत्तु समिदाधानं भवत्येव अद्रष्टार्थत्वात्। तत्र च (का० श्रौ० ४-१४-३०) समिद्सि समिद्धो मे ब्राह्मणहस्त दोदिहि समेद्धा ते ब्राह्मणहस्त दोदिहि समेद्धा ते ब्राह्मणहस्त दोदिहि समेद्धा ते ब्राह्मणहस्त दोदिहि समेद्धा ते ब्राह्मण
- (३) ब्राह्मणबदेव त्रयाणामग्रीनां स्थानेषु अज्ञानस्थापयित्वा तद्द क्षिणकर्णेषु होमः कार्यं इत्यर्थः।

वजमांसस्य ॥ ५॥

क्रशस्तम्बे वा ॥ ६ ॥

जहोति(१)। तत्र वतम् ॥ ६॥

अनासनं तस्मिन् ॥ ७ ॥ (१)अप्तुवा॥८॥

जहाति। तत्र वतम्॥ ८॥

नादभ्यो बीभत्सेतेति श्रुतः॥ ९॥

बीमत्सा परिवाद उच्यते । एवं श्रुयते—"नापः परिचक्षीत" (३)इ-ति । अपन्याय्यत्वाच्च श्रुतिप्रहणमत्र क्रियते ॥ २ ॥

अहुताभ्युदितउन्नीया(४)नमितोरासीत ॥१०॥ अहुत पव यद्यभ्युदयो भवति तदोशीयातमनादासीत ॥ १० ॥

हृत्वा सूरित्यनुमन्त्रणम् ॥ ११ ॥

हत्वा च 'भः' इत्यनुमन्त्रणं कार्यम् ॥ ११ ॥ (५)चरदानं च ॥ १२॥

(६) सर्वनादी हविषां दोषे वा तदुक्तस् ॥ १३ ॥ तदुक्तव्रहणं पक्षान्तरेण सह विकल्पार्थम् ॥ १३ ॥ आउपेन वा प्रतिसंख्याय देवतेच्या ॥ १४ ॥

(१) त्रिष्वग्निस्थानेषुत्रीन् कुशस्त्रस्यान्स्थापयित्वा तेषु होमः कार्यः।

(२) उदकपात्राणामग्निस्थानेषु स्थापनं कृत्वा तत्रत्यजले हवनं कर्तव्यमित्यर्थः ।

(३) अपां निन्दां न कुर्यात् । सर्वेषु पक्षेषु होमान्ते गाईपत्यमन्थनं

कार्यमिति। (४) चतुर्गृहीतस्योत्रयनं होमार्थं इत्वा आहवनीयसमीपे आतः मितोरासीत श्वासघारणं ऋखासीत शरीरस्यात्यन्तरलानिपर्यन्तम्, यत ऊर्ध्वं श्वासधारणं कर्तुं न शक्यते तावदित्यर्थः।

(५) श्लीरहोत्रे. स्वयं होमे त्वन्यसमै सन्निहिताय।

(६) सर्वेषां हविषां दोषविशेषेण अपहारादिना श्लेष्माद्यमेध्योः प्रधातेन वा नाशे तदुक्तं प्रायश्चित्तं "प्रधानद्रव्यव्यापकौ साङ्गावृत्तिः स्तदादेशात्" (का॰ श्रौ॰ १-७-२७) इति कात्यायनोक्तमचुच्छेयम्। तेनाध्वयंवं करवा तदिहार एव सान्निपातिकैरङ्गेस्तानि विनष्टानि हवीं स्युत्पाद्य यागाः कर्तव्या इति ।

प्रतिसङ्ख्यानविधिप्रहणाच तासामेव देवतानामिन्या(१) । किं वा स्यात्। मा भूदुपांगुयाजविष्यन्तेन विष्णोरग्नीषोमयोर्वेज्येति । देव ताप्रहणाचाङ्गाभावः॥ १४॥

पुनः किया च ॥ १५ ॥

पवं हि श्र्यते — "यस्य सर्वाणि ह्वी थिष नश्येयुर्वा तुष्येयुर्वाप-ह्रेयुर्वाज्येन ता देवताः सःस्थाप्य पुनर्निर्वेपेत्" इति ॥ १५ ॥

मेदे विप्रक्रूप्त्यूपपाताभ्याम् ॥ १६ ॥

सर्वविषयत्वेन अवणात्स्वेह विनां शे एवं प्राप्त इद्मुच्यते भेदेपि भवतिति । कुत एतत् १ विप्रक्ख्याः । पृथक् पृथक् प्रक्ष्यानि होतानि ह्वीषि । नाग्न्युत्पत्तिवत्सहत्वप्रक्ष्यतिः । अपि कोपपातो भवति "यस्य हवीं भि नद्ययुः" इति । तत्र सर्वशब्देन विशिष्यमाणे वाक्यभेदः प्रसङ्गः । "हवीं ऐषि नद्ययुः सर्वाणि च नश्ययुः" इति । स चान्याय्यः । तस्मान्नाशमात्रं निमित्तम् । तत्र भेदेऽपि भवति चेत् भवेदिदं नैमि तिक्रमिति(२) ॥ १६ ॥

अन्तरागमनेऽनाद्विचते ॥ १७॥

गाईपत्यादीनामन्तरागमने अनादरस्तरुचैतदाग्नेद्दोत्रविषयम् । त-देव प्रकृत्य श्रूयते—"कामं वाऽपषु लोकेषु वयार्थकि युक्तं चायुक्तं च सञ्चरन्ति" (श० ब्रा० १२-४-१-३) इति ॥ १७ ॥

चनैडकवराहेषूद्धारा प्राचीदं विष्णुरिति ॥ १८ ॥ (३)देया ॥ १८ ॥

(४) भस्मनो वा ॥ १९ ॥

'वा' शब्दो विकरुपार्थः । विकरुपेन हि अूयते-''गाईपत्याद्गस्मो-

- (१) यावतीनां देवतानां हवींषि विनष्टानि ताः परिगणय्य विनष्ट-हविःसम्बद्धानां तावतीनां देवतानामाज्येन हविषा यागः कर्तव्यः। आज्यसंस्कारारपूर्वमस्य निमित्तस्य पाते आज्यसंस्कारं वेदिसंस्कारमः ग्रिसस्कारं च कृत्वा यागः कर्तव्य इति देवयान्निकाः।
 - (२) एकैकहविनांशेऽपीदं नैमित्तिकमनुष्ठेयम्।
- (३) श्वा-कुक्कुरः । एडको-मेषः । वराहः-ग्रामस्करः । गार्हपः स्यादारभ्याहवनीयपर्यन्तं ''इदं व्विष्णुः॰'' (वा॰ सं॰ ५-१५) इस्यनेन उदकस्य घारां निनयति ।
- ् (४) सस्म गाईपस्याद् गृहीत्वा धारा देया । एतदप्यग्निहोत्र विषयमेव ।

पहत्याहवनीयाधिवपन्तो यन्ति" (श॰ बा॰ १२-४-१-४) इति ॥१९॥ (१)चकीवत्यरनये प्रिकृते ॥ ९०॥

पुरोडाशं निर्वपेत् । चक्रीयान् रासम उच्यते, तस्मिन्नन्तरा गब्छतीः व्यर्थः । एतच्च सर्वविषयमसंयुक्तविधानात् ॥ २० ॥

प्रज्ञातप्रयतिपत्तौ च ॥ २१॥

पथिकुद्भवति॥ २१॥ प्रज्ञातप्रहणमाच्छे—

(२)नियतास्वतिपत्तिश्चतेः॥ २२॥

अतिपाचिद्धिं नियतास्वेव भवति नानियतासु । राष्ट्रप्रहणाञ्च पश्च तिपचा न भवति ॥ २२ ॥

(३)स्तोञमोहं शस्त्रस्य च ॥ २३ ॥

पथिकद्भवति ॥ २३ ॥

जनमाणे च ॥ २४॥

पथिकृत सवति॥ २४॥

उपपातसामध्यात्स्वजने(४)॥ २५॥

सा च स्वकीयजनगरणे, न सार्वत्रिके । कुत प्तत् ? उपपातसाम-र्थ्यात् । उपपातो हि कादाचित्को भवति ॥ २५ ॥

निरंपत्याच्य ॥ २६ ॥

अपि च नित्यं जनमरणमिति॥ २६॥

अग्रयं व्रतपतये व्रखंऽहिन मैथुनमार्थसभोजनं चेत्॥२॥।

जतमहेतीति वृत्यं तस्मिन्मैश्चनमांसभोजनं चङ्गचित अश्चये वृतपः तय इष्टिभेषति(५)॥ २७॥

- (१) चक्रीवान् रथः। अग्निहोत्रनैमित्तिकमध्ये विधानादेतद्प्यग्नि-होत्रविषयमेवेति देवयाज्ञिकाः॥
- (२) नित्यास्वेवेष्टिषु कालातिक्रमस्य श्रवणात् प्रज्ञातपदेन दर्शपी-र्णमासाग्रयणचातुर्मास्येष्टयो गृहान्ते ।
- (३) अन्यस्य स्थानेऽन्यस्य गानम्। अन्यास्त्रश्चु वा, तास्वेव ऋश्चु सामान्तरगानं च स्तोत्रमोद्दः। अत्र च कालाद्वतिवाचने पूर्वे भवतः। शस्त्रस्य च अन्यस्य स्थाने अन्यशंसने अक्षस्त्रादेविपर्यासे विस्मरणे च पथिकृदिष्टिः।

(४) पुत्रपौत्रादिमरणे।

(५) अष्टाकपाठः पुरोडाशो भवति । स्मृतिप्रतिषिद्धाचरणे तु स्मार्तः प्रायश्चित्तम् । आहिताग्नेरात्र्यश्चकरणेऽग्रये चूतभृते(१)॥२८॥ आहिताग्निग्रहणं विद्वताग्निप्रह्नप्यर्थम्। आर्तिग्रहणाच्च नानन्दाः श्चकरणे॥२८॥

स्रुसर्गे नाद्रियेत ॥ २९॥

अग्न्यन्तरसंसर्गेऽनाद्रः॥ २६॥

(२)अनुक्रोशेऽग्रये स्रंसगीयाहातियां ग्रामाग्निना चेत्।।३०॥ अथ यद्यनुकेशो भवति तदाग्नये संसर्गय द्रष्टिर्भवति। आहुः तिवैति विकत्यः। एतच्च ग्रामाग्निना संसर्गे भवति॥३०॥

अग्नये विविचये मिथश्चेत् ॥ ३१॥

मिथाः परस्परतः । परस्परतो यदि संसर्गो भवति तदाग्रये विविष्यये इष्टिर्मविति, आहुतिरनादरो बेति(३) सर्वे ह्यात्व पठयते । हृद्य-विलेखे इष्ट्याहुत्योविकलपः॥ ३१॥

ग्रग्नये संवर्गाय प्रदृष्याच्चेत् ॥ ३२ ॥

प्रदब्यो दावस्मिः। दावाग्निना चेद् संसर्गस्तदाण्यनादरः। हृदयवि-लेखे अग्नये संवर्गायेष्टिराहुतिर्वा ॥ ३२ ॥

अग्रयेऽप्सुमने बैद्युनाच्चेत् ॥ ३३ ॥

वैद्युतेन चेद्शिसंसर्गः तदाण्यनादरः। हृद्यविलेखेऽशयेऽप्सुमते इस्टिराहृतिका ॥ ३३ ॥

अग्नये शुचयेऽशुच्यायतनाच्चेत् ॥ ३४ ॥

(४)अशुच्यायतनामिना चेत् संसर्गः अग्नये शुचये द्दिराहुतिर्वा भवति। न ह्यत्रानाद्रः पञ्चते ॥ ३४ ॥ भाषाभोषु यसजनने साहतं त्रणोद्शकपालं निर्वेपेत्(५)॥**३**५॥

यजनीयेऽहम्यन्वारम्भणीयापूर्वकम् ॥ ३५ ॥

⁽१) इयमपीष्टिरप्राकपालपुरोडाशा व्रत्येऽहनि रोद्नाश्चकरः णे मवति ।

⁽२) अनुकोशे हृदयसन्तापे।

⁽३) हृडिलेखाभावे त्वनादर एव ।

⁽४) अशुचिः अपवित्रं चाण्डाळादिगृहमायतनं स्थानं यस्य तेन ।
"तदाद्धः यस्यासयोऽमेध्यैरसिभः स्रृसुज्येरन्?" (श० झा० १२-४-४-५) इत्यादिश्रुतेः। (५) भार्यायाः शुद्धौ शब्दपरिमाणाद्भैन्द्रास्रधमां भवन्ति (का० श्री० ४-३-८)।

(१)गेहदाहेऽस्रये झामवते पुरोडादाः ॥ ३६॥ पुरोडाको भवति ॥ ३६॥ चन्द्रमसाभ्युद्ति आमावास्ये पुरस्तासद्वतः

स्यात(३)॥३७॥

आमावास्ये प्रकारते यवि चन्द्रमा अस्युदेति, तदा तत्वत प्रव भवति, नान्यद् वतयति ॥ ३७ ॥

दिधि हविरातञ्चनं निद्ध्यात् ॥ ३८ ॥ (३)उत्पाद्यमानस्य हविषः ॥ ३८ ॥

स्रीमुज्य बन्सान्युनरपाकरणम्(४) ॥ ३९ ॥

कर्त्तब्यम् । एवं हि श्र्यतं-"स यद्यगृहीतः हविरम्युदियात्महातः मेव तदेषेव वतवर्या यत्पृर्वेद्युद्वेग्यं दिव हविरातञ्चनं तत्कुवंग्ति प्रतिः प्रमुखन्ति वस्सांस्तान्पुतरपाकुर्वान्त" (श्रव्या० ११-१-४-१)इति॥३९॥

निरुषे व्रताशक्ती वा त्रैयं तण्डुलान्विभन्य मध्यः मानग्रये दात्रे स्थविष्ठानिन्द्राय प्रदात्रे द्याने चरुमणि ष्ठान्विष्णवे शिषिविष्ठाय शुते चरुम् ॥ ४०॥

निरुप्ते चेत् हविष्यभ्युदयपरिक्षानं भवति वनस्य वा अशकि रिनर्पेऽपि तदा त्रेशं तण्डुलान्विभज्य मध्यमानस्य दात्रे प्रांडाशं कुर्यात्, स्थविष्ठानिन्दाय प्रदात्रे द्याते चक कुर्यात्, अणिष्ठान्वण्णवे

(१) यजमानस्य निवासगृहराहे अग्रिगृहराहे वा।

(२) दशैष्टिप्रारम्मानन्तरं पूर्वम्यां दिशि चन्द्रादये ज्ञाते सित यज्ञ-मानः तस्मिन्दिने अशनं न कुर्यादित्यर्थः। तत्र निर्वापात्मक् ज्ञाते पूर्व-कृतपदार्थानामासादितपात्राणामुन्सर्गः वत्सापाकरणादेः पुनर्विधानात्। पिण्डपित्यज्ञात्यावनेद्भान्त्योणकान्तं ज्ञायते नदोपोष्य स्वकाले द्विती येऽहनि पिण्डपित्यज्ञवनादिकं कुर्यादिति देवयाविकाः।

(३) यत्पूर्वेद्यः सायंदोहेन दध्युत्पदितं तद्ग हविरातञ्चनं हविषोऽद्य करिष्यमाणस्य सायंदोहस्यातञ्चनार्थं सुगुप्ते देशे स्थापयेदिति देव-

यात्रिकाः ।

(४) पूर्वेद्यः रात्रौ सायंदोहानम्तरं प्रातदोहाय अपाकृतान् वस्सान् स्वस्वमातृभिः संयोज्य पुनः सायंदोहार्थमपराह्ने ऽपाकुर्यात् । तच्च पि॰ ण्डपितृयर्वं कृत्वा कायंम् । तस्य पूर्वशुरकाले कृतस्याकृतह्मपत्वात् । अगन्यन्वाधानं कृतमेव । शिविविद्याय शते चरुप्। "वद्य वत्तचर्या वा नोदाश्वरेसेत गृहीतं वा हविरम्युदियात्" (श. बा. ११-१-४-२) हति अकृत्य सर्वमेतच्छूयते हति॥४०॥

इदानीमिदं विचार्यते - कि तदेवेदं कम उतान्यत्कर्मान्तरमिति।

कि तावस्त्राप्तम् । सुत्रेणैबोपकमः—

संस्काराहसाम्रायम् ॥ ४१॥

तदेवेदं कर्मेति । कुत पतत् ? संस्कारात्पृर्वे यागायोपकविपतं संस्कृतं द्रव्यं तदेवेद्भिति । तत्साध्यत्वाच्च तदेव कर्मेति ॥ ४१ ॥ पर्वं प्राप्त साह—

अन्यद्वेडयायोगात् ॥ ४२ ॥

तस्माद्यदेव वा कर्मान्तरमिदं न तदेव । कुत पतस्, इज्यायो गात्। इज्यान्तरयोगो हात्रोपलभ्यते, "आग्नदांता इन्द्रः प्रदाता विष्णुः शिपिवेष्ट" इति । तथा-"दल्ली चक्रश्यतं चक्रम्" इति अन्यदेव या-गान्तरम्, ततोऽन्यदिति । पत्रं पश्चव्रयापन्यासे कि कर्मन्तरता युक्ता उत तस्यैच विकार इति । तस्यैच विकार इति युक्तरपता । तदेव हि प्रकान्तं कर्म प्रत्यभिद्धायते, न चान्यत् कर्मान्तरमत्रारम्भ । तस्मास्तः स्यैच कमणो विकार इति ॥ ४२ ॥

(१)तस्य तण्डुलापनयो धचनात्(२) ॥ ४३ ॥

तण्डुरुकप्रसणं दच्नः प्रयस्थः। पूर्व देवताभ्योपनीय देवतान्तरः सम्बन्धा नैमित्तिक इति प्रयोजनत्वे सति कर्मणो गुणकामानां प्रवृत्तिः पुनरिप च तत्कर्मविहितमेव । "अथ यदैव नोदिबादथोपवसेत्" (रा॰ ब्रा॰ ११-१-४-४) इति ॥ ४३॥

(३)प्रकृत्या पूर्वम्(४) ॥ ४४ ॥

असाम्राज्यगुणकं प्रक्रम्या स्वक्रपणैव भवति दिविषयसीरभावात् ॥४४॥

(१) कर्मान्तरत्वेऽन्यरेवनार्धमुष्क्छसं हविस्त्रयमन्यरेवताके कः र्माण यागसम्बन्धनं भवितुं नार्हतीत्यताऽयुक्तम् ।

(२) प्राकृतकमणो चन्त्रनात्तपडुलानां प्राकृतदेवताभ्योऽपच्छेदो-देवतान्तरसंयागश्च । चन्ननं हि कि न कुर्यात् ।

(३) द्रध्यान्यत्वे देवतान्यत्वे च कर्मान्यत्व द् यत्र आद्ये हिविषि पुरोडाशे द्रव्यान्यत्वाभावस्तत्र कथमित्यत आह-

े (४) प्रथमं हांबः पुराडाशलक्षण प्राकृतमेव न प्रायक्षित्तरूपं कर्माः स्तरं यतो द्रव्यं तदेव पुराड़ाशरूपं, देवताव्यग्निः सैवेति । (१)सर्वे वा निमित्तान् ॥ ४५ ॥

'बा' शब्दः पक्षव्यावृत्तौ। सर्वे वा (२)कियते पूर्वमपि हि निमित्तं भवति प्रकारतेऽस्युदय इति(३) ॥ ४५॥

पश्चादभ्युद्दष्ट आमावास्येनेष्ट्वा तदहर्वेव दवो वाऽग्नः ये पिथकृत इन्द्राय वृज्ञन्न एकादशक्त पालो वैद्दानरश्च॥४६॥ "सोद्यामावास्येति मन्यमान उपवस्त्ययेष पश्चाददश" (श॰ न्ना॰ ११-१-५ ४) इति प्रकृत्येतच्छूयते। तद्दर्शनं च शास्त्रतः प्रतिपद्यव भवति। ग्रान्त्या प्रतिपद्युपवासोपक्रमे पतत्(४)॥ ४६॥

(५) त्रीषुकं घनुर्दक्षिणा ॥ ४७ ॥

त्रिभिरिषुभिरुपेतं घतुर्दक्षिणा॥ ४७ ॥ (६)दण्डो चाः॥ः ४८ ॥

वेति विकल्पः॥ ४८॥

प्राकृताखेच्छन् ॥ ४९॥

एतानेव हविविशेषान्त्रकृत्य याः श्रूयन्ते, ताश्चेच्छया ददाति । यः थाऽम्यमेधे पथिकतः शतमानं वैद्यानराय कृष्णं वासः इन्द्राय वृत्रश्चे चोदकेनान्वाहार्यः ॥ ४९ ॥

अनम्युद्दष्टस्यापि पशुकामस्य ॥ ५० ॥

इयमिष्टिर्भवति(७) ॥ ५० ॥ इति पञ्चविद्येऽध्याये चतुर्थी कण्डिका ॥

⁽१) अग्नये दात्र इति विशिष्टश्रवणेऽपि विशेषणमात्रं तत् न तु स्वरूपमेदापादकम् इति मास आह— (२) 'विकियते' इ०पा०। (३) तत्र "विशये लौकिकम्" (का० श्रौ० ४-३-७) इति।

⁽४) आमावास्य चन्द्रमसेति पदद्वयम् (का॰ श्रो॰ २५-४-३७) स्त्रतोऽनुवर्तते । आमावास्ये उपकान्ते पश्चादपरस्यां दिशि चन्द्रमसः अभ्युद्ये काते म्रान्त्या प्रतिपद्ययग्न्यन्वाधानादिकमीपक्रमे कते तस्मिन्ने बाहनि पिण्डपितृयक्षवर्जितेन सद्य प्रवामावास्येन दर्शेनेष्टि तस्मिन्नेव दिने श्वो वा द्वितीयायामन्यामिष्टि कुर्यात् । यश्चाग्नये पिधकृते अष्टाकपाळः पुरोड़ाशः प्रथमो भवति, इन्द्राय वृत्रघ्न एकादशकपाळो द्वितीयः, अग्नये वृश्वानराय द्वादशकपाळस्तुनीय दात

⁽५) ब्रिहिबिस्कायामिष्टी इति शेषः। (६) वंशमयो दण्डः।

⁽७) "दग्डं दक्षिणां ददाति । दण्डेन वै भ्वानं बाधन्ते तदेतमेवेतः

उद्यास्यमानं चेत्कपालं नश्येदाश्चिनः ॥ १ ॥

उद्वास्यमानकपालनाशे आदिवनो द्विकपालः पुरोडाशः कर्चन्यः। स च परतन्त्रमध्यपाती तदङ्गत्वेन भवति । अत्र पशुपुरोडाशन्यायः। यान्यङ्किनोङ्गानि प्रयुक्तानि तानीहापि प्रसज्यन्ते । पात्राणि च यान्यनः पत्रुत्तानि वज्रादीनि तान्यप्यत्र प्रयुज्यन्त । यानि पुनः कष्णाजिनोसूख लमुसलादीनि निवृत्तप्रयोजनानि तेषां पुनः प्रोक्षणादिसंस्कारः कर्त्तव्यः, अपनुत्तत्वात् । श्रृतावदानं प्राशित्रहरणम् इडापात्री च संस्कृतान्येव विद्यन्ते । अनस्ति प्रहुणपक्षे अनाऽप्यासाद्यते । धर्माश्चास्य धूरीषालम्मः नाद्यः क्रियन्ते, पूर्वधर्माणामपत्रुत्तत्वात्। तद्यवर्गश्च तत्कार्यामिनि र्वृत्तेः । अग्नीन्यनं त्वङ्गप्रधानार्थत्वादप्रकृष्यते । अङ्गप्रधानार्थता चास्याः ह्वनीयसंस्कारकत्वात् । 'यदाह्वनीये जुहोति' इत्यनेनाहवनीयस्याङ्गप धानार्थता। एवं च कृत्वोपवाजनसम्मार्गावाप कर्तव्यौ। अनेन प्रकारे वेडान्त आदिवनः साश्चिपातिभरङ्गैः कार्यः । यानि पुनराराद्वपकारकाः ण्याद्यारप्रयाजाज्यभागादीनि तेषा च सक्तदेव क्रिया। अन्ते हानयवे तेषां प्रधानाभिसम्बन्ध इष्यते । न हि यद्यदङ्गैः क्रियते तत्तदेव प्रधाने । नाभिसम्बन्धमुपयाति । यदाऽङ्गं न तदा प्रधानम्, यदा प्रधानं न तदाः ङ्गीमीति । तस्मादन्त्येऽवयवेऽङ्गापूर्वसम्बन्धः, आम्नानसामध्यात् । अतः सक्तिया आधारादीनाम्। तेन मुख्यसित्रधिन्यायादिङ्ग सित्रधिवानुः ष्ठानमिति । अनेन न्यायेन कर्ममध्ये या ६एयः त्रातपतीयाद्याश्च आप-तन्ति ता अनुष्ट्रया शति ॥ १ ॥

सायंपातदींहात्तीवैन्द्रं पश्चशारावमोदनं निर्वेषेत् पुरोडाशं वा ॥ २ ॥

दवं हि श्रूयते—''यस्योमय् हिवरार्तिमारुछेदैन्द्रं पञ्चश्चरात्रमोः दनं निर्वपेत्' इति । साम्राय्यं हि प्रकृत्यैतरुष्ट्रयते । तेन न दविमीः त्रात्ती । पञ्चश्चराव श्रोदनः, पुरोखाशो वेति विकल्पः ॥२॥

हदानीमदं विचार्यते—किमुभयाचौ पञ्चशराव उतान्यतराचीव पीति । कि तावद् युक्तम् ? उभयाचीविति । उभयोहिं श्र्यते—''यस्यो भयः हविरार्चिमाञ्जेत" हत्वेवं प्राप्त आह—

मेदेनाच्युपपातात् ॥ ३ ॥

द्वाधते यद्दण्डं दक्षिणां ददात्येषा न्वादिष्टा दक्षिणाः दद्यास्वेषास्यामप्यन् न्यद्याऽइतरा दक्षिणास्तासां यत्सम्पद्येत सा हैषाः पद्यव्येष्टिस्तयाप्यनः भ्युदुदृष्टो यजेतैव' (द्वार ब्रा० ११-१-५-११) इतिश्रुतेः। अन्यतराचीविष भवति पञ्चशरावः । हविधिशिष्टार्चिर्निमित्तं तः त्रोमयशब्देन विशेष्यमाणे वाक्यं मिद्येत । तस्माद्न्यतराचीविष भवति ॥ ३॥

इदानीमिदं विचार्यते—पञ्चशरावः कि प्रतिनिधिः उत निमित्ते नैमित्तिकं प्रायश्चित्तमिति । किं तावत्प्रातं सुत्रेणैव पक्षः—

तस्प्रतिनिधिः॥ ४॥

तस्य साम्नारयस्य विनष्टस्य सतः प्रति।निःधिरयम् । द्रव्ये नष्टे द्रव्याः न्तरं विश्वीयमानं तत्कार्ये एव भवति । तस्याग्यति।निधिरिति ॥ ४ ॥

प्राचाश्चितं वा देवनाश्चनेः ॥ ५ ॥

'वा' शब्दः पक्षान्तरपरिग्रहे । प्रायाश्चलमेनस्न प्रातिनिधिः । कुत एतत् ? देवताश्चतः । देवता श्वत्र श्रूयतं—'पेग्द्रं पञ्चशरावम्' इति । देवतासम्बन्धाद्यागविधानम् । नतु 'पेग्द्रम्' इत्यतुवादः ततश्च द्रव्यः मान्नविधानम् । नेत्युच्यते—अनुवादमात्रं द्यतर्थकं सवति । आप चा तुवादेष्टिसमञ्जस एव, पक्षे माहेन्द्रस्यापि सान्नाव्यदेवतात्वात् । तस्मा-त्यायश्चिलमिति(१) ॥ ५ ॥

चह साम्राय्यालाभे(२) ॥ ६॥

आचीं सत्यां साम्राय्यालामे सति चक्र भवतः॥ ६॥

सायं दोहस्थाने वा पुरोडाशः ॥ ७ ॥ चर्स्वेति विकरणः(३) ॥ ७ ॥

असामाय्यवद्वा ॥ ८॥

अथवा यादशमसाम्राज्यवदामावास्यं तादगेव(४) कुयांत्। वा श-ब्दो विकरपार्थः॥ =॥

दुष्टस्य हविषोऽप्रववहरणम् ॥ ५ ॥

(५)"दुष्टं इविरप्स्ववहरेत्" इति श्रुतिः ॥ ९॥

- (१) तेन नैमित्तिकानुष्ठानानन्तरं पुनः सान्नाय्यमुत्पाद्य यागः क र्तव्य इति देवयाज्ञिकाः ।
 - (२) वाचनिकः प्रतिनिधिरयम् । प्रधानयागावदानमात्रपर्याप्तस्य साम्राज्यस्यालामे सायभ्यातर्दोहयोः स्थाने चक्र भवतः।
 - (३) अष्टाकपाल ऐन्द्रः पुरोडाश आग्नेयविकारस्वात् ।
 - (४) आग्नेयः पुरोहाशो वैष्णव उपांशुयाग ऐन्द्राग्नः पुरोहाश इति ।
 - (प) केशकोटादिभिः सह पाकादिना, द्वादशमळोपघातादिना, अस्पृथ्यस्पर्श-विद्वाळाध्यवद्याणादिना वा दुष्टम्।

उच्छो वा सस्मिनि ॥ १०॥ अवहरणम्॥१०॥

शिष्टमचप्रतिथिदं दुष्टम् ॥ ११ ॥

मन्वादिमिर्यदमक्ष्यमुक्तं तद्दुष्टम् ॥ ११ ॥

एकस्यानिष्ठे तदुक्तम् ॥ १२ ॥

हविर्गणे मानसादपचारात यद्येकेन यागो न छतः स्याद तदा कर्त्तव्य इति तदुक्तम् ॥ १२॥

साकिपातिकानि वा तस्य ॥ १२ ॥ (१)साम्रिपातिकान्यङ्गानि कत्त्रंच्यानि संस्पृतीनि ॥ १३ ॥

इष्टं चेदाज्येन देाषम् ॥ १४॥

इण्टं चेद्धविर्दुष्येत स्विष्टकदाज्येन कर्चस्यम् ॥ १४॥

(२)इविरन्तरणे प्राक्तप्रधानेज्यायाः स्मृत्वान्वाहरेत्॥१५॥

यदि नाम हविरन्तरितं न गृहीतमेव तदा प्रावश्धानेज्यायाः स्तृः त्वाऽन्वाहरेत् , यागक्रमासुप्रहात् ॥ १५ ॥

प्राग्वा सामष्ट्रयजुषः स्राध्याश्चतेः ॥ १६॥

समिष्टयज्ञयो वा पूर्व स्मृत्वाडन्वाहरेत् न प्रधानेज्याया एव । कुत एतत् १ संस्थाश्रुते:-"अन्तो (हे यक्षस्य समिष्टयज्ञः" हात । यावद्पि अन्तो न भवति तावद्प्यन्वाहरणं युक्तस्पमेवति ॥ १६॥

हुतं चेत्स्यस्थाप्य तदेव पुनर्निवेषेत् ॥ १० ॥ हुतं चेत्समिष्टयद्धः संस्थाप्य तत्कर्म तदेव पुनर्निवेषेत्(३) ॥१७॥ देवताविपर्यासे (४)पुष्कलं दस्वा यथानुपूर्व्यकरणम् ॥१७॥

अष्टमुष्टि अवेत्किञ्चित्किञ्चित्रहो च पुष्कलम् । इति।

⁽१) साम्निपातिकान्येव कतव्यानि नारातुपकारकाणि। न हात्र कालमेदात् कमभेदः, येन तम्त्रभेदादारातुपकारकाण्यपि पुनः क्रियम्ते। क्रमान्यथात्वमात्रनिमित्तमनादिष्टं केवलं हृयते।

⁽२) बहुनां मध्य एकस्याग्रहणं हविषोऽन्तरणम्। यदि एकस्य हविषो श्रान्त्या विस्तरणं तदा प्रधानयागात्युव तत् समृत्वा श्रनादिष्टपूर्वकं प्रहणादिमिः सामिगातिकैः संस्कृत्य यागार्थं वेदिमध्य आसादमाय प्रश्नादाहरेत्।

⁽३) तस्मिन्नेष विद्वारेऽभन्यन्याधानादि कर्मापवर्गान्तं कुर्यात्।

⁽ ४) यहपार्श्वे-

आग्नेयस्वावदानक्रमे यन् अग्नीषोमोचनारणं स्र देवनाविषयीमः। तत्र-पुष्कळं दस्या यथानुपूर्वकरणम् । पुष्कळशब्दः सुवर्णपरिमाणः वाचीति केवित्। अपरे तु सारद्रव्यमात्रमाहुः॥ १८॥

म्रवदानयाज्यानुवाक्यासु **च** ॥ :९ ॥

विषयीसे एतदेव भवति । आम्नेयस्यावदानकमे यद्मीपोमीयस्याः इदानग्रहणं सोऽवदानविषयीसः ॥ १९ ॥

(१)सुच्चे दुष्टे पुनर्घहणम् ॥ २०॥

उत्तरार्थमिदमुन्यते ॥ १०॥

भ्रुवाया वा ततो यज्ञः प्रभवतीति श्रुतेः ॥ २१ ॥

भ्रुवाया वा प्रहीतव्यम् । वा शब्दो विकरपार्थः । 'ततो यत्रः प्रभः विति' इति वाक्यैकदेशापन्यासः ॥ २१ ॥

अदुष्टाद्या नयनमंके ॥ २२ ॥

्रक आचार्याः स्त्रच्यादेवादुण्टादानयनमिच्छान्ति ॥ २२ ॥ तरिमश्च पश्चे—

(२)नोपभृतो ख्रुवायाम् ॥ २३ ॥ ग्रहीतव्यम् ॥ २३ ॥

(३)आज्यस्थालीदोषे ऽन्यत् ॥ १४ ॥

घेतुनां यदि वानड्वान्मेषकः द्वादशापि व।। देवतानां विपर्यासे पतत्रुष्कलमुच्यते। इति। धान्यमुधिवतुःषाष्ट्रितरेषु च पुष्कलम्। इति। ब्रासमात्रा भवेद्भिक्षा पुष्कलं च चतुर्गुणम्। इति।

तेन देवताविपर्यासे 'घेनुवां' इत्यादिकमेव पुष्कला, इतरेषु च पुष्कलदानिमित्तेषु यथाशक्ति व्यवस्था —समर्थस्य चतुःपिमुण्यिरीमि तथान्येन पुष्कलम् , असमर्थस्य तु चतुर्यासपरिमितेन। पतेन यत् सुवः जमेकीयं यस सारद्रव्यमात्रं पुष्ठलमिति, तदुमयं निरम्तन्।

(१) स्नुचि मर्थ स्नुच्यं तस्मिन जुद्धामृद्ध्यवास्ये आस्ये दुष्टे पुनर-न्यस्य प्रदणम् । स्थालातो "धाम नाम" इति मन्त्रेण यथाविहितं कार्यम् ।

(२) जुहू म्थे दुधे भुवाया उपभृतो वा प्रहणम्, उपभृद्रते दुधे

जौहवाहु घौवादा, घौवे तु दुष्ट जुह्ना एव प्रहणं नापसृतः।

(३) आज्यस्थालोशब्देन तत्स्थमाज्यमुच्यते । अमेष्याति गते श्वाद्यवलो**डे** च । न्यायप्राप्तमेवैतदुत्तरविवक्षयाच्यते । स्थालीदुष्टेऽन्यद् ब्रहीतब्यम्। न्याय एवायम्॥ २४॥ अदाषो वा न वै देवाः कस्माचन बीभनसन्त

इति श्रुतेः॥ १५॥

अदोषो वेति विरुद्धम् पूर्व ह्युकं "दुष्टस्य हविषोऽप्स्ववहरणम्" इति, तस्माददोषो वेत्यन्यथा व्याक्येयम् । दुष्टेन हविषा पागाभिनिर्वृ चै। कृतायां पश्चाद्दाषसंवित्तौ तत्कृतमेव कर्म अदुष्टेनैव द्वव्येण न पुनरावृत्तिः॥ २५॥

आधिकं निरूप्य तच यजेत् ॥ २६ ॥ मानसादपचारादधिके हिविषि गृहीते तेनापि यागः कर्त्तस्यः स इस्पदाष्ट्रपरिद्याराय ॥ २६ ॥ पर्व स्थित उच्यते—

न वा चो दितत्वात् ॥ २७॥ न वा तेन यागः कर्त्तव्यः न द्यत्र चोदनास्तीति॥ २७॥ ऐतु राजा वरुणा रेवनी भिरस्मिनस्थाने तिष्ठतु मो दमानः अश्ष्टि। अस्माकं वीरा मा परासेचि महपय इति प्रणीता स्कन्ना आभिमुदोत्(१)॥ २८॥

म् मिर्भूमिमवाद्दान्माना मातरमध्यगात् भूयाय पुत्रैः पद्यभियों नो बंछि स विद्यतामिति मृन्मवं भिन्नमः मिमुकोत्(२)॥ २९॥

य ऋते चिद्रमिश्चिषः पुरा जञ्जभ्य आतृदः सन्धाता सः विद्यं मधवा पुरुवसुरिष्कर्ना विद्धुनं पुनारिति च धर्म्धम् (३)।३० धर्मे मृन्मयं धर्म्यं भिन्नमिमुशेत् । चशब्दाद्धस्तेनेन मन्त्रेण । धर्मभेद् प्रवायमपरो विशेषः ॥ ३०॥

इति पञ्जविद्योद्धयाये पञ्चमी कण्डिका॥

⁽१) भूमावन्यत्र वा पतिता अपोऽसिमृशेत्।

⁽ ४) स्थाल्यादि अभिमृशेत्।

⁽ ३) धर्म्यं महाबोरपिन्वनरौहिणकपालादि ।

परमेष्ठयादींश्च चतुःश्चिश्चातं जुहोति ॥ १॥

"परमेष्ठवभिधीतः" (वा. सं. ८—१४) इत्येवमादिः याहतीनां चतुर्भिष्यतं जुहोति। तच्चाष्यर्थुरादिष्टत्वात्। अनादेशे हि ब्रह्मणो विधानम् "ब्रह्मा प्रायश्चित्तानि जुहुयादनादिष्टानि" (का० श्रो। २५-१४-३५) इत्यनेन। अतश्च (१)वश्यमाणा काळाहुतिरप्यत्र मवति कर्तुमेदादिति॥ १॥

धर्मधुरद्वाले चादोहे च॥ २॥

वर्मधुग्दवाले इलनं चलनम् आस्यन्तिके चलने मरण इत्यर्थः। तस्या स्वाऽदोहे च ॥ २ ॥

उदीच्या दोहस्थानेऽन्यस्याः(१)॥ ३॥ अन्यस्या दोहस्थाने उदीच्या गोर्व्यवस्थितायाः॥ ३॥ शालाया चा पुरस्तात्प्राच्याः॥ ४॥

अवस्थितायाः ॥ ४ ॥

पुच्छकाण्डाइक्षिणेऽस्थानि हुत्वा दोह्येत्(३) ॥ ५ ॥ तामेव गां दोहयति । सा यदि धर्मदुघाह्वेह्रदिश्युपक्रम्य सर्वमेतः च्छूयते ॥ ५ ॥

पृषदाज्यस्कन्दने चैके(४)॥६॥ चतुःस्रिंशद्वोमिन्छन्ति। एकियप्रहणाद्विकव्यः॥६॥ सोमेज्योपपाते चैकैकां यथाकाल्धः हुत्वा यः

ज्ञस्य दोह इति वाचयति ॥ ७ ॥ (५)सोमेज्यायामुपपातः सोमेज्योपपातः। न सोमयागोपपातः।

(१) "सोमेज्योपपाते चैकैकां यथाकालं हुत्वा यज्ञस्य दोह इति वाचयति" "आग्नीभ्रोये सुत्यासु" (का०श्रौ०२५-६-७, म) इत्युक्तस्पर्धः।

(२) घर्मदुघाया दोहनप्रदेशे उद्ङ्मुख्या अवस्थितायाः अन्य-रूया गोः।

(३) पुच्छाइक्षिणविमागे उच्चे अस्थिन होमाधिकरणे "परमेष्ट्य-मिघीतः»' (वा॰ सं॰ ८-५४) इत्याद्याश्चतुस्त्रिशदाज्याहुतीः हुत्वा तामन्यां गां दोहयेत्।

(४) पृषदाज्यस्य स्थालीस्थस्य स्नक्थस्य वा "अयाविष्ठा" (का॰ औ॰ २५–६–१०) इति होमः।

(५) 'सोमेज्याया उपपातः सोमेज्योपपातः' इ० पा० । का॰ ४९

पर्व "यदि किञ्चिदापद्येत" (द्याव झाव १२-६-१-६, ३६) इति श्रूयते । (१)तत्र यथाकालमेकैकामाहुति हुत्वा "यञ्जस्य दोदः०" (वा० सं० ८-६२) इति बाचयति। यथाकालग्रहणेन च "अथ यदि पण्यमानः" "अध यदि क्रयायोपोश्थित" (श० ब्रा०१२-६-१-१०, ६) इत्येवमादि गृद्यते, एवमेव हि भ्रूयत इति । अत्र च ब्रह्मणः कर्तृत्वम् । "ता ब्रह्मेव जुहुयात्" (रा० बा० १२-६-१-३८) इति । ननु च सुत्रकारेण नैवेतः दाभिदितम्-'यथाकालमेकैकां ब्रह्मा जुहोति' इति । नैवैतक्रोकम्, उक्तमेव—"ब्रह्मा प्रायश्चित्तानि जुहुयादन।दिष्टानि" (का २ श्री० २५− १४-३५) इति । कथमयमनादेश इति चत् १ यत्र नाम निमित्तादेशपूर्वकं नैमिचिकमादिदयते यथा--"पृषदाल्यस्कन्दने जुदुयाद्याविष्ठा जनयः न्" (का॰ औ॰ २५-६-१०) इति, "पृषदाज्यस्कन्दनेऽभिमृशेत्" इति च स आदेशः। इह पुनर्नेवं निमित्तादेशपूर्वको निमित्तिकादेशः। इह हि "पण्यमानः किंचिदापद्यतः" इति, "अभिष्यमाणः किंचिदापद्येतः" (श॰ श॰ १२-६-१-१०, २१) इति च अनिमित्तादेशपूर्वको नैमि॰ त्तिकादेशः, तस्मादनादिष्टस्त्रेण पतान्यपि गृह्यन्ते । तथा चैककहोमः मेवाङ्गीकृत्य 'ता ब्रह्मैव जुहुयात्" (श॰ ब्रा॰ १२-६-१-३८) दृत्युक्तः म्। चतुःकिश्वदोमस्तु आदेश प्रवेत्यध्वर्युकर्तृकः॥ ७॥

आग्नीश्रीचे सुत्यासु(२) ॥ ८ ॥

सुत्यासु वर्चमानासु काळाहुतिः आग्नीभ्रीये । आहवनीयापवादी ऽयम्। एवं हि श्रूयते—"यदि दीश्लोपसत्स्वाहवनीये यदि प्रसुत आ॰ ग्नीभ्रे" (श्र० ज्ञा० १२-६-१-२) इति ॥ ८ ॥

आपवस्य हिरण्यवदित्युद्गातृहोमो ध्वाङ्कारोहणे युपस्य ॥ ९ ॥

"आपवस्व॰" (वा॰ सं॰ ८-६३) इति काकारोहणे यूपस्य जुडु॰ यादाहवनीये ॥ ९ ॥

वृषदाज्यस्कन्दने जुहुवादवानिष्ठा जनवन्कर्वराणि स हि चृणिरुदर्वराय गातुः स प्रत्युदैद्वरूणो मृथ्वो अ-

(१) परमेष्ट्रयादि चतुस्त्रिशदाहुतीनां मध्ये।

(२) कालाहुतयः दीक्षासूपसत्सु चापररात्र ऋत्विजः प्रबोधयन्ति इत्येतस्मारप्राक् आहवनीये होतब्याः ऋत्विग्प्रबोधनादारभ्य सुत्यायाः माग्नीभ्रीये । म् स्वायां यत्तन्वां तन् मैरयनः स्वाहेति(१) ॥ १० ॥

घमधुक् जाईलहता चेत् स्वृतिर्ज्ञह्वात् चन्द्रासे मन स्वृणोमि स्वाहा, खुर्याते चधु स्वृणोमि स्वाहा, वातासे प्राणानस्वृणोमि स्वाहा, दिग्म्यस्ते श्रोञ्च स्वृणोमि स्वा-हा, अद्भ्यस्ते लोहित्र स्वृणोमि स्वाहा, प्रथिव्यै ते ज्ञारीर् स्वृणोमि स्वाहेति ॥ ११ ॥

्रशार्द्को व्याद्यः, तन्निपातने स्पृतीराहुतीर्जुहोति(२) 'चन्द्राचे' इति प्रतिमन्त्रम् ॥ ११ ॥

हुत्वान्यामाजतेति व्यात् ॥ १२ ॥ अभ्वयुरेव 'क्त्वा'यत्ययोपदेशात् ॥ १२ ॥ स्वयंहोम्यशक्ता उपासीत ॥ १३ ॥ स्वयंहोमी यजमानः, तदशकौ समीप आसीत(३) ॥ १३ ॥ उपस्पेणाशक्ताचासनमधः ॥ १४ ॥ यदि चंकमणेऽप्यशकस्त्रदासीतायः(४) ॥ १४ ॥

इति पञ्चविरोऽध्याये पष्टी कण्डिका।

सायमाहुत्या छे हुतायां चेद् दुर्वेतः स्यान्तद्वै प्रातराहु-तिस्तत्स्व स्था ख्रुतेराग्ने होत्रस्य ॥ १॥ यदि सायमाहुत्यां हुतायां यजमानो दुर्वेत्रो भवति प्रातराहितः

यदि सायमाहुत्यां हुतायां यजमानां दुवेलो भवति प्रातराहुतिः कालं यावन्न जीवतीत्याशङ्कचते तदा तस्मिन्नेव काले प्रातराहुतिर्देया।

⁽१) अध्वर्युराहवनीये सकृद्गृहीतमाज्यं जुहुयात् । चतुस्त्रिद्या-द्योमश्च विकल्पेन भवति, अयं तु नित्यं भवति ।

⁽२) "तस्माऽउ हैतदुवाच। स्पृतीर्हृत्वाग्यामाजतेति ब्र्तात्सा ते सम्राब्दुघा स्यादिति" (श० ब्रा॰ ११-८-४-६) इति श्रुते:।

⁽३) अन्येन होमे क्रियमाणे अग्निसमीपे आसीत।

⁽४) अग्निसमीपे गमनाशकौ बद्वादेश्वत्तीर्य अधः भूमौ आसति बद्वादिसमीप एव । द्रव्यत्यागमात्रस्य करणासामध्ये पत्नी त्यागं कुर्योत् । तस्या अध्यसामध्ये नियुक्तः कश्चिदन्यस्त्यागं कुर्योत् ।

कृत पतत् ? तत्स्वहस्थाश्चतेराग्निहोत्रस्य । 'प्रातराहृत्याणे हि सन्तिष्ठते-ऽग्निहोत्रम्'। ताद्ध प्रकृत्य 'सायं जुहोति प्रातर्जुहोति' इत्युच्यते । 'आः ग्नेयों सायमाडुतिमाडुः सौरीं प्रातराहुतिम्' इति। उभयोरप्यग्निहोत्रः संद्वा। नैते द्वे कर्मणी 'अग्निहोत्रं जुहोति' इत्येकवचननिर्देशात । न चैकमेव कर्म शरद्वसन्ताग्रयणवत्युनः प्रातरम्यस्यते देवतान्यत्वात्। अन्या चान्या च देवतोसयत्रातः सायारम्मं प्रातरपवर्गमिदमेकं कर्मे-ति । एतदेव च द्यवयवमाग्निहोत्रं प्रकृत्य 'भाग्निहोत्रं जुह्रयात् स्वर्गः कामः' इति अयते, 'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्' इति च । तस्मादः वयवद्वयस्याप्येकं कार्यमित्येककर्मत्वम् । यद्येकमेव कर्म तन्त्रं किमि-ति न भवति ? कालभेदादित्यदोषः। यथा दर्शपूर्णमासयोः कार्येकत्वेsि कालसेदात नानातन्त्रता, एवमत्रापीति । तदुक्तमाचार्येण-'आ· विचिर्वा प्रधानकालत्वात्" (का० श्री० २६-६-२७) इति। तथा चा-ह-"स यत्सायमस्तामेते जहोति गर्भमेवैतत्सन्तमाभे जहोति गर्भ। सन्तमिं करोति" (श॰ मा॰ २-३-१-४) इति । पुनश्च-"अथ य-त्यातरत्विते जुहोति प्रजनयत्येवैनमेतत्सोऽयं तेजो भ्रत्वा विद्याजः मान उदेति" (रा॰ ब्रा॰ २-३-१-५) इति कार्येकत्वामेव दर्शयति। तस्मात्साधृकं तत्संस्थाश्चतेराग्नहोत्रस्येति ॥ १॥

जीवेच्चेरपुनः काले ॥ २ ॥

यदि पुनर्जीवति यजमानः काळे प्रातराहुतिर्देशा । नित्यानां हि निमित्तं काळो निमित्तमन्तरेण च नैमित्तिकं कृतमप्यकृतसमामित्यः भिप्रायः॥ २॥

एवं प्राप्त आह—

न वा कृतत्वात् ॥ ३॥

नैव प्रातराहुतिर्देश । इता हि परिसमाप्तिस्तस्येति । नतु चोक्स्-'काळा निमित्तमृतः' इति । निमित्तमन्तरेण नैमित्तिकं इतम-व्यक्तिमिव भवति, तस्मात्पुनः क्रियेति १ अत्रोच्यते—न प्रातहीं मस्य निमित्तं काळः । अन्यदेव हि तत्र निमित्तं सायारम्मः । अतः प्रातहीं मस्य श्रूयमाणेऽपि काळो बळादङ्की मवति । न हि निमित्तस्यानेकत्वः मिष्यते । तस्मात्कृतत्वात्र पुनः प्रातराहृतिर्देथेति ॥ ३॥

पौर्णमासान्ते चामावास्यमग्निहोञ्जवत् ॥ ४॥

तुल्यन्यायत्वात् । अधिकरणातिदेशश्चातुर्मास्यराजस्यादिश्वपि प्रदर्शनार्थः ॥ ४ ॥

हविष्येषु चेदाहियमाणेषु मरणं दिचणाग्रावे-नान्तसन्दहेत्॥ ५॥

हिवस्येषु चेद्गीहियवादिषु आहियमाणेषु पौर्णमासादौ यजमानस्य मरणं भवति दक्षिणाग्नावेनान्तसन्दहेत् हविष्यान्। एवं हि श्रूयते— "यद्घिश्चितेऽशिहोत्रे यजमानो च्रियेत" इति मक्तय "तदेवेनद्भिपः शांधाय विष्यन्दयेत्" (श्रुवा०१२-४-२-५) इति । पुनस्वाह"-एतावती सर्वस्य हविर्यञ्जस्य मायश्चित्तिः" (श्रुव बा०१२-४-२-५) इति ॥ ५ ॥

न वाऽयुक्तत्वात् (१) ॥ ६ ॥

न वा दक्षिणामी सन्दहेत् अयुक्तो ह्याहरणकाले हिवस्यमहणेन तेषां योगः॥ ६॥

गाईपत्ये ग्रहणादि प्रागासादनात् (२) ॥ ७ ॥ अयुक्तान्सन्दहेत्सिन्नधानात् ॥ ७ ॥ आसादनाद्याहवनीये(३) ॥ ८ ॥

सन्दहेत्सन्निधानादेव॥ =॥

मरणान्तं भवति (४)॥९॥

कर्मकर्तुरभावात्॥ ९॥

(५)सःहथाप्यं वा प्रक्लसत्वात् ॥ १० ॥

(१) अविनियुक्तत्वात् प्रहणेन हि हविष्याणां विनियोगो भवति, बाहरणमात्रेण।

(२) इविग्रंहणादारभ्य आसादनात्त्राक् यजमानस्य मरणे हवीषि गार्हपत्येऽम्रा दहेत्।

(३) वेद्यासादनादि प्राग्यागात् यजमानस्य मरणे तान्यासादि-तानि हवीषि आहवनीये दहेत्।

(४) तदारव्धमामावास्यं क्रियमाणं मृते यजमाने अन्तवद्भवति ।

कर्तुरभावात् हविः प्रतिपत्तिविधानाश्च ।

(४) भर्तृयद्वस्तु—'स्याप्यं वा प्रवृत्तत्वात्' प्रवृत्तस्य संस्थाः प्रनमेव युक्तम् । उक्तञ्चावार्येण—'दोषश्चासमाप्तौस्यात्' इति, तथा अम्मताग्निः प्रकृत्य आह्वनीयस्य परिस्तरणे दक्षिणाप्रता उक्तावार्येः मृताग्निः प्रकृत्य आह्वनीयस्य परिस्तरणे दक्षिणाप्रता उक्तावार्येः जैव—प्रागुद्दिसद्यग्रान्दक्षिणाप्रान्करोति' इति श्रुतेरिति । श्रुतिश्च— "अथयान्यमून्युदोचीनाप्राणि तुणानि भवन्ति दक्षिणाप्राणि तानि करोति'

प्रवृत्तं हि तत्तस्यापरिसमातौ दोषश्रवणात्। तदुक्तमावार्येणापि"दोषश्चासमातौ स्यात्" (का० श्रो०१-४-४) इति । एवं पश्चद्योः
पप्रदर्शने सति य एव युक्ततरः पश्चः स एवाश्रयणीयः। कश्चासौ मर
णान्तमेव भवतीति। न हि मृते यज्ञमाने भिथ्यासङ्करपदोष आशङ्कयत
इति ॥ १०॥

हविष्यवद्धीम्यम् ॥ ११ ॥

(१)अभिहोत्रहोमार्थमपि दृष्यं हविष्यवद्वष्टस्यम् । एतदुक्तं 'गाईप-त्ये ब्रह्मपदि प्रामासादनातः' इत्येवमादि ॥ ११ ॥

सन्दीपनवतीः प्रत्यग्न्यचिश्रयन्त्युखाः(१) ॥ १२ ॥ सृते यज्ञमाने सन्दीपनवतीनामुखानां प्रत्यग्न्याधिश्रयणम् ।सन्दीपनं च गोमयशुष्ककार्पासादिना । बहुवचनं मन्त्रोक्चारणार्थम् ॥ १२ ॥ सन्तापजानग्रीनादाय सदारीरा दक्षिणा गच्छन्ति ॥१३॥

(३)सिपण्डाः ॥ १३ ॥

अनसा(४) ॥ १४ ॥ शरीरमुद्रह्रान्ति, शास्त्रान्तरात् ॥ १४ ॥

वितानः, साधियत्वा समे बहुलतृणेऽन्तराग्नी चितिं चिनोति ॥ १५ ॥

इति, 'अमून्यग्निहोत्रतृणानि' इति । एतन्मते अवृत्तस्य संस्थापनं युक्तः तरमिवाभाति ।

आहिताग्निः कदाचित्तु कृष्णपक्षे सृतो यदि । तदा शेषाहुतीः सर्वा जुहोतीत्याश्वळायनः ॥ अन्ये तदैव दशैष्टि कुर्युः कृष्णे सृते यदि । शुक्कपक्षे निधा प्रेतेऽपीच्छन्ति प्रातराहुतिम् ॥ इति ।

(१) 'अग्निहोमार्थम्' इ० पा०।

(२) "प्रवृञ्ज्यात्" (द्या० ब्रा० १२-५-२-३) इत्येकवचनादेक एवाधिश्रयेत् । स्त्रे 'अधिश्रयन्ति' इति बहुवचनमधिकारिबहुत्वख्या-पनार्थम् ।

(३) सम्यक्तापाजायस्त इति सस्तापजाः तानग्रीम् स्थालीस्थाने-बादाय यजमानशरीरसहिताः सपिण्डाः दक्षिणस्यां दिशि गरुक्तन्ति इति।

(४) उखास्थानझीन्यजमानशरीरं पात्राणि च सर्वमनसि सुरवा दक्षिणा गच्छन्ति । दाहार्थं सभ्यावसच्यो च प्रत्यशावेव स्थास्यां सुरवा नेयो न सन्तापजो । वितानसाधनमग्रीनां यथादेशस्थापनं छत्वा समे तृणवहुले देशे: ऽन्तराग्नी काष्ठिश्चिति चिनोति ॥ १५ ॥ पुर्वतरम्—

उत्भृत्यक्षीरिणीः पुरुषाहृतीः ॥ १६ ॥ पुरुषमाद्वानं यासामोषधीनान्ता उत्भृत्य ॥ १६ ॥ विशाखशाराञ्चगान्धापृद्धितपण्येष्टयाण्डाश्च ॥ १७ ॥ उद्धृत्येति वर्तते । विशासा—दुर्वा, शरी-मुञ्जः, पृश्चिपणीं-मापः पर्णी, अध्याण्डा-हण्डणिका ॥ १७ ॥

केश इमश्चनखलोमनिकृत्तनानि कृत्वा विपुरीषं चेच्छन्(१) ॥ १८ ॥

केशादि निखाय सर्पिषान्तरकत्वा चितावेनमादः धाति कृष्णाजिनमास्तीर्य प्राक्तिशरसम् ॥ १९ ॥ यजमानम् । सर्पिषाभ्यञ्जनं प्रशालनं च विपुरीषपस् एव ॥ १९ ॥ सससु प्राणायतनेषु सप्तहिरण्यशक्ताः न्यास्पति सुखे प्रथमम्(३) ॥ २० ॥

प्रक्षिपति ॥ २० ॥ दक्षिणहस्ते जुहूॐ साद्यति घृतपूर्णाम् ॥ २१ ॥ अधिकारमुपजीवन्नाह—

स्पर्यं च ॥ २२ ॥ दक्षिणहस्त एव (३)पाठकमेण सर्वपात्रचयनान्ते ॥ २२ ॥

(१) इच्छन्विपुरीषमुदरं पाटियत्वा पुरीषरहितं कुर्यात्।

(२) मुखे नासिकयोः चक्चुर्दये कर्णद्वये च सुवर्णसण्डानि

सूक्ष्माणि प्रक्षिपति ।

(३) अथैनमन्तरेणाशिक्षिति चित्वा। कृष्णाजिनसुत्तरलोम प्राचीन्त्रीचं प्रस्तीयं तस्मिन्नेमुत्तानं निपाद्य जुहूं घृतेन पूर्णां दक्षिणे पाणान्वाद्याति सन्यऽउपभृतसुरिस ध्रुवां मुखेऽशिहोत्रहवर्णां नृसिकयोः स्रुवौ कर्णयोः प्राशित्रहरणे शीर्षश्चमसं प्रणीताप्रणयनं पाश्वयोः शूर्पेऽउदरे पात्री समवत्त्रधानीं पृषदाज्यवती शिश्नस्यान्ते शम्यामाण्डयोरन्ते वृष्णाद्यावन्त्वगुलूखळं च सुसळं चान्तरेणोरूऽअन्यानि यञ्चपात्राणि दक्षिणे पाणौ स्प्यम् । (श्रुवं आ० ११-५-५-७)।

उपभृतः सब्वे ॥ २३ ॥ सादयतीति वर्तते॥ २३॥ उरासि धुवाम् ॥ २४॥ मुखेऽग्निहोत्रहवणीम् ॥ २५॥

नासिकयोः स्हर्वी(१) ॥ १६ ॥

खाबिरौ न तावव, आज्यग्रहणार्थत्वात्॥ २६॥ कर्णयोः प्राधित्रहरणे शिरासि चमसं प्रणीताप्रण-

यनम् ॥ २७ ॥ कपालानि चैके ॥ २८॥

एके तम्रेच्छन्ति, प्रतिपत्त्यन्तराविधानात् । अप्स्ववहरणं हि तेषाः मुक्तम्(२)॥ २८॥

पाइर्षयोः शूपे ॥ २९ ॥

द्वितीयं प्रतिप्रस्थात्सक्तम् । अद्यतवरुणप्रधासस्य तु छिखेकं हे-घोपघीयते तेचिरीयपाठात् 'छिखेबेकम' इति ॥ २६ ॥ डदरे पात्री। समवत्तवानीं पृषदाज्यवती। शिहन श्चामरणी वृषणयोः ॥ ३०॥

अन्तरोरू यज्ञपात्राण्यन्यानि ॥ ३१॥

(३) उपघीयन्ते ॥ ३१ ॥ अप्स्ववहरणं मृन्मयाद्यमयानाम्(४) ॥ ३२॥ अयस्मयानि (५)वा ब्राह्मणाय द्यात् ॥ ३३॥

⁽१) "अस्मास्त्रम्" (वा० सं० ३५-२२) इत्याहुति होमानन्तरं नेदानीम् ।

⁽२) "अप्स्ववहरणं मृत्मयाश्ममयानाम्" (का०श्रौ०२५-८-३२) इस्यनेन ।

⁽३) अनुकस्थानानि उल्लंखलमुसलपिष्टपात्र्युपवेषाम्रिश्यताबदान पुरोडाशपात्रीपीठपडवत्तपूर्णपात्रचर्वाज्यस्थाल्यादीनि ।

⁽४) अष्रममयानां दूषदुवलादीनाम् । मृन्मयानामग्निहोषस्थाः लीकपालसामाय्योखोपसर्जनीपामान्वाहार्यपामादीनाम् । आज्यस्था-स्यपि सुन्मयी चेत् तस्या अपि अप्सवबहरणम्।

⁽ ५) लोहमयानि भौवेलीस्थानि शासादीनि ।

ना प्रवामध्यप्स्ववहरणम् । विकल्पेन हि श्रुती पाठः(१)॥ ३३॥ अनुस्तरणी चेत्पश्चात्कणमाहत्य हस्तयोष्ट्रक्की(२)॥३४॥

अङ्गेष्वज्ञानीति जातृक्रण्येः॥ ३५॥

आह । (३)उपधीयन्ते ॥ ३५ ॥

न वाऽस्थिसन्देहात्॥ ३६॥

न बाऽङ्गान्यक्रेष्पधीयन्ते । अस्थनां हि सन्देहो मा भूदिति । अत उन्हत्य मांसान्युपधेयानि ॥ २६॥

वपया सुखमवच्छाद्यामिभरादीपयान्त ॥ ३७॥ वपया च मुखाच्छादनमनुस्तरणीपश्च एव । अनुस्तरणी गौः ॥३०॥ आहुति जुहोति पुत्रो आताऽन्यो वा ब्राह्मणोऽस्मा-न्वमधिजातोऽसि त्वद्यं जायतां पुनः । असी स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति ॥ ३८॥

सकलपाठः पत्न्या अप्यनूहप्रश्चन्यर्थः । ब्राह्मणब्रहणं च पुत्रश्चात्रोः क्षत्रियवैद्ययोर्ध्यसार्थम् ॥ ३८ ॥

अनपेत्रमेहयोपस्पृज्ञान्त्यपः ॥ ३९ ॥

चितिमनपेक्षमाणा पत्योपस्पुरान्त्यपः । अपामुपस्पर्धनं गृक्षोः कम् ॥ ३९ ॥

हति पञ्जविशेऽध्याये सप्तमी काण्डका।

सञ्चयनं चतुध्यीमयुग्मात् बाह्मणान्भोजियत्वा पः लाशवृन्तेनास्थीनि पारेवर्स्य परिवर्त्त्योङ्गष्टकनिष्ठिकाः

⁽१) अथ यान्यश्ममयानि च मृत्मयानि च भवन्ति । तानि ब्राह्म-णाय दचाच्छवोद्वहमु ह तं मन्यन्ते यस्तानि प्रतिगृह्णात्यप पर्वेनान्मभ्य-बहरेयुरापो वा ऽअस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा तदेनमण्स्वेच प्रतिष्ठापयति (श० ब्रा० १२-५-२-१४)।

⁽२) कर्णप्रदेशस्य पश्चाद्धागे श्राहननं प्रहारं कृत्वा मारियत्वा तस्याः कुक्षिगोलको मृतस्य हस्तयोनिधेयौ ।

⁽ ३) प्रेतस्य इस्तपादावयचेषु अनुस्तरण्याः हस्तपादादीन्युप-घेयानि ।

भ्यामादाय पलाशपुटे प्रास्थति(१) ॥ १ ॥

'सञ्चयनम्' इति कर्मणो नामधेयम् । तत् चतुर्थेऽहिन कर्तव्यम् । अयुग्मान् ब्राह्मणान्मोजयित्वा पछाश्चनृत्वेनास्थीनि परिवर्श्ये परिवर्श्याङ्गष्ठकनिष्ठिकाभ्यामादाय पछाशपुटे प्रक्षिपति ॥ १ ॥

शम्यवकाः कर्दमं च रमशाने(२)॥२॥

चरान्दात्प्रास्यति । इमशानशन्देन अस्थिसञ्जय उच्यत इति सम्प्रदायः । भरमकुट इत्यपरे । ते च शमीशन्देन शमीशासामिन्छः नित । इतरे तु तत्पर्णानि ॥ २ ॥

अक्त्बास्थीनि सर्वसुराभिमिश्राणि द्विणपूर्वायतां कर्ष् खात्वा कुशानास्तीर्थं वस्त्रावकृतं च हारिद्रं वागि-ति निवपत्यस्मिन् ॥ ३ ॥

घृतेनाऽक्त्वाऽस्थीति (३)सर्वसुरमिणा मिश्रीकृत्य दक्षिणपूर्वायतां कर्षृ खात्वा तत्र कुशानास्तीयं हारिद्रं च (४)वस्त्रावकृतं 'वाक्' इत्य नेत मन्त्रेण निवपत्यस्थीनि ॥ ३ ॥

एतहाजसनेयकम् ॥ ४ ॥

वश्यमाणं तु शास्त्रान्तरातः ॥ ४ ॥ अनेन वा ॥ ५ ॥

मन्त्रेण निवपति ॥ ५ ॥

त्वा मनसानात्तेन वाचा ब्रह्मणा त्रय्या विद्यया पृर्वियमिक्षिकायामपार्थरसेन निवपाम्यसाविति ॥ ६ ॥ (५)इमज्ञानं चिकीर्षतः कुम्भे सत्रयनम् ॥ ७ ॥

⁽१) षटपळाशादिपत्रमुळेन भस्मस्थितानि प्रकटानि कत्वा वटक-दळीपळाशादिपर्णपुटे निद्धाति ।

^{् (}२) अवका—शेवालः । कर्दमः—क्वथित। मृत्तिका । यक्षकः र्दम इत्यपरे ।

⁽३) कपूँरागुरुचन्दनकस्तुरिकाकेसरादिभिः।

⁽ ४) वस्त्रखण्डं हरिद्रया रक्तञ्चास्तीर्थ ।

⁽५) श्मशानशब्दः पितृमेधवाची "अथास्मै श्मशानं कुर्वन्ति०" (द्वा० ब्रा० १३-८-१-१) इत्यादि ध्रतेः ।

पितृमेधं कर्नुमिच्छतः कुम्मे सञ्चयनं कर्त्तव्यम् । तस्मिश्च पक्षे कुशः हारिद्रास्तरणमस्थितंस्काराद्धर्ममात्रत्थाच कुम्म एव कर्नव्यम् ॥॥॥

निघानं च तृष्णीम् ॥ ८॥

निखननं च कुम्भस्य तृष्णीं कर्त्तन्यम् ॥ ८ ॥ प्रोषितश्चेत्प्रेयात्प्राचीनावीती (१)निवान्यां दुग्ध्वा

दक्षिणतोऽधिश्रयणोद्यासने ॥ ९ ॥

(२)कुर्यात्॥ ६॥

तत एव हरणम् ॥ १०॥

दक्षिणत एव खुग्घरणं कर्त्तव्यम् ॥ १० ॥

अघस्तात्स(३)मिथे घारयन् ॥ ११ ॥

'सुचं हरति' इति शेषः ॥ ११ ॥

उदगग्रान् कुशान् दक्षिणाग्रान् कृत्वा ॥ १२ ॥

तांश्च स्वावसर एव ॥ १२ ॥

सकुद्वा पितृबत्पर्यस्य ॥ १३॥

(४)सक्तदेव पितुवदणसन्यं पर्यस्येत्। "तस्य वा ऽपतस्याग्निहोत्र-स्योपचारः" (द्या० ११-५-१-६) इति प्रकृत्य सर्वे ह्येतदेवं श्रूय-त इति ॥ १३ ॥

तिवान्यां मृतवस्सां वत्सान्तरेण दुद्यमानां गां दुग्ध्वा गार्हपस्याः दुग्णं भस्म दक्षिणस्यां दिशि निरुद्य तस्मिन्तुष्णे भस्मन्यधिश्रयणमुद्धाः सनं च कुर्यादिति देवयाज्ञिकाः।

⁽१) प्रापितस्य मरणं सिन्निष्ठष्टे देशान्तरे चेत् शरीरमेव दाहार्थः मिनसमीपे आनेतव्यम् । विश्वष्ठष्टे चेत्तदा यत्र मृतस्तत्रैव लौकिकाभ्यां काष्टाभ्यामिन मिथित्वा काष्टवदेव विधिरहितं शरीरं दग्ध्वास्थीन्यानी- य विधिवत्युनर्दाहः कर्तव्यः । शरीरस्य तदस्थनां वा गृहागमनपर्यन्तं प्रति- विनमेव सायं प्रातहोंमः पुत्रादिमिः कार्यः । तत्र होमे विशेषमाह—

⁽२) 'निधानम्' इ० पा०।

⁽३) 'सिमधम्' इ० पा०।

⁽४) एकवारमेव पितृवद्यसञ्येन दक्षिणाभिमुखः पितृतोर्थेनाधामुः ख्या सुवा पर्यस्य आहवनीयमध्ये प्रक्षिप्य वस्यमाणं कुर्यात्। सकृद्ग्र-हणेन द्वितीयाहुतैनिरासः। पवकारार्थकेन वाशब्देन होमन्यतिरिकस्यो-हिङ्गनोपमार्जनप्राशनोद्वश्रणसमिदाधानादैनिरास इति देवयाहिकाः।

अतः परं कर्मावष्टे-

द्वारीराण्याहृत्य कृष्णाजिने पुरुषाविधि विधायोणीः भिः प्रच्छाचाज्येनाभिचार्य पूर्ववदाहः(१) ॥१४॥

कर्त्तव्यः॥ १४॥

शरीरनाशे त्रीणि षष्टिशतानि पलाशष्ट्रनानां कृ-ष्णाजिने पूर्ववत्॥ १५॥

्र पुरुषविष्यादि पूर्ववदाहान्तम् । तेषामेव सञ्जयनं पितृमेधश्च तेः रेवेति ॥ १५॥

अनिष्द्वाग्रयणेन नवस्याश्रीयात्पतितस्य सुक्त्वा प्रतिगृद्धा, विद्विषाणयोर्वाऽयाज्यं याजयित्वाविं प्रतिगृद्धोः भयादद्वा यस्याग्निभिर्न्यं याजयेयुर्यो वा यजेत वैद्दाः

नरं निर्वेषेत् (२) ॥ १६ ॥ तिगद्दयाद्यातम् । वैद्वानरो यजनीयेऽहनि अन्वारम्मणीयापू-र्वकः ॥ १६ ॥

⁽१) सन्दीपनवस्युखाधिश्रयणादिविधिना "सन्दीपनवतीः प्रस्य ग्रन्यधिश्रयन्तयुखाः" (का० श्रौ० २५-७-१२) इत्याद्युक्तेन दाहः कर्तव्यः ।

⁽२) आप्रयणेष्ट्या यजनमक्त्वा यदि यजमानो नवनिष्णवस्य घान्यस्य ब्रीहियवादेरश्नीयात् तदा वैश्वानरं द्वादशकपाळमण्नगुणयुक्तं यजनीयेऽहिन निवंपेत्। तथा पतिता महापालक्यादयो विहितानधि कारिणः तेषां पतितानामन्नं भुक्त्वा किञ्चित्रित्रिष्ट्य च वैश्वानरं निवंश्येत्। तथा विद्विषाणयेषां विद्विषाणो द्वेषं कुर्वाणौ तयोरुभयोद्वेष्य द्विषतोरम्नं भुक्त्वा किञ्चिद्रवादिकं प्रतिगृद्ध वा वेश्वानरं निवंपेत्। तथा मन्वादिमयोऽयाज्य उक्तः तं याजयित्वा वेश्वानरं निवंपेत्। तथा अर्थादद्वा उम्यत इत्यधस्तादुपरिष्टाच्च दम्ता यस्य तदुभयादत् प्राणिष्ठु पुरुषा श्वादिकम् तत्प्रतिगृद्ध वा वेश्वानरं निवंपेत्। तथा यस्य सम्बन्धिमर्गन्तिमः अन्यं यजमानमृत्विजो याजयेयुः सोऽग्निस्वामी स्वाग्निम् मिरुक्याजनिमित्तं वेश्वानरं निवंपेत्। यो वा भ्रान्त्या अन्याभिनिमः यजति सोऽपि निवंपेति देवसाविकभाष्ये स्पष्टम्।

कृष्णं वासी दक्षिणा ॥ १७॥ पुरोडाशे क्षामेऽवशिष्ठ ह समाप्य तदेव पुनर्निर्व-पेत् ॥ १८॥

क्षामे दग्धे पुरोडाशेऽवशिष्टं कर्म समाप्य तस्यैव इविषो निर्धापः कार्यः ॥ १८ ॥

अनेदं विचार्यते। किमशेषदाहे पुनर्निर्वापः उतैकदेशदाहेऽपीति। कि ताबत्पाप्तम्। सुन्नेणैव पक्षः—

एकदेशदग्येऽपि संघोगात्॥ १९॥

एकदेशदग्धेऽपि नैमिचिकं प्रवर्तते । कुत एतत् १, दाहसंयोगात् । दाहसंयोगोऽत्र निमित्तम् । एकदेशदाहोऽपि दाह पवेति ॥ १९ ॥

दर्शनाच ॥ २०॥

हर्यते चायमर्थां यथैकदेशदाहेऽपि भवति । 'यदा तद्धविः सन्तिः ष्ठतेऽथ पुनर्निर्वपेत्' इति तेनैव हविषा समाप्ति दर्शयति । तच्चैकदेशः दाह उपपद्यत इति ॥ २०॥

एवं प्राप्त आह-

न, नित्यस्वात्(१) ॥ २१॥

नैकदेशदग्धे नैमिचिकम्। नित्यो हाग्निसंयोगात् पुरोडाशस्य दाहो भवति। तत्र यस्य पुरोडाशौ क्षायत इति निमिचशब्दोपरोधः स्यात् , सर्वस्यैवाश्मिसंयोगात् पुरोडाशक्षायत्वमापद्यत इति। तस्माक्षकदेशः दोह नैमिचिकम् ॥ २१॥

यसु दर्शनमुकं तत्परि।हियते-

कर्मार्थं दर्शनम् ॥ २२ ॥

तक्कविः सन्तिष्ठत इत्यत्र इविःशब्देन कर्म छश्यते यदा तक्कविष्कं कर्म सन्तिष्ठत इति । अश्चेषस्य दग्धौ सत्यां द्रव्यान्तरेण परिसमाप्तिः॥२२॥

हति पञ्चविशेऽध्यायेऽध्मी कण्डिका ।

पशुश्चेदुपाकृतः (२)पलायते वायवे तमनुदिश्यान्यं

(१) तेषु हि कपालेषु पुरोडाशमवस्थाप्योपरिज्वलक्रिर्दर्भतृणैः अपणे क्रियमाणे सूक्ष्मांशदाहस्य वर्जयितुमशक्यत्वात्।

(२) 'पलायेत' इति पाठः।

तद्वर्णे तद्वयसमालमेत(१)॥१॥

यदि पशुरुपाकृतो नर्येत् वायवे तं पशुम् 'अयं वायवे' इत्येवमनु देशं कृत्वा अन्यस्तद्वर्णस्तद्वया आलब्बव्यः ॥ १॥

उपलभ्य वायवे तम् ॥ २ ॥

पशुमुपलभ्य वायवे आलमेत मिथ्यासङ्करपदोषपरिजिहीर्षया ॥२॥ अनाद्रणं वा ॥ ३ ॥

न वा पुनरालम्भ आदर्चन्यः। न हात्र चोदनेति ॥ ३॥

(२)प्राक् प्रयाजेभ्यश्चेत्रियुक्तो स्रियेतान्यमालभेत ॥ ४॥ पश्चित्रिकः सन् यदि प्राक्ष्ययोजेभ्यो स्नियेतान्य सालव्धव्यः॥ ४॥ पूर्वस्य वर्षा दक्षिणारनौ जुहुयात् ॥ ५॥

तदा च पूर्वस्य वपा दक्षिणाशौ होतन्या ॥ ५॥

सोमश्चेन्मार्जालीये य ईजानाः वितरो ये वितामहा येऽनीजाना यज्ञियाः सोमपासस्तेषामेष पद्धरालब्घोः ऽभ्रो स्वाहा देवेभ्यः सुहुतो यमायेति ॥ ६॥

सोमश्चेन्मार्जालीये वपा होतव्या "य ईजानाः पितरः" इत्यनेन मम्ब्रेण॥ ६॥

अनपनयो घाऽदुष्टत्वात् ॥ ७ ॥

'वा'शब्दः पक्षस्यावृत्तौ । अनपनयः पूर्वस्य पशोर्न हासौ दुष्ट इति । अतस्तेनेव यागः कत्तेव्यः । तदीयैव वपा दक्षिणाशौ मार्जालीये वा होतव्येति । नैमित्तिककार्यापश्या चात्र दक्षिणाग्निमार्जालीययोराहवः नीयधर्मप्रवृत्तिः ॥ ७॥

अवदानहानौ नाद्रियेत॥८॥

पश्वधदानहानावनादरः। एवं हि श्रूयते—"तस्माद्यादे किंचिदवः दानः हीयेत न तदाद्रियेत" (श० ब्रा० ३-८-३-१६) इति ॥ ८॥

(२) भाक् प्रवाजेभ्यः' इत्युक्तत्वात् प्रयाजश्रवृत्यनन्तरं सृते तेगैव

वागः कर्तस्यः ।

⁽१) तुणोपस्पर्शनादारभ्य प्राङ्तियोगादिदं द्रष्टन्यम् । नियोगादृध्वं तु नष्टः प्राप्यते चेत् तदाष्वर्यचं हुत्वा तेनेत्र यागः । अप्राप्तौ आष्वर्यचं हुत्वान्येन सदूशेन याग इति देवयाश्विकाः ।

हृद्यनाचो त्वन्यमाल भेतेत्येके हृद्यं पद्यारिति श्रुते।॥९॥

एके आचार्या हृदयनाशेऽन्यं पशुमालभनते । तस्मादेवं भूयते— "हृदयमु वे पशुः" (श॰ ब्रा १-८-२-१६) इति । तस्नाशे च सर्व एव पशुर्नष्टः स्यादिति ॥ ९ ॥

सर्वेषां वाज्यस्य यजेत् ॥ १० ॥

'वा' शब्दः स्त्रद्वयोपाचपश्चक्षावर्तकः। नावदानहानावनादरो न च हृदयनाशेऽन्य आलब्धव्यः यस्कारणं ''यदि किःश्चिद्वदानं हिनेत न तदाहियत'' इत्यर्थवादपरिशेषोऽयम्। किमर्थ इति चेत्। ''स हृदय-स्पैवाग्रेऽवद्यति'' (शब् ब्राव् १- (-३-१५) इत्यत्रताविधानार्थः। 'हृद्यं व पशुः' इत्ययमव्यर्थवादोऽत्रताविधानार्थं प्रव (१)। तस्मात्सर्वेपाम-वदानानां प्रत्येकं नाशे आज्यस्य यजेत्॥ १०॥

उत्तं हाचार्यण-

अर्थवादमात्रं पशुवचनम् ॥ ११ ॥

इति ॥ ११ ॥

संज्ञप्यमानश्चेबादयेताहुतिं जुहुयायस्पशुमीयुमक्र-तोरी वा पद्भिराहते अग्निमी तस्मादेनसो विद्वान्सुक्ष-त्वा हस हति॥ १२॥

अनेन मन्त्रेण ॥ १२ ॥

(२) इमं मे वहणेति च प्रत्यृचं द्वाभ्याम् ॥ १३ ॥ मन्त्राभ्यां जुहोति ॥ १३ ॥

पश्चाचेत्स्रवेत्साहारयोखा वा तामिभनन्त्रयेतोः वाश्रास्त्रवन्तीसगदामगन्म त्वष्टा वायुः पृथिव्यन्तारिक्षः म् यतञ्चतद्धतस्यो तदस्तु न तत्प्राप्नोति निर्फितिः

परस्तादिति ॥ १४ ॥

अनेन मन्त्रेण । नतु च सान्तारयोखास्त्रत्यिमन्त्रणं पशावन्वयत्रा-

⁽१) अतो न स्वार्थप्रमाणम् । तेन हृदयनाशेऽप्यनादिष्टं हुत्वा आज्यमेवोपादेयमिति ।

⁽२)(वा० सं० २१-१,२)।

त्रावादबाज्यम् । नेष दोषः, सान्नाय्योखायां हि प्रधानद्रव्यच्युतिः पर्रू खायां तूपसर्जनोदकस्य न प्राप्नोति तेनाप्राप्तत्वादुच्यते ॥ १४ ॥ यूपविरोह्गणेऽन्तस्तन्त्रः स्रृस्थितेऽहन्निइति पश्चाविशेऽस्याये नयमी कण्डिका ।

त्वाद्रं बहुह्यमालभेत ॥ १॥

यद्यहंगेणे तन्त्रमध्ये यूपविरोहणं भवति तदा संस्थितेऽहिन त्वरृद्देवर्यं पशुं बहुरूपं पादलमालभेत । सर्वाहःशेषभृतो यूपस्तिश्वामिलत्वाच्च पशुरिप सर्वाहःशेषभृत पविति संस्थितेऽहिनीरयुक्तं तत्कालता मा भृदिति । अत्र च केचित्सान्निपातिकैरेवाङ्गैयपेतं त्वाष्ट्रं कुर्वकित । आरादुपकारकाणि तु सवनीयसक्तान्येच सन्तीति तानि प्रसप्रवन्ते । अपरे त्वन्यथा वर्णयान्ति—न हात्र प्रसङ्गो विद्यते, प्रत्येकमहरहः
स्वनीयाद्यङ्गतन्त्रमेष विहितम् । तत्रश्च यद्यपि पत्नीसंयाजान्तता पदार्थप्यवसानं तथाप्यहरहः पत्नीसंयाजान्तरेवाङ्गेः सम्बन्धमेव द्रष्टव्यम् ।
सन्यथा हि सवनीयपुरोडाशादिविधानानुपक्तिः स्वादिति । अपसङ्गश्चेरसर्वाङ्गोपेत एव त्वाष्ट्रः कर्तुब्यः । अयमेव च पक्षो वरतर् इवामाति ॥१॥

(१)अनुबन्ध्याये चपामुत्स्बिद्यानुमर्शे गर्भमेष्टवै

ब्रुयात्॥ २॥

अनेन च द्यामेता प्रेष्यते । ततश्चाष्वर्युः प्रेषदाने ॥ २ ॥ दर्ज्ञा ने (२)स्थालीं चैवोष्णीषं (३)चोपकल्पयितवै

ब्यात्॥ ३॥

अयं शमितुः प्रतिप्रैषः। तद्रथीऽध्वयीरेव ॥ ३॥

वपान्तेऽनपेक्षमध्वर्युर्धजमानो वेत्यध्वर्युः प्रेष्यः ति निरुहैतं गर्भमिति विरुष्य श्रोणी प्रत्यञ्चं निरूहितवै

ब्यात् ॥ ४ ॥

⁽१) अधानुबन्ध्यायां गर्भसन्देहे तत्सद्भावे प्रायश्चित्तमित् देवयात्रिकाः।

⁽२) स्थालीं मेघश्रपणार्थाम् ।

⁽३) उष्णी ्गर्भवेष्टनार्थम् ।

प्रैषद्वयं चैतत्। उभयत्र हि क्रियापदमाम्नातं प्रेष्येति वृहीति च। तत्रेतिकरणपरिच्छित्र एकः प्रैयः रोषो द्वितीयः । प्रयोजनं मध्ये विरामः॥ ४॥

निरुद्यमाणमभिमन्त्रयत एजतु दशमास्य हति(१) पशुवदवदानं गर्भस्य ॥ ५ ॥

कर्त्तव्यम्॥५॥

कण्ठं वावकृत्य स्थाल्यां मेधस्रावणम् ॥ ६ ॥ कर्त्तव्यम् । मेधपक्षे व स्थाल्या समन्त्रकं त्रोक्षणं, जुहोतित्वात् ॥६॥ अवदानसाहितमधिश्रित्थोष्णीपवेष्ठितं गर्भ पार्श्वः तो निद्धात्यनाभिषारितमयदानवद्धृत्वा दक्षिणतो मेधं निद्धाति(२) ॥ ७ ॥

अनिभवारितमेधमन्तरा यूपाझी हत्वा दक्षिणतोऽङ्गानां स्थापयति॥०॥ प्रतिप्रस्थाता वशावदानकाले (३)प्रचरपयां मेधमवद्यति ॥ ८॥

प्रचरण्याश्च मन्त्ररद्विता जुहूबत्संस्कारिकया । मेधस्य चोपस्तीर्य द्विरवदानं प्रत्युपस्तारश्च ॥ ८॥

अवदानान्यनुजुहोति यस्यै त इति ॥ ९ ॥ वशावदानान्यनुमेधं जुहोति "यस्यै त०" (वा० सं० ८-२९) इत्य-नेन मन्त्रेण ॥ ९ ॥

अङ्गान्यहुता यस्य यस्या इति यथालिङ्गम् ॥ १० ॥ यविलङ्गो गर्भः ॥ १० ॥

- (१) यद्यन्बन्ध्या वशा गर्भिणी स्यात्तदा विशसने मातुः सकाः शात्पृथक् क्रियमाणं गर्भम् "पजतु दशमास्यः०" (वा० सं०८-२८) इत्यनेन अभिमन्त्रयेत्।
- (२) स्थालीस्थं मेधं वशावदानसंलग्नं शामित्रेऽधिश्विस्य उत्णीषेण लघुनस्त्रेण वेष्टितं गर्भं पशुश्रपणस्य पाश्वें समीपे स्थापथित । तं मेध-मनिमघारितमेव सवदानवत् जघनेन चात्वालमन्तरा यूपाग्नी हत्वा बशावदानानामासादनदेशस्य दक्षिणस्यां दिशि आसाद्यतीति देवया- शिकाः।
 - (३) प्रचरणी वसाहोमहवनीतो व्यतिरिका पाळाशोसक्। का॰ ५१

अविज्ञाते पुंचत् ॥ ११ ॥ अविज्ञाते गर्मे पुंचस्त्रयोगः ॥ ११ ॥ स्विष्टकृद्धनस्पत्यन्तरे प्रत्येत्य प्रतिप्रस्थाता प्रचरण्याणं सर्वे मेधमवद्याति(१) ॥ १२ ॥ स्विष्टकृतमनुजुहोति पुरुद्सम इति (२) ॥ १३ ॥ (३)अनेन मन्त्रेण ॥ १३ ॥

स्विष्टकृदन्त उद्णीषवेष्टितस्य वृक्षासञ्जनं वाप्स्ववहरणं वास्त्रृत्करोपकिरणं वा ॥ १४ ॥ 'वा' शब्दो विकल्पार्थः ॥ १४ ॥

(४)अनुव्याहारभयं (५)त्वेतेषु ॥ १५ ॥

"वृक्ष ऽपनं मृतमुद्धास्यन्तीति" (द्या० ब्रा० ४-५-२-१३) । तथा "अष्स्वेव मरिष्यतीति" (द्या० ब्रा० ४-५-२-१४) निन्दार्थवादः । पक्षान्तरविधानार्थे तदभिवायते ॥ १५ ॥

(६)समिष्टयजुरन्ते शामिश्र एव जुहुयात्तिष्ठ(७)न्म-इत इत्यस्वाहाकृत्य (८)महीद्यौरित्यङ्गारैरभ्यूहाति ॥१६॥ गर्भम्॥१६॥

अग्निहोत्र आसन्नेषु चेत्पान्नेष्वाहवनीयोऽनुगच्छेः

(१) वनस्वतियागानन्तरं स्विष्टकृतः पूर्वमित्यर्थः।

(४) अनुज्याहारः शाप इति धूर्तस्वामी ।

⁽२) प्रचरण्यां स्नृचि प्रतिप्रस्थाता सर्वे गर्भरसमबदायाऽध्वयुंणा स्विष्टकृद्धोमे कृते सति जुहुयात् ।

⁽३) "पुरुद्रस्मः०" (वा० सं० ८-३०)

⁽ ५) तु शब्दो यद्यर्थे । यद्येतेषु पूर्वोक्तेषु वृक्षासञ्जनादिपक्षेषु वैरिः कर्तृकादतुमापणात् शापात् वृक्षे एनं मृतमुद्धास्यन्ति अप्स्वेव मरिष्यः तीति क्षिप्रेऽस्मै मृतायेत्यादिह्रपात् मयं भवति तदेति देवयात्रिकाः ।

⁽६) समिष्टयज्ञहोंमान्ते शामित्राग्नावेव स्वाहान्तेन मन्त्रेणोष्णीष-वेष्टितं गर्भ जुहाति मन्त्रान्ते स्वाहाकारमनुचार्य जुहुयादित्यर्थः।

⁽७) "महतो यस्य०" (बा॰ सं०८-३१)

⁽८) शामित्रे क्षितं गर्भमङ्गारः "महो द्यौः०" (वा० सं०८-३२) इत्यनेन छादयेत्।

- द्वार्हपत्ये जुहुयात्र्याण उदानमप्यगादिति(१) ॥ १७॥ अनेन मन्त्रेण ॥ १७॥
- गाईपत्यश्चेदाह्यनीय उदानः प्राणमण्यगादिति ॥ १८॥ अनेन जुहोति ॥ १८॥

दक्षिणामिश्रेद्वाईपस्ये व्यान उदानमध्यगादिति ॥ १९॥ जुडुयात्॥ १९॥

सर्वे चेत्तूर्णे मधित्वा (२)प्रतिवातसुद्धृत्व वायव्या-माहुतिः; हुत्वा यथानुपूर्व्यकरणम् ॥ २० ॥

उपावहतेषु पात्रेषु यदि सर्वेऽस्रयोऽनुगच्छेयुः तदा तूर्ण शीर्घं मः थित्वा प्रतिवातमाहवनीयमुद्धृत्य वायन्यामाहुर्ति सुहुयात्। पुनस्तः मेनाहवनीयं प्राञ्चमुद्धृत्य यथासुपूर्वंमिश्रहोत्रिकाः॥ २०॥

निवातं चेत्पूर्ववन्मथित्वा पात्रसुद्धृत्य गाईपत्वे संस्कृत्य पश्चादाहवनीयस्य स्वयं पानम्(३)॥ २१॥

उपाबद्दतेष्वेव पात्रेषु यदि निवाते सर्वेऽग्नयोऽतुगक्छेयुस्तदा पूर्वः वत् तूर्णं मधित्वा प्राञ्चमाहवनीयमुद्धृत्य गार्हपत्यं संस्कृत्य । संस्काः रश्चाहोमार्थत्वादिमधीयते । पश्चादाहवनीयस्योपविश्य स्वयमेव पानम्। ययञ्चाग्निहोत्रविकार इति सम्प्रदायः, अम्युदितेष्टिवतः । अत्र पुनः श्रू-यते-'सैव तत्र प्रायश्चित्तिः' इति । तेन कार्यापत्तिरशक्या वन्तुम् ॥२१॥

अग्निहोत्रातिपत्तावाहुर्ति जुहुवान् मनो ज्वोतिर्जुष-तामाज्यस्य विच्छिन्नं यज्ञ्य समिमं द्वातु या इष्टा उषसी या अनिष्टास्ताः सन्तनोमि हविषा घृतेन स्वाहेति(४)॥२२॥

(१) 'इदं प्राणाय' इति त्यागः। तत आहवनीयमुद्धस्याग्निहोत्रं ज्ञहयात् ।

(२) प्रतिगतो वातं प्रतिवातः तं प्रतिवातिमत्याहवनीयविशेषः णम् , नत्वामिमुख्येऽव्ययोभावो वातामिमुखमिति । कुतः ? "यां दिशं वातो वायात्तां दिशमाहवनीयमुद्धार्यां (श० व्रा० ११-५-३-११) इति श्रतः ।

(३) पताान सर्वाणि प्रायक्षित्तानि कूर्वासादनोत्तरकालं प्राग्धोः मातु श्रेयानि इति देवयाञ्चिकाः ।

(४) अग्निहोत्रस्य साथम्प्रातहोंमस्य कालातिपत्तौ कालातिक्रमे । इदं ममसे स्थोतिषे इति त्यागः । अनेन मन्त्रेण। अतिपत्तिश्रवणाच्य कार्यापत्तिरवगम्यते। तथा च मन्त्रिक्षं 'विच्छितं यत्रं समिमं दधातु' इति। तथा 'या इष्टा उपसो या अनिष्टास्ताः सन्तनोमि' इति॥ २२॥

इति पञ्चविशेऽध्याये दशमी कण्डिका।

सत्रायाग्यांशक्तौ विश्वजिताऽतिरात्रेण यंजेत॥१॥

गूरी उद्यमे । सत्रायागूर्य सत्रायोद्यमं कृत्वा सत्राय सङ्कृत्ये सतीः त्यर्थः । एवं हि श्रूयते—"सर्वेभ्यर छन्दोभ्यः सर्वेभ्यः पृष्ठेभ्यः सर्वेभ्यः स्तोमेभ्य आत्मानमागुरते यः सत्रायागुरते विश्वाजित।ऽतिरात्रेण यजेत"(तै॰ ब्रा॰ १-४-७-७) इति(१)॥ १॥

सत्ताङ्गं वागूर्णमात्रश्चतेः॥ २॥

'वा' शब्दः पक्षान्तरप्रतिपत्तौ । सत्राङ्गं वा विश्वजिद्धवति । ततः श्र छतेऽपि सत्रे प्रवर्तते । कुत एतत् १ आगुरणमात्रश्रवणात् । न हि कश्चिद्दनापृथं करोति । आगुरणं च निमित्तं विश्वजितः । तस्मात्क्वतेऽः पि सत्रे प्रवर्तते हति । एवं पक्षद्धयोपप्रदर्शने सत्युच्यते । न कृते सत्रे प्रवर्तते अकृत एव प्रवर्तते । कृत एतत् १ आगुरणनिमित्तस्य तावः कालभावित्वात् । यावन्न क्रियते सत्रं तावदेव सङ्कृद्यो निमित्तमिति । अपि च निष्क्रयकार्ये मवति । विश्वजिद्यागं हि प्रकृत्योच्यते 'सर्वेभ्यः स्तोमेभ्यः सर्वेभ्यः पृष्ठेभ्यः सर्वेभ्यद्धन्दोभ्य आत्मानं निष्कीणीत' इति । निष्क्रयश्चान्नत एव भवति ॥ २॥

दीक्षितानां चेत्साम्युत्थानं जायेत सोमं विभन्ध तेनैव सर्ववेदसेन सर्वष्टेन यजेरन्(२)॥३॥

"अथ यदि सन्दीक्षिताः साम्युत्तिष्ठेरन्" इति प्रकृत्येवं हि श्रू यत इति । साम्युत्थानं चार्कसमाप्ते सत्र उत्थानम् ॥ ३॥

- (१) स सर्वेभ्यः स्तोमादिभ्यः आत्मानमागुरते तस्स्तोमाद्यधीनं कुरते यः सत्रायोपक्रमं कुरते तेन यावत्सत्रं न निष्पद्यते तावदास्मा तदः धीन एवेति श्रुत्यर्थः।
- (२) सत्रार्थं कृतदोक्षाणां यदि दवान्मानुषाद्वा निमित्तात्सामि अ-समाप्त पव सत्रे उत्थानं जायेत सत्रं नेव समाप्रयाम इति बुद्धिर्जायते । सोमेनोपलक्षितं सर्वं साधारणं धान्यवृतादिद्रव्यं विमज्य आत्मीयमा-तमीयं पृथक्कृत्वानेनेव पूर्वसूत्रोक्तेन विश्वजिता सर्वस्वदक्षिणेन पृथकपृ-धम्यजेरिश्चित देवयाज्ञिकाः।

कीते विभागश्चतेः॥ ४॥

स च विश्वजित्क्रीते सोमे मत्रति नाक्रीते। सुत एतत्, विभागः श्रवणात्। "सोममपमन्य" (ताङ्य० ४-३) इति। न चाक्रीतस्य विभागः सम्भवति। तस्मात्क्रीते व्विश्वजित्॥ ४॥

डपपाताद्वीभवतः॥ ५॥

'वा' शब्दः पक्षव्यावृत्तौ । उभयत्र क्रीते चाकीते च साम्युत्थाने विश्वजिद्भवति । क्रुत पतत् ? उपपातात् । साम्युत्थानं हि निर्मित्तं तः चिद्भिगोन विशेष्यते वाक्यं भिद्यते । तस्मादुभयते विश्वजित् ॥५॥ तिर्हे कथमच्यते 'सोममपमज्य' इति विभागश्रवणात—

विभागः क्रियागुणस्वात्(१) ॥ ६॥

क्रियागुणभूतानां द्रव्याणां सामर्थ्यपरिप्रातो विभागः सोऽनृद्यते । सोमशब्देन छक्षणया 'सोममपमज्य'इति ॥ ६ ॥

अनीतासु चेद्दक्षिणासुद्धात्रपच्छेदीऽद्क्षिणः सः। स्थाप्य पुनराहारः(२) ॥ ७ ॥

यद्यनीतासु दक्षिणासूर्गाताऽपिच्छचते तं ऋतुमदक्षिणं संस्थाप्य पुनराहरणम् ॥ ७ ॥

प्रस्तोता चेद्ब्रह्मणे वरं दत्त्वा पुनर्वरणम् ॥ ८ ॥ प्रस्तोता चंदपव्छिद्यते ब्रह्मणे वरं दत्त्वा पुनर्वरणं प्रश्तोतुः ॥ ८ ॥

- (१) न हात्र 'सोममपसज्य' इत्यनेन सोमस्य विभागो विघीयते। कस्मात्? सोमस्य क्रियागुणत्वात्, क्रियाङ्गत्वात् । इतरसाधारणद्रः व्यवद् यागार्थत्वात् । तथा हि, न तावदक्षीतसोमस्य विभागो विधानुं शक्यते, नापि क्षीतसोमस्य तस्येतरसाधारणद्रव्यविभागवत्सोमिन्वसागस्यार्थप्राप्तत्वात् । तस्मादुभयथापि सोमविभागविधानासम्भवादेकोक्रतसाधनानां सत्रिणां प्रवृत्तानां मध्ये साम्युचिष्ठतां प्राप्तमेव घनिभागं सोमविभागशब्दोऽजुवदित । सोमशब्दस्तु द्रव्यमात्रोपलक्षणाः थाः । तस्मात्त्रवृत्तमात्रस्योत्थाने विश्वजिद्धवतीति देवयाज्ञिकाः।
- (२) ज्योतिष्टोमे अध्वयुंप्रतिप्रस्थातृप्रस्तोत्रद्वातृप्रतिहृतृं सुन्वतां पर्रस्परमन्वारच्धानां पवमानार्थं गमनं विहितं (का० श्रो० ९-६-२६) सूत्रेण । तत्र दक्षिणानयनात्प्राक् प्रतिःसवने यदि उद्वातपञ्छेदः उद्वातु विभागः प्रस्तोतुः कृतान्वारम्मस्य विभागो भवति तदा तं प्रारच्यं यत्रं दक्षिणादानवर्जितं समाप्य पुनः तस्य यत्रस्य श्रात्वग्वरणादारम्य पुनः करणमिति देवयाणिकाः ।

प्रतिहर्त्ती चेत्सर्ववेदसं देयम् ॥ ९ ॥ युगपञ्चेद्विरोधाद्विकल्पः(१) ॥ १० ॥ उद्वातुप्रतिहर्त्रोर्युगपदपच्छेदे विरोधाद्विकल्पो नैमिचिकस्य ॥१०॥ पूर्वदौर्यल्यमानुपूर्व्ये प्रकृतिवत् ॥ ११ ॥

अनयोरेवानुप्र्यांऽपर्र्छदे पूर्वनिमित्तं दुर्वलमुत्तरं च बलवत् । प्रविक्षानानुपर्मदेनेनोत्तरस्यानुस्पत्तेः । तद्यथा—प्राकृतं कौद्यं विद्यानं विक्रतौ चोदकप्राप्तं प्रत्यक्षेण द्याविद्यानेन वाष्यत पव ॥ ११ ॥ यस्मिन्नहन्युद्राञ्चप्रच्छेदोऽहर्गणे तस्यावृत्तिः(२) ॥ १२ ॥

सवति ॥ १२ ॥

पत्न्युद्वधा दीचारूपाणि निधाय सिकतास्वासी-तोपस्रवणात्॥ १३॥

पत्नी रजस्वला दीक्षारपाणि राङ्कादीनि निधाय सिकतास्वासी-ताऽऽरक्तविरमणात्॥ १३॥

तिष्ठेत्सिन्धिचेळघोः(३) ॥ १४ ॥
स्रान्धिचेळघोस्तिष्ठतिक्रिया नियम्यते ॥ १४ ॥
वेदिसमीपे सुत्यासु ॥ १५ ॥
स्रुत्यासु वर्जमानासु वेदिसमीपे तिष्ठेत् ॥ १५ ॥
त्रिरात्रान्ते गोमूत्रमिश्रेणोदकेन स्नापयित्वा परिधानादि करोति सान्निपातिकम् (४) ॥ १६ ॥

- (१) तदा उद्गात्रपच्छेदनिमित्तं तस्यादक्षिणं समापनं प्राप्नोति, प्रतिहर्त्रपच्छेदनिमित्तं च तस्मिन्नेव प्रयोगे सर्वस्वदानं प्राप्नोतीति विरोग्धः स्पष्ट प्रव ।
- (२) द्विरात्रादावहर्गणे यस्यां सुत्यायामुद्रात्रवच्छेदो भवति तदे-वेकमहरदक्षिणं कृत्वा तस्यैकस्याह्नो व्युत्कामतेत्वत आरभ्यावृत्तिः न सकलस्याहर्गणस्य । "अनीतासु चेहिशणासु" इत्युक्तवात् । तृतीयसव-नेऽवच्छेदेऽनादिष्टमेव भवति । अन्यस्याऽनुकत्वात् । सञेषु तु तेषामद्-श्चिणत्वात् आवृत्तिरेव तस्याह्न इति देवयाहिकाः ।
 - (३) प्रातःसन्ध्याकाले सायंसन्ध्याकाले च सिकतास्त्रेव तिष्ठेत्।
- (४) रजोदर्शनाचतुर्थेऽहनि स्मृत्युकस्नानानन्तरं गोमूत्रमिश्रेणोद्-केन तां रजस्वलां स्नापियत्वा वासपरिधानादि कर्म सान्निपातिकं सन्विपत्योपकारकं करोति नारादुपकारकं दीसणीयाभूम्युव्लेखनादि।

पश्चिमें प्रायाधितामां निरूपणाध्याये प्रकादशी कण्डिका । ४०७

पदार्थजातम् ॥ १६॥

(१)पजातायाश्च दशरात्रादृष्ट्यी स्तानादि ॥ १७॥ कर्म भवति ॥ १७॥

न गर्मिणीं दीक्षचेदित्येकेऽचित्रया गर्भा इति श्रुतेः॥१८॥ नानुबन्ध्या प्रकरणात् ॥ १९॥

अमुं मन्त्रम् ॥ २० ॥

इन्द्रियः स्कनमद्भिरुपसिञ्चेद्यो मेऽद्य पयसो रसः परि दोषादुदर्षियः अग्निहोत्रमिव सोमेन तमहं पुनरा-दद इति ॥ २१ ॥

थनेन मन्त्रेण ॥ २१ ॥

उदकं चेत्तरेत्तद्भिमन्त्रयेतोन्दतीर्घलं घत्तौजो घत्त सहो घत्त मा मे दीक्षां मा तपो निर्वधिष्ठेति ॥ २२ ॥ अनेन मन्त्रेण ॥ २२ ॥

(४)अवदृष्टश्च ॥ २३ ॥ 'च' शब्दादनेनैव मन्त्रेणाभिमन्त्रयेत्॥ २३ ॥

(५)अमेध्यं हष्ट्वा सूर्यमुपतिष्ठेताबद्धं मनो दारिह्यं चक्षुः सूर्यो ज्योतिषाणः श्रेष्ठो दीक्षे मा मा हासीदिति॥१४॥

⁽१) प्रस्तायाः प्रसवदिनादेकादशेऽहि।

⁽२) इयं श्रुतिः अन्बन्ध्याप्रकरणे प्रकाते न पत्नीप्रकरण इति देवः याज्ञिकाः।

^{े (}३) स्वप्नाध्यायनिन्दितं 'स्वप्नेऽत्रगाहतेऽत्यर्थं' जलं मुण्डांश्च पश्यति' इत्याद्यनिष्टस्चकं स्वप्नम् ।

⁽४) 'अववृष्ट्य' इ० पा०।

⁽ ५) शुद्रान्स्यजवापिष्ठपुरीपादिकं अपवित्रसस्तु ।

अनेन मन्त्रेण ॥ २४ ॥ (१)शोणितं चेत्कुर्याद्वद्रियाभ्योऽद्भयः स्वाहेति जुहुयात् ॥ २५ ॥

(१)आर्चञ्चकरणे तृषाभ्योऽद्भ्यः स्वाहेति॥ ३०॥

(२)छद्याविष्टः पयः पीत्वोदकं वा छर्दयीत निष्ठ्यूः तवद्धोमः ॥ ३१ ॥

वयसावप्रसुते चमसेऽन्तिरिक्षेण पति यातुधानः प्रबोधितश्चमसं यमभ्यचुरुचुतदग्निष्टुच्छुन्धतादिह पुनः स्वाहेति(४)॥ ३२॥

(५)अभ्युपाकृतचमसमुपस्ये कृत्वाग्नऽआयाहि वी तये गृणानो हव्यदातये निहोता सत्सि वर्हिषि स्वाहेति ॥ ३३ ॥ जुहोति । अथस्तनमनुषाकृते द्रष्टव्यम् ॥ ३३ ॥

(१) दीक्षितश्चेश्प्रयत्नपूर्वकं स्वदेहादुधिरनिष्कासनं कुर्यात्।

(२) दीक्षितकर्त्तुके दुःखेनाश्रुपाते ।

(३) छदिः वसनम्।

(४) पक्षिणा सोमचमसोपरि म्बादिस्रवणे छते अध्वर्युः जुहोति ।

(५) मिश्चतांश्चमसान्सदस्रो निष्कास्य तेषां नाराशंसानामाः प्यायितानां हिवर्धानमध्ये निधानं कृत्वा (का० श्रौ० ९-१२-९, ८) स्तोत्रोपाकरणं (का० श्रौ० ९-१४-५) क्रियते नाराशंस्वव्यतिरिक्तान्मः क्षितान्सदस्रो निष्कास्य प्रश्लाह्य पुनस्त्रीय स्तोत्रोपाकरणं क्रियत इति सर्वत्र विहितम्। तत्र नाराशंसे तद्यतिरिक्ते वा चमसे सदसोऽनिष्काः सिते स्तोत्रोपाकरणे कृते प्रायश्चित्तमाह—अभ्युपेति।

आग्निभिषे वा हिरण्यगर्भ इत्युचा ॥ ३४॥ बाहवनीये वेति विकल्पः॥ ३४॥ हुताहुतस्रास्मिणेऽङ्गारमन्तः परिधि निर्वत्त्ये॥ ३५॥ इति पञ्जविशेऽज्याये एकादशी कण्डिका।

(१)क्रशतरुखेन जुहोति हुतस्य चाहुतस्य चाहुतस्य हुतस्य च पीतापीतस्य सोमस्येन्द्राग्नी पिबत्रः सुनमिति॥१॥ अनेन मन्त्रेण ॥ १ ॥

(२)वषदकृते॥ २॥

हुताहुतसंसग्धामिति चमस उन्नयनम् एवं हि शास्त्रान्तरे श्र्य-ते—"बस्यामिति समसमम्युषयन्ति" इति ॥ २॥

चुक्रते स्वाहत्यनुवषर्कृते ॥ ३ ॥

(३) खुद्दोति ॥ ३ ॥

सःसर्गकाले बोपपातसामध्यीत्॥ ४॥

'वा'शब्दः पक्षान्तरपरिप्रहे। न वा वषद्कारानुवषद्कारयोहींमः। उपपातो द्ययं श्रूयते। नैप्रिनिकस्य चोपपातकाळता न्याय्येत्युक्तम्। यत्पुनरुक्तं वषद्कतेऽनुवषद्कते वेति। तद्योमद्वयाविषयत्वेनाशङ्कपते॥४॥ (४) तस्य सक्षणं मा यजमानं तमो विदन्मर्त्विजो मायः

सोमिममं पिवा स्रास्ट्रमभयं ऋतुमिति ॥ ५ ॥ अनेन मन्त्रण ॥ ५ ॥

(५)अवष्ट्रश्रमञ्जगिनदुरिन्दुमयागात्तस्य त इन्द्रवि-न्द्रपीतस्येन्द्रियावतो गायत्रच्छन्दसः सर्वगणस्य सर्वग-

- (१) परिश्वीनां मध्ये तस्त्रमीय एवाङ्गारं होमसमर्थं ज्वालारहितः पृष्ठमग्निं पृथक्तस्य दर्भतरुणेन तं संस्रष्टं सोमं तस्मिनङ्गारे जुहोति।
 - (२) वषटकारानन्तरम्।
 - (३) तमेव हुताहुतसंस्रष्टं सोमम्।
 - (४) हुताहुतसंस्रष्टस्य सोमस्येत्यर्थः।
- (५) यदा स्रोमस्योपिर मेघो वृष्टः स्यात् मक्षाधिकारिणां मक्षण-म् तस्यादुष्टत्वासस्यैव स्वकाले होमानन्तरम् । मक्षमन्त्रमात्रे विशे-षोऽयम् ।

ण उपहूतस्योपहूतो सक्षयामीति ॥ ६॥ अनेन मन्त्रेण॥ ६॥ स्वदाल एव—

स्त्रिद्धप्रज्ञन्द्सो जगरुज्ञन्द्स इति यथास्वनम् ॥७॥ विशेषः॥ ७॥

अच्छन्द्समेके(१)॥ ८॥

छन्दः शब्दमेके न कुर्वन्ति ॥ ८॥

पतितं चमसमालभतेऽस्कन्पर्जन्यः पृथिवीमस्कन् गामृषभो युवा अस्कन्नमा विद्वाभूतानि प्रस्कन्नाज्जाः यतार्थं हविरिति ॥ ९ ॥

थनेन मन्त्रेण। चमसशम्बेन च द्रव्यं ढक्ष्यते तस्संस्कारात्॥९॥ उत्तरपुर्वे जुहोत्युपरचे(२) चमसं दुष्टं प्रजापतये स्वाहेत्यथयेऽन्येऽनादिष्टास्तान्खरे जुहुवाद्मये वैद्यान-राय स्वाहेति नाराद्याध्यक्षद्वपवायात्तदुक्तम्॥१०॥

नाराशंस्त्रेश्रच्छुष्यत । तदुक्तं "पृतभृतश्चमसान" (का० औ०९-५-२१) इति । उत्तरेण सह विकरपार्थमित्सुरुयते ॥ १० ॥

(३)अन्त्याद्वा ग्रहात्स्तोकमासिच्य भचयेयुः ॥ ११ ॥ आप्रयणोऽन्यो ग्रह उच्यते अन्तसम्बन्धात्(४) ॥ ११ ॥ कलश्चेदुपवापात्क्षीरासेचनमेके ॥ १२ ॥ द्रोणकलश्चेष्युप्येत क्षीरासेचनमेके कुर्वन्ति ॥ १२ ॥ पके—

हिरण्यवद्रोदकम्(५) ॥ १३॥

(१) गायत्रच्छन्दस इत्येवमादिपद्वजितं मक्षमन्त्रं ब्रुयादित्याहुः इति ।

(१) अमेध्यातिपातश्वाद्यवद्याणादिना दुष्टं चमसस्यं सोमम्। अन्ये चमसव्यतिरिक्ताः सर्वे सोमाः दुष्टाः तान् बरे ब्रहासादनार्थं कृतेऽभ्वर्युः जुंहुयात् । शुष्कस्य नाराशंसस्याप्रयणादाप्यायनं कार्यमिति देवयाज्ञिकाः।

(३) पक्षान्तरमाह—

(४) अन्ते गुष्कनाराशंससमीपे मवो गृहीतोन्त्यः ऐन्द्राग्नवैश्वदेवः मक्तवतीयमाहेन्द्रमहावैश्वदेवानां मध्येऽन्यतम इति देवयात्रिकाः।

(५) सुवर्णसंयुक्तमुदकम् । हिरण्यं मध्ये निधाय तदुपर्यपामासेः कः कार्यं इति देवयात्रिकाः ।

पञ्जीवरो प्रायाश्चित्तानां निरूपणाच्याये द्वादशी कण्डिका । ४११

(१) उल्लयने च ॥ १४ ॥

पतदेव मवति । हन्नयनयस्मादित्युष्णयनं प्तभृदुच्यते ॥ १४ ॥ आद्रिभेदने माहतेन ब्रह्मसाम्ना स्तुवीरन् (२) ॥१५॥ अद्री भिन्ने महिल्ज्जास्त्रश्च ब्रह्मसाम क्रियते । ब्रह्मसाम च माध्य-न्दिने ब्राह्मणाच्छंसिविष्रहस्तोत्रम् ॥ १५ ॥

(३) चतुःखिः शदोमश्र(४) ॥ १६॥

अदिमेदने भवति ॥ १६ ॥
(५)सोमापहरणे विधावतेच्छतेति व्यात् ॥ १७ ॥
अध्वर्धुवंद्वविषयसात्रेषणस्य ॥ १७ ॥
अद्यानेऽहणपुष्पाण्यर्जुनान्यभिषुणुयात् ॥ १८ ॥
अर्जुनशब्दश्चात्र तणविषयः(६) । 'आमेषव'शन्देन च वागसाधनस्वोपलक्षणम् । श्रुतप्रतिनिधिरयम् । ततस्य सोमशब्देनोपलक्षणम् ॥१=॥
(७)इयेनहृतं प्तीकानादारानहणद्वी हरितकुद्धान्यवर्षिभे पूर्वालाभ उत्तरान् ॥ १९ ॥

(१) तस्मिन्नुपक्षीणेऽपि पयो हिरण्यबदुदकं वा विञ्चेत्।

(२) मरुद्देवताकेन ब्रह्मसाझ्ना उद्गातारः स्तुवीरन् ।

(३) अथाद्रिभेदन पवाध्वर्यंचे नैमित्तिकमाह-

(४) 'परमेष्टिने स्वाहा' 'प्रजापतये स्वाहा' (वा० सं० ८-५४) इत्यादि 'सिळिळाय स्वाहा' इत्यन्तैर्मन्त्रेः चतुर्त्विशदाहुतीनां होमः।

(५) केनचिच्छत्रुणा सोमापहरणे छते।

(६) "शब्दं बाळतूणं घासो यवसं तृणमर्जुनम्"। (अमरे॰

२-५-१६७)।

(७) खदिरादेखंडुकालीमस्य वृक्षस्य ये बल्लीकपा अञ्चरा उत्पचनते तब्ल्येनहरूमान्युक्यते। तथा पूर्तीकान् अस्येवं क्याल्यानम् धादारानिति। अध्या आदारानिति। अध्या आदारानिति। अध्याक्ष्याने पूर्वीकानिति। अध्यक्षं पद्मुपादाय पर्यायान्तरप्रयोगं करोति सूत्रकारः। श्रुत्युक्तं चादारानित्येतत्। पूर्तीका रोहिषतुणमिति निघण्टौ। तथा अक्षणद्वां अध्यकरागा वृक्षाः। तथा इरितकुशान् अशुष्कानाद्विस्तान्। माधवाचार्यास्तु पूर्तीकान् स्यामलान् सोमसदृशान् लताविशेषान् प्रतिकसंशानित्युणुन्यादिति व्याख्यातवन्तः।

सभिषुणुयात । एवं हात्र श्रूयत(१) इति ॥ १८ ॥

(२) एकां गा दत्त्वा समाप्य पुनर्यज्ञः ॥ २० ॥ अत्र च गोः सङ्ख्यासम्बन्धा यहाः तदेकामिति । ततश्च हिरण्याः

दीनामानेवृत्तिः॥ २०॥

अवभृषान्ते वा श्चातिसामध्यात्॥ २१॥

अवसृथान्त पत्र वा पुनर्यक्षो भवति । तथा "अथावसृथादेवोदेत्य पुनर्वीक्षेत" (२१० ज्ञा० ४-५-१०-६) इति श्रुतेः ॥ २१ ॥ कलशासदेने वषद्कारनिधनं ब्रह्मसाम ॥ २२ ॥

कर्तव्यम्॥ २२॥

अनुलिप्सध्वामिति प्रेष्यति ॥ २३ ॥ अष्वर्युः । अन्ये चानुलिप्सन्ते ॥ २३ ॥

यद्तुलभरंस्तदेकधनैरभ्युन्नीय प्रभावयन्तःप्रचरेयुः(३)॥२४॥

आग्रयणाद्वाऽनुपलभमानेषु पूर्ववत् ॥ २५ ॥

अनुपळम्यमाने सोमे आत्रवणादादाय एकधनैरम्युद्धीय पूर्ववत्प्र-भावयन्तः प्रचरेयुः(४) ॥ २५ ॥

अनीतासु चेहाक्षणासु भेदनं पूर्ववहत्त्वा तथैव यज्ञः(५)॥२६॥

"स यद्यनीतासु दक्षिणासु कलको। दीर्येत तत्राप्येकामेव गां दद्यादः थावमृथादेवोदेत्य पुनदींक्षेत" (रा•ब्रा०४-५-१०-७) इति हि श्रुतेः ॥२६॥

इति पञ्चविद्येऽध्याये द्वादशी कण्डिका।

⁽१) "यदि सोममण्हरेयुः विधावतेच्छतेति ज्ञ्यात्०" (श० ज्ञा० ४-५-१०-१,६) इत्यादि ।

⁽२) गवां शतस्य स्थाने एका गौः।

⁽३) यत्परिमाणं सोमं प्रसृतिमाशं वा अञ्जलिमात्रं वा अञ्जिषवणः चर्मणि पतितं प्राप्तुयुः तदेकधनस्थैर्जलैरम्युन्नीयाप्याय्याभ्युन्नयनेनोः परिसेचनेन बहुलं कृत्वा प्रभावयन्तः सर्वेषु द्रोणकलशसोमसम्बन्धिः द्रव्येषु प्रापयन्तः प्रचरेयुः सर्वं द्रोणकलशसोमकार्यं तेन सोमेन कुर्युः रिति देवयान्निकाः।

⁽४) द्रोणकलशान्तरं सम्पाद्य।

^{. (}५) प्ववत् एकां गां दस्वा अवभृषार यव पुनः स एव यही भवति यः प्राप्कियमाण इति देवयाकिकाः ।

प्रातः सबनाच्चेत्सोमोऽतिरिच्येत तसुन्नीयोपाकरण-

मस्ति सोमो अथमिति(१)॥ १॥ मन्त्रान्तरविधानादितरो निवर्त्यते॥१॥

सहत्वतिषु गायत्रेण स्तुवीरन् ॥ २ ॥ महिल्जासु ऋश्च गायत्रेण साम्रा स्तुवीरन् ॥ २ ॥ ऐन्द्रावैष्णवर्र होता द्यासिति ॥ ३ ॥

(२) ऐन्द्रावैष्णवं शक्तं होता शंसीत ॥ ३ ॥

यस्मात्स्तोमाद्तिरिच्येत स एव कार्यः सर्वञ्(३)॥४॥

यत्स्तोमसमनन्तरं सोमातिरेको भवति स एव कार्यः सर्वत्र । स

र्वत्रप्रहणात्सवनान्तरेऽपि ॥ ४ ॥

6

माध्यान्दिनाच्चेत्पूर्ववदुपाकरणम्(४) ॥ ५ ॥ कर्तव्यम् ॥ ५ ॥

(५)वणमहाँ २ असीति वृहतीष्वादित्यवतीषु गौरीवितेन स्तुवीरन् ॥ ६ ॥

गौरीवितं साम, तेन स्तुवीरन्॥६॥

(२) तत्स्तोत्रानन्तरम्।

(४) यदि अन्तिमोक्य्यचमसोन्नयनानन्तरं पृतसृति सोमोतिरिः

च्येतेति देवयाज्ञिकाः।

(५)(वा॰ सं० ३३-३९)

⁽१) अच्छावाकोक्ध्यविग्रहसम्बन्धिचमसोन्नयनानन्तरं यदि पू तभृति सोमः चमसेषु पूर्णेष्वप्यविशय्येत तदा उक्ध्यान्ते तमितिरिक्तं सर्वमिष सोमं दशसु होत्रादीनां चमसेषु विमागेनोन्नीय तृणाभ्यां होतृचमसमुपस्पृश्य 'अस्ति सोम' इत्यनेनैव मन्त्रेण स्तोत्रोपाकरणं कुर्यादिति देवयाधिकाः।

⁽३) प्रातः सवनेऽच्छावाकोक्य्ये यिख्यवृदादिस्तोमो भवति स एव प्रायश्चित्तार्थे स्तोत्रेऽपि कार्यः। न केवलमत्र किन्तु सर्वत्र माध्य-न्दिने सवने तृतीयसवने चेति। माध्यन्दिनेऽपि सवने अन्त्य उक्थ्यस्तो-त्रे यिख्यवृदादिस्तोमस्तत्र सोमातिरेकनिमित्तस्तोजेऽपि स एव कार्यः। एवं तृतीयसवनेऽपि यञ्चायिज्ञयान्ते सोमातिरेके अन्तिमस्तोत्रस्तोम एव सोमातिरेकनिमित्तस्तोत्रेऽपि भवतीति देवयाज्ञिकाः।

(१)एतत्कृत्वोक्ध्यं पूर्ववद्घोता(२) ॥ ७॥ "ऐन्द्रावैष्णवः शःसति" इति पतदुक्तं भवति ॥ ७ ॥ तृतीयसवनाच्चेद्विष्णोः शिपिविष्टयतीषु

गौरीवितेन ॥ ८॥

तृतीयसवनाबेदितिरिच्येत शिविविष्टिविष्णुलिङ्गासु ऋश्चु गौरीवि तेन स्तुवीरन्॥८॥

(३)वा गृहीत्वा विगृह्णीयात् ॥ ९ ॥

'वा' शब्दाद्यदि पूर्वेण न निःशोषितः स्रोमस्तत उक्थ्यं गृहीत्वा विगृहीबात् ॥ ९॥

उक्थ्याचेत्वोडशी कार्यः(४)॥ १०॥ उक्थ्यसंस्थाके नृतीयसवने सोमोऽतिरिच्येत वोडग्री कर्तव्यः॥१०॥ षोडिशिनश्चेदातिरात्रः॥ ११॥

'कर्तब्य' इति वर्त्तते ॥ ११ ॥

अतिरात्राच्चेद् नृहत्(५) ॥ १२ ॥

स्तोमः कर्तव्यः ॥ १२ ॥

महावतमेके यथोक्तम्(६)॥ १३॥

व्रदेशास्तरे ॥ १३ ॥

असोर्यामो वा अन्त्याचेत्रस्यैवाष्ट्रस्तिः॥ १४॥ अस्य शब्देनासोबीमोऽभिधीयते । ततम्रोदतिरिच्येतः तस्यैवावृत्तिः कार्या ॥ १४ ॥

(१) 'एतत्कृत्वोक्थ्यम्' इति पाठोनास्ति ।

(२) स्तोत्रगानानन्तरम्।

(३) 'यतस्त्रत्वोक्य्यम्' इति पाठः 'वा' इत्यस्य पूर्वम् ।

(४) उक्श्यसंस्थः प्रारम्धोऽपि निमित्तवशात्वोडशिसंस्थः कार्य इति देवयाष्ट्रिकाः।

(५) तदा तदुपयोगाय विष्णोः शिपिविष्टवतीषु बृहतीषु बृहतीस

कर्तव्यम् । शाखान्तरात्।

(६) अतिरात्रादतिरिक्ते सोमे तदुपयोगाय महावतं साम यथा गवामयने उक्तम्—"पृष्ठोपाकरणं वाणेन॰' (का॰ श्रौ॰ १३-२-१८) इत्यादिना तथा कुर्यन्तीति देवयाहिकाः।

(१)नातीरकोऽस्तीति स्रतेः ॥ १५ ॥
"न द्यतोऽम्यधिकोऽतिरेकोऽस्ति" रति श्रुतेः ॥ १५ ॥
पूर्वात्सवनादतिरिक्तस्योत्तरे सम्पावनमेके ॥१६॥
पक्षे आचार्याः पूर्वसवनातिरिक्तसोममुत्तरे सवने सम्पावयग्ति(२)॥
अस्य विधेरर्थवादोऽयम्॥ १६ ॥

तं निकासयमानोऽभ्यतिरिच्येत इति श्रुतः ॥ १७॥ तमुक्तरसवनसोमं निकासयमानः पूर्वसोमोऽस्यतिरिच्यते यद्यस्यः सरं सवनसोमं प्राप्ट्यामीति ॥ १७॥

तृतीयसबनाच्चेद्वारियोजनेऽवनीयहोमः(१)॥१८॥
अस्मृतावृजीषमिश्रस्याप्स्ववहरणम्॥१९॥
यदि हारियोजनकाले न स्मर्यते तदा ऋजीषमिश्रमप्तु नवहरेत्॥१८॥
दीक्षितश्रेद्दुपतप्येतोप्यानां येनेच्छेलेन चिकित्सेत्॥२०॥
उप्यानि च सर्वसुरभीणि तेषां येनेच्छेलेन चिकित्सेत्।॥२०॥
आग्नीश्रमेनं नयतेति व्यात् कृतं चेत्॥२१॥
अध्यर्थुर्वहुवचनान्तत्वादन्येनेतारस्तव्चाग्नीश्रं यदि कृतं भवति
तदैव ब्र्यादिति॥२१॥
पवं प्राप्त आह—

अक्रुतेऽप्यविशेषात् ॥ २२ ॥

अक्टतेऽप्यासीक्रे आसीश्रमेनं नयतेति वक्तव्यमेव। अविशेषेण हि श्रूयते—"तस्मार्च दीक्षितानामबस्यं विन्देदासिश्रमेनं नयतेति ब्र्यात्" (श॰ ब्रा॰ १-६-१-२९) इति ॥ २२॥

(१) न हातोर्यामात्परं संस्थान्तरमस्यतिरिकविनियोगाय।

(३) द्रोणकलशे गृहीतस्य हारियोजनस्य मध्येऽतिरिकस्य सोमस्य

प्रक्षेपं ऋत्वा होमः कार्यं इति देवयात्रिकाः।

(४) प्रथमवर्ते प्रक्षिसानामौषधानां व्रीहियवादीनां सर्वसुरमीणां च शुण्डीपिप्यल्यादीनां मध्ये चिकित्सिको वैद्यो येनौपधेन चिकित्सितुः मिच्छेत् देन भिषज्येत्।

⁽२) सम्पावनं पषमानकाले "पूतभृति पूयमानेन तस्तवनसोमेन सह पावनम्।

तदा च-

(१)तदेशे वासः॥ १३॥

वीक्षितस्य भवति॥ २३॥

बासतीवरमुद्कमाचामेदित्येके चात्वालगताभ्यः ॥२४॥ बसतीवर्गभ्यः॥ २४॥

तत्र मन्त्रमाह्—

आपः प्रजापतियेज्ञो यज्ञस्य भेषजमसीति ॥ १५॥ अनुस्वनमेनमालभेरम्बस्य एतदः प्रातःस्वनं तद्र-क्षध्यं तद्गोपायध्यं तद्द्रो मा व्यवच्छैत्सीदिति(१)॥१६॥ सदा आदित्या इत्युत्तरयोः सवनयोः॥ २७॥ विशेषः॥ २७॥

म्रियेत चेश्निर्मन्थ्येन दग्ध्वा शामित्राद्वास्थीन्युपनहा नेदिष्ठिनसुपदीक्ष्य तेन सह यजेरन्(३)॥ २८॥ सृतं यजमानं निर्मन्थ्येन शामित्रेण वा दग्ध्वास्थीन्युपनहा तस्य यो नेदिष्ठी स्वो आता स्यात् तं दीक्षयित्वा तेन सह यजेरन्॥ २८॥

(४)सत्रगणयज्ञे सहत्वद्याद्दात् ॥ २९ ॥ पतच्च सत्रे भवति गणयशे च 'तेन सहयजेरन्'इति सहत्वद्य-न्दात् ॥ २९ ॥

(५)एकपञ्च दर्भपूर्णमासवत् ॥ ३०॥

(१) ज्वरादिरोगशानित यावत्।

(२) एनं ज्वराद्यभिमूतं दीक्षितं सर्वे ऋस्विजः सवनान्तेषु स्पृः श्रोरन्।

(३) स्वारणिभ्यां तदानीमेव मिथतेनाग्निना शामित्रेकदेशेन वा दग्ध्वा अग्नौ स्मार्तविधिरहितं दाहमात्रं हत्वा तस्य दीक्षितस्य दग्ध-स्य अस्थीनि शाखान्तरात्कष्णाजिने वध्वा। पत्न्यपि मृतस्यैव तत्र प-त्नो कर्म करोति नेदिष्ठी तु यजमानकर्मेति धूर्तस्वामिन इति देवयान्नि-कमाच्ये स्पष्टीकृतम्।

(४) तयोरेवानेकयजमानसङ्ख्यावात् नान्यत्र।

(५) एकस्य यजमानस्य यज्ञ एकयज्ञोऽग्निष्टोमादिः। विधिन्नदेव दाहः कार्यः। एत्नीमरणेऽप्येवमेवेति देवयाज्ञिकाः।

पञ्चविशे प्रायश्चितानां निरुपणाच्याय त्रयादशा काण्डका । ४१७ "मरणान्तं भवति" (का० औ० २५-७-९) इत्येनदुक्तं भवति ॥३०॥ (१)एनन्कृत्वा राजानमभिष्ठन्यायृहीत्वा ग्रहान् दाक्ष-णपूर्वस्यां वेदिसक्त्यां यामेन स्तुवीरन् ॥ ३१॥ यथोपदेशमेतन्कत्वा राजानमभिषुत्य अहा प्रमृहीत्वेव व क्षिणपूर्वस्यां वेदिस्नक्त्यां यामेन साम्ना स्तुवीरन् ॥ ३१ ॥ तिस्षु पराश्च सार्पराज्ञीषु(२) ॥ ३२॥ तिस्षु पराचीषु अनम्यावृत्तासु सार्पराक्षीषु स्तुवीरक्षिति। यहुवच मादुद्गातारः॥ ३२॥ मार्जालीये वा ॥ ३३॥ स्तुबीरामिति विकरुपः॥ ३३॥ (३)स्तुते माजीलीयं जिः परियन्त्यपसन्यः सन्योः ह्नारनानाः स्तोत्रिया जवन्तः॥ ३४॥ स्तुते स्तोचे उद्गातारो मार्जालीयमपसव्यं जिः परियन्ति सन्यो-क्ताझानाः स्तोत्रियाश्च जपन्तः ॥ ३४ ॥ (४)अग्न आयुर्णेषि पवस इति प्रतिपद्भवति ॥३५॥ प्रवानस्य प्रथमा ऋक्प्रतिपदुच्यते ॥ ३५ ॥ संवत्सरेऽस्थीनि याजयेयुः॥ ३६॥ प्रयोजकव्यापारेण प्रयोज्यन्यापारा लक्ष्यते अस्थीनि याजयराम-ति । यथा-'निषादस्थपति याजयेत्' इति ॥ ३६ ॥ इदं विचार्यते-कि मरणात्संवत्सरेऽस्थियतः, उत कर्मापवर्गादिति। (१) एतत् पूर्वोक्तं "निर्मन्थ्येन दग्ध्वा०" (का० श्रो० २५-१३-२८) इत्यादिकं कृत्वा सौत्येऽहिन सोमाभिषवं कृत्वेत्यर्थः। (२) पराक्षु पराङ्मुबीव्वनात्रत्तासु सार्पराज्ञीषु सर्पराज्ञी नाम त्र ह्मचेदिनी सर्पराजस्य स्त्री कडूः पृथिव्यमिमानिनी, तथा दृष्टासु । "आयं गी:0' (बा॰ सं॰ ३-६,७,८) इत्यादीनां निसुणामृजां 'सार्पराह्मी' इति नामधेयम्। अगृहोत्वा प्रहानित्युक्तेऽप्युपांश्वन्तयां प्रयोनं प्रतिषेध इति । (३) 'आर्थ गौः' इत्यादि स्तोत्रपाठपूर्वकपरिगमनानन्तरं होता तस्मिन्तेव देशे उपविश्य प्राचीनावीती दक्षिणाभिमुखः सार्पराज्ञीः शं-सति। एतावन्सृतोपकाराय वैकृतं कर्म अस्मिन्सुत्याहे भवति। (४) ''व्यात ऽआयूर्थवि०'' (वा० सं ३५-१६) **%10 43**

नियमकारिशास्त्राभावाद् अनियमे प्राप्त आह—

कर्बापवर्गा द्स्रम्सवान्मरणस्य() ॥ ३७ ॥

कर्मापवर्गाः संवस्तरेऽस्थियज्ञः । न हि मरणं संवस्तरिवेशेषणस्वन सम्भवति कदाचित्स्वम्बद्धेऽपि संवस्तरः पूर्वत इति । तस्मान्कर्मापक गदिव संवस्तरऽभ्धियज्ञः ॥ ३०॥

(२)अ य**रिमितस्तो मेन य** जेरन् ॥ ३८ ॥ ज्योतिष्टोये दि स्तोमपरिमाणसुक्तयः , इहापरिमितस्तोमोऽभिर्घाः यते, वचनात् ॥ ३८॥

त्रिवृद्बहिष्पवमानेन वा ॥ ३९ ॥ अस्थीनि यजेरन् ॥ ३९ ॥ तदा च—

सप्तदशमन्यत्॥ ४०॥

सप्तदशस्तोमकमन्यद्भवनि(३) ॥ ४० ॥

मैत्रा रुणा ग्रान् प्रहान् गृहीघात् ॥ ४१ ॥

'पेन्द्रवायबात्पृषे मेबावरुणा गृह्यत' इत्युक्तम् , पतद् ब्यूदछन्दसि बादशाह(४) ॥ ४८ ॥

(५)प्रातिनिधिको याजमानं क्रयीत् ॥ ४२॥ नद्यस्थां कर्तृत्वं सम्मवति ॥ ४२॥

र्दाक्षणीयापुरुषसंस्कार।शीर्वजेम् ॥ ४३॥ किन्ते॥ ४३॥

समाप्तेऽस्थीनि सपाञाण्यरण्ये निवपेयुः॥ ४४ ॥

⁽१) मरणस्यावधित्वे तत्सत्रमध्य पत्रानुष्टानमस्थियज्ञस्यापद्येत । तचायुकम् असम्भवात् कममध्ये कमोन्तरनिषेधात् ।

⁽ ६) अस्मिन्नास्थयक्षे शास्त्राक्तर्पारमाणातिकान्तस्तोमो भवति ।

^(៖) बहिष्पवमानव्यतिरिक्तमाज्यादिस्तोत्रज्ञातं सत्तदशस्तोमकं मवतीनि ।

⁽४) वस्थियके प्रथमं मैत्रावरुणं गृहीरवा कस्यचिद्धम्ते समर्प्य पश्चादैग्द्रवायवं गृहीरवासाद्य ततो मैत्रावरुणस्य परिमार्जनप्रभृति सादनं करवा ततः शुकादिरयब्रहणम् प्रकृतिवदिति देवयात्रिके स्पष्टम् ।

⁽ ५) प्रतिनिधिभूतः पुत्रादिः।

पञ्जविशे प्रायश्चितानां निरूपणाध्याये चतुर्दशी कण्डिका । धश्य

प्रतिपस्यन्तराविधानात् ॥ ४४ ॥

पुनदीही वा युक्तत्वात्याचाणाम् ॥ ४५ ॥

वाश्ववः पञ्चान्तरपरिग्रहे । पुनर्दाहो सवति नारण्ये निवापः । कुत-पतत् ? युक्तत्वात् पात्राणाम् । नानि हि यतिपस्य। युज्यन्ते, वितायाः न्तिनर्देशात् । "दक्षिणहस्ते जुद्धुर्ण नादयति" (काण्यां० २५-७-२१) इत्येवमादि । अन्हन्तनंस्कारात् पुनर्दाहः । यद्यति चाहिनाध्यानिर्ददः न्ति यञ्चपात्रेख्यति करणता पात्राणां नथापि नादने प्रनिपत्तिस्तेषां विनीयान्तिनर्देशात् । तस्मात्नाधुक्तं 'पुनदाँहा वा युक्तत्वात्यात्राणाम्' इति ॥ ४५॥

ततः सञ्चनादि(१) ॥ ४६॥

तत ऊर्छ सञ्चयनादि कर्चन्यम् ॥ ४६ ॥ इति पञ्जविद्येऽध्याये त्रयोदकी कण्डिका ।

उखां चे हिम्रान्त्रियेत सोपकरणमाहिनाग्न्यावृता दाध्वा नेदिष्ट्यमि चित्वा तमस्मा अनुद्विदेवेके(२)॥१॥

उखाभरणेन साग्निकोऽहर्गणो लक्ष्यते। तत्र चेन्छियेत कश्चियत मानः सोपकरणमाहिताग्न्यावृता दहेत्। पवं छत्र श्रूपते—"यद्यु छि यते स्वैरेव तमाग्निभिवंहन्त्यश्चाग्निभिरितरे यजमाना आसत इति" (श्रुण ब्राण १२-३-६-२)। तत्र च नेदिष्ट्याग्निभित्या तमस्मा अनुदिशे दिखेके। नेदिष्ठी हि तन्कार्ये करोति पवं च तन्कार्ये छतं भवति यदि तत्फलमनुदिशतीत्यभित्रायः॥ १॥

न कमेफलासम्भवात्(३)॥२॥

(३) न हि कर्मफल दातुं शक्यते अस्याम्तत्वेनानुपादेयत्वात्। तेन नेदिष्टिना स्वेष्विष्ठपु स्वकीयेन दृश्येणानुष्टितस्य साग्निवित्यस्य कतोः फलं नेदिष्टिन पवेति ।

⁽१) पुनर्दाहानम्तरं सञ्चयनादि अस्थिसञ्चयनप्रभृति सर्वमीर्ध्व दहिकं स्मातं भवतीति देवयाश्विकाः ।

⁽२) सापकरणमग्निपात्रक्षो करणसंयुक्तम् आहिनाम्यावृता मृतस्याहिताग्नेः सम्बन्धिन्या इतिकतंत्र्यतया सन्दीपनवत्यधिश्रयणा विकास (का० श्री० २५-७-१२) दग्ध्वा साग्निवत्यं कतुमारम्भश्रमृति समाप्त्यन्तं कत्वा तं क्रतुं तस्य क्रताः फलं अस्मै दीश्रामध्ये मृताय अनुविक्षाम्यये स्ताय स्त्रम् ।

नैतदेवं फलानुदेशः कर्तव्य इति । न हि कर्मफलप्रदानं सम्भवः ति । अक्रताभ्यागमकतविप्रणाश्यमसङ्गत् । तस्मान्नैवानुदेशः कर्तव्यः॥२॥ उपदीक्षी स्वेष्याप्रेषु नखनिक्कन्तनासुद्धादनान्तः। सान्निपातिकम् ॥ २ ॥

उपदीक्षी नेदिष्ठी स्वानशीन्विहत्य नखनिकन्तनायुद्धादनान्तः सा-श्रिपानिकं कर्म करोति ॥ ३ ॥

तेषूपहविध्वाग्री स्रामुजेत ॥ ४॥ वीक्षिता उपह्वयम्बमित्येवमुपहविध्वाश्वासंसर्गे कुर्यात्॥ ४॥ अनाहिताग्निश्चेरोष्वेवेत्येके वैश्वानरं निर्वेपेत् यस्याः

ग्निभरन्यं याजयेयुरिति वचनात् ॥ ५ ॥ यद्यनाहिताग्निनेविष्ठी भवति तदा तेष्वेवाग्निषु नखनिक्रन्तनादि करोति, ततश्च वैश्वानरिनर्वापः कार्यः। एवं हि श्रूयते-"यस्याग्निभि-रन्यं याजयेयुर्यो वा यजेत् वैश्वानरं निर्वपेत्' (का०श्रौ०२५-८-१६) इति । तस्य चायमेव विषय इत्यमित्रायः ॥ ५ ॥

एवं प्राप्त आह—

नाश्चतेः ॥ ६ ॥

नैतदेवं तेष्वेवाग्निषु नेदिष्ठ्यपि करोतीति । न होवं श्रूयत इति ॥६॥ वैद्यानरस्य तर्दि को विषयः ? स उच्यते—

आपदि वैइवानरः॥ ७॥

सवसम्मोहे सित परकीयैरिग्निमियांगे इते वैश्वानर इति(१)॥ १॥ समानजनपदस्यस्वे महारान्ने प्रातर्नुवाकसुपाकृत्य

पूर्वः पूर्वः कर्म पवर्त्तियेत्(२)॥ ८॥

"राजन्यः समानजनः" (का० औ० २२-१-२९) इत्युक्तम् । तेषां

⁽१) तस्माद्नाहिताय्रीनामत्रानधिकार एवेति।

⁽२) यदा हो यजमानो मिथः प्रीतिरहितौ वसन्तादिके यागकाले वर्षान्तरादि प्रतीक्षमाणार्वातकान्तं मन्यमानो स्वाधिकारप्रवृत्तौ एकः स्मिन्देशे गिरिनद्यादिव्यवधानं विना यागार्थं सोममेकस्मिन्काले सुनुतः तदा समेत्य सवनात्संसव इत्युच्यते । सर्वं कर्म सत्वरं प्रथमं प्रथमं कारयेदिति देवयाक्षके स्पष्टमः

पञ्चार्वेशे प्रायश्चित्तानां निरूपणाध्याये चतुर्दशी कण्डिका । ४२१

यदि संसवो भवति। समित्येकीमावे अनद्यन्तरेऽगिर्यन्तरे वा संसवो भवति तत्र कर्मे महारात्रे प्रातरतुवाकमुपाइत्य इतरोऽपि इतरापेक्षया पूर्वः पूर्वः कर्म प्रवर्त्तयेत्॥ ८॥

खुसमिद्रहोमः(१)॥९॥

कर्त्तव्यम् ॥ ९ ॥

स्थान्तरं च कुर्यात्(२) ॥ १०॥ इतरापेक्षयेव संस्थानरं कर्चन्यम् ॥ १०॥

(३)इच्छन्बृषण्वती प्रतिपत् ॥ ११ ॥

पवमानस्य प्रथमा स्तोत्रिया प्रतिपतुच्यते । सेच्छन्तृषण्वतीति इच्छयान्वयप्राप्तेव ॥ ११ ॥

अनुसवनं वा॥ १२॥

'अतु'शब्दः प्रतिशब्दस्यार्थे । प्रतिसवने वा वृषण्वती भवति न बहिष्यवमान प्रवेति विकल्पः ॥ १२ ॥

(४)ब्हद्रथन्तरपृष्ठः ॥ १३ ॥

संसवस्तोमः कार्यः। एवं हि श्रूयते—"स्रुसव उमे कुर्यात् गोसव उमे कुर्यात् अभिजितावण्येकाहे उमे बृहद्रथन्तरे कुर्यात्" इति ॥१३॥ नौरश्रवसे साध्यन्दिने पवमाने तदावपनश्रुतेः ॥१४॥

नारश्रवस् साध्यान्द्रम् प्यमानं तद्वयमञ्जूतः ॥६०॥ तौरश्रवसे सामनी माध्यन्दिने प्यमाने प्रश्नेतन्ये। कुत पतत् , त-

- (१) अतिशोब्रं कर्म कुर्वद्भिरिप सुसमिछे एवास्रो होमः कार्य इति।
- (२) इच्छन्परकीययागापेश्रया स्वकीये यहे संस्थोत्तरं संस्थाधि-क्यं कुर्यात्। यदोतरेणाग्निष्टोमः प्रारब्धः तर्द्यत्यग्निष्टोमं कुर्यात्। यद्यत्यग्निष्टोमस्तर्द्यंक्थ्यम्, यद्यक्थ्यस्तदा षोडिद्यानम्, यदि षोडशी तदातिरात्रम्। इच्छन्प्रारब्धामेव संस्थाम्। कर्कादयस्तु 'इच्छन्' इत्येत-त्यदमन्त्रिमेण स्त्रेण योजयन्ति। तेन तन्मते संस्थाधिक्यं नियमेन वृषण्व-ती प्रतिपद्धिकरूपेनेति। तदयुक्तम्। मूलभूतताण्ड्य (ताण्ड्य० ९-४) श्रुतिविरोधात् शाखान्तरविरोधाद्य। तत्र हि संस्थाधिक्यस्यैव विक-हणो दृश्यते न प्रतिपद इति देवयाज्ञिकाः।
- (३) 'वृषन्' शब्दयुका—'पवस्वेन्दो वृषा स्तत' इत्यादिका ऋक् वृषण्वती ।
- ं (४) "उमे बृहद्यन्तरे कार्ये" (ताण्ड्य०९-४) इति ताण्ड्ये श्र-वणातः।

दावयनश्रुतेः । तत्र द्यावायः श्रूयते —तदेवः प्रक्रत्य "अत्र ह्यावयन्ति" "अत्रोद्धयन्ति" इति ॥ ४४ ॥

आसीकमाभिनिधनमामीकावानि चैके॥ १५॥ एके आवार्या आसीकाद्यान्यपि सामान्यावपन्ति॥ १५॥ प्रातःसवने जहोति संवेशायोपवेशाय गायण्ये छन्दसंऽभिभृत्ये स्वाहेति॥ १६॥ अनेन मन्त्रेण। आगन्तुत्वादन्ते॥ १६॥ विश्वेद्धने जगत्या इत्युत्तर्योः सवनयोः॥ १७॥ विश्वेषः॥ १७॥

(१)विह्वीयसजनीयकयाशुभीयानि होता श्रुम्ति ॥१८॥ स्कनामधेयान्येतानि वहिष्ववमानस्तोत्रसमनन्तरं यञ्छस्रं तत्रै-तानि होता शंसति॥१८॥

साख्यमरणिमच्छन्तः प्राजापन्यची जुहुयुः(२) ॥१९॥ सिवसम्बन्धि साख्यं तन्मरणिमच्छन्तः प्राजापत्यची जुहुयुः ॥१८॥ (३)प्रातःसवनेऽध्वर्युमी्ध्यन्दिने होतोङ्गाता तृतीः

यसवने ॥ २०॥

जुहोति ॥ २०॥

अनुसवनं ब्रह्मा गृहपतिश्च ॥ २१ ॥

जुहुतः(४) ॥ २१ ॥

सर्वेमरणमिच्छन्तः सर्वेऽनुसवनम् ॥ २२ ॥ सर्वेषां प्रतिपक्षनिक्षिप्तानां मरणमिच्छन्तः सर्वे पवैतेऽनुसवनं

⁽१) 'विहव' शब्दोऽस्मिनस्तीति विहवीयम् 'ममाग्रे वर्च' इति । यो जात एव प्रथमो मनस्वानिति सजनीयमिति देवयाज्ञिकाः ।

⁽२) सहराः सहरास्य सखाः परकीयोऽध्वर्धुरध्वयोः सखाः, होता होतुः, उद्गातोद्वातुः, ब्रह्मा ब्रह्मणः, यजमानो यजमानस्य । अध्वर्धुहोत्रुद्धाः सृब्रह्मगृहपतयः परकीययज्ञस्याध्वर्यादेः सख्युर्मरणमिञ्जन्तो बाङ्कन्तः प्राजापत्यर्चा ''प्रजापते न०'' (वा० सं० २३–६५) इत्यनया उक्तकाले होमं कुर्युरिति देवयाज्ञिकभाष्ये ।

⁽३) होमकालमाह—

⁽४) त्रिष्याप सवनेष्वत्ते ब्रह्मा गृहपतिश्च जुहुयाताम् ।

पञ्चविरो प्रायाश्चित्तानां निरूपणाच्याये चतुर्वशी कण्डिका । ४२३

ज्ञहित ॥ २२ ॥

नयन्तरेडम्। नयो गिरिभिचेत् ॥ २३ ॥

गिरि भित्वा या नदागता तदन्तरे संसदो न अवति, संसदसोम-निमित्तं न भवनीत्यर्थः(१)॥ २३॥

गिरों (२) ॥ २४ ॥

गिर्यन्तरेऽप्यसंसवः॥ २४॥

(३)श्याहे च ॥ १५॥

असंसवः। यावन्तं प्रदेशमहा रथा गञ्छित तदन्तेऽण्यसंसवः॥२५॥

(४)सर्वत्राऽविविषाणानाम् ॥ २६॥

अविद्विषाणानां तु सर्वत्रेवासंसवः ॥ २६ ॥

विदेषेऽण्यर्घ वायुर्महान्तससुद्र इति श्रुनैः ॥ २७ ॥ अन्यतरावेद्वेषेऽण्यसंसवो भवति । एवं हि श्रूयतं-"वायुः ससुद्रश्च विदेष्टि कतमण्डरन्ति"(५) (शाङ्का० सु० १३-५-२३) हति ॥ २७ ॥

(६)सोमदाहे यथास्वं धुत्तान्तान्धारयेयुः ॥ २८॥ धारणं स्वपदार्थानामन्त्रमरणम् ॥ २८॥

⁽१) यत्र द्वयोर्चेरिणोः सहप्रारब्धयज्ञयोर्मध्ये व्यवधायिका नदी भवति तत्र संसवो न भवतीति ।

⁽२) कस्मिश्चन महति पर्वते वैरियज्ञयोर्व्यवधायकेऽप्यसंसव इति देवयाज्ञिकाः।

⁽३) रथाह्ने प्रदेशे यज्ञयोर्व्यवघायके गिरिनद्यादिव्यवघानं विनापि असंसव इति देवयाज्ञिकाः ।

⁽४) परस्परं द्रषमकुर्वाणानां सर्वत्र गिरिनद्यादिव्यवधानं विना-प्यसंखव इति देवयाज्ञिकाः।

⁽५) अर्यं वायुः समुद्रं सदा द्वेष्टि शोषियतुमिच्छिति। समुद्रश्च सर्वदा स्नेहपरः अत एव महान्यहुळ एव वायुक्रतेन द्वेषेण समोप एव स्थितस्य तस्य किमोप न होयत होते श्च रथः। अनेन द्वष्टान्तेन अन्यत रस्मिन्द्वेषं कुर्वाणेऽपि इतरस्य स्नेहपरस्य किमपि नष्टंन भवनीति ज्ञायते।

⁽६) सामस्य दाहे सित यथाम्बमध्वय्वदियंद्यस्यं कम वृत्तान्ताः न्वत्तस्य कतस्य कमणोन्तानध्वय्वदियो हृदये घारयेयुः। मया एतत्पः दार्थानन्तरं मदोयं कर्म कृतमित्येवं।चत्ते दृढं घारणमविस्मरणं कुर्युः रित्यर्थः।

प्रतिनिधाय यथापूर्व यज्ञेन चरेयुः(१) ॥ २२ ॥

प्रतिनिधाय सोमद्रव्यं स्वपदार्थभ्यः यथापूर्व यज्ञेन चरेयुः ॥२९॥

पञ्च गा दत्त्वा प्राग्द्वादद्याः पुनर्यज्ञः(२) ॥ ३०॥

अत्र गोः संख्यासम्बन्धो या गास्ताः पञ्च । ततस्र दिरण्यादीनामः

निवृत्तिः द्वादशाहः प्राक्युनर्यक्षः ॥ ३०॥

तत्र तद्याग्रत्युवस्मिन्दास्यन्तस्यात्सत्रेऽप्यः

विशेषात् (३) ॥ ३१ ॥

संत्र 5िय सोमदाहे भवत्येवैनत्। कुत पततः १ अविशेषातः॥ ३१॥ दानं प्रायश्चित्तसंयोगात्(४) ३२॥

(५)न चादक्षिणत्वात् ॥ ३३ ॥ न वा दानं प्रवर्त्तते, "अदक्षिणानि हि सत्राणि"दति ॥ ३३ ॥ तस्य त्वह्वः पुनराहारः ॥ ३४ ॥

'सवति' इति सुत्रदोषः ॥ ३४ ॥

ब्रह्मा प्रायश्चित्तानि जुहुयादनादिष्टानि ॥३५॥

यान्यनादिष्टनिमित्तानि। यथा-"यदि दीक्षासु किञ्चिदापचेत" (श्र० व्रा०१२-६-१-७) इति, तिन्निमत्ताविशेष आदिष्टानि तानि ब्रह्मा सुद्दोति। एवं हि श्रूयते-"ता ब्रह्मैव सुद्दुयात्" (श्रूण्यात् ६-१-३८) इति ब्याः इत्यक्षीकरणेन स्त्रीलिङ्गबहुवचनान्तता। तथा-"यद्युक्तो भूरिति चतुर्गृः हितमाज्यं गृहीत्वा" इत्येवमादि महाव्याहृतीरेव प्रकृत्य श्रूयते "यदेव प्रयो विद्याये शुक्तं तेन ब्रह्मस्वम्" (श्र० व्रा० ११-५-८-६,४) इति ॥३५॥

(६)ब्रह्मा विलिष्टा सन्दर्धातीति श्रुते: ॥ ३६॥

⁽१) प्रशान्ते दाहमये यथास्थानमागता अध्वय्वद्यः यथापूर्वं पूर्ववत् सोमापहरणवत् (का०श्रौ० २५-१२-१७, १९) अर्जुनश्येन हः तादिकं प्रतिनिधाय प्रतिनिधिद्रव्यं सम्पाद्यासिषुत्य कृतावशिष्टं यज्ञं समापयेयुरिति देवयाज्ञिकाः।

⁽२) द्वादश्या राजेः शक् स एव यज्ञः पुनः कार्यः।

⁽३) तत्र पुनर्यञ्चे तद्दक्षिणात्वेन दद्यात् , यत्पूर्वस्मिन्प्रयोगे दास्यः । स्तर्यात् कृतस्नां कृतुदक्षिणामित्यर्थः ।

⁽ ४) अतः सत्रेऽपि नैमित्तिकं दानं भवतीति पूर्वः पक्षः ।

⁽५) सिद्धान्तमाह— (६) शाखान्तरे।

पञ्जिषिशे प्रायश्चित्तानां निरूपणाच्याये चतुर्वशी कण्डिका । ४२५

विलिष्टं दुरिष्टं बत्तद्रह्या सन्दथाति, "बद्दे यश्वस्य दुरिष्टं तद्रह्या सन्दर्भाति" इति श्रुतेः ॥ ३६ ॥

न्त्रिवेदसंयोगाच्च ॥ ३७ ॥ अपि च वेदनयविद्वितकर्मसंयोगो ब्रह्मण पंचति ॥ ३७ ॥ इति पञ्जविद्येऽध्याये चतुर्वश्ची कण्डिका।

इत्युपाध्यायकर्कविराचिते कात्यायनसूत्रभाष्ये पश्चविंकोऽध्यायः ।



षड्विंशोऽध्यायः।

आधानादीनि पितृमेधान्तानि कर्माण्यभिधाय वेदान्तरविद्वितान्ये काहादीन्युक्तवा तेषामेव यानि नैमिक्तिन्यङ्गानि 'मिन्ने जुहोति' इत्ये-वमादीनि, यानि च नैमिक्तिन्येव पुरुषार्थरूपाणि क्षामवत्यादीनि तान्यप्यभिद्वितानि। इदानीमवसरप्राप्तः प्रवग्योऽनुविधेयस्तद्र्थं स्त्र मारम्यते—

(१)दीक्षासु महावीरान्त्सम्भरति ॥ १॥ दीक्षाशब्दवाच्यः पदार्थो निकापितः। तासु वर्त्तमानासु महावीराः नसम्मरति महावीरान्करोतीत्यर्थः । भहावीरैश्चोपलक्षितमन्यद्प्यत्र पिन्वनादि साम्भ्रयत एवेति । प्रयोजनं तेषामप्यन्तराये प्रयोक्तृत्वम्॥१॥ अन्तःपात्यदेशे सम्भाराज्ञिद्धाति ॥ २॥

तानाह— मुदं वल्मीकवपां वराहाबिहतं प्तीकानजापयो गवेधुकाः कृष्णाजिनमभि चोत्तरतः(२)॥३॥ देवस्य त्वेत्यभ्रिमादायौदुम्बरी वैकङ्कतीं वारातिमात्रीणं सब्ये कृत्वा दक्षिणेनास्त्रभ्य जपाति युञ्जन इति(३)॥४॥

⁽१) अनेकदीश्वापक्षे यस्मिन्नहनीच्छा भवति। एकदीक्षापक्षे च दीक्षितोऽय ब्राह्मण इति प्रैषानन्तरं प्रागस्तमयात् महावीरसम्मरणं श्रप-णान्तं कृत्वा आपाक दुद्धरणं प्रातः कर्तन्यम् । महावीरग्रहणं पिन्वनरौ-हिणकपाळानामप्युपळक्षणम् ।

⁽२) मृत्पिण्डम्—उपदीकाभिः इतो मृत्सञ्चयः, तस्य वपेव वपा
मध्यवर्ती लोष्टः। वराहः-सूकरः तेन विहतं तदुत्वातां मृत्तिकाम् ।
पूतीकान्-रोहिषपुष्पाणि। गवेधुकाः-जलसन्निहितमहातृणजानि शुक्लानि फलानि। पतान्सम्भारान् प्राक्संस्थानुदक्संस्थान्वा निधाय कृष्णाःजिनमिं च वश्यमाणलक्षणामेतेषां सम्भाराणामुत्तरतो निद्धाति इति
देवयान्निकाः।

⁽३) उदुम्बरतहत्थां विकङ्कततहत्थां वा हस्तप्रमाणामभ्रि "देवस्य त्वाठ" (वा०सं० ३७-१) इति मन्त्रेणादाय वामहस्ते तां हत्वा दक्षिर णहस्तेन स्पृष्टा "युक्षते मन०" (वा०सं० ३७-२) इति मन्त्रं जपतीति सन्नायः।

सन्यहस्तिस्थताया एवालम्य जपो यथा स्यादिति दक्षिणप्रहणम्॥४॥ सदमादस्ते पिण्डवदेवी खावापृथिवी इति ॥५॥

दक्षिणोत्तराभ्यां पाणिभ्याम् । "दक्षिणः साम्रिः" (का० औ० १६-२-२०) इति बतिना निर्दिश्यते(१) ॥ ५ ॥

कृष्णाजिने निद्धात्युत्तरतः ॥ ६ ॥ स्दम् ॥ ६ ॥

देन्यो वम्रय इति चलमीकवपाम्(२)॥ ७॥ 'आदत्त' इति वर्त्तते॥ ७॥

इयस्यग्र इति वराहविहतम्(३) ॥ ८॥ आदत्ते॥ ८॥

इन्द्रस्यौजस्थेति पूनीकान् (४)॥९॥
मखायेति पयः(५)॥१०॥
तृष्णीं गवेधुकाः॥११॥
'आदत्त' इति सर्वत्रानुषद्वः॥११॥

(६)सम्भृतानभिमृशाति मखायेति ॥ १२॥

- (१) अध्वर्युः "देवो द्यावापृथिवी॰" (वा॰ सं॰ ३७-३) इति मन्त्रेण विधणं मृत्पिण्डमाद्त्वे 'पिण्डवत्' इति पाणिभ्यां गुह्णाति दक्षिणः साभ्रिरिति रूभ्यत इति सूत्रार्थः । अस्मिन्स्त्रे मृच्छव्देन अतिविक्कणाया भाण्डादिनिर्माणयोग्यायाः कुम्भकारसंस्कृताया मृदः पिण्डाऽभिधीयते।
- (२) उपदीकृतो मृत्सञ्चयो वल्मोकस्तस्य वपेव वपा तां मध्यस्थं लोष्ठम् "देव्यो वम्रयो०" (वा० सं० ३७-४) इत्यनेन आदाय कृष्णाजिने मृत्यिण्डादुत्तरे तृष्णीं निद्ध्यादित्यर्थः।
- (३) "इयत्यप्र०" (बा॰ सं॰ ३७-५) इत्यनेन मन्त्रेण वराहोत्खात-मृदमादाय तुर्जा कृष्णाजिने बहमीकवर्णात्तरे निद्ध्यादित्वर्थः।
- (४) "इन्द्रस्यौज स्थ॰" (वा॰ सं॰ ३ ५-६) इत्यनेन मन्त्रेण पृती-कान् रोहिषतुणान्यादाय तुष्णीं रुष्णाजिने वराहिबहतात्तरे निद्ध्यात्।
- (५) "मखाय त्वा॰" (वा॰ सं॰ ३७-६) अनेन पय आदाय तुःणीं कृष्णाजिने पुतीकोत्तरे निद्ध्यात्।
- (६) सम्भृतामिमशंनं त्रत्येकमिति सम्प्रदायः, प्रतिसंस्कार्यः संस्कारावृत्तिरिति न्यायात्।

तानित्येतावतार्थस्य सिद्धत्वात्सम्भृतानिति।

"तान्सम्भृतानभिमृशति'' (श॰बा॰ १४-१-२-१४) श्युपदेशासुः गपदभिमशैनस् ॥ १२॥

कृष्णाजिनं परिगृद्धोत्तरतः परिवृतं गच्छान्ति प्रैतु ब्रह्मणस्पतिरिति(१)॥ १३॥

वहुवचनोपदेशात्सर्वेषां मन्त्रः। परिवृतं च पूर्वे क्रतमेव द्रष्टव्यम्। तद्भृतोपदेशात्करणस्याचोदितत्वात् ॥ १३ ॥

परिवृते निद्धाति सम्भारानुद्धतावोक्षिते सिकतोः पक्षीणे प्राग्हारे मखायेति(२)॥ १४॥

अनेन मन्त्रेण ॥ १४॥

सम्मारैः स्रामुजित मखायेति(३) ॥ १५॥

मृद्मादाय मखायेति महावीरं करोति प्रादेशमात्र-मृद्द्वमासेचनवन्तं मेखलावन्तं मध्यसंगृहीतमृद्द्वी मेखलायास्त्रयङ्गुलम् ॥ १६ ॥

मृदादानं तुष्णीम् । मन्त्रेण महावीरकरणम्(४) ॥ १६॥

उपदेशाञ्जवेदत्र युगपचाभिमर्शनम् । शक्यत्वाद्याथ नोशक्यं चेहुमेदेन भवेदिति ।

अर्थ प्रसङ्ख्यया द्रव्योपकल्पनमित्युक्तेः। "मखाय त्वा०" (वा० सं० ३७-६) अनेन संभृतान् सम्भारान् करेण स्पृशेदित्यर्थः।

(१) अध्वर्युप्रतिप्रस्थात्रादयः रुष्णाजिनं समन्तादादाय 'प्रेतु ब्रह्म-णस्पतिःः' (वा॰ सं० ३७-७) इति जपन्तोऽन्तःपात्यादुत्तरे परिवृतं प्रति गच्छन्ति । पञ्चारिक्षमितः समचतुरस्रः प्राग्द्वारः सिकतोपकीर्णः पूर्वमेव रुतः सप्तमूसंस्कारसंस्रुतश्चादितप्रदेशः 'परिवृत' उच्यत इति सत्रार्थः

ें (२) अध्वर्युः कृष्णाजिनस्थानेव सम्मारान्परिवृते "मखाय त्वा" (वा॰ सं॰ ३७-७) इत्यनेन निद्धाति । कीद्रशे ? उद्धतावोक्षिते उद्धि-खितजलसिके देशे । पतत्संस्कारद्वयं पञ्चाधिकम् सिकतायुके प्राग्द्वा रे चेति ।

(३) गवेधुकाजापयसी पृथकृत्य वल्मीकवपादित्रिसंभारैः "मखाय त्यारु" (वार्व संर ३७-७) इत्यनेन मृत्पिण्डं मिश्रयतीत्पर्धः ।

(४) महाबीरपर्याप्तं तृष्णीं मृत्विण्डमादाय "मखाय स्वा" (वा० सं० ३७-७) अनेन मन्त्रेण महाबीरं करोतीत सुवार्थः। आसेचनं निष्ठितमभिमुशति मखस्य शिर इति ॥ १७॥ (१)अनेन मन्त्रेण ॥ १७॥

आदानमेके ॥ १८॥

(२)क्वंन्ति ॥ १८॥ एवमितरौ प्रतिमन्त्रम् (३)॥ १९॥ प्रवमितरौ महावीरौ प्रतिमन्त्रं करोति॥ १८॥ स्वक्षपुष्कराकृती पिन्वने रौहिणकपाले परिमय्डले सृद्युपद्मयात्रिद्धाति(४)॥ २०॥

पदार्घतया ॥ २० ॥

गवेषुकाभिः श्वक्षायति मखायेति प्रतिमत्रम् (५) ॥२१॥
श्वक्षणनं च मृन्मार्शिकरणम् । पतदेव तासां सम्भरणप्रयोजनम्॥२१॥
अश्वशकृता घृपयत्यद्वस्य त्वेति प्रतिमन्त्रम् (६) ॥**२२॥**उस्रावदाग्निः प्रदहनं च मखायेति प्रतिमन्त्रम्(७) ॥ २३॥

गर्तः तद्युकम् । मध्यप्रदेशे सङ्कृचितं उल्लेखन्तत् मुप्तिमहणयोग्यं मेख-लाया अर्ध्वं ज्यङ्गलम् । अतश्च प्रादेशमात्रस्यापरिभागे ज्यङ्गुलंपरिशेष्य ततोऽधस्तान्मेखला कार्या ।

- (१) "मखस्य शिरः०" (वा॰ सं० ३७-८) इत्यनेन निष्पन्नं महावीरं वामकरस्थं दक्षिणेन स्पृशतोत्पर्थः।
- (२) "मखस्य शिरः०" (वा०सं० ३७-८) अनेन मन्त्रेण महाचीर करणार्थमादानं कुर्वन्ति, अर्थात् निष्ठिताक्षिमर्शनं तुष्णोमित्यर्थः।
- (३) इतरौ द्वौ महावीरौ मितिमन्त्रमेवमेव कराति अभिमृशति चेत्यर्थः।
- (४) खुवः पुष्करं मुखं स्रक्ष्युष्करं तस्येवाङ्कतिराकारो ययोस्ते । रोहिणो वश्यमाणौ पुरोडाशौ तद्यं कपाछे वतुछे। महावोरिपन्वनरौहिः णक्कपाछनिष्पादनानन्तरमविद्यां मृदम् 'उपदायाः संक्षिकां स्थापयित प्रायिक्षित्तार्थम्।
- (५) गवेघुकासिः महाबोरान् घर्षणेन सृदून् करोति "मखाय स्वाo" (वाo संo ३७-८) इति प्रतिमन्त्रमेकैकम्।
- (६) दक्तिणाञ्चिदीप्तेनाश्चपुरीषेण "अश्वस्य स्वा०" (वा० सं० ३७-९) इति त्रिमिर्मन्त्रेस्त्रीन्महावीरान् धूपयेदित्यर्थः।
 - (७) ''मखाय त्वार्'' (वार सं रे ३७-९) इति विभिर्मन्त्रैस्त्रीत्मः

'उखावत्' इति निर्मन्थ्यो दक्षिणाग्निर्वा ॥ २३ ॥ पकानुद्धरत्यृजवे त्वेति प्रतिमन्त्रम्(१)॥ २४॥ 'उद्रपामि' इति चाध्याहारः साकाङ्कृत्वात् ॥ २४ ॥ अजापयसावासिश्चति मखायेति प्रतिमन्त्रम्(२)॥ २५॥ साकाङ्क प्रवाऽतो यथार्थमध्याहारो युक्तरूप इति ॥ २५ ॥

तृष्णीं पिन्चनादीनां करणाभिमर्शनश्रक्षणनधूपन-प्रदहनोद्धरणावसेचनानि ॥ २६॥

इति षड्विरोऽध्याये प्रथमा कण्डिका।

(३)उपसदा चरिष्यंश्चरिष्यनप्रवर्शेण चरति सप्र-

नतु चेतदुक्तमेव-'प्रवर्ग्यापसदावत" (का० औ० =-२-१३) इ बरवं(४)॥१॥ ति, अवाच्यमत्र । सत्यमेवम् , तत्र समासनिर्देशात् इह कमार्थोऽयमाः **C***A: || 8 ||

(५)अपिहितद्वारे प्रवश्येचरणम् ॥ २॥

विमिते॥ २॥

हावीरानुखावच्छ्रपयेत् पिन्वनरोहिणेः सहेत्यर्थः। महावीराणां प्रदहनं प्रकर्षेण दहनं श्रपणं चराव्दादुखावत्करोति । 'ततश्च चतुरस्रमवर्ट बात्वा तत्र श्रपणमास्तीर्य तत्र यथाकृतं त्रीन्महावीरान्नयुञ्जानिधाय विन्वने रौहिणकवाले च न्युन्ते निधाय पुनः श्रवणेनावच्छाच दक्षिः णाग्निना दीपयति इत्येताबद्घतिना लभ्यते ।

(१) पक्वान्महावीरानापाकादिवोद्धरति ''ऋजवे त्वा•'' (वा॰ सं ३७-१०) इति त्रिभिर्मन्त्रेरित्यशः। 'उखावत्' इत्यनेनैव "दिवैव प्रदह्वोद्धरणे०" (का० श्रौ० १६-४-१७)

(२) अजादुग्धेन त्रीन्महावीरान "मखाय त्वा०" (वा० सं० ३०-१०) इति त्रिमाः तुल्यमन्त्रैः सिश्चतीत्यर्थाः ।

(३) इति महावीरसम्भरणमुक्तम् । अथ प्रवर्ग्यमाह—

(४) सह प्रवर्ग्येण वर्ततः इति सप्रवर्ग्यः प्रवर्ग्यवान्यकः तस्मिन् । प्रत्यहं सायम्प्रातः प्रागुपसदः प्रवर्ग्यचरणं कर्तन्यम् । (५) अपिहितानि कपादकरादिना ढङ्कितानि द्वाराणि यस्य ।

(१)पत्न्यदर्शनस् ॥ ३॥

सिंघानेऽपि सित दर्शनमात्रवितेषधः॥३॥

(२)अननुक्तिभिश्च॥ ४॥

'च' शब्दादद्रशंनम् । नानुकयो येषान्तेऽननूक्तयः ॥ ४ ॥

यावड्क्तम्(३)॥ ५॥

कर्ममत्यक्षविधानाद्धर्माणाम् । अतोऽपूर्वः प्रवर्ग्यः । यथा-पिण्डपि तृयक्षः सत्यपि द्रव्यसामान्ये, तद्वद्यमपि ॥ ५ ॥

(४)परिघर्ममीदुम्बरम् ॥ ६ ॥

भवति ॥ ६ ॥

मीतं त्रिवृद्रजन्यम् ॥ ७ ॥

रज्जुजातं मौश्चं त्रिवृद्धवाते ॥ ७ ॥

(५) बाल्वजं विवानमासन्धौदुम्बर्धा स्कन्धमात्र्याः(६)॥८॥
परिधर्ममौदुम्बरमित्युक्तेऽपि पुनरुच्यते अरित्नमात्राङ्गोपलक्षणाः
र्थम्। (७)तथा शाखान्तरात् । दृष्टा द्योदुम्बरी ज्योतिशोमेऽरिद्धमाः
वाङ्गो॥८॥

पूर्वेण गाईपत्यं प्राचः कुशानास्तीर्ध्य पात्रा-

सादनं द्रन्द्रम् (८)॥९॥

गार्हपत्यस्य पुरस्तात्मागम्रषु कुशेषु द्वन्द्वं पात्राण्यासादयति ॥९॥

⁽१) पत्न्या महावीरस्य दर्शनं न कर्तव्यम्।

⁽२) अवैदिकेश दर्शनं न कार्यम्।

⁽३) 'अपूर्वत्वात्' न्। द्यस्य कापि प्रकृतिरिति । अतो यावद्त्रोच्यते तावदेव सवति नाधिकमित्यर्थः ।

⁽ ४) घर्मसम्बन्धि यत्पात्रजातं काष्ट्रमयमुपयमन्यादि तदुदुम्बर-काष्ट्रेन निर्मातन्यम् ।

⁽५) तत्रापवादमाह—

⁽६) यजमानस्कन्ध्रप्रमाणपादाया औदुम्बर्यासन्धाः बाल्बमयी वि॰ वानरज्जुर्भवति ।

⁽७) 'तच' इ० पा०।

⁽८) पूर्व द्वारापिधानं शान्तिकरणं च कृत्वा ततः कुशास्तर-णादि कर्तव्यम् ।

तान्याह—

उपयमनीं महाबीरं परीद्यासौ पिन्वने रौहिणकपा-ले रौहिणहवन्यौ सुचावनुत्कीर्णे स्थूणामयूखं घृष्टी दात-माने सुझपलवान्विकङ्कतशकलान्वि। द्यातिं पादेशमाञा-न् सुवं सुझवेदं धविञ्चाणि परिधीश्च रज्जुसन्दानमास-न्दीं कृष्णाजिनमिश्चे सिकताः खराषी अर्थवच(१)॥१०॥

वर्धवद्य यत्तदासादयति । पृथक्पाठकरणं कार्यक्रमो यथा स्यादिः

ति। इतरेषां तु पाठकम एव ॥ १० ॥

त्रोक्षणीः संस्कृत्योद्यम्योत्थायाह ब्रह्मन्प्रचारिष्यामो होतरभिष्दुहि प्रस्तोतः सामानि गायेति ॥१९॥

(२)पोक्षणीसंस्कारो यथादछः प्रदेशान्तरे ॥ ११ ॥

(३) ब्रह्मानुज्ञानो (४) यमाय त्वेति महावीरं प्रोक्षति ॥१२॥ ब्रह्मानुज्ञातप्रहणं प्रागनुज्ञायाः सर्वप्रेषोच्चारणप्रज्ञप्त्यर्थम् ॥१२॥ प्रतिमन्त्रं वा वाक्यभेदात् ॥१३॥

⁽१) उपयमनीमौदुम्बरीं बाहुअमाणां महापुष्करां स्वस् प्रवरणीयम्। परीशासौ संदंशाकारो। गोर्बन्धनार्था स्थूणा। अजाबन्धनार्थः शङ्कः कीलको मयूखः। भृष्टी उपवेषौ औदुम्बरौ। एकं रजतशतमानम्। द्वितीयं सुवर्णशतमानम्। औदुम्बरमरितमात्रम् स्वृवम्। मुक्षमयं वेदं च। धृनोत्येभिरिति घिषत्राणि कृष्णाजिनखण्डनिर्मितास्त्रयो व्यजनाः। रज्जुग्गोबन्धनार्था अजाबन्धनार्था च। सन्दानशब्देन दोहनकाले गोपादबन्धनार्था रज्जुरभिधीयते। केचिदजाया अपि सन्दानमिक्छन्ति। अर्थवस्य उक्तपात्रव्यतिरक्तमित यिक्षित्रत्रयोजनवित्रयर्थः। स्प्रयः, पवित्रे, अन्त्रिहोत्रहवणी, आज्यस्थाली, प्रभूतमाज्यम्, शूर्पम्, पात्री, पिष्टम्, उपस्वानीपात्रम्, उपश्वा, इतरौ महावीरी, होतृषदनम्, मौक्षः कुर्चः, औदुम्बरी समिदित्। अत्रापि द्वन्द्वमेवासादनम्।

⁽२)(का० औ० २-३-३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५) सूत्रेषुका।

⁽३) अनुजात इति सिद्धे ब्रह्मेति—अनुज्ञाविधानार्थम्, ब्रह्मत्व-सुत्रे तद्विधानात्। तद्य प्रवरतेति प्रैषानुरूपत्वात्।

⁽४) 'प्रचर' इति ब्रह्मणोऽजुज्ञातोऽध्वयुँरुपविश्य ''यमाय त्वा०'' (वा० सं० ३७-११) इति मन्त्रत्रयेण प्रचरणीयमहावीरं वारत्रयं प्रोक्ष-तीत्यर्था।

प्रतिमन्त्रमेव वा प्रोक्षणम्। कुत प्ततः ? वाक्यभेदात्। भिक्षानि हि वाक्यानि "यमाय त्वा, मस्राय त्वा, सुर्यस्य त्वा तपस" (श्रा॰ ब्रा॰ १४-१-३-४, ५, ६) इति। न च समुख्यो न्याब्यः, न च विकल्पः, र ष्टार्थत्वात् । तस्मात्प्रतिवाक्यमेव प्रोक्षणम् ॥ १३ ॥

परियम्धे च तृष्णीम् ॥ १४॥

परिवर्म्य च यदासादितं तच्च तृष्णीं प्रोसति ॥ १४ ॥

पूर्वया डारा स्थूणामयूखं निर्हत्य दक्षिणतो नि-खनित होतुः सन्दर्शने ॥ १५ ॥

(१)स्थूणामयूखं पूर्वया द्वारा निर्हत्य दक्षिणतो निखनति सन्दर्शने होतुः॥ १५॥

गाईपत्याहवनीया उत्तरेण खरौ निवपति दक्षिण तोऽनुभिन्युाच्छिष्टखरम्(२)॥ १६॥

खरे उद्भताबोक्षिते सिकतोपकीणै। संस्कारानीमेचो हि खरशब्दः॥१६॥

पूर्वेणाहवनीयः सम्राडासन्दीं पर्वाहृत्य दक्षिणतः प्राचीमासादयति राजासन्या उत्तरतः कृष्णाजिनम-स्यामास्तृणाति तस्मित्रभ्यूपदाये निद्धाति महावीरौ चावच्छादयेद्वा(३)॥ १७॥

'वा' इति विकल्पः ॥ १७ ॥

अन्यो वा पश्चिम्धयोजनमध्वयोः कालसम्पत्तेः॥ १८॥

अन्यो वा स्थुणामयुखनिर्देरणादि करोति । कुत पतत् ? अध्वर्योः कालसम्पत्तिहिं भवति । "स यत्रैताणं होतान्वाहाञ्जनित यं प्रधयन्तो न विप्रा इति तदेतं प्रचरणीयं महावीरमाज्येत समनकि" (रा॰ ब्रा॰ १४-१-३-१३) इति । यदि हि परिधम्ययोजनमध्यर्युः कुर्यात् कालो

(२) दक्षिणद्वारस्य पूर्वद्वार्या स्थूणोसमीपे सिन्तिसंलग्नमुन्छिष्टः

खरं निवपति।

⁽१) शालायाः पूर्वद्वारेण स्थूणामयूखं निष्काश्य शालाया दक्षिण-स्यां दिशि निखनति, गाईंपत्यसमीपे उपविधो होता यत्र निखातां स्थृणां मयुखं च द्रष्टुं शक्तोति । तस्मिन्स्थाने इत्यर्थः । दक्षिणद्वारस्यापरद्वार्या दक्षिणतः स्थूणां, पूर्वद्वार्या दक्षिणतो मयूखमिति केचित्।

⁽३) तावासन्द्यास्थापितौ महावीरौ वस्त्रादिनावच्छादयेत्। का० ५५

न सम्भाव्येत । तस्माद् बहिरङ्गत्वात्प्रतिप्रस्थाता परिघर्म्ययोजनं करोति ॥ १८ ॥

अञ्जन्तीत्युच्यमाने देवस्त्वेत्यनक्ति महावीरमाज्यः संस्कृत्य (१) ॥ १९ ॥

संस्कारश्च (२)पूर्णोद्वतिकः ॥ १९॥

रजतदातमानं खर उपगृहति (३)पृथिव्याः सः स्पृशः हति ॥ २० ॥

अनेन मन्त्रेण। शतमानं च रिक्तकाशतेन ॥ २०॥ इति पङ्चिशेऽध्याये द्वितीया कण्डिका।

> शुक्रं गायेति प्रेड्याति(४) ॥ १ ॥ पत्नी शिरः प्रोर्णुते ॥ २ ॥

स्वयमेव, प्रथमान्तनिर्देशात्(५) ॥२॥ (६) सृत्सीदस्वेत्युच्यमाने मुञ्जपलवान् द्रिगुणानादीः

प्य प्रातिदिशं खरे करोति ॥३॥

''स्रुसीदस्व॰'' (वा॰ सं० ११-३७) इति यदा होता पठित तदा मुञ्जबळवान् खरे करोति ॥ ३ ॥

(१) होत्रा "अञ्जन्ति यं प्रथयन्ति" इति मन्त्रे पठ्यमानेऽध्वर्धुराज्यं विधिना संस्कृत्य तेनाज्येन प्रचरणीयं महावीरं "देवस्त्वा०" (वा० सं० ३७-११) इत्यनेन मन्त्रेणानिक ।

(२) (का० श्री० ४-१०-५) सूत्रे तथोक्तेः।

(३) रजतस्य शतमानं शतरिककामितं रजतं खरे सिकतान्तः "पृथिन्याः सःह्मृशः॰" (वा॰ सं ३७-११) इत्यनेन उपगृहति नीचैः प्रवेशयतीत्यर्थः।

(४) अध्वर्युः प्रस्तोतारम् । शाखान्तरे तथा विधानात् ।

(५) "पत्नी शिरः प्रोर्णुते०" (शब्बाव १४-१-३-१६) इत्युक्तमा-च्छुदिनं सचक्षुत्कं कर्तव्यं यथा घमें द्रष्टुं न शक्तुयाद् इति।

(६) मुञ्जप्रलवाः शरतृणानि शरेषोकापरितोभवानि तान् मध्यः मोटनेन द्विगुणोक्तान् आदीप्य गाहैपत्ये प्रदीप्तान्कृत्वा सर्वासु प्रागाः दिद्शु सरे कराति । तेषु महावीरमाज्यवन्तमचिरसी।ति(१) ॥ ४ ॥ तोष्वित मुखपलवेषु ॥ ४ ॥

अनाघृष्टेति वाचयति प्रादेशमध्यधि धारयन्तम् (२) ॥५॥ वाचनं च शाखान्तरात् ॥ ५॥

प्रतिदिशमेके ॥ ६ ॥

मन्त्रलिङ्गात् "अनाधृष्टा पुरस्तात्पुत्रवती दक्षिणत" इत्येवमा दि। यद्येवं तदा वचनेऽसति लिङ्गाद्विभागो नावगम्यते। अथ तु वचः नमिदं तदा विकल्प इति ॥ ६ ॥

विद्वाभ्यो मेति दक्षिणत उत्तानं पाणि निद्धाति ॥॥॥

(३)तश्चाधिकारायजमान एव । "अथास्यामाशिष आशास्त" इति प्रकृत्य होवमुच्यते-"अथ दक्षिणत उत्तानेन पाणिना निह्तुत" (श० ब्रा० १४-१-३-१८, २४) इति ॥ ७ ॥

मनोरववेति प्रादेशमुत्तरतः॥ ८॥

'निद्धाति' इति वर्त्तते ॥ ८ ॥

वृष्टिभ्वां मस्मना परिकीर्योङ्गारैश्च विकङ्कतश-कलैः परिश्रयति अयोदशाभिः प्राग्रदिभः स्वाहा मरुः द्विरिति ॥ ९॥

ेश्वष्टिश्यामुपवेषाभ्यां महाबीरं सस्मना परिकीर्याङ्गारैश्च विकङ्कतः शक्तिः परिश्रयति त्रयोदश्यामः प्रागुद्धामः "स्वाहा मरुद्धिः" (वा० सं० ३७-१३) इत्यनेन मन्त्रेण। द्वौ प्राञ्चाद्वपदधाति(४)शेषांस्तूणीम्॥९॥ अधिकं दक्षिणतो द्वौ मन्त्रेण सुवर्णशतमानेनापि

(१) संस्कृतेनाज्येन पूर्णं प्रचरणीयं महावीरम् "अचिरसि०" (वा० सं० ३७-११) इत्यनेन निद्धाति स्थापयतीत्यथाः।

(२) महाबीरोपर्यङ्गुष्ठाङ्गुलिदेशं धरन्तं यजमानमध्वर्युः "अना-धृष्टा०' (वा० सं० ३७-१२) इति मन्त्रान्वाचयति ।

ं (३) महावोराद्दक्षिणभूमौ यजमानो "विश्वाभ्यो मा०" (घा० सं०३७-१२) इति मन्त्रं पठन्स्वकरं निद्धात्युत्तानम्।

(४) परिशब्दप्रसामध्यां हक्षिणे चोत्तरे क्रमात् । मन्त्रावृत्त्योपघेयौ द्वौ शेषांस्तृष्णीं यथाक्रमम् ॥ इति कारिकोक्तेः। द्याति दिवः स्रास्प्रश इति(१) ॥ १० ॥ महावीरस् ॥ १०॥

इति पड्विशेऽध्याये तृतीया कण्डिका।

चन्द्रङ्गायेति च प्रेष्यति ॥ १ ॥ 'च' शब्दादिपद्धाति(२)॥ १॥ कृष्णाजिनावकृत्तेद्वेवित्रैष्ठपवाजयति त्रिभिर्दण्डव-द्भिमधुमध्यिति॥ २॥

(३) अनेन मन्त्रेण ॥ २॥

एकं प्रयच्छाति प्रतिप्रस्थानेऽपरमग्रीधे धुन्वन्तस्त्रिः स्त्रिः परिकामान्ति पितृवद्देववच(४) ॥ ३॥ पितृवत् अपसब्यम् । देववङ्च धृन्वन्तः प्रदक्षिणम् ॥ ३ ॥

हचिते बोत्तरम्॥ ४॥ उत्तरं परिक्रमणं रुचिते वा धर्मे सवति विकल्पः ॥ ४ ॥ अर्चिषि प्राप्ते (५)सुवर्णशतमानं निघायाज्येन महा-

बीरं परिचित्रति सुबेण प्रतिव्रणवस् ॥ ५ ॥ अचिषि प्राप्ते महावारे सुवर्णशतमानमपनीय महावीरमाज्येन सु-वेण परिषिञ्चति प्रणवे प्रणवे होतः॥ ५॥

⁽१) एवं प्रतिदिशं त्रिषु त्रिषु स्थितेषु अधिकं त्रयोदशं दक्षिणतो निद्धाति । ततः शतरिक्तकामितेन सुवर्णेन 'दिवः स्टुश्यः॰" (वा० **रां**० ३७-१३) इत्यनेन महावीरमाच्छादयति ।

⁽२) अपिधानसमकालमेव प्रस्तोतारं प्रेष्यति शाखान्तरात्।

⁽३) रुष्णाजिनरुतैर्पण्डयुकैस्त्रिभिन्यंजनैरम्नि दीपनाय वीजयति "मधु मधु मधु" (वा० सं० ३७-१३)अनेन मन्त्रेण।

⁽४) चन्द्रसामसमाप्ती छन्दोगवशाद्धर्मस्य तन्वौ गायेति प्रस्तो तारं संप्रेष्य तद्राने क्रियमाणे अध्वर्युप्रतिप्रस्थात्राग्नीभ्राः भविजीः धृत्व न्तः प्रथमं पितृवत् त्रिवारं परिकामन्ति । ततो घवित्राणि अन्तरतः क्रु-स्वा पुनर्देववदिति प्रदक्षिणं जिः परिकामन्ति ।

⁽५) सुवर्णशतमानं महाबोरादन्यत्र सुगुप्ते देशे स्थापयित्वा ।

रौहिणाविधिश्रयति तृष्णीं ग्रामपिष्टानाम्(१) ॥ ६ ॥ ग्रामपिष्टानां रौहिणौ पुरोडाशाविधश्रयति । तृष्णीमिति लौकिकः वागुच्चारणप्रतिषेधः । श्रामपिष्टानामिति च न पेषणक्रिया ॥ ६ ॥ आज्यधर्माः स्थानापन्तेः ॥ ७ ॥

रौदिणयोर्ये नाम सामिपातिका वर्मास्ते आज्यसम्बन्धिनो भव-नित । कुत पतत् ? स्थानापत्तेः । आज्यमागस्थानापन्नौ होताविति । "यदाज्यभागावन्यत्र जुह्वत्यथ कस्मादत्र न जुहोति" इति प्रकृत्य, "च-क्षुषी वा पते यहस्य यदाज्यभागौ चक्षुषी रौहिणौ नेच्चक्षुषा चक्षुर-भ्यारोह्याणि" (श० ब्रा० १४-२-२-५२) इति स्थानापत्तिः । तेनो-कम्- आज्यधर्मा स्थानापत्तेरिति ॥ ७॥

औषवधमी वा संस्कारशब्दात्॥ ८॥

'वा' शब्दः पक्षान्तरपरिष्रहे। औषधधर्मा वा मवन्ति, नाज्यधर्माः। कृत पतत् ? संस्कारशब्दात् । संस्कारो ह्ययं कपाळथोः श्रपणम् । तेन पुरोडाशावेताविति पौरोडाशिका धर्माः। यत्तु-स्थानापत्तिरुकाः सोऽर्थवादः॥ ८॥

ईंडे चावाष्ट्रियवी इत्युच्यमाने परिधीनपरिधाय सौहिणौ उद्घास्य सुचोरासाद्यत्याहवनीयादक्षिणोत्तरौ(२) ॥९॥ अमस्वनीमित्युच्यमाने रुचितो घम इत्याहोपोत्तिष्ट-

न्धर्मस्य तन्वौ गायेति प्रेष्यति ॥ १० ॥

अत्र च छान्दोग्ये कालभ्रवणम्—"अभीन्धने तु धर्मस्य तन्त्रौ गा-येत्" (लाट्या० १-६-२५) इति । तथा च प्रागमीन्धनात्प्रैषदानम् ॥१०॥ परिक्रम्योपतिष्ठन्तेऽकृतं चेद्गमी देवानामिति(३) ॥११॥

(२) रोहिणौ पुरोडाशौ रोहिणहवन्योः सुचोः पात्रीस्थानीयथारः पस्तीणयोख्यास्य तस्थावेव आहवनीयाद्दक्षिणात्तरो आसादयति रोछिणनिर्वापादि रोहिणासादनान्तं प्रतिप्रस्थाता कराति ।

(३) घवित्रवींजनसमये उत्तरं देववत्परिक्रमणं प्रागकतं चेदिह त्रिः परिक्रम्येतरथावृत्ति सक्तकृत्वा "गर्मो देवानाम्०" (वा० सं० ३७-१४) इत्यादिभिः "नमस्ते ऽअस्तु मा मा हिंद्वाः" (वा० सं ३७-२०)

⁽१) अध्वयोर्महावीरपरिषेके व्यापृतत्वेन विरोधात्प्रतिप्रह्याता । प्रामपिष्टानां लौकिकपिष्टानां बोहीणां यवानां वा रोहिणौ पुराडाशा-विभिश्रयति ।

(१)बहुवचनोपदेशाच्च सर्वेषामुपस्थानम्। तथा च 'बहुपतिष्ठः न्ते" (श्रव झाव १४-१-४-१) इति श्रुतिः ॥ ११ ॥

अपोणौति पत्नीशिरः॥ १२॥

समासश्चार्यं न वाक्यम् । तथा च श्रुतिः-"अध पत्न्ये शिरोपवृत्य महाबीरमीक्षमाणां वाचयति" (श्र॰ ब्रा॰ १४-१-४-१६) इति ॥१२॥ त्वष्ट्रमन्त इत्येनां वाचयति महावीरमक्षिमाणाम्(२)॥१३॥ अहः केतुनेति दिचणः रौहिणं जहोति मन्त्रक्रमेणो

त्तर। रात्रिरिति सायम्(३)॥ १४॥ विशेषः॥ १४॥ इति षड्विंशेऽध्याये चतुर्थी कण्डिका।

इत्यन्तैः अवकाशसंत्रकैर्मन्त्रोः सयजमाना ऋत्विजो महावीरमुपतिष्ठन्त इति स्त्रार्थः । प्रस्तोतुभ्यतिरिकाः स्यजमानाः पञ्चति जः 'षड्' प्रहणेन गृह्यान्ते श्रुतौ प्रस्तोतुरद्रष्टत्वात्। छन्दोगानां च तस्याप्युपस्थानं विहितम्।

- (१) अत्र षड्ऋत्विजो यजमानश्च प्रवन्योपयुक्ताः, तत्र भाष्ये 'बहुव-चनोपदेशास सर्वेषामुपस्थानम्' इत्युक्त्वा 'तथा च षडुपतिष्ठन्त इति श्रुतिः' इत्यमिहितम् । तच प्रस्तोतृत्यतिरिका यजमान्षष्टाः । प्रस्तो तुर्वेदेऽनाम्नात्। ऋत्विजो वा न यजमानः, कर्मणि पुरुषाणामित्युक्तेः। यजमानविवशायां च सयजमाना इत्येवावीचत् । यथा सयजमाना धिष्ण्यानुपतिष्ठन्ते। यजमानषष्ठाः स्रोममिति । अतएव वाजि ं भक्षयः न्तीत्यत्र धर्मस्विजो बहुवचनोपदेशादिति भाष्यम्। तथा च सर्वे निधनः मुपयन्तीत्यत्र सर्वशब्दो निरवप्रहः सर्वत्विग्विषय इति ब्याख्यातम्। अवस्थान्यृत्विजो यजमानआनाधृष्टमिति सर्वेपद्विषयमेवोपपाद्यति। सम्प्रदायेऽपि गर्भोदेवानामित्युपस्थानं षड्ऋत्विजामिति । हुतशेषं घर्म-स्विजः सयजमानाः समुपहावं मक्षयन्ति ।
 - (२) "त्वष्ट्रमन्तस्त्वा०" (वा० सं० ३७-२०) अनेन महावीरः मीक्षमाणामपनीतशिरोवस्तां घमे पश्यन्तीं अध्वर्धुर्वाचयतीस्यर्थः।
 - (३) उपस्थानगानयोः समात्रो रौहिणहबन्या खुचा दक्षिणं रौहिणं पुरोडाशं सर्वहुतं "अहः केतुना०" (वा० सं० ३७-२१) अनेन जुहोती-त्यर्थः। 'इदं धर्माय' इति त्यागः। इदमह्न इदं राज्या इति तु जीर्णः सम्प्र-दायः। उत्तरं मन्त्रक्रमेण जुहोति 'स्वाहा रुद्राय रुद्रहृतये स्वाहा संज्योः तिषा ज्योतिः इत्येतन्मन्त्रकर्मणोऽनन्तरमित्यर्थः । 'सायम्' इति अपरा-ह्वकालीने प्रवर्ग्यवरणे 'रात्रिः' इति द्वावपि रोहिणो यथाकालं जुहोति ।

(१)देवस्य त्वेति रज्जुसन्दानमादायेड एहीति गामाहः यति नाम्ना च चिरुचैरपरेण गाईपत्यं गच्छन् ॥१॥

"देवस्य त्वा" इत्यनेन मन्त्रेण रङ्जुसन्दानमादाय घर्मधुग्वन्यना र्याय पाद्यवती रङ्जुः। तस्या एव पश्चात्पादनियोजनार्थे सन्दानं, तः दादाय जघनेन गाईपत्यं गच्छन् "इड ऽएहि" इति गामाह्वयति ॥ १॥

> नाम्ना विरुच्चेराह्वानम् ॥ २॥ धेनु गोयेति प्रेष्यति ॥ ३॥

प्रस्तोतारम् ॥ ३॥

अदित्यै रास्नेति गां पाचीन प्रतिमुच्य स्थूणायां व

तदीयमेव ॥ ४ ॥

सन्दाय घर्माय दीष्वेति वत्समुत्तयति ॥ ५ ॥ सन्दाय पश्चात्पादयोर्नियुज्य "घर्माय दीष्त्रा" (वा० सं० ३८-३) इत्यनेन मन्त्रेण वत्समुन्नयति(३) ॥ ५ ॥

आईवभ्यां पिन्वस्वेति पिन्यने दोग्नि(४)॥६॥ पनाङ्गाम् ॥ ६॥

स्वाहेन्द्रविति विप्रुषोऽभिमन्त्रयते(५) ॥७॥ ये पिन्वने पतिताः ऋजुः॥ ७॥

⁽१) अध्वयुः "देवस्य त्वा" (वा० सं० ३६-१) इति रउज्जसन्दाः नमादाय गाईपत्यस्य पश्चाद्रच्छन् "इड ऽपहि०" (वा० सं० ३८-२) वाक्यत्रयेण घर्मदुघां गामाह्वयति 'असावेहि' इति गोर्ब्यावहारिकनाः स्ना चोचौक्षवारमाह्वयतीति सूत्रद्वयार्थः।

⁽२) तामागतां गां "श्रदित्यैरास्नाः" (वा॰ सं० ३८-३) इति पाशेन प्रतिमुच्य तस्याः श्रङ्गयोः रञ्जुपाशं प्रोतयित्वा "पूषासि" (वा॰ सं० ३८-३) इति वत्सं मुञ्जतीत्यर्थः।

⁽३) स्तनेभ्यः पृथक्करोतीत्यर्थः।

⁽४) पिन्वने पात्रे "अश्विभ्यां पिन्वस्व॰" (वा॰ सं॰ ३८-४) इति प्रतिमन्त्रं गां दोग्धीत्यर्थः ।

⁽५) पिन्वनपतितान्पयःकणान् 'स्वाहेन्द्रवत्॰" (वा॰ सं॰ ३८-४) इत्यनेन अभिमन्त्रयत इत्यर्थः।

यस्ते स्तन इति (१)स्तनमालभते ॥ ८॥ काण्वपाठे 'स्तनानालमत' इति । तथा च सर्वेषामालम्भो युगपः च्छक्यत्वात्॥ ८॥

एवं प्रतिप्रस्थाताऽजां (२)मयुखे तृष्णीम् ॥९॥

दोविध ॥ ९ ॥ पयो गायेति प्रेट्यति ॥ १०॥

प्रस्तोतारम्॥ १०॥

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत इत्युच्यमाने उपोत्तिष्ठति ॥११॥ "उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत" (बा॰ सं० ३४-५६) इत्याह्मिन्मन्त्रवाक्ये होत्रोस्यमाने उत्तिष्ठत्यध्वर्युः(३) ॥ ११॥ उपद्रव पयसेत्युच्यमाने (४)गच्छत्युर्वन्तरिक्षामिति ॥१२॥

होत्रोपद्रव पयसेत्युच्यमाने विमितं प्रति गच्छति "उर्वन्तरिक्ष-म्" (बा० सं० ३८-६) इति ॥ १२ ॥ परीशासाबाद्तेगायत्रं छन्दोऽसीति प्रतिमन्त्रम्(५)॥१३॥

ऋजः॥ १३॥

वसिष्ठशको गायेति प्रेष्यति ॥ १४॥

प्रस्तोतारम् ॥ १४ ॥

ताभ्यां महावीरं (६)प्रतिगृह्णाति चावात्रृथिवीभ्यां

त्वा परिगृह्णामीति(७) ॥ १५॥ 'ताझ्याम्' इति परीज्ञासाबुच्येते ॥ १५ ॥

(३) गोः समीपादुत्तिष्टति।

(४) अध्वर्युः प्रतिप्रस्थाता च गोः समीपाद्गाईपत्यं प्रति गच्छत 🌁 इत्यर्थः ।

(५) "गायत्रं छन्दः०" (वा॰ सं॰ ३८-६) इति मन्त्राभ्यां परी• शासी गृह्वातीति स्त्रार्थः।

(६) 'परिगृह्णातिः इ० पा०।

⁽१) 'युस्ते स्तनः०" (बा० सं० ३८--) इत्यतेन गोस्तनमाळ-भते। जातावेकवचनम्।

⁽२) कीलके बध्नाति।

⁽ ७) ताभ्यां परोशासाभ्यां ''द्यावापृथिवीभ्यां त्वा०'' (वाव सं० ३८-६) इत्यनेन महाबोरमाद्त्त इत्यर्थाः।

डचम्य मुञ्जवेदेनोपमुज्योपयमन्योपगृह्णात्यन्तः रिक्षेणोपयच्छामीति ॥ १६॥

उद्यस्योत्सित्य परीशासाभ्यां महावीरं मुखवेदेनोपमृज्य उपयम न्या(१) सुचोपगृहाति 'अन्तरिक्षणोप युच्छामि" (वा॰ सं॰ ३८-६) इति ॥ १६ ॥

अजापयसावासिच्य (२)शान्ते गोः पयोऽवनयती-न्द्राम्बिनेति ॥ १७ ॥

अजापयसावसिच्य महावीरं शान्ते गोः पयोऽवनयति "इन्द्राः श्विना" (वा० सं० ३८ ६) इत्यनेन मन्त्रेण ॥ १७ ॥

प्रेतु ब्रह्मणस्पतिरित्युच्यमाने-इति पड्विग्रेऽच्याये पञ्चमी काण्डिका।

ममुद्राय त्वेति वातनामानि जपति गच्छन्नाहवनीयम्॥१॥ होत्रा "वेतु ब्रह्मणस्पतिः" (वा० सं० ३७-७) इत्यास्मिन्मन्त्र-वाक्ये उच्यमाने "समुद्राय त्वा"(३) इति जपति गच्छन्नाहवनीयम्॥१॥

(४)स्वाहा घमायेत्युपयमन्यासिञ्चति घर्मे ॥ २॥ यदुपयमन्यां पतितं पयो घृतं वा, वर्मे तदासिञ्चति ॥ २॥ (५)स्वाहा घर्मः पित्र इति जित्त्वाऽतिकम्याश्चाः

व्याह घमेंस्य यजेति ॥ ३ ॥ वेष्यति ॥ ३ ॥

⁽१) उपयमनीं सुचं महावीरस्याधस्तात्त्रवेश्योपगृह्णातीत्यर्थः।

⁽२) क्षोणज्वाले।

⁽३) 'प्रतु॰' इति होत्रोच्यमाने आहवनीयं प्रति गच्छन्नध्वर्युः "स-मुद्राय त्वा॰" (वा॰ सं॰ ३८-७) इत्यादीनि द्वादश वातनामानि स्व॰ रेण जपतीति सुत्रार्थाः।

⁽४) उपयमन्या स्नुचा सुक्स्थं घृतं घर्मे सिञ्चति "स्वाहा घर्माय" (वा॰ सं॰ ३८-९) अनेन मन्त्रेणेत्यर्थः।

⁽५) अपसन्येन दक्षिणास्यः सतः ''स्वाहा घर्मः पित्र'' (वा० सं० ३८-९) इति मन्त्रं स्वरेण जिल्ला सन्येन जलः स्पृष्टा घर्महस्तोऽतिकाः स्याधान्य 'घर्मस्य यजः' इत्याहेत्यर्थः ।

वषद्कृते जहोति विश्वा आद्या इति(१) ॥ ४ ॥

(२)दिविघा इति श्रिडत्कम्पयाति ॥ ५ ॥ महाबीरम् ॥ ५ ॥

(३)स्वाहाऽग्नय इत्यनुवषट्कृते ॥ ६ ॥ जुहोति ॥ ६ ॥

(४)अश्विना घर्मामिति ब्रह्मानुमन्त्रयते॥ ७॥ (५)इतं द्रव्यम्॥ ७॥

(६)अपातामिति यजमानः ॥ ८ ॥ तदेवातुमन्त्रयते ॥ ८ ॥ (७)इषे पिन्वस्वेति पिन्वमानमनुमन्त्रयते ॥ ९ ॥

तदेव द्रव्यम् ॥ ६ ॥

धर्मासीत्युत्कामत्युत्तरपूर्वार्धम् ॥ १० ॥ "धर्मासि" (वा० सं० ३८-१४) इत्यनेन मन्त्रेण उत्तरपूर्वार्धमुत्काः मति(८) ॥ १०॥

(१) वषट्कते स्रति घर्म जुहोति "विश्वा ऽआशा०" (वा० सं० ३८-१०) इत्यनेनेति ।

(२) महाचीर त्रिक्ष्यंकम्पयति 'दिविधाः' (वा॰ सं॰ ३८-११) इति सक्रमम्बेण द्विस्तरणीमिति ।

(३) "स्वाहाग्नये य्ज्ञियाय शं य्जुर्भ्यः" इति मन्त्रेण धर्म जुहो-

तीत्यर्थः। (४) ''अश्विना धर्मम्•'' (बा॰ सं॰ ३८-१२) इत्यनेन ब्रह्मा धर्ममिमन्त्रयते।

(५) हुतं द्रव्यमिति कर्कः । पात्रस्थमित्यन्ये । उभयमप्येतत्सम् स्रम् । शासान्तरात् । अतश्चेच्छयानुष्ठानम् ।

(६) "अवातामश्विना॰" इस्यनेन यजमानः घर्ममभिमन्त्रयते । धर्मः पात्रस्थमेव ।

(७) "इषे पिन्वस्व०" (वा०सं० ३८-१४) इत्यनेन पिन्वमानिम-ति अतितसत्वात्पात्रमध्ये सर्वतः प्रसरन्तमुत्कलन्तमितस्तत उच्छलन्त-मनुमन्त्रयते इत्यर्थः। अत्र च निःसन्दिग्धं धर्मस्थस्यैव द्रव्यस्यामिम-न्त्रणं शाखान्तरेऽपि तथेव दर्शनात्। एवश्च पूर्वत्र ब्रह्मानुमन्त्रणमपि पात्रस्थस्यैव द्रव्यस्य न तु द्वतस्येति।

(८) अध्वर्युः पेशानीं दिशं प्रति उद्गञ्छतीत्यर्थः ।

(१)अमेन्यस्मे इति खरे करोति ॥ ११ ॥ महाबीरम् ॥ ११ ॥ विकङ्कतशकलैजेहोति घमें न्यस्य न्यस्य स्वाहा पृष्णे शरस इति प्रतिमन्त्रम् ॥ १२ ॥

धिकङ्कतराकलेर्बर्मद्रव्ये न्यक्तवा न्यक्तवा तदेव जुहोति "स्वाहा पृष्णे शरस" (वा॰ सं० ३८-१५) इति प्रतिमन्त्रम् ॥ १२ ॥

हुत्वा हुत्वा (२)प्रथमपरिघा उपश्रयति ॥ १३॥ विकङ्कत्शकछान्॥ १३॥

चतुर्थमहुतमुद्ङ्ङीक्षमाणो दक्षिणतो बर्हिब्युः पगृहति(३)॥ १४॥

शकलम् ॥ १४॥ सप्तमं च (४)सर्वलेपाक्तं दक्षिणेचमाणः प्रतिप्रस्थात्रे प्रयच्छति ॥ १५॥

(५)'सर्वलेपाकम्' इति सर्वमम्युक्तम् । चशब्दादहुतम् ॥ १५ ॥ तः स उत्तरतः शालाया उद्श्वं निरस्यति ॥ १६ ॥ तमेव शकलम् ॥ १६ ॥

स्वाहा सं ज्योतिषेत्युपयमन्यामासिञ्जति घर्म्यम्(६)॥१७॥ 'वर्म्य'शन्देन द्रव्यमुच्यते ॥ १७॥

(७)रौहिणं जहोति॥ १८॥

- (१) "अमेन्यस्मे" (वा॰ सं॰ ३८-१४) इति महावीरं खरे आ-साद्यतीत्यर्थः । आहवनीयस्योत्तरतः परीशासगृहीतमेव स्थापयति ।
 - (२) 'प्रथमे' इ० पा०।
 - (३) वेदेर्दक्षिणमागे आतिस्थावहिषि प्रवेशयति ।
 - (४) सर्वमिप मूलाप्रपर्यन्तं महाबीरस्थ घृतलेपेनाकम् ।
- (५) वस्तुतस्तु सर्वे च ते छेपास्तैरकं महावीरोपयमन्यास्यस्थाः छीस्थः छेपैरकम् । अतएवोत्तरसूत्रे घम्यमिति विशेषोपादानम् ।
- (६) घम्यं धर्मसम्बन्धं तन्मध्यस्थितमाज्यमुपयमन्यां स्रृचि आ सिञ्चति । परीशासाभ्यां धर्ममुत्पाद्य सृक्ष्युष्करस्योपयंथोमुखं करोति ''स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः'' (वा॰ सं॰ ३८-१६) अनेन मन्त्रेण ।
- (७) ''अहः केतुना॰'' (वा॰ सं॰ ३७-१) इस्यनेन प्रातः काले, ''रात्रिः केतुना॰'' (वा०सं॰ ३७-१) इस्यनेन सायं च रोहिणं ज्रहोति।

द्वितीयम् ॥ १८॥ उपश्चितानि च प्रहराति(१) ॥ १९॥ उपश्चितानि यानि शक्छानि तानि प्रहरति । चशब्दादनन्तरमेव ॥१६॥ अग्निहोत्रावृता हुत्वा चाजिनवद्गक्षयन्ति मधु हुतामिति(२)॥ २०॥

अनेन मन्त्रेण। धर्मार्त्वजो बहुवचनोपदेशात्। आवृच्छन्देन च होममात्रावृदेवोच्यते। द्रव्यप्रधानत्वादुपदेशस्य। तत्रापि केचिदेकामे-वाहुतिमिच्छन्ति। आहुतिद्वयमित्यपरे। 'वाजिनवत्' इति च समुप-हावं भक्षणम्॥ २०॥

उच्छिष्टखरे प्रक्षाल्योपयमनीं निद्धाति अत्र वोपश्चि-

तप्रहरणाः सःसाद्यमानायानुवाचयाति(३)॥ २१॥ संसाद्यमानायानुब्हीत्येवम् ॥ २१॥

(४)स्। साद्यमानेभ्य इत्येके ॥ २२ ॥ अनुवाचनं कारयन्ति । स चायं विकल्पः । शास्त्रस्य तुल्यत्वात् ॥२२॥ सृथवसाद्भगवतीत्युच्यमाने (५)यवसोदके घेनवे प्रयच्छन्त्येके ॥ २३ ॥ एके न प्रयच्छन्ति ॥ २३ ॥

सर्वेमासन्द्यां करोति ॥ २४ ॥ पात्रज्ञातम् अनादाय ॥ २४ ॥

अभीममिति महावरिम् ॥ २५॥

- (१) मध्यमपरिघौ निहितानि पञ्च वैकङ्कृतशकलानि शाखान्तरा-दत्रावसरे आहवनीये प्रहरति ।
- (२) उपयमन्यामानीतं घर्माज्यमग्निहोत्रहोमप्रकारेण समन्त्रकं हुत्वा वाजिनवदुपहवप्रार्थनपूर्वकं 'मघु हुतम्०' (वा० सं० ३८-१६) अनेन भक्षयन्ति होत्रम्बर्युब्रह्मप्रस्तोत्प्रतिप्रस्थात्रग्नीयज्ञमानाः । श्रुतौ "अथ यज्ञमानाय घर्मोच्छिष्टं प्रयच्छति । स उपहवमिष्ट्वा भक्षयति मधु हुतम्' (श० व्रा० १४-२-२-४२) इति । अतएव होमस्यान्तरायेऽन-भ्यावृत्तिः ।
 - (३) अध्वर्युः संसाद्यमानाय महावीरायानुवाचनं कारयति होता।
 - (४) महावीरादिसर्चपात्रेभ्य उत्यर्थाः ।
 - (५) तृणोदके।

- (१)आसन्यां करोति॥ २५॥
- (२)सकृदासादनप्रोक्षणे खरस्थूणामयूखकृष्णाजि-नाभ्न्युपरावासन्दीनाम् ॥ २६ ॥

थारादुपकारकत्वात् ॥ २६ ॥

आवृत्तिर्वो प्रधानकालस्वात् ॥ २७॥

अथवा आवृत्तिभवति न सङ्दासादनादि । कुत पतत् ? प्रधान-कालीनमासादनं प्रोक्षणं च । '(३)प्रधानावृत्या च तदावृत्तिन्यीय्या' इति ॥ २७ ॥

इति पड्विशेऽध्याये षष्ठी कण्डिका।

डपसद्न्ते प्रवर्ग्योत्साद्नम्(४) ॥ १ ॥ 'कर्त्तव्यम्' इति स्त्रशेषः ॥ १ ॥ अन्तःपात्ये परिघर्म्ये निघाय दक्षिणेन निर्हृत्योः च्छिष्टस्वरम् ॥ २ ॥

(५)निद्धाति॥ २॥

- (१) "अभीमम्०" (वा॰ ६०३८-१७) इत्यनेन प्रचरणीयं घर्म-मासन्द्यां करोति । इतराणि तु पात्राणि तूष्णीम् । ततः ग्रान्तिकरणं द्वारद्वरनंचेत ।
- (२) सक्तदेकवारमेव मधमे प्रवर्ग्यचरण एव भवतो न प्रतिप्रवर्ग्य-चरणम्। खरार्थानां सिकतानामिति देवयाज्ञिकाः।
 - (३) द्रव्यसंस्कारकत्वाचे सन्निपत्योपकारके ।
 कथं भाष्ये तयोरारादुपकारकतोच्यते ॥
 द्रष्टार्थसादनं तत्रादृष्टार्थं प्रोक्षणं मतम् ।
 अतः कैमुतिकन्यायान्नेयं भाष्यं न तस्वतः ॥
 अन्यत्राप्यग्निहोत्रादौ यच्चारादुपकारकम् ।
 तदप्यावर्तते यत्नात् किमु वाच्यं च संस्कृतौ ॥
- (४) उपसत्समासान्ते (का॰ श्री॰ =-३-१८) प्रवर्गोत्सादनं भवति। "स वे तृतीयेहन् षष्ठे वा द्वादशे वा प्रवर्गोपसदौ समस्य प्रवर्गमृत्सादयति" (श॰ ब्रा॰ १४-३-१-१) इति श्रतेः।
- (५) ज्ञालामध्याद्वक्षिणेन द्वारेण निष्काश्य अन्तःपात्यसमीपे आसादितपात्रेभ्यो दक्षिणमेव निदधातीति देवयात्रिकाः।

(१)आहवनीये त्रीठ्छालाकान् प्रदीष्य प्रदीष्याग्नी-भ्रो धारयति शतरुद्रियवस्प्रतिलोमं प्रमाणेषु चतुर्गृहीः तेनाभिज्ञहोति या ते धर्मदिव्याद्यागिति प्रतिमन्त्रम् ॥३॥ अध्वर्युः। यत्तु—धारयमाणो ज्ञहोतीति। तद्धार्थमाणे द्रष्टव्यम् ॥३॥ प्रास्य तृतीयसुपविद्य ॥ ४॥

(२)जुहोति ॥ ४॥

क्षत्रस्य त्वेति निष्क्रमणं पुरस्तात्पत्नीमन्तर्घाय(३) ॥५॥
"श्रत्रस्य त्वा" (वा० सं० ३८-६४) इत्यनेन मन्त्रेण निष्क्रमणं
पत्नीमग्रतः कृत्वा॥ ५॥

साम पेष्यत्यवभूथवद्देशाः(४) ॥ ६ ॥

प्रतिपत्तब्याः ॥ ६ ॥

- (१) यजमानसकेषु मुखमात्रनामिमात्रजानुमात्रप्रमाणेषु (का॰ श्री॰ १८-१-२,४) तान्प्रदोसान् शालाकान्धारयति । अध्वर्षुराज्यं संस्कृत्य चतुर्गृहोतं कृत्वा तेन जुहोति । अग्नीधा भ्रियमाणेषु त्रिषु शन्त्राक्षात्रकेषु "या ते धर्म॰" (वा॰ सं॰ ३--१८) इति त्रिमिमन्त्रेस्तृतीयेनोपविश्येत्यर्थः । शलाकानां समृहः शालाकः तेन तिस्तिः शलाकामिः एकः शालाकां भवति । एवंविधान त्रीन् शालाकान्हस्ते गृहोत्वा तेषां मध्ये एकं शालाकं शालाहार्यं पदीप्याग्नीभ्रो मुखमात्रे आहवनीयस्योपः रिधारयति अध्वर्युश्चतुर्गृहोततृतीयांशं तिसमञ्ज्ञालाकं प्रदीप्ते जुहोति । ततस्तं शालाकमाहवनीयमध्य एव प्रतिपति । ततो द्वितोयं शालाकं प्रदीप्याग्नीभ्रो यजमानस्य नामिद्दन्ते आहवनीयस्योपरि धारयति अध्वर्युश्चति जुहोति । तत आग्नीभ्रस्तं शालाकमाहवनोये प्रश्चिपतीति देवन्याङ्गिकमाध्ये स्पष्टम् ।
- (२) तृतीयं शालाकमग्नीधा प्रदीप्य जानुमात्रे धृतमध्वयुंराहवः नीये प्रास्य प्रक्षिप्य तत उपविश्य सर्वे चतुगृहीतं शेषं जुहोति। अत्रो-पवेशनविधानात्पूर्वौ होमौ तिष्ठता कर्तव्याविति देवयाज्ञिकाः।
- (३) होमानन्तरमध्वर्युः पुरस्ताद्ये पत्नीमन्तर्धाय कृत्वा शालाया निष्क्रमणं करोति । पत्न्यन्तर्धानं शाखान्तरादिति देवयाहिकाः।
- (४) ततोऽध्वर्युः प्रस्तोतारं प्रति साम प्रेष्यति । कथम् ? अवभृथ-वत् । यथावभृथे प्रेषणमुक्तं 'गाय' 'ब्रृष्टि' इति वा (का॰श्रो०१०-८-१८) तथात्रापीति सामगानदेशाः अवभृथवज्जवन्ति ।

निधनं च(१)॥ 9॥

भवभृथवदेव॥ ७॥ उत्सादनदेवां गच्छन्त्यनमा उत्तरवेदिम्(२)॥ ८॥ समी तुक्तमेव॥ ८॥

त्रिः परिषिच्याचिकददिति(३) ॥ ९ ॥ वामेबोचरवेदिम् ॥ ३ ॥

मन्त्रक्षेण वा ॥ १०॥

(४)परिषेचनं भवति। वाशन्दो विकल्पार्थः॥ १० ॥ नाभिश्पृत्रां प्रवृक्षनीयं निद्धाति चतुःस्राक्तिरिति ॥ ११ ॥

(५) अनेन मन्त्रेण ॥ ११ ॥

प्राञ्चाबितरी(६) ॥ १२ ॥

मन्त्राबृत्या महाबीरौ ॥ १२ ॥

उपदायां च तृष्णीम्(७) ॥ १३ ॥

(१) अवभृथवत् सर्वे निधनसुपयन्ति इस्यर्थः।

- (२) सामगानानन्तरपुरतादनदेशं प्रति सर्वे गच्छन्ति । उत्सादनं महावीरादीनां परित्यागः स यत्र देशे विहितः श्रुतौ "तं वै परिष्यन्द उत्सादयेत्" (श॰ ब्रा॰ १४-३-१-१४) इति । अनग्नौ अग्निरहिते अनग्नि वित्ये यश्चे उत्तरवेदिं प्रति गच्छन्ति 'उत्तरवेदौ त्वेषोत्सादयेत्॰" (श॰ ब्रा॰ १४-३-१-१५)। इति श्रुतेः अग्नौ तु प्रागुक्तमेव-अग्नौ परिष्यन्दे वेति । परिष्यन्दो द्वीपः जलपरिवृतो निर्जलो देश इति ।
- (३) सामगानानन्तरमुत्सादनदेशे परिषिच्य "अचिकदत्ः" (षा० सं० ३८-२२) इत्यनेन मन्त्रेण वश्यमाणं करोतीत्यर्थः ।
- (४) परिषिञ्चति नेदानीम् । स्वश्चतौ (श० झा० १४-३-१-२५) तबैव विधानात् तमवसरं स्वयमेव वश्यति (का० औ० २६-७-२६) सूत्रकारः।
- े (५) अध्वर्युः प्रवृञ्जनीयं महावीरमुत्तरवेदौ नाभिलग्नं "चतुः स्रकि:०" (वा॰सं॰ ३८-२०) इत्यनेन स्थापयतीत्यर्थः ।
 - (६) पूर्वासादितानमहाबीराखाच्यां प्राक्संस्थौ व निदघाति।
- (७) महाबोरघरनावसरे परिशेषितां मृदं 'च' कारान्महावीरेभ्यः प्राच्यां पुरस्तात्तूष्णीं निद्धाति । अत्र तूष्णीमिति यत्नादितरौ महावीरा-वपि ''चतुः स्रक्तिः॰'' इति मन्त्रेणासाद्येदिति सम्यत इति देवयान्निकाः ।

'व' शब्दाभिद्धाति ॥ १३ ॥

परीचासावभितः ॥ १४ ॥

स्थापयति ॥ १४ ॥

(१)रौहिणहवन्यौ चावकृष्टे वाह्ये ॥ १५ ॥

'च' शब्दानिद्धाति ॥ १५ ॥

अभ्रमुत्तरत आमन्दीं दक्षिणतः कृष्णाजिनमुत्तः रतः सर्वतो धवित्राणि परिधीश्च रज्जुसन्दानं वेदमुपः यमन्यामाधाय पश्चात्(२)॥ १६॥

प्राचीं निद्धाति ॥ १६ ॥

पश्चात्पिन्वने चाभितो दण्डम्(३)॥ १७॥ दण्डममितः पश्चाद्धागे पिन्वने निद्धाति॥ १७॥

(४)स्थ्रणामयुखम् ॥ १८॥

पश्चात् । ऊरु संस्तवात् ॥ १८॥

(५)पश्चाद्रौहिणकपाले ॥ १९॥

जातुसंस्तवात् तयोरेव ॥ १९ ॥ घृष्टी च(६) ॥ २० ॥

- (१) रौहिणहवन्यौ खुचौ 'च'कारादभितश्चासादयति इत्यनुषज्येत । परीशासाभ्यां बहिःप्रदेशे अवकृष्टे च परीशासापेक्षया नीचे किञ्चित्प श्चादपसृप्त इत्यर्थः ।
- (२) रौहिणहवन्योरुत्तरतः। तयोरेव दक्षिणतः सम्राडासन्दीमं अभ्रेरुत्तरतः कृष्णाजिनमासादयति। अग्सादितपात्राणि सर्वतोधवित्राणि आसादयति, दक्षिणतः पश्चादुत्तरतश्चेकैकम्। परिधीनपि 'च'कारादा-सादितापेश्रया सर्वत आसादयति धवित्रवत् शाखान्तरात्। आसादि-तपात्रगणस्य पश्चादुपयमनीं सुचं प्राग्यां सादयति रञ्जसन्दानं वेदं च तस्यामाधायं तन्मध्ये कृत्वासाद्यतीत्यर्थः।
- (३) पिन्वने च 'च'कारात्पश्चात् उपयमनीपुष्करस्य पश्चात्तस्या दण्डमभितो दक्षिणोत्तरे आसाद्यतीति देवयान्निकाः।
- (४) पिन्वनयोः पश्चात् दक्षिणतः स्थूणाम् उत्तरतो मयूखम्। "अ-श्रैतद्रद्यसन्दानम्०" (श॰ ब्रा० १४-३-१-२२) इत्यादिश्वतेरित्यर्थः ।
 - (५) स्थूणामयुखयोः पश्चात् रौहिणकपाले ।
 - (६) रोहिणकपालयोः पश्चादु धृष्टी उपवेषौ ।

'व' ग्रब्दाचयोरेव पश्चात् पादसंस्तुतेः ॥ २० ॥ (१)मध्येऽन्यत् ॥ २१ ॥

घमांपयुक्तम् ॥ २१ ॥

खरा उत्तरतो दक्षिणतो मार्जालीयदेशं बहि-

वेंद्यच्छिष्टसरम्(२)॥ २२॥

'निद्धाति' इत्यतुवर्चते ॥ २२ ॥

आसेचनवान्ति पयसः पूरयति घर्मेतस इति ॥२३॥

(३)अनेन मन्त्रेण आसेचनवन्ति सवन्ति ॥ २३ ॥

होषं व्रतमिश्रं दीक्षिताय प्रयच्छति ॥ २४ ॥ प्रयः ॥ २४ ॥

प्रसं चेत्केषलम्(४) ॥ २५ ॥ प्रसं चेद्वतं केवलसेव प्रयच्छति ॥ २५ ॥ अत्र चा परिषेचनम्(५) ॥ २६ ॥ उत्तरवेदेः कार्यम् ॥ २६ ॥ वार्षाहरेष्टाहोत्रीये सामनी गायेति (६)प्रेष्यति ॥२०॥

(१) स्रव, मौञ्ज, कुर्चादिसादितपात्राणां मध्ये आसादयति।

(२) सर्वपात्राणामुत्तरतः प्रचरणीयौ खरावासादयति । मार्जाछी । यधिष्ण्यस्थानस्य दक्षिणतो वेदेर्वहिर्मागे उच्छिखरमासादयतीति देव याज्ञिकाः ।

(३) आसेचनवन्ति गर्तयुक्तानि पात्राणि पयसः दुग्धेन तृतीः वार्थे पष्टी। ''धर्मैतक्ते॰'' (वा॰सं॰ ३८-२१) इति मन्त्रेण प्रयति। महा-वीरत्रयं, द्वे पिन्वने, उपयमनी स्नुवश्च सप्त आसेचनवन्ति पात्राणि। प्रत्येकं पूरणे मन्त्रप्रयोगः।

(४) साग्निके सोमे वृतं प्रागेव "सर्व' वाऽग्ने" (का॰ श्ली॰ ८-३-१७) इति स्त्रानुसारेण सकलं प्रत्तं दत्तं चेत् तदा केवलं प्रवग्यों। स्सादनपयःशेषं यजमानाय प्रयच्छति वृतकाल एवेति देवयात्रिकाः।

(५) "मन्त्रक्रमेण वा" (का॰ श्री॰ २६-७-१०) इति यत्प्रागुक्तं तस्यायमवसरः। "अथैनमद्भिः परिषिञ्चति०" (श॰ब्रा॰ १४-३-१-२५) इत्यादि श्रुतौ पाठात् । मन्त्रपाठक्रमेणाप्यत्रैव परिषेचनं भवति। तस्मात् 'वा' शब्दोऽवधारणे अत्रैव परिषेचनं कर्तन्यमिति।

(६) एकदैव प्रेषोचारणमिति सम्प्रदायः। अध्वर्युः प्रस्ते।तारं प्रे-

(१)चात्याले नाजीयन्ते सपत्नीकाः सुमित्रिया न इति, (१) उद्यमित्युक्तामत्युत्तरपूर्वी धमनपेक्षमेत्ये घोऽ-समिधमादायाहवनीयेऽभ्याद्याति समिद्सीः ति(३), पत्नी च गाईपत्ये तृष्णीम्(४), प्रवृक्षनीयौ शः (५)तमानौ ब्रह्मणे ददाति॥ २८॥

घर्मदुघामध्वर्षवे यजमान(६)त्रतदुघा ७ होन्रे पतः बा (७)उद्गाचेऽम्रीचेऽजाम्(८) ॥२९॥

ददातीति सर्वत्रातुवर्त्तते ॥ २९ ॥

ष्यति । यद्यप्यत्र सूत्रे तन्त्रेण प्रैष उक्तः तथापि व्रैषप्रैषार्थयोरानन्तर्यानुः ब्रहाय भेदेनैव देय:-'वार्षाहरं साम गाय' इति, तद्रानानन्तरम् 'इष्टा-

होत्रीयं साम गाय' इति च।

(१) अथ ऋत्विक्पत्तीयज्ञमानाः चात्वाले मार्जयन्ते-"सुमित्रियाः न ऽआप ग्रोषधयः सन्तु" (बा॰ सं॰ ३८-२३) इत्यञ्जलिनाऽप उपाददति-वज्रो वा आपो वज्रेणैवैतन्मित्रघेयं कुरुते "दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु यो-स्मान् हेष्टि यं च व्वयं हिष्म" इति यामस्य दिशं हेषः स्यात् तां दिशं प रासिक्चेयुः तेनैवैनं पराभावयन्तीति सोधामणोसमानायां श्रुतौ सूत्रकः ता तत्रोपनिबन्धनादिहोपेक्षितम्। पत्न्या अपि मार्जनमन्त्रपाठो भवत्येव क्वचित्तण्णीमिति यतदर्शनात्।

(२) "उद्वयम्०" (वा० सं० ३८-२४) इत्यनेन ऐशानीं दिशं प्रति

यज्ञमानो गच्छतीत्यर्थः।

(३) यज्ञमानः पश्चादनवलोकयश्चीशानदेशादेत्य "एघोऽस्येघिषी-महिं इति मन्त्रेणेकां प्रादेशमात्रीं समिघं गृहीत्वा "समिदसि ०" (वार्व्स० ३८-२५) इति मन्त्रेणाहवनीये दघातीत्यर्थः।

(४) शाखान्तरात्।

(५) रजतसुवर्णमयौ यजमानो ददातीत्यर्थाः।

(६) 'स्वत्रतदुघाम्' इति सिद्धे यजमानप्रहणं (श०व्रा०१४-३-

१-३७) श्रुत्यनुकरणमात्रम्।

(७) पत्न्या व्रतदुघाम्। यद्यपि 'उद्रावे' इति सुत्रे पकवचनं तथाः वि त्रिम्यो दानम्। "अथ येषा वत्न्यै वतदुघा तामुद्रात्भ्यो ददाति" (शु॰ब्रा॰१४-३-१-३५) इति श्रवणात् ।

्र (८) शाखान्तरात् ।

(१) घर्मभेदे यथोक्तम्(२) ॥ ३०॥

कि तदुक्तम् ? "पुनरिति च घर्मम्" इति । एतस्याभिधीयते विः शेषणार्थम् ? ॥ ३० ॥

तच्चाइ-

उजावचान्यं क्रुयति(३) ॥ ३१ ॥

उखावच्चेति सन्त्ररहिताकिया । अत्रापि हि अ्यते—"आइता करोत्याइता पचति" (रा० त्रा० १४-३-२-२१) इति । पुनः करणे प्राप्ते च अन्यरपुनराइम्रहणं मन्त्रतिवृत्त्यर्थम् । अयं चोत्सादनाय क्रियते ॥३१॥

अभिन्नेन चरेत्(४)॥ ३२॥

तथा च श्रुति:—"अथ य उपश्ययोर्डढः स्यात्तेन प्रचरेत्" (श्र० व्रा० १४-३-२-२१) इति ॥ ३२ ॥

स्वाहा पार्षेभ्यः साधिपतिकेभ्य इति पूर्णोद्धतिमा-चामुत्तमां च मनसः काममाक्कृतिबिति(५) ॥ ३३ ॥ 'च'शब्दाल्पणांहुतिमेव। मध्ये सकृद् पृ(६)ह्वीयादिति ॥ ३३॥

(१) अध घर्ममेदे प्रायश्चित्तमाह-

(२) घर्मस्य मेदे पाटने यथात्रागुक्तं "पुनरिति च धर्म्यम्" (का०श्रौ०२५-५-,३०) इति प्रायक्षित्तम् तहु भवतीति देवयाहिकाः ।

(३) प्रायश्चित्तहोमानन्तरं भग्नं महावीरसुपशयां च पिष्ट्राऽन्यया मृदा सह संसृज्य तुःणीं महावीरकरणमजापयसोऽवसेकान्तसुरसादनार्थं क्रुर्यादिति देवयाधिकाः।

(४) अभग्नेन इतरयोद्धितीयतृतीयमहावीरयोर्मध्ये अन्यतरेण दृढे-न चरेत् प्रचरणं कुर्यात् नृतनं तृत्सादनार्थं निद्ध्यादिति देवयात्रिकाः।

(५) अध्वर्युः "भूमिर्भूमिम्०" "य ऋते चित् (०" (का० औ० २५-५-२९, ३०) इति स्त्रोक्तमन्त्राभ्यां भग्नं घर्ममिमिम्रथ 'परमेष्ठिने स्वाहा' इत्यादि चतुष्ठिशदाहुतीर्द्धत्वा "स्वाहा प्राणेभ्यः" (चा० सं० ३६-१) इति मन्त्रेणाद्यां प्रथमां पूर्णाहुति जुहुयात् । "मनसः कामम्०" (चा० सं० ३९-४) इति मन्त्रेण चोचमामन्तिमां पूर्णाहुति जुहुयात् । 'इद्म् श्रियायै' इतित्यागः । अन्याश्च "पृथिन्यै स्वाहा" इत्याद्याः "श्रोत्राय स्वाहा" (चा० सं० ३९-१, ३) इत्यन्ता मध्यवर्तिन्यो विश्वतिराहुतयः सक्टदुग्रहोतेर्होत्व्याः।

(६) 'गृहीतानि' इ० पा०।

(१)प्रजापतिः संभ्रियमाण इति च यथाकालम्(२) ॥३४॥ होमः कर्त्तव्यः, यस्मिन्काले विनाशः ॥ ३४॥

सविता प्रथमेहिति च प्रत्यहम्(३)॥३५॥ विनाशे होमः कर्त्तव्यः॥३५॥

(४)अवकाइयस्य प्रवृक्षयात् ॥ ३६ ॥

"क्रातिष्रयानृचानानवकाद्ययेत्" (का० श्री० ९-७-१३) इति स् त्रितम् । तुल्यं हि ब्राह्मणमुभयत्र ॥ ३६ ॥

न प्रथमयज्ञे(५) ॥ ३७ ॥

अवकाश्यस्यापि प्रथमप्रयोगे न प्रवृञ्ज्यात् । तथा च श्रुतिः "तश्र प्रथमयन्ने प्रवृञ्ज्यात्" (रा० ब्रा० १४-२-२-४४) इति ॥ ३७॥

(१) (वा० स० ३९-५)

(२) जुहोति। संभ्रियमाणाद्यवस्थायां महावीरमेदे 'प्रजापतये स्वा-हा' इत्याद्याः यथाकालमाहुतयो होतन्या इत्यथः। तद्यथा-संभ्रियमाणो महावीरो यदि भिद्यते तद्यप्रायश्चित्तहोमे प्रजापतिर्देवता 'प्रजापतये स्वा-हा' इति प्रायश्चित्ताहुतिहोतन्येत्यर्थः। निष्ठिताभिमर्शनादारम्याजाप-योऽवसेचनान्तं संभ्रियमाणः। एताः सकृद्गृहीतैराहुतय इति देवया-विकाः।

(३) "सविता प्रथमेऽहन्॰" (वा॰ सं॰ ३-९६) इत्येतब्रिहिताच्ये॰ कैसाहुतिः प्रत्यहम् । 'च' काराज्जुहोति सङ्दुगृहोतेशव । प्रथमेऽहिन धर्मभेदे सविता प्राथश्चित्तदेवता एवमेव सर्ववाक्येषु योजना । तेन 'सः वित्रे स्वाहा' इति आहुतिहोमः । एवं द्वितीयेऽहिन धर्मभेदे अग्विदेवता 'अग्वये स्वाहा' इति, तृतीये 'वायवे स्वाहा', चतुर्थे 'आदित्याय॰', पञ्च- मे 'वन्द्राय॰', षष्टे 'ऋतवे॰', सप्तमे 'मस्द्भ्यः', अष्टमे 'बृहस्पतये॰', नसमे 'मस्द्भ्यः', अष्टमे 'बृहस्पतये॰', नसमे 'मित्राय॰', दशमे 'वस्णाय॰', एकादशे 'इन्द्राय॰', द्वादशे 'विश्वे॰ भ्यो देवेभ्य' इति । उपसत्प्रवृद्धावेता एवाहुतयः पुनः पुनरादित आर्भ्यावर्त्यन्ते ।

(४) अध प्रवर्ग्यस्याधिकारिण आह—

(प्) प्रथमयञ्जराब्देनाग्निष्टोमस्यातिरात्रस्य वा प्रथमः प्रयोगोऽग् भिष्ठीयते । तत्र न प्रवृद्ध्यात् प्रवर्ग्यां न कुर्यात् । विकल्पेन प्रथमयञ्जेऽपि प्रवर्ग्यो भवति (का० श्रो० ८-२-१४) । शाखान्तरात् प्रथमयञ्जेऽप्येक इति । तथा "अग्निष्टोमे प्रवृणकोति" तैतिरोयाणां वचनम् । (१)पावती यावार्ययेवी इति द्धियमेग्रहणं मिथ त्यादिति भचणम् ॥ ३८॥

तद्युतशेषस्य । "अथ प्रसुते द्धियमेण चरन्ति" (श्वा०१४-३-१-२९) इति । तत्रैतदुक्तम् ॥ ३८ ॥

त्विषः संवृगिति महाव्रतीये ॥३९॥

''त्विषः संदुग्' इत्येव मक्षणम्(२) ॥ ३९ ॥

(३)चात्वाले मार्जनम् ॥ ४० ॥

'कर्चं व्यम्' इति सूत्रशेषः । तन्त्व पाणिनैव कर्चन्यम् । द्रव्यान्तः रातुपदेशात् ॥ ४० ॥

(४)शान्तिकरणमायन्तयोः ॥४१॥

'कर्चव्यम्' इति शेषः। स्मरन्ति हि—आदावन्ते च कर्मणः शान्ति-

(१) अथ सप्रवर्ग्ये कतौ द्धिघर्मसम्बन्धिनी कियतीमितिकर्तन् व्यतामाह—

"यावती द्यावापृथिवी०" (वा० सं० ३८-२६) इत्यनेन सपिवप्राथामित्रहोत्रहृवण्यां द्यिधर्मप्रहणं कुर्यात्। तन्त्र यथा कथिविःस्थालीमुलेनेव सुन्ति निनयनम् 'अवद्यति' इत्यश्रवणात्। अत एवोपस्तरणा भिधारणे अपि न भवतः। "स आनीयमान आह होतर्वदस्य"
(श० व्रा० १४-३-१-३०) इत्यादिश्रवणान्त्र स्त्रिच निनयनमेव स्थालीमुलेन कर्तव्यमिति प्रतीयते। अतो नावदानधर्माः। मञ्जणं हुतशेषस्य
मक्षाधिकारिभिः कर्तव्यम् "अनुवष्ट्कत आहरिति" "स उपहच
मिष्ट्वा भञ्चयति" (श० व्रा० १४-३-१-३०, ३१) इति श्रवणात्।
अत्र तु यजमानस्यैव भञ्जणमुक्तम्। कात्यायनेन तु शाखान्तरात्
"हुतशेषं धर्मत्विजः सयजमानाः समुपहावं भञ्जयन्ति०" (का० श्री०
१०-१-२२) इति अन्येषामण्युक्तम्।

(२) महावतीयेऽहि "त्विषः संवृग्" (वा०सं० ३८-२८) इति मन्त्रेण द्षित्रमस्य हुतरोषस्य भक्षणमधिकारिभिः कर्तव्यमिति देवयात्विकाः।

(३) भक्षणानन्तरं मार्जनम् । द्घिघमस्य कियन्तः पदार्थाः प्रागु-काः "सप्रवर्णे द्घिघमं" (का० श्रौ० १०-१-१८) इत्यत्र, किय-न्तश्चात्रेति ; तत्कस्माज्ञेतोः स्त्रकार एव वेदेति देवयाज्ञिकाः ।

(४) आदावन्ते प्रवर्ग्यस्य कर्मणः शान्तिकं स्मृतेः ।

अङ्गत्वेऽपि प्रवर्ग्यस्य (पराङ्गत्वेऽपि घमस्य) भवेरस्वाध्यायदर्शनात्॥ तत्र क्रियमाणमुत्तरार्थः भवतोत्येतदुत्तरप्रवर्ग्यार्थमुतोपसदाद्यर्थम्। करणम्'। (१)तत्प्रवर्ग्यापराङ्गभूते कथमिव भवति ॥ ४१॥ तदुच्यते—

(१)स्वाघ्यायदर्शनात् ॥ ४२॥

अत्र भवति । दृष्टं हि शान्तिकरणम् । "ऋचं वाचं प्रपद्य" (३)इत्ये वमादि तस्मादत्र भवति । पतन्त्र द्वारापिधानोत्तरकाळात्पूर्वम् । (४)पू-र्वमासन्द्यां करोतीत्यतः (५)प्रागन्त्यात्समाप्ते हि प्रवर्ग्ये पुनः क्रियते । तत्र क्रियमाणमुत्तरार्थं भवति, स्वाध्यायदर्शनादिति ॥ ४२॥

इति कात्यायनस्त्रभाष्ये उपाध्यायकर्ककृतौ षडविंदातिमोऽध्यायः समाप्तः।

तत्रोत्तरप्रवर्ग्यार्थत्वे तदादौ द्वाराऽिषानोत्तरं पुनर्न स्यात् । अन्त्ये च प्रवर्ग्यानुष्ठानेः ''ऽत्र प्रवर्ग्यामावात् उत्तरं न स्यात् । प्रवर्गाङ्गस्वादुपसः दाद्यर्थत्वमप्ययुक्तमेव । '''''शान्तिकं तच्च निवृत्तेऽत्र प्रवर्ग्यके ।

क्रियमाणं तद्धं नो युक्तं स्यादुपसस्य तत् ॥ युज्यते तेन भाष्योक्तमुत्तरार्थं सुयुक्तिजम्।

युज्यत तन भाष्याकसृत्यस्य सुसुष्यन्त्रः।
तथा च छन्दोगसुत्रे दर्शनम्-अहर्गणेष्वाहराः इयेदुत्तरार्थाऽहः

रन्तिकोति

शान्तिराद्यन्तयोक्का तावतैकान्ततो न हि। अङ्गस्वं किन्त्वपेक्षायां सा निवृत्ताऽपवर्गतः॥ उत्तरे तु प्रवर्ग्ये तद्विघानान्नैव*****। तेनोत्तरे प्रवर्ग्योऽपि पुरोडन्ते शान्तिकं मवेत्॥

(१) 'तत्प्रवर्ग्यं' इ० पा०।

(२) 'स्वाध्याय दर्शनात् स्वाध्याय दशनात्' इ० पा०।

(३) प्रवर्ग्यचरणस्यादौ अन्ते च "ऋचं वाचम्" (वा० सं० ३६ -१) इत्यध्यायेन शान्तिकरणं कर्तव्यम् । कुत एतत् १ स्वाध्याये मन्त्रः पाठे अस्य शान्तिकरणस्य 'ऋचं वाचम्' इत्यध्यायस्य प्रवर्ग्यमन्त्राणाः मादौ दर्शनात् । अत एवोक्तम् (अनुक्रमे ४-५) 'आद्योऽध्यायः शाः स्यर्थो वैश्वदेवः इति । तच द्वारापिद्यानोत्तरकाल आदिमम् पात्राणामाः सन्द्यामासाद्नानन्तरमन्तिममिति ।

(४) 'सर्वमासन्दाम्' ६० पा०। (५) 'प्रामन्त्यम्' ६० पा०।

कात्यायनश्रौतसूत्रोत्तरभागस्यस्त्राखामकारादि

अनुकर्माणका।

| Z,o | स्त्राणि | 310 | 4. | भू व | Ão | स्वाणि | अ० | E O | स्० |
|------------------|--|-------------|-----|------|--------------|--------------------------------|----------------|--------------|----------|
| | अ | | | | | इति प्रतिपन्नवति | 34 | 83 | 34 |
| २९६ | भ/गुचमसमेके तेन स | | | | 350 | अग्नये कामायेष्टिः प्ल- | | | |
| | यजेतेति श्रुतेः | Q Q | 6 | : 33 | | क्षे प्राम्बवणे | 38 | Ę | S |
| \$8 | अंशुब इक्षिणा | १२ | | 98 | ६० | अरनये गृहवतय हति | | | |
| 88 | अ/शुन्स्सोमे निद्धात्यु | • | | • | | चरवारि स्थविमोचनी- | | | |
| | शिक्त्वसिति प्रतिसन्त्रस् | [22 | Ģ | 96 | | यानि: | 26 | 8 | 23 |
| १ ४ | अंशोस्तूच्णीं सर्वम् | | | ig. | 300 | अरमये च सूर्यवते | 3.6 | | 99 |
| | ज क् तेऽप्यविशेषात् | | | \$5 | 888 | अझये प्रहियमाणायानु- | | | |
| | सङ्खलं कृत्वदर्श वा | | | | | ब्रह्मनीदेकस्पययान्- | | ## . 13 % | |
| | तदाख्यम् | २३ | ų | 88 | | देशि | 96 | 3 | 55 |
| २११ | अक्तवाज्यशेषेण रशनां | | | • | 308 | अभवेऽप्समते वैद्युताचेत् | ३६ | 8 | 33 |
| 42.5 | हादशारित प्रयोदशारित | | | | 3.02 | समये विविचये निषश्चेत् | ₹ 6 | 8 | 38 |
| | वा निद्धाति | ३० | . ? | 16 | 300 | क्षप्रये व्रतपतये व्रत्येऽहानि | | | |
| 368 | सक्तास्थीनि सर्वसुर- | | | | | मैथुनमा ७ समोजनं चेत् | 26 | 8 | 5/0 |
| | मिमिश्राणि दक्षिणपूर्वा- | e vide | | | 3.48 | अभये ग्रुचयेऽग्रुच्यायत- | | | |
| 1 - 1 1 1 - 1 | यतां० | 36 | e | 3 | | माचेत् | 39 | 8 | 38 |
| 280 | ुअक्टवैनमाद्य त्विंग्स्यः | | | | 502 | असये संवर्गाय प्रदच्या- | | | |
| | प्रयच्छति | ₹0 | 8 | 4 | | च्चेत् | ₹ 6 | 8 | 33 |
| 83 | प्रयच्छात अक्रमश्र तु थे | १६ | | | 500 | अभये स्वाहेति पर् | | | |
| 583 | अक्षन्पितर इति प्रक्षाल- | | | | | पार्थानि जुहोति | 28 | ٩ | 3 |
| | नेनोपसिञ्चति | 99 | 3 | 22 | ९० | अमावारुदे त्रयोदशास्यां | | | |
| 38 | अक्षानतिक्रमणं ग्रहाणाम् | 68 | ₹ | Ģ | | प्रादेशमात्रीः समिध आ- | | | |
| Ęą | अक्षाब्रिवपति स्वाहा- | | | | | द्धाति | 78 | 8 | 33 |
| | कृता इति | 24 | 19 | १६ | ક્ર | अप्ति चेष्यमाणः समा- | | | |
| | सबे खर्जत्यक्रन्दद्गिनः | | | | | रोद्य० | १२ | 8 | 88 |
| | रिति।जपति | | | | १६४ | ~ | १८ | | 40 C C C |
| ११९ | अक्ष्णया श्रोण्य [सयोः | 80 | 3 | 510 | १९१ | अर्गिन प्रेक्षयति युदापि- | | | |
| | अक्ष्योमीसे त्वेति | 910 | Ģ | 90 | A 10 July 20 | पेषेति | १९ | ą : | 36 |
| 615 F & F F II | अन्त आयाहीत्याहृत्य | | | | ७३ | धरिनः सोमाङ्गं तत्रुण- | | | |
| | खराच्छाग्रस्यते,सत्य- | | | | | च्यतिषङ्गात् | ? Ę | 8 | 9 |
| Section . | | 8 | \$ | 88 | 846 | अग्निचित्सोमबाजिसोमाः | | | |
| 850 | अरन आयूए्षि पवस | | | | | | 2 | ę | R |
| 新門所能 | [25] [2] [2] 시 시 시 시 시 시 시 시 시 시 시 시 시 시 시 시 시 시 시 | in the | | | | | S . 100 | 47. P | |

| | | | 2 . x | T a 1 | σe | स्त्राणि 🤄 | Ro a | ro t | To | |
|------|---------------------------------|----------|----------|--------------|--------------|--|------------|-------|--------------|------|
| ge | स्त्राणि | अव ह | SO A | 50 | ಾರ್ಡ ಪಾರಣ | अस्तिष्टोमेन बा | 8 | E | 88 | |
| २३६ | अविनवासमग्ने सूड म- | | | | 22 | व्यक्तिहोमो विष्यान | ? ? | 3 | | |
| | हा३ँ असीस्यम्यतरेण | ३३ | E | 6.2 | 202 | अहिनच्छे प्राजापत्यौ च | २० | 6 | १६ | |
| 108 | अतिनम्बः कामाय प्रवः | le. | | | 70Q | अरिनष्टेऽस्रतूपरगोसृगा• | | | | |
| | वादवगोऽव्यजान् ् | १६ | ? | 6 | | ब्रि युनक्कि | R o | Ę | R | |
| 550 | अविनस्यः प्रहियमाणे- | | | | 3.66 | अतिनसमीपमानीयाऽन्- | | | | |
| | क्योऽन्वाचयति | \$10 | 3 | 40 | सरु स | ये स्वाहेति जहोत्यनुवाकेन | | | | |
| 25 | अनिनमधेति च छि- | | | | | | 20 | 2 | 3 | |
| | ङ्गाव | १३ | Ę | दट | DAS. | अग्निहोत्र आसन्तेषु चे- | | | | |
| 306 | अश्निमधेति स्कवा- | | 1 | | 804 | त्पात्रेष्वाहवनीयोऽनुग- | | | | |
| | क्रप्रेयः | | 19 | 100 | | च्छेद्राहं प स्ये० | 24 | 8 0 | 8,0 | |
| 238 | अस्निमन्थनादि करोति | 9.5 | Ę | 8 | | अधिनहोत्रं च | 38 | ેં | 3 8 | |
| 5/08 | अरिनयोजनम्त्रातरनुवा- | | | | 388 | अन्निहोसं जुहोति | 28 | ş | 8.6 | |
| | क्रमपाकरिष्यम्परिधीना | • | | | १८२ | सरिनहोत्रातिपत्तावाहुः | • | | | |
| | लस्थ्य | 86 | Ş | | | Co | | tala. | | |
| 260 | लाञ्च० अनिक्समः | 38 | • | 3 | | ति जुहुआन् मना उना तिर्जुषतामाज्यस्य॰ | 26 | 90 | वर | |
| y: | क्षानिस्हाधरणत्यवनः | | 36 Tab | 1.40 | | तिजुषतामाययस्य | | • | | |
| | क्षं दादशबस्त्रस्वा० | \$8 | ક | 88 | 888 | अतिनहोत्रावृता हुत्वा | | | | edi. |
| 2 10 | , सरिनवहा दीक्षाः | ३२ | \$ | 84 | | वाजिनवहश्चयन्ति मधु | 38 | £ | 20 | |
| į. | र अतिनष् स्व लत्सु पिण्ड | | | | | हुतमिति | 4.4 | • | | |
| | गच्छत्यरिन पुरीष्य- | | | | 388 | अतिनहोत्री चेद्दुहानोः पविश्लेगजुषोस्थापनमेकः | 3 5 | P | 93 | |
| \$ b | मिवि | १६ | ર | 88 | | धावश्रवजुषात्यापगनकः अहतीधीये सोमे | 29 | 8 | (9) | |
| 34 | अतिमद्द्रश्चय उक्य्या इ | • | | | \$83 | अन्त्राधाय साम : अन्त्रीवर्ण यो स्टवन्नः स | ``` | | | |
| | =====र्गास्तहेषहेवस्त | • | | | 800 | : अग्नावरणयास्यकाः ः स्वमिति | 88 | w | e | |
| | द्वतं ० - द्वतं ० | २१ | R | 8 | | स्वामाव अरनी वहणप्रधासवत् | | | 7.1 | |
| 20 | अनिन्द्रत् प्रस्ववचेसवी | • | | | 20.5 | साना वरणप्रवासन्यः : आनीषोमीय ऐन्द्रासौ- | 7. | | | |
| | र्थाब्राद्यप्रतिष्ठाकामानां | ० २२ | 8 | \$8 | 80 | : अग्नाबामाय एन्द्राजाः इयः सौस्यो बभूदः | | | | |
| | २ अग्निष्टुत्सु च | | Ş | 3 | | स्याः साम्या प्रदुरः क्षिणी | 96 | 3 | 92 | |
| 34 | ८ अग्निष्टु दिन्द्रस्तुत्स्ये | | | | | ाक्षणा अरनीषोमीयस्य पश्चपुः | 4.7 | | | |
| | स्तद्वेभरेवस्तुतां वैकेके | न २४ | ß | \$8 | | * * * * * * * * * * * * * * * * * * * | | | | |
| 28 | ० अविनष्टोसं प्रथममेके | ३२ | Ø | 100 | | क्षिक क्षिक | १६ | v | 8 | |
| 26 | ० अरिनष्टोमं प्रथममेक | ३३ | v | 8 | | | ۲۲. | • | • | * |
| 33 | १ अविनष्टोमाः प्रथमसस | | | | \$ 80 | । अग्नेजातानिति प्रतिमः | | | | |
| | ं मोत्तमा नवत्रगांणासु | | | | | ^{रत्रम्} | ζ | ११ | ş | 37 |
| | कथ्या इतरे | 经有益率 化二烷 | 100 | २१ | 886 | अने तवेति सिकता- | | | A • • | |
| 19 | ं अन्निष्टोमातिरात्रौ ू | 29 | • • | १९ | | न्युप्य च्छाद्यत्यात्मानम् | (?'S | 3 | 87 | |
| ₹8 | ७ अरिनष्टोमावस्तरेणाति | | | | 643 | अरने स्वमिति अनुका- | 414 | | A (A | |
| | राम्न उक्य्यपक्षः | | | 3 | | न्तेऽपरे द्विपदाः | | १३ | γ,ω | |
| 32 | ७ क्षरिनष्टोमास्त्रिवृतस्रय | : 23 | ٩ | *\$ | | अन्ने युक्ताहोति प्रत्यृच्यः | 6 | | | |
| 38 | ५ स्वरिनष्टोमेन वा | . 38 | G | 3 | 47% | चुवाहुती जुहोत्युखायाम | (| | 1 1 | |
| XXII | WALLES FOR STATE OF STATE | Marie | er in | YOUR | of the last | | | | 27 | |

| 1,00 | | | | | | | | 1. | | |
|------|--|------------|-------------|------------|------|-------------------------------|------------|-------|----------------|-------------|
| বূত | | 340 | 45 0 | सू० | Ze | सुन्नाणि | स० | क | स्० | |
| ę | अग्ने वर्ज्यस्मिन्हों- | | | | | न्ते गोः पयोऽवनवतोः | | | | |
| | जिष्ठ• | 85 | 3 | Ę | | न्द्राधिनेति ू | 28 | 9 | 50 | |
| 390 | अरने नेहीं अं नेरम्बरमा | • | | | 830 | अंजापयसायसिद्धति म | | | | |
| 7.5 | पितः वैद्यानसम्बसे ः | 43 | 3 | | | खार्थेत प्रतिमन्त्रस् | 28 | 8 | 3.6 | |
| 20 | अग्ने सहस्वेत्युलसुकादा | | • | | 68 | : अजापयसावसिद्धति व | • | a f | | |
| | नम् | १६ | ą | 4 | | सवस्त्वेति प्रतिमन्त्रम् | १६ | 8 | 43 | ٠, |
| 300 | अग्न्याधेयपुनराधेया- | , , | | | 360 | अजिने पाइवंसहिते | | | | |
| ,,,, | मिहोत्रदर्श ए णमासदा- | | | | | कृष्णवलक्षे आविके | ₹ ₹ | ષ્ટ્ર | 28 | |
| | | 33 | VS. | 33 | 1913 | अजेन चरति | १इ | 8 | 3 8 | |
| 202 | अग्न्याधेयवस्प्रविदय हु- | | | | ३६३ | . अञ्जनाम्यञ्जने इत्वौपाः | | | | |
| 757 | तेऽग्निहोत्रेऽपरेण गाहप- | | | | | सनं परिस्तीर्थे वारणा- | | | | |
| * | and the second of the second o | | G | 010 | | न्परिधीन्परिधाय ० | 3 8 | 8 | 3.10 | |
| 86.6 | त्यसुदक्किशराः० अरम्युक्थः शृंसेत्याह | | | | 858 | अञ्जन्तीत्यु च्यमाने देव- | | | | |
| र्वर | अरम्युद्यभणं च तस्मि | . % & | े व | 19 | | स्त्वेत्यनक्ति महावीर- | | | | |
| 7.5 | स्तस्मिन् स्तस्मिन् | at | £ | 8.3 | | माज्यहें संस्कृत्य | ₹ | 2 | 88 | |
| 667 | रतात्मप् अङ्गानि चालभते यथा- | \$8 | * | १३ | 69 | अणिष्ठानितरस्मिन्नेर्व | | | · "1 | |
| 670 | लिङ्ग ^ह शिरो म इति | | | | ' | प्रदानम् | 86 | 3 | 38 | |
| | | 0.0 | 12 | 3.6 | 269 | अतिक्रमणं च सर्वासाम् | ₹₹ | Ģ | ₹0 | |
| | प्रतिमन्त्रम् | \$ 2 | 8 | २१ | 268 | अतियाद्यवद् यहं गृहाः | | | | |
| Rok | अङ्गान्यहुता यस्य यस्या | | | | | ति बृहस्पते अति पद्र्य | | | | |
| *** | | 24 | ξ.Θ | ξc | | इति | 22 | | \$3 | |
| १९६ | अङ्गारेषु वा वहिष्परिधि | | ig it | | 86 | अतिप्रेषितेऽझीदाह सः | | | | |
| | दक्षिणतो जुडोत्थास्त्रिनः | | ે. • | | | सुत्यामिन्द्राग्निभ्यां० | १३ | 8 | 43 | |
| | सुत्तरे <i>०</i> अङ्गिरसामयनगादित्याः | 52 | ş | 38 | 483 | अतिरात्र उत्तमः | ą o | E | १२ | |
| | The State of the Control of the Cont | | | | 20 | अतिरात्रः सः | १३ | 3 | 26 | |
| | नामयनवत् | 58 | | 88 | 38 | अतिरात्रपशुनुपाइत्य | | | | |
| | अङ्गेश्वङ्गानीति जात्कण्यैः | | | ३५ | | वशापृद्धिनः | 88 | ₹ | 80 | |
| | अचयमं वा | १८ | | \$6 | २२ | अतिरात्राचतुर्वि¦रामह- | | | | |
| | अवयनं वा परसमे | १६ | | 18 | | रिनष्टोम उक्थ्या वा | १३ | 3 | ą | |
| | अचवालो यूपः स्प्यापः | | | (g) | 898 | अतिरात्राच्चेद् बृहत् | 36 | T | and the second | |
| | | १३ | | 38 | | अतिरात्राद ग्निष्टुत्द्रि- | | | | |
| | | 29 | १३ | ሪ | | तीयस्य ेे | ર પ્ર | 9 | 30 | |
| 160 | अच्छाचाकविप्रहेषु भ | | | | 320 | भातरात्रान्तरमावाप- | | | | |
| | | ₹₹ | | | | स्थानम् | 38 | 8 | 85 | ing. Tri |
| | | २६ | 8 | ક | | अतिरात्रो विश्वजित् | 3 8 | 2 | १२ | |
| | धजलोमिः स्राधुज- | | | 1.3 | 80 | अत्यग्निष्टोमोऽविवाक्यं | | | | 10 10 |
| | ति सिन्नः सं्स्ङ्येति | १ ६ | 8 | 86 | | दशमध् | १ २ | 3 | 4 5 | |
| | अजस्य शुरुवति प्रचरण- | | | | | अत्र दोक्षितोऽया म् वि | 14 | ٩ | ર ૬ | |
| | | ફ | 8 | † 9 | १६७ | अव पश्चम्याः सप्तचीप- | | | | |
| 386 | अजापयसावसिच्य शा• | | | 1 | | स्थान्धं सर्वीपधानात् — | १८ | 8 | १२ | |

| | | | | | 97783237 |
|---|-------------------------------|------------|------------|------|-----------------------|
| 50 Mu | स० क | | :1. 0 | | सूत्र मधिकं व |
| २३७ अन्न वा ग्रहणम् | 30 I | | . 1 | | नायकः अधिश्र |
| ४४९ अन्न वा परिषेचनम् | २६ | ७ इह | | | जावरू मधिषव |
| ३०१ अन्निचतुर्वीरजामदग्न- | \$ 1 | | ' | | गाजन्य अधीवा |
| े वसिष्ठसं,सर्पविषवा- | | | | | जवाया णाति ६ |
| मित्राः | | ર १४ | - 1 | | जात्व द अधीवा |
| २०३ अन्नीणां चेंके | १९ | ફ ૬ | | | जवाना ष{ संवे |
| ३४३ अत्सरकाः कुण्डप्रतिरू | | | | | ५६ स्पन अधीवा |
| पाश्रमसाः | | 8 8: | | *** | रूवर्ग ह |
| ३६० सथापरम् | | ७ ३ | - 1 | | |
| २६३ अधैकाहाः | રફ | 8 | 8 | बदर् | अध्यक्ति तोरिति |
| २६२ अग्रेषां परितां बदति पः | | | | | |
| रोमे गामनेषतेति | | ४ ३ | 6 | रष् | अध्यर स्वारि |
| s अद्क्षिणानि च स्वासि | | | | | त्वार मेधिक |
| <u>थोगात</u> | 88 | | - 1 | | |
| २३६ अदर्शनाद् प्रामात् | ₹ १ | 3 8 | 6 | १०३ | अध्वर यथा क |
| ४११ अद्देनेऽस्णपुष्पाण्यः | | | | | 1000 |
| र्जुनान्यमिषुणुयाद् | | १२ १ | | 8008 | यज्ञ इ |
| ३६४ अहाने च | | 8 8 | 电相连压点 | - ^- | जुरा व सहस |
| कृष्ट अवानं च विशे | and the state of the state of | २ ३ | | 4.5 | निष्य निष्य |
| ४९ अदित्ये महिष्याः | १९ | 3 | Ę | 2101 | अन्त |
| ४३९ अदित्यै रास्नेति गाँ | | | | 1 | क्षिण |
| पादोन प्रतिसुच्य स | ચ્યુ. | | | 00: | २ अघ्व |
| णार्थाः <u>२२</u> | | ۹ 9 | | 1, | धर्मा |
| ३८३ अदुष्टाद्वा नयनमेके | Commission . | | | | हिडि |
| ३६४ अदुहानायामन्याम् | . 34 | • | ξ | 235 | अहब अहब |
| ३८४ अदाषो वा न वे देवा | | | | , , | ₹: % |
| कस्माचन वीभत्सन | 36 | ۹ : | 9 6 | | न्ते य |
| इति श्रुतेः | | ì | | | ત્રે હ્ ય |
| ४६१ सदिभेदने मारुतेन म- | | | 2.5 | 20 | |
| ह्मसाम्ना स्तुवीरन् | 44 | ₹* | ₹ ₹ | 205 | ८ सध्व ३ अध्व |
| १६ अह्या राना ७ छनिवप | | | | 1,4 | स्वक्र |
| नोपसर्जनसङ्ख्य | १२ | q | 8 | 0: | , अध्व |
| २५३ अहारेणीपासनं निरस्य | | | | 5 | सौरध |
| ति ऋव्याद्मित | ₹१ | 3.0 | | 200 | 1.0 |
| ९१ अधःशयां यदत्तीति | १६ | | 11.50 | | 9 अ घ्व |
| ३९५ अधस्तात्समिवे धारय | श्रू र ५ | ٥ | ((| 280 | 化 斯克斯克 |
| ३५ अधिकं दक्षिणतो हो । | Maroc | | 9 A | 1 | सवें |
| ्रें ≽त्रेण सुवर्णशतमानेना ३८४ अधिक निरूप्य तच य | भूष पढ् भेज १६ | ે | र० २६ | | काय |
| ३८४ आधक।गरूष तस प | | | ٦4 | | |

| 76 | अ० व | | |
|--------------------------------------|--|-----------------|---|
| ६ अधिकं वा प्रकृत्यनुग्रहात् | રફ | 8 80 | |
| ६४ अधिश्रयणं च | १५ | 1100 | |
| ०४ अधिषवणे शवनभ्ये | \$ 8 | \$ 88 | |
| ६१ अधीवासमस्यामास्तृ- | | . 1979 . 188 | ¥ |
| णाति क्षत्रस्य योगिरीत | | 9 3 | |
| ५६ अधीवासं प्रतिसुच्योदणी | | | |
| ष्रं संबेष्टयः | १५ | ५ १२ | |
| १३३ अधीवासेन प्रच्छादयति | | | |
| स्वगें लोकऽइति | २० | ६ १५ | |
| ६६१ अध्यधिगच्छन्त्यस्मन्व- | | | |
| तोरिति | २१ | 8 53 | |
| २२३ अध्यरदीक्षणीयायाश्च- | | | |
| त्वारि त्रीणि त्रीणि वास | 4 U× 2 ^m 1 Verous 7 m | | |
| मेधिकानि | ঽ৹ | 8 4 | |
| १०३ अध्वरप्रायश्चित्ति च सर्वेश | 3 | | |
| यथाकालं पूर्वी पूर्वीस् | 16 | w w | |
| १७६ अध्वरसमिष्टयज्ञरन्त इष्ट | Ì. | | |
| यज्ञ इति प्रत्यूचमपरे | १६ | ६ ३० | |
| २१३ अध्वयमे च प्रतिसुक | | 30 | |
| निष्कम् | ૧૦ | १ ३० | |
| २७७ अध्वर्धु।पश्चाद् वद्या द्- | | | 7 |
| क्षिणतः | A CONTRACTOR | ३ ३४ | |
| १९२ अध्वयुं:प्रतिप्रस्थातार्भ | Ì | | |
| धमिबनेत्याचिनं भक्ष | यान्त | | |
| द्विद्विरावर् म् | \$ 6 | \$ 68 | |
| २३४ अञ्बर्धमकोद्वातृहोत्स | ar- | | |
| रः कुमारीपत्नीमिः संव | ₹- | | |
| न्ते वृकासकाविति दश | | | |
| चेंस्य | | ६ १८ | |
| २१८ अध्वर्युयजमानौ कूर्वयो | : २० | २ १९ | |
| २१६ अध्वयुंगजमानौ दक्षि ^र | गे- | | |
| खक्रणें जपतो विसुमीबे | ति २० | २ ९ | |
| ४१ अध्वर्धुयजमानौ मधुप | | | |
| सौरप्रतिप्रहाय० | 68 | 8 84 | |
| १७५ अध्वर्धुरिममुखो रथिश | इ: १८ | ५ २० | |
| ७ अध्वयुंगृहपति दीक्षया | ते० १२ | ३ १५ | |
| २९८ अध्वर्यू चमसाध्वयंवश्च | | | |
| सर्वे प्रतिगृणन्त्वच्छाव | | | |
| काव | 27 | १०६ | |
| | | | |

अकारादिवर्णानुकमणिका ।

| 회사 전쟁으로 가는 보다 이 그리면 보다. | पृट सूत्राणि | अ० क० सू॰ |
|--|--|--|
| पृः सुत्राणि अः कः स्ः | | ३४ ७ ३ ७ |
| ३० अध्यक्षेत्र मध्यो सह्यचाः | | १६ ४ ३४ |
| 23 E KR | 100 अस्तिम्बर्गान | 14 / |
| \$68 24 at 2 2 20 co - | ३७३ अनासने तस्मिन | 26 8 8 |
| ११६ अन्ह्रहो विसुच्य विसु | ४२० अनाहिताग्रिश्चे चेच्चेनेत्ये | * |
| च्याञ्चीमति १७ ५ ९९ | वैद्यानरं निर्वपेत् | 39 88 9 |
| २५९ अनहहो विसुच्य विसु | ३५७ अनियतोदकं दार्गद्वतव | |
| च्यन्तामित दाक्षणा | इवस्थादि | 28 B & |
| 39 8 6 | ६वन्द्रवाद २८४ अनिकक्तप्रातःसवनः प्रथ | (• |
| SE SHESHING CO. | 5 CB 31144.00×10.014 | 22 6 6 |
| ९९ अनुदाही युक्त्वा प्रेदरन | म ईप्सुयज्ञः ४५ अनिष्टिनो वाजपेयेन | ફૃદ્ રૂ વ |
| इति प्राङ्गात्वा यथायन् १६ ६ ६ | ४६ आनाष्ट्रना वाजप्यण | |
| ८३ अनदा पुरुषमोक्षते देव | ३९६ अनिङ्गाप्रयणेन नवस्या इनीयात्पतितस्य० | 38 3 26 |
| वितृमनुष्यान र्थकमरिनं | इनायात्पासतस्यः | |
| व्यापनाधिक दि ४ १ | ४१२ अनीतासु चेहिसणासु | |
| द्वराज्यासार ८५ अनदा पुरुषमीक्षते पूर्वत्रः विकार्वाद्यमिति १६ ३ १ | दृतं पूर्ववद्दवा तथेवय | He day |
| 4134 300 | The Aller Allers Aller A | +04a. [e11 |
| ४३१ अन्नाकामध | अवस्य द्वार्य स्थल य | 56 88 B |
| ३९८ अनपनया वाऽद्धत्वाव 💎 | ०ल जैनस्टार | १९ ७ ६ |
| ११४ अनपेक्षमेत्य शास्त्राद्वार्योः | 1 3 0 C 31 91 W 4 | |
| विस्थान क्षित्रसम्बद्धः ३०० | ६ ३७६ अनुकोशेश्यये स्थासम बाहुतिवां ग्रामाधिन | |
| ४६ अनपेक्षमेत्यानुमतस्य सं | | 26 8 30 |
| Particular services and services are services and services and services and services are services are services and services are service | रर चेत् २४५ अनुचरीवा फलाधिक | तरा- |
| १६१ असपेक्षमेत्योदङ्ग्राङ् ति- | ०० विकास | २० ८ २६ |
| THE CHUILD SEE THE COLUMN TO SEE | १० दितरासाम् ३९ _{२३४ अनुचर्य प्रेरपाम्} | २० ६ २० |
| इक्षात्मगढमार्याः ३९३ अनपेक्षमेत्योपस्पृतान्त्यपः २५ ७ | ६० २३० अनुवर्ध्य तुर्णोमेक | वास ३० ५ १७ |
| | 450 463 | ેશ્વ લ ૯ |
| ३.० सत्तवासे याज्या (` | १४ १७६ अनुरेशाचा पुरोडाब | स्वि- |
| ३९० अनसा | ष्टकृतोऽभिषेचनीयव | त् १८६ १६ |
| शाम्त्राही गृहारचाड | | कश- |
| म्बर्गी० ^१ ैं ै | - Conserved and a feet | |
| oresztni ali | | इत्तरः १२ २ १ ६ |
| ्राच्याकेको समिद्धाः समित्र रोग र | १६ ८ अनुपात प्रकारतार ८२ अनुपम्पृशन्तुत्क्रम | વલ્યે- |
| ३३६ धताघ्रहेति वाच्यात प्रा [*] | | ਭੰ ਬਰ∙ |
| केष्यच्याद्याद्य सार्थकता ८५ . | C Tomorrow A | ************************************** |
| - अन्तरिक्या प्रास्तादादरः | THE REPORT OF THE PARTY OF THE | वजीवस्र ८ २५ |
| त्रह्योत '* | " " STEEDS IN INCH | |
| ्र अवाधिकया।संवर्षत पु- | कार्य व्यवस्थानस्थ | 11917 ja kara 1914 a. a. a. |
| ** O I KUTIKAT | क्राक्ट्रभ्यश्रवी | લાજાા |
| ००० समाम्रातप्रतिषेधाच । १ | | र्बहुतः १८ ६ २ २ |
| २४६ अनारम्यस्वाच्च २० | ८ २७ द्वादशक्रमाळ. य | |
| | | |

| | 41, 18, 18, 18, 18, 18, 18, 18, 18, 18, 1 | | | - | | | 32 A | ZZ A | ZI A |
|-------|---|-------------|-------------|-------------|-------------------|--|------------|--------------|---------|
| Zo | संशाव | 40 | କ୍ର ଦ | 450 | So | स्माणि दक्षिणाशिरसं० | 22 | - ASS 00 | . 5 TO |
| 80 | अनुमन्त्रयत वा | \$8 | ક | 8 | | CICANII SIAGO | सम् | 9 | ζ |
| १२१ | अविन्याद्यहा नारणवर्त्य . | | | | 1 358 | . व्यक्तीलाब्दा जा छ दस्तर सामा- | | | |
| | त्तरतः प्रथमम् | \$10 | 3 | 4.8 | | त्रावरणीसौर्याचिन्यो य- | | | |
| æέ | अनुयाजान्ते पशुपरोडा- | | | | | यावस्थम् | ~ ~ | 9 | 40 |
| | शार्थेश्रस्त्याश्विनेन प्राग- | | in. | | 800 | अनुबन्ध्याये ववासुत्खि- | | | |
| | वदानेस्यः | - | | 30 | | चातुमधी गर्भमेष्टवैब्र्- | | terili Ne | |
| 296 | धानुरन्जु चतस्रः स्रोताः | | | | | | 36 | 80 | R |
| | अनुरज्जु चतस्रः सीताः कृषति वायुः पुनात्विति | | | | 30 | क्षनूबन्ध्यावपाहोमान्ते | | | |
| | प्रातमन्त्रस् | ₹१ | ં જ | 8 | | दक्षिणस्याम् अनुबन्ध्यावपाहोमान्ते | 83 | \$ | 38 |
| ४१२ | अनुलिप्सध्वमिति प्रेष्या | ला२५ | 88 | 23 | 5.8 | अनुबन्ध्यावपाहोमान्त | | | |
| ६१ | अनुवर्रुमोदुम्बरों सा | | | | | | | 3 | |
| | खामुपगृहत्युपस्प्रकाति ः | १५ | Ę | ₹ € | | अनृतं वाभिशस्यसानस्य | | ሪ | 6 |
| €8 | अनुवाकेनैक | १६ | • | २४ | 368 | अनेन वा | ३५ | L | Ģ |
| 206 | अनुवाचनप्रेषी समस्याऽ- | a egili. | | | १०८ | अन्तःपात्यगाह्यस्ययो- | | | |
| | नुयाजप्रेषादेवं बहिरिति | 28 | Ø | ą | | रिच्छन् | 38 | 6 | 36 |
| 805 | अनुन्याहारभयं त्वेतेषु | 24 | १० | 29 | ४९६ | अन्तःपात्यदेशे सम्भा | | | |
| 76 | अनुष्टुस इत्युक्त्वा धूनो ः | | | | | | 26 | ₹ | 8 |
| | स्याञ्जिमवेशीनां त्वेतिः | १२ | ٩ | 80 | १८३ | अन्तःपात्यस्थाने चर्मणि | | | |
| ४२२ | अनुसवनं ब्रह्मा गृहपतिश्र | | | 格式 经决定 | | सुराक्षोमविक्रयिणः सीसेन | ११ | 8 | şe |
| | अनुसवर्ग वा | | | | ४४५ | अन्तःपार्वे पश्चिम्यं निधा | i• | Williams | |
| | अनुसवनमेनमालभेर न्वस | | | | | य दक्षिणेन निर्हृत्योच्छि- | | | |
| | | | 73 | 3,6 | | ष्टबरम् | 38 | છ | . 5 |
| 363 | एतद्वः प्रातःसवनं व अनुस्तरणी चेत्पश्चास्कृणे- | | | | 88 | अन्तरं दीक्षितवसनात् | 88 | 8 | રર |
| | माहत्य हस्तयोर्वेवको | | | | 348 | अन्तरागमनेऽनाद्वियते | 49 | 8 | 50 |
| 306 | सनुहो माश्र पुरोडाशाः | | | | 83 | अन्तराग्रयणोक्थ्यावाग- | | | |
| | अनुकानते दक्षिणे पङ्गी- | 17 | | | | न्तुस्थानं ० | 88 | 9 | 8 |
| | | 90 | 92 | 68 | The second second | अन्तरिक्षात्प्रतिगृद्धा | | | |
| 996 | रघि तमिति अनुके | 5 <i>10</i> | | 86 | | आतपवष्याः | 96 | 8 | a a |
| | सन्देषु पद्ध दिइयः वैश्व- | | 100 | | | जारापपप्याः सन्तरोरू यज्ञपात्राण्य- | (4 | * | 44 |
| | देवीवदाइयसीति प्रति- | | | | 3.7 | न्यानि | 26 | 163 | 20 |
| | मन्त्रम् | | | ą | | | | 11.00 | 38 |
| | | | | | | अन्तर्वसुः पशुकामस्य | 4 3 | ै | 18 |
| 48 | अनुचानोऽण्ययशा यजेत | 39 | ű. | K 4 | ८६ | अन्तानुद्धीय सर्वतः प्रथस | | | |
| 204 | अनुपसदं जुहोति | 3 | ₹. | 80 | | घात्मादघाति रुद्रास्त्वे ति | | | |
| 5.3 | अन्बन्ध्यवपाहोमान्ते | | | | I to the second | अस्ते च | 86 | 8 | Ę |
| | द्यादेनानि | १५ | ಟ | રેદ્ | | अस्ते च | ₹¢ | a territ | |
| 264 | अ नुबन्ध्यवपाहासा न्तेऽ- | 4 | | | 880 | अन्तेष्वाहुतीरुपविदय | şc | 8 | ११ |
| | पाकरणस् ् | 33 | 9 | ? ? | २९३ | अन्त्यदेवताऽनूबन्ध्याऽ | | | |
| | अनुबन्ध्यान्तेशनीनाहृत्य | | | | | धा सवनीया | 23 | • | ş |
| | वेदिमध्यमारनीधाद्दक्षिण | | y A Nasa | | १६२ | अन्त्यमुसरम् | 80 | • | 8\$ |
| 磁效能計劃 | 法解决法法律的证据 法法法法 医下水体 医经生物管 医皮肤 | 证的原品 | | tur i dinak | 70、5年6年6月1日 | | 心无效量 | A | 350 THE |

| पुरु | स्त्राणि | ाह | ₹50 | सः | Zo | स्त्राणि | 370 | হয় ০ | सु० |
|-----------|-----------------------------------|------------------|---------|----------|-------|--|------------|-------------------|------------|
| ર પ્રર | सन्त्यां द्यावापृथिवी- | | | • | 68 | अपयतीः | | 8 | |
| | याम् | 90 | ć | ø | | अवशंख्यणं नैतन्धवेऽग्नि- | 111 | | |
| | अन्त्याद्वा ग्रहात्स्तोक ः | | | | | मिन्धीत | 88 | Ę | 33 |
| | | ३ ५ | 88 | 55 | | अपरशुनुक्णां युद्रस्त इति | | | |
| | | 23 | | - 1 | | भपरा गायत्रीम्य उ- | | | |
| | अन्त्ये मिनोत्यौदुम्बरी- | | | | | | 210 | १३ | १३ |
| | ७ शाखास् | 88 | 3 | 910 | १३६ | अपरा दक्षिणेन | | 6 | |
| 100 | | ٠ ٩ १ | • | | 6300 | अपरामुत्तरेण | | 6 | |
| | | २ १ | | 11 1 | | अपरामुपस्जिति | १२ | 8 | 6 |
| | | २२ | | | १५० | अवरास्ताभ्योऽनु ष्टुमः | | | |
| | | १५ | | 8 | | संखायः सं व इति | 20 | १२ | 9 |
| | सम्यतस्त्वभिवद्यः | - | G | ₹8 | 888 | अपरि मितस्तोमेन च | | | No. |
| 800 | सन्यम् चेच्छन् | १६ | 8 | 28 | | जेरन् | | 83 | |
| 80 | अन्यत्रापि अन्यत्रापि | ę ę | 8 | ચક | | अपरिमिता मध्ये तूष्णीम् | ३१ | ષ્ઠ | . 3 |
| 228 | अन्यत्रापि | ₹0 | Ę | 28 | | अवरिमिताछि बिता वो- | | | |
| 388 | अन्यत्रापि दोषसंयोगात् | 23 | 8 | 20 | | त्तरयोः | | 8 | |
| 858 | | १७ | 8 | 80 | | अपरिमितेष्टको वा | | S | |
| 28 | अन्यद्न्तवं दि | १३ | 3 | ३ | | अप्रद्धराजन्यस्य | 33 | 8 | \$8 |
| २९ | अ न्यदिच्छन् | 83 | ş | 48 | | अवरेण पारकम्य परि- | | | |
| | सन्यदुद्धीयान्योऽस्मै प्रय- | | | | | क्रम्य चयनमिडामस० | ₹® | ₹ | ११ |
| | | ₹ € | | 88 | 656 | अपरेण स्वयमातृण्णाः | | | San Const |
| 306 | अन्यद्वेज्यायोगात् | ₹ 6 | 8 | ક્રફ | | मेत्वायस्याः पञ्चः | | | |
| 333 | | | | | | अपरेन्ते सीसं निद्धाति | | 4 | |
| | करोत्यश्चयुक्तम् अन्यस्योभे | ₹ 0 | ક | 8 | 460 | अपसल्विस्ट्या रज्ज्वा परितत्यापेतो युन्त्वितः | | | 22 |
| ९१ | अन्यस्योभे | १६ | | 83 | 26 | अवसन्यं प्रदक्षिणं चा- | * \$ | ₹ | ₹* |
| २६ | अन्यांश्च शब्दान् कुर्वन्ति | 83 | 44 | 88 | 4.6 | स्तोत्रान्तात् | 83 | 2 | 48 |
| * | अन्यानि वा | १६ | | ३२ | 260 | स्पांगम्भन्निति विस्भिः | 3 K | | |
| 893 | अन्यो वा परिवस्ययोः | Ostologi Nagy | | | | अपाकरोत्युभयीः | | | 5 m |
| | जनमध्वयीः कालसम्पत्तः | | | १८ | 250 | अपाचिमत्यपामागैरपः | | | |
| | अ न्वह् स् | 38 | Ť | 9 | 1 | मृजते | | | 9.43 |
| \$68 | अन्वारब्धेषु पयो जहार | | | | | स्वत अवातामिति यजमानः | | | 48 |
| W | ति हें सुती इति | \$ 6 | 3 | 38 | | अपाताःमातं यजमानः अपामार्गहोमः | | Ę | ્ |
| 83 | अप उपस्पर्शनाद्येतत्स | | | | | अपिहितद्वारे प्रवर्थंच- | | • | • |
| | | | 5 4 7 5 | રૂ છ | 42.5 | | 1000 | • | |
| | अपः पिन्वेस्यपस्याः | 700 | • | 4 8 | 260 | रणम् अपृष्ठशमनानि सार- | ₹ | | |
| ৎ৪ | अवः श्रञ्जेऽवनयस्यपोः २००० | 6.0 | | | 1 2 5 | स्वतानि | 5 i | : ``. 2 | ເຍ |
| | देवीरिति अपचितिकामस्यापविती | 74 | | . | | | 46 | | \$8 |
| 300 | अवाचातकामस्थापाचला | ५५ | γ. | ्र २७ | 4.50 | ् अपतप्रजनना स्वावराः स्तदाख्याः | ąä | | 3 (|
| \$\$ | अपप्रवते यन्ता | ** | • | , ,,, | | ~ M. 4. A. 144 | | | |

| | | - | **** | 777.0 | l Fra | स्त्राणि | 8 7 0 | ₹ 50 | 23 0 | |
|-------|--|-----------|-------|-----------------|----------|---|-----------------|-------------|-------------|-------------|
| Zo | | | | | | अभिनिधानेऽ प्रयेऽ भि• | 45.00 | -54-6 | 180 | |
| | अपोनिक्रयोऽप्सु सृते | 8, 2 | 8 | र्द | 300 | मते दुरोडाश्चः | 36 | સ્ | 92 | |
| \$8 | क्षपो निधाया ॐइव- | | | | 1 069 | अभिन्नेन चरेत् | | \$ | - 1 | |
| | दास्यग्रहणमोदुम्बरेणः | १३ | ٩ | Ę | | क्ष भिल्ने भेत्तवै ब्रुयात् | | . 2 | | |
| २२९ | अपो यात्वावगादेषु | | | | | 나는 이번 어린 이 사람들은 그렇게 얼마나. | • | | • | |
| | वाचयति यृहात हति | | | | \$\$8 | अभिप्रयायमभिषुण्वन्तिः —————— | 202 | | 210 | |
| | अपोर्णीति पत्नीशिरः | | ર ૪ | १२ | | दशानुपरोधेन | ₹8 | ş | 40 | |
| 300 | अप्तोर्यामः प्र प्रेव यस्मा | | | | इध्द | अभिष्ठवानां चतुःषष्ट्र{ | 9 25 | | 0.0 | |
| | त्पश्वो अंशिरन | | | १२० | | शतं चतुरहश्च | • ४४ | 4 | 22 | ese ge G |
| | अष्ठोर्वामराजस्यवर्षम् | | | | ३३४ | अभिष्छवाम्यासेनाभि• पूरणम् | 2.2 | 3 | 9 6 | |
| ₹83 | असोर्यामे तिरोऽह्वीयेभ्यो | | | | 330 | पूरणम् सभिष्छवाश्चत्वारः | | | | |
| | पर्याय उत्तमः | र व | | 6.8 | | अभिष्ठवाद्ययः प्रथमा- | | ~ | | |
| 868 | असोर्यामो वा अन्त्या- | | | 011 | 170 | दतिरात्रः | 3 X | ą | 2 | |
| | | | | 18 | 236 | अभिव्लगस्त्रितः ः | | 8 | S. 25.11 | A. |
| 890 | | | | | | ङ्मिण्डवी गोशायुषी | | | | |
| | सचितो धर्म इत्याहो- | | | | 1 44- | अतिरामाविभण्डवाव- | | | | |
| | पोत्तिष्ठन्धमैस्य ः | r (1.00°) | | | | भिजिद्विश्वजितावतिरा- | | | | |
| | अप्रतिभाषां वा सद्वादः | | | १९ | | न्ना विभम्छवः० | au | રૂ | . | |
| | अप्रत्यवरोही स्यात् | 33 | | २७ | 2.3 | अभिप्लवः पडहोऽग्नि | | | | |
| \$ 88 | सप्सुप्रासनम् सप्सु वा | २३ | 2.500 | ३ ५ ८ | 1 | ष्टोमौ प्रथमान्त्याः | 0.5 | • | 6 | |
| 343 | अप्सु वा | 3,6 | १ ४ | ٠ | C & | र्डामा प्रथमान्त्याः समिमूरित्यस्मै पञ्चाक्षाः | | 4 | ₹ | |
| 800 | सप्सूख्य भस्मावपनं ऋय- | | | 2.3 | 9 (| न्पाणावधायः | | w | Ģ | |
| ~ 6.4 | णीयादी | | ę | २३ | १८७ | अभिमृशेदिच्छन्त्सम्ब- | | | | |
| 274 | अप्स्ववहरणं सृन्सयाइमः मधानाम् | | 14 | 35 | | त्सराऽसीति | 26 | 8 | 68 | |
| 230 | मयागाम् अप्स्ववहरणमखादति | 20 | Ģ | 38 | 96 | मिषिञ्चामीति सबैन्न | | | | |
| | अव्स्ववहरणमधोमानाम् | | | 8 | | साकाङ् <u>च</u> त्वात् | १५ | Ģ | ₹ € | |
| 3.10 | artemartaranna ma | | S. S. | | 8008 | अभिषेकसामध्यति | | ę | | |
| | कियते अभिनश्राज्यारी अभिनश्तो वा | 83 | 3 | 50 | 286 | अभिषेक्या भविष्यत | | r. C | 15 | |
| *8 | अभिगराऽपगरो | 83 | 3 | 8 | | समाप्नुवन्त इत्याहरा- | | | | |
| 303 | अभिवरतो वा | ३२ | 28 | 22 | | जपुत्रान् . | 30 | • | ₹. | |
| 303 | अभिवरतः प्रज्ञाताः | 42 | 88 | २४ | 80 | अभिषेचनीयाद्वा संव- | igida. Garag | | | |
| | अभिजित्स्याने विश्वजिद् | | | | | त्सरात्केशवपनोयोऽातः रात्रः | 20 | B | २२ | * |
| | प्रिष्टो मः | 23 | à | 83 | ٠, ء | समिषेचनीयानते केश- | ., | • | `` | |
| 93 | प्रिष्टोमः अभिजित्रप्रिष्टोमः | १३ | | Ł | | वपनार्थे निवर्तनः सं- | | | | |
| 800 | धर्मिजिद् भारान्यवतः | २३ | ę | 28 | | वत्सरम् | १६ | e | 23 | |
| 836 | अभिजिद्धिव्यजिती 💮 | २२ | 8 | Ę | 48 | अभिषेचनीयेष्वेना व्या- | | | | |
| १०५ | | 98 | 9 | 98 | | नयति सधमाद इति | 25 | Ą | ٩ | |
| 800 | अभितोऽर्घपुरुषयोश्च? | 98 | e | १२ | ४२२ | अभोकमिनिधनमाभी- | | | | |
| २२५ | "我的最高的话,我们就是不是一个一个人的话,我们也没有的,我们就没有的。" | 90 | 8 | १८ | | शवानि चैके | 24 | १४ | 89 | |
| | | SEAL SEAL | | #2.65 7 | ering (i | ade East-One E25-3 15年 27日 78年 | 48.48° | 流泽。 | resco. | |

| | | | | | | | -1 | | |
|------|----------------------------------|------------|------|------|-------|---|------------|---------------|-------------|
| ão | स्त्राणि | or o | किं | सु० | | सुत्राणि | 310 | 450 | स् |
| | अभीममिति महावोरम् | | | | 382 | अयस्मयानि वा वाह्य- | | | |
| 1.75 | अभोजनं तस्य | | | | | | | | |
| ४३ | अस्।जनं तस्योच्छ्वासात् | 88 | 8 | ફેહ | 1 | अयस्मयेन प्रतीर्थयाजान्ते | २० | E | 90 |
| ३३३ | अस्यञ्जनप्रसृति करोति | ₹ 0 | 8 | 6 | ३८ | अयुक्तश्रतुर्थोऽनुग च्छति | | | |
| 805 | अभ्यात्मं चयनसुपविष्य | 9 % | ৩ | 55 | | सर्वयन्त्री अथुरमगणसम्बसाऽन्त्रे | 58 | 3 | 9 |
| ११३ | अभ्यातममेके | 610 | ₹ | ₹. | 606 | अयुरमगणसः समाऽन्त | | 9 | |
| १८२ | अभ्याद्धामीति प्रत्यु • | | | | २५३ | अयुग्मेषु वा अयूग्म | 3 8 | | R |
| | चमाहवनीये तिसः सः | | | | २९० | अयूपम् | 35 | 9 | 3 |
| | मिघा स्यादघाति | 28 | ę | 88 | Ę | अरण्योबांहुर्गृहप्तेर्थं ह- | | | |
| 396 | अभ्यासानुषपत्ती ज्यो | | | | | तोऽग्निजंनिष्यते० | 83 | ₹ | C |
| | तिष्टोमः पूरणः | 3 2 | Ø | 99 | १२६ | अर्विमात्रेऽपाद्यां दक्षि- | | | . 47 |
| | अभ्युद्ये रजतचारणं | | | | | णेनावकासूर्पारशस पुरु | | | |
| * * | पुरस्ताव | 26 | 3 | € 3 | | वमिस्युवस् | B | 8 | 26 |
| Voc | अभ्युपाङ्गतचमसमुपस्थे | , | * | | ł i | जार (८५ थर | 3 5 | रे | 88 |
| | कृत्वारमञ्ज्ञाबाह् बीतये | 976 | 99 | 3.3 | ४३६ | अचिषि प्राप्ते सुवर्णशः | | | tie, |
| 240 | अञ्च/इयसानान्मणीन्सौ· | | 1.7 | - 4 | | तमानं निधायाज्येन० | 38 | | 9 |
| 14. | वर्णानेकशतमेकशतं केस- | | | | | अर्थवादमात्रं पग्रवचनम् | 56 | 8 | ?? |
| | रपुच्छेप्यावपन्ति | 2 o | G | 95 | ₹ ₹ | अर्थवादा च | | 8 | 50 |
| 200 | अभिमुत्तरत आसर्न्दी | ` | • | 2.4 | 300 | अर्धमासं मास्र सवत्सरं | | | |
| 904 | दक्षिणतः कृष्णाजिनसु- | | | | | वा | 38 | 60 | ₹ |
| | परतः सर्वतो० | 25 | LS. | 95 | ३१९ | सर्धमासमासत्रेमास्य- • ११२ | | | |
| 885 | सम्दादि करोति | | | . A | | षणमास्यानि चैके | २० | | Ę |
| | अभ्या विण्डं खनति दे- | \$3 | થ | | \$ 85 | अर्था वत्सतर्यः अर्थे च अलम्पशोरपृशोः | 3 3 | | w |
| 6.5 | वस्य हरेति | १६ | 3 | 28 | १०६ | अध च | 28 | | 8 |
| /5 | अभ्या विण्डं त्रिः परि | 44 | | ~ 0 | 204 | अवकाः कृर्भवत् | 88 | ₹ ९ | 8 |
| - 65 | 0 0 0 | | | | | अवकानां त्वचो जुहोति | | | 9 |
| | | | | | | | | | |
| | रिवि | १६ | • | 45 | 100 | अवकासिः कुशैश्च प्रच्छार | | | |
| | अम्ग्रा सभं चतुरसं | | | | | अवकाश्यस्य प्रवृञ्ज्यात् | | | \$8 |
| | खनत्थदितिङ्वति अमा%साशी | 7.4 | ૅ | - 5 | ५४ | अवगाद्याचगाढात्पद्योः | | | |
| २९१ | समा %साशा | ₹₹ | ** | \$2 | | पुरुषाद्वा पूर्वावश ऊमीः | | | |
| २५३ | समावास्यायाम् समावास्यायामेके | 38 | 3 | 8 | 366 | अवद्याणमितरेषु अवचनेऽरिन्छोमः | 44 | १० | 8 |
| •୫ | अमावास्थायाम्क ू | | | | २६४। | . अवचनऽारनष्टामः | 3.5 | ₹ | R |
| 808 | क्षमेध्यं हड्ढा सूर्येसुपति• | | | | | अवदानदानी नादियेत | ₹9 | 8 | 4 |
| | ष्ठताबद्धं मनो दरिवं | 36 | 28 | २४ | ३८३ | अवदानयाज्यानु- | | 9. 149 261 | |
| | अमेन्यस्मे इति खरेकरोति | ₹६ | Ę | 18 | | वाक्यांसु च | 36 | ٩ | १९ |
| ३५९ | अयनमुत्सांगणां गवाम- | | | | 806 | अवदानसहितम् धिश्रित्यो | | | |
| | यनविकल्पाः | 38 | 160 | २३ | | हजीवनेष्टितं गर्भे | | 8 | e 19 |
| 340 | अयमेव प्रायणीयोऽति- | | | | ४०१ | अवदानान्यनुजुहोति प्रस् | | | |
| | रात्रः सर्वे सन्न स्यात् | 38 | ø | 98 | | त इति ं | 19 | ₹₽ | • |
| | | | 12.5 | 4450 | | | | | 동원 |

| | ങ്കെ അറ്റെ √10 ∖ | पृत स्त्राणि | अ० कं | स्॰ |
|---|--|--|-----------------|--------------|
| रू सुत्राणि चैन चैन स्टेर | १४ २ १६ | ८६ क्षवहत्यापारनामि वार | €." | 31. |
| ३६ सनदानैश्च हैच्य स्तैः | विक् ११ वेह | ब्र क्वप्रस्तोनभिमन्त्रयते | १६ | ३ ९ |
| ४०७ अवस्थ्य | | ४०२ अविज्ञाते पुंचत | ३५ १ | 2 8 c |
| ६६ अवसृथदीश्वाभ्यासी | १५ ८ १३ | ३६३ अविज्ञाते प्रतिमहाच्याह | j - | |
| वचनादिति ————— | | े ति सर्वाभिश्चतुर्थेम् | २५ | ११३ |
| ३५१ अवन्त्रथमञ्चवयन्ति | वस्तुना अस्तुना | ४ अविभवति गृहपत्यन्वा | | |
| कारपचर्च प्रति | ~~ | राम: | १२ | १ १४ |
| ३६५ अवस्रुधमभ्यवयन्ति | चन्त्रा। । ३४६३९ | २८२ अविरतेम्यो वा ब्रात्य- | | |
| न्त्रिष्ठक्षाबहरणं प्रति | | चरणाव | . ૨૨ | 8 36 |
| ६३ अवस्त्र्यमेकेन ताप्या | १६ ७ २३ | | १६ | ७ १६ |
| दीनि चेत् | | ७१ अवेदिदेक्षिणा | | 2 8 |
| २०१ अवभृयवत्स्नात्वाः | त्र १९ ५ १६ इ. १९ ५ १६ | | | |
| े डवासनं द्रुपदादिवेति | | समाविध्यति० | १९ | 9 90 |
| २८ अवस्त्रशाहुदेत्य ज्य | 65 3 38 110. | | | |
| ष्ट्रोमोऽरिनष्टोमः० | | | 96 | £ 80 |
| २६७ अवन्त्रभादुदेत्य रौति | [vq] | न्नाराहात १८ अध्युद्धो वा | | ६३१ |
| े बस्सळच्यो सकर्णपु | ्छ।. व्छा∙ | १८ जन्मूडा पा ५ अशको नियतकिया० | 85 | १२१ |
| ऽवळाते प् रिद्धाते | | १६० सदमंस्ते श्रुद्त्यद्रौ छ | zzi ` | |
| ४१२ क्षवन्त्रधान्ते वा श्रु | id. ૨૬ ફર ૨૬ | | | |
| सामध्यांच | | त्यादाय | १८ | ર ર |
| २४४ अवन्त्रथेष्ट्यन्तेऽप्सु | 41446-64 | १६१ अध्मनि वाऽर्थवादाव | | ३ 6 |
| पिङ्गलखलतिविकि | ू १० ८ ११ | | | |
| ध <u>श</u> ुक्लस्य० | | पितृवन्सध्ये गणाना | ù . | |
| ४३ अवस्य गच्छति र | .aı. | | २० | ६ १३ |
| त्राय प्रहितः | | २३५ अइवं विशास्त्यनुवाने | | |
| ६३ अवरुद्ध गच्छति | 102 e 103 107 | | २० | ν 8 |
| श्राय प्राहतः — <u>५</u> | 1 94 19 23 | ३७२ अश्वतरीरथानुदीच्येषु | ૨ ૨ | २ २ ५ |
| ४० अवरुद्ध नेवारमार तीर्थे स्थितमामा | , etc. | २८५ असद्वादशा माध्यन्दि | ने २२ | ५ १६ |
| ताथ ।स्यवनामा जस्येति | 98 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 | | ત્રત ર્સ | |
| जस्यात ६० अवरोहति हुॐ र | | युज्जायां योगे योग इ | रति १६ | २ ९ |
| 발표하고 있는 병원 전투하는 것은 그 학생들에 가다. | | | | |
| पदिति | ० १५ ६३९ | वायुद्वेति | 20 | ę w |
| ४८९ अववृष्टमक्षणिमन् | | 1.341. | ર ૦ | 6 96 |
| भवागासस्य त० | २५ १२ ह | २९६ अइववत् | २२ | 6 58 |
| ३५१ सवशिष्टं चैके यहा | ⊺पकर∙ ३४ ६ (| The second secon | | |
| ्रे जमुदयनीयान्ते | | स्य त्वेति प्रतिमन्त्रस | | १ २२ |
| ९४ अवहरति ह सः इ | ग्रच∙ १६ ६ ३० | | | 6 R |
| षदिति 🔪 | | रे ३३ अदवशिवनसुपस्थे कु | हते : | |
| ९४ अवहरत्यग्नेऽस्या | वात्तः १६५६ | 그는 사람들은 어느 사람들은 사람들이 사용하는 사람들이 가는 사람들이 되었다. 그 사람들이 하는 | 30 | ६ १६ |
| ि नति | ₹\$ - 4 \$1 | | | |

| | | | . Park | wasti. | | | | | |
|-------------|---------------------------|------------|----------|----------|-----------------------|------------------------------|-----------|--------------|----------|
| | | 310 | ₹0 | सू० | Ão | सुत्राणि | | | |
| २८५ | अखल्त्वंच साध्यन्दिने- | | | | | तसुर्गृह्रन्युञ्जान इति | १६ | 2 | Ψ |
| | ऽधिकः | | Ģ | | 3 80 | अष्टम्बां नवम्बां वा फा॰ | | | |
| | असस्य वा | २० | E | 3 | Wall was | लगुनी शुक्लस्य | 20 | | ે |
| | | १८ | Ę | Ģ | 1 | अष्टाकपालाऽनुमत्ये | ŞĢ | 8 | 5 |
| ३३ ९ | अबाः सौवर्गालङ्काराः | 30 | କ୍ | 88 | ३२८ | अष्टात्रिश्वादात्रं प्रजाका- | | | |
| ३८ | अधानप्रोक्षत्यपोऽवनीय- | | | | | मानां पशुकामानां वा | 58 | ર | 38 |
| | मानान्स्नातान्वागतानः | | | | ६९ | अष्टापदीवस्पञ्जवन्धौ | | | |
| | प्स्वन्तरिति | 68 | 3 | 3 | . 7 | गमिजीस्या(स्वगुण- | | | |
| २२० | असापदीज्या चरुभिः | | | | | दक्षिणो | 84 | 5 | 83 |
| | सावित्रबन्ते | 3,0 | 3 | १२ | १३३ | अष्टाभिरेके | ξ US | ţ | 9 |
| | असामावे गौः | ३२ | . 2 | १२ | इरह | अष्टावि¦शतिराधं प्रजा- | | | |
| ृश्व८ | असाव्योद्धतरतः पूर्वापरे | 80 | ٩ | १६ | - Marie Marie Company | कामानां पशुकामानां वा | ३४ | ą | ₹ 8 |
| २८१ | अबाबतराम्यां कम्प्रा- | | | | 388 | अष्टाहे पडढान्महावतम् | ₹ | 9 | 86 |
| | भ्यां युक्तः स्यादित्येके | २२ | ક્ર | १६ | 393 | असत्सृद्धत्य ततः | 38 | Ę | 38 |
| 88ક | अधिना धर्ममिति त्रह्मा- | | | | १४६ | असपना स्रशोऽन्य- | | | |
| | जुमन्त्रयते | 28 | 8 | w | | तोन्तराः | 8.0 | 88 | . 6 |
| 800 | अधिनातेजसाऽश्विना- | | | | १०६ | असाद्वं च | 84 | | 20 |
| | विदतासिति वाज्यातुः | | | | 1 | असादनमा पूर्वेषां | | | |
| | वाक्ये सगस्त्रस्य | १९ | U | 8 | | बह्नात् | 23 | Ę | 8 8 |
| २०४ | सस्यनाह विश्वित तिस्रो- | | | | 368 | असान्नाय्यवहा | 36 | | 6 |
| | वपानां याज्यानुवाक्याः | १९ | દ્ | १६ | | असिन्बर: | | ą | |
| 856 | अधिम्यां पिन्वस्वेति | | | | ११३ | असुन्वन्तमिति प्रत्युचं | | | |
| | पिन्वने दे। रिघ | ₹ 5 | Ģ | Ę | | पराची: | (w | 3 | 9 |
| হ প্ৰ | अदिवस्यान्तिरोन्ह्याना 🎖 | | . ~. | | 23 | अस्तिमिते निष्क्रम्या धरेणे | | | |
| | स्रोमानामनुवा चनप्रेषी | 9.5 | 5 | 8 | | त्तरवेदिमासते > | १२ | ક | 23 |
| २२८ | अम्बेनाकमयन्त्यास्तावम् | | | U | 88 | अस्तमिते समिदाधान्। | | | ¥ |
| | अधैकविश्वा दक्षिणा- | | | | | सर्वेषु | १२ | 8 | Ę |
| • | | 25 | Ŗ | 96 | 2 6 8 | सर्वेषु सस्त्र्युगयो | | (9) | |
| ۷8 | अवाढां करोति महियी | | | 7 | | अस्मृतावृजीषमिश्र- | | | |
| | प्रथमवित्ता तदाख्या | 98 | ą | 9 9 | | स्यादस्ववहरणम् | 46 | १३ | 28 |
| 960 | अषाढाबेळायाः पुरस्ताद् | ** | ٦, | | ઇર | अस्मे व इति दिशो | | ade 1 | |
| | बृहतीरेना व इति | 919 | 92 | 90 | | वीक्षते | 88 | ૪ | ą w |
| 926 | अषाढासीत्यपाढाम् | | | २६ | 836 | अहः केतुनेति दक्षिणं | | | |
| | अषोडशिकावतिरात्रा | | ઁ | | | रोहिणं जुहोतिः | 48 | S | 88 |
| | उत्तरयो: | 3 | ર | ą | 268 | अहनी चोत्तमे छान्दो | | | |
| 236 | अषोडशिकावतिरात्री | 3 3 | 30.3 | १६ | | मिके पृथक इत्वा | 33 | 8 | 26 |
| | अषोडशिकावतिरात्री | 38 | 70. B | (q | 838 | अहरहरिमप्तरेषु त्रिकट्ट- | | | |
| | अवोडशिकावतिरात्री | २४ | 1 (a) | VOIN THE | | मे युवा | 38 | 3 | 26 |
| 200 | अष्टगृहीतं जहोति सन्त- | ₹8 | * | 34 | 9.6 | अहरहरित्याधानम् | १६ | stal of the | 8 |
| • 4 | .जङ्ग्रेहात ख्रह्यात सम्ब | | | | | | • • | ™ (1) | |

| पृ॰ स्त्राणि | ঞ | no €[o | | अ० | ক্ত | सु० | |
|-----------------------------|--------------|---------------|---|------------|------|--------------|------------|
| ३०४ सहर्गणेऽप्यविशेषात् | २३ : | ११ २८ | | | | | |
| ३० अहर्गणे व्युत्कामताच- | | 1. N. 4. | ब्र्यात् इतं चेत् | 29 | 83 | \$ 8 | |
| न्वइस् | १३ | ३ ५२ | ६ जाग्नीश्रीय उद्यतेऽङ्गार- | | | | |
| ३१५ अहीना वतवन्तः सर्वः | | | मेकेकां, ० | १२ | 2 | ٤ | |
| जिद्दोक्षाः | २३ | ४ ३१ | १०२ आग्नीध्रीयमुत्तरेण सदः | 98 | (9 | Ģ | |
| १८ सहाने व्यूडच्छन्दसि | | | ५९ आ भीभीये पाला गेन | | | | |
| दशरात्रस्ये० | १३ | इ १७ | शेषान् जहोति रद युत्त | | | | |
| ३५८ अहीनैकाहानां वैकैकेन | 58 | ७ १६ | | १९ | Ę | १२ | |
| ३७३ अहुताम्युद्तिउन्नीयात- | e e fil | | ४०९ आग्नीध्रीये वा हिरण्यः | | | | |
| मि तोरासीत | 24 | 8 80 | गर्भ इत्यूचा | ३ | 88 | \$8 | |
| आ | | | ३८६ आग्नोधाय सुत्यास | 36 | ફ | C | |
| ५७ आक्रम्य पारेन सीसं | | | ६८ क्षाग्नेय ऐन्द्रः सौम्यो व | T | | | |
| निरस्यति प्रत्यस्तमिति | 89 | ५ २२ | वैश्वदेवश्ररः ० | 86 | - \$ | 2 | |
| ८३ आक्रम्येत्यनेन पिण्डर्मा | धे• | | ४७ सारनेयः | 19 | 8 | 29 | |
| ष्ठापयति | १६ | २ १७ | २८४ आग्नेयानासनहुद्धिर- | | | | |
| २४ आकोशत्येकः प्रशंसः | | | ण्याइवाजानाम् | ર ર | ٩ | Ę | |
| त्यपर: | १३ | ३ ५ | ६८ सारनेयो हिरण्यदक्षिणो- | | | | |
| ४० कागतेषु ब्रह्मावरोहति | | | ऽरनीधे ददात्यैनद्रस्य० | 8,4 | \$ | 9 | |
| देवस्याहमिति | 18 | 8 6 | ७८ सारनेटबो याज्यानुः वाक्याः कामवत्यः | e c | | રૂજ | |
| ८३ आगत्येत्यभिमन्त्रयते | | | ४१२ आग्रवणाद्वाऽ नुपळम साः | | • • | | |
| ऽ श्वम् | १६ | 2 98 | | ą 9 | १३ | 29 | |
| ४८ आरमापीटन ऐन्द्रापी- | | | ३०८ आड्रिसचैत्रश्यकापिवः | | | | |
| ब्जः पौच्यः इयामो | | | ८८ आचरति मित्रस्येति | | | १९ | |
| दक्षिणा | १५ | \$ { \$ | २७२ आजानेयामपरजने | 7 1 | 3 | | |
| ४८ आरमावैष्णव ऐन्द्रावै- | | | ३९ आजिं शोर्घ यन्ति | | ą | " - 1 T - | |
| ज्लबो वैद्लबो वामनो | | | १०१ आज्यं विश्वकर्मण | | | | |
| दक्षिणा | १६ | | इति जुहोति 🛴 | १६ | | | |
| ८९ आर्नावैष्णववैश्वानरी | | 8 56 | | | 8 | 4.00 | |
| १७० आधिनकानि च वाजस्य | | | ३०९ आज्यधर्मास्थानापत्तेः | 1000 | 3 | 14 T. Jan 15 | |
| न्विति | | Ģ Ģ | | 96 | 8 | 9 | |
| २२३ आग्निके च सप्तम्यां | | | २२६ आज्यसक्तुधानालाजा- | | | | ا اعسان |
| निर्वपति | | 8 0 | | | | | 100 |
| १७६ धारिनमास्तस्तोत्रपुरस्त | 111- | | स्वाहेति प्रतिमन्त्रः | | | | |
| हिमोचनं परिधिषंध्यो- | | | de la filia de la | २० | | 4 7 1 1 | |
| दिवो मृधेति प्रत्युचस् | १८ | ६ १८ | ३८३ झाज्यस्थाळीदोषेडन्यत् | 29 | ٩. | 3 8 | |
| १६५ आग्नीध्रदेशाव्दक्षिणं | | | ४ आज्येन परनीसंयाजा | | | | |
| पृष्ट्यासहिनं० | 86 | ३ २५ | गृहपतिवर्जम् | १९ | 8 | १९ | |
| २५ सारनीध्रमपरेण सभै | | | ३७२ आज्येन वा प्रतिसंख्याय | | | | |
| सवालघानेम० | * የ ३ | \$ 88 | देवतेज्या | 39 | 8 | 88 | |

| go | सुत्राणि | स्र ० | क्क | सु० | Ze. | सुत्राणि | अ | ন্দ্ৰ ০ | सू० |
|-----------------------|--|----------------|------|------|------------|--|----------|------------|-----|
| | आज्ये न्यज्य कुशाग्राणि | | | | | ऽतिरात्रक्षेत्सौम्येन ः | १२ | Ę | 35 |
| | तुष्णीं प्रोक्षात इवेतेऽइवे : | | ą | 28 | ३१९ | आद्यमाणे दशरान्नः परः | 38 | . 8 | 8 |
| १२० | आतिष्यशेषाद्यापसदः | | | | . 69 | आपाहिद्देति पणंकपायप- | | | |
| | इत्वा राहिते० | ęψ | 3 | १६ | | क्रमुद्रक्मासिञ्जति विण्हे | १६ | ą | १६ |
| 299 | आत्मनि क्रपत्यनुपरिश्रिः | • | | | १२० | आप्यायस्त्रेति सिकताल- | | | |
| | च्छुन्। सुफाला इति | | | | | स्मतस्यास् | 80 | 2 | 86 |
| | प्रत्यचम् | 80 | | ę ą | | साप्रियध समिद्धो अग्नि- | | | |
| 808 | आत्मिन बजुष्मतीः | 25 | 40.0 | १८ | | र्राधनेति आप्रियो द्वादशोध्वां | 86 | S. | 84 |
| | आत्मिन वामदेन्यम् | १८ | | ્લ | ଓଞ୍ଚ | | | | |
| | सादानकाले वाऽञ्जनस् | 3.0 | | ંદ | | | 39 | | |
| | आदानमेक | ३६ | ۶ | १४ | 234 | आप्लवनमात्र वा | ક છ | | 88 |
| and the second second | आदितस्त्रयः संवत्सराः | | | | | आमयाविना वा | | - | १८ |
| | स्रोत्याः | इ४ | Ģ | ိုမွ | | स्त्रामिक्षायां च | 88 | | Ģ |
| 999 | आदिल्यं गर्भमिति प्रति- | | | | | The state of the s | १९ | 8 | 49 |
| | मन्त्रं सन्त्रक्रमेण | 50 | Ģ | 5 0 | 154 | आयन्त्यावत्र्यं पशुनजः | | | |
| | आदित्यश्ररः | | . 8 | | | पुरस्ताद्रासभो सध्ये | | 4 | |
| | आदित्यस्य सुत्रामाणं | * - | | | 4 | आयसा इतरेषाम् | ે ≎ | . 10 | ۹, |
| | महोमृषु मातरमिति | १९ | S | ۶ | ब्दे ९ | आयाय विमुक्त मदवं महि | | | |
| | आदित्यानामयनेऽभि- | | | | 1. | षीवावाता परिवृक्ताऽऽज्ये | | | |
| ** | प्लवाश्चित्रुत्पञ्चदशस्तो माः | 28 | 8 | 2 | | नाभ्यन्जति० | | 9 | - 7 |
| £ 2 8 | मादिनेवान्त्यस् | 8.0 | w | | 3,43 | क्षायुर्गृह पतिमरणे | \$3 | | १९ |
| 3 8 10 | आद्यन्तयोवातिरात्रौ विषु- | | | | | आयुविस्रजित्यक्षः | २३ | ٩ | 30 |
| | the contract of the contract o | | ୍ଦ୍ | 96 | ब १६ | आयोगवसाह दवानं | | | |
| | आधाम्यां वा पुवेस् | | | ३८ | | चतुरक्षमिम-यस्वेति | € 0 | ₹. | ३६ |
| | आशहन् प्रथमां स्येदन्त्ये | • | | | 88 | आरोध्यन् जायामामः | | | |
| | | १ ३ | 3 | 83 | | न्त्रयते जायः | 88 | 8 | 48 |
| | आद्योऽप्तिर्द्विगुणस्त्रिगुण- | | | | 66 | आरोहत्पादर्वतो वा | 41 | | Č. |
| | एकविश्वातिविधो वा | २० | 8 | ۶ą | | गच्छेत् | १६ | Ą | 88 |
| 908 | आ नः प्र बाह्वेति | | | | ४०८ | आत्यंश्चवरणे तृप्रास्थीः | | | |
| | आनः प्रबाहवेति पथस्थायाः | 99 | (S | 80 | | | 34 | ? ? | şo |
| 276 | आपः प्रजापतिर्यज्ञो यज्ञ- | | | | रुद्द | आद्रौदुम्बरीघृतोषिता- | | | |
| | स्य भेषजमसीति | 26 | 93 | ર હ | | स्तिस्र उद्देनीमत्याद्धाः | | | |
| 66 | आपः स्वराज इति मरी | e ind Septe | • | | | ति प्रत्युचम् | 88 | ş | 88 |
| | चोगुंहीत्वा० | १६ | · N | 3.6 | २८६ | आभवे स्त्यमाने दक्षिणेन | 2.0 | | |
| X3 o | नाटकारा आपदि वैधानरः | 46 | | is: | | | 6,9 | Ę | ٩ |
| | ः। । । आपवस्वहिरण्यवदित्युद्- | | | | የ 8 | सालभत उमे शर्म व स्थ इति | 96 | • | ર્દ |
| | गात्होमी ध्वाङ्क्षाराहणे | | | | 399 | 医骨髓 医多头节的 医肾上腺 医动脉管 经收益 化二二烷 极强抗症 | १६ २० | 2 | |
| | यूपस्य े | 24 | Ą | १ | | आवापसमबेतानामलपे- | | | • • |
| Telephone 1 | र आ पात्रप्रश्लाखनात्त्वत्वा- | | | | `` | सलपं पूर्वे झ् | 38 | ş | 83 |
| | 10000000000000000000000000000000000 | | | | 数数点 | | | | |

| 양 선물들이 그리는 이 나는 사람이 | | | |
|--------------------------------|-----------------------------------|------------------|------------|
| ए॰ सूत्राणि अ० क | ० सु॰ १० सूत्राणि | 877 | क सु |
| ५७ साविमंया इति वाचयति १५ | १९ १९५ आसाद्येनानाज्यभा | fn | . 200 ATO |
| | २६ यजस्यत्र स्विष्ट∌ह्रन | | |
| ४४५ आवृत्तिवां प्रधानका | त्योः प्रेषद्शंनात् | | 8 3 |
| | २७ १९ आसिच्य नियाम्या | 4.7 | 8 \$ |
| | १८ वात्रे तिस्मत्तूदर्भी | | * |
| २०० आशुलाभिमन्त्रणात्कः ४ | ४४९ आसेचनवन्ति पद्यस | १३ | ५ १४ |
| त्वोदकाधिष्ठानप्रसृत्थाः | पुरयति घमतत्त इति | | |
| वस्रथेष्टेः १९ ५ | हैरे ८७ आस्त्रकेतीय केत | २६ | ७ २३ |
| ५२ आशुन्यामध्ये गृहपतये १५ ४ | as allegialdischies | | |
| २५२ आधमेधिकं सध्यमं | विवाद हात | ₹ € | ३ ५ |
| म तस्थाने | १९९ आस्ते प्रतिगरिष्यन् | 86 | e o |
| १३ आश्वमेधिकं वा नाम- | ८१ आहवनीयं दक्षिणे न | | |
| घेवात् १२ ४ | २० त्रियुन्सुअपबाङ्गोबद्धा | • | |
| २१६ भाववस्त्रवणिवरमणाद्वा २० २ | ६ स्तिष्ठन्तिः | १६ | ર 8 |
| ५० आदिवनः सह्यहीतुः १५ ३ | १० ३६८ आहवनीयजागरणे वा | | |
| १८८ आश्विनमाश्वत्थेन (९ २ | १६ तत प्वोद्धरणम् | २५ | ફ 6 |
| ३३६ आविवनस्यारनेयान्ते | २०१ आहवनीयस्पतिष्ठते- | | |
| प्रतिप्रस्थाता व्युत्कः | ऽपो अद्यंति | 26 | 9 96 |
| मतादि॰ २४ ३ : | ३६ ८३ आहवनीयवत् स्थापय | ਰਿ ਂ | |
| २०५ आदिवना गोमिरिति च | े पिण्डस्य | | २ २१ |
| इविपास् १९६। | , ९ भाहवनीयस्ततः | 99 | |
| ७३ आदिवनामावस्तु १५ १० : | ु र अहिननायस्य पुरस्तात | | |
| १३७ आश्विनीर्धुविश्वितिरिति | द्रात्रासन्दीवदासन्धा <u>ं</u> ० | १६ | Ģ Ģ |
| प्रतिमन्त्रम् १७८१ | ८० आहवनीयस्य पुरस्ताः | | |
| १९१ आदिवनोऽजोधूमः १९ ३ | ुं नमत्या चतुरस्रे खञ्चे ० | १३ व | १ २ |
| ण्श आदिवनोऽजः इयेतः १५ १० | CA Seeman | | |
| ३ भासत उपयन्तीति | र च्छन्याप्रासे ः | { G G | |
| सस्त्रलिङ्गां० १२ १ | ६ ४४६ आहवनीये त्रीञ्छाला | | |
| ५९ सासने च १५ ६ | | | |
| २६३ आसन्दी सोपधाना | भीधौ धारयतिः | | |
| दक्षिणानड्वान्यवाश्व | ११८ आहवनीयेऽस्तमिते चतः | ्रह्म ७ | ŧ |
| सर्व 'पुराणं भूवसीइचे | ध्वीरिह रन्तिरिति | el a sustribulit | |
| च्छन २१ ४ ३१ | | २० ३ | 8 * |
| ९४ आसन्द्यां करोति | चित्राम्योग चन्त्र | | |
| बृहदिति १६ ६० | मिहोत्रमेव जुहुयात् १९८० वर्गा | २४ ६ | ३ ६ |
| ८८ भासम्धेनमबञ्चणः | ३७६ आहितारनेशत्यश्चकः | | |
| हत्वाभ्युक्ष्य सोमोपनह | रगेऽये वतस्त्रते | 8 8 | ₹€ |
| नेन० १२ ६ १६ | ३९३ आहुति जुहोति पुत्रो | | |
| /A 37***** | | २ ६ ७ | 36 |
| | ३६८ बाह्रस्य वा | 49 } | |
| | | | |

| प्र॰ स्त्राणि | अ | क स् |) | ५० सुत्राणि | 1 | 8 | 0 8 | Fo ? | 9 |
|--------------------------------|----------------|------------|----------------|-----------------------------|-------------------|-----------------|------------|------|----|
| | | | | पसिञ्चेदपो | मेडच पचसो | 0 3 | ۹ { | ٠, | ķ |
| ७४ इच्छतः समहाव्रते निय | सः१६ | ۶ ۶ | . । ३ | ०८ इसं मे तत्वे | त्यककपा- | | | | |
| १०७ इच्छन्पश्चयुच्छाऽच्ययेषु | | | | | | 8 | ş | ig: | |
| चतुरङ्गुलं ; | १६ | ८ २१ | 38 | ९९ इसं में वर्णे | ति च प्रत्यु | | | | |
| ४२१ इच्छन्बृषण्वती प्रतिपत | (२५ | १४ ११ | | चं द्वास्याम् | | | • | 6 8 | |
| ५४ इडान्तेऽपो गृह्याति | १५ | 8 38 | . 8 | ६८ इसं, स्तनि | | | tel Per | | |
| २९ इडे रन्त इति दक्षिणेऽ | | | | ति वा | | 8 | | 8 5 | ξ |
| स्याः कर्णे ॰ | 8.8 | 3 88 | 6 | १८ इसमसुष्ये ति | च प्रथमो | | | | |
| १२ इण्ड्वशिक्यासन्दीषु सु | Ħ• | | | देवस्वत् | | 94 | ¢ | 4 3 | ę |
| रन्जवश्चित्रता० | १६ | q 2 | 5 8 | ।३ इमानुकमिति | च द्विपदाः | 20 | é | 5 8 | ? |
| २२९ इतरांश्च युम्जन्त्यस्येति | २० | 9 88 | | ण इ यं विदि रित्य | | | | | |
| २१३ इतराश्चान्त्रक् | २० | १ १८ | | ७ इयस्यम इति | | | | | |
| १२० इतरासां च चित्रीनां स्व- | | | | तस् | | ે ફ | | ? , | ¢ |
| यमातृण्णाः | 2 to | 3 96 | 88 | ॰ इपश्चोर्जश्चेत्यप | हरे | | | | |
| २७६ इतरे क्रोशप्रत्यवायेनको- | | | | ६ इषुः श्येनवद्ध | | | | | |
| शप्रत्यवायेन | २ २ | ३ ३२ | 29 | ९ इपुरिष्टिरन्तर | ेनावाग्नेयः | | | | |
| ११ इतरे विखज्यन्ते स्वाः | | | | | | 2 3 | 80 | 23 | , |
| ध्यायाय समिद्रवा वा | १३ | ષ્ટ્ર ફ | 88 | २ इपे पिन्वस्वेति | | | | | |
| ५३ इतरेषां वा भूयस्त्वात् | १२ | 8 66 | | मानमनुमन्त्रय | वि | 28 | 8 | | |
| ३९ इतरेषामेकस्मिन्राजन्यो | | | ફે દ | २ इष्टं चेदाज्यन | शेषम् | 29 | 6 | 88 | |
| वैश्यो वा॰ | 88 | 3 80 | . 60 | ९ इष्टकाकियाऽत | स्त्रवाह्य- | | | | 24 |
| २४८ इतरेष्ट्रकाद्रशैकादश | 2,2 | 8 8 | | खिताना म् | | | 8 | 28 | 2 |
| २७४ इच्मा वैसीदकः | ३३ | \$ ° | 61 | ॰ इष्टकास्तु तिस | | | | | |
| १६८ इन्द्रं दैवीसित जपति | | ४ ३५ | | ज्योतिषः २था | लक्षणास्त्रया | • | | | |
| ४० इन्द्रतुरीयम् | १५ | १२४ | | र्किखताः | | १६ | 8 | હ્ | |
| १६ इन्द्रश्च सम्राडिति सक्षः | | | 80 | < इष्टिसोमपशवो | भिन्नत | | | | |
| पस् ् | ₹ ₹ | ६३ | | न्त्राः काळभेदा | ব্ | १५ | 8 | ફ | |
| ३०२ इन्द्रस्तोमो राजयज्ञः | | | ₹ € | इहैवायमिति | नपति | 48 | 8 | 30 | |
| सहस्रं दक्षिणा | | | | | क्ष | | | | |
| ३३८ इन्द्रस्तोमो विश्वजितः | २४ | | 834 |) ई डे द्यावा प्रथिव | शि इत्यु- | Start Vijeta | | | |
| ३१६ इन्द्रस्य पञ्चमः | २३ | 9 6 | | च्यमाने परिध | म्यस्थिय ० | 26 | 8 | ę | |
| ६१ इन्द्रस्य वामित्यवहरते | | | | | 3 | | | | |
| बाह् पयस्यायां व्याध्रवमे | | | 368 | उद्ययं पशुबन | गमेके | २ ३ | v | 23 | |
| देशे स्थितायाम् | 84 | ६ ३१ | 303 | उक्थ्यः | | 2 2 | 99 | 24 | |
| ५७ इन्द्रस्य वाश्रेष्ट्रमिति ध | | | | उक्थ्यः इवः | | (| પ્ર | 3.6 | |
| नुरातनोति | १५ | ५ १५ | 868 | : उक्थवाच्चेत्षो | डशी कार्यः | २५ | 83 | १० | |
| ४२७ इन्द्रस्याजस्थात पृताः | | | 38 | उद्यादि | | | | • | |
| कान् | २६ | १९ | 100 M 1 1 10 M | उष्थ्यान्ते घोड | | | | | |
| ४०७ इन्द्रियः स्कन्नमन्तिरः | | - 50 H | | सुपस्थायनं | | 99 | 6 | 2 ^ | |

| | | | | | | _ | | - | | |
|-------------|---|------------|-------------|-----|-------------|---------------------------------|--------|-------|------------|-----|
| पुर | स्त्राणि | ঞ | 領の | सु० | | त्राणि | ख० | ক্ত | Æ. | |
| 80 | उक्थ्यावछन्दोमाख्य उ- | | | | \$00 | उत्तमां शिष्ट्वा प्राङ्ब- | | | | |
| | त्तरे उक्थ्यो गोसवोऽयुत्तदः | ₹ . | ş | 88 | | वस्यादशस्या वा त्रयो देव | 11 | | | |
| ३०१ | उक्थ्यो गोसवाऽयुत्तदः | | | | | इति निः | 88 | Ę | २९ | |
| | 72707: | 44 | SS . | 4 | 689 | उत्तमायां च ऋतव्ये | | | | |
| 3 9 9 | डक्रयोऽग्रिष्टोमपक्षः | ર રૂ | ٩ | २८ | | नभक्ष नभस्यश्चेति | - | | | |
| 3 600 | उक्थ्योग्निष्टोमपक्षिसावृत | 13 | ٩ | २० | 8 4 | उत्तमासु तिख्षु पञ्च | 89 | | | |
| 3 8 5 | उक्ष्णो वत्सत्तरीर्वणांचः | | | | 339 | उत्तमे गावा बहुरूगः | २० | 8 | २६ | |
| | | | 8 | ક્ | 383 | उत्तमे त्रयोऽभिष्छवा | | jete. | | |
| 998 | उखां चेहिअन्छियेत सोप | • . | | | | दशरात्री महावतम् | ३४ | ક | ३८ | |
| | Made and a second to the Control of | | १४ | 1 | 63 | उत्तमेन चरित्वा सविता- | | | | |
| १३० | उखां परिकासमेके | ₹ ® | Ģ | २० | | त्वेत्याह यजमानबाहुं | | | 44 | - 1 |
| 803 | उखामेदने नवस्थालयां | | | | | दक्षिणं० | 29 | 8 | 88 | |
| | | | Ę | | 298 | दक्षिणं० उत्तमेन वा | 28 | 8 | 20 | |
| | वधायावपति | १६ | Ş | ૯ | 378 | उत्तमे वडहो बृहद्रथन्तर- | | | | |
| 258 | उखायां प्रत्यिञ्च | 80 | Ģ | १३ | *** | पृष्ठः पृष्ठयस्तोमाख्यः | 23 | Ģ | १३ | j. |
| | उखाया अस्मोद्वपनमस्त- | | | | 205 | उत्तमी वनस्पतिस्विष्ट- | y Ko | | | |
| | मिते पात्रे | ₹ & | Ę | 8 | | हतो : | 98 | 8 | 3 G | |
| | उखावचान्यं कृषात् | ₹ € | 10 | 38 | 21 | डलाः वातर्शहा इति | ٠, · | R | LOS | Ö |
| ४ २९ | उखावद्गिनः प्रदहनं च | | | | 230 | उत्तरः प्रतिकोसः | ູ່ວ | 3 | , | |
| | मखायेति प्रतिमन्त्रम् | 3. | 8 | ₹ } | 5,0 | उत्तरः प्रति छो मः | 20 | - T | 30 | |
| 60. | उखासम्भरगमप्टम्याम् | 8.4 | ર | 8 | 1 7 7 | उत्तरत आहवनीयस्यारः | ** | | े | |
| १०३ | उखोपशये पिट्टा सुदा | | | | ~ . | दिनमात्र उभयतस्तीक्णा | | | | |
| | सहोखां करोत्यावृता | १६ | Ø | 8 | | | | | | |
| १०३ | उखोपकावे पिष्टा सं/खन्य | | | | | वैणवी॰ | १६ | * | ٩. | |
| | निद्धाति | १६ | 9 | ११ | ८५ | उत्तरत आहवनीयस्यो- | | | | |
| 806 | उख्यस्थानेऽर्धव्यामेन गा | | | | | द्धतावोक्षिते सिकतोः | | | | |
| | हंपस्यस्य पार्राळखति | | S | 28 | | पकार्णे : उत्तरतः २थु पश्चाच | १६ | 2 | 68 | |
| צעע | उच्छिष्टको प्रक्षाल्योपयम | | | | 3 40 | उत्तरतः १धु पश्चाच | ₹ १ | ३ | ३८ | |
| | नों निद्धाति अत्रः | 1000 | 8 | 28 | 5 1 5 5 5 6 | उत्तरतः प्रतीची प्रथमाम् | | | | |
| ยร | उजितिभ्यो वोत्तरो मा | | | | | उत्तरवक्षं प्रतिलोमम् | 48 | 8 | २३ | |
| 94 | - - | 912 | 8 | ४६ | 806 | उत्तरपक्षस्यापरस्या ं | | | | |
| <i>इ७</i> ४ | हेन्द्रः उदस्यधन्वानः | à | 3 | 84 | | स्रक्तयां परिश्रितो मिनाति | ०१६ | E | 30 | |
| 3 3 | उत्कीर्णसमाग्रो गौधूमव- | | | | | उत्तरपृव जुहोत्युपरवे | | | | |
| | વાસ: | 68 | ę | २२ | | चमसं दुः प्रजापतये | | | | Ľ, |
| 298 | उत्क्रान्ते यजमाने पाप- | | | | | | २५ | १२ | १० | Ç. |
| | कृतोऽस्यवयन्त्यचरित्वा | | | | | उत्तरयोश्च | 30 | 8 | 99 | |
| | व्रतानि | Ro | 6 | 80 | * ? ? | उत्तरवेदि निवपति | | | | |
| ধ্য | उत्कामेत्युत्क्रमयति | १६ | | 88 | | चत्वारि¦शत्पदां युगः | | | | |
| 939 | उत्तमयोरह्नोविकण्यांदिपूर | i şu | 10 | 38 | | मात्री वा सबेतः | | | | |
| | उत्तमां पुरोहितस्य | 88 | A | 84 | T. | कुशस्तम्बे | ূ হু ধ | • | 83 | |

| ए॰ सूत्राणि | ങം ങ് | o Mo | u o | मशक | 37 | ා ක්ර |) Q 0 |
|--|--|-------|-------|--|------------------|---------------|--------------|
| ६१ उत्तरवेदिः हत्वा पयः | | * /4· | | १ उत्तराश्च | and the first of | | £ |
| स्यया प्रवरति प्राक् | | | | उत्तराध्योगेरधि लोकस्य | | | 4 |
| स्विष्टकृतः | १५ | E 33 | | णाः पूर्ववत् | | 6 | १६ |
| १२१ उत्तरवेदि प्रोक्षणाचास- | | . 44 | 938 | । उत्तरासु च | | ., | , 6 |
| स्भारनिवपनात्कृत्वोत्तर | | | | उत्तरे च मासान्तराः | | | १७ |
| वेदिमपरेण० | | ३ २६ | | । उत्तरे च यज्ञोपवीत्यु- | | | |
| ४२ उत्तरवेदिमपरेणौदुम्बरी | | | | त्तरथा | १९ | 3 | 26 |
| मासन्दीं बस्तवर्रेणाः | 88 | ४ ३१ | ६३ | उत्तरे चरवः | | ષ્ટ | |
| १२ उत्तरवेदिश्राण्यां वोत्तः | | | L | उत्तरेण च त्र्यचेन | | 8 | |
| रस्वाम् | | | 88 | उत्तरेण परिक्रम्यापरेण | | | |
| २९० उत्तरवेद्यकरणं च | | s 8 | | ष्ट् विधां नं ० | १२ | 8 | 90 |
| ७४ उत्तरनेचिमिनिधानात् | १६ | 8 8 | ७९ | उत्तरे तु सामान्योपदे- | | | |
| १८८ उत्तरस्यां पयो वैतसेऽजा- | | | | शास्याम् | १६ | ę | 80 |
| ावेळोमपवित्रेण व हा- | | | १५२ | उत्तरे पदपङ्कीरग्ने | | | |
| े क्षत्रमिति | 86 2 | ११० | | तमधेति | 510 | 88 | 99 |
| ११९ उत्तरस्याः सिकताः प्रमा | | 1.11 | 1 | उत्तरे प्रकृतिविहिते | 38 | 8 | ₹19 |
| र्ष्टि जहामि सेदिमिति | \$0 5 | १२ | | उत्तरे बृहत् | १८ | 3 | 8 |
| ५० उत्तरस्याऽण्युक्ष्णवेष्टितं | | | | उत्तरे वा | १२ | 3 | 3 |
| धनुः | १५ ३ | 86 | | उत्तरे शुक्ले पञ्चविलः | 94 | | • |
| १४३ उत्तरां दक्षिणयोर्म् वक्षसां | | | | उत्तरे गुक्ले सीन्नामणी | १५ | ۶ | 43 |
| भाग इति | ६७ ६० | | २९५ | उत्तेषु च द्विगुणं पूर्व | | | |
| १२८ उत्तरां ही ही | 80 d | ٤ | | पूचस् | 2.5 | • | ₹ |
| १४२ उत्तरां पूर्ववोराश्चिः | | | १०८ | उत्तरेषु पुरुषोचये नेक- | | | |
| बृदिति ् | 80 60 | | | शतविधात् | १६ | | |
| १३७ उत्तर्श पूर्वेण | £10 S | 58 | | उत्तरी च कत्यस्येति | २० | Ø | १३ |
| १४५ उत्तरा/साद्धि लोक | | | १२१ | उत्तानं प्राञ्च ऐ हिरण्य- | | | |
| म्पृणाः पूर्ववत् | ६७ ६३ | १ड | | पुरुषं तस्मिन्हरण्यः | | | |
| ४७ उत्तराः समस्य वे देवा | | | | गर्भ इति | \$10 | 8 | SZ. |
| इति प्रतिमन्त्रम् | १५ १ | | 100 | उत्तानां करोत्यव्यथः | | | |
| ११९ उत्तरापर ऱ्याः पश्चात् | | | | | १६ | 8 | २० |
| १३६ उत्तराऽयरेण | १० ८ | ٩ | < ৪ | उत्तिष्टति विण्डमादाः | | | |
| (४३ उत्तरामपरथोमित्रस्य | | | | थोडु तिष्टेति | १६ | ş | (9 |
| भाग इति | १७ १० | १९ | 880 | उत्तिष्ट्र ब्रह्मणस्पत् इत्युः | | | |
| १४३ उत्तरामुत्तरबोरिन्द्रस्य | AIN O | | | | व्ह | 4 | 88 |
| भाग इति | \$10 SO | | | डस्थायादधाति समिधं | | | |
| १४२ उत्तरा वा दक्षिणास्याम् | A CONTRACTOR OF THE | | 220 | पुनस्त्वेति उत्सक्थ्या इत्यद्वं यजः | १६ | Ø | ٩ |
| १३५ डचराश्च १३८ डचराश्च | 80 00 00 00 00 00 00 00 00 00 00 00 00 0 | | | अत्सक्ष्या इत्यस्य यजः मानोऽभिमन्त्रयते | | e | ain |
| 2000년 : 10년 1일 2일 전 1일 | १७ ८ | 100 | | सागाः।समन्त्रयत उत्सर्गकाल एके | | ۾ د | 7 |
| १३८ उत्तराश्च | ३७ ८ | 12 | 3.4.3 | ALCINIAN AND | २० | 8 | 84 |

| | | | | | | | | | 4 - 74 | 1. S. 19 1 |
|---|---------------------------|------------|--------|----------------|---------------------------------------|--|------------|-----|--------|------------|
| Ã٥ | स्त्राणि | 3To | क्हैंठ | सू | Z0 | स्त्राणि | 370 | कंठ | सू० | |
| 880 | उत्साद्वदेशं गच्छन्त्यः | | | | २७७ | उद्गातोत्तरतः | २२ | 3 | 28 | |
| | नधा उत्तरवेदिस् | 5 8 | . 😉 | E | 300 | उद्रात्रे वतकाले | ३३ | 2 | R | |
| 300 | | | | | | उद् तान्यपञ्चच्येन्छन् 💎 | 80 | १२ | १२ | |
| | येतोन्दतीबंलं घर्ताजो : | ६५ | 88 | 3 8 | 398 | उद्धृत्यक्षीरिणीः पुरुषाः | | | | * |
| 28 | उदकुम्भान् शिरस्सु | | | | | ह्वती: | 34 | 9 | 25 | |
| | कृ त्वा० | 83 | 3 | ૨ ૦ | 336 | उद्गिद्धलिमदौ च | 38 | ક | E | |
| 63 | उदक्रमोदित्यभिम•न्नयते | | | | | उद्भिद्दर्शिमदी चाहरतः | | | | |
| | उद्गपान कुशान दक्षि- | | | | | संयुक्ती | 22 | १० | 38 | |
| i de la composición d La composición de la | णायान् इत्वा | 24 | 6 | १३ | ८९ | उच च्छत्त्युत्थायेति | | 8 | | |
| 909 | उद्ञो वर्गाः पूर्वापरे | | | | | उधच्छन्त्येनकृ शतस्त्रिः | | | | |
| | उद्यार्ज निषच्यान्तरा | | Sy i | i di Paglis | | यवत् प्रमाणेषु | 00 | 8 | 22 | |
| | त्मेष्टकमुत्तिष्ठन्ति नमो | ٠., | - | 144 | 1 | उद्यम्य सुक्षत्रेदेनोपमुल्यो | | | | |
| | सुत्या इति | 219 | 2 | 9 | 885 | वयसन्योपगृह्वात्यन्तरिः | | | | |
| 203 | उदरे पात्रीण समवत्तः | | | | | क्षेणोवयच्छामीति | 26 | q | 94 | |
| 40) | | | | | 8.6 | उद्यम्य वा प्रहरणम् | | | | |
| | | 5.6 | \$ | 30 | | उद्मय पा अवस्यम् उद्मयतिश्रपणम् | 5 - 5 - 5 | 8 | | |
| 484 | उदवसानोयान्ते भार्या | | | | | उद्वास्यमानं चेत्कपालं | . (4 | • | ु | |
| | ददाति यथासंवादः | | | | | उद्घारयमान परकपाय नक्ष्मेशक्षिमः | 2.6 | | 8 | |
| | सानुवरी: | २० | ૮ | 38 | 4 (1) (1) (1) (1) | 그렇게 하는 그렇게 되고 있다. 그런 그렇게 하는 그렇게 받음. | | | | |
| 88 | रदवसानोबान्ते यूपवे | | | | | उद्बृद्धः प्रस्तरः | | | \$8 | |
| | ष्टनान्यध्वर्थेवे ददाति | . 7 | 8 | | | उन्नयने च | ** | ** | \$8 | |
| all the first of the first of the | उद्वलानीबान्ते वा | ₹8 | Ę | १२ | 1340 | उद्गीतसर्वस्करदनसुरभे- न्योगन्नेन्यम् | | | | |
| २८८ | उद्वसानीयान्ते वा | | | | | दयोस्तत्रेवासनम् उन्नेतारी वा कृत्वानाः | 44 | 2 | 10 | |
| | सर्वस्य समाप्तः | 9 3 | Ę | २० | 45 | अवयते | | | | |
| 11 76 1 1 1 1 1 1 1 | उदवसानीयार्था वा | | | 90 | | | 1.5 | ş | 8.8 | |
| | उदवसानीयायां वा | 80 | į ų | 0,5 | 54.0 | उन्मर्देनमभिषेकेऽवः नीयेके | | | | |
| २०१ | उद्वसाय प्यस्या मैत्रा- | | | | | | १५ | * | 86 | |
| | वरूणी | १६ | • | 38 | ४०६ | उन्मुच्य पाशावेकं | | | | |
| \$ \$0 | उदीवों अशाखासुदस्यो | | | | | मध्यमे प्रतिमुख्यः | { Q | E | Ç | |
| | खां निवपति संज्ञानमिति | 613 | ۶ | 8 | 1 800 | उन्मुच्य पूर्वार्थात्पश्चार्धे | | | | |
| 369 | उदीच्या दोहस्थानेऽ- | | | | | प्रतिसुच्य ः | ₹\$ | 6 | ₹\$ | |
| | ग्य स्थाः | 24 | - 8 | 3 | 286 | डपकिरन्त्युपरवस्थानेषु | | | | ** |
| 2 3 | उदुत्यमिति ग्रहप्रहणम | | | | | न खनन्ति | | | 28 | |
| | तियाद्यवस्थवर्जम् | 83 | • | ११ | 1000 | उपगायन्ति 💸 | १३ | ş | १८ | |
| | उदै त्येकेन | 29 | w | 18 | 454 | उपगृह्णात्यपाम्पेक्सिः । ——CC | | | | |
| | उरेत्यतथैवेष्टया यजेत | 3 8 | Ą | ४३ | 2004 | पञ्चरिति उपतहास्वनुपत्तसानाः | ₹0 | Ę | ٤. | |
| 388 | उद्राता नेष्ट्रच्छावाकीये | 38 | 8 | ४६ | | भाज्यम् माज्यम् | ર ર | 3 | 22 | |
| વષ્ટ | उद्गाताऽऽसन्दां प्रादेश | | | | 244 | उपविष्ठते यजमानी नमो- | | | | |
| | पाद्यां सोमासन्दोवत् | 23 | . 3 | 3 | | ऽस्टि वति | \$0 | 8 | 8 | |
| | | | | | | | | | | |

| 1.0 | | | | | | | | | |
|-----------------|--|-----------|-----------|--------------|-------|---------------------------------|---------|------|----------------|
| Ze | स्त्राणि | अट | 1 8hc | स् | पुरु | स्त्राणि | अ० | 事 | ० सृ |
| 1 42 1 | ४ उपतिएते सीद स्विमिति | | | | 301 | ९ उपसदः पुरोडाशिन्यः | ₹ 3 | . 1 | १ १६ |
| | ः उपरीक्षी स्वेष्वरिनशु | | | | 880 | · उपसदन्ते प्रवर्ग्यात्सा · | | | |
| | नखनिष्टन्तना चुद्वादः | | | | | दनस् | 25 | • | 9 8 |
| | नान्तुं | 24 | 88 | 3 | १६३ | उपसद्भतं प्रवस्योतसा- | | | |
| 220 | उपद्रव पयसेत्युच्यमाने | 1.0 | | | | द्रनं यथोक्तमरनौ परिष्य | | | |
| | गच्छत्युवॅन्तांरक्षमिति | 38 | G | 29 | | म्दे वा | 86 | 2 | 86 |
| 980 | उपघानमन्त्राविपरिष्ट्रर- | | | 2.1 | ४३० | उपसदा चरिष्यंश्ररि- | | | |
| 3.5 | न्नंगुलि प्रथिष्ठे शिरसि | 910 | Ģ | 23 | | ष्यन्प्रवर्षेण चरति सप्र- | | | |
| 930 | उपचायोपधाय वा तस्य | χ. | | 2.85 | | वाय | २६ | 2 | ٤ |
| *** | तस्य यथालिङ्गम् | 5/0 | G | ૨ ૄ | 3 600 | उपस न्णांशका ना | | | |
| ३७६ | | 29 | | - | | सनमधः | 26 | . 5 | 88 |
| | उपपाताद्वोभयतः | 26 | ११ | Ę | 350 | उपस्थः खिवाः | ₹ १ | R | १६ |
| | उपमृतः सन्ये | | 100 | ₹ इ | १२७ | उपस्थानं चाऽसम्बत्सर- | | | |
| 38 | उप मा यन्तु मन्जयस्स | | | | | र्शतनः | ŚΦ | ٩ | Ę |
| | नीहा उप मा० | ?3 | | | २९३ | उपहन्योऽनिरुक्ती माम- | | w., | |
| | उपयामः सर्वेत्राविशेषात | | . 4 | १५ | | कासस्य | २२ | • | W |
| 4.8 | उपरिनाभि धारय म्रा त्वा | | | | २०३ | उपा %शुदेवतेष्टिषु | 88 | Ę | Ę |
| | हार्षेमित्यभिमन्त्रयते उपरिष्ठादतिराश्रं भवति | १६ | | è æ | २८२ | उपानहीं च कणिन्यी | | | |
| | उपारशदातरात्र नवात उपर्युपर्यक्षमध्वर्युघरिय- | ₹8 | g | \$ \$ | | कृष्णे स्यातामित्येके | 22 | Ä | 23 |
| | | 613 | | e | 269 | उपालम्म्यो बाहैस्पत्यः | 22 | 6 | 88 |
| 396 | उपलम्य वायव तम् | 28 | ę | S | 99 | उपोत्तमां क्षत्रियस्येच्छन् | १६ | 8 | 88 |
| 7 1 10 7 | उपवस्थप्रमृति तुल्यः | | | | \$ | उमयतोऽतिरात्रं सत्त्रसु- | | | |
| | | १२ | 2 | · vo | | परिष्टातः | 93 | 8 | (g |
| 4 | सर्वेषु उपवस्थप्रसृति प्रागरनी- | | | | 96 | उभयतो ऽतिरात्रः | 85 | ug | २२ |
| | षोमप्रणयनादुपश्चमय्यः | १२ | 8 | ३६ | 383 | उभयतो चा | \$8 | 8 | 80 |
| १८९ | उपवाकबद्र-चूर्णानि च | | 4. | | १०६ | उसयतः पार्शा मध्ये | | | |
| | वीर्थेमसीति | 86 | 4 | 28 | | लक्षणममितोऽर्धपुरुषयोश्च | १६ | • | • २ |
| १२२ | उपविषय पञ्चगृहीतं | | | | ३० | उमयतः शुक्लपक्षौ बृह- | | | |
| X SE | जहोति पुरुषे कृणुष्व- | | | | | स्पतिसवेन यजते | 88 | 8 | 9 |
| | पाज॰ | 80 | 8 | Ø | २९३ | उभयत्र वा द्वादशता | | | |
| ૮૩ | उपविषय् मृद्रम्भिजुहो- | | | | | गुणत्वात् | 22 | L | 88 |
| | स्यास्या जिथमि० | १६ | ₹ | ब्द | | उपयमनी महावीरं | | | |
| | डपव्यषस्ं स्वारीरा | | | | | परीशासी पिन्वने रोहि | | | |
| | 그렇게 되었다면 하는 그는 그들은 사람들이 모르고 있다. | | 3 | | | णक्पाछे० | 36 | \$ | 80 |
| 880 | उपभयां च तृष्णीम् | | /3-d - 1. | १३ | 5610 | उभयस्य सहस्रं द्वादर्श | | | 시 : 4일 교육기계 |
| | | 46 | Ę | ११ | | वा दातस् | 44 | . \$ | 22 |
| १ ३8 | उपसत्सु वौद्यांद्विक्याप- | | | | 348 | उभयानुगमने पुनरा | | | |
| \$1.75 And 5 | राहिक्यन्तरे चयनपुरी- | | | | | धेयं वा | 86 | | |
| | धनिवपने | १७ | * | 8 | 388 | उभयानुत्तरस्मिन् | 44 | 80 | २० |
| | | JAD - K | STATE OF | 200 | | 6.1、15年中央学生学院基础学会会人 | 1225197 | | 3000 |

| ए॰ सूत्राणि | अ० | कंठ | सृ० | So | सूत्राणि | झ० | क्र | सू० | |
|--|------------|-----|-----------|----------|---|------------|-----------------|------------|--|
| १७१ उसयेच्छुहमयोः | 86 | Ģ | १३ | 688 | ऋतव्ये सहश्च सहस्यश्चेति | 80 | 80 | १६ | |
| ८ उमयोर्वा | १२ | ą | 8 | 386 | ऋतूनां प्रथमः | ₹ ۶ | 9 | ą | |
| १६० उरः क्षत्रियस्य | २१ | ક્ષ | १३ | 88 | ऋत्विक्चमसेषु ससद्गाव | | | | |
| ३९२ उरसि ध्रुवाम् | 39 | 9 | 58 | | नयति | 88 | ક | 88 | 1 |
| २७९ उर्देशदि वा द्वितीयस्य | | | | | ऋत्विगपोहनीयाख्यः | | | | ** |
| सक्रिये: | २२ | 3 | 86 | | ऋषभ ऐन्द्रः परियज्ञः | (વ | १० | 8 | |
| ३६८ छ लपराज्यागताहा | 3 ¢ | 3 | 9 | | ऋषमः पूर्वस्य दक्षिणा | | | | |
| १२० उलुबल ऽउलां इत्वीप | | | | | ङ्घरणं वासः ऋषभगोसवी | \$ 4 | સ | \$10 | Ĵ |
| शर्या पिष्टवा न्युप्य | \$ @ | ્લ | 8 | | | € ₹ | 88 | 3 | - 33 |
| ३४८ डल्बलबुध्नो यूपः | | | | 40 | ऋषमामन्द्राय सुन्नामणे | | | | |
| प्रकृत्य: | 58 | 9 | २७ | | तद्गुणाभावेऽजाः | 80 | 80 | 9 | |
| १२६ उल्बल्ससले स्वयमा- | | | | | | | | | |
| तृण्णामुत्तरेणारतिनमात्रे • | | | | | एकं त्वानुपूर्वयोगात् | १५ | ی | १२ | |
| ऽ ओंदुम्बरे० | 50 | ٩ | ą. | ३६ | एकं प्रयच्छति प्रतिप्रस्था | | | | |
| १२५ उळूखळस्य रेतः सिग्ये- | | • | | | त्रेऽपरमञ्जोषे० | | ક્ર | 1 10 | |
| छायामर्रात्नमात्रश्रु तेः | 50 | ક | २१ | | एककपाछं चावस्थाय | 88 | 8 | 3 | |
| १४६ उडिणम्यो वाडपरा अधे- | | | | 1-2-7-6 | एकचोदनास्ने कदेशासु | | | | |
| पद्या रक्षाय | Śæ | 88 | w | | तम्त्रेण 🐧 🔻 | 1. 精工工品 | 70 | 8.75 | |
| २६७ उच्लोचं च | 33 | 8 | ₹\$ | 6.6 | तन्त्रण एकतन्त्रौ क्रयेक्त्वात् एकविके व्याला प्रविद्यातः | १५ | ٤ | \$0 | |
| ३८२ डब्जे वा भस्मिन | 54 | ٩ | ξc | 3.08 | Zant sale allaterit at Octovil | | | | |
| <u> </u> | 20 | | 2.6 | | षद्च | २ २ | 1364.75 | 4 8 | |
| ३६० जरू वैदयस्य | ٦٢ | 8 | 77 | | एकदेवतेषूभयम् | 3 (| | 8 | |
| १०० उद्ध्वं वनीवाहनात्क्रमः | 60 | c | 26 | | एकदेशद्रधेऽपि संयोगात् | ३५ | E | 88 | |
| योगात् | 一卷 计工程 | Ę | ** | \$ \$ | एकवनप्रवेशनकाले सुरां | 613 | | | |
| . १६० सद्ध्वेप्रमाणमास्यं ब्राह्मः | | | 0.5 | | नेष्टाऽपरेण• | | 8 | | |
| | ₹ { | ঠ | १२ | - ४५३ | | 9.8 | 2 1 1 1 1 1 | à | |
| ८४ उद्ध्वेबाहुः प्राञ्चे प्रगृ- | 60 | _ | | 1000000 | | \$8 | ૪ | 90 | |
| हात्युव्ध्वे उ. घु ण इति २६० जव्ध्वेबाहु वा | र ५ | | १४ | | पुक्षुरोडाशेषु बस्यासम्भ | | | | |
| १०८ उडवीः शकराः खाते | १६ | 100 | 26 | | वादैन्ब्रं० | 8.9 | ₹. | १२ | |
| ्८७ जन्मा सक्ताः जात ८७ जद्द्वास्तुर्णी प्रतिदिशं | 1.5 | | , 4 | | एकपन्ने दर्शपूर्णमासवत् | | | | |
| चतस्राऽपरावतिप्राप्ताः | १६ | 3 | 38 | | एकराजमेव पूर्वेणाभिवरेत | | | | |
| २९५ जपर उद्वधवणे समे वा | 3 8 | | १६ | 83 | एकवर्जम् एकविंशतिप्रदानानेकेऽन्व | 88 | ૪ | 30 | |
| | 29 | | 30 | 442 | | | (139e) 6 4 M | | |
| 57 | | • | • | | क्चातुर्मास्यदेवताः पितृत्रेः | 1.3.2 | | | i de la compansión de l |
| नद २०७ ऋगन्तेऽन्त्येऽक्षरे स्वर- | | | | 2110 | थम्बकपुनककवर्जम् | ₹0 | | ₹₹. | |
| 그 이 그러는 그리고 하는 것은 그렇게 되는 그림을 가면 보기되고 하는데 되었다. | 0.0 | e | 3 4 | | एकविर्शतिरन्बन्ध्याः | ₹≎ | 6 | 83 | |
| प्रश्टित प्रणवे छोपः १९४ ऋतव्ये तपश्च तपस्यश्चेति | 86 | | 30 | 333 | एकविद्वातिरात्रयोशितरा- | | | | |
| 한 경기 등 한 점점 기계 전혀 보고 있다. 나는 나는 그는 사람들은 사람들은 사람들은 것 | 10.1 | | 70 10 7 | | त्रावषोडशिकौ | ₹8 | 3 | 3 | |
| १२५ ऋतव्ये मधुश्च माधवश्चेति | ~~ | ಕ | 38 | 1 \$ 5 4 | एकविक्षोऽतिरात्रः | ₹\$ | ٩ | २६ | |

| | | | | 2 18 B | | | | | |
|--------|---|----------------|-----|--------|-----|--|----------------|---------|------------|
| Ão | सुत्राणि | अ० | ক্ত | स्० | ão | सुत्राणि | अ० | 雨 | सृ० |
| 332 | एकपष्टिरात्रे एष्टयो नव- | | | | 860 | एतत्हत्वा राजानमभिष्ठत | q _T | ig s | |
| | राश्रमभितः | 38 | 3 | 80 | | गृहीत्वा प्रहान्० | 26 | 23 | 3 8 |
| १०८ | एकपष्टे शते परिश्रितो | | | | 888 | एतरहत्वोक्थ्यं पूर्ववद्धोत | 729 | 83 | ي |
| | मिनोति | 28 | ć | 58 | | एतत्पुरुषस्य नारायणस्यो | | | |
| 888 | पक्स्याः पयसाऽपाञ्चतेनाः | • | | | 1 | No. of the contract of the con | 58 | (9) | 36 |
| | श्चिनेन परिविज्ञति परीतो | | | | 368 | प्तद्वाजसनेय कम् | | | ે |
| | विञ्चतेति | १ ९ | - 8 | 23 | | एतया विद्वत्याऽभिमन्द्रवे | | | Ĭ |
| ३८३ | दक्त्या। नष्ट तदुक्तम् | 4 4 | Ģ | १२ | | केडन्यचिति चिन्वन्तिः | | G | 8 |
| ড৩ | एकस्यापि कि ततः सम्म | | | | 399 | एतैः सुत्यान्ते हादशाह | | | |
| | रेदिति श्रुतेः | 84 | \$ | \$8 | | यजते प्रतिलोममेकेकेन | ब इ | 3 | 88 |
| 8१२ | एकां गा दत्त्वा समाप्य | | | | 230 | एत्य च | 910 | 6 | 58 |
| | पुनर्यज्ञः | ર્લ | १३ | ₹.0 | 366 | एत्य च हवहतीतीरण | 28 | | 30 |
| | एका च | १६ | 9 | 33 | 1 | एघोसीति समिधमादा- | | G. | 20 |
| 88 | पुकादशकपालः प्रथमः | | | | | याहवनीयेऽस्याद् याति | | | |
| | प्रथमश्रस्य इतरे | | | | - | 2 20 | 88 | Ġ. | 0.00 |
| | प्कादश तृतीयसवने | 33 | Ģ | १८ | 25 | | 87 | . ~ | ક કંઢ |
| હફ | प्कादशान्ते शासप्रेषादि | | | | 980 | एवं चत्वार उत्तरे एवं द्विरपरम् | - (₹ | 2 | 3 |
| | करोति | १६ | 3 | १३ | | एवं पञ्चवषाण्युक्ष्णौ नि- | 86 | | 2 |
| २४८ | एकादक्षिनानुपाइल्य ब्राह्म | | | | 42, | युक्तन्ति | 25 25 | . 13 | |
| # 10t | णादीश्र | | | w n | | | ¥ § | | |
| - | प्कादशिना वा विहताः | ** | સ્ | १२ | | एवं पश्चात् | १६ | E | १८ |
| | एकाद्शिनिधर्माः पद्युः | | | | 880 | एवं प्रतिप्रस्थाताङ्जां सः | | | |
| 250 | गणेषु एकादशिनीवदेकवि¦शति- | \$ 2 | 8 | હ | | यूखे तृष्णीम् एवं यथाचिति | ₹ | • | 6 |
| 445 | | | | | 580 | एवं यथाचित | १८ | 8 | 86 |
| | र्यूपाः एकादशिन्यौ सवनीयाः | २० | 8 | १६ | २८३ | एवं यथास्तुत् | 33 | 4 | 3 |
| वर् | | | •• | ~ 4 | 530 | एवं वैश्वदेवीभ्यः प्राणमृतः | 810 | 6 | १२ |
| | पशवो भवन्ति | ५ ० | . 8 | 5 \$ | १३२ | एवं, सब्ब | 80 | Ş | E |
| | एकाद्शैकादश वा शता- | A. R. | | | 833 | एवं, सर्वेश्र एवं, सर्वेश्र एवमप्री | 8/8 | Ę | 23 |
| | नि स्युः एकाइमेके | ** | | ₹ 8 | १६८ | एवसपरौ | 28 | 8 | 98 |
| 26 | एकाहमक | ₹\$ | \$ | 38 | १६३ | एवमारोहणावरोइणमतः | 28 | \$ | \$8 |
| v | पकाहवद्वोत्तमे शालागाहै- पत्य० | 69 | | 0.0 | | एवमावृत्तस्य चग्वः सारः | | Z. | |
| 336 | प्काहास्त रहात | 58 | ે | 56 | | स्वतमञ्जूषेत्रपत्यवारूगा- | | | |
| ें दे | एकाहास्तच्छव्दात् एके एक दक्षिणत्रश्चित्ये वा | 98 | 9 | Ŋ | | दिल्याः ू | 84 | 9 | ę۵ |
| १७३ | एक दक्षिणतश्चित्ये वा | १८ | Ġ | १४ | 846 | एवमितरौ प्रतिमन्त्रम् | २६ | 8 | 28 |
| 30 | | 23 | ą | 48 | १०७ | एवसुत्तरोऽस्तः | ? ६ | 6 | 83 |
| 100 | एके यथासंख्यम् | 25 | | 48 | | एवसुत्तरः पक्षः | १६ | 10.000 | १९ |
| | एकेको वाग्यतः सोमः रक्ष- | | | | | एवसुदिते सहमोद्वपनादि | 98 | | 3 |
| | त्याबोधनात् | १२ | 8 | ŧ | | प्वमेवाजिनानीतरेषाम् | 22 | 30 60 | 20 |
| 398 | एके।चयेन चरवाशिशह- | | | | | एवमौदुम्बरीमुत्तरतो े | | ₹. 1 | |
| | | \$8 | ŧ | ₹ | | द्घिपूर्णामिनद्रस्य स्वेति | ę vs | Ŋ | ? ३ |
| A SALE | 6. 장치 때 시작는 얼마 얼마 얼마나 같은 | | | | | | 100 | 依其法 | 14 |

| 医乳头皮质 医动脉动脉 表现的 医二氯甲基酚 | | | | | | | | 100 |
|-------------------------------|---------------------------|-------------|----------|---|---------------------|-------|------------|----------|
| ५० सुद्धाणि | स | ু ক্র | , सू | | | | ० सृ० | |
| ४० एव स्य हति प्रस्यू चं | | | | २६७ सौदुम्बरी वा | 23 | | १२२ | |
| ब्रह्मोति | ११ | કું ક | 3 5 | | • | | | |
| ४० एषा ह व इति मन्त्रा- | | 7 | | ब्रत्येना मधुमतारिति | | | 3 3 9 | |
| हतम वहरते | 8 8 | } } | 3 9 | | 22 | ş | 29 |) |
| Q | | | | १२ औद्ग्रमणादि दण्डान्त | • | | | B |
| ३६ ऐकध्यं च श्रपणम् | €8 | • | २२ | | १६ | ş | 3 86 | |
| २२९ ऐकादिशनाचुपाऋत्या- | | | | १६२ औपवसथ्ये विखष्टवाचि | | | | |
| बादींश्र | 50 | Ę | 6 | पञ्चगृहोते हिरण्यशक | | | | |
| ३८४ ऐतु राजा वरुणो र वती | | | | लान्त्रास्यति पञ्च | १८ | 3 | 9 | |
| मिरस्मिनस्थाने तिष्ठतुः | ३ ३ ५ | Ę | २८ | ३०९ औषधधर्मा वा द्रव्य- | ut (A) Visto (A) | | | |
| १९१ ऐन्द्र ऋषभः | 88 | | 9 | | 1 23 | 2 | 28 | |
| १८९ ऐन्द्रं मैयग्रोघेन | १९ | • | 86 | ४३७ औषघघमी वा र स्काः | | | | |
| १९३ ऐन्द्रं यजमानः | | | | 그리는 아이들 이 살아 있다면 하는 사람들이 되었다. 그는 사람들이 살아 먹었다. | २६ | å | ે ૯ | |
| १८२ ऐन्द्रा पहाः | १९ | 8 | 26 | | | | | |
| ३९ ऐन्द्राः क्षत्रियस्य चक्रः | | | | २५५ कक्षेऽवतापिनी | 38 | ু ই | १५ | |
| तुन्दुन्याः | १४ | ₹ | \$3 | ४०१ कण्डं वाबद्धत्य स्थाल्यां | | | | |
| १७ ऐन्द्राग्नः सवनीयोऽ | | | | मेघलावणम् | 24 | 80 | Ę | |
| न्यहम् | १३ | | | | | | | |
| २३९ ऐन्द्रास्त्रैसदेवकायानेक | | 8 | विद | शिरा •ुंस्याद्त्ते | 88 | ą | ું | |
| २०३ ऐन्द्रानेके प्रथमस्य वाये | A 200 | | | ५९ कण्डूयन्याभिषेकेण प्रसि | | | ` | |
| घसानुत्तमस्य ् | 86 | Ę | 88 | म्पते प्रपर्वतस्येति | | 8 | e | |
| ४१३ पेन्द्रावैष्णवः होताशः | elle Britania Start | | | ८० कद्वस्यो याज्यानुवाक्याः | | | | |
| सति | | | ş | प्राजापत्यस्य | | 8 | 83 | |
| १८५ पेन्द्रणोत्तमे तिस्रणाम् | 计时间 有原物 化氯 | ₹ | | ३९२ कपाछि चैके | | | 26 | |
| ४९ ऐन्द्रो यजमानस्य | | 1.0 | ٩ | २४९ कपिन्जलादिवदुतस्जन्ति | | | | |
| १९९ ऐन्द्रयां बृहत्यां गायति | 88 | 4 | . ₹ | वाक्षणादीन् | २१ | ę | 88 | |
| શ્રો | | | 12, | २३२ कपिञ्जलादीनुत्स्जन्ति | | | | |
| १८४ ओदनौ चुर्णमासरैः | | y - 1 - 1 | | पर्यरिनञ्चतान् | 20 | Ę | 8 | |
| संख्डय स्वाह्योन्स्वा- | | | | २३२ कपिञ्जलादीन्प्रचतान्तां | | | | |
| ं शुगात इति | 86 | ? | 3.8 | खयोदश त्रयोदश यूपा- | | | | |
| ५८ ओ६मित्यूचां प्रतिगरस्त | | | M. | न्तरेषु | ২০ | Ę | 8 | - |
| थेति गायानाम् | १५ | ξ | 3 | १६६ कर्णकाऽमावे द्धिद्र- | | | | |
| २५१ ओषधिवनस्पतीना 🌣 | | | | प्साकाः | १८ | 8 | • | |
| संवश्रम् | 28 | ą | Ę | ३९२ कर्णयोः प्राशित्रिहरणे | | | | |
| ાં કો | | | | शिर सि चमसप्रणीताः | | | | |
| २५८ औदुम्बर्सार उत्तरतो | | | | प्रणयनम् | 29 | v | ર્હ | |
| वा षड्गवे युच्यमाने | | | | २६६ कमेशन्दाच्य | २२ | ? | 28 | |
| र् युक्ति ० | ₹१ | 7 4 6 6 6 6 | | २६९ कर्मसन्निपाते पूर्व पूर्वः | | | | |
| ९१ भौदुम्बरी परमस्या इति | 24 | 8 8 | 1 | मभिजितः | २२ | 8 | ध २ | 40.0 |
| | KIR GOV | 翻滚壶箱 | | | COME SEAL | Maria | | VALUE OF |

| Āc | सुत्राणि | अठ | ক্ত | सु० | ão. | स्त्राणि | 310 | a, c | सृ० | |
|--------------------------|--|------------|-------|-----|----------|--|------------|------|------------------|----|
| 869 | कमीपवर्गाद्सम्भवाः | | | | | स्या वेदिश्रोणी प्राइ- | | | 4 | |
| | न्मरणस्य | 24 | 23 | 30 | | तिष्ठन् दाक्षणास्यति यः | | | | |
| | कर्मार्थं दर्शनम् | 29 | C | ₹ ₹ | | द्विष्म इति | 96 | 3 | 9 | |
| 358 | कर्मोपपाते प्रायश्चितं | | | | 850 | कुम्भे भेर्ना सामर्थाव | 96 | ર | • | |
| | तत्कालम् | ₹ € | 8 | 2 | ३४४ | कुम्भोषमारणान्तं पूर्वयोः | 20 | 6 | 30 | |
| 298 | कर्ष्वीरिणवति | . २१ | 3 | 3 4 | 368 | कुरुक्षेत्रे परिणहि स्थलेऽ | | | | |
| ४१२ | कलशमेदने वषट्कारनि- | | | | | ग्न्याचेयमन्वारम्भणीया | | | | |
| | धनं वद्यसाम | 3 4 | १३ | 22 | ti- | न्तं भवति | ₹8 | 6 | 38 | |
| 880 | कलशञ्चेदुपवायातक्षी - | | Į. | | ७२ | कुवलक्षेन्यु बद्रस् णांनि | | | | |
| | रासेचनमेक | . २ ६ | ٤ą | १३ | | चावपति | | 80 | 88 | |
| ર હાઠ | कलापिनः | | | १७ | 806 | कुशतरुणेन जुहोति हुतः | | | | |
| 206 | क्छापी चषालार्थ | 3 2 | | | | स्य चाहुतस्य चाहुतस्य | | | | |
| 300 | का 🔆 स्यक्वचः | २ ३ | | | | हुतस्य० | 2 4 | १२ | 8 | |
| . B | | | • | | ११६ | कुशस्तम्बमुपद्धाति | | | | |
| 704 | काणखोरकृटवण्डाद्वतः मिश्रानव-नव दक्षिणा | | | | | सध्ये तूष्णीस् | 8.8 | 3 | 8 | |
| | ददाति लिङ्गानाम् | | _ | | 3,43 | कुशस्तम्बे वा | 24 | 8 | | |
| 200 | काममितरे काममितरे | 23 | | १८ | १२५ | कूमं द्धिमधुष्टतेरनकि | | | | |
| | | 38 | | ફેફ | | मधुन्त्राता इति | 20 | 8 | 2 9 | |
| 9.5 | काम्यः सत्रम् | १२ | Ę | १६ | ફરૂ | कृतादि वा विद्ध्याद्वाजः | | | | Ċ, |
| 555 | काय स्वाहेति चाइवमे- | | | | | प्रन्हतिस्यः | १५ | 9 | 26 | |
| | धिकानि त्रीणि | ₹ 5 | 8 | 3 | 292 | कृतिकांति वा | 30 | | | |
| | काल्प्राधान्याच | ₹ \$ | | 80 | | इत्वायेति निद्धाति | १६ | 5. " | ૪ | |
| | कालो वचनात् | १३ | Ş | ३१ | | कृष्टमात्रे वा | 919 | | 9 | |
| | कालो वा प्रत्ययात् | 36 | ₹. | 3 | | कृष्णं वासो दक्षिणा | રેલ | | 810 | |
| | काष्टं वोच्छितोहम् | 86 | 8 | 28 | | कृष्णसारङ्गं वा | 2 0 | | 38 | |
| 350 | काष्ठं, हिरण्यं वाभिज्ञ | | | | | कृष्णाजिनं परिगृद्योत्तरतः | | ` | | |
| | हुबाच्छ्रुतेः | 36 | ą | 50 | | परिवृतं गच्छन्ति प्रैतु- | | | | |
| १२३ | काष्मयमयीं दक्षिणतः | | | | | त्रद्मणस्पतिरिति | २६ | ŷ | 93 | |
| | पाणिमात्रपुष्करां बाहु | | | | २३२ | कृष्णाजिनदीक्षाऽतः | 20 | 5.7 | | |
| | मार्शी॰ | 919 | 8 | १२ | | कृष्णाजिनमस्यामास्त <u>ु</u> | | | | |
| 6.0 | किलासाबाधं तु | १५ | | २६ | | णाति मा त्वेति | 25 | X | c | |
| | कुण्डयायिनामयनं पौण- | 27 | ₹. | 76 | | कृष्णाजिनसास्तीर्थो - | X 3 | | | i, |
| y | | 58 | N) | 22 | | | १६ | 2 | 36 | |
| 200 | नावादाव र् कुमारी पालागली | ~ 6 | • | 7.3 | 339 | कृष्णाजिनाद्यासमिदाः | | | | À |
| ९४५ | ज्ञानारा पालागका चाह्ययेवे | 5. | male. | 3.0 | | धानात्कृत्वाऽऽवहाः | | | | |
| | | २० | 6 | 44 | 医铁膜上皮质 化 | ^ | २० | ų | 4.0 | |
| 848 | कुम्भीमासज्य कुम्भवत | | | | | कृष्णांजनान्तमन्बह | | 8 | ۲۲. | |
| | शतवितृण्णां वाखपवित्रः | | | | | | २० | 13 | æ | |
| are a second contract to | | 28 | 3 | 48 | | त्राष्ट्राज्याग्यस्याप्यः इत्लाजिनायकृतैर्द्धवित्रे | | 8 | Ę | |
| \$50 | कुम्भेऽद्रि इत्वा दक्षिणः | | | 1 | ४१३ | श _{न्या। या} वानश्चमस्य | | | 10 180 14 / N | |

| | | | | 1. — | one of the same | | Show: | |
|--|------------------|------|------|-------|--------------------------------------|---------|-------|--------------------|
| पृ॰ सुत्राणि | अं≎ | ୍ଦିନ | क्ष | | सूत्राणि | | | |
| स्प्वाजयति त्रिभिर्दण्ड- | 0.1 | | | | खरयोः साद्नम् | 88 | æ | \$8 |
| वद्धिमध्यति | 3 6 | 8 | 5 | 886 | खरा उत्तरतो दक्षिणतो | | | |
| ४२७ कृष्णाजिने निद्धात्यु- | | | | | मार्जाछीयदेशं बहिव- | | | |
| त्ररतः ूर् | ३६ | 8 | Ę | | द्युव्छिष्टखरम् | २६ | ୍ଷ | \$5 |
| १९८ कृष्णाजिनेऽवरोहति | | | | | खळ उत्तरबेदिः | | | 88 |
| प्रतिक्षत्र इति | 88 | 8 | 33 | | खढेवाछी यूपो ळाङ्गळेषा | | 3 | 84 |
| ५० कृष्णापस्तरयंपहर्ता- | | | 50.0 | ६१ | खादिरीमासन्दो� रज्जू | | | |
| त्तमस्य | १५ | 35 | ₹ १ | | तां व्याघचमेरेशे निद- | | | |
| ३९१ केशहमश्रुनखळोमनि | | | | | घाति स्यागसीति | 9 G | 9 | 9 |
| कुन्तमानि ० | 3 6 | 13 | 88 | 960 | खुरैवैसामहान् द्वात्रिहे- | | | , |
| ३९१ केशादि निखाय सपि- | | | | | शतं जहोति सीसेनेति० | 9 6 | Ų | 9.3 |
| षान्तरक्तवा वितावेगमा | | | | | 17 | 7,3 | | |
| द्याति० | २६ | 9 | १९ | 6 X | गत्वेतराः पृथक्षात्रेष्वौः | | | |
| ३२९ कोसुरुबिन्दः प्रथमस्त्रयः | 9 | | | | दुम्बरेषु सरस्वतीः | १५ | Ų | 23 |
| इ डक्यो तुत्तरा | 58 | ş | 9 | 306 | गर्गवैद्छन्दोमान्तर्व- | 7, | ٠ | `* |
| ३१७ कोसुरुबिन्दः | ब इ | Ģ | 23 | | सुपराकाः | 32 | 3 | \$ |
| १६९ क्रमध्वमित्रनेति चित्य | | | | 8.0 | गवां मध्ये स्थापयः | ે જ | | |
| मारोहन्ति | 28 | 8 | ۶ | | त्यापामेति | ŧ. | | 20 |
| ३२ ऋषणवेद्यारम्भणप्रवरयीः | | | | 60 | ्यापाला । गवा ुं शतमधिकं वा | | • • | 88 |
| रसादमाधि ० | 88 | 8 | १३ | 1, | | | | |
| ४०५ कीते विमागश्चतेः | २५ | 93 | 8 | | स्वस्याहवनोयस्योत् रतः | | | |
| १८३ क्छोबादेके | ₹ ९ | ę | 28 | | स्थापथात . | १५ | ૄ | 83 |
| ७० क्षत्रप्रतिः | १५ | 8 | 20 | 20 | ग्वामयनायकाष्टकायां | | £. | |
| ४४६ क्षत्रस्य त्वेति निष्क्रमणं | | | | | दीक्षा ्ू | 83 | | ₹. |
| पुरस्तात्पत्नीमन्तर्थाय | 28 | V | Ģ | 380 | ्राक्षा गवामयनेनेयुः सम्बद्धाः | ₹8 | | • |
| ५८ क्षत्राणां क्षत्रपतिरेघी - | North S To Fe | | | 288 | । गवामयम पा।भगरञ्जतः | 38 | 8 | 48 |
| रिवि च | १६ | Ģ | ३० | ४२९ | गवेधुकासिः इलक्ष्णयति | najai s | | |
| ३५ क्षत्रिणं सम्राहयति | | | | | मखायेति प्रतिमन्त्रम् | ₹8 | | ₹? |
| दक्षिणां 0 | 83 | 3 | 80 | 1 | गां दीव्यध्वसित्याह | 86 | Ø | 80 |
| ३९ क्षत्रियः सप्तद्गेषु प्रन्याः | | | | 1 | गायत्रयसपत्ना गण- | | | |
| घानस्यति तीर्यादुदीयः | 98 | 3 | 25 | 1. | मध्येऽसम्भवात् ् | १७ | 88 | Ę |
| २१२ क्षात्रसंपद्दीतृणां चतुथ्याः | २० | • | 25 | १५४ | गाहैपत्यं पुरुष्ठसन्धौ | | | |
| १७१ क्षीरोदके वा वाजपेयि- | | | | | कृत्वा | ş la | ۶ą | २ २ |
| कानीति श्रुतेः | १८ | Ģ | | १३६ | गाईपस्यलोकम्प्रणाः | | | |
| ३४५ धुल्छकतापश्चिते चतुर्माः | `` | ţÑ | | | प्रथमीयाम् | 80 | હ | <i>8</i> 19 |
| सन्तो दीक्षोपसत्सुत्यानि | २ ४ | Ą | e | ४०३ | गार्हपत्यक्षचेदाहवनीय | | | |
| ६६ क्षोमम् | १५ | 500 | | | उदानः प्राणमप्यगादिति | 46 | 80 | 29 |
| , la | | | | 833 | गार्ह्वत्याह्वनीया उत्तः | | | |
| ३२ खरं छत्वा नाराश्चरंसंस्था- | | | | | | 35 | 3 | 88 |
| नेडवरम् | 68 | ? | 20 | 366 | गाईपत्ये प्रहणादि | | ž. | 说 的 |
| ASSESS ALTONOMY CONTRACTOR | MER | | | 6.60图 | | 1,200 | 生态。 | XXXX |

| | | | | 4. 1 | er filt er | | | | | |
|-------------|------------------------------|--------------|------------|----------------|------------|----------------------------------|--|-----|--|--------|
| पु० | स्वाणि व | ro i | क० | सू० | go | सूत्राणि | 3 0 | \$0 | सु० | |
| | प्रागासादगात् ः | 29 | e) | 19 | 28 | यहं गृहाति वि न इन्द्र | | | | |
| १०३ | गाहंपत्येऽनुगते निर्मथ्य | १६ | : 1 | 3 | | वाचस्पतिः | 23 | 2 | १७ | |
| ३६८ | गार्ह्वत्येऽनुगते भस्मनाः | | | | 330 | महमहणाचा विपूद्दोः | | | | |
| | उरणी सहस्रवय सन्यनम् | રેલ | 3 | 8 | | मारङ्कत्वा | 38 | 3 | 3,8 | |
| Ģ | गाईप्त्ये प्रास्त्रसम् | Į₹. | ₹ | ₹ ફ | ₹0€ | महाणां चतुर्थः | १९ | Ę | ₹3 | |
| * & | गावो हारे सुरभय हदं | | | | २०५ | ग्रहाणां युव्रं सुरामं | | | | |
| | | 3 | 3 | ₹3 | | उत्र मिवेति | 28 | 8 | ₹ø. | |
| 853 | | | 88 | | ₹८४ | यामकामस्य वा | २ २ | | 9 | |
| | गुणप्रचनाच्चोदनाशब्दस्य | २० | 15 | 30 | ₹€६ | प्रा म तस्तेजनीसुद्गित्य | | | | |
| - 5 | गृहर्गत वा पर्युरविदय | | | | | न न्यस्येद्ग्रहेपूच्छ्येत् | २१ | 3 | ₹8 | |
| | | १२ | 3 | 8 | ३६३ | यामदमशानान्तरे मर्या- | | • | | |
| ş | गृह्वतिः प्रथमः प्रथमः | | | | | दालोष्टं निद्धातीमं जीने- | | | | |
| | | şą | | 9 | | स्य इत्यनेन मन्त्रेण | ર ૧ | Ŋ | 3.6 | |
| | | १्र | | १५ | २५० | गामे वा विवतसन्तरण्योः | 29 | . 9 | 26 | |
| | गृहपतियोजमानमयुष्कत्वात | (Z a | 2 2 | Ãο | | याम्याभोजनं निवादानां | | | 1. | |
| 8 | गृहपत्याह्वनीयेऽङ्गार- | | _ | | , | सृन्मयापानं च | 2 2 | | 30 | |
| | | १२ | . 3 | \$ ro | 280 | भीष्म एके | 20 | | 3 | |
| ई क≎ इ | होतानुगमने चान्व- | | | | | | ~* | • | ₹ | |
| | | ३ ६ | 9 | १५ | | घ | | | - A | |
| 200 | गेहदाहेऽसये शामवते | | | 2 | १२६ | बह्यति मध्यम्या | 80 | Ģ | , | |
| | | ર ૬ | | 38 | 860 | घमेदुवामध्वर्थवे यज्ञमाः | | | | è |
| | | <i>s</i> 8 | | 28 | | ननतदुवा % हो त्रे॰ | 3,6 | v | 38 | |
| | | રે રે | 8 | 6 | 369 | घर्मधुग्ध्वाले चादोहे च | 29 | Ę | ą | |
| 238 | गोआयुषी त्रिन्यो | | | | ६५१ | घमंभेदे यथोक्तम् | 4 10 10 10 10 10 10 10 10 10 10 10 10 10 | | 30 | |
| | | 58 | | 58 | 368 | पृतं व्रतयति | २२ | | 29 | j |
| | | 58 | | 38 | 46 | ष्टते वरुरादित्यम्यः | ₹€ | | २९ | |
| ३३ ९ | | 8 | | १६ | 48 | घृतोन्नमे के | १५ | | 6 | |
| | | 80 | ٩ | 8 | | | | | | |
| ે રફ | गोधाबीणाकाण्डवीणाश्च | | | | | च . | | 景 | | |
| | पत्न्यो बादयन्ति | १३ | ą | 50 | | चक्रीवत्यानये पथिकृते | 24 | 8 | 30 | |
| 866 | गोधूमकुवलचूर्णान चावव- | | | | १६४ | चक्षुषः पितत्यवरमतुः | | | | į. |
| | पति तेजोसीति | १९ | 2 | 84 | | वाकेन | १८ | 3 | ફહ | i T |
| े ३१७ | | 2 § | 9 | 28 | | चतरखु चत्रखु त्रींखो- | | | | |
| 88 | गौराययणे | १५ | ? | 28 | | बुद् चमसा बि नयति० | 80 | 3 | 3 | |
| 48 | गौदेक्षिणा | १५ | ą | 34 | | चतसः पुरस्तात् | 5/0 | E | 23 | |
| Øoğ. | गोर्ञ्चोतृव्यवतः | 23 | 8 | 88 | | चतुरहाश्चरवारः | ३३ | ર | १३ | |
| | ग्रहं गृहाति कुविद्देशेति | | | | 1 38 | चतुरहे वा पुरस्तात्प्रा- | | | | |
| | त्रीन्वा प्रतिदेवतमेतयेव | 29 | १० | १२ | | क्पोणमास्याः | १३ | ₹. | Ģ | |
| १२ | ग्रह्मं गृह्णाति प्राजापत्यं | | | 9477V 24884 | 90 | चतुर्गृहीतं जुषाणोऽध्वा- | | | | |
| | बायुं० | ę٩ | 8 | 83 | 1 | ज्यस्य वेत्विति दूतस्य | 24 | 3 | 23 | |
| | | | | | | | A TAN | | | |

| पृ॰ स्त्राणि | 870 | 350 | щo | l Vo | | 37.0 | æa | सु० |
|--|-------|------------|-----|--------------------|---|-------------|-------------------------|-------------|
| ३६३ चतुर्गृहीतान्येतानि सर्वत्र | 36 | 9 | 6 | 33 | चत्वारोऽभिष्लवा पृष्ठय | | -310 | 180 |
| १०८ चतुणवतीनि वा त्रीाण | | | | | श्र मासः | | 3 | 5 |
| ७७ चतुर्णामप्सु कायप्रासन म् | | | | | | ् इ३ | • | ३ |
| ४४३ चतुर्थमहृतमुद्द्वीक्षमाण | 17 | | () | 25.2 | प्रथमाः | | | |
| ्रहरू पशुचनहुतसुद्ध्यासमाग दक्षिणतो बहिष्युपगृहति | | æ | 613 | 2 4 10 | त्रयसाः चत्वारोऽषोडशिकाः | *\$ | Ģ | " G |
| | | | | | | | 1 3 4 5 1 <u>2</u> 1 | |
| ९ चतुर्थेऽर्णिभ्यां मन्थनं० | १९ | Ř | ्र | 1 | प्रथमाः | | 8 | |
| ४० चतुर्थे युक्तवाऽध्वयंत्रे दः | | | | | चन्द्रङ्गायेति च प्रेष्यति | २६ | 8 | ? |
| दाति | \$ 8 | 8 | 7.5 | 200 | वन्द्रमसाम्युदित आमा | • ` | | |
| १४२ चतुथ्यांमन्कान्तेषु दक्षिः | | | | 1 | वास्ये पुरस्ताद्वतः | | | |
| णोत्तर हे हे | | \$0 | | | स्याव | ₹ 9 | 8 | 30 |
| ३४० चतुथ्यां वाऽवरपश्चस्य | ₹8 | 8 | 38 | \$68 | चमसं पूर्णमङ्गु लिपवेणा | 100 | | |
| १४३ चतुर्देश प्रतिमन्त्रां प्रत्र | | | | | मौल्येन सर्वतः | 55 | e | १६ |
| तिरष्टादश इति | | 80 | | १८३ | चरूपभवोविपर्यासमेके | 86 | 8 | စုဖ |
| ३२१ चतुर्देशरात्राणि श्रीणि | 58 | 8 | 88 | ३८१ | च रुसान्नायालाभे | २५ | • | Ę |
| ३२२ चतुर्दशस्त्राम्यां पूर्वे | | | | 49 | चर्मेणि चिविकसयित | | | |
| व्याख्याते | 18 | 8 | 36 | | विष्णोरिति प्रतिमन्त्रम् | १६ | Ę | 8 |
| ३४६ चतुर्भागं चतुर्भागमेके | | | | 90 | चर्मतृण्यः सेषुकाः | १५ | | १९ |
| कस्य ज्योतिष्टोमिकैः | | | | 86 | चातुमांस्यप्रयोगः फालगु | | | |
| स्तोमे: | 38 | Ģ | १६ | | न्यास् | | ę | 9 ∕8 |
| २०७ चतुर्भिरधरथैः सक्षीर- | | | | २८९ | चातुर्मास्याः सोमास्त्रिषु | | | |
| हतिभिरावह न्त्येनान् | २२ | 3 | 39 | | पर्वस्थानेषु पाष्टिकानि० | 22 | G | ٤ |
| १९० चतुभिर्वा पयोग्रहाञ्छेषेण | y Ne | şi d | | 299 | चातुमस्यिषु चके | ૨ ૨ | 4 | 4 |
| सौरान | 28 | 4 | ₹ ફ | ११२ | चात्वाळदेशात्पुरीधं निव | | | |
| ३३० चतुभर्यः सर्वस्तोमोऽतिः | | | | | पतीन्द्रं विश्वा इति | হও | 8 | 26 |
| रात्रः | 38 | 3 | e | 843 | चात्वाले मार्जनम् | ३६ | y | 1.7 (7) |
| ३१६ चतुरुयों विश्वजिन्मः | | | | | चात्वाले मार्जवन्ते सप- | | | |
| श्रामवस् | 43 | ୍ଦ | 83 | | त्नीकाः सुमित्रिया न | | | vide ya |
| १३४ चतुर्मासोपसत्के द्वादशाः | | | | | इति,० | २६ | 6 | 3 6 |
| (31: | 90 | • | 93 | 1 | चात्वाले मार्जयन्ते सपः | | | |
| | • | | 14 | | त्नीका हिरण्यमन्तर्धाय | 86 | • | 5 A |
| ३८ चतुर्युजो युनबत्यपशंस्तुः | | | à, | | चिकीर्षमाण उत्तरस्यां | 4 .7 | ₹ . | ₹₹ |
| व्णी बहिनेदि घोडश | 68 | 3 | 88 | | गवकाषमाण उत्तरस्था फाल्गुन्यां पौर्णसासेने | | | |
| १२ चतुर्होत्वयाख्यानः | | à. | | | | | | |
| होत् | १२ | S | 88 | | | १६ | \$ | 9 |
| ३२८ चतुस्मि¦राद्रात्रमधाधः | | | | | चिति पुरीषवतीसुप्तिष्ठते | | | |
| | 38 | | | 15 No. 15 11 11 11 | वार्श्वहत्यायेति सप्तिमः | १७ | | |
| | | | | | चितिवच | २१ | ३ ३ | 8 |
| | | | | | चित्यं गच्छन्ति पञ्च | | | |
| ३०६ चतुरामादिष्वधिकम् | (3 | 8 | 10 | 1 | दिश इति | १८ | ३ २ | 8 |
| ३२८ चल्बारि(शहाश्रं च | 8 | R 8 | 0 | 250 f | चेत्यं परिषिद्धत्यझीदः | | | |
| | MITS. | 100 | | nativity (S | tak wasan uniteraka PMA PANTA | がこの数 | | 255 |

| | [1] [4] [2] [4] [4] [4] [4] [4] [4] [4] [4] [4] [4 | egy Property | 医连续 人名 | | | | 11,111 | | |
|------------|--|--------------|----------|------------|-----------------|-------------------------------------|------------|-----|-----------------|
| gə | स्त्राण | स | क्र | सू० | 50 | सुत्राणि | अ० | 新 | सू० |
| | क्षिणे निक्केऽदि कुरवा - ऽद्यमन्नुजैमित्यद्वेरिय | | | 147. i | 303 | । जगस्या राज्ञः | સ ર | 98 | 2 3 |
| | ऽइ मन्नूजंमित्यहेरिय | 56 | ₹ | ş | 3 8 8 | जनकसप्तरात्रः | * 3 | Ģ | 88 |
| 940 | ः चित्यस्याहचनीयामि <i>ः</i> | . •. . • | | | 308 | ा जानच्या चान्यव्य | 44 | 88 | 33 |
| | ः चित्यस्याहवनीयामिः सम्पत्तेः | 96 | 8 | 310 | 3,00 | जनमरणे च | ₹ € | 8 | 38 |
| 946 | ः चिस्यासक्तौ पुनः सोमे- | • | | 1 | ३६७ | जने | 2 2 | 8 | ३७ ८ |
| | ज्यायां स्वयमातुण्णावि- | | | | २५ | जने जयत्यार्थः जयत्यार्थः | 23 | ş | 4 |
| | इवज्योतिऋतव्याना | | | | ३६९ | जाभतमा ह्वगायम न्युद्धर | • | | |
| | सन्यतमाः | 26 | 8 | 38 | | चेत्त ुकम् | ₹ 4 | 3 | 28 |
| १२९ | चित्रं देवानामित्यधंचं शः | | | | Ş | जातं जातं गृहपतिगहिः | | | |
| | स्रवार्श्नी प्रदेशपे | 919 | Ģ | 96 | | • | | ą | 8 |
| 2 48 | चित्रं पश्चात् | 3 , 9 | 3 | 23 | 96 | जातस्य च | ₹€ | | |
| <i>छ</i> छ | वित्रोसीति चित्यगाम | | - 1 | | ફ્ષ | जातेजीतेश्रा सम्दर्शगण | • | | |
| | इत्वोपतिष्ठते ये अग्नय | | | | | पूरणात् | \$8 | . 2 | 90 |
| | इति | | | 38 | 800 | जानन्द्राह्मणोक्ता जुहुसाइ | 186 | ě | ₩ |
| 999 | चिदसीति पूर्वे दक्षिणतः | | • • | - 4 | | जानु गुदस्य | 38 | 8 | 80 |
| ,,,, | प्रतिमन्त्रम् | 0 10 | 9 | 65 | | जामद्द्री वि¦शतिदीक्षः | | | |
| 908 | चुननते स्वाहेत्यनुवः | (, | | 2. | | पुष्टिका मस्य | 2.3 | 2 | 94 |
| | And calleada. | 3.6 | £. 13. | 9 | 326 | पुष्टिकामस्य जिजीविषेद्वा | 2.2 | Ę | 23 |
| 226 | षर्ऋते चैत्रस्य वा | 20 | ्र ५ | - Q | ξø | जिनामीमाः कुर्वे इमा | | | |
| 279 | of the same of the | • শ স্ত | | * | | इति चाह | 9 द | Š. | 38 |
| 4.5 | चैत्र्यानन्तर्भात् ==== | | | | 336 | जीवेच्चेत्पुनः काले | 26 | y | ą |
| | वैत्र्याम् | | | | | जीने च्चेदेतेनैवारम्भेण | | | |
| 358 | चोदेना वाडकाल्याव्दात् | ₹ % | 8 | 3 | | सुमृषेत | 33 | s | 20 |
| | | | | | 2/19 | अक्रू जोदेखेद्दैर्धश्रवस्य स्वा- | | * | ٠, |
| 888 | छन्दस्या हादश हाद्शा- | | | | ,,,,, | सु यज्ञायज्ञियस्थाने कुर्युः | 55 | • | to. |
| | प्ययेषु मा च्छन्द इति | | | | 5.00 | जुरोति च समाववतीति | | | |
| | प्रतिमन्त्रम् | 60 | \$ | Ł | e in the second | | 91 | | *0 |
| 686 | छन्दस्यास्तिस्ति रा हेत | | | | ** | जुहोत्युत्तरासु खतुगृहीताः ——— | | | |
| | न्कान्तेषु पुरस्ताद्वायत्री- | | | | | नि बृष्णः | 89 | 8 | \$9 |
| | रिप्रमूर्धेति प्रस्युचम् | 80 | १२ | 9 | 460 | ज्याहोडोऽयोग्यं धनुस्तः | | | |
| | छन्दोमदशाहः पशुकामस्य | | | | | दाख्यम् | ₹₹ | 8 | ? ₹ |
| | छन्दोमद्शाहश्च | | 8 | \$ a | २६५ | ज्येष्ठं पुत्रमपमज्य भूमि- | | | |
| ४०६ | छर्चाविष्टः पयः पीत्वोदकं | | | | | शुद्रवर्जे योगाविशेषास्तः | | | |
| | वा छर्देयीत निष्ठयूतवद्धीमः | 39 | 99 | 38 | | वंषाम् ू | *4 | 8 | ξo |
| 239 | छागोस्नामेषाः पद्यभिधा- | Sin | | | 300 | ज्यष्ठस्य ज्याष्ठनेयस्य | | | |
| | नाचथालिङ्गम् | २० | w | १९ | | विष्ठवान् | ₹₿ | 8 | 86 |
| २८९ | | २२ | A. T. A. | | | ज्येष्ठाश्चतुर्थेन 🌎 | २२ | 8 | Ę |
| . 4 63 | छान्दोग्ये विशेषो यथा- | | | | | ज्योति: | २२ | 8 | 8 |
| | कासम् | 44 | 4 | ę | ३१५ | ज्योतिगीर्भहावतं गौरायुः | 83 | 8 | 30 |
| | | | | | २७१ | ज्योतिर्विद्यज्योतिः सर्व- | | | |
| 860 | जगतीश्र पश्चादयमिहेति | १७ | १२ | 4 | | ज्योतिस्त्रिरात्रसम्मितः | 33 | ą | 6 |
| | का० ६२ | | 1.77 | | | | | | 24 /4 24 / 1 |

| দূ ০ নুরা णি | स ३ | कः | सु० | पुठ | सुत्राणि | क्ष | 悪っ | ون |
|---|--------------|-----|--------------|---------|--|---------------------|------------------|-----------------|
| १ ज्योतिष्टोमधर्मा एकाहद्व | i. | | | 309 | तत्राम्नानाद्तिरात्रांश्चेक | 23 | Ş | ัง |
| द्शाहयो:० | 93 | १ | ₹. | 386 | तन्नैव प्रायणीयोऽतिरात्रः | | | |
| ३०७ ज्योतिष्टोम्विश्वजितित्रृवृ | ₹ Ч • | | | | तथा पुच्छं वितस्त्या | | | |
| ब्बदशसप्तदशैकवि/शा० | २ 3 | ۶ | १९ | | तदनते केशवपनीयोऽतिर | | | |
| ३६० ज्योतिष्टोमाश्रत्वारोऽमि | | | | | पौर्णमासीसुत्यः | | | 98 |
| जित्तैः षण्मासान | | 130 | \$ | 90 | तदन्ते चमसानुन्नीय स्तो | | | |
| ३० ज्योतिष्टोमेन वा | १४ | ł | 3 | | श्रोपाकरण्यु सन्धेः | | 6 | 8 |
| ३५२ ज्योतिष्टोमो वा सर्वेषाम | | | | | तदन्ते पशुरिन्डाय वयोधर | | | |
| २९० ज्योतिष्टोमः शुनासीरीय | | | | | तदन्ते पूर्णाहुतिगृहेचिन | | | |
| स्था ने | | | δö | | चळनो वस्त्रक्षिणा | 96 | 9 | 6 |
| . | | | | , | च्छतो वरदक्षिणा सदहदीक्षा सदेव दक्षिणा सदेव दस्ता | | , . 0 | 20 |
| १६९ त एव वा प्रभुत्वात् | 33 | * | 20 | 200 | च्येत्र शिक्षात | 17 | 6a | `. |
| ८ त एवोण्नेतुः | 83 | • • | * . | 1 202 | 2017 STORY | 30 | | `.` |
| ४१९ तं निकामयमानोऽस्यति | | | | 277 | त्तर्व दूरवा तदेवं स्त्रियते |) o | ** | ٠٠ ٤ |
| च्येत इति श्रुतेः | | | 919 | | ार्च ।श्रम्यः तद्गुणाभावे सर्वेषामैकदे | 化电子 医肾上腺 | • | |
| २१४ तं बधानेति ब्रह्मानुज्ञातो | | 2.5 | 48 F/F | | | | 3 | 73 |
| भिवा ससीति बध्नात्य | | | | 329 | शोऽपि तद्गृहपतेः तददीक्षो भवति | | . 8 | |
| त्रिरूपम् | | | . Deliving t | E.G | तद्दीक्षो भवति | | ્ય | |
| ४४३ त(स ेउत्तरतः शाला | या | 26 | | | तद्देशे वासः | O PERMIT | ₹ 3 | |
| उद्भवं निरस्यति | a 8 | . 8 | 98 | 9.3 | तद्द्रव्याणां वा | A THE STATE OF | | |
| २२६ तचमसाननुहोममक्षौ | | | | | तद्वावेऽपृद्धिनम् | A 19 Cont. 1 (1997) | à 2 | |
| ३९६ तत एवं हरणम | 29 | e | 90 | 902 | . तदब्रतश्चतेश्च | | ે ફ | |
| ३९६ तत एव हरणम् १०१ ततो द्वाम्याम् | 98 | 8 | 5,0 | 398 | तद्वतश्चतेश्व तन्त्रेण वा | 4 - 17 2 | • | - 7 7 9 9 |
| २७७ ततो नवनीतमाज्यम | 2,5 | 3 | 30 | 383 | तन्त्रेण वा समस्तवोदिः | | elisti. Katik | |
| २७७ ततो नवनीतमाज्यम् २७० ततो ब्रह्मणे | 53 | 3 | ેંડ્ર | | न त्वात | 28 | ષ્ઠ | 30 |
| 👐 ततो सृदिष्टकार्थापश्च | 96 | ş | २० | 1 | 6363 | | | |
| ४१९ ततः सम्बयनादि | 29 | 93 | 88 | | तमामताऽाग्नष्टामाव- निरुक्तौ तमुद्रात्रे ददाति | ~ 8 | ą | 90 |
| ४१ ९ त तः सञ्चयनादि ३८१ तत्प्रतिनिधिः | ३६ | ę | 8 | २७१ | तसदात्रे ददावि | 22 | २ | 8 \$ |
| ४२४ तत्र तद्दधाधतपूर्वस्मिन् | | | | 00 | तम्मयत् एक । त्रष्टामज्या | | | |
| स्यन्तस्यातसत्रेऽप्यविशेषा | त्रद | 98 | 39 | | तिष्टोमौ | १५ | 8 | २१ |
| ९ तत्र दीक्षा ४ तत्र प्राजापत्यः पद्यः | १३ | . 8 | 2 9 | 338 | तयोः पश्चारखरौ करोवि | 99 | ą | 3 |
| ४ तत्र प्राजापत्यः पशुः | १३ | 8 | 26 | 393 | तयोइचेद्समासयोरागच्छेर | | | • |
| १२३ तत्र खुगुपधानं प्राच्योः | १७ | 8 | 88 | | यजनीयकाळस्तुमुपेत्य० | The second second | E | २ ६ |
| ८ तत्रातिपाद्यप्रहणं त्र्यहे | | AP. | | | तस्माच योभावात् | | Ę | 10000 |
| पुर्वेडग्नेट | १२ | ż | | | तस्माद्गिनष्टोमावनिरुक्तौ | | 3 | 4 (10) 19 |
| ११ तत्राप्यशनम् | १२ | | | | तस्मिन्नास्ते यजमानो नि | | | |
| १७१ तत्राभिषिच्यते ब्रह्मवच्चे | | | | | सादेति | 86 | ន | 8 |
| सकामश्चित्यन्वारब्धो देव | | | | 330 | सादेति वास्मन्जुपसत्सु सर्विविपचे | • | | Panya Ausabi |
| स्य स्वेति | १८ | ٩ | 9 | | युर्गाहं पत्ये ० | 48 | à | \$ |

| ए० स्त्राणि | अ |) ক | हे सु ० | 70 | सुत्राणि | अ० | क० | स्० |
|--|-----------|----------------|----------------|-------|--|--------------|-----|-------------|
| १०६ तस्मिन पाशं प्रतिमुच्य | , | . Ē | | | ० तावन्तोऽरनीषोमीयाः | | | |
| पूर्वार्धे च० | 98 | ć | . e | | तिरद्रच्याबेके | | | 88 |
| १०७ तस्मिन्याशं प्रतिसुच्य प | वं | | | | तिरोऽह्मयादि करोति प्र | | | |
| चार्थपुरुषीये | | | १६ | | | | 3 | 36 |
| ८३ तस्मिन्युव्करपर्णमयी प्रष्ठ- | | | | ११६ | स्थाहः तियंगन्के | ę 19 | 5 | 88 |
| मिति | १६ | ર | ₹. | 360 | तिर्यंड्नद्रमुण्णीषं प्रतोद | ः २२ | 8 | 88 |
| २०७ तस्मिन्प्रणवान्तं चैके | 88 | . 8 | 38 | | तिष्टन्त्सिमधः सवत्र मध | | | |
| १२१ तस्मिन्स्क्ममधः पिण्डं व | | | | | तिष्ठन्बुभुषुः | | | |
| जज्ञार्नामित | ون | 8 | } | | तिष्टेत्सन्धिर्वकयोः २५ | | | |
| ११७ तस्मिन्सर्वीषधमावपत्येक | | | | | विख्यु पराध्य सार्थराज्ञीषु | | | |
| वजॅमभोजनं० | १७ | | Ę | ११२ | तिस्षु लोकम्प्रणास् मन | त्रे | | |
| ३७८ तस्य तण्डुलापनयो वचः | | | | | दशसु च | 20 | 8 | 2 % |
| वात् | 26 | 8 | 83 | 283 | दशसु च तिस्र उपसदः तिस्र एकः | . ૨૨ | ૮ | १३ |
| नात् ४२४ तस्य त्वक्कः पुनराहारः | 39 | 88 | 58 | 60 | तिस्र एके | १६ | g | ٠, |
| ४०९ तस्य अक्षणं मा यजमानं | | | | | तिस्रः परन्योऽसिपथाकल | | | |
| | | 35 | 4 | | न्त्यसस्य० | 1986 41 41 4 | 19 | 8 |
| २८० तस्य सक्षमनुसक्षयन्त आ | | | | 88 | तिस्रस्तिसो दक्षिणा दद | | | |
| सीरन | | 8 | 100 | | शतमानानि॰ किन्दिन्यः | | vs. | 38 |
| ३२० तस्यादितः पञ्च पञ्चाहार्थे | | 8 | C | २६७ | तिस्रस्तिसः | ૨ ૨ | | 38 |
| १६६ तस्यामिम निद्धाति सुप | | | | | तिस्रोऽनुबन्ध्या मैत्रावः | | | |
| 'साति वषर्कारेण | १८ | 8 | 8 | | रणी 0 | १३ | 3 | 38 |
| ३५१ तस्यामसपुरुष्यौ घेनुके | | | | 920 | तीथॅनाश्वमारोहयत्युत्तरः | 187- | | |
| Cu | 48 | Ę | | | मपरेण | 200 | 3 | वेद |
| ३६५ तस्य पयसा जहोति | 34 | 2 | 8 | 398 | तरायणं वैशाखशक्टस्य | | | |
| ३४५ तापदिवतं दीक्षाः संवत्सर | A- | | | 1 | पञ्चम्याम् तुल्यमन्यत् | 98 | 13 | 2 |
| पसदेश्च तथा सुरयाः | 38 | Ģ | ₹ | 384 | तुल्यमन्यत् | 38 | Ģ | • |
| ३६० तापाश्चतावकल्पाः | 38 | w | 86 | 60 | तुल्यमन्यत्सर्वेषु | 28 | 8 | ४६ |
| १३५ तापाश्रते मासशश्चितिपुरी | Ì | r yfg Syndo | | | तुल्यमाध्वर्यवमतिराश्रेषु | | | |
| चतस्रणाम् | | J | १९ | | विषजिद्वर्जम् | 2.5 | Ę | 38 |
| ५६ ताज्ये परिधापयति | १५ | ٩ | Ę | ६७ | तुल्याः संख्यायोगात् | १५ | | |
| ५६ तार्प्यप्रमृतीनि क्षत्रस्यात | | | | | त्र्व्णां गमेधुकाः | २६ | 200 | a rigger |
| प्रतिमन्त्रम् | १६ | ٩ | 83 | 886 | तुष्णीं तिस्नस्तिसः प्रद | | | |
| ५५५ तास्यः षट | १७ | 20 | 3 | | क्षिणम् | 5,00 | ą | 94 |
| १४२ ताम्यः षद् ४४० ताम्यां महावीरं प्रतिगृह्णां | त | | | | तुर्जी विश्वनादीनां करण | | | |
| द्यावापृथिवीम्थां त्वा परि | | | | 027 | भिमर्शनक्ष्यणनधूपनप्रद | | | |
| गृह्णामीति | 28 | 4 | 29 | | नोद्धरणावसेचनानि | લ- `₹ફ | • | 26 |
| १६० तावत्त्रतिप र्वे ति | १८ | Ç.L | , | . 36. | तृष्णीमन्यः क्रम्भमाक्ष्णी | | • | 7 ** |
| १६० तावद्यावप्याव ६० तावद् मुयो वा गोस्वामिने | | | 1 | 773 | 그는 있으면 하고 하는 것 같아요. 그는 사람들은 경우를 가면 없다면 없었다. | .w | v | 5 |
| द० धावर् ग्रेना ना ग्राप्तामः | | E | 33 | 36 | तुद्धाना उपना गर्छ । तुद्धाना अपना गर्छ । | े १ १३ | | ्ष २१ |
| द्स्वा पूर्वेण यूर्प० | 24 | 9 | 33 | 17 | P. 1144. A. 44 | 7.4 | | ٦٢. |

कात्यायनश्रीत्रस्त्राणाम् —

| _र े स्त्राणि | ঞ ৰ | 0 ₹ | To | ão | सूत्राणि | 310 | क० |
|---|--------------|----------------|------------|------------|---|-----------------|------------|
| ०० तच्छोसितराच | 88 | 8 | 50 | • | तिमानाश्च तावतः | 40 | ₹ |
| | m. | j Mi | | २८० ह | ोषां यो नृश्यक्षत्तमः स्य | द | |
| े मपास्तमय}॰ | ংৰ | Ę | ٤ | | द्रव्यवत्तमो ब्राउनुचान्त | | |
| २७० ततीय उ व ध्यः | 44 | ₹ | ঙ | | वा तस्य गाईपते दीक्षेर | | |
| १६ तृगाहरूकः स्तानासः सुपास्तसयः २७० तृतीय उदश्यः ९ तृतीय औपवाजनैः | ૃષ્ | ą | 8 | | तेषा 🖖 सनं प्रतिमुखते | | |
| २२६ ततीयं ततीयमन्बह ददा | ICI | Ü., | | ३१० | तेषाॐ होमः | २३ | ą |
| अधिवश्ववाह्य ग्रह्ववज | स् ५२ | 8 | 96 | 834 | तेषु महावीरमाज्यवन्त | | |
| ्र गनानां ग्रह्ये | 96 | 2 | 38 | | र्माचरसीति | २६ | 3 |
| ५०६ नतीयः पद्मकामस्य | २३ | ٩ | Ø | 850 | तेषूपहविमध्द्वाग्नी स | } • | |
| २२६ ततीयसवनउक्ष्य गृहा | त्व। | | | | ग जे न | 26 | ۶٤ |
| े SSिनमास्तकाले श्रेधं | [q • | ysiii i Saa | | 385 | तेष्वतिरात्रविश्वनतः । न वा | स्युव ि | |
| ਜਵਾਜਿ | ર ૦ | 8 | २९ | | नवा | ્રેશ્ | ¢ |
| च्याग्यसमञ्जेद्धारिय | जिन- | | | 1865 | तेष्वेव मृज्ञाना यन्ती श्रुतेः | đ | |
| स्त्रजीवहोम: | - 39 | 83 | 86 | | श्रुतः | ঽঽ | |
| =भेगवनगरचेटिणाः | : १श- | | 100 5 | | तेब्वेबोन्नयनम् अभ्यमि | | |
| लिविद्यवर्ताच गारावित | 44 | 83 | • | | सोमानुस्रयन्ति इति श् | કુલક વ ય | |
| २६० नतीयसवने च हतेषु ही | विःखु २१ | 3 | . 6 | 1 856 | तोक्रमचूर्णानि च | ₹ 3.2 | • |
| २९६ तृतीयसवने दृष्टना, द्रा | अणा | | | 6 8 | तो ब्रह्मणे दत्त्वोर्गसी | | |
| वस्यतराः ष्ट्यवर्षाः १ | | | | 1 | बा खासुपस्युवावि | \ \ \ m=1 | |
| ६ नयः | . ૧૨ | \$ | 83 | 858 | तौरश्रावसे साध्यन्दिने साने तदावपनश्रुतेः | 1 49° | 2.1 |
| १३९ वृतीयाया 🖒 स्वयमात् | goll. | | | | मान तदावपगश्चतः स्रयः पर्यायाश्चामसैश्रनु | rr meren | ς, |
| मिन्द्राग्नी इति मध्ये | Ś.a | 8 | \$ | \$ 00 | ्रत्रयः पद्मायात्र्यामसम्बद्ध पर्यायः | | |
| ३२७ ततीये त्रयस्तायः पञ्च | गहा | | | | | | |
| Configuration: | #8 | 3 | 33 | | त्रयःस्वरसामानोऽरिन उक्थ्या वा | 11913 | |
| ३१५ तृतीये त्रिभ्यस्त्रिकहुः | हाः ३३ | Ģ | 8 | | उक्थ्या व। | (₹ | |
| २९० तृतीये बुबुहोऽतिरात्र | | | | 348 | ्र श्रयस्त्रायः स्वरसामाः | น จบ | |
| उत्तमः े | ३२ | ď |) (| | त्रयस्त्रायः स्वरसामार विधुवन्तमभितः त्रयस्त्रयोऽभितः | 30 | |
| २८० तृतीयेन कनिष्ठाः | वर | 8 | 3 9 | | ्त्रयस्त्रयाशमतः : त्रयस्त्रि(हो वसाप्रहं गृह | शित | |
| १४७ तृतीये न कां चन | १८ | Ę | 30 | 822 | ्त्रयाख्यक्षा वसाम्बद्धाः यो भूतानामिति | 96 | ì |
| २९४ तृतीयेन तृतीयायाम् | ર ર | 6 | 36 | | न्। न्द्रतामानाव त्रयस्त्रिश्वतं त्रयस्त्रिश् | 57 | |
| ३०८ तृतीयेन स्वर्गकामः प | 11 - | | | L | त्रवास्त्रकृतः दक्षिणा दशुः | 32 32 | |
| | . 23 | | | | दाक्षणा द्युः त्रयस्त्रिश्चातं दक्षिणा | aar `` | |
| ३५४ तृतीये यज्ञनीययोरहोर | भाज- | | | 144 | जनारुज्ञात दावागाः स्टब्स्टिस् च जनच्येज | ्र ०० पुरुष् | |
| द्विष्ठजिती | 48 | Ę | 38 | 2010 | त्यनुशिक्षं च वडवधेनुः | 4 () ac m | ं र |
| ाद्वधानसः २८४ तेजोब्रह्मवर्धसपुरोधाकः बृहस्पतिसवः | ामस्य | | | 2 40 | जनास्त्रश्रहात्राण त्राः क्रमेन्द्रगतिगस्यः | -≀ `` & ⊃a | |
| बृहस्पातसवः | ₹₹ | * | 11 | 200 | अनादुसारासानाः | | • • |
| बृहस्पातस्यः ३११ तेन यक्ष्यमाणः पञ्चवष इवयुजीशुक्लेषु० | ।।५४१- | | | 1,42 | जना द्वा हात सस्त्रा च्योक्रि | . 00 | |
| इबयुजोशु क् षु ० | 13 | 8 | 8 | | ਭਗਾਰ ਅਮੇਰਿਕਿਰਿਕਤ ਸਭਿ | (5 81. | |
| ६वयुजासुरूखुः २११ तेभ्यक्षस्त्रारि सहस्राणि | । दद्गात | | | १ ईश्रप्ट | जपाविद्यातसञ्ज्ञ भारा | Ø!" | |

श्रकारादिवर्णानुक्रमणिका ।

| ara ara esa esa esa esa esa esa esa esa esa es | ० स्त्राणि अ० क० स्० | |
|--|---|------|
| पृत सुत्राणि अव्यक्त सुत्र प्र कामानां पशुकामानां वा २४ ४१४ | ७ सूत्राणि क्ष०क०स्० ४८ त्रिषंयुक्तेषु १९ २ ८ | |
| | ४६ त्रिपंवरसरां षष्टिदीक्षम् २४ ५ १२ | |
| DOM INICIPATION OF THE PROPERTY OF THE PROPERT | ३१० त्रिष्टुण्छन्दसो जगच्छन्दस | |
| द्वात '' | इति बथासवनम् २५ १२ ७ | |
| | ४२२ त्रिष्टुमे जगत्या इत्युत्तरयोः | te f |
| 3.2 N: HAC ALCAL | सवनयोः २५ १४ १७ | |
| शालामपरेणोत्तरेणः १३ ३ १३ ३४६ त्रिकद्रकैवां २४ ५ ५ | सवनयोः २५ १४ १७ १३५ त्रिसादस्यसमा १७ ७ २४ | |
| | रे६ क्रिस्त्रिर्वा १३ ३ २५ | |
| | २६१ श्रीस्त्रीनावपम्त्यदमनः २१ ४ २२ | |
| Acceptable and the second seco | ३५१ त्रीण्येषा असम्युत्याना | |
| ११३ त्रिवितमेक | न्यतिराष्ट्रेः २४ ६ १९ | |
| २५२ त्रिणवत्रयस्त्रिक्षो उक्य्यौर१ २ ११ | ११६ श्रीन्ह्रष्टाङ्कष्टयोः १७ ३ ४ | |
| ७१ त्रिपञ्चः पञ्चबन्धः ववश्चतुः | ३७९ श्रीषुकं घनुदेक्षिणा २५ ४ ४७ | |
| व्योम् | २४९ प्रेधातव्यन्ते समारोद्यात्मः | |
| हर्गाम् १९१० १ १९२ त्रिपक्षोः सर्वम् १९३ १९ ९६ त्रिपाणं वा १९ ५ ६ | २४९ अधातव्यन्त तनाराकारः। न्नानीसूर्यमुगस्यायाद्वयः० २१ १ १७ | |
| १६ क्रिपार्ण वा ू १६ ५ ६ | चेत्रासुवसुवस्यावास्त्राच १६ १० ३४ | |
| - अप सिक्योर्डातराज्ञा विद्याजित्रे ४ २० | ७३ त्रेश्वातच्यानुपूर्व्ययोगात १५ १० २४ | |
| ४७ त्रियुक्तोऽववस्यो दक्षिणा १६ १ रर | ६३ श्रेषातन्युदवसानीया ऐन्द्राः | |
| कियाने वेकादांशांव- | वैष्णवो हादस्रकपालो ब्रीहि॰ | |
| खिङात ^{१६ १०} " | यवाणाम् १६ ७ २८ | A, T |
| १३ ह त्रिरवर्वं परिणोधोपास्तमर्थ | २८ श्रेघातन्युदवसानीया सर्वत्र १३ १३ ३३ | |
| | | ŧ. |
| पर्वेति १७ ७ ९ | १५९ ज्यनुवाकान्ते स्वाहाकारो | |
| पञ्चबुद्धस्यसम्बद्धाः १७ ७ ६ पर्वति १७ ७ ६ १८४ त्रिरात्रं निद्धाति १९ १ २२ | जानुमाने १८ १ व | τ. |
| ००६ विगत्रान्तं गास्त्रासभणाः | ३२७ त्रयमिण्लवसमिण्लवान्तरयीः | |
| तकेत हनापांयत्वा० २९ ११ १९ | र्शतराजी १४ २ ३ | |
| ace विग्रहतो दक्षिणाग्निरनुग- | ४८ ज्यम्बक्रविद्यानी १६ २ । ३०८ ज्यहाः पद्ध २३ २ । ३२० ज्यहार्थे ज्योतिर्मीरायुरिति | 3 |
| च्छेच्चेदनाहरणमस्य त- | ३०८ त्रवहाः पद्म | Ç. |
| | ३२० ज्यहार्थे ज्यातिमारायुर्गत | |
| .a. किस्काग्रासद्वपूर्वा' चिति। | I CHONG CONTA | 3 |
| हत्वा पुच्छाइक्षिणां निद- | १३४ त्र्युपसन्के हे प्रथमायां तिस्रो | |
| भावि , १७३२१ | सम्बसायाम् १७७ | * |
| " oca विक्रकायामधस्योद्दर्वति १८ १ वर् | १३० त्वं यविष्टेति चित्याप- | |
| ३६८ त्रिरुद्धतश्रेदाहवनीयोऽनुग- | १३० त्वं वृत्तिष्ठेति चित्योपः स्थानम् १७ ६ | ₹ |
| =लेह्टबस्धानास्यपालिष्य०२५ २ २ | AC COEMIGNAMEDIA. | |
| Lan ferresserate | प्रभासाति १६ १ | ₹° |
| , _{जिन्ना मञ्जयोक्त्रेणीपनद्यात} | ३६३ त्वद्रो सान होत होस्यामः | |
| | याश्चारनेऽस्यनीमशस्तिः | 66 |
| वासा जन्म राज ४१८ त्रिबृद्बहिष्पत्रमानेन वा २५ १३ ३९ | ursio 5% \$ | ζζ. |
| ४१८ त्रिवेदसंयोगाच्य २५ १४ ३ ^७ ४२९ त्रिवेदसंयोगाच्य | ४३८ स्वष्ट्रमन्त इत्वेनां वाचयति | |
| प्रश्त (अवदेशनाना , , , , , , , , , , , , , , , , , , | | |

| go | स्त्राणि | झः | - 5 50 | स्० | ão | सूत्राणि | अ |) ক্র | · Go |
|--------------------|------------------------------|----------------|---------------|-----------------|---------------------------|--|----------------------|-------------------|------------|
| | सहावारमाक्षमाणाम् | े ३ ह | 8 | १३ | | सहस्रम् | | | 9 |
| 368 | त्वा मनसानार्चेन वाचा | नक्ष | TT. | | 300 | दक्षिणा गायत्रो चतुर्वि | | | |
| | श्रय्या विद्यया० | २५ | | Ę | | षातिवर्गा यथाशक्ति | २३ | १० | ર છ |
| 800 | त्वाष्ट्रं बहुरूपमास्रभेत | 36 | 80 | 8 | 303 | दक्षिणा गायत्रीसम्पन्ना | | | |
| ४५३ | त्विषः संबृगिति, महा | | | | ` ` | त्राह्मणस्य | 22 | 99 | 96 |
| | व्रतीये | ३६ | ৩ | 39 | 382 | . दक्षिणाग्नावध्वर्यवेभुवः | र्तते र | ``\ 6 9 | 8 |
| | | | | | | दक्षिणाभिक्षचेद्गाईपत्ये | | | |
| 308 | दक्षिण ऋषभसहस्रं द्वाद | | | | | व्यान उदानमप्यगादिति | | 90 | 96 |
| | वा शतम् | २३ | 88 | | 298 | दक्षिणारनौ जुहोति हिड्ड | | • | |
| | दक्षिणं युनक्ति वातो वेति | | | 10 miles (1970) | 1 | राय स्वाहेति प्रक्रमान् | 2 o | ą | ą |
| | दक्षिणत उत्तरतः पश्चात् | 10 | 6 | 3 8 | | | | 1 . 2 . 1 | 1100000 |
| २६१ | दक्षिणतः कुटिले कप् | | | | 458 | दक्षिणा चतुर्विदेशहं शतः | ત્ર્ય | ₹\$ | 58 |
| | खात्वा क्षीरोद्काभ्यां | | | | 426 | दक्षिणा द्वादशमिश्रुना पु | | | |
| | दक्षिणतः प्राचीम् | | | | | र्वतां च यथाशक्ति | | ۲. | 80 |
| | दक्षिणतः सन्धि करोति | | | | ६० | दक्षिणापथेन बास्त्रा परेष | and the state of the | | |
| | दक्षिणत्रश्च प्राची सुगपत् | | 3 | 85 | 150 | चात्वाळहं स्थापवति | 84 | , Q | १६ |
| २१८ | दक्षिणतो वेदेहिरणमयेषुव | 2000 | | | १३६ | दक्षिणा पूर्वेण दक्षिणाप्रवणम् | ₹. | . 6 | ₹ |
| | विशन्ति | ٩o | Ą | १८ | 5/03 | दक्षिणाप्रवणम् | २२ | 3 | Ę |
| | विशान्त दक्षिणधुर्वसमम् | | | | | दक्षिणाप्रष्टि जबी यस्त | | | |
| २५५ | दक्षिणप्रदण एके | 38 | 3 | 6/2 | | इ ति ् | 88 | à | 4 |
| २६८ | दक्षिणमभिजितः | २२ | १ | 35 | १४३ | दक्षिणामपरयोधेरण एक विदेश इति | | | |
| 98 | दक्षिणमभिषेचनीयस्य | १६ | ą | 33 | | विश्व इति | | 80 | /D |
| १४५ | दक्षिणयोरस्त्न्यन्तरम् | १७ | 28 | ₹ | 53.00 | दक्षिणामपरेण | 80 | 6 | • |
| ३९१ | दक्षिणहस्ते जुहू 😗 साद | | | | | दक्षिणासुत्तरयोर्व्योमा | | | |
| | ति घृतपर्णाम् | 36 | ঙ | 9 9 | | सप्तद्भा इति | | १၀ | • |
| £8\$ | दक्षिणां दक्षिणयोभीन्तः | | | | 235 | दक्षिणासुत्तरेण पञ्चमी | १७ | દ | ٤ . |
| | पबद्श इति | 80 | 80 | Ł | २६८ | दक्षिणा शाखां निरस्य | | | |
| \$8\$ | दक्षिणां पूर्वयोसने सीग | | | | | परिश्रिज्ञिः परिश्रयति- | | | |
| | g la | 80 | 80 | 88 | | पूर्ववदपरिमिताभिः | 129 | 3 | 3.3 |
| १५४ | दक्षिणा ऐसात्प्रत्यगर- | | | | | दक्षिणाओं गेरपि लोकम्पूष | | | `` |
| | त्विमात्राद्धि लोकन्छ- | | \$2 | | | | | ٤: |) G |
| | णाः पूर्ववत् | 5 æ | १२ | રફ | 2 6 2 | पूर्वेवत् दक्षिणाखाश्रश्रनुयुक् इया : | | Ţ | |
| 96 | दक्षिणाकाले कण्टकरेना | | | | | वोऽन्यतमः | | | |
| | | २ ३ | 3 | 22 | 3 (200) | दक्षिणाऽद्यवस्थश्चनुर्युगुः | | | |
| | रक्षिणा का ले मुख्णा- | | | | | भवतः भवतः | २२ ६ | اور اورا | 5 |
| | ~ | १२ | ٦ (| 10 | | ः दक्षिणेन चर्मयन्ति त्रिबिन | | | |
| | [क्षिणाकाळेऽध्वर्थवे | | | 24 | | [ध्वा० | 92 | \$? | y |
| 19 5 B B B B B B B | | १८ | Ę | 8 | arish sk | - 프레이트 함께 되는 이 이 그는 그 그리고 중에 살았는데 이 | 7.4 | * (| |
| | ्रिणाकाले सर्वे स्थः | • | | | the state of the state of | (क्षिणेन चात्वाळमावर्त्त- | | | |
| | | | | | य | ।ति∌ , | \$8 | 3 | ٩ |

| 오늘 살림은 아내는 하네. | | | अ क॰ सू॰ |
|--|----------------------|--|--|
| ए० स्त्राणि ुअ | ८ का सु | प्रः सूत्राणि | The state of the s |
| _{3२} दक्षिणेन प्रवेश्य दक्षिणाञ्ची० | 68 6 3 a | शालाप्रवेशनम् | 22 G |
| १८३ दक्षिणेन हत्वा नमहुच्यां | | | १२ ४ ५ २१ २ २ |
| नि कुत्वा तांश्र बीहिन्या | | २५० दशरात्रः ३३८ दशरात्रस्य छन्दोमदशाह | |
| साकौदनयोः पृथगा | | 19C CHINEM BIRLIA | २३ ५ १८ |
| चामौ॰ | ९ १३० | ३१६ दशरात्राश्चत्वारः ४१८ दशरात्रोऽसत्रोत्थानः | 33 4 38 |
| १६२ दक्षिणे निकक्षे प्रजापति | | ६५ दशोत्तराणि संस्पाहवीं | fa Ì |
| हृद् यस् | 6 3 6 | ६५ दशाचराज करण्यायनक निवैपति | १५ ८ १ |
| 6.4 1 2 4 | 6 3 3 | १२४ दानं प्रायश्चित्तसंयोगात | |
| १०७ दक्षिणे पाइनी पूर्वव- | | २८१ दामतूषाणि बल्कान्ता | fa |
| | १६ ८ १४ | १८१ दामतूषाण पर्ना-सा हिस्हान्याविकानि | |
| १९१ दक्षिणोत्तरावैन्द्रवायोधः | | ाहुन्दुडान्याविकारः ० ३ ३ | |
| | १९३७ | २८० दामनी हे हे | |
| १६८ दक्षिणोत्तर द्वयजन | ३३ १३५ | ३५४ दार्षद्वतमृत्विगाचार्थयो | m 20 5 83 |
| ३६४ दण्डेन वानुपिष्योत्थाप्य | | तरस्य गा रक्षेत्संवत्सर | 14 4 4 4 . |
| दोहनस् | २६ ११६ | ३०५ दाशराजिकाण्यहानि इ | |
| ् ९० दण्डोच्छ्यणान्तं सत्वाध्यः | I· | हादिष्वेकोचयेन तद्गु | |
| यज्ञमानयोरन्यतर० | १६ ४ ३१ | र्शनात् —————— र | |
| यजमानयारन्यवर० ३७९ दण्डो वा | २६ ४ ४८ | २५७ दिवस्त्रक्ति पुरुषमान्नं वि | 20 3 20 |
| १६२ दिधि मधु वृतं पात्र्या 🗘 | | मीते | - २१ ३ २७ |
| समातिच्य स्थाल्यां वा | | ४४२ दिविधा इति न्निस्तक | ~~. ~ २६ ६ ९ |
| महामुख्यां वा महा- | | ववि 🗎 | 58 8 60 |
| मुख्यां ० | 86 3 80 | ८८ दिवैव प्रदहनोद्धरणे | (G 0 (- (G=1) |
| ३७७ द्धि हविरातञ्चनं निदः | | ९३ दिशो बीक्षते दिशोऽनु | oc 8 80 Ideba. |
| े ध्यात् | २५ ४ ३८ | 7.4174 | १६ ५ १४ |
| ३ दर्शनाच | १२ १ ११ | | (१साव २५ १३ ४३ |
| | २५ ८ २० | ~ ~ ~ · · · · · · · · · · · · · · · · · | द्वादश- |
| ० ट्राने वचनात | १२ १ १ | मानं ददाति | ેં રર ૯ ૧ |
| ४०० दशने स्थार्खी चौवोष्णो | 4 | ~ | (01 28 9 2 |
| चोपकल्पचितवे घूयात् | २६ १० | • 1 | raio ૧૨ ૧૨૨ |
| ३५४ दर्शपूर्णमासान्तं वा | २४ ६ ३ ९ | The property of the same of th | ति १२ २ १० |
| २०१ दर्शपूर्णमासाभ्यां मास | म् २४ ४ २ | १०५ दोक्षाणामुत्तमेऽहनि | वेद्यरिन- |
| १३६ दशगणाधिका भित्वोल | 5 ₹ | (०५ दावागासुगारू | १६ ७ २८ |
| र अधीत | \$0.03 | I Make Colored on James Johnson | क्रेयते २२ ३ २६ |
| २९ दशदशाऽभेदेन दक्षिणा | | The second of th | ।क्षान् २२ ६ ३ |
| GUIT | १३ ३ ४ | े । ७ दीक्षा द्वादशोपसद् | । १२ २ १४ |
| ६७ द्या द्शैकें चमसमतु | | ३३० शिक्षा हादशोपसद्ध | I २० ४ १३ |
| मंश्रूपन्ति | ्रद ८ १ | ੇ | ध्यात् २०३ ९ |
| १३३ दशभिनो ् | TERRITOR TRANSPORTER | A | ामावा- |
| २२५ दशमं विश्वो देवस्यात | 30 8 t | (८) ८५ दोस्ता स्मेनेष्ट्वा | ્રફ પ્રસ્ય |
| ११ दशमेऽपराह्नेऽप उपस्य | इय | 1 21,1,25, | |

| ão . | सुत्राणि | 310 | कु० | सु० | do | सुत्राणि | 370 | ক্ষত | सु० |
|------------------|---|------------|----------|-------------|--|--|---------------|----------------|------------|
| ६९० | दीक्षावत्पावयतोऽन्तः पा | त्ये | | | | यथा तुपूर्व्यकरणम् | 39 | Ģ | 20 |
| | इयेनपत्राभ्यां या व्या- | | | in. | 388 | देव त्वष्टः सुरेताधा अध | | | |
| | इयेनपत्राभ्यां या व्या- व्यक्तित | 28 | 3 | 3 .0 | | हिमन्यज्ञे यजमानायैधोः | | | |
| 264 | दीक्षासु चापदेशात् | २ २ | ₹ | १४ | A 10 10 10 10 10 10 10 10 10 10 10 10 10 | न्दाय० | | | ? } |
| | दीक्षासु महावीरान्त्सः | | • | | 380 | देव घातः सुघाताचास्मि | • | | |
| | म्मार्ति | ₹5 | 9 | 9 | | न्यज्ञे ० | २ ३ | 3 | J |
| €3 | दीक्षितवसमं च प्रास्यति | | 1.00 | 1-1-1 | 6.6 | देवयजनान्तरमेकेनोत्स- | | | |
| 100 | दीक्षितवसननिवृत्तिर्विरो | | | | | | १६ | e | |
| | न्माहेन्द्रादी वा पुनः० | | Ģ | 88 | | देव विष्ठा उर्वद्यास्मिन्यः | | | |
| 294 | दीक्षितश्चेदुपतप्येतोप्या | | | | 1,3 | यज्ञमानायाधिः | | a | v |
| | येनेच्छेचेन चिकित्सेत् | | 93 | ₹ 5 | 320 | देव सवितः सुसावित्रमध | | | |
| yay | दोक्षितानां चेत्साम्युत्थ | 1 10 20 10 | * 3 | | 1 47- | न्यज्ञे० | 33 | 3 | Ę |
| | जायेत सोमं विभन्यः | | 99 | • | | देवसविवरिति जुहोति य | `* **** | * | ٠,٠٠٠ |
| ¥6 % | दीक्षितोऽमनोज्ञः, स्वप्नं | | | • | 1 21 | रवरायवाराव <u>श्र</u> ात न स्वादिष्ठ | | | 66 |
| | हृद्द्वा जपेत्परयावसं | 建压缩 医多种性病 | 99 | 20 | | 하이는 보다 하네요. 한번 경비 등이 살아 살아 내가 되었다면 하네요. 그 사람 | 蒙克斯氏征 | Market | 7310 - 20 |
| 3 63 | दीक्षोपसदी द्वादम | | 1 / 12 | 9 9 | A. 351 14 1 | देवसहबी अपि निर्वपति | 100 | 4 | 85 |
| | दीयमानं न प्रत्याचक्षीत | | | | ३१० | देव सोम रेतोघा अद्यासि | | | |
| Burney Committee | दीवेप्रयुक्तेषु वा पुरुषाः | | | | | न्यज्ञे यजमानायधीन्द्राय | | | |
| | 선생님은 선생님은 그렇지 않는 것 같아. 그는 그들은 것이 그렇게 된다는데 | 5/0 | 2 | 30 | 26 | देवस्त्वेत्युखाम् | १६ | 8 | १९ |
| 295 | ्र दीवंत्र्याचिष्रामकासप्रजा | | | | | देवस्य त्वेति जहोति | | ? | Ę |
| | सक्छुकामानां वा | | ę | 94 | 836 | देवस्य त्वेति श्ज्जुसन्दान | | | |
| 200 | दीर्बन्याधिप्रतिष्ठाकामा | | | | | दायेड एहीति > | 35 | 4 | 8 |
| | चकामानां द्वितीयः | | ą | १७ | 3 83 | देवस्य स्वेति रक्षनामादा | 4 | | Ni. |
| 384 | दुरस्वा बाह्यणायैनां दद्य | | | | | त्रहास्रयं सन्तस्यामीत्याह | 20 | ę | 24 |
| | मनस्यागमिष्यन्तस्यात् | | ş | ŞĢ | 68 | देवस्य त्वेत्यभ्रिमादायः | स्त | 85.5 1860 | |
| 싫다 | दुन्दुभी न्वादयन्ति े | | | | | आधायेत्येनामभिमन्त्रय ते | ११६ | 2 | e |
| 369 | दुष्टस्य हिवचोऽप्स्ववह. | | | | ४२६ | देवस्य त्वेत्यभ्रिमादायौदु | म्बर्श | | |
| | रणस् | २६ | ę | ę | | वैकडूर्ताः | ₹६ | 8 | 8 |
| 3 0 2 | हतिवातवतोरयनपूर्व पक्षेण | | | | 36 | देवस्याहमिति ब्रह्मा स्थव | | 1 13 2 14 5 | |
| 507 | षण्मासान् । | | Ų | 3 15 | | क्रमारोहत्युत्करे ० | | 3 | १२ |
| 22/ | हतिवातवतोरयनमेक्षेके न | 70 | • | 4 | 36 | देवस्याहमिति यजुर्युकमा | रो- | | |
| 447 | १ इयस्तोमेन मा सं मासम् | | <u>ي</u> | 9/ | | हति यजमानः | 88 | 3 | 96 🌲 |
| £ 49 : | ट्रबासीति प्रतिमन्त्रमादा व | | • | • | 200 | देवा आशापाळा इति रवि | à. | | |
| | | १५ | 6 | 96 | | णोऽस्यादिशत्यनुवरीजाती | | | |
| 68 | हषद्वत्यप्ययेऽपोनप्त्रि- | , , | | • 7 | | | 2 0 | ą | 60 |
| | | 2 × | 8 | Ę | 395 | देवा यावाणो मधुमती मध | A 100 F 100 | | 5.5 |
| | 나는 경기를 누워 하는 것을 살아갔다. | 100000 | ٠ ٦ | | | | ₹3 | 4 | ٤. |
| | देवतातन्त्रेण तु | Sec. 10. 1 | 9 | 5100 | | १९२१ - पश्चापायः देवानां त्वेत्युखां न्युव्जाम् | | 8 | |
| | · 보고 : | *** またいい | 8 | 2 200 | the later to the second | · 医二十二二乙烷 "我,我不会这一种情况,""不是一个"神经是不是"。 | 1 . T | 200 | 1.1 |

सकारादिवणीचुकमणिका ।

| प े सुत्राणि अ ंकः सृ | पुर सूत्राणि अ० ३० हादश वा १४ | | 1000 |
|---|--|------------|----------------------|
| ३६७ देवान्दिवमगिबति सोमे २९ २ ८ | ३० हादश वा ् १४ | | |
| ३१० देवावसिनौ मधुकशयाधेमं | 380 Eldstadat mare see | • | \$4 |
| यर्ज यजमानायः दे ३३३ | ४१ द्वादश खुवाहुती जुँहोत्या | | |
| ३८ देवीराप इति वा प्रोक्षति १४ ३ ४ | वर्धे स्वाहेति० १४ | 8 | |
| ३८१ देवय आपो नंनध्यध्वमद्याः | ३ द्वादशाहः सत्त्रमहोनश्च १२ | \$ | ٩ |
| ३११ ६०व आसा समाप्ता । स्मिन्यज्ञे० ३३ ३ ४१ | २० द्वादशाहधर्माः सत्रेषु तद्गु- | | iti Parak Ligitar |
| 그는 그들은 경우를 하게 되었다. 그리는 그 등을 하는 것 같아. | णत्ज्ञां भीत १३ | १ | 8 |
| ३११ देव्यदिते स्वादित्यमग्रास्मिः | २४६ ह्वादशाहमारनेयः पुरो- | | |
| | लाहा: ^{५०} | | ३८ |
| ३१० देव्यनुमतेश्न्वहोमं यज्ञं यज | TAR CICATION GIVE. | | 38 |
| मानाय॰ ू २३ ३ ९ | ्र १० साम्बाहिककपाः देवे | | 80 |
| ४२७ देवयो बम्यू इति वलमीक | ३३६ द्वादशाहासं वा तरप्रकृतः १४ | } { | \$8 |
| े बपाम् वपाम् | EFER HARRESTEE | | |
| ५३ देशस्यानवस्थितस्वातः १५ ४ (७ | The offer | G (| g w |
| aco टेह्याङ्ग्यत्रवाङ्गः 🤻 २ २ १ ५ | ४९ द्वादशोत्तराणि रत्नह- | | |
| ८२ हानममी हिरण्यं निर्धायाः | | ۹ : | 9 \$ |
| भेजुहोति० १५ ७ १९ ६८ ध्तान्ते वा १५ ६ | प्राण | | |
| ६८ श्वान्ते वा १५ ६ ै | ३०६ हादशापसत्का सहीना | a | ११ |
| ३३१ द्योरिति प्रत्याह ३० ५ ५ | 5 24164144410 | 3 | |
| ्र सोदन इति प्रष्ठस्योपरि | 638 Bicsildaca | 19 | ७ ११ |
| पाणि धारयञ्चार १६ २ १ | 8 24 6 74 74 74 74 | | |
| २६५ द्रव्यासावासदन्तः २२ ११ | ३ । ३२४ द्वाविश्वाता रच र । | 8 | २ १३ |
| 🤏 रुक्तेष वा सप्तदशता 🔞 🤻 🤻 | १ धकासाचाय ८०.३३ . | | 8 26 |
| २९८ दश्द्वानां प्रथमो शब्राजन्यस्य | SCS ISTAIL SCALLED | ે (૨ | પ્ર ૧ |
| अल्यकामस्य २२ १० | 9 200 Tania 97 | | |
| १९२ हृयोर्वा दशस्त्रेकस्यां च १७ ११ | | ₹3 | 4 60 |
| ३३६ साम्रिश्चाहात्रं च ^{२४} ९९ | C. C mirror | 8 | २ १५ |
| ०७ सार्टा साद्यः १३ ६ १ | ३ ११ हितीयः पश्चशारदीयः | 43 | 8 \$ |
| २१६ द्वादशकपाळाचिनवंपति | ३१६ द्वितीयप्रमृतिषडकाहाः | 4 3 | 9 8 9 |
| ित्रवाहनाज्यतमान्दः | 20.7 | 50 | & 8 |
| िक्रासम्बद्धमास्य २० २ | ३०८ द्वितीयसुक्ध्यपूर्वमेके | 23 | ર ૪ |
| नान्यानीने विपादं जहारियः | १३६ द्वितीवायामाभिनीः | | |
| ताषाहिति प्रतिस्वाहाकाः। | | 510 | 6 1 |
| राष्ट्रसतो० १८ ५ | ि केलेस्टिक के कावास | २१ | . 8 8 |
| ०४१ हादशस्योऽपरास्तु १ 🔭 🦎 | ११ १४८ द्वितीये त्रिवृतोऽतिरात्राः | | |
| _{२६७} द्वादशरात्रं परिवसत्युः | कर्ने गडवका मस्य | 83 | ₹ ₹ |
| खावरस्त्रि निमृत् ^{१२} र | ११ हितीये दुन्दुभिशन्देनो | | |
| २०e हाटसराचादोचि राष्ट्रि- | ************************************** | ęą | • |
| apartor 88 (| ि <u>८.३२ =विना</u> स्वतीः | | |
| १९ द्वादशवत्सतयो गर्भिण्यो०१२ ५ | १२ ३१३ ।द्वताय हायनाः | | |

का० ६२

| ६० सुत्राणि अ | ंक स् | ि १० सम्राणि | |
|---|--------------|--|--|
| रथनस्याहना० ३ | 8 8 3 | 6 Co erraneiterent C | का० क० सू० |
| २९० हितीये हिद्वाख्यो हयहः २ | ર હ | A DETERMINED | |
| २९४ दितीयन दितीयागास ३ | 3 / e | १४ घारायहान्ते वातिप | १६ ३ १७ |
| २७९ हितीयेन निन्दिता | | १० चावेडचेनाचे३ | ब्धान् १२ ६ ४ |
| चुरा/साः | າ ນ | ४०८ घावेच्चेद्वायवे स्वाहे ४ १३६ विष्णीया उत्तमाया | ति ३५ ११ ३७ |
| ३०८ द्वितीयेन प्रजाकामः 🧸 | 3 | | म १७ ७३८ |
| ११९ हितीये बृहद्रथन्तरप्रष्ठः | | 4 (4 - ingenied latelit | |
| पञ्चाहः पृष्ठयावस्त्रमास्यः २ | 3 6 | संयोगात ३ ३८८ ध्रमण्यं चेत्राच्ये — | १८ ८ १३ |
| १७७ द्वाय स्वामंत्र ५ | , ε ε ε | र र र र र र र र र र र र र र र र र र र | |
| २९६ द्विनामोत्तरी बहुद्दिरवयो | | 医大大性 化二乙二烷 医二二烷甲烷 医甲二烷甲烯 医隐睾病 医囊切除术 医二氏征 | ूरे ६ १८ |
| हुणात्रश्च २। | (& a) | ९१ घनोज्ञां कार्मुकीं द्वा | न इति १६ ४ ३५ |
| १०६ डिपुरुषाक रज्जुं मिस्ता १६ | | 医乳头 化二氯甲烷 化二氯甲烷 医二氯甲烷 医多克斯氏试验检尿病 医甲基甲基 | |
| ३०२ द्वियज्ञो आत्रोः सख्योवी २२ | | ^{है} कीयांङ्गारेख | ⁹⁸ 3 6 |
| १३९ द्विसाहस्रो प्रथमः छोकः | . KK 4: | १ ४४८ घडी च | १६ ७ ३७ |
| म्प्रणानां पञ्चारादृना १५ | | ४३९ घेनुगायेति प्रेरयति | ₹6 4 3 |
| | | | १९ १ ८ |
| ८७ हिस्तनामशस्तनामेके १६ ३२० हे त्रयोदशरात्रे ३४ | 8 5 | | ि ३२ १० १ |
| ४१ हो हो | 8 88 | १ १७३ घेन्वनहुत्सीरधान्यप- | |
| १९७ हो हो हुत्वा शेषान्त्सते | 8 86 | · "我们是我们的,我们的发展了,我们的特殊的意思。" "我们,我们是 是我们的 有关, 是是是 不是一个人。" | |
| ं करोति | | सारोहणविामतदाः | |
| करोति १९ ३५१ ही प्रच्यो २४ | 8 63 | | २२ २ २७ |
| ३०५' इयहप्रस्तयो द्वादशाह्वपर- | ্ १ ২০ | The state of the s | 1 |
| [2] (4] 人名特特斯克勒 国际 企业 (1) (4) (4) (4) (4) (4) (4) (4) (4) (4) (4 | | मतिग्राद्यवद्योमः | 88 s 8 |
| `` ₹ | १३ | | |
| | २ १ | प्रमवतीति श्रुतेः | २५ ५ २१ |
| | | | |
| ५७ घनुः प्रयच्छति स्वयाः | | ४१९ न कर्मफलासम्भवात् | वद १४ व |
| र्थामित % | G 96 | २४० न कालभेदात् ४०७ न गमिणीं दीक्षमेदित्येवे | ३० ७ २६ |
| ६० धनुरात्न्यीपस्पृत्ति | V. Y | ००० च गामणा दाक्षयोद्द्येव | ₹• |
| गां यजमानः समिन्द्रिः | \$250 grant | क्षेत्र होता समा स्थान | |
| थेणेति 🗼 🔥 | & 2c | | |
| ३८७ धमध्य बाईलहता चेत | | ्रव गदापातार अस्थाः | १९ ४ २८ |
| ५ प्रनाजस्यातः | 8 99 | ्रद गवातर्जलक्षामार- | |
| ४४२ वमासात्युत्क्रामत्यत्तकः | | भिष्येत | २५ १४ २३ |
| पुराधस् | ६ १० | ३९७ न, नित्यत्वात् १६९ न नित्ये | २५ ८३१ |
| रण्ण वान्यविष्ठः प्रत्ययोतः 👊 👊 | રૂ ૪૨ | १९७ म । मध्य | १८ ३ २६ |
| १९४ वान्याचितान चत्वादि | | ७२ नपुंसको दक्षिणा रथ | |
| चत्वारि दक्षिणा २२ ११ | . 8 | वाही वा बडवा १९ न पूर्वशेषात् | १५ १० १८ |
| ९३ घारणं च | | 33 DIFFERENCE | ?? & ? |
| | | ા ગમનાવ | १३ १ १४ |
| 化异性 医多种动物物的 医克拉克 医阿尔特氏 医高克斯氏 医自己性神经病 | | | CONTRACTOR RESERVE STATE OF ST |

| | | | 20 | | | | | | |
|--------------|--|--------|-------|-------------|------|--|--------------|--------------------|--|
| বূত | মুন্নাগি | FE | ० व्ह | ० सु | go | सुत्राणि | अ | ० क | ० सु |
| 3 8 | ४ न प्रकरणात् | | | | | ९ नाम्ना त्रिहच्चेराह्वानः | | | |
| 84 | २ न प्रथमवर्ते | ₹ ફ | V | 3 18 | 9 | ६ नाम्बो मित्राय सत्याय | १५ | ş | 3 8 2 |
| S | 8 न प्रथमाहारे | १ृह | | ? 3 | | २ नावन्द्रथ _ि सरस्वत्याम् | | | |
| ₹: | ८ न फर्लं न्यायात् | | | 3 3 9 | 22 | १ नाचे तन्त्रेण द्यावापु- | | • | |
| | र नमा मात्र इति सुमि | | | • | | थिक्यः पत्रो वायन्य _र सं | ers c | . 2 | 96 |
| | मबेक्षते, सर्वमे | 93 | 2 1 | မှု နော် | કર |) नाश्रतः | 26 | | (\ } |
| 3.6 | न, यजतिशब्दात | | | ्र ३ ३६ | 3 % | ॰ नाश्चतः १ नासिकयोः स्नुवौ | 39 | | , , , , , , , , , , , , , , , , , , |
| | ह नव जुहोति यास्त इति | χ, | | , ,, | 836 | ः नासिकयोऋचेत्वेति | ξ <i>(</i> φ | | 3 |
| | प्रतिमन्त्रम् | ۰ | | Ę | | ९ नास्त्येषामन्तः | | | |
| 221 | ् नवरात्राश्चत्वारः | | | | | (नित्यत्वाच | 20 | | 28 |
| | र नवरात्राव्यत्वारः स्वरात्रे त्रिकद्वकाः | | | ३२० | 995 | ः नित्यामावः | 610 | | 3 |
| | the state of the s | | | ११६ | | नित्ये च | | | |
| | ः न वा इतत्वात् | 1.75 | | 3 | 4 | | - | | 9 |
| 7 | ३ न वा चोदितत्वात् | 100 | 1 100 | २७ | 1.6 | िनत्ये प्रतीष्टकं तिरश्चीषु | 50 | | 64 |
| 1000 | १ न वादक्षिणत्वात् | 10 20 | | 33 | 458 | । नित्ये सादनसूददोहसा | | | |
| | ः न वाऽयुक्तत्वाव | 96 | | Ę | | उपधानादुत्तर तथा देवः | | | |
| | न वाऽस्थिसन्देहात् | | 1.55 | 34 | | तया ता अस्येति | १६ | (3) | 18 |
| | ३ न वा स्वसम्बन्धात् | | | 30 | 3.58 | ितित्योदकं देवयज्ञनं पुर- | | | |
| | न समस्वात् | | | १५ | | eara | | | \$8 |
| કે¢ | न सम्पन्छ्युतेः | | | | | निदाबशारनमा घेषु | | R | ę |
| | न सह प्रक्छ्नेः | | | ₹\$ | २२४ | निदाघे द्वितीयं ब्रह्मवर्धे | | | |
| | नाकसत्प्रम्हति मासम् | \$0 | (3) | १९ | | सकामानाम् | 38 | | ٩ |
| | नाकसदोऽन्केषु प् वर्ज- | | | | 880 | निघनं च | 48 | 100 | 13 |
| | मृतन्यावेलायामाश्चिनी- | | | | | निधानं च तृष्णीस् | | | |
| | | | | 1 | | निधानं वा दुष्टस्वात् | 23 | ß | 45 |
| | गानारकोऽस्तीति श्रुतेः | | | | | नियतास्वतिपत्तिश्रुतेः | | ß | \$3 |
| इ७३ | नाइयो बाभत्सेतेति श्रुते | 36 | 8 | 9 | २४८ | नियुक्तान् ब्रह्माऽभिष्टौति | | er villa Taylor | |
| | मानत्विजः | | | 36 | | होत्वद्नुवाकेन सहस्र | | | |
| 38 | नःनादीक्षाः परियज्ञाः | | | | | शोपेति | 88 | ۶ | ११ |
| | काळभेदात् नानाऽवसृथानि वा | \$8 | 8 | 8 | २४८ | नियोजनकालेऽद्याचस्या- | | | |
| 488 | नानाऽवम्ह्यानि वा | રે૦ | 6 | १९ | | रि¦शतमाचानजिष्ठे | 38 | 8 | 6 |
| 88 | नाना बावस्थदीक्षाश्च- | | | | 300 | निरुप्ते वताशको वा | | | |
| | | ₹9 | E | 29 | | श्रेषं तण्डुलान्विभज्य | | | |
| OSE | | | | 원인 영화 | | मध्यमानस्रवे ः | 19 | છુ | 88 |
| | भा ब्दात् ँ | 88 | g | २० | 808 | निरुद्धमाणमभिमन्त्रः | | | |
| 388 | | S 2000 | 8 | | | | 44 | 90 | Q |
| Car San Vice | नानुबन्ध्या प्रवरणात् | S Y | | | 60 | नित्रस्तः परिवृत्ये द्वष्ण- | | | |
| | | 建催光 电平 | | | | बोहोगां ० | 24 | 3 | 9 12 |
| | नाभिरुष्टशं प्रवृक्षनीयं | | | * | 250 | निर्मेथ्य वा | 34 | 3 | 4 at 12 to 1 |
| 9 t 🕶 | निद्धाति चतुः चक्तिरिति | 3 5 | La. | | | निसंस्थ्येन वा भूपतश्रपणे | | A 15 4 15 K | 1,000 |
| | ानवनात्त्र नतिः स्वास्तरा | `* | | 66 | | The state of the s | *** | | 84 |

| ६० सुत्राणि | स | भे कि स | |
|--|--------------|----------------|---|
| रयनस्याहनी० | ล บ | 6 7 | |
| २९० द्वितीये द्विदिवाख्यो ह्य | | , (9) | प्प प्रस्थत्यवाम्पार faue. |
| २९४ द्वितीयेन द्वितीयायाम् | 22 | | ६ मजुनस्युशन्येतुः १६३१ः |
| २७९ द्वितीयेन निन्दिता | | Y. L. | (१४ वारामहान्तं वातिप्राज्ञात्र |
| नुग/ुसाः | | | े ४०८ धानच्चद्वायन स्वाहेति ३८ ०० |
| ३०८ हितीयेन प्रजाकामः | | | ४ (३६ विष्णाया उत्तमायाम १७ ७ ५ |
| ३१९ हितीये बृहद्रथन्तरपृष्ठः | ংহ | 3 | 이 사람들이 가는 것이 되는 것이 나는 것이 가장 가장 가장 가장 하면 가장 하지 않는 것이 없다고 있다. 사람이 되었다. |
| Colles Courses | | | संयोगात १८ ४ १३ |
| पञ्जाहः पृष्ठवावसम्बास्य १७७ द्वितीये स्वामेव | | | र १८८ धूमप्राप्तं त्वेषस्ते धम |
| १९६ द्विनामोत्तरो बहुद्दिरण्ये | ू १८ | ६३ | 그들은 물 장마의 사람들은 이 경우의 그림은 환경 환경 환경 한 하는 것 같아. 그 그는 것 같아 내를 받는 것 같아 그를 받는 것 같아. |
| | Commenced to | | र र स्वामा कामका दमन्त्र होत्र १६ ० ३६ |
| हुणाशश्च ४०६ जिल्लामः ८ | * * * | ૯ ર | े ४३५ राष्ट्रस्था सहस्रता एति. |
| १०६ द्विपुरुषा ं रुड्यं मिस्य | T ?\$ | e e | ♥이 [이 발전 하루 및 및 12 MB 12 HE |
| ३०२ द्वियत्तो भान्रोः सख्योव | िर् | 28 | ३ ४४८ वृक्षीच ३६ ७ २० |
| (२५ । इसाहस्रा प्रथमः छोकः | | | ¥3 ਵ ਬੇਜਗਲੇਊ ਜੇਵ⊶ ਿ |
| म्युणानां पञ्चाशत्ना | 510 | 19 2 | ၃ 9 (၄ ရဲဆင်စြာme |
| ८७ द्विस्तनामप्टस्तनामेके | 25 | 8 : | १९७ घेनुशतमाधिरे दुहन्ति ३२ १० १ |
| ३२० हे त्रयोदशराजे | 88 | 8 81 | ४ १७३ घेन्चनहुत्सीस्थानवप- |
| ४४ हो हो | 912 | 8 8 | |
| १९७ हो हो हुत्या शेषान्त्सते | | | सारोहणविामतश्च- |
| क्रांति | 28 | 8 9: | |
| ३९१ हो प्रष्यो | 12 | १३० | |
| ३०९ द्वयहप्रस्तयो हादशास्त्र | ર્ય. | | |
| न्ताः | 23 | ? 3 | भावप्राद्यवद्धामः १४ र १ ३८३ ध्रुवाया वर ततो यज्ञः |
| ६०६ हयहास्त्रयः | ₹ ⊋ | २ १ | |
| j | | | अन्ववाति श्रुतः ३६ ६ २१ स |
| 김 수 있으면 하는 사람들이 보다면 그게 그래요? 이번에는 사람은 걸으면 | | | 000 |
| ५७ घनुः प्रयच्छति स्वयाः ग ानि | | | २४० न कालभेतात |
| यमिति १० स <u>न्य क</u> ्रिक | १६ | ५ १७ | २४० न बालभदात २० ७२६ ४०७ न गभिजी दीक्षयेदित्येके- |
| ६० घनुरात्स्योपस्युशति | | | Sप्रजिया गर्भा लि ल-} |
| गां यजमानः समिरिद्रः येणेति | | | |
| 2/10 STRICT | १५ | ६ २० | ५४ नदीवतिह स्वाः १५ ४ २८ |
| ३८७ घमेष्ठक् बार्डूलहता चेत् स्पृगोर्ज्ञह्यात्ः | | | ४८ नवन्तरेऽसंखनो गिरि- |
| १८० सर्वाधिकान्य | २५ | ६ ११ | भिन्नेत् |
| ४४२ धर्मासीत्युत्कामत्युत्तकः पूर्वार्धम् | | Sec. 3 | 2010 - Same |
| 3 (6 in 277 | १६ ६ | | २६ न नित्ये २५ ८३१ |
| ३०१ धान्याचितानि चत्वारि | १२ ३ | 88 | १८ ३ २६ ७२ नपुंसको दक्षिणास्य |
| | | | |
| Pl Creamin | 9 9 8 | 8 | 26 Maglara |
| Ta elen a | . 9 | e | 3 2 17 17 17 17 17 18 18 18 18 18 18 18 18 18 18 18 18 18 |
| | | |), u massaild |

| ए॰ जुत्राणि | ं अ | 9 | ० सू | त वि | सुन्नाणि | 87 | o 事 | ० सृ |
|-----------------------------------|---------|----------|--------------|---|-------------------------------|---------------|-----|--------------|
| ३१४ न प्रकरणात् | 2,3 | 3 | કે રેંદ | 8\$6 | नाम्ना त्रिरुच्चेराह्वानस | (२६ | 6 | , 3 |
| ४५२ न प्रथमवरो | 28 | ķ | e g | 43 | | | | ३ १२ |
| ७४ न प्रथमाहारे | | | १३ | | नावसृथः सरस्वत्यास् | | | 23 |
| २८ न फलं न्यायात् | | | 3 3 5 | | नाशे तन्त्रेण द्यावापुर | 보기. - 함께 함 | | |
| ४२ नमा मात्र इति भूमि | | | | | थिन्यः पयो बायन्यी सौ | ર્વેકર ૯ | 2 | 3 8 6 |
| मवेक्षते, सर्वमे | 98 | 1 | 8 30 | ४२० | नाश्रतः | | | ` `§ |
| ३६ न, यजतिशब्दात | १४ | | २ २६ | 388 | | 3 6 | | B R & |
| (७४ नव जुहोति ग्रास्त इति | | | | १२८ | नासिकयोत्रस्वेत्वेति | হ ৩ | | |
| प्रतिमन्त्रम् | 96 | . 8 | į Ę | 1 | नास्त्येपासन्तः | ₹8 | 10. | इ.स |
| ३३१ नवरात्राश्चस्वारः | | | 3 20 | | विस्यत्वा च | २ २ | | RE |
| ३१६ नवरात्रे त्रिकद्वकाः | | | · • | 660 | नित्यामा वः | 20 | | 3 |
| ३८८ न वा छतत्वात् | | | 9 8 | | नित्ये च | 86 | | ę |
| ३८४ न वा चोदितत्वात् | | | २७ | 1 55 | नित्ये प्रतीष्टकं तिरश्चीषु | | | \$ 3 |
| ४२४ न बाद्धिणत्वात् | and the | a 1 2 | ` } | 2.00 | नित्ये सादनसूददोहला | • | • | |
| ३८९ न वाड्युक्तत्वात् | | | ેંફ્ | | उपधानादुत्तर तया देव | | | |
| ३९३ न वाडस्थिसन्देहात् | | | 35 | | | \$ & | (g) | 88 |
| ३०४ न वा स्वसम्बन्धात् | | | 30 | 1 4 5 5 5 5 | नित्योदकं देवयजनं पुर- | | | |
| २६६ न समस्वाद | 在这点特别道: | | 29 | | स्तात् | 20 | S | £ 8 |
| २० न सम्पच्छूतेः | | | | ३५३ | निदाधशरन्मा घेषु | २१ | | ٩ |
| | | | 28 | | निदाघे द्वितीयं नक्सवर्धे- | | | |
| १३५ नाकसल्प्रमृति सासम् | ę o | w | 28 | | स्कामानाम् | 38 | ą | 4 |
| १४८ नाकसदोऽनूकेषु पू वर्ज- | | | | 880 | निधनं च | a 8 | (g) | v |
| मृतव्यावेलायामाश्चिनीः | | j. | | 3 84 | निधानं च त्र्णीम् | ₹4 | 4 | 6 |
| वद्राज्ञसीति० | 80 | 85 | 8 | 358 | निधानं वा दुष्टस्वात् | 23 | 8 | 4 Ę |
| ४१५ नातीरकोऽस्तीति श्रुतेः | | | | 3,004 | नियतास्वतिपत्तिश्रुतेः | 39 | 8 | 2 3 |
| ३७३ नाज्रयो बाम्ग्त्सेतेति श्रुते | | | | 286 | नियुक्तान् ब्रह्माऽभिष्टौति | | | |
| २६९ नामत्विजः | 43 | ₹ | 36 | | होत्वदनुवाकेन सहस्र | | | |
| ३१ नानादीक्षाः परियज्ञाः | | | | | | 8/ | \$ | 99 |
| कालभेदात् | 88 | | 8 | The second second second | नियोजनकालेऽष्टाचस्वा- | | | |
| २४४ नानाऽवस्त्र्यानि वा | २० | ć | 86 | | | 38 | 9 | 6 |
| ६६ नाना बावस्थदोक्षाश्चः | | | | | निरुप्ते वताशकी वा | | | |
| तिम्यास् | 86 | 6 | 25 | # - F # 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 | श्रेधं तण्डुलान्विभज्य | | | |
| | | | | | | ٩ | 8 | 85 |
| शब्दात् | ₹8 | 8 | Ą¢. | | निरुद्यमाणमिमस्त्र- | | | |
| २६६ गानित्यत्वात | ₹₹. | 8 | १८ | | यत एजतु दशमास्य० | 49 | ₹¢ | Ą |
| ४०७ नानुबन्छ्या प्रकरणात् | | | | | निर्ऋतः परिवृत्ये कृष्ण- | | | |
| | | 8 | 88 | | ब्रीष्टीणां॰ | 24 | 2 | \$8 |
| ४४७ नामिरुपृशं प्रवृक्षनीयं | | | | 386 | | 34 | | • |
| निद्धाति चतुः स्रक्तिविति | ₹\$ | 10 | 19 | 66 | निसंस्थ्येन वा ध्रुपत्रश्चरणे | 88 | 8, | \$ \$ |
| | | | | | | | | |

| पृ० सुत्राणि अ०कः | स्० | Ao | सुत्राणि | | ख | ০ ৰ ০ ধৃ |
|---|------------|----------|-----------------------------|---------------------|---------------------------|---------------------------------------|
| रण्ड । नवृत्तग्रहणात् प्राक्कतान- | | | | प | | . |
| वृत्तिः , ३२ ३ | 88 | 890 | पकानुद्धरत् | जबे त्वेति | 7 | |
| ४०३ निवातं चेत्प्वंबन्मथित्वा | | | | | | ક રૂપ્ર |
| प्राञ्चमुखृत्य० ३५१० | २१ | 4810 | प्रतिसन्त्रम् पकारनं च | प्रवेष | 2 0 | 2 94 |
| २७४ निवीताः ३२ ३ | 84 | ७१ | पकायाम् | | 96 | 90 2 |
| २०१ निवृत्तिः कतुयोगात् २२ २ | १९ | 803 | पकायामाव | पति कपा | र्क च १६ स्टें | \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ |
| १४ निवे च्येन १५ ४ | 30 | 90 | पकौद्रनं विश | සේකසරා | 5 | |
| ४१ निश्रवर्णी यूप उच्छयः | | | त्यास्वस्याः | | ር'' ። | 0.04 |
| त्युत्तरां दक्षिणां वा १४ ४ | २३ | 833 | पक्षपुच्छानि | a | 7.7 ara | ९ २६ |
| ६१ निषसादेत्युरोस्यालमते १५ ७ | B | 233 | पश्चपच्छानि | garfana | | ६ १२ |
| १६७ निषादे २२ १ | ₹8 | | प्यये स्थोऽधि | | | |
| २७ विषिच्य माजल्मिये | | 900 | पक्षमोजनम् | | | ફ હ |
| पूर्वी निद्धति १३३ | 3,6 | 329 | पक्षादी यद्य | rfazzer: | | 8 50 |
| २११ निष्कं प्रतिसुद्धन्याच- | | | वे स्मिन् | द्रा <i>नस्त</i> रस | 10 计键块数 | |
| यति तेजोसीति २०१ | ۴ | 858 | पञ्च गा दु र ह | ।। प्रारक्त | . 28 | 8 96 |
| २८१ निष्को राजतः ३३ ४ | | 100 400 | श्याः पुनर्वज्ञ | | 等。因此是要"可以" | १४ ३० |
| ४२९ निष्टितसभिम्दशति सखस्य | | १७३। | पञ्चगृहीतं च | रथिशिरस | . | to so |
| शिर इति १६ १ | 919 | | ^{ड्यड्याह} वनी | वं धियमा | ita 0 / | |
| ४०८ निष्ठीवेचचेत् बीभस्साक्योः | ` | १६४ (| म्ब्रुग्होतं जुह | ोत्यरित- | | 111 |
| ऽद्र धः स्वादेति २५ ११ | 26 | 1 | स्तरमे ने त्यु च | । षोड्य- | | |
| २८५ निहितेषु नाराश्च क्षेषु प्राताः | 34 | Į | !हो तार्धमनुव | ाकशेषेण | 91 | a 0.6 |
| सवनेऽनपाकुर्वेद्येकाद्याः २२ ५ | 20 | १३४ प | ब्रग्हो वाद् य | समा | 20 | 6 (** |
| ४२ मीवारेण प्रचरति १४ ४ | • | ११६ प | ^इ चगृहीतेनोद | गहब्रधि. | 7. | |
| २९४ तृत्यगीतवादिश्रवस् २१ ३ | 1000 | 3 | होति सज्राह | ਫ਼ ਫ਼ਜ਼ਿ | ₹ ' © | |
| ३३ नेष्टा च तावतः सौरान् १४ २ | | \$48 d | बद्शंडक्य्यः | क्रण | ₹8 8 | 9 ₹ 5 ₹6 |
| ४१ नेथा च सौरान्पश्चिमेन | | 680 d | बदश दक्षिणे | नानकम | 8 € 61 | |
| निर्हत्य० १४ ४ १ | | ३३१ प | बेद्श पञ्चदश | रोहिता. | | |
| ४१ नेष्टा पत्नीमावेष्यन्कौर्वः | * | दी | 'न्ट्सोयांन्सा । | तेत्रदेख | ₹0 € | Ą |
| वासः परिघापर्यातः १४ ४ ३ | | इरर पृत् | बद्शरात्राणि | चत्वारि | 38 8 | રદ ે |
| ११३ नैऋतीः ऋष्णास्तुषपकाः | 100 | gęo d≊ | बद्शावचोक्ट | याः | २३ ५ | |
| ्स्तिकोळक्षणाः १७ १ २ | . | (६१ ५३ | 19च्छानि चा — | भ्यात्म- | | |
| | 8 | 444 | ने पावकरोति | श्वात | १८ ३ | १२ |
| ३१३ नऋताऽवसम्न २३ ४ १ ^० ५२ नेवारो बृहस्पतये वाचे १५ ४ । | | ८६ पुरु | चप्रादेशा मि9 | मार्श्वो | | |
| | . 91 | वा | तिर्धेकपञ्चपश | Ì | १६ ३ | 39 |
| १९३ नापम्रता झुवायाम् | } { | eb eo | मभागीयार्घ | पुरुषीययोः | | |
| रिट्टस्फूर्जकियोदकपाप- | | साइ | वपाल्य ० | | POPPLY SAFE | ę lig |
| | 180 | ०७ पञ्चा | मभागीये शङ् | E: : | The state of the state of | ? 4 |
| नामन्यश्च २१ ३ २० ९७ न्यज्य समिधं व्रते प्रश्ले | Ja. | ९ पश्चा | ने सावकयोद | वाञ्या | | ? ? |
| ਪਦੀ seoa ਵ ੁਆਆ | १ध | }4 qai | यामन्तेष्वा | धनी- | | |
| ्रात्मामा इत्याचान म् १६ ६ ८ | J. | नदस | परनाः | | १७ ११ | 8 |

| | | | | | | | 그렇게 가는 사람들을 하지 않는 생기를 | | -4 h. | | |
|------|-----------|--|------------------|----------|--------------------------------------|---------|---|------------|----------|-------|------------|
| | Z0 | सुत्राणि | अ | ବ୍ୟୁ | सू० | | सूत्राणि | | ą, | ० सू | 3 |
| | १३५ | पञ्चम्यामसपत्ना विराजः | | | | G | पयस्था मन्नावरूणी माध्य | } - | | | |
| | | प्रथमेऽहन् | 30 | , K | 38 | | न्दिनीयः सह | | | 8 80 |) |
| | 80 | पञ्चवानीयमाहवनीय | | | | Ę | पयस्यास्विष्टइदिङं करो | • 1 | | | |
| j. | | प्रतिदिशं न्युद्धः | १९ | 8 | 90 | | ति माद्देन्द्रादि च | 24 | , | 3 8 6 | |
| | 326 | पञ्चिव (शतिरात्र मन्नाद्य- | | | | 880 | पयो गायेति प्रेप्यति | 25 | • | 1 90 | k. |
| | | कामानाम् | ર છ | • | 1 3 | १९१ | पयोग्रहसंमर्शनं, सम्यः | | | | |
| | \$88 | पञ्चरिवजस्त्रीणि श्रीणि | | | | | चस्थेति | 88 | | 3.8 | ű, |
| | | कर्माणि कुयुं: | 38 | 8 | 83 | 866 | पयोगहान् गृहाति कृति | | | | |
| | 290 | पण्चसु सवनीया वैश्वदेवन | ग्र | | | | दङ्गेति | 28 | 3 | १३ | |
| | | रुणमारुवारनेयेन्द्रारनाः | 23 | Ø | 88 | १९० | पयामहान्या पूर्वम् | 29 | | ३३ | |
| | 848 | पञ्चान्ते च नार्यममात्रे | 26 | | | 369 | परमेष्ट्यादीश्च चतुस्तिः | | | | |
| | 92 | पञ्चापवर्गः | १५ | 8 | ą | | शनं जुद्दोति | ₹4 | Ę | 8 | |
| | 800 | पञ्चारतिनः पुरुषो दशपदो | | 설명 | | 308 | पराकः स्वर्गकासस्य | 33 | ą | १२ | |
| 44 | | द्वादशाङ्गुलं परं० | 1.50, 35 | ٤ | 22 | 8 | पराधेंद्वेकः कुतत्वात् | | | 29 | |
| | २९१ | पञ्चाशतं पञ्चाशतं प्रत्यहं | | | | 258 | परिहर्ष चेथवान्वपेत् | * ? | | २० | |
| | | ददात्युत्तमे द्वादश्वं शतम् | 44 | ₩0 | 88 | 850 | परिक्रम्योपविष्ठन्तेऽकृतं | | | | |
| | 340 | पद्माह्यश्वरवारः | \$8 | ર | 38 | | चेद्रभों देवानामिति | 35 | 8 | 99 | |
| | 328 | पद्धाहाश्चरवारः पद्धाहास्त्रयः | 23 | 8 | ę | 253 | परिक्रीतो वा वैश्वराज- | | | | |
| | | पञ्चोक्ष्यां स्त्रीनिमण्ल | | | | | न्ययोरन्यतरः | 28 | 3 | 20 |) .) . |
| | | वानुपेत्य० | 88 | . 10 | 58 | 68 | परिगृह्य पात्रे करोति | | | 5 d | |
| | | पञ्चोत्तमे | 4 2 4 4 7 | 8 | 88 | | मित्रेतां त इति | 25 | 8 | 22 | |
| | 850 | पतितं चमसमाङभतेऽस्कः | i, si Maria | | | 838 | परिघम्बसीदुम्बस्स् | 2 5 | | Ę | |
| | | All the first the control of the con | २५ | १२ | * ** ** ** ** ** | 833 | परिधम्यं च तृष्णीम् | २ ६ | ₹ | 88 | |
| | | | ३३ | | 30 | १३४ | परिणयनमारिननिधानात् | 910 | S | 6 | |
| | | | ₹६ | 3 | ર | | परितत्य रज्वा सहितं | | A Bul | | |
| 20° | १० | पत्नीसंयाजान्तान्यहा- | 4 | | | | बहोरज्ञ्बा | 98 | c | 43 | |
| | | न्यन्त्यवर्जम् ् | १२ | ₹ | 38 | २९० | परिधौ पश्चनियोजनम् | २ ३ | 1807 | ٩ | : ::-: |
| | Y 11 1 15 | 1일 연락하는 이 보네다. 이 전에 한다는 사이라는 하는데 하는데 | १२ | 2 | 3 | 232 | पारपशक्ये हुत्वा प्राणाय | | | | |
| | | | 38 | * | | | स्वाहेति तिस्ताऽपराः | २० | Ę | 88 | |
| J. | | ९त्न्यश्च पत्न्यश्चायन्त्यलङ्कृता | 83 | ₹ | 32 | 343 | परिपादर्वेषुदकेषु | 38 | | | |
| | | निष्किण्यो महिषी | | | Turk I | ९२ | परिसण्डलाञ्चामिण्ड्वा- | | | | |
| • | | 회사학사에 기존되면 2인 1인 시작하였다. | २० | 8 | 63 | | भ्यासुखां परिगृहातिः | 98 | 6 | 3 | |
| | | पत्न्युद्दयो दीक्षारूपा- | | | | २६६ | परिमाणे सबेमविशेषात् | S. 107. | | १६ | |
| | 854 | णि विधाय सिकतास्त्रा- | | | | १८ | परिमार्जनसृतिकाले हि- | | | | |
| | | 的复数医医性神经 等于的复数形式主义的动脉 化镁 | 2.6 | 6.0 | bo. | | ब् हत्य सादनम् | १२ | 8 | ₹0 | 30 31 |
| | 569 | | ጓ ግ ቅን | 98 | ₹2 | | परिवृते निद्धाति सम्भा- | | | | H |
| | | पयस्या मौत्रावरूणी तृप- | | | | | राचुद्धतावोक्षिते० | ₹६ | 8 | 88 | |
| | | रमिधुनदक्षिणोदवसा- | | | | ७६ | | ₹ĕ. | | \$8 | |
| | | नीयान्ते 💮 | 29 | Ę | 24 | ્યું | परिवृत्ती चाह साऽसेहे- | | | | |
| rii. | artain. | AND | SERVE S | 1-16-51 | 81 Jan 1978 | 次型 数等分类 | \$P\$17年 \$P\$-45.1900 (2).1995 (2).1975 (| massie) | | 50 mg | 41 |

| ge | स्त्राणि | अट | क् | सु० | ह० | सुत्राणि ू | अ० | ক্ত | Щo | |
|-------------------------|--|------------|------------------------|------------|---------------------|--|-----------|------------|--------------|-------|
| ** | शायां बात्सीदिति | १५ | 3 | 22 | १९५ | पशुपुराडाशाबिवेपस्यैन्द्र- | | | | |
| | परिक्रिद्धिः परिश्रयति | | | | | े सावित्रं वास्णं दशक- | | | | |
| | पुर्वबद्काव/ुशस्या | | | | | पा लम् | | 8 | | |
| 1, 3, 4, 1, 2, 1, 1, | चितस्थेति | 213 | 8 | ø | | पद्यसम्बेयः परियज्ञः | २३ | 60 | १२ | |
| 60 | परिसुद्धामा दक्षिणेऽमौ | | १० | | ₹ ₹ 15 | पशुवदुत्सजनं निरष्टऽ | | | | |
| 226 | प्रशिशासावभितः | | (9) | | | म्बशते | | • | १० | |
| | परीशासाबादचे गायमं | | | | ११६ | पशुवदुत्स्रज्य दक्षिणाका | | | | |
| | छन्दोऽसीति प्रतिम- | | | | | लेऽध्वयंवे ददाति | \$ 100 | 3 | 55 | |
| | न्त्रम् | ₹8 | ંદ્ | {3 | 1 | पशुवैश्वदेवः परियज्ञः | 55 | 40 | १५ | |
| 225 | वो बडिभण्डव | | ą | | | पशुक्चेदुपाकृतः पछायते | | | | |
| | पर्यक्षिकृतानुत्स्जन्त्युः | 5.5 | | | \$100 m | वासके० पशुषु वा | ₹ ₹ | ۶ | 8 | |
| 562 | क्ष्णा बत्सतरीमिः सर्हे- | 10 | | | 95 | पशुषु वा | १५ | ٤ | \$10 | |
| | स्थापयन्ति | 3 3 | 8 | E | २०५ | पद्धस्विष्टकृतो यस्मिन्नः | | | | |
| 338 | पर्यं द्वारानश्वे | 30 | | S | | खासोऽहाब्यग्न इति | 28 | Ę | 3.5 | |
| | प्यंद्धमाणेऽनुहरणम् | | १ | | 388 | पशुखाचेत्स्रवेत्साम्ना- | | | | |
| | पर्वान्तरेषु त्रिकद्वकाः | | ં દે | | | य्याखा वा वामिसमन्त्र | | | | |
| 248 | पवान्तरेषु दर्शपूर्णमासौ | | | | | येतोखार्ए० | 29 | • | १४ | |
| | पर्वान्तरेष्ट्रवहतं वस्ते | | | 60 | 3 2 9 | पशुनुपाकरिष्यन्नतिरात्रे | | | | 100 |
| | पछार्श पुरस्ताच्छामील | | | | , , | देवसवितरिति प्रत्यन | | | | |
| 440 | वारणदेहशङ्कृतन्यासु | 2.5 | 3 | 3 0 | | तिस्रा जहोति | \$ 8 | ç | € | |
| | पळाशपुटनापो देवीरिः | | . 25 % 11.11 | . • | 3 × 10 50 | पशुपवादाच | 55 | | २५ | 1000 |
| 800 | त्येक्या | 92 | ۶ | 3.6 | 1.4 | पशोर्वा सवनविधिक्रिया | 100000 | 100 | े २ ६ | 3556 |
| | त्यक्या पळाद्यासाखया गाहंपस्यं | ** | * | | | ' पश्चाच्च संकृष्टतरौ | १८ | | १८ | 100 |
| \$6.2 | म्यासासया गार्थाः स्युद्दृहत्यपेत वीतेतिः | 90 | 9 | 3 | | पश्चारप्रथमान्त्ये | ક જ | | ,, | 14 10 |
| | च्युद्भरपाय पातायः पवमानेषुद्वासारमन्वार- | • | | | | पश्चात्पिन्यने चामितो | | • | | |
| * * * | भेरन्द्रयेनोऽसि० | 92 | ę | 28 | 554 | दण्डस् | २६ | ıs | 919 | |
| -110 | पवित्रदीक्षास्थाने छुनाः | • • • | 1 | * * * | 999 | पश्चात्सहिते पादमात्र्यौ | | | | |
| | | . 0 | ۰ | १९ | | तिरवच्यो पुरस्ताच्च | 1.00 | 9 | १० | |
| | सीरीयम् पवित्रश्चतुर्दीक्षः | | | 8 | 306 | : पश्चाद्रम्युद्रहष्ट आमावा | | | | |
| | पावत्रश्चतुराकः पवित्रे कृत्वा हिरण्यमेनः | 4.1 | \$ | | | स्येनेष्ट्रा तदहर्वेव खो॰ | 100 | × | ઝદ | |
| ५६ | यावत्र कृत्वा ग्र्रूप्यनगः योः प्रवयतिः | 0.3 | 6 | ૪ | 95.6 | पश्चादरण्येऽनुच्यम् | १८ | | ्र ३० | |
| | याः प्रयमातः पशुकासयज्ञौ चतुष्टोमौ | | | १८ | | पश्चाद्धीपुरुषे च | ्रे १६ | 1.0 | 80 | |
| | | 1.45 | . 6 | 4 14 4 | | पश्चाचूपावद्वात्पादमात्रे | | | `` | |
| 196 | पशुरेवता च | | | | ("" | चित्यस्य । । । । । । । । । । । । । । । । । । । | 9.5 | ı ış | 30 | |
| 494 | पशुना वा तत्रेवतेन | ্ৰ হ | ₹ | ≎ ⊋ | 000 | . पश्चाद्रौहिणक्रपाठे | | 2" | \$ g | 100 |
| 43 | पशुपुरोडाशतन्त्रं प्राधा- | | | | 10 7 75 40 | . पश्चाद्धधाय पुरस्ताहो- | • | | | |
| otes | न्यात् पशुपुरोडाशमन्त्रन् बन्ध्य | . 3 | ర | 86 | *42 | ्यवाद्याय अस्टवादाः स्थान होसमेके | 2.6 | 4 | १३ | |
| (79 | स्य देविकाहवी भेषि निव | | | | 0.170 | मपत्र हाममक पश्चिमा द्वितीया | 900 | ૧ ૧ | 1 | 2000 |
| 数据 | | | 30 Y | 3.6 | | ्पश्चमा । इतायः : पश्चिमोत्तमा | 100 | 2000 | 8 | |
| | वति यजप्रैषाणि | ₹6 | - 19 | . * (| ነ (ደረ | (Alauluul | | • | • | |

| 制度 化 | | | | la sij | | 원이 많은 바람이 얼마 없었다. | | ħ., | J. 545 |
|----------------|-------------------------------|------------|------|------------|---------------------------------------|---|------------|---------------|--------|
| রত | सूत्राणि | अ० | क | Eo. | To | स्त्राणि | 370 | क० | सु० |
| २२० | पदवादौ प्रजापतिना सु- | | | | 63 | विण्डवत्प्रागुद्दञ्चं प्रगृहाः | | | |
| | त्यासु पद्मापदि चरवः | 80 | 3 | 8.5 | | त्यक्रन्दद्गिनरिति | 28 | Ģ | १५ |
| \$ 23 | पद्यापदि चरवः | 33 | 8 | 86 | 68 | विण्डवत्राग्दक्षिणा प्रगृह | r٠ | | |
| | पश्चालम्भनाचाऽऽध्वरदी- | | | | | त्याने वृहन्निति | 25 | 6 | १९ |
| F _S | क्षणीयायाः इत्वा० | 20 | 8 | 2 | 868 | पितरः शुन्धघ्वमिति | | erik Alasi | |
| 3.08 | , पाक्सुखलो वा प्रत्यया- | | | | | जपित | 50 | 3 | ₹ ફ |
| Ė. Š | विशेषात् प्रकृत्यनुग्हाच | રૂર | 3 | 88 | इङ् | ावतामहदशगणः सोस- | | | |
| 390 | पा ुंस्नादाय भौमानां | | ì | ĀĀ, | | पाना 🕜 संख्यासर्वः | | | |
| | यथादेशं निवपन्ति | ລບ | c | | | णम् | १५ | e | 2 % |
| 70 | पाणिभ्यां परिवृह्णात्येनं | `` | * | | 292 | पितृमेधः संवत्सराऽस्मृतौ | 49 | 3 | ۶ |
| | दक्षिणोत्तराभ्यां० | 29 | • | 20 | A Company of the | पुंश्रल्बह्मचारिणावन्यो | | | • |
| 68 | पाण्ड्वं च निवस्ते | | | | | न्यमाक्रोशतः | | | |
| | पादयो स्वमा उपान्यति | 3.7 | | | 284 | पुँ शलमेके | a o | . 5 | 3 49 |
| 114 | राजवर सन्ये मृत्योरित | 9 8 | ų, | 90 | | पुच्छकाण्डाद्दक्षिणेस्थनि | | | |
| 5.0 | पाप्सानं तेऽपहन्मोति | | | | | हुत्वा दोहयेत् | | | ę |
| | त्वा वर्ध नयामीति वा | 96 | US. | £ | १५४ | पुच्छसन्धावेके | 23 | 83 | २० |
| 992 | पारिष्ठवं प्रेष्यति | | | | | पुच्छादपरान् कुशानाः | | | Ŵ. |
| | पार्थीनामग्नये स्वाहेति | | × | • | | स्तीयांहवनीयसहितान्वा | | | |
| | षड्जुहोति प्रतिमन्त्रम् | 9 G | G | | | तत्रासाद#स् | 86 | 8 | 23 |
| 66 | पार्थीनामिन्द्राय स्वाहे | • | | | 160 | तत्रासाद नम् पुच्छे यज्ञायज्ञियम् | 86 | 3 | 8 |
| | ति षड् जुहोति प्रति | | | | \$48 | युनः क्रिया च | 3 6 | 8 | १६ |
| | सन्त्रस | <u>ه</u> و | Ģ | સુ છે | २३६ | धुनः पूर्वापरेणोत्तरवेदि | | | |
| 3 6 8 | मन्त्रम् पादर्जेयोः शूर्षे | 24 | , US | २ ९ | | का स्विद्रासीदिति | २० | Œ | 85 |
| ેલ્ફ | पाछाशीः प्रत्युचमहरः | | | | 84 | पुनदृत्स्ष्टो गौरशीषो- | | | |
| | | १६ | 8 | ys | 1100 | संघि | 84 | 8 | 88 |
| 9 | पाळाशे शेषानासिच्य | | | | 842 | पुनर्राहो वा युक्तत्वा- त्वात्राणाम् | ૨ | 23 | 84 |
| | पुत्राय प्रयच्छति० | 26 | Ę | १० | | पुनश्चिति चोपरि तद्वधंन | | | |
| १९२ | वालाहोः सौराच्च सुनमः | | | | | ऋषय इति प्रत्यूचम् | 6.0 | १२ | १९ |
| | यमाहुतिमानश इति | | | | 966 | पुनश्चितिम् | | | 39 |
| | श्रुतेर्थेस्त इति | 28 | 3 | 83 | | पुरस्ताब्रिष्ट्रभो रेतःसिः | | | |
| . १०६ | पाशयोः शङ्कु सध्येऽर्ध- | | | | | मोलागर भन्ने सन्दर्भनि | \$ 10 | 65 | • |
| | पुरुषयोश्च | १६ | 6 | 8 | १२० | पुरस्तात्पश्चाहेंके | ęw | ą | 23 |
| १०६ | पाशा उन्मुच्यार्घेषुरुषी | | | | 320 | पुरस्तात्पश्चाहेक पुरस्तादन्यत | 3 8 | 8 | 8 |
| | ययोः प्रतिमुच्यः | 88 | ૮ | w | 38 | पुरस्तादयुक्ष ज्योतिष्टीमः | | | |
| ९४ | पाशा उन्मुच्योदुत्तमः | | | | | पाष्टिकाचीतरेषु | \$8 | 1 | ٩ |
| | मिति | 84 | | १८ | 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 | पुरस्ताद्रायत्रम् | 86 | 5.547 | 4,000 |
| | विण्डं पुरोष्योसीति | 25 | • | ₹ ₹ | | पुरस्ताद्योजने होता | २ २ | ą | 38 |
| 60 | विण्डमपरेण च्युच्चे वस्मी | | | | 198 | पुरस्ताद्वावसृथादरम्य | | | |
| | कवपां छिद्रां निद्धाति | १६ | • | 3 | l | कामाय | 58 | ६ | 88 |

| ão. | सुत्राणि पुरीषं च पुरीषं च तृष्णीम् | अ० | क्रह | स्० | Дo | सुत्राणि पुतभृतः सर्वोधेत्वात् | अ० | ক্ত | सु० |
|-------------|--|------------|----------|-------------|------|--|-------------|-----------|--------------|
| १३५ | पुरीषं च | 80 | IJ | ₹0 | 368 | पूतमृतः सर्वार्थत्वात् | २२ | ૮ | ₹ ₹ |
| 2009 | पुरीषं च त्ष्णीम् | 26 | Ę | 26 | १४ | पूतन्हतो वाडपाकरिष्य- | | | |
| \$ 80 | पुरीपमास्वावपति | | | | | न्पृ ष्टम् | १२ | Ģ | G |
| 34.5 | मन्त्रेण वा तापश्चितस्य | | | | १६६ | पूर्णाहुति च सप्त त इति | १८ | 8 | ९ |
| | त्र्णी ७ श्वतेः | १७ | 28 | 84 | 380 | पूर्वशरात्रोऽभिचर्यमाणस्य | 23 | 9 | 30 |
| 986 | पुरीषमोप्योपर्धयं पुर | | | | ३०१ | पुनः पक्ष्युत्तरो ज्योतिः | ३३ | १० | 38 |
| | इति पञ्चचुडाः प्रतिमन्त्रम | 700 | १२ | ą | २१४ | पूर्वं कायकृष्ण/, गुक्कापरम् | २० | 8 | 33 |
| १६२ | | 7. | | | 883 | पूर्वदक्षिणस्यामधंपद्ये 💮 | १७ | १ | 86 |
| | च्छन्दसं प्राच्यो पुरीष | | | | 885 | पूबेदक्षिणेऽबान्तरदेश | | | |
| | | 219 | १३ | १६ | | पूबेदक्षिणेऽवान्तरदेश एके पूब दोर्बल्यमानुपूब्ये | 919 | 80 | ૪ |
| 853 | पुरुषमवच्छाचोरसाऽ- | | | | 808 | पून दोखंख्यमानुपूर्व प्रकृतिवत् पुन पक्षप्रतिखोमस् | | | |
| 9300 | स्पृष्टं बाह्योः प्रापणान्ते | | | | | प्रकृतिवत | 34 | 18 | 88 |
| | बिबति | | 8 | 90 | | | | "有特别"之后,不 | |
| 262 | पुरुषमेधबद्क्षिणा समृमि | 90 | a | 93 | | पूर्वमधीमूकं छादयति | \$ 2 | Ę | 80 |
| | ु ह षमेघस्रयोवि¦शति | | | | 855 | पूर्वेषा द्वारा स्थूणामयूखं | | | |
| | दीक्षोऽतिष्ठाकामस्य | 29 | 9 | 9 | | निक्रम्य दक्षिणतो निखन- | | ir i | |
| 3006 | पुरुषाणां वा दानाधि | | | | | ति होतुः सन्दर्शने | 3.5 | ₹ | 84 |
| | कारात्. | 22 | 3 | 98 | 7. | पूर्वरात्रमध्यापररात्रेषु च | 3 8 | | 6 |
| 966 | | | | | | पूर्ववत्पञ्चम्यः सर्वासाम् | 50 | | 88 |
| | पुरुषाभिहोमवत्तिष्ठ- व्रिग्नि प्राक्षति हिरण्य- | | | | 360 | पूर्वबत्सोमाः | १२ | | १ ६ |
| | शकलसङ्खेणशते० | | | | | पुर्ववत सोमातिप्तश्चेत् | ११ | 100 | ₹ & |
| 9092 | पुरुषाहृतिबद्धा | | ેલ | | | पूर्वेबद्गिनः पाके | १ ६ | 1.50 | २६ |
| | पुरुषे चित्रे साम गायति | | 8 | | 348 | पूर्ववदनुसमापनम् | <i>\$8</i> | 1000 | 38 |
| | पुरोडाश्वधमा द्रव्यसाः | | ž | | | पूर्ववन्मजनम् | | | \$8 |
| 大声性 流 化二氯 | मान्यात्. | 4 4 4 4 | ę | | | पुर्वस्य चतुभ्यो वतम् | ₹8 | ş | ₹ 3 |
| | वरोसाजाः वरे हताचिः | 7 | | | ३९८ | पुर्वस्य वर्षा दक्षिणाग्नी | | Par. | |
| "`` | मानेऽग्नये रुद्रवते | 33 | Ŋ | 80 | 3.00 | जुहुयात् पूर्वस्य षड्गवान्युत्तः | ₹9 | 8 | • |
| 360 | पुरोडाचे क्षामेऽवशिष्टः | | | | 14.2 | 사람 얼마, 그런 스러스 잘 하면 쓰는데 두 가게 되어 느심 것 | 2 2 | 9.3 | |
| | समाप्यतदेव पुनर्निवंपेत | 26 | e | 96 | 266 | 이 없는데 그리고 있어요. 프랑스트 성상 가는 생각하고 생활되는 밤이 그 | \$19 | | Total 1997 1 |
| 3.66 | पुरोडाशोऽरनये तेन यज | | | • | 620 | पूर्वा पूर्वासुत्तराः | | 8 | |
| | मानः पूर्ववत् | ay | ષ્ટ | | 60 | पूर्वाग्तिवहर्नं च साग्तिम् | | | |
| 293 | पुरोडाशोऽरनये पथिकृते | | 400 | ٠ ٦ ٢ | | | | | 40 * |
| 7 / 20 6 | पुरोड़ाको वाञ्ग्नीषोमी- | | | | 99 | पुर्वाग्निवाही हो हो | • | | |
| | यस्थाने | 83 | a | २८ | 4.5 | पण्णा १ पण्णां दक्षिणा | 9.0 | p | 63 |
| 265 | परचारा पुरोधाकासस्येन्द्वारन्धोः | | ₹ | | | 그는 사람이 되는 그들은 그 바이가 취임하게 되었다면 되었다. | | | 5 ` |
| | स्तोमः | 22 | 28 | 92 | 100 | पूर्वात्सवनादतिरिकस्यो - | | | |
| 939 | पुष्करपर्णमुपद्धाति । | 787 | 17 | 19 | | | ३ ५ १७ | | १६ २ |
| V. V | स्तम्बे पूर्वेचत् | 80 | ß | Þ | | पूर्वाचे प्राणमृतो दशाँ- | | | |
| ∠0 | पुष्करपणे निद्धाति | | 100 | | 704 | | ę VD | ٠ | w |
| | A ALTE CALADA | 88 | 3 | ? ., | | 3. Sin sina. sa | 1 | de X | |

| 990 as | 777060 | 9 7 . | e de la companya de l | *** | | | A.W. | mpa. | with |
|----------------------------------|--|--------------|--|------------|------|---|------|----------|-------|
| | स्त्राणि | | | | 20 | सुत्राणि | | | |
| 848 | | | ११ | 38 | | पृष्ठयस्तोमी च | | | |
| इंड् ७ | पूर्वीहुतौ हुतायां चेदाइव | | | , , | | पृष्ठयात्सर्वस्तोमोऽतिरात्रः | # 3 | \$ | 29 |
| | नीयोऽनुगच्छेरादुक्तम् | ३३ | 3 | 8 | 388 | पृष्यावलम्बाश्रस्याश्रः | | | 10 mm |
| 8\$ 8 | पूर्वेण गार्हपत्यं प्राचः | | | | | | 23 | G | |
| | कुशानास्तीर्थ पात्रासा | | | | | पृष्ट्ये वा | \$8 | 3 | 88 |
| | दनं हुन्द्रम् | ₹ \$ | | 8 | | पूष्ट्यो च | | | |
| 833 | पूर्वेणापरीत्योऽतः | 50 | S | Ģ | | चैतुदारवाद्यत्रैक | | | 3 |
| 833 | पूर्वेणाहवनीय ें सन्ना- | | | | | पौण्डरीकः सर्वे खिकामस्य | | | |
| | डासन्दीं पर्याहत्य दक्षि | | | | | पौण्डरोकेऽयुतम् | | | 6 |
| - NO.251 | णतःः | 9 8 | ą | হ জ | | वौरुपमेधिक वाजपेयस्य | | ş | 20 |
| ३९९ | पूर्वेणेङ्वोत्तरेणावश्यम् | | | | 366 | पौर्णमासान्ते वामावास्य | | | |
| | पूर्वेणोत्तरा ७ सन्दक्षिणाः | | 177 | | | | 26 | 13 | Ą |
| 11. | 역사장 프로토토토토토 가는 얼마 가나라 보다는 | 0 10 | R | 3 5 | श्रक | पौर्णमासेन इच्याकानेत्य | f- | | |
| 3.6 | पूर्वेन्यो देवतास्विष्टकृद्धया | | • | ζζ., | 3 | सावास्थेन । | 84 | 8 | 86 |
| 54 | भूवस्या द्वता।स्वष्टहरूयः सवद्यस्यत्तराणिः | | . | a te. | 3 63 | वौद्यां वहं निर्वेपति वासः | | | |
| | नवधत्यु तरा।णव पुर्वेश्चरित्वा चरित्वा मध्य | 10 m 10 m | 3 | ₹.₩ | | | 80 | | \$8 |
| 9.6 | | | | | २२० | पौष्णः स्नामे | | | 83 |
| | | 99 | 100 | 8 | 90 | V | | 40.00 | 88 |
| | पुर्वी देवतासामान्यात् | | | 38 | | प्रकृतिविहितं द्वितीयम् | 7 | | 86 |
| | पुत्रों राजः | | 99 | | | | 58 | | २५ |
| | पृथकामेषु सूर्भुव इति | १२ | | 38 | 333 | प्रकृतिविहित्युं वत्रावं | | | |
| 11. Table 1. | पृथक्सहस्रेद्क्षिणा | 2 2 | | 83 | | चतुर्दशाभिष्ठवं चतुरहश्र | 18 | \$ | 36 |
| And the second | पृथगुपयामयोनो | | 1.4 | 83 | ३२३ | प्रकृतिविहितानि प्रा- | | | |
| | पृथाना | 3 3 | 88 | १८ | | विवर्शतिराचात् | 18 | 2 | 8 |
| ३४२ | पृथ्ङ्मासाश्चातुर्मास्यः | | | | 326 | प्रकृतिविहितान्यं चत्वा- | | | |
| | पर्वभिः | 38 | | ३२ | | रिंशदात्रात् | ₹8 | ₹ 1 | 3 9 |
| | पृत्रन्यदमा चार्गाधीये | 85 | | 人名英格兰 | ३२४ | प्रकृतिविहितान्याद्वाः | | | |
| | पृषदाज्यस्कन्द्रने चैके | R F | Ę | Ę | | त्रि/शदात्रात् | 58 | 3 | 66 |
| ३८६ | प्रधदाज्यस्कन्दने जुहु | | | | 388 | प्रकृतिविहितेषु महावतं द | . 1 | | |
| | याद्याविष्ठा जनयन्कवे- | | | | | रात्रादु त्रसेकाहार्थे | 58 | 8 | Ģ |
| | राणिः | | | £ ¢ | ₹3€ | प्रकृतौ चाववनात् प्रकृत्या दशमम् प्रकृत्या एवम् | ₹♂ | U | 3 8 |
| and the second second | पृष्ठकाले रथसं,सारणं = | 18 | 2 | v | 396 | प्रकृत्या दशमम् | ₹8 | Ø | 83 |
| \$45 | पृष्ठधं चाभितो हादश | | | | 306 | प्रकृत्या पुवस् | 3.4 | દ | 38 |
| | द्वादश 🔻 🔌 | ₹8 | 3 | ð | १८५ | प्रक्रमतृतीयेनावृत्ते नोत्तरा- | | | |
| | ष्ट्रयः प्रदृः प्रथमोरिनष्टोः | | | | | 😗 सोम्बत् | 86 | ₹ | • |
| | मश्रतुर्थः० | १२ | 24.7 | 8 | २३३ | प्रकालितेषु महिष्यसम्- | | | |
| | पृष्ठ्ययोर्भेषये सहावतम् | 5 8 | 8 | २ १ | | पर्टविदात्याहमजानीति | ₹ ⊅ | Ę | 68 |
| २८९ | १ष्ट्रयस्तोम ःस्त्रिबृहत्वः | | | | | प्रगृद्धाध्वयीरावस्थहरणम् | 85 | Ę | ą |
| | खदशस सद्शैकवि /श- | | | | 848 | प्रच्छाच पुरीषेण विक- | | | |
| | त्रिणवत्रयस्त्रि/शाः | 22 | Ę | २८ | | णीस्वयमातृण्णे शकीरं | | | |

| पृठ | स्त्राणि | अ० | ক্ত | स्रु० | । पुर | स्त्राणि | स्र | ক্ষত | Ħо |
|---------|---|-----------|-------------|------------|------------------------------|--|------------|--------------|-----------|
| | स्रास्पृष्टे छिद्रे० | | | ₹6 | | प्रतिप्रस्थाताग्नीधोन्नेत्रे | | | |
| ३०३ | प्रजाकामपशुकामयो रेन्द्र। | • | | | | प्रतिप्रस्थाता वशावदान | | | |
| | अ कुलायः कुलद्क्षिणः | | 28 | { 2 | 1 | काले प्रचरण्यां मेधमवद्य | | 90 | 6 |
| 800 | प्रजातायाश्च दशरात्राद् | | | | 835 | प्रतिमन्त्रं वा वाक्यभेदाव | | | |
| | घ्वं {स्वानादि | 94 | 25 | १७ | | प्रतियूपसर्गीषोमीयाः | | A | 3.6 |
| 300 | प्रजातिकामस्य नवसः | | | | | प्रतिलोमं पार्डिकान्युपरि | | | |
| | सदशः | 3 3 | ₹ | 88 | | प्रतिलोमं प्रत्यवरोहा | | | |
| | प्रजातिकामस्योपसदः | ર ર | १० | १३ | | न्जुहोति प्रमाणेषु नमो- | | | |
| | प्रजातिकामानामेतत् | 58 | \$ | 38 | | स्त्विति प्रतिमन्त्रम् | | ? | 4 |
| | प्रजाते वायस्यम् | 3 8 | 3 | 50 | 1.0 | प्रतिलोमः परः | \$8 | | ₹ 8 |
| 865 | प्रजापतिः संभियमाण | | | | | प्रतिछोमः परः | ३४ | | १६ |
| | इति च यथाकालम् | ą | Ę 19 | 38 | | प्रतिकोमसु १रि | 58 | ma nie | . 6 |
| 188 | प्रजापतिरिति विश्वरुयोः | | | | 68 | प्रतिलोमाः | 26 | - 1 T | ₹6 |
| | तिवम् | 500 | 8 | 23 | 1 | प्रतिलोमा. परे | C. C. | 8 | |
| १२ | प्रजापतेरगुणाख्यानम् | ۶ą | 8 | 56 | | प्रतिलोमाः परे | ₹8 | M-55 | 38 |
| 200 | प्रज्ञातेष्ट्यतिपत्ती च | 34 | 8 | 2 7 | 1 3 60 61 | प्रतिकोमाः परे | ₹8 | | 58 |
| 266 | प्रतिकर्म सोमाः | 3 5 | l9 | 28 | | प्रतिशिरः सप्तसप्त हिर | | | |
| २०६ | प्रतिगरिष्यत्युपविष्टेऽ | | | | | ण्यशकलान्सुखे करोति | | | |
| | ध्वयो शोशमानेत्याहृया | | | Agh. | | सम्यक्षावन्तीति | e io | 4 | LØ, |
| | विवना तेजसेत्यनुवाक्र | | | | 2010 | प्रतिष्ठाकामस्य | | 4 1 1 | |
| | श्रुसवि ँ | 88 | ક | ₹ 4 | | प्रतिहत्तां चेत्सवैवेदसं | 7.5 | ٩ | 33 |
| • • • • | प्रतिगृणात्यरात्सुरिमे | | | | | देयम् | 46 | ११ | • |
| * ` | यजमानाः | • • | 8 | 9.5 | E G | प्रतीष्टि पुण्डरीकाणि | | 7.7 | |
| บด | प्रतिगृहमैकैकां इवः इवः | १५ | ta traces | ्रद (व | | प्रयच्छति | 96 | 6 | Ģ |
| | प्रतिगृह्णात्येनान् | 88 64 | COLD OF THE | ર ૨૬ | 886 | प्रतं चेत्केवलम् | | w | あがく ボニス |
| 2.31 | प्रतिचिति हे हे उपधाय | रुष १६ | | | | प्रत्तेन सजातः प्रतिप्र- | | | |
| | प्रतिदिशं यथालिङ्गस् | | १२ | २१ | | स्थाता च पुर्वाग्निसः | | | |
| | प्रतिदिशं बसन्त्यृत्विजः | २ २ | | ₹ Şo | | ਫ਼ਿਗਾਂ • | 8.0 | w | 65 |
| | प्रतिदिशमन्तेषु पराची- | ** | ₹. | 2.~ | 100 | प्रत्यक्षमक्षं यजमानो | (1 | | इड इड |
| ``` | नितस्रस्तिनाः हितस्रहितस्रोऽछक्षणाः | | | | | छोमानि प्रयतिरिति | 0.8 | ٩ | |
| | ारवजारवज्याञ्ख्यानाः पादमात्रीः | 20 | | 8 | | प्रत्यग्नि सवनीयपुरो- | () | 7 | ٧. |
| | पतिदिशमासादनमारनेथं | 7.5 | | . . | | हाशाः | 65 | ą | |
| 4. | प्रस्तात्त्रदक्षिणमितराणि सरस्तात्त्रदक्षिणमितराणि | 406 | 6 | | 030 | प्रत्यञ्चमागतं चितिमवः | ζ.Υ. | • | |
| ဗ္ဗာန | प्रतिदिशमेके | ~{ | | 1.75 5 7 | | व्राप्य परिणोयोत्स्वति । | | | |
| | प्रतिदेवतं तिखस्तिखान्- | ~♥ | ₹ | Ę | of the second of the | माञ्च पारणानार छ नाव पशुवत् | १७ | pa(Contract) | २६ |
| | 어떤 경기 시민 선생님들은 사람들은 그 사람이 그 일반에 하는 사람이라고 있다. | 38 | ę | 96 | Strategie and Artist Control | प्रत्यागते परं मृत्यविति | ₹. | | ` |
| ४१४ | प्रतिनिधाय यथापूर्व यज्ञेन | | • | | | जपति | 38 | U | 19 |
| | चोयुः | 46 | 9-2 | 26 | | पत्याह व्यत्यासः सविता | ٦٢. | 8 | |
| 289 | प्रतिपर्वावस्थाः | 35 ., | 2003 | , , \$8 | | | १६ | V | 6 |
| | | | | ** | | ************************************** | ١٦. | | • |

| | | | | | 100 | | * * | | |
|--------|---|-----------------|----------------------|----------|-----------|------------------------------|------------|----------|------------|
| 90 | सुत्राणि | स | ã5 ¢ | सुः | 1 To | सुत्राणि | 370 | ব্যুত | ٩o |
| 380 | प्रत्युपसद्मेकोचयेन कपा- | | | | | प्रागवस्त्रथेष्टः | 28 | | ę |
| | लान्येककपालप्रसृतीना- | | | | २७६ | प्राष्ट्रतस्य वा नयनं भेदेन | २२ | 3 | ३० |
| | माग्रेयाहिवनः | ₹ 3 | 3 | 138 | २७३ | । प्राइतस्यानिवृत्तिरद्वातु- | | | |
| ₹88 | प्रत्यृतुपशुनालमते पट् | | | | | योगात् | 23 | R | 88 |
| | षट्वसन्ताद्याग्नेयाने- | | | | ₹0€ | प्राकृताः प्रथमोत्तमयोः | | | |
| | न्द्रान्पार्जन्यान्सास्ताः | | | | | प्रयाजानुयाजप्रेषाः | 28 | E | १० |
| | न्वा ० | ३० | ٤ | 30 | ९० | प्राष्ट्रतान्यौद्ग्रमणानि | | | |
| १२३ | प्रत्येत्य दक्षिणतः | | | | | हुत्वा० | 28 | 8 | 30 |
| १३२ | प्रत्येत्य शेषम् | 20 | Ę | Ę | 346 | प्राङ्गताश्चेच्छन् | 36 | ક | ४१ |
| 3 2 8 | प्रथमस्त्रिककुप | 23 | | 80 | | प्राक्च प्रत्यवरोहेस्यो | | | |
| | प्रथमस्य बात्यस्तोमसाः | | 1 | | | सुखमात्रे | 76 | ŧ | 8 |
| | धःकेषु वचनात् | १२ | 2 | ą | 396 | प्राक् प्रयाजेभ्यश्चेत्रियुः | | | |
| હર | प्रथमस्यानुहोममितरौ | | | | | को झियेतान्यमालभेत | * 4 | ę | 8 |
| | ~ ~ | | | | 83 | प्राक्हिबष्टकृत औदुम्बरे | | | |
| | याज्या द्वितीयामनुच्य | | | | | | 88 | 8 | 38 |
| | तृतीया याज्याः | 28 | 8 | 510 | १९ | प्रागनः इत्वेख्यस्यो | | | |
| 238 | प्रथमोत्तमयोः पादमात्री- | | | 200 | | त्तरतः समिदाधानः स- | Syl. | | |
| | रतिरिका | 919 | U | 30 | | मिधारिनमिति | १६ | Ę | 24 |
| u ş | रतिरिका प्रथमो लोहितः | 26 | 80 | 3 | 2 2 6 | प्राग्ववाहोमाद्योताव्ययू | | | fisi. |
| 336 | प्रथमो विष्ठतिः | 98 | ą | 87 | | च सदसि संबदेते चतछः | | | |
| | प्रदक्षिण्य रथनीडपरिहारः | | | | | भिः कः स्विदेवाशीति | | | |
| | प्रदक्षिणमात्मानम् | | | | | पूर्ववत् | 30 | S | ęο |
| ११६ | प्रदक्षिणमितराः | ę vs | વ | 6.8 | 368 | प्राग्वा समिष्टयज्ञयः | | | |
| | प्रदरात्पुरीषमाहृत्य परि- | | | | | सं{स्थाश्रुतेः | 24 | 8 | 98 |
| | कृष्य वा सर्वतोऽपुरस्तात् | 3 8 | y | 80 | 966 | प्राकित तहामिनः | 28 | ą | • |
| 378 | प्रयाजेषु दक्षिणतो बाह्य- | | | | 28 | प्राची वा | { 9 | R | 8 |
| | णो यजमानस्य यज्ञदानः | | | | ३७३ | प्राच्येषु हस्तिनः | ३२ | ą | 58 |
| S NO A | युक्ताः॰ | 20 | 2 | US. | *8 | प्राजापत्य उपालम्भ्यः | 83 | ₹ | 26 |
| १०३ | प्र युञ्ज्यादावृतो ख्ये | | | | 6 9 | प्राजापत्यः पद्यपुरोडाशो | | | |
| | प्रस्तोता चेद्बहाणे वर | | | | | द्वादशकपाल उभयोः | १६ | ۶ | 88 |
| | | 44 | 99 | ٤ | 238 | प्राजादस्यवपानासुत्तरतः | | | |
| 3 88 | प्रस्तोता बाह्मणाच्छ/सि | | | | | श्रापण होमो हविश्व | 80 | 10 | • |
| | प्रावस्तोत्रीये | | શ્ | 80 | *8 | प्राजापत्यांश्च सप्तद्श | | | |
| 263 | | 99 | | Şe | 4. 3. 707 | इयामत्परान् बस्तान् | 68 | ą | 93 |
| | प्रस्वेयाच्चोदकात् | ?o | - T | * { } | 880 | प्राद्यावितरो | ₹. | ø | 6 8 |
| | प्राक्षतं चान्यार्थत्वादितः | | | | १८५ | प्राञ्जो दक्षिणोत्तर | Table 107 | B | |
| | रेषास् | ? ₹ | 3 | 28 | 263 | प्राणदा इत्यवरोहति | 9,397 0 | ą. | 化进工机 化 |
| | · 数 作者,是 12、16、16、18、18、18、18、18、18、18、18、18、18、18、18、18、 | ` 3 § | | ેંદ | 883 | प्राणसङ्गमेके | 28 | 3 | 28 |
| | प्राकृत्यं स्राह्म वाकप्रमृतिः | | | | 936 | प्राणभृतः प्राणं म इति | ę us | 100 | 30 |
| • | with Minner (2) | | 314 - 10 11 3 1 1 | | | | | Y. Seli. | |

| ς,ο | द् या णि | 87 <i>c</i> | ্ জ্বন | सु० | पृ | स्त्राणि | ভাৰ | , q 6 | 9 ₹ 8 |
|-------|---|----------------|-----------|------------|---------------------|-------------------------------|-----------|--------------|--------------------|
| | प्राणमृद्भवोऽपस्याः | 300 | c | 83 | ११४ | प्रायणीयान्ते सीरं युन- | | | α. |
| | प्राणस्द्रयो वापराः | ويع | 8 | 18 | | वस्योदुम्बरम् | 50 | ą | . 6 |
| 883 | प्रातः सवनाच्चेत्सोमोः | | | | | प्रायणीयेऽतिरात्रे युक्त्बो | | | |
| | ऽतिरिच्येत तसुन्नीयोपा • | | | | | दयनीये विमोक्सेके | 26 | Ę | 88 |
| | करणमस्ति सोमा | | | | 86 | प्रायणीयेऽद्य सुत्या मेके | đ. | | |
| | अयमिति | 3,9 | १३ | ę | | प्राप्तकालस्वात् | १३ | Ę | 48 |
| 4 9 2 | प्रातः सवनीयाननु हवी- | 90). 1981 S | | | 368 | प्रायश्चित्तं वा देवताश्चतेः | | | ٩ |
| | ११वि विश्ववि | 22 | ٤ | ę | १०१ | प्रायश्चित्तिः समिधोः | | | |
| 222 | प्रातःसवने जहोति संवे | | | | | पहत्य | 98 | ٤ | 38 |
| | शायोपनेषाय० | 3,6 | Ş | 98 | ३१३ | प्रासहा हतश्चेदिन्दाय | | | |
| 88 | प्रातःसवनेतिप्राह्यान्यः | | | | | प्रसहने | 8 3 | 8 | 44 |
| | ही त्वा॰ | 6.5 | Q | R | १७२ | प्रास्य वससमिन्द्राय | | | |
| 33 | प्रातःसवनेतियाद्यान्ग <u>ु</u> | | | | V., | स्वाहेति षड् जुहोति | | | |
| * * | हीत्वा ० | 9 12 | ç | २६ | | प्रांतमन्त्रम् | १८ | 9 | 24 |
| 933 | प्रातःसवनेऽ घ्वर्युम् ष्टियः | | | | | प्रास्य तृतीयसुपविक्य | ₹8 | . 10 | 8 |
| | न्दिने होतोद्गातावृती- | ari GMR | | | 808 | प्रास्यो बाया सुपति छते | | | |
| | यसवते | 26 | ွေပ | २० | | बोधा म इति | १६ | ક્ | 30 |
| 205 | पातःसवने प्रतिदृहा | | 7.0 | | १६४ | प्रेप्यत्युद्यच्छेच्मसुपयः | | | |
| 3,3 | 20013 | 23 | 9 | e | | च्छेापयमनीः | १८ | 3 | 3.8 |
| 226 | श्रवणम् प्रातररिनशोमः | 20 | | 3 3 | 888 | प्रेतु ब्रह्मणस्पतिरित्यु- | | | |
| 23 | प्रातरनुवाकः सन्धिवेळा- | | | | | च्यमाने | 38 | Ģ | 86 |
| | यामुदिते० | | ą | ę | ४३३ | प्रोक्षणीः संस्कृत्योद्यम्यो- | | | |
| 348 | प्रातराहुत्यन्तेऽदीक्षितो | | | | | त्थायाहबहानप्रचरि- | | | Name of the second |
| | दीक्षारूपाण्यासजते - | રક | t | 3 | | व्यामी० | #6 | ą | 28 |
| 293 | प्रातराहुत्यार्थ हुतार्था | | | | 184 | प्रोषितश्चेत्र्यातप्राचीना- | | | |
| | पूर्णाहुत्यन्ते वरदानं ब्रह्मणे | 120 | ę | 88 | | वं।ती निवास्यां० | 29 | 6 | ę |
| २२८ | प्रातस्वथ्यः | | | 8 | ५३ | प्लाशुकाना १५ सवित्रे | | | |
| | प्रातिनिधिको याजमार्न | | | | | सत्यप्रत्यसवाय | १५ | 8 | ٩ |
| | | સ | | | | 5 | | | |
| *45 | प्रादेशमात्रीं तिथेगूर्ध्वी स | 3 8 8 | 2 | 38 | 10. 70.00 | फलक्यावा | २० | 4 | २० : |
| ११४ | प्रायणीयहविष्ट्वदन्ते | | | | the contract of the | फलकास्तीणी विषयः | 44 | 8 | 99 |
| | महावेदेस्प्याचासम्मर्श- | | | | 1.00 | फलाऽश्वतेश्च | १३ | 3 | 36 |
| | मात्करोति प्रायणीयाचतुर्विक्षमहर- | 80 | ર | ঙ | ५३ | फालगुनीवक्षयज्ञनीयेऽसि- | | | |
| 398 | प्रायणीयाचतुर्विशंशमहरः | | | | | पेचनायाय दोक्षते | 84 | 3 | 3 |
| | भिजित्त्रयः स्वरसामानो | 855 | ₹. | 80 | A Company of the | फालगुनीपौर्णमासे | \$\$ | 8 | 37 |
| ३९६ | प्रायणीयातिश्योपसत्सु | | | | ८५ | फेने च तुष्णी ततः | | | |
| | पशुवपान्ते प्रतिसवहं | २२ | ٤. | 3 | | इ त्वा | १६ | ş | ₽ t9 |
| १९ | प्रायणीयाहुत्तरमहः सः | | | | | 4 | | | |
| | काळाभावात् | ?* | ā | ₹ . | १७१ | बस्तवर्मणि पुर्शच्छुः | 8.0 | Ģ | ? 4 |
| | With the second | | | 紅喉喉影 | 166年至5月 | 5. 最后的复数形式 医甲状腺 医多种性皮肤 医甲状腺素 | 5.64 (CM) | | a.尤为数字符号 |

| कु | Ψo |
|------------|----|
| 8 | 8 |
| | |
| 8 | 8 |
| | |
| ą | 98 |
| | |
| 2 | 88 |
| | |
| | |
| S | ₹0 |
| | |
| 88 | 39 |
| Terr | |
| 88 | 38 |
| • | |
| (g) | 88 |
| 8 | : |
| 37 21 s | |
| | |
| ę | 8 |
| ć | |
| | |
| 8 | 9 |
| | |
| 8 | |
| | |
| Ę | 88 |
| 6 | |
| | |
| • | 88 |
| | ì |
| | |
| | |
| | - |
| 5 | 32 |
| | |
| | |
| १२ | 18 |
| | |
| ₹ | 33 |
| | |

| | 100 | 类点 | | 14/21 | | | | | |
|---|-----------------|--------|----------------|------------|---------------------------------------|------------------|------------|--|----|
| ए० सूत्राणि | अ ० | an c | सू० | Ão | सुत्राणि | | | ० स् | |
| पृ० सूत्राणि ३७४ भस्मनो वा | ३५ | ١ | 3 88 | ₹ | ० मधोः प्राशनं घृतस्य व | | | | |
| ५२ भागवा होता | १५ | • | 3 8 | ३२ | ९ मध्यम आग्नेयो ् | | | ४ ३१ | |
| ३७६ सार्वागोषु यमजनने सार | | | | | ६ मध्यमात् पुरुषपञ्चमे | | ŧ | 6 | Į. |
| तं त्रयोदशकपाछं निर्वेपेत | | ্ | ३ इद | | ९ मध्यमे त्रिकद्वकाः पृष्ठय | ۲٠ | | | |
| ३६६ मिद्येत चेदवापद्येत स्व | | | | | मभितः १ मध्येऽस्यत् | ₹} | } | १३३ | Ų. |
| न्न प्रायश्चित्तेनाभिमृश्य ः | | | € . | 881 | ९ मध्येऽस्यत् | 28 | į. | @ a 8 | |
| १०५ भिन्नकृष्णयोरचयनम् | १६ | 4 | 50 | १ ३ व | सम्ये पुरीधं निवयति | | lar Jar | | |
| ३६६ भुवनपत्य इति हाविर्धी यम् १७१ भूत उपविष्टः | जे | | | | पूर्ववत् | 819 |) | Ę ę | |
| थम् । | 29 | | US. | १९१ | मध्ये यूपः | | | a & | |
| १७१ भूत उपविष्टः | १८ | ٩ | ् ११ | 880 | मध्येऽघंबृहतीश्वतस्त्रो | | | Ì | |
| २२० भूमिकपालो वैद्यानरोऽि | Ì | | 1 | | दक्षिणोत्तराः : | 93 | , | ્ ૯ | |
| प्ट्यामये | | ą | 83 | 386 | मध्ये इतम् | - 1.79 | | ४ ३१ | |
| ६० भूमिमवेक्षते पृथिवि सार | ₹• | | | | ६ मध्येऽहेष्टकं गाईपत्यम् | | 119.50 | २ १८ | |
| iela | 84 | ٤ | ₹૪ | 830 | स्मेरक्वेति प्रादेशमुत्तरत | 40.00 | 100 | | |
| ३८४ भृमिर्भुमिमवाद्दान्माता | | | | | मन्त्रक्रमेण वा | | 1000 | 9 {o | |
| मासरमञ्चगात् भूयाय | 50.4131 | | | - F | मिन्थनो विमितस् | | 1000 | , १४ | v |
| पुत्र: पशुमियों नो हेप्टि॰ | | | | | सर णकासस्य | | Acres 1 | ্ | |
| ६८ भूम्यनिष्ठानं च | 5 15 mb | | 3,8 | | मरणान्तं भवति | 26 | | , 6 | |
| १२४ भृरित्येतस्याः साम | | | | | . महतामिति दक्षिणधुर्य | , , | • | , , | |
| गायति | 919 | Ų | 9 & | 9.7 | मर्थातमस्य प्रायमञ्जूष प्राजति | 0.5 | e | | |
| गापात २६४ मुधेनुदक्षिणः | 22 | 9 | 3 | | | र्ष | ৰ | १८ | |
| २६४ मु बबुदावणः ३७१ भेदेनाप्युपपातात् | 3.4 | | 3 4 | 3.0 | मरुत्वतीयान्त इन्द्रस्य | | | | Á |
| 이 사람이 되는 것으로 보다는 사람이 들어 없는 사람들이 되었다. | | 6. 2 | 3 | | वज्र इति रथावहरणम् | 18 | 3 | 8 | |
| ३८० भेदेनाच्युपपातात् | _ `` ``` | | ₹. | - ५७ | महत्वतीयान्ते पात्राणि | | | | |
| ३७४ मेदे विप्रक्लप्त्युपपाताः | 2.6 | ı, | e s . | | पूर्वेण व्याघ्रचमीस्तृः | | | | |
| भ्या य | | | १ ६ | | णाति० | 86 | ę | 8 | Š |
| ६४ सेषज्याभिचारयोरप्येषा | 3.4 | ঁ | 33 | 88\$ | मरुत्वतीषु गायत्रेण | | | | |
| ६९४ भोजनीवसृते प्राजापत्यो | | | | | स्तुवीरन | 36 | 83 | R | |
| द्वादशकपारुः | | | 33 | २५ | ममाणि त इति कवचे | | | | |
| म ४२७ मस्त्रायेति पयः | | | | | प्रयच्छति | 83 | | 1 1 2 2 2 2 2 | |
| _{धर} ७ मखायेति पयः | 38 | ? | δc | | मल्हाऽविः सारस्वती | 84 | 90 | 8 | |
| ११० मण्डल छाद्यात | 80 | \$ | ٩ | 386 | महातापश्चितं त्रिषंव- | | | | |
| १०५ मण्डलाहा प्रक्रमणमन्तः | | | | | त्सरोपसत्कम् | 88 | Ģ | 8 | |
| वास्यस्य | { \$ | 139 | 30 | | महाव्याहति भिरेक | 23 | | | 9 |
| १६१ मण्डुकावकाचेतसवाखा | | | | 343 | महान्याहतिहोमोऽनादेश <u>े</u> | ₹6 | 8 | 8 | |
| े वेणी बद्ध्वावक्षितिः | १८ | ą | 88 | | महावतमेके यथोक्तम् | | | | |
| ११० मत्या च | १७ | 3 | 96 | | महासत्राण्यतः | The Court of the | | 5 Table 10 T | 理な |
| ५७२ मध्यमानश्रेष्ठ जायेत | | | | | महिमानी गृहाति सौव- | | | | |
| वमदूरात्परापश्येसमाह | | | | | णेन पुर्वे¦हिरण्यगर्भ इति, | | | | |
| ि त्याभिज्ञहुयात | ₹4 | 8 | 8 | | | ₹ø | 4 | 2 | |
| autorious challes de la | | u NOTE | r (5) 题 一 简 () | さいことが 周辺を立 | 1800年6月1日中央党工中国委员会,在1800年6月1日日本企业的基础。 | 5 5 5 6 7 | 2.25 | CONTACT. | |

| | | | | 1.00 | | 소설한 되는 말한 등 관계들이 하였다. | | Car Air | | |
|-----------|--|--------------|-------------|--------------|------|--|-----------------|-------------|-------|----------|
| | सुन्नाणि | 6 7 o | 4 50 | €0 | Zo. | सूत्राणि | € ₹5 | 80 | स्व | ř |
| २३४ | सहिषीमुत्थाच्य पुरुषा | | | 574 | | सुखेऽग्निहोश्रहवणीयम् | 24 | v | 56 | Ĺ |
| | द्धिकान्य इस्याहुः | 30 | 8 | 28 | \$88 | : सुक्यासनेस्योऽनुस ृ सर्वः | | | | |
| ଓ | माश्वीपर्यासने चेन्छन् | १६ | 8 | ३ ९ | | मितरा <i>णि</i> | 3 | 8 | 86 | |
| 268 | मागधदेशीयाय बह्मबन्ध | ग्वे | | | 888 | मुर्घाति राडिति प्रति- | j vý | | | |
| | दक्षिणाकाले बात्यधनानि | | | | | सन्त्रस् | ۶۷ | 3 | 23 | |
| | द्यु: | | Ş | 28 | १२४ | गुलायवर्ती दूवी तस्थां | | | | |
| . ૪૬ | माघीपक्षयजनीये दीक्षा | | | Ę | | पुरस्ताद् भुमिप्राक्षां : | 90 | 8 | 94 | |
| | माधी वा कयश्चतेः | | | T 455 | ३१४ | मृतं बाह्यणान्भोजयेत् | 23 | 8 | ₹ 2 | |
| 43 | मातापित्रोश्च | 84 | 8 | 99 | २२१ | मृतादर्शनयोः | à p | 35 | 38 | |
| | मात्मिर्वरसान्स्मृ एउप | | | | 366 | स्ताहिताग्न्यावृत्त | 8.5 | E | 8 | |
| 9८२ | मातोत्तरे | 9 8 | | 80 | 360 | मृते तदन्तमर्थामावात् | 33 | E | 6 | |
| 533 | माध्यन्दिनाश्चेतपूर्वेवदुः | | • | | 818 | सुदं वलमीकवपं वराह- | | | | |
| *** | पाकरणम् | 36 | 23 | | | विह्तं पूतीकानजापणे । | 25 | 9 | *** | |
| 18 | माध्यन्दिनीयैः सह नेवा | | ì | | 850 | सदमादत्ते विण्डवद्देवी | | | | |
| | रश्चरबाईस्परयः | 912 | 9 | \$ 12 | | बावापृथिवी इति | 28 | 2 | ę | |
| 9 0 | माध्यन्दिने वाप्रयणादुः | | | | 836 | मृदमादाय मखायेति | | • | | |
| | त्तर: | १२ | 6 | 2 | | महाबीरं करोति प्रादेश- | | | | |
| 220 | मानव्यः सामिधेन्यः | 58 | | | | मात्रमृद्घ्वं मासे चनवन्तं । | 9.5 | 9 | 98 | |
| | मानोमित्र इति च प्रत्यूच | | ો | , | 2.9 | सृदमुपशयां निद्वाति | | | | |
| ٠,٥,٠ | मनुवाकास्याम् | ३ ० | | £ | | मृन्मयानि वा | \$ 5 | | 38 | |
| U P | मारुवो प्रामण्यः | 9.6 | a | ટ | | मेदोऽस्येद्धरन्ति वपार्थे | | . 6 | , ve | |
| 000 | मार्जाछीये वा | 56 | ୍ୟ ତବ | | | मैत्रावरणधिष्णयस्य पुरस् | | | | |
| | मार्जाळीयं दक्षिणेन | ``` | 7.4 | 44 | | | १५ | v | 26 | |
| | परिवृत्ते० परिवृत्ते० | 23 | 9 | | 296 | मैत्रावरणाग्रान् पहान् | | v | 4. | |
| | 建铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁铁 | | 1975 | 3.374 | | गृह्रीयाव | 2 G | 83 | 912 | |
| | मासं दीक्षाः | 5 1 1 1 1 1 | N | \$ 6 | | मैत्रावरूणो ब्रह्मत्वप्राः | | 3. T | 1.4 | |
| | मासं पुशेषं तृष्णीम् | 800 | B | १ट | 288 | 내가 그리고 하는 아내를 받았다. | | | | Á |
| 900 | मासरकुम्भं प्लावयति | | | | | तिहर्न | | 8 | | 100 |
| | युद्देवा इति | 88 | | | 96 | मैथुनं वर्जयेदापयस्यायाः | १६ | 8 | ર ૮ | |
| 建化氯化物 医乳头 | मासाः १ष्ट्यमध्याः | २४ | 8 | ૪ | | मोक्षं त्रिवृद्धचन्यम् | | | | |
| | मासाः प्रध्यादयः | | | | | मौजं त्रिवृद्य जन्यम् | ३६ | ₹ | | |
| | पूर्वपक्षे | <i>5</i> 8 | 2 1 1 | | રક | मौज्ञास्तन्तचो वैतसं | | | | |
| | मासान्तराणि० | 100 | 8 | | | वादनम् | 83 | ą. | 99 | |
| | माहेन्द्रमनुहोमः | १३ | 3 | ٩ | ४१६ | ब्रियेत चेन्निर्मन्थ्येन | | | | Ų. |
| 39 | महिन्द्रान्ते वशावपाच- | | | _ | | दुरुवा शामित्राद्वास्थी- | | | | |
| 1 | रणम् | \$8 | * | 34 | | न्युपनहा० | 24 | 83 | 26 | ÿ |
| | मित्रस्य वस्मस्येत्यस्य | | | _ | | | | | | |
| | | | ٩ | | | | | | | Š |
| | मित्राबाईस्परयश्च रः | १५ | * | 40 | 459 | य इन्द्र इति पुरोडाशानां | | | | () () |
| 96 | मित्रोसि वरूणोधीति वा | 19 | ٩ | 50 | | पुचवत् | ?\$ | ۹. | 28 | į. |
| | 极重大的 法国的第三人称形式表 化邻氯酚 | | | | :大百年 | or a constitution of the c | USANA. | 36.00 | 90 A. | 2 |

| ए॰ सूत्राणि | झ | ₹ | स् | go | सुत्राणि | e70 | ফু |) सु ० | |
|--|--|----------|------------|---|--|---------------------|------------|---------------|---------------------------------------|
| ३८४ य ऋते चिद्मिशि | भवः पुरा ज | | | | १ यथार्थं विप्रवजेयुः | | | 38 | and the second of the |
| त्रुभ्य आतृदः स | | Q | 30 | | ट यथाशकि दशवगीन्द | | | * 3. | 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 |
| ३१२ यः कामयेत बहुः | स्यामिति | 4. | | | द्यात् _ | | | . 88 | |
| स एतन वजेत | 33 | 8 | १३ | | ६ यथाशक्ति वा | ₹8 | 9 | १३ | |
| | १३ | | 83 | 38 | ८ यथाशक्त्येकविश्वातिव | | 5 | | "mark |
| ३५० यजनीययोरहोग | भायुषी २४ | | ą | | र्गान्द्द्यात् | २२ | 80 | ሪ | |
| ८६ यजमान उढां क | | | | 4 | २ यथासंख्यं दक्षिणा हिर - | | | | |
| मादाय मखस्य | | 4.85 | ર રૂ | | ण्यां शितिपृष्ठवैभो० | 24 | 3 | 9.4 | |
| ९२ यजमानः कण्ठे स | | | | 33 | १ यथासवनन्तैः सवनेष्वा | | | ij. | |
| प्रतिसुद्धते० | १६ | Ģ | P | | अनाभ्यक्षने ० | 3 8 | 3 | 20 | |
| २८७ यजमानपात्रजीप | हवीछ• | | | 386 | १ यथास्थितं यज्ञाङ्गानि | | in Jane | | |
| ्याहवनीये प्रास्य | | | 1 | | हरन्ति | \$8 | 8 | 8 | |
| गच्छेयुः गच्छेयुः | | ø | ٩ | u | । यथास्वं वेतरे | १२ | 8 | 8 | |
| ग <i>्</i> छ्युः ८६ यजमानपादमात्री | | • | | - 59 | यथोकं वा सन्त्राणामः | | | | |
| | 右跨点 的现代的 热致设计标准 | 2 | 44 | | विधागात् | १९ | 8 | 8 | |
| १९८ यजमानमाळभते | | | २२ ११ | 350 | यथोक्तपृष्ठः | 58 | w | 30 | |
| 불다 하다에 다 된다마 하상을 하다 하나는 사람이라면? | TOTAL RESIDENCE OF THE PARTY OF THE PARTY. | N. 16 10 | | | यथोक्तसम्बादौ देवताः | २० | Ę | 3 | |
| ६७ यजमानस्य राजन | | | १८ ८ | | यथोक्तमाहवनीयस्य | २४ | Ģ | 38 | |
| ३ यजमानाः सर्वे स | | 7 | | 396 | यथोक्तमुत्तमो यथोकः | | | | |
| १०६ यजमानेनोद्ध्वंब | | LETT - | | | सुत्तम: | * \$ | 4 | ₹.@ | |
| च्छिते न स मस्थित | | | 3 3 | 396 | यधोक्तस्य स्तोत्रह स्तो- | | | Trans. | |
| २३७ यजमानोऽध्वर्थे पृ | च्छाम | | | | त्रियं वर्चे वा साम वा॰ | રક | | 11 V T 11 4 | |
| स्वेति | The second secon | Ø | \$8 | 1 1111111111111111111111111111111111111 | यथोत्साहं दद्यात् | 55 | 9 | 4 | |
| ४० यजुर्युकानाघापय | (1574-146 C., 250c.), 15 cm., 16 | | | | यथोपदेशमहानि | २४ | 9 | 3 | |
| वाजित इति | | | १२ | | यथोवयुक्त्यं हिरण्यस्रजः | 68 | 8 | ५२ | |
| १४१ यजुष्मतीश्र जान- ५६ यज्ञरूपस्यृतम् | (% | | 88 | ११३ | यदत्रेति सौरान्भक्षयः | | | M. | |
| ५६ यज्ञरूपस्यूतम् | 84 | | १० | | न्ति यथामक्षितं प्राची- | l 19. ku William | | | |
| २८३ यज्ञ्विअष्ट्स्य च | | 8 | ३२ | | नावीतिनो दक्षिणतः | 88 | 3 8 | le. | |
| १७३ यत्रीपधयो न जा | | | | ४१२ | यदनुरुभे रंस्तदेकधनेर | | | | |
| चयजनस् | | ş | 3 | | स्युन्नीय प्रमावयन्तः | | | | Í |
| -३६६ यथाकालोपपाते । | | | | | | ₹ 6 | ? ? | 18 | |
| तत्वैवत् हुत्वा | | 2 | 8 | हे है उ | प्रचरेयुः यमातिरात्रम् | 88 | 3 | 4 | |
| २५५ यथा् इवेतोऽस्युदि | | | | ₹६ ८ | यसास्यां वा यजेत पूर्वाः | 483 | | | 100 |
| त्सुर्थ ः | | | \$8 | | | १२ | § 3 | 1 | |
| २७७ यथाकोशसक्ताः | રર | 7 7 1 | | | यवोरोजसेति वादकेनो- | | | | 1 |
| १०८ यथाऽग्निवेदोष्टका | | ٤ : | 36 | | | ર ૬ : | ₹ : | 8 | į. |
| २७२ यथाद्रव्ये जनपदे र | 九百八年的一位,大百岁二十岁多年,万岁 | | 1 | | यवक्रकेन्डुचुर्णानि च | | | | Ē. |
| तेषां यथोत्साई द् | | | | | | १९ | २ २ | | ľ |
| ३६ यथान्यार्थं वोभयो | | | | The East of the Park of the Park | युस्ते स्तन इति स्तन | | | | |
| १९९ यथाम्नातं वा सर्वे | वास् १९ | 9 | Ę . | | मा ळ्मते | 2 6 (| į | 6 | L |
| CONTRACTOR OF THE PROPERTY OF THE PARTY OF T | MONEY STATES SECTION | 1550 | partie by | 1967/2013/90/03 | one en estat a la estat de la compania de la compa | 120 CONTRACTOR | Sec. 12. | 10人は紹丁金 | 2.00 |

| Дo | सूत्राणि | अ० | क० | सू० | ão | स्वाणि | स० | قة c | सुठ |
|---------|---------------------------------------|------------|-----------|------------|------|---------------------------------|--------|-----------------|-------------|
| 883 | यस्मात्स्तोमादत्तिरः | | | Teles. | 800 | यूपविरोहणेऽन्तस्तन्त्र; | , Ą. | | |
| | च्येत स एव कार्यः | | | | | सं(स्थितेऽहनि | ąĢ | ę | १५ |
| | सर्वत्र | 24 | 83 | 8 | 33 | यूपनेष्टनं, ससद्शमिवंछे- | | | a Tirk |
| 2 63 | यस्माद्वा विश्व/शेरन | | | 4 3 | | व्युंद्यस्थनं वा० | 45.5 | 8 | ₹ 5 |
| | यस्मित्रहन्युद्गात्रपच्छे- | | | | 306 | यूपैकादशिनी चास्मिन् | | ę | |
| | दोऽहराणे तस्यावृत्तिः | 26 | 8 | १२ | | यूपैकाद्शिनी भवति | ą p | - 1 - 71 | S |
| દ્વ | यस्याश्च जाते राजा | | | | 338 | ये आत्मानं नैव जानी- | | | |
| | | 96 | 8 | 9.8 | | रंस्तेपामेतव | \$8 | ş | १इ |
| ११७ | भवति ग्रा आषधीरिति तृचैर्वे. | | | | २७८ | ये वेदिममितस्तानुत्तरः | | | |
| | प्रत्युद्पात्रवत् | | | | | नेदिरेयो स्टब्निनत | 22 | 3 | 83 |
| 308 | याज्यानुवाक्याश्च वपायुरो | - | 5 52/2 | | 868 | ये. समाना इति यजः | | | |
| | डाशपशुनां वसन्तेन ऋतुने। | ति१९ | 0 | 88 | | मानो जहोति | 88 | 8 | <i>2 10</i> |
| 200 | याज्यानुवाक्याश्च वपापुरो | | | | ३१३ | यो अर्वन्तामति वाच- | | J. 14 | |
| | डाशपश्नामायात्विनद्र इति | | 8 | £9 | | यति | | | |
| | याज्याश्च | 98 | | 3 | ६७४ | योक्त्रपरिहरणं च स 'त्र | 26 | E | R |
| 3/0 | यात्सत्राणि सारस्वतानि | | | 29 | 338 | योऽभिष्लवसम्ये पृष्ट्य | | | |
| | यावच्छेषसुसरेषु | | | 94 | | उत्त्वमः सः | 88 | 38 | q |
| 0 ta 10 | यावजीवं वतान्यविशेषाव | | | 3? | | • | | | |
| | यावती शावापृथिवी इति | ~~ | | | 86 | रक्षसां त्वेति सुवसस्यति | 1.0 | 17.0 | |
| | दिधियमग्रहणं मियत्यः | | | | | तां दिशं० | | ş | 13 |
| | | 28 | 蝎 | 2/ | 838 | रजतसतमानं खर उपगृह | | | |
| ev a | दिति मक्षणम् | रूप कथ | | 38 | | पृथिन्याः स्र्रस्पृश इति | 38 | ş | ₹ ⊅ |
| 83 | यावत्स्मृति वा यावदाचरेत् | 20 | | १६ | 454 | रजतसुवर्णसीसाभिवी | | | |
| | यावदिष्टकं परिश्रितः | 4.4 | • | | | सन्त्राम्नानात् | २० | 10 | |
| 704 | यावादष्टक पाराञ्रलः परिनिधाय | 01 | £ | | 1 | रज्जुदालो सध्ये | २० | | 80 |
| | | ζ. | , A | 8 | | रथकारगृहवासाश्च | ঽ৩ | 3 | 84 |
| | यावदुक्तां सोमिका गुण- स्वात् | १६ | 9 | 38 | ६१ | रथवाहणस्य दक्षिणेऽन्ते | | | |
| 888 | त्वात् थादुकम् | 28 | | Ģ | | बतमानावासजति वृत्ती | | E | |
| 243 | यावन्तो धुविष्यन्तः | | | | २३९ | रथश्च रथाह्ने च | 20 | 200 | 83 |
| | स्युस्तावतः क्रम्मानादायः | २ १ | 3 | Ę | 831 | रथाह्न च _ % _ C_ (2) | 47.19% | १४ | |
| 938 | यास्त इति द्रियज्ञषं | | | | | रथी हविर्घाने | 22 | | १२ |
| | द्वितीये | | ß | | | राजदुहितरः प्रथमायाः | २० | | ₹ ३ |
| | युगपच्चद्विरोधाद्विकलपः | 24 | 65 | १० | ३१२ | राजन्यानां द्वितीयायाः | ₽¢ | ₹ | { 8 |
| २६८ | युगवहा _ | 45 | १ | 38 | ₹ १६ | राजन्यो धृतिषु युद्धजप- | | | |
| २२९ | युनक्तवेनं युक्तन्ति बदन- | | | | 2 43 | युक्ताः राजपुराहितयोवां सह | २० | 3 | 6 |
| | मिति ू | Ro | Ę | Şο | 201 | राज्युसावस्याता खरू यजमानयोः | 32 | ११ | ¢ io |
| १२ | युवन्तमिति दक्षिणस्या- | | | | | पजनाचनाः राजयज्ञाविस्येके | | ११ १० | 30.00 |
| | धोर्सं॰ | १२ | 8 | 85 | 200 | राजयज्ञोऽद्यवमेधः स र्वः | ``` | • | |
| ৭৪ | यूप्युत्तरेण वैमित्तिकी । रसम्भवाद | 84 | Ŋ | २ २ | 176 | कामस्य | ३० | . 6 | 8 |
| | | | | | | | | | |

| ত্ৰ | स्त्राणि | अ० | ক্ত | स्० | Ã0 | स्त्राणि | अ० | ক্ত | सु० | |
|--------------------|--|--------------|--------------|---------------------|--|--|---|-----------------|---|---------------------------------------|
| 299 | राजविभिः सङ्घायनमा | | | | \$ 8 | लोकप्रत्ययात्. | 23 | 8 | 9 | 3 |
| | दोक्षणोयायाः | 20 | 3 | . 6 | 808 | लोकं 2णासु दशसु दशसु | | | | |
| 5 003 | राजसूययाजिनः कर्मी- | | | | | मन्त्रो लोकं पृणेति | १६ | હ | 28 | , 2 |
| | पवर्गे वा सौत्रामणी | १५ | १० | २३ | १३२ | खोकम्पृणादक्षिणा ं साद | | | | |
| ६३ | राजा राजभ्राता सूतस्थ- | | | | | ध्यासध्यास्प्रदक्षिणमा- | | | | |
| | पत्योरन्यतरो० | १५ | ঙ | १२ | | नुकान्तात्पूर्वस्मा त् | 90 | 8 | Ģ | |
| १८१ | राज्ञोवरुद्धस्य च | १६ | 8 | 3 | 886 | लोगेष्टकाः स्पर्यनाहृत्य ब | | • • | | |
| 88 | राज्ञो राजसूयः | १६ | 8 | 8 | | हिवेंदेरनुकान्तेषुपद्याति | | , 3 | 80 | |
| ११३ | रिकी नावेक्षेतोखाम् | S ra | | \$ 8 | 220 | लोहकपालं जातकण्यों भे- | | | | |
| व ९६ | रुस्म/होत्रे | 3 8 | ę | 8 | | दात् छोडित उच्छीषः | 30 | 3 | 60 | |
| | रुक्मप्रतिसो चनविष्णुकम | • | | | 60 | खोहित उ ष्णीषः | १५ | 3 | 30 | |
| | बात्सप्रेषु च | 28 | * | 3,2 | 538 | लोहितं चात्य अपयन्ति | ₹0 | B | હ | 10 |
| ₹8 | रुक्मप्रतिमोचनादि प्रा- | | | | 508 | लोहितः सवनीयोऽप्रये हः | | | | |
| | ग्वात्सप्राद्विष्णुक्रमाः | 28 | 8 | 8 | | इवते | Ą | ą | 83 | |
| ę us | हक्समधः पदं कुहते | | | | 359 | लोहितदोहे दक्षिणानि | | | | 9 |
| | मृत्योरिति | १६ | Q | 88 | | परिक्रित्य= | | . 2 | 1 | |
| 300 | रुक्मळळाटोऽघः घरेतो | | | | 580 | लोहितमवद्यति गोसृगक्- | | | | |
| | दक्षिणा | રૂ ર | ą | 88 | | ण्डाखशकयोरयस्मये चरी | ર ૦ | E | 8 | |
| 836 | रुचिते वोत्तरम् | \$ G | ષ્ટ | 8 | 528 | लोहितवाससो लोहितो। | | | | |
| 888 | रुद्रा आदित्या इत्यु | | | | | ष्णीषाः प्रचरन्त्यृत्विजः | | | 83 | |
| | क्तरयोः सवनयो | ঽ্ব | 83 | ₹'9 | 834 | लौहाः पर्वङ्गयाणाम् | ₹० | Ø | 8 | |
| - ૬૨ | रुद्राय पशुपतये | 84 | ષ્ટ્ર | 99 | | व | | | | |
| \$88 | रेत:सिग्वेळायां च सप्तदृष | ľ | | | 239 | वकालिखितानां दक्षि | | | | , |
| | सर्वतो नवः | १७ | १० | १७ | | णोत्तरे सध्य इतरासाम् | 90 | وا | 29 | |
| १३ ६ | रेतःसिग्वेलायामनुक- | | | | 200 | वचनादेकस्य े | | ₹ | 1 | Š |
| | सुत्तरेण पूर्वी द्वितीये | হ ধ | ď | ą. | ३२८ | वडवा दर्शयस्यभिरसति | | | | |
| | रीद्रश्च गावेधुकः | | 8 | 36 | | तत्स्तोत्र म् | . i | Ą | y | |
| Ģ € | रोद्रीयजमानस्याक्षावापः | | | | 200 | वडवास्यो वारणम् | 3 0 | à | | |
| | गोविकत्तंगृहेस्यो० | 84 | 3 | १२ | | वण्महाँ । असीति बृह | | | | |
| | रोहिणं जहाति | २६ | ફ | 88 | 1 | तोष्वादित्यवतीषु गौरी- | | | | ÿ |
| 884 | : रोहिणहवन्यो चावऋष्टे | | | | | | ३६ | 83 | 8 | |
| | वाह्ये | 35 | Ø | १५ | 828 | वितेन स्तुवीरन् वत्सः पूर्वे | 99 | 9 | ę | The same |
| 854 | रौहिणी अधिश्रयति | | | | 385 | वत्सतरीशतसृषभाधिकं | | | | |
| | त्रुव्ली प्रामपिष्टानाम् | ₹ફ | 8 | Ę | | | २४ | Ģ | २८ | V. |
| | ਰ | | | 3 (1.55) 1721.30 | ३९७ | वत्सतर्थश्च त्रिहायण्योऽ• | | | | "是我 |
| २ ११ | १ छलामम् | ३० | ę | 38 | 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1 | प्रवीताः पञ्चवर्षा राजी- | | | | |
| १८१ | । ভারবুর্গানি च | १९ | 1000 | २८ | | वपृष्ठनयोऽ | २२ | 8 | 88 | · · · · · · · · · · · · · · · · · · · |
| | : छिङ्गपहणे गौ: सर्वत्र | १५ | . 2 | १० | 1. F. F. (2007) L. P. | वत्सा वा पञ्चाशतो | | | riviti; situsti | W |
| - 2 6 1 | ३ सेल्वको बाधको वा 🦠 | 44 | ₹ | 6 | | यथर्तुजाः | 48 | • | १५ | |
| as complete of the | armana merekaka kecamatan dari kelalah 1980 di 1980 di 1987 di 1987 di 1987 di 1988 di 1988 di 1988 di 1988 di | أأحيلته تزنم | 1,500,700,00 | 化二氯化甲基甲基 | 网络沙洲 精神 | en en ante de la laborate també de la Calabrata de la combina del Calabrata de Calabrata de la Calabrata de Ca | 1 th | * \$. T. 1 1 2 | 11 The 12 1 | cate. |

| | | | 7段. | | | 회의 회적 시험하여 중심하다. | - 1 | | |
|------------------|--|-------------|-------|-----|------|---------------------------|-----|------------|------------------|
| | सूत्राणि | 370 | कट | सू० | 1 | सुत्राणि | 310 | হ্ম ১ | सूर |
| 800 | वनीवाहनमेतदीक्षासु | | | | 20 | वसतीवरिग्रहणं च | 23 | इ | G 3 |
| | यदेच्छेत् | १६ | S | 48 | 88 | वसतीवरिपरिष्ठरणादि वा | 63 | 8 | 3 |
| 388 | वपया सुलमवच्छाचाः | | | | २२६ | वसतीवरीर्यहीत्वा गृही- | | | 14.5 |
| | न्निभिरादीपयन्ति | 3 4 | | 30 | | त्वा प्रतिदिश्य समासिक | ą · | ii b | |
| | वपाया वा | 18 | 1 | 84 | | परिहरित | ₹≎ | 8 | 38 |
| २४० | चपान्ते द्वितीयेन पूर्ववः | | | | | वसवस्त्वेति प्रथयति | १६ | 3 | ₹ & |
| 19 (4) 19 (4) | चस्ते रात्राविति ज्होति | 8,5 | ₩ | 3.5 | 880 | वसिष्टशको गायेति | ď. | | |
| 800 | वपान्तेऽनपेक्षम्घवर्धुयैजन | | | | | प्रेप्यति | 26 | 9 | 88 |
| | मानो वेत्यध्वर्थुः ः | 36 | 80 | 8 | २०३ | वसिष्ठद्यनकानां नारा- | | | |
| ३७६ | वपान्ते सुन्रह्मण्यातिः | | | | | श्रंसः | 23 | 6 | E |
| | वृत्तिः | 55 | 3 | 3.6 | 259 | वसार्थारां जुहोत्यौदुम्बः | | | |
| | वयाभिश्चरति | २० | Ç | 80 | | यां पञ्चगृहीतां सन्ततं ः | १८ | ્લ | . 8 |
| . હર | ववामाजैनान्ते क्रजैः | | | | 80 | वहिनी दृष्येन्द्रस् | 89 | | 3 6 |
| | परिस्तृतं प्रनाति वायुः | | | | 858 | वा गृहीत्वा विगृहीधात् | 24 | { } | 8 |
| | पूत इति | 89 | ₹ ? | १० | | वाग्विसर्जन्यं सन्नकामेन | | ે | 27 |
| १९१ | चपामार्जनान्ते प्रहानादाय | | | | 38 | वाच उत्ताममेक | 88 | | 88 |
| | पूर्ववदनुवाचन् सुरासो | 0.0 | 2 | | 388 | वाचं यच्छेति चाह | ₹ ७ | ę | 80 |
| | मेन्योऽनुष्हीति वयसावप्रज्ते वमसेन्त- | १९ | * | ረ | 84 | वाचं विख्ज्य समिद्राः | | | ĮΫ, |
| 800 | रिक्षेण पतित यातुधान- | | | | | धान्। रात्री७० | 88 | Ę | Ą |
| | प्रवोधितश्चमसँ३ | 2.5 | 0.0 | 2.5 | 233 | वाचयति पत्नीर्नयद्यमः | | | |
| 832 | वयस्याः पञ्च पञ्चानुकाः | 29 | \$ \$ | 54 | 144 | स्तेऽस्व इति | देव | 3 | १३ |
| 120 | न्तेषु मृद्धांव्यय इति | | n in. | | 3.6 | वाचयत्येनाः पर्यायादिषु | १३ | | 38 |
| | प्तत्र मूक्षाञ्चल शत प्रतिमन्त्रम् | १७ | | 33 | 1 | वाचस्तोमाश्चरवारः | 23 | | े. २ ६ |
| . દર | वरं वृत्वा बहान्नित्वाः | ₹" | | ** | | वाच्यत्वाच | 86 | | ę |
| | मन्त्रयते पञ्चकृतवः | 99 | 19 | v | | वाजपेयः शरधवेदयस्य | 68 | Aug Mar | 8 |
| 3.49 | वरदानं च | 2 5 | | १२ | | वाजपेयवदाज्येनाभिष- | | | |
| | वरुणाय घमेपतय इति | | | १३ | | च्यते द्वटणाजिने | 22 | 6 | 28 |
| | वरूत्रीष्ट्रेनीक्षमाणी जपति | - | | 88 | 60 | वाजपेयवद्गथमवहत्य | | | |
| | वर्गान्तरेष्वतिरात्राः | 1 W 1 1 1 1 | | 8 | | दक्षिणस्यां वेदिश्रोणीः | १५ | ٤ | 29 |
| | वर्षत्यसरणमतः | 8& | 100 | २६ | 950 | बाजप्रसवीयानि वप्रावत्स | | | |
| | वर्षिष्टरशनः पुरुषोऽनुपू | | | | | म्मृत्य चमसवत्सुवेण | | | |
| | व्या इतरेपास् | 98 | 8 | ۶ | | वाजपेयिकानि वाजस्ये | | | |
| ረኔ | वलमीकवपामादाय च्छि- | | | | | ममिति | 96 | 8 | 8 |
| | द्रेण पिण्डमीक्षतेऽन्वरिन- | | | | 36 | वाजिन इति वाचयति | १४ | 3 | २ २ |
| | ftfa . | 88 | ₹ | \$8 | | वाजिनस्य शस्त्रोवाजे | | | |
| ₹8 | वशायाध | १४ | | २१ | 100 | वाज इति | 28 | 16 | 98 |
| | वषर्कृते | ३६ | १२ | • | 508 | वातहोमान् जहोत्यक्ष- | | | |
| 888 | वषटकृते जहोति विश्वा | | | | 13.4 | िक्नाहृत्य पुरस्ताइहि- | | | |
| | आशा इति | ₹6 | Ę | 8 | l, | वेंदेरधो दक्षिणस्थः | 84 | Ę | ₹. |
| | | | | | | | | | |

| पृ॰ स्त्राणि | क्ष | 帯の | सु० | দূত | सूत्राणि | अ० | ক্ষ | सु० | |
|---------------------------------|--------------------|------------|------------------------|------|---|----------------|----------|-----------------|-----|
| १०९ वात्सप्रं इत्वोपस्थेयं | | | | | उत्तरतः समिदाधानं | | | | |
| चेव | 60 | र | a | | प्रघेति | | Ę | | |
| ९३ वाल्सप्रेण च दिवस्परी- | | | SE. | ક્રફ | वासो देयम् | १५ | 8 | १२ | |
| त्येकादशभिः | 88 | Ģ | २३ | ३५६ | वा हविः शेषमक्षः | २४ | ্ | હ | |
| २७३ वा निर्वस्कम् | | 3 | | ३२३ | विद्वातिरात्रेऽभिप्छवोऽ- | | | | |
| ३५ वामदेव्यग्रहान्ते प्राजा- | | | | | भिजिद्विश्विजितौ च | २४ | ą | ₹ : | |
| पत्यानाम् | १५ | ર | १८ | ४४३ | विकङ्कतशकलैर्जुहोति | | | | |
| ५ वा यथोकं गृहपतेः | १२ | 8 | 9.8 | | घमेंन्यज्य न्यज्य स्वाहा | | | | |
| ८० वायने वा नियुत्वते खेत- | | | | | पुष्णे० | ३६ | Ę | १व | 12 |
| रूप्युदी हे दञ्यात् | 5 5 | Ŷ | 88 | १३४ | विकण्यचिकादस्याम् | १७ | S | १ृ२ | 1 |
| ३१३ वायव्यः पलायिते | 2 3 | 8 | 80 | १५ | विषहादित्यग्रहप्रतिषे- | | | | |
| २९१ खायव्यः सप्तमे | ३ | 3 | १३ | | | १२ | • | १६ | |
| १८८ वायोः पुत इति सोमा- | | | | 303 | विवनो पश्चकासस्य | ३३ | £8 | २१ | |
| विपूतस्थ | 8 6 | • | | | विजयमध्याद्वोतुः प्राची | | | | |
| २०९ वायोधसाप्रियः समिद्धो | gi. | | | | दिक् दक्षिणा ब्रह्मणोऽः | South South | | | |
| अग्निः समिषेति | § | g 18 | 83 | | घ्वयोः ० | 30 | 8 | 5.00 | |
| ४९ वास्णः स्तस्य | ş | ₹ } | S | ३९० | वितान् साधियत्वा सम | Ť. | | | |
| २२० बारणोऽप्सु स्रते | ą. | ą | १५ | | बहुलतृणेऽन्तरारनी चिति | 7 | | | |
| ४७ वारणो यवसयश्ररः | 80 | 1 | २इ | | विनाति | 29 | U | १६ | |
| २०२ वार्त्रवावाज्यभागी | ₹ € | ૄૄ | ş | 60 | विवृतीय उत्तरे वर्ति 🌣 | | | | |
| ४४९ वार्षाहरेष्टाहोत्रीये सा- | | | | | सर्वतः करोस्यद्दिरवैरा- | | | | |
| मनी गायेति प्रेप्यति | 3, | į v | 50 | | | 88 | 3 | 30 | |
| १४१ वार्लाखल्याः सस पुर- | | 9 1 | Proposition Page 15 | 203 | स्नेति विदाहि वा | 33 | ą | રૂ | |
| स्वाच | 8 | 0 6 | ę o | | विद्वेषेऽप्यर्थ वायुर्महा- | | | | |
| १४१ वालखिल्या लोकं पश्चा | | | | | न्त्समुद्र इति श्रुतेः | 3 6 | 68 | ર છ | |
| च्छिट्टा | . 8 | s 6 | • | 98 | विवाटाद्रथपर्यूढाञ्चवनीत | | | | |
| ६० वालदामबद्दमक्षावपणस | (? | 9 | ६७ | 1 | स्वयं जातमाज्यमासिच्य | | ą | 28 | |
| २१९ वावातासम्बेशनसावि- | | | | 16 | विपाजसेति प्रमुच्येन- | | | | |
| त्र्युत्तरमन्द्रागानपारि- | | | | | मजलोमान्यादाय प्रागुः | | 454 | | |
| प्लवधतोः संवत्सर म् | 2 | 5 § | Ģ | | दाचः पशुनुत्स्जति | 98 | 3 | 96 | |
| ३६४ वाझ्येत चेत्रुणान्यालुप्य | | | | 2 2 | विष्टचावित्याहरतः | | | | 1.1 |
| ग्रासयेस्सूयवसा द्भग बति | | • • | १९ | | विफल्फान्नमहरेतत | | | | |
| ३२५ पाष्टिकानि त्रीण्युत्तराणि | 10.00 | | | | विभागः क्रियागुणस्वात् | | | | |
| प्रतिलोमानुलोमानि | | ₹ ₹ | | 1 | 计位置式 医二氏征 医红斑 "我我是你的话说 | 100 | P.330.0 | ે ૨ ૭ | |
| २८० वासः कृष्णशं कहु | 55 | 8 | ? 3 | | · 15 12 12 13 14 15 15 15 15 15 15 15 15 15 15 15 15 15 | 8 5 | 1200 160 | 4 W | |
| ४१६ वासतीवरसुद्कमाचामे | indelit. Oggani | | | 484 | विमुखाच परेभ्यः विमुखेनारण्येऽन्द्घ्यम् | | | | |
| दित्येके चात्वालगतास्य | | | | | | | | `` | |
| ३७२ वासानपनोद्ध | | 8 | 8 | ६० | विमुच्य सयन्त्रक 👉 रथ- | 1000 | | | |
| १०० वालेऽवहरत्युद्धतावोक्षित | 1 | | | 1 | ्वाष्ठ्ये करोस्यनस्तरकर्मः | ११५ | • | • • • | |
| | 469開幕 | | 4. Table | | 多数数字的工作。 | 100 | * 26 | rought. | 100 |

| | | | 100 | | | | | | |
|-------------|--|------------|-----------------|------|-------------|-----------------------------------|------------|------------|---|
| প্ৰত | सुत्राणि | अ० | ক্ত | स्० | ão. | | ক্ত | 事。 | सु० |
| *8 § | विराजो दश दश प्रति | | | | 260 | विहत्य स्नतिषु शहुनाः | | | |
| | दिशं पुरस्तात्प्रथममेव | | | | | | 25 | 3 | \$6 |
| | वछन्द इति प्रतिसन्त्रस् | ęs | 88 | Ģ | २१९ | वीणागाधिभ्यां पृथक् | 11 | 4 W | 4/1 |
| २०३ | विराजौ संयाज्ये सवि- | | | | | शते ददाति | 90 | Ž | W |
| | शेषोपदेशात् | १९ | ફ | 100 | २७३ | बृक्षस्तम्बञ्चिम् | 38 | 3 | 8 |
| १२५ | विराट् स्वराडिति रेतः- | | | | ३०३ | वृधन्वन्तो वा पशुपु सा- | 4 | | |
| | सिवौ प्रतिमन्त्रम् | \$ 10 | 8 | 4.8 | | ब्राय्यविकारात् | 28 | Ę | 8 |
| 322 | विवाहोदकतलपस्य शायि- | | | | 38 | बुसीपूपविशन्ति प्रेह्ने | | | |
| | तानामेतत् | 38 | 8 | ર્પ્ | | होता॰ ् | 83 | ą | 8 |
| 398 | विशाखशराष्ट्रमगन्धापृ- | | | | १६ २ | वेणुसुत्करे इत्वा चित्य | : ' | | 4. <u>1.</u> |
| | किनवण्ये ध्याण्डाश्च | a 4 | 15 | १ऽ | | सालम्य तिष्ठ्न | 88. | 3 | 88 |
| 324 | विशालः | ₹8 | ર | 8 8 | 386 | वेतसक्टेनाबोऽक्वं प्ला | | | |
| १४० | विश्वकर्सति विष्वज्योः | | | | | वयति परोमर्त इति | ₹ 5 | 3 | 3 |
| | तिषमुपरि पूर्वस्याः | ę to | 8 | ş | २४० | वेतस्याखासु प्राजापः त्यानास् | a . | , | 2 |
| २७३ | विश्वजिच्छिल्पः | 22 | 3 | 38 | 21616 | त्याना म् वेदिस्वरा | ३० ३३ | | 3 8 |
| 336 | विश्वजितः परे ये त्रयोऽ- | | | | | नाद्यस्या वेदिसमीपेसुत्यासु | | ११ | |
| | भिष्छवास्तेषामुत्तस्योः । | 38 | 8 | 19 | | वेदी मिमीते वस्णप्रधास- | 74 | ζζ. | 6.7 |
| 308 | विश्वजित्परिवासाध्य | ३३ | 88 | 38 | रूटप | वत् | 00 | ą | • |
| 388 | विश्वजित्पशुकामस्य | ₹3 | ę | १४ | ပေအ | षेषश्रीः क्षत्राय क्षत्रं जि | • | | • |
| 385 | विश्वजिद्विरात्रः | २३ | Ģ | 39 | (0- | न्येति त्रिश्वात्तमीमेके | G 10 | 28 | 99 |
| १५४ | विश्वज्योतिषं परमेष्ठी | | | | 89 | वैकङ्क्ती परस्या इति | | 8 | 44 74 |
| | स्वेति | 80 | 85 | 58 | | वैश्यः पुरुषो राजन्यो ना | - | Ŷ | |
| 380 | विश्वज्ज्योतिष्टोमाश्र- | | | | | वैद्यपशुकासयोगेंहयः | ैं | • | • |
| | and the second of the second o | 58 | ıs | 38 | | 3-3944. | ર ર | ę | Ę |
| 834 | विश्वाभ्यो मेति दक्षि- | | | • | 309 | वैश्ययज्ञ इत्येके | | 88 | 10.00 |
| ~~`` | णत उत्तानं पाणि निद्- | | | | 399 | वैश्यस्तोमदक्षिणालिङ्गाव | | | |
| | धाति | 26 | ą | 18 | | वैश्वयस्तोमदक्षिणालिङ्को | | Mary F | |
| 20 | विक्वेत्वेति समीकरोति | १६ | | ₹ ९ | 2 | महत्स्तोमो गणयहो | | | |
| | विष्णुक्रमवात्सप्रे चाहः | | | | | भातृणार् संबीनां वा | 99 | 88 | 99 |
| | व्यंत्यासमुदिते समिध | | | | . 6 48 | वैदयो जनो राजन्यः | | | 2.2 |
| | मा धाय | 88 | Ę | ٩ | 133 | समानजनः श्रतेः | 28 | 9 | ૨ ૬ |
| 63 | विष्णुक्रमारक्रमते विष्णो | | | | 3/6 | | 25 | | 1.50 (34) |
| | रिति प्रतिमन्त्रम् | 88 | 4 | 88 | 1 | बैं इबदेबोः | | e di perdi | , o |
| 384 | विषुवन्तमभितो गवामः | | | | | वैश्वदेवीः सज्ज्ञतं तुभिरिति | | | |
| | वनपक्षयोः प्रथमोत्तमौ | | profes Salar | | ``` | प्रतिसन्त्रम् | B. C. 1970 | E | १८ |
| | प्रथमोत्तमो | 28 | ٩ | 8 | 5.0 | वैश्वदेवी एषती मारती व | 7 7 2000 | 500 | - C - C - C - C - C - C - C - C - C - C |
| 733 | विह्वीयसजनीयकयाञ्च- | | | | | वैश्वदेवी वोभवन्नापुरी- | | | |
| | जीगानि होता ठाउँ०प्रति | 2 4 | 9 : | 1 76 | 1 | 내가 그 아니는 사람들이 들었다. | ₹ 6 | 8 | 2 % |

| ए॰ स्त्राणि | ख | ၀ နှ | ० सृ | पृ० | स्त्राणि | | १० व | त्त्र स्तु ं |
|--|----------------------|---------|---------|-----|--|------------|--------------------|---------------------|
| ७८ देखानरः पशुपुरो ढाश | 11 | | | ಅರ | बोहीन्विख्डाविख्डान्थी | H | | |
| उपार्भ ग्र | ₹ % | १ | ३ ५ | | उपनहा • | | • | 38 |
| १६८ वैदवानरमधिश्चित्य दक्षि | • | | | | ্ গ | | * ** . * *! | |
| णोत्तरी मारुती | | 8 | 9 - | 1 | शंवति वंवति वा | 2,8 | 1 | 5.5 |
| १६७ वैश्वानस्मारुतां निवैपति | | | • | २५९ | ्यां वात इति यथाङ्गं | | | |
| यथोक्तम् | | 8 | 95 | | कल्पयित्वेष्टकां निद्धाति | | | |
| १६८ वैश्वानरेण प्रचर्य सर्वहुते | | ઼ઁ | . ** | | सध्ये तृष्णीस् | ે ર્ | • | 8 |
| हस्तेन मास्तान् जहात् | | | | | , शत्रुं सहस्राणि दक्षिणा | | | 8१ |
| विद्युष | | U | 5.5 | | शतमानं दक्षिणा सौवणं | | | |
| | १८ | | 43 | | ः शतमानं द्दाति | २० | G | Ę |
| ४९ वैष्णविद्यक्रपाको वा | १५ | | 88 | 866 | शतस्त्रियहोम उत्तरपः | | | |
| ३७० वैद्याच्याहुतिः | 44 | 1 | 84 | | क्षस्यापरस्या 🕆 सत्रत्यां | Sec. 150. | | |
| २१ बीचेरिति वाऽन्ते | (3 | | 84 | | परिश्रितस्वर्कपर्णनार्वकाष्टे | | | 8 |
| ३४ व्यत्यासं ग्रह्णम् | 88 | | Garage. | 386 | शतसंबरसर्/ साध्वानाम् | 38 | • | ₹3 |
| ३०४ व्यत्यासं वेनौ प्रयुक्तीत | | A 17 To | \$ } | 338 | शतासिष्टोमे शतोक्थ्ये च | १४ | 3 | 34 |
| ५५९ दयत्यासमन्ततः | - ૨૪ | 1.70 | 8 8 | 339 | शतातिरात्रेऽहानि शतः | | | |
| २८२ व्यवहार्या भवन्ति | २२ | - 8 | 30 | | रात्रसामान्यात् | ર છ | 3 | 33 |
| १३१ व्याघारणवस्त्राणभृतः | in Table Se Maria | | | 308 | शताही अश्वाः | ₹ € | 10 | 38 |
| कणेसहिता दश दश पुर | | | | 269 | शताश्वं वा | | . 8 | 6 |
| मुपाप्यें के 🔍 🔍 | 50 | 6 | 3 | 300 | शताश्वरथसध्वर्यवे द्दाः | | ĠŢ. | |
| ५७ व्याघ्रवमीरोहयति सोम | | | | | स्यग्नो चीयमाने | ३३ | • | Q |
| रिवर्षिरिति ् | १५ | To 24 | ₹\$ | १९६ | शसित्रनुशासनप्रशृति | | | |
| ४७ व्याधितस्याप्येवस् | १६ | | 43 | | वनस्परयन्तं द्वत्वा सोमा | • | | |
| ०० च्युष्टिद्विरात्रः | १९ | | 80 | | सन्दोबदासन्दीं जानुमात्र | • | | |
| २२७ व्युष्ट्या इति व्युष्टायाम् | | | 33 | | पादी॰ | 100 | 8 | Ø |
| २० वर्त च यथोक्तं चतुरहाथे | રેક | | 80 | 308 | शमित्वा।स्तृत्वा वा | | | |
| ३६० वर्तं विद्वतस्थाने | 58 | 10 | 33 | | ज्योतिष्टोमेन बजेत शा- | | 8 72 t. E 725 d | |
| ३२७ वतवद्द्वितीयम् | 38 | | \$? | | स्त्यर्थेन शास्त्यर्थेन | î R | ११ | 32 |
| ३३४ व्रतवन्ति सर्वजिद्दीक्षाणि | ્રેરપ્ટ | ą | ₹ ? | 368 | शम्यवकाः कर्दमं च | | | |
| ३२८ वतवन्त्युत्तराणि प्रथमत् | | | | | इमशाने | २ ६ | 4 | ₹ |
| यवर्जी; सप्तेकात्रपञ्चाशदा स्राणि | . 58 | 2 | 88 | ३५० | शस्याप्रासे शस्याप्रासे | | | |
| | २३ | | 56 | | वसन्तो यजमानाश्चः | ₹8 | 8 | ę |
| ३१४ व्रतवानुत्तमः २७९ व्रात्यगणस्य ये सम्भाद्ये | | | | ४६ | शस्यायाः पश्चाजनिष्यः | | | |
| युस्ते प्रथमेन यजेरन | 9.5 | 8 | 3 | | शब्धे खर्वन | 86 | | y o |
| २८० झात्यधनानि सवन्ति | ३३ | 8 | 80 | | 表示: "我说: "你还不会会给你,那么是这么,你在她就会会都没有的。" | २२ | ğ | ξo |
| २७९ वात्यस्तोमाश्रस्वारः | ३३ | 0.89 | 8 | 388 | शरीरनाशे श्रीण पष्टि- | | | |
| ६८२ बात्यस्तोमेनेष्ट्वा बात्यम | ST. S. | | | | | ₹9 | L | १६ |
| वाद्विरमेथः | 22 | 8 | २६ | 368 | शरीराणि ग्रामसमीपमा- | v. | | |
| २७७ बीहीन्यवान्या पक्वानध्य | | | | | हत्य क्रमभेन तल्पे कृत्वाह | | | |
| वस्यति | 44 | \$ | 82 | | सपक्षेण ः | ÷ ? | ą. | Ψ |

| | | | | | | | | 1.5 | |
|-------------|---|------|-----|-----|-------|-----------------------------------|------|-----|------|
| | | अ० | ಹೆಂ | सु॰ | রু | स्त्राणि | अ० | 帯の | स्० |
| ३९६ | शरीराण्याहृत्य कृष्णाः | | | | 508 | गुण्ठाघी लोहाकर्णी पो | | | . T |
| | जिने पुरुषविधि० | 56 | 6 | 88 | | डिशनः सोमक्रयणी | २२ | 27 | 2 9 |
| 350 | शर्करा अनिधिचितः | \$ 8 | 8 | 99 | 254 | युद्दानं वा दशनावि- | | | |
| ૮ફ | शर्करायोरसाइमच्णेश्र | | | | | रोशस्याम् | 33 | ۶ | 99 |
| | हुदाः संशंख्डवेति | १६ | . A | १९ | 3.6 | श्दार्थी चर्मणि परिम | | | |
| १८५ | शब्पचूर्णानि चावपति | 28 | 7 | 58 | | ण्डले न्यायच्छेते | 83 | 3 | 19 |
| ę vo | बाखान्त आश्विनेन सर्वः | | | | ₹80 | गुलेऽखरोषश्रपणम् | २० | Ø | 5 10 |
| | हतेन चरतिः | 85 | Ę | E | | श्वतेन माध्यन्दिने | 5.5 | 8 | 8 |
| ಜ್ಞ | जाखां प्रदक्षिणं कृत्वा | | 2 | | 883 | शेषं यजमानो मक्षयतीद्रं | | | |
| | यन्ति | 88 | 8 | 120 | | इविरिति | 29 | 3 | 30 |
| 843 | बान्तिकरणमाड्यन्तयोः | 58 | æ | 88 | 886 | शेषं वतिमधं दीक्षिताय | | | |
| 99 | शालाहार्य जहोति पुत्रे | | ξĸ, | | | प्रयच्छति | 2.5 | 10 | \$ V |
| | डन्बारक्षे प्रजापत इतिः | 99 | Ę | 99 | 863 | शेष्य शेषमासिञ्जत्युः | | | |
| 88 | वालाद्वायंडन्वारव्येष्टिव- | | | | | त्तरे पूर्वस्य | 96 | 5 | 25 |
| | ह रतिरिति जुहोति | Ş\$ | 8 | E | 200 | शेवसृत्विजः प्राणमक्षं | de. | | • |
| 84 | शालायामन्त्यम् | 96 | 6 | 34 | | मक्षयन्ति प्राणपा म इति | 28 | Ą | ę |
| | शाळावा वा पुरस्ता- | | | | 9.000 | शेषा अष्टेष्टकाः | १८ | | 23 |
| | ह्या च्याः | 3,5 | ક્ | 8 | 4 - | शेषेणाभिषिञ्चति यज- | | | |
| 93 | शिक्यपाशं प्रतिसुखते | | | | | मानं देवस्य त्वेति | 88 | S | 80 |
| | पहुदामं विसाख्याणीति | १६ | ٩ | ६ | 588 | शेषे दीक्षावतामावात् | | | |
| 568 | शिक्यक्कमपाशेण्ड्वास- | | | | | रेबेड्टी वकाः | ê 10 | | 84 |
| | न्दीः परेणास्यति यं त | | | | | शोणिलं चेत्कुर्योद्वदि- | | | |
| | इति ् | 800 | R | 8 | | याभ्योऽद्भयः स्वाहेति | | | |
| ४३ | शत शिरसा यूपमुज्जिहीते- ऽमृता इति | | | | | ब्रह् याच | २५ | ११ | 36 |
| | ऽमृता हात | 18 | 3 | ₹ | GE | शौनः शेपख प्रेप्यति | | Ģ | 94, |
| <i>e</i> .a | शिरसि च नवतद्र्में | | | | 1 | शौनः शेपान्ते पृथक् शते | | | |
| | शततदूमं यौजोसीति | | ٩ | | | ददाति | 26 | Ę | Ę |
| | शिष्टमक्षप्रतिषिदं दुष्टम् | | | | 368 | इमगानं चिकीर्षतः कुम्मे | | | |
| 7.00 | वीद्यम् | ₹ 3 | | રહ | | सञ्चयनम् | २५ | ಕ | 19 |
| | शुक्रं गायेति प्रेष्यति | ₹६ | ૈ | 8 | ७९ | क्यामतूपरो वा प्राजाः | | | |
| 630 | शुक्रश्च शुचिक्षचेत्युतस्ये | | | | | ष्ट्यः | 25 | 8 | 3 % |
| | पूर्वयोक्यरि | | | | | इयामाकः सोमाय वन- | | | |
| | शुक्रस्य पष्टस्सम्योः | १३ | | १८ | | स्पत्तये इयाबोऽक्वो दक्षिणा तं | १५ | ક | 6 |
| | शुकामन्थिस्/स्रवेण वा | | ٩ | ₹५ | ₹ ₹ | | | | |
| 3,44 | , शुक्लपक्षकचे दिन्न बृद्गिष्टो - २२ | | | in. | | ब्रह्मणे दुदाति | 22 | e | . \$ |
| | म इत्येके | 28 | Ę | २७ | 1888 | दयेनहतं पृतीकानादाराः | | | |
| \$86 | ग्रुक्छवझसप्तम्यां दीक्षा | | | | | नस्णद्वी० | | 1.7 | 86 |
| | सरस्वतीविनशने | 88 | | 30 | २७३ | इयेनोऽभिचरतः | | 3 | |
| ୁ ୯୦ | शुक्लवत्यो वायव्यस्य | 28 | 8 | 88 | 1 88 | इयेन्यादिस्येभ्योऽदित्यै वा | १५ | 8 | 88 |

| Note that | | | | | | | | | | | |
|--|---|------------|------------|------------|-------------------------|--------------------------------|-------------------------------------|--------------------|----------|------------|-----------------|
| y, | स्त्राणि | | ০ ফু | Æ | 1 do | eq. | त्राण ते न बहुवदेव | ક | lo e | ŧо | सु |
| 66 | श्चरणमास्तीर्थं यथाक्र | 3 • | | | 1 50 | व्यवहार | ने न बहुवदेत् | 3 | ब् | | |
| | स वद्घाति | १ | દ્દ ૪ | १० | | | ऽभिष्ळवः | | | | Ø |
| | श्रपणेनावच्छाच दक्षि | | | | \$ 50 | | यः | | | | 8 |
| | जारन्यरिननादीपयति | | | | | | कानि चतुःस्था | | | | |
| | धिषणास्त्वेति | | Ę 8 | 88 | ७९ | पड्दध्या | त् _ | ? | Ę | 3 | 30 |
| | र ते: | ٤ | ર ફ | ₹ 6 | 6 6 8 | वड्हाद्व | त चतुर्विशंशति | वा | | | |
| 7 200 | श्लोण्यं,सयोः | 8 | છ ર | १९ | | युनक्ति | | | 9 | ₹ | Po |
| 777 | श्रोत्रयोरभृदिदमिति | ۶ | 9 9 | 88 | 263 | पड्वा | | 2 | ₹ . | 6 | 63 |
| 2.0 | सः प्रणयनीयाचानारि | | | | इर६ | षड्बिशुश | तिराचं प्रतिश | [• | | | |
| ्रु०५ | | | | | | कामानाः | A | 2 1 | 3 | ₹ | 38 |
| | क्राल्याज्यासाउगार | · | ષ્ટ્ર | ક | 88 | षड् बोस | राः | | | | |
| | स्यः प्रमृत्यन्वयं पञ्जोत्त | राणिड | \$ 8 | હ | 96 | वन्मास्य | राः स्रह्यम् | . 58 | | Ę | 93 |
| 89 | सभं खात्वा खरमपरेग | | | | | षष्टमासा | दौ मध्यमस्था | ने | | | |
| 100 | चमविचाय परिखुतमा | | | | 4 . | | | | | 8 | • |
| | सिच्य कारोतरमवद्धा | 8028 | ą | 5 | | षहे चैका | दशिनाः | 22 | 1 | \$ | ٠ ۶ ٩ |
| 9 (04) | इवैडकवराहेष्ट्रबारा प्र | • | | | | | भिष्ठवाः पृष्ट | | | | |
| \$48 | चोदं विष्णुरिति | ३६ | 8 | 96 | | | श्रयोऽसिष्छवा | | | | |
| 0.0 | बोऽम्यवहरणादि प्रायः | | | | 4 | गोआयुर्व | | J. 10.10 | • | ŧ ſ | 96 |
| 502 | श्चित्त्यन्तं कृत्वाः | १७ | 8 | ٤ | 1 1 2 | √ 38 | । या सवन्ति श्र | | | | |
| | खो वा सवनीये <u>ष</u> | 88 | 8 | 3 § | | | भैन्द्रामास्ताः | | \$ |) { | 20 |
| | खो वैक | १५ | ą | | e | षद्रे सांवा | शिनेन | १३ | | | |
| 830 | मो वैद्यानरो वादशक | | | | | | मा उक्थ्याः | | | | |
| 8) | पालो वारणभ्वेकतन्त्रे | १५ | ą | şĢ | 292 | पोड्डिशनड | चेदतिरात्रः | २ ९ | | | |
| | | | | | 202 | घोडजी स | a: | े ` ३३ | - 9 mg | | |
| | C at a. | | | | 22 | पोडक्य न | त्र. स्तोन्नं चम- | | | | 9 |
| १३६ ' | ग्ट्बिश्वच्छत्या वा तुः शियाष्ट्रादशशत्या इतराः | 5 LG | ဖွား | 2 6 | 1.0 | | | 68 | U | U | 10 |
| ₹ | ि | \$ 7 | | | 100 | | ः पूर्वस्मिन्यथा | A 100 A 100 A | ٥ | • | Ž, |
| 380 d | हित्रश्रितसंवत्सर े शा | | | | | | . रूपरचात् कान्द्रबाद् | | 8.4 | | |
| 4 | त्यानां सरसमयाः पुरो —— | 28 | 4 2 | | | (4 000 04 11 16 0 | | ** | ξ. | . (| ` |
| | (ह्या: | 化金属性 化硫 | 7 | 1 | | | ਚ | | | | |
| 65 4 @ | ट्त्रि/शदहशः पट्ति/श | e" | in a | | 35.8 | ंख्य सुष्टि | क्षिव्यक्तिः | | i. Ga | | |
| | शः संवत्सरे | | | 8 | ** ; | गामस्यात | | १४ | 2 | 3 (| 6 |
| | ट्त्रिशबावं प्रतिष्ठाकाः वास् | ์ อน | | | | | ् बचेद्वाश्येताहु वि | | | , • • • • | |
| | ।वास् ्प्रतिमन्त्रं वस्नां | | | | | | गुर्भायुमऋतोरो | | 6 | 9: | 2 |
| ייי קאץ מרי | ्त्रायसम्बद्धाः ग्रहति | C 100 C | 5 8 | ۱. | າ ການຄວາມ | galaci Far Aas | धुरिति तक्षणम् | 23 | s | 52 | , |
| | ग इ.च षट् बैलवखादिरपा | \ - | , S | 1 | 2/2 | and the | द्वाराव तदानान् ान्तीति प्रक्षाः | • | • | \$ | |
| 100000000000000000000000000000000000000 | શાઃ શાઃ | २० | U 6 | a | 100 | त्या १ ९० म स | ration west. | R R | 8 | 5 3 | |
| | शाः षड् वैकतन्त्रे | | 8 8 | 1 1 1 m | 连续 化邻氯基酚 | 194 | ान्तीत्यास न्दी | | 4 | T 4 | • 3 |
| AND STATE OF THE S | (2008年度のようによるので、本の、2014年である。ためでは、 | रा ३२ | ९ १ ३ | g. 1881 | Carlotte and the second | ारवा ।साः वानम् | n-allatards. | All and the second | 5 | o v | |
| n | द्राचः काः | | 3 ' | S | | વચાવળ, | | ጎ ሻ | Ę | € ₫ | 1 |
| mmunitaring the | | KONT SE | 医糖素 | 中的學術。 | 網施運用具 | 医性性 医乳色纤维点 | 深りには などり につせい | | 16.60 | 4.198 | 55.78 |

| | | | | | 교실 시간 중심 | 아이 보통하는 이 사이를 가지 않는데 하는데 되었다. | | | | |
|---------------|--------------------------------------|------------------|-----------|--------------|--|---|-------------------|-----------------|----------|-----------|
| 5 1 , V | सूत्राणि | 376 | क | सु० | ão | सुत्राणि | | | 0 | |
| ૮૬ | संखिप्य बलक्ष्णां ऋत्यो • | e just | | | 100 | सक्लानि वा | 8 | Ę | 8 | 3 8 |
| | चरमादित्यास्त्वेति | १६ | 3 | २८ | | सङ्ख्ययोगी दशरात्रः | | | 3 | |
| 260 | संवतसरं न याचेत् | 33 | १ | 38 | | सहदासादनप्रोक्षणे खर- | | | | |
| | भंवत्सरं यजते | | | | | स्थूणासयृखः | ₹9 | | ę a | 6 |
| १७७ | संवत्सरं वा काळस्याः | | | | 38 | सष्टदीक्षारम्भे कर्मेकत्वार | 1 28 | · | · • | ą |
| (Pi | नवस्थितस्वात् | 80 | Ę | 33 | 306 | सक्टद्वा वितृवत्पर्थस्य | | | દ્ર | |
| 94 | संवत्सरहं सोष्यन्तः | | | | | | | | | |
| | संबत्सरप्रभृतीनि गवामर | | | | 966 | सङ्घिदये सङ्घितये |) (a) | 9; | . | 9 |
| | प्रकृतीनि तद्गुणद्शैनात | | ક | ્ર | 995 | सङ्ग्मन्त्रवचनम् | 96 | , | | ø |
| ୧୯ | · संवत्सरभृतिनोऽसंवत्सर | | | | | सङ्क्रमद्वादशाहे दशरात्रस | | | | Ī, |
| | म्हते ऽ वि | | | | `` | इयहप्रथमानि | | . M | n 0: | 3 |
| 338 | संवत्सरसमिते चतुर्विः। | | | | £3 | सजाताय कलिङ्गाम् | | | | |
| | शमहः | | 3 | 48 | | सञ्चयनं चतुध्योमयुगमान् | 1 | × | | 8 |
| 2 15 | संवस्पराचरषु सम्रेषु | | ਼ੋ | | | वश्चयम चतुर्थामयुग्मान् ब्राह्मणान्भाजयित्वाः | 5.6 | | | |
| | 있으라면 사용하는 경우를 된 점을 즐겁니다. | 92 | 2 | 30 | | सक्षित्ये विजित्ये सत्यः | 44 | • | | ξ |
| eu | . संवत्सराहिता ग् नेः | | | 88 | | जित्ये जित्या इति | | strilla Naid | | |
| A 100 P. C. | संवरसरेऽस्थीनि | 1.4 | - 3 | * * | | _ | 28 | | | 3 |
| ••• | याजयेयः | 36 | 23 | 35 | 9/49 | सते पुनाति गोऽश्ववाङवा | | ٦ | | () |
| 202 | संक्षीणश्चेदेककपालो | i jarak Garaj | ** | ** | | छेन प्रनाति ते परिस्तृतमिति | | 3 | | e. |
| વાય | मोसः | 93 | Ŋ | 3 8 | | सत्यवादी | | | | |
| 250 | संक्षावसे विश्ववसे सत्य- | | | | 634 | सत्यसाम गायति | 6.7 | <u>.</u> | 20 | 2 |
| () | श्रवसे श्रवस इति सर्वे | | | | | | | | | |
| | निधनसुपयन्ति | 0.0 | 6 | | 014 | सत्रगणयज्ञ सहत्वशः ब्दात् | 2 4 | 63 | 3.6 | |
| UAF | स्रंसर्गकाले बोपपात | (2) | • | • | 96 | सत्त्रसहस्रसद्वेदसवाज- | • • | * * | | • |
| 0,, | सामध्यांत् | a a | 8.3 | ų. | • | | १२ | | | |
| 2002 | सामनायः स्रोसमें नादियेत | 26 | ्र | 96 | 3/ | सत्राङ्गं प्रकरणात् | | | | |
| | स्यायमानेभ्य इत्येके | | | | | सस्त्राङ्गं वागूर्णमात्रश्रुतेः | | | | |
| 1 . 7 . 16 | स्रक्षीदस्त्रेत्युच्यमाने मुक्ष | | ٩ | ` `/ | | सत्त्रायागूर्यांशक्ती विश्व- | `` | 22 | | |
| 959 | प्रख्वान् द्विगुणानादीप्य० | | a | • | | जिताऽतिरात्रेण यजेत | 5 /2 | 8.6 | | |
| D 1010 | स्युख्य वत्सान्धुनर- | ** | • | * | | खदः सदः प्रजावानुसुर्जुः | 44 | 77 | • | 31 |
| 1000 | 리엠 전하면 하는 시간 시간 시간 나는 사고 생각이 되는 것이다. | 2.6 | 15 | 38 | | | 23 | | ۵> | |
| | | २२ १६ | | | | | * ? ? ? | | | |
| | | 8 A C C | | २० | | सदोहविद्धांनामीघाणि | • | • | Α. | |
| | संस्कारात्साझाय्यम् | ₹6 | 5 | 88 | Control of the Contro | | 20 | ۵ | a e | |
| \$67 | सहस्थान्यं वा प्रक्लुसः ==== | 24 | LO. | 0,4 | | यक्षापान्य सदोहविघीनानि चक्री- | 3 8 | • | 79 | |
| 1616 | त्वात् स्कृत्यिते तस्य शेषप्रासना | | | 90 | | | 2 (3 | _ | 5.6 | |
| | स्रुस्थितेऽइवर्युराह्वनीय- | ब्रु | | •• | The first to the second | यान्य सदः स्रक्तिषु दुन्दुभीन्वा- | ₹8 | • | ₹4 | i i |
| \$82 | समीपे स्थित्वास्यध्यक्ष | 73. (7 | 704 2 | 111111111111 | ** | of the 🗪 in the final keep of the second was seen for a | | | | |
| | लसान । स्वत्वा क्यान | 48 | | 34 | 10.7 | | 13 | \$ | | |
| Sales and the | स्रास्थोत्तरं च कुर्यात् सार ९५ | 44 | 78 | 10 | e8 | सन्त इ।त बावसपाक्षपति | (9 | 3 | 3 | |

| _{हे} सुत्राणि | क्ष क स् | ए० सुन्नाणि ३२६ सम्रविश्वतिसत्रमृद्धिः | झ० क० सू० |
|--|---------------------------|--|--|
| ३९० सन्तापजानधीनादाय संशरीरा दक्षिणा गच्छन् | ≕∍ | कामानाम् | २४ २ २५ |
| संश्रास देशिया गण्या | 22 88 36 | ११८ सम्रसम् वा | १७ ३ ९ |
| ३०३ सन्दर्शवज्ञावभिवरतः | | ३१५ सससप्राहाः | २३ ५ ५ |
| ४३९ सन्दाय धर्माय दाष्ट्रेति | 2 6 9 9 | ३९१ सम्बु प्राणायतनेषु सह | |
| ब त्समुन्नयति | | ्रिरण्यशक ङान्प्रा स्यति | |
| ३९० सन्दीपनवतीः प्रत्यरन्यः | CD 01 4.4 | सुखे प्रथमम् | २५ ७ २० |
| धिश्रयन्त्यु खाः ू | २६ ७ १२ | ११२ समस्विलां इत्वोख्यं रि | |
| १३४ सपुरीषा पर्एवेकेका | १७ ७ १० | पति समितमिति | ်စ န် စဝ |
| २४९ सपुरुषमञ्बमेघबदक्षिणा | . रहे ६ ६८ | ३०६ समविभक्ताः प्रत्यहं दव | ाति २३ १ १० |
| ३२३ सदायणीयस्तृतीयस्य | २४ १ ३१ | | च १६ १० १३ |
| १९२ सप्रैषं स | १९ ३ ९ | ४२० समानजनपद्स/सर्वे | |
| ३१८ सप्तत्रिश्वादात्रसृद्धिका- | | सहारात्रे । | . २५ १४ ८ |
| मानास् | . यष्ठ १९८ | Annual Address of the Control of the | W 1 W |
| ६१ सप्तदशदीक्षाः | 68 6 60 | २६७ समाने जने | સર ફેરદ |
| ३९ सप्तरशदुन्दुभीनासज- | | | [15]: 197 - E. 100 대중하다면 좀 보고 있습니다 |
| त्यतुत्रेदि० | 68 \$ 68 | numeric Addressor | २२ १० १३ |
| स्यनुवेदि० ४१८ सप्तदशमन्यत् | ३५ १३ ४० | २८७ समाधिवीं मय बोदनात | |
| ३३४ ससद्शरात्रादानि ।त्र | a | ४१८ समाप्तेऽस्थीनि सपात्र | r. |
| ्दन्तान्येक एकाच्चपञ्चा | | | २५ १३ ४४ |
| शद्वाचे ० | वष्ठ ३ ३३ | ४९ समारूडनिर्मिथितेग्नये | |
| ३७ सप्तदशत्रुषस्यो निष्क | | -ीने मेन्स्याः | १५३३ |
| अवस्यः | १४ २ २ | ३६९ समारोद्यासमारोद्य | the contract of the contract o |
| ३७ सप्तदशसप्तरश शतानि | | वृर्वसुपशमय्य पृत्वेवद | ोमः २९३ ९ |
| द्वाति गोवस्रा जावीन | ास् १४ २ २५ | १६३ समासिक्तान्कुशैः प्रो | |
| २०२ सप्तदश सामियेग्यः | १९६ | न्तिनिवाद्यं तारोन | |
| २९३ सप्तदशाः पञ्च | ३३ ८ ६ | ्रेसपाराश्चरक पास्त्र । देवा इति | |
| ४३ सप्तद्शान्नान्यावपति | 68 8 3, | | |
| ३३ सप्तद्शापरान् | . 68 ± ≥ | े ३७० समितमितिवोपस्थाः हाभ्याम् | 39 \$ 88 |
| ६३ सप्तदशापरान् ३६७ सप्तदशाश्र | २३ ५ २ (| ६ हास्यान् १६६ समिदाधानः शामी | aa. |
| ४२ सप्तद्शासत्थपत्रोपन्ड | (T- | वङ्करवीदुम्बर्यस्ता छ | ० १८ ४ ६ |
| न्षपुटानुद्स्यन्त्यस्मै | | | |
| विशा | १४ ४ ३ | ८ २०३ समिद्ध इन्द्र इत्यारि | |
| ८८ सप्तभिरखशकृद्धिरुखां | | प्रथमस्य | १९ ६ १२ |
| ध्रपयति० | १६ ४ | ८ । ७६ समिध्यमानसमिद्धः | त्य- • |
| ४४३ संप्तमं च सर्वेलेपानतं | दक्षि• | न्तरे समास्त्वाग्नऽ | |
| गेक्षमाणः प्रतिप्रस्थाः |) | नवृद्धाति ू | १६ १ ११ |
| प्रयच्छति | २६६१ | ५ । ४०२ समिष्टयज्ञरन्ते शामि | त्र एव |
| ६६ सप्तम्यां ब्रह्मागाराः | | जुहुयातिष्ठन्मरुतः | ् २५ १० १६ |
| े त्सोमसाहृत्यासन्दर्भि | मे० १५ ८१ | ४ २९७ समिष्टयज्ञरन्ते सं त्व | Л 1€•] |
| 化中的现在分词 的复数医内部 医多种性 医多种 医多种 | nga Salakasa Palakasi Pal | | OF STANDARD SINGER STANDARD |

| | | | 1.5 | | | | 4 D. H. | | |
|----|-------------------------------------|---|------------|----------------|------------|---|------------|-------|--------|
| A | | ঞ ৰ | 0 | Go | So | सुत्राणि ः | He · | 50 F | Qo |
| | न्वन्तीति दार्वाहरणम् | * * | 8 | ११ | २९ | सर्वतो नवसु दशमी इत्वा | | | |
| | ६८ समुखयो वा | \$8 | 3 | 9 | | होने द्याव | 23 | 3 | ୪ୡ |
| 8 | ४१ समुद्राय त्वेति वातना- | | | | १४६ | सर्वतोऽपाढावेलाया 🗘 | | | |
| | मानि जर्पत गच्छन्गा- | | | | | स्तोमसागा रहिमना | | | |
| | हवनीयम् | 58 | Ę | . 8 | | सत्यायेति प्रतिमन्त्रम् | 8 10 | 22 | 8 |
| | ९३ समुद्धपुरीषे प्रतिदिशं | | | and the second | ७३३ | सर्वत्राऽविद्विषाणानाम् | | 88 | |
| | पुरीषाहरणस् | 84 | Ģ | 80 | | सर्वत्राविशेषात् | 88 | 8 | 3.8 |
| ę | ९९ सम्ब्रष्टय विवृष्टये सत्यद्व- | 4. | | | 180 | सर्वन्नाविशेषात् | 98 | | 38 |
| | ष्ट्रे पुष्ट्या इति वैश्यस्य | १९ | 9 | ٩ | | सबंबें | 23 | | १३ |
| 8 | २८ सम्भारैः स¦स्जति मखा- | | | | | सर्वनाशे हविषाँ दोषे वा | | | |
| | येति | ₹4 | 9 | ٩ | | तदुक्तम् | 2 9 | 8 | १३ |
| | २१ सम्भार्यं वृतीयम् | £ 8 | 8 | 50 | 23 | सर्वे पृष्टश्चेत्सर्वे तिपाद्याः | 85 | | ફે પ્ર |
| ક | २० सम्भृतानभिमृश्वति | | | | 358 | : सर्वप्रायश्चित्तं च | 2,4 | 8 | |
| | म खम्येति | ₹६ | Ş | 8€ | 363 | सर्वप्रायश्चिचं च पद्यभिः | | | |
| | ४३ सम्राड्यमसावित्याह नाः | ন∙ | | | | प्रस्थूचम् | २५ | | १० |
| | ग्राहं त्रिरुचैः | 88 | 8 | 83 | | ्सर्वमन्द्रानप्येकस्मिननेके । | 60 | ę | ₹ ₹ |
| | ५४ सरस्याः कृष्याः प्रध्वा | | | | 855 | त् सर्वमरणमिच्छन्तः सर्वे- | | | |
| · | सधुगौरुल्ब्याः पयो घृतम् | 199 | ક | 32 | | ऽनुसवनम् | ३५ | 58 | 44 |
| | ५५ सरस्वतीगृहात्यपो देवा | | 10 | | | सर्वमासन्धांकरोति | २६ | ξ | 48 |
| | इति | 86 | 8 | 38 | | । सर्वमेके | ₩2 | 9 | 8 |
| | ४३ सरस्वत्ये स्वेति वा | \$8 | 8 | 84 | | ः सर्वेभेषः सर्वकामस्य | ₹ १ | Ą | 8 |
| | ५३ सरस्वत्ये वाचस्थाने वि | | | | | ३ सर्वरूपं वा | 20 | | 5 10 |
| | ववेषां त्वा देवानाम् | \$8 | ક | 88 | | सर्वसमासो वैन्द्राग्नी वा | | ફ | 18 |
| • | १९६ सराजानो ब्राह्मणा यं पुर | • | | | 860 | सर्वसुरभ्युनसृदितः शेषेरः | | | |
| | स्कुर्वीरन्स प्तेन यजेत | 23 | G | 26 | | भिषिञ्चत्या सुखादवस्नाव | • | | |
| | ३०२ सराजानो विशो यं पुर- | | | | | यन्प्रतिदिश्रा सर्वेत्र | 88 | 8 | 58 |
| | स्कुवीरन्स्स एतेन यजेत | २ २ | 88 | ૮ | 386 | ् सर्वस्तोम उत्तमः ९ सर्वस्तोमः | 2 3 | 9 | 80 |
| | १४० स रेणप्रमृत्यापमासाद- | | | | | | . 11 | ୱ | 58 |
| 33 | नात् इत्वा | २३ | U | 26 | 28 | ३ सवस्तोमो ज्योतिगीरायु | | \$13. | |
| | ३४४ सपसन्नं व्यत्यासं विराद् | | | | | रभिजिद्धिष्वजिन्मद्दावतः | • | | |
| | कौसुरबिन्द द्वितीयं च | ₹४ | R | 403 | | महोर्थामो वा | 30 | ć | 13 |
| , | । ७९ मर्वे वा निमित्तात् | 29 | | 3 89 | 30 | ८ सर्वस्तोमो बुमूषतः | 23 | ₹ | ३३ |
| | १४५ सर्वं वा श्रुतेः | ₹\$ | (| : 33 | 38 | ९ सर्वस्वं बाह्मणस्य | 28 | 8 | १५ |
| | २६९ सर्वजित्समहावतः संव | | | | | २ सर्वस्वप्रतिनिधिवी | २ २ | • | २६ |
| | स्सरदीक्षः सप्ताहाभिषव | | #2 2011 | | | ६ सर्वेस्वारः इताच्चदक्षिणः | 23 | Ę | Ą |
| | स्तिस उपसदः पड्वा | A 14 A 14 A | ş | 88 | | » सर्वहुतेन सहिम्नां चरति | | | |
| | १४५ सर्वजिदमिजिद्विस्वजितां | | | | | यस्तेऽहक्किति जुहोति | 30 | وا | 24 |
| | वेकेकेन | 2,8 | 4 | ્ષ્ટ | 3 | १ सर्वारिनष्टोमैर्वा राजसूय- | | | |
| | । ५२ सर्वेज्यान्यां विश्वजित् | | 200 | 80 | | े सोमें: | ং | 8 | Va |
| | | • | | | 建造器 | | | | 1043 |

| go. | स्त्राणि | अ० | कुट | Æo | पृ० | स्त्राणि | क्ष | হ্বী ৫ | सू |
|-------------------|--|---------------------------|--|-----------|------|-------------------------------------|----------|---------------------|-------------------|
| and the second of | सर्वारिनद्योमी भरत- | | | | | | \$3 | 3 | 36 |
| | द्वादशाहः | ર છ | (g | 99 | १२८ | सहस्रदा इति पुरुषशिर | | | |
| 926 | सर्वानप्येकस्मिननेक | 2.4 | 4 | | | टत्गृह्य मध्ये | 80 | Ģ | 88 |
| | सर्वाभिश्रतुर्थम् | | 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1 | १२ | 399 | सहस्तपूरणगृहपतिमर- | | | 198 d.) 198 d. |
| | सर्वा वाऽविशेषात | | | (9 | | णसर्वेज्यान्यः | ₹४ | ફ | १६ |
| | सर्वे चेत्तुर्णं मधित्वा।प्रति | | | | | सहस्रपूरण गाः | <i>8</i> | 6 | 80 |
| | वातसुद्धृत्य० | २६ | १० | 30 | २६४ | सहस्रमभिजितो दक्षिणा | 33 | ę | 9 |
| 88 | सर्वेभ्यः षोडश | \$8 | ષ્ટ | १४ | 386 | सहस्रसंबत्सरं विश्वस्ताम | 88 | ę | 58 |
| 388 | सर्वेषां वाज्यस्य यजेत् | 39 | • | 80 | 388 | सहस्रप्ताव्यमग्नेः | 88 | Ģ | 80 |
| şv | | १६ | | | 264 | सहस्राणि वा | ३३ | Ą | 2.5 |
| २६ १ | सर्वां वाऽघोजानु | ₹ 9 | 8 | १८ | 99 | सहस्रे वा | 99 | Ę | - 6 |
| | सर्वेषां वाऽविशेषात् | १६ | 8 | १६ | | साकमेघा दर्शपूर्णमासवत् | | | 33 |
| | सर्वे संस्कारात् | 88 | ₹ | १२ | | साख्यमरणमिच्छन्तः | | | |
| | सर्वेरके | १६ | १ | २३ | | प्राजापत्यची जुहुयुः | 39 | 88 | 99 |
| 338 | सवनमुखोयेषु मक्षयिष्य | | | | 308 | साग्निचित्यावग्नेस्तोमौ | | | |
| | न्तो वा सवनसन्तनि जुहोत्यग्निः | 8 | Ŕ | १२ | | सर्वेजिद्दीक्षी साद्यप्क्रधर्माः | 44 | १० | 33 |
| 330 | सवनसन्तान जुहात्यामः | | | | | | ₹₹ | * | 3 4 |
| | प्रातः सवन इति | | | | 506 | साधष्क्रधर्मा हिरण्यः | | Verding Military | |
| | सवनान्याशीवेन्ति | 化精蛋白 点 | | 4.00 | 2213 | स्नावत् सानुचर्यः प्रस्याहुः | 3.5 | \$ | ₹ 5 |
| | सवनीया वा बहुश्रुतेः | 48 | | ३२ | 300 | साम्राय्यञ्च तिस्मन् | 3 2 | ્ય | 50 |
| | सवर्णीयायी 💮 🗘 | १८ | Ę | २८ | 307 | सान्निपातिकानि वा तस्य | 36 | ્વે | 92 |
| 398 | सविवा त इति शरीराणि | | | | | साम प्रेष्यति | 88 | 100 | * |
| | निवपति मध्ये | 4 § | ક | ٩ | | साम प्रेष्यत्यवसृथवद्देशा | 4.7 | | ` ` |
| 865 | सविता प्रथमेहन्निति च | 2.5 | LD. | 3.0 | | सायं दोहस्थाने वा | 7 1 7 | | |
| | प्रत्यहस् सवितुः ककुभः | 3.5 | 1000 | 39 | *** | पुरोडागः . | 96 | Ģ | S. |
| | स्रावद्धाः क्ञुनः स्रवित्रेति वानुवाकसुक्त्वा | २४ | | 88 | 360 | सायं प्रातदीहात्तीवेन्द्रं | | | |
| 6 4 45 50 | 그리고 하는 사람들은 그렇게 되었다. 생활 하는 사람들은 함께 되었다. | 4.000 | • | ₹9 | | पञ्चशरावमोद्मं ० | 36 | 9 | 2 |
| 402 | सञ्यबाहुमन्तरं कृत्वोत्तर- लक्षणामिरिष्टकामिः | 1 1/2 | | 6.5 | 366 | खायमाहुत्या ं हुतायां | | | |
| | सशिक्यं प्रार्खं प्रगृह्वाति | (4 | Š | 83 | | चेद दर्बलः० | 26 | . 10 | ę |
| - 25 | सारान्य प्राध्य प्रशुक्तात सुपर्णोसीति पिण्डवत् | 86 | | v | १८१ | सारस्वतमोहुम्बरेण | | * | Sec. 4.15 |
| 336 | सकेतः सेन्यासार | 26 | ٩ | | 388 | | 38 | 8 | २९ |
| २२५ २४५ | सञ्जेषः, होतृचमसम् सह पशुमाल्भते | 33 | 3 | 30 20 | १८५ | सारस्वतेन हयोः प्रातः | | ફ | |
| 7. TQ | सहस्रं वावतंम् | ٦٦ २0 | . ક | Sure of | 868 | सारस्वतो मेषः | 98 | 3 | ષ્ટ્ર |
| 7 (9 | सहस्रा सर्ववेदसं विश्वः | ر مان از از | • | 8 | 40 | सावित्रः क्षतुः | १५ | ş | 8 |
| | ाजतः | २३ | 8 | 8 | | सावित्रसारस्वतत्वाष्ट्रपौ- | | | |
| | सहस्रदक्षिणः | 84 | ì | 4 | | ज्ञेन्द्रबा ईस्पत्य े | १५ | 6 | 8 |
| 306 | सहस्रदक्षिणाः | 23 | 8 | 4 | | साम्बर्धशतं दक्षिणाऽहवीवा | | • | ₹ø: |
| ₹૮ | सहस्रदक्षिणे त्रिरात्रे | | | | 99 | सासन्दीकसुधम्योद्व त्वेति | | | |
| | प्रतिविभज्यः | 88 | 3 | 88 | | दक्षिणतोऽनित करोति | 84 | 6 | १ ६ |
| | September State of the Te | artiget. | | | | | NEW A | \$192X | 1363 |

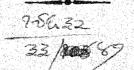
| go | स्त्राणि | e FB | হ ্য | सु० | go | सत्राणि | 37 0 | ক্ষত | Ho. |
|--------------|--|----------|---|------------|------------|------------------------------------|-------------|---------|-----------------|
| 4 5 8 | सा ह सम् | 20 | | ३० | | | *8 | | |
| ५ ७० | साहसम् साहसाश्रत्वारः सहस्र- | | • | | | सुर्याय च ज्योतिष्मते | | | |
| | दक्षिणाः | ₹ ₹ | 3 | Ę | | सेषुकं धनुः प्रयच्छति | | | |
| ଓ ୦ | सिं(हबुकन्याद्यक्षोमानि | | | | | सैव दक्षिणा | | ą | |
| | | १५ | 8 | 48 | | सोमं कीत्वा हैधसुपनझ | | | |
| 223 | सिकताभिः समं विलां | | | | | पर्युद्धीकं० | १५ | ક્ર | 3 |
| | कृत्वा मातेव पुत्रमितिः | e o | 8 | 3 2 | २४७ | सोमक्रयणिखनत्सः साण्डः | | | |
| ११० | सिकताश्राग्रेभंस्मेत्यूषवत् | १७ | ? | . | | सोमचमसो दक्षिणौदुम्बरः | | | |
| | सिश्रकसुसलेनेनं, हन्ति | | | | | सगोत्राय ब्रह्मणे देयः | | 6 | 28 |
| ११६ | सीरमुत्करे इत्वा | 80 | ્ર | 23 | 843 | सोमदाहे बधास्वं वृत्तानता | | | |
| 33 | सुत्यादौ हिरण्यस्तजोऽपि- | | жŞ. | | | न्धारयेयुः | | 88 | 26 |
| | नह्यन्ते० | 68 | 8 | २३ | ११८ | सोमनिवपनाद्यातिय्यहवि | | | |
| १०२ | सुत्यास्वाहवनाय साङ्काः | | | | | व्हातः इत्वाऽऽहवनीयः | | 3 | 6 |
| | शिनेन हत्वा सुन्वन जयति | १६ | Ø | 8 | 388 | सोमसुपनहा सुत्यास्थानेषु | | | 191 |
| 80 | सुन्वन् जयति | 58 | 8 | ફ | | मासमग्निहोत्रं जुह्नति | | ે 8 | 3.5 |
| | सुन्वन्तमस्यामुपवेशयति यन्तासीति | 643 | • | 3.3 | १९४ | सोमवतां वहिषदामिन | 1 | 80 | |
| 8.9 | यन्तासातः सुन्वन्तमस्यासुपत्रेशयति | र्ड | 8 | 2. | | प्वातानां च | 28 | 3 | 36 |
| | स्योगमासीदेति | 86 | Ø | 3 | | सोमवदुत्क्रमणमागमनं च | 18 | ٩ | 80 |
| q to | सुन्वन्तमाऋगयन् दिशः | • | | * | ३१८ | सोमश्रेनमार्जीलीये य | | | |
| | प्राचीमारोहति ् | 24 | ę | 38 | | ईजानाः पितरो ये पिताम | ET . | | langer Konse |
| | सुबक्षण्य उपमा ह्वयस्वेत्यु | • | | | 110 | येऽनीज्ञाना० | 36 | 8 | Ş |
| | क्त्वा समिद्राधानम् | | | 38 | \$60 | सोमातिप्तस्य तीवसुदु- कथ्यः | D.a. | | 0.5 |
| २८३ | सुब्रह्मण्यारनेयी | 3,8 | 9 | २ | | सोमातिपुतस्याप्येषा | | 8 | |
| १३ | सुँबह्मण्याह्वानं गृहपतेय | | | | | सोमात्क्रीयमाणात्सहितं | ζ.Υ | १० | ₹5 |
| | वाह गृहपतिः । | | દ | લ લ્ | 4 1 | दक्षिणतः | Ota | _ | 41) |
| वद् | सुमिक्रिया न इति स्ना | | | | 900 | सोमापहरणे विधावते- | ξ 6 | 8 | (4 |
| | त्वाऽहतवाससोऽनडुत्पुच्छ | | | | 47.7 | च्छतेति ब्रुयात् | 36 | १२ | o lo |
| 2 | मन्वारम्याः सुमित्रिया न इत्यपोऽक्ष- | | 8 | 49 | 4 3 | सोमा वा सामान्यात् | | ्र ४ | : |
| 400 | स्तुमात्रया न इत्यपाञ्जः स्त्रिनादाय दुर्मित्रिया इति | | 6 | 2.6 | | सोमाविरोधेन वा तत्रा | `` | 5 | ર હ |
| 864 | सुराग्रहाञ्ज्लीणात्योजोऽः | 9 (Z | ٩ | 7.4 | 34 | धान्यात् | 28 | 8 | Vg |
| \$20 | स्रीति वृज्ञच्याद्यसिं(इस्रो- | | | | 369 | सोमेज्योपपाते चैकैकां | | | |
| | मिनः प्रतिमन्त्रं मिन्नैः | | a | 2.2 | | ययाकालां हुत्वा॰ | 24 | 8 | 4 |
| 000 | सुरावन्तमिति जुहोति | | | २३ १२ | 990 | सोमो राजेल्यनुवाकेन | | | |
| | सुराजन्यानात अशाय सुराजेकेत्यालन्धो ह्रयति | | | ₹ २ | | प्रहातुपतिष्ठते युगपत् | १९ | ą | 29 |
| 620 | सुसमिद्रहोमः - | 200 | १४ १४ | 20, 421, 5 | 202 | सौत्रामण्यामिष्टिपशवो | | | |
| हरू ११३ | सुत्रामण्यां तृता यायाः | 20 | | १६ | | भिन्नतन्त्राः काळभेदाव | 18 | ક | ę |
| | स्य इत्याचष्ट | २० | q | 7 | 328 | सीमापीष्ण उपालम्भ्यः | ર પ્ર | | 89 |
| 100 | ध्या क्षाद्वगवतीत्युच्यमा | 8.0 | | | | सौमारोद्रोऽतश्र र । शुक्राः | | | |
| | यवसोदके घेनवे प्रयच्छ | | | | | पर्वास शुक्छवत्सायाः | १५ | 3 | 43 |
| 08290H | | 9 July 1 | 100 | * 12,5% | 1.445 | 그들은 미슨 무료 중인하다고 비르셨다. | | | 78 S 4 |

| पृठ | सुत्राणि | अ | ় ক | स्॰ | i Zo | सूत्राणि | अट | ু বৃদ্ | ० सु |
|--|--|----------------|----------|--------------|-------|-----------------------------------|------------|--------------|------------|
| १८६ । | | | | | | स्विक्तिषु पादमात्रोः | | | |
| ₹55 € | बीराणाम् | १९ | ā | ? | 831 | स्वनपुष्कराकृती पिन्वने | | | |
| ₹ ₹ | गैर्थ उपालम्म्यः | 13 | 3 | १० | 189 | रौहिणकपालेपरिमण्डले | 48 | | १२० |
| २२० । | | २० | | | | स्तुग्व्यृह्नात्र्राग्घविषा | | | |
| १ ९६ : | सौवर्णं(शिरस्येके विद्यो | | | | 4 | खुच्ये दुहे पुनग्रहणम् | | | |
| | देवि | | ક | 28 | | स्तृवं प्रास्य परिश्रितस्य- | | | |
| 38 | स्कन्देच्चेदस्कन्नधित प्रा | | | | | क्कृष्णाजिनमास्तीयः | 80 | | q* & |
| | नीत्यभिमृत्रय शेषेण जुहु | • | | | १६६ | स्रुवाहुती जुहोत्यग्ने तम | | | |
| | गाव | 36 | ą | Ģ | | द्येति च प्रत्यूचम् | | • | 3 6 |
| ে ৩১ | स्तनानिवाऽग्रेषुन्नयति | | ક | 8 | | मुवेण सम्भृतान्ज्रहोति | | | |
| 860 1 | स्तुते मार्जालीयं त्रिः परि | Ì | | | | वाजस्येमसिति | १४ | ١ | 3 83 |
| | वन्स्यपसम्बद्धेः स्तुवीरम्बा स्तोत्रमोहे शखस्य च | 86 | 85 | ३४ | 86 | खुवे वैपालाशे कडूते | | Jan 1 | A Property |
| २२८ र | न्तुवीरस्वा | ₹ ≎ | ٩ | ٩ | | वापामागैतन्दुलान् ऋत्व | 1 29 | | . |
| 366 | त्तोत्रमोहे शहस्य च | 94 | 8 | * 3 | 800 | ः स्वप्याच्चेत्प्रजापतये | | | |
| \$39 F | स्तामभागा अन्वहम् | \$0 | 100 | 80 | | स्वाहेति | 49 | 81 | 19 |
| | न्तोमायनं वा | | | 88 | ३८७ | • स्वयं होम्यशक्ता उ | | | |
| | स्तोमोत्सर्गो नैकस्याहः - | 1.000 | Acres 1 | २५ | | पासीत | 29 | ٤ | 83 |
| | ब्रियोवा | 38 | 3 | E | 853 | स्वयमातृण्णां पुरुषे वाके- | | ol. Visik | |
| 44.5 | व्यण्डिलेऽभिविष्यते प्र | | | | | रां छिद्रां ध्रुवासीति | 80 | ŀ | 29 |
| ************************************** | तिदुहाहवनीयस्य दक्षि- | | | | 289 | स्वयमातृण्णामध्यग्नि | | | |
| | na: | 44 | 22 | , | | घार ञ् ञ्चक्रवस्सापयसाऽभि | • 1 | | |
| २८६ १ | स्थपतिरित्येनं ब्रुयुः | २२ | • | 46 | 12.5 | जहो चि ॰ | 26 | 8 | ą |
| | व्यपतिरित्येनं ब्रुयुः | २२ | 22 | ξo | १६३ | स्वयमातृण्णायां पञ्चगृहो | ส่ | | |
| | त्थाखीभिः सौरान्नाना | | | | | जहोति नाभिवदिरण्या | | | |
| | हे वामिति व्यस्यासम् | | | | | दर्शकं स्वयमातृण्णारेतः सिग्वि | 96 | 3 | ११ |
| | त्थास्यां गाईपस्यं पश्चात | | ঽ | ζ., | १वद | स्वयमातृण्णारतः सारव | | | |
| | त्थावरा अपो गत्वा प्रजा | | | | | इव ज्योतिर्ऋतव्याषाहासुः | 576 6 | A 100 | २६ |
| Q | सये त्वेतिप्रोक्षत्यदवं प्रा | <u>a.</u> | | | | स्वयमातृण्णास्पृष्टं प्रथमम् | (१८ | ş | १६ |
| | ान्त्रम् स्थतं प्राद्यमभिषिञ्चति | 40 | ζ. | 9.4 | | स्वयमृतुवाजेज्याऽर्वाः | | | |
| 96 (| લ્યત પ્રાજ્ઞનાનાપજ્ઞાત <i>કેપ્ટિકેપ્ટર્ગર્ગક</i> | e s | | | | ञ्चमणः नवयमेव सामुगानम् | १ २ | 3 | \$8 |
| 3 | रोहितोऽघ्ययुर्वा० थूणामयूखम् फर्यं च | 36 | T tea | 0.2 | 99.8 | -वयमव सामगानम् | र४ | Ę | 80 |
| 888 6 | ત્યુપામ વૃત્વવ્ જાર્ન = | 26 | 70 | 33 | ४५ | स्वरिति गौधूममाखमते | 18 | ક | २५ |
| 388 6 | _{फय} च फ्यमस्मै प्रयच्छति पुरो | ~ ~ | | े | इद् | स्वरित्यौद्गान्न आहव- | | | |
| | क्ष्यमस्म प्रयच्छात उरा (तोऽध्वर्धुवॅन्द्रस्य वज | Joseph Control | | | | मीये ९ | २५ | 8 | E |
| 14 2 1 | は、利益の行いなが関する際は、対策を行い、一致になって | 6.6 | | 0.0 | 4.08 | स्वर्गकामपञ्जकामश्रातुः | y | | |
| Sec. 1885. 1975. | 얼마나 이 전화에 그렇게 하다면 바람이 | | 8 | | | | २२ | 3 | १० |
| | | 29 | 8 : | 5 7 1 | | | २ ३ | e. | 80 |
| 0.480 | यन्द्रमानाः स्थावराः | | | | ३०७ : | स्वर्गकामस्यायुः | २३ | 8 | 800 |
| प्रर | यातपे | 19 | 8 | 1 96 | 350 | स्वर्गायेत्युदिते | 30 | 8 | 38 |

| (2014년 1일 - 1914년 1일 | 보았던 경화를 조절하면 중요하면 되고 하지 않던 |
|---|---|
| ए॰ सूत्राणि अ क॰ स्॰ | प्रः सुत्राणि अ० व.०सू० |
| ४५४ स्वाध्यायदर्शनात् २६ ७ ४२ | १५९ हवने प्रास्यति चात्वाळे ८ १ १६ |
| ९१ स्वाहाकारः सर्वास् | ३८२ हविरन्तरेण प्राक्प्रधाने- |
| खायाम् १६ ४ ४४ | ज्यायाः स्मृत्वान्वाहरेत् २५ ६ १६ |
| ४४२ स्वाहाञनय इत्यनुव | १७३ हविधीनप्रक्षालनात्यारनीः |
| पर्कृते १५ ६ ६ | ध्रालम्भनात्कृत्वा १९ ६ ८ |
| ४४१ स्वाद्या हर्मेः पित्र इति ज | २९ हविर्धानारनीयान्तरे होण- |
| पित्वाऽतिकम्याश्राव्या ह | |
| धर्मस्य यजेति २६ ६ ३ | कलशः १३ ३ ४३ ७३ हर्विभिन्नी १५ १० २१ |
| ४४१ स्वाहा धर्मावेत्युपयमन्याः | ३४३ हविर्यह्मेभ्योऽतिरात्रमेके |
| सिर्ज्ञात घर्मे २६ ६ २ | सोमानन्तर्यात २४ ४ ४१ |
| ४५१ स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपः | २०६ हविषामुत्तरे यथालिङ्गम् १९ ६ २४ |
| तिकेस्य इति० १६ ७ ३३ | ३९० हविष्यवद्धीम्यम् २६ ७ ११ |
| ४४३ स्वाहा सं ज्योतिषेत्युव | ३८९ हविष्येषु चेदाहियमाणेषु |
| यमन्यामासिञ्चति घम्यम् २६ ६ १७ | ३०८ हावण्यशु चदाह्यमाणशु मरणं दक्षिणारनावेनान्त्सः |
| ४३९ स्वाहेन्द्रवदिति विप्रुषोऽभि- | न्दहेत् २५ ७ ६ |
| मन्त्रयते रह ६ ७ | ७२ हवीकृषि निर्वपति सा |
| ४०८ स्विद्याच्चेत्तपस्याभ्योऽ | |
| ब्रद्यः स्वाहेति . २५ ११ २१ | विश्ववास्मैन्द्राणि० १५ १० १७ |
| ५३ स्विष्टक्षच्छतेश्र १५ ४ २० | ३५६ हवी % पि निर्वेपत्याग्ने- |
| | यमेन्द्रं वेश्वदेवं० २४ ७ ४ |
| ४०२ स्विष्टकृतमनुजुद्दोति | २१८ इव होतरिति प्रतिगृह्वाति |
| पुरुदस्म इति १९ १३ | तदम्ते प्रेष्यति वीजागण- |
| २०० स्विष्टक्टप्रमृत्याबर्दिहो- | गिनो० २०३ ३ |
| मात्कृत्वा परिचृत्क्षीरिः | ३७ हस्तिवद्यक्रमहानसानाम् १४ २ २९ |
| श्रान्यादायाव <i>भ</i> श्रवद्गः | ५२ हायनानामिन्द्राय ज्ये- |
| मनम् १९ ५ ११ ४०२ स्विष्टकृद्द्व उच्मीषत्रेष्टि- | ष्टाय १९ ४ १० |
| "Manager Manager"。 | १६२ हिङ्क्त्य साम गायति १८ ३ १ |
| तस्य बृक्षासञ्जनं० २५ १० १४ २४२ स्विष्टक्कदन्तेऽग्निम्प्यः स्विः | ६५ हिरण्मयानि वा १५ ८ ६ |
| 경제 위 경영 등에 되었다. 그는 사람들은 그는 사람들은 그는 사람들은 그리고 살아 되었다. | ७९ हिरण्मथानि वा १६ १ ३३ ६७ हिरण्मयी सजमुद्रात्रे |
| ष्टकृद्भयः स्वाहेति छोहितं जुहोति यथावत्तम् २०८८ | ६७ हिरण्मयीरे सजसुद्रात्रे |
| | ६७ हिरण्मयात स्रजसुद्धात्र रुक्मति होत्रे० १६ ८ २२ ८१ हिरण्मयोमेके १६ १ ६ |
| २४९ स्विष्टकृद्धनस्पत्यन्तरे पुरु- | ८१ हिरण्मयोमेके १६ १ ६ |
| षदेवताम्यो जहोति २१ ११३ | ३४ हिरण्मयेन मधुवहं गृहीत्वा |
| ४ २ स्विष्टकृद्धनस्पत्यन्तरे प्रत्ये- | खरमध्ये सादयति १४ २ ८ |
| त्यं प्रतिप्रस्थाता० २५१० १२ | ७९ हिरण्यगर्भे इत्युचा सुवा- |
| २३१ स्विष्टकृद्वनस्पत्यन्तरे | वारः १६ १ ३८ |
| गुल्य्{ हुत्वा देवताऽश्वा- | २१३ हिरण्यपरिमाणेऽन्यत्रापि २० १ २३ |
| ङ्गेम्यो० २०८४ | ४६ हिरण्यमारनाचेदणवे १५ ११३ |
| ह | । ४१० हि र ण्यवद्वोदकम् २५ १२ १३ |
| १२ हरति द्यावाक्षामेति १६ ५ ४ | २३२ हिरण्यवासोधीवासेष्व |
| | |

| To. | स्त्राणि | क्र | 霉の | स्० | पृ॰ स्त्राणि | अ० | 南 | सु० |
|---------|--|------|----|------------|-----------------------------------|------|---|-----|
| | सुत्राणि दवसंज्ञ्यनम् हीनस्यानुकीः | | | १० | | | | |
| 5.65 | हीनस्यानकीः | | | 9.9 | कशिपुनोरुपविष्टी | १५ | Ę | 8 |
| | | | | | २३० होता ब्रह्माणं का स्विदा | ÷ £, | | |
| | हुतं चेत्स्यंस्थाप्य तदेव पुनरिवर्षेत | | | ęω | सी दिवि | २० | Ģ | 33 |
| | | | • | | २०४ होतायुक्षस्सिमधारिन- | | | |
| 808 | हुताहुतस्य सगैऽङ्गारमन्त | | | | मिति प्रवाजप्रैषास्त्रिपशोः | 28 | Ę | 88 |
| | परिधि निर्वेत्त्यै | | | | २०६ होता युक्षद्दिवनाविति | | | |
| १८२ | हुतोच्छिष्टभक्षः । | 8 | ? | 83 | च्छे वयानां चैवायथालि | | | |
| 360 | हुत्वान्यामाजतेति | Y. S | | | ङ्गम् १० होता श्रुसस्याश्चिनम् | 88 | Ę | 44 |
| | ब्र्यात् | 3 4 | Ę | 65 | १० होता श्रुंसस्यादिवनम् | १२ | Ę | G |
| 303 | हुत्वा भृरित्यनुमन्त्रणम् | २६ | ક | 99 | १७ होतुः प्रथमं प्रथमसुक्रयवन | | | |
| | हत्वा सुक्प्रासनम् | | | | वितरेषु | १२ | 6 | 6 |
| | हुत्वा हुत्वा प्रथमपरिधा | | | | १० होतृप्रस्थयः प्रतिगरः १ | ą | 3 | 99 |
| | उ पश्रयति | 38 | 6 | 83 | १९३ होतृबद्यमैत्रावरुणाः सा- | | | |
| 386 | हृद्यनाचे त्वन्यमालभेते- | | | | रस्वतमादिवनवत् | | 3 | 94 |
| | त्येके हृद्यं पशुरिति श्रुतेः | | 8 | • | २१८ होतृत्रह्योद्वातारः कशिपुषु | | | |
| 5 10 10 | हृद्वश्रुलान्ते खुवाहुतीर्छे- | | | | १७५ होत्रीये त्रिरेकविश्वात्या | | | |
| | होति यदाकृतादिति प्रत्यू | | | | २७० होत्रे शस्त्रकाले | | | |
| | चमष्टी | 86 | 8 | 23 | १६८ होमासादनचोश्च | 96 | 8 | 39 |
| 2.5 | हैमहा३ हैमहा३ इति | 23 | 3 | સ ર | ३६२ होत्रिके सृरिति गाईपत्य | | | |
| 236 | होतस्यमभिष्दहीति | | | | २६५ होम्यङ्गवि सदौद्रमुवस्र्ष्टं | | | |
| | प्रेच्यति | 20 | G | ę | वायन्यं दुद्यमानमाश्विनं | | | |
| 286 | होतरधमभिष्टुहीति प्रेष्यति होतर्भुतान्याचक्ष्य मुते- | | | | 21270 | 24 | 9 | 8 |
| | व्विमं यजमानमध्यहेति | २० | ą | २२ | द्वाधाः ँ न | | | * |
| 385 | होताष्वर्यवयोत्रीय च | ર૪ | 8 | 88 | ४१ ता स वधेष्टं कुरुते १४ | 1 | } | १८ |

*** इति ***



भायुवेंद तथा संस्कृत की सब प्रकार की पुस्तकों के मिछने का एक मात्र पता-

जयकृष्णदास-हरिदास गुप्त---चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, बनारस सिटी।

